CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५५८

श्री १०८ चा० च० आचार्य शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक
संस्था द्वारा निर्मापित
श्रुत भण्डार व ग्रन्थ प्रकाशन समिति

३५५८

श्रावकाचार-संग्रह

(प्रस्तावना, कुन्दकुन्द श्रावकाचार, परिशिष्टयुक्त)

चतुर्थ भाग

सम्पादक एवं अनुवादक
सिद्धान्ताचार्य पं० हीरालाल शास्त्री, न्यायतीर्थ
हीराश्रम, पो० साढूमल, जिला—ललितपुर (उ० प्र०)

प्रकाशक
परमपूज्य चा० च० श्री १०८ आ० शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था
श्रुतभण्डार और ग्रन्थ प्रकाशन समिति
फलटण

वीर नि० सं० २५०५] वि० सं० २०३६ [ई० सन् १९७९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या.................. प्राप्ति-संख्या....................

ग्रन्थ-कार्ड
श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान
ग्रन्थागार
नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम श्रावकाचार संग्रह
लेखक सम्पा० पं० हीरालाल शास्त्री

लेनेवाले का	देनेकी	लेनेवालेका	लौटानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री १०८ चा० च० आचार्य शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक
संस्था द्वारा निर्मापित
श्रुत भण्डार व ग्रन्थ प्रकाशन समिति

३४०६

श्रावकाचार-संग्रह

(प्रस्तावना, कुन्दकुन्द श्रावकाचार, परिशिष्टयुक्त)

चतुर्थ भाग

सम्पादक एवं अनुवादक
सिद्धान्ताचार्य पं० हीरालाल शास्त्री, न्यायतीर्थ
हीराश्रम, पो० साढूमल, जिला—ललितपुर (उ० प्र०)

प्रकाशक
परमपूज्य चा० च० श्री १०८ आ० शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था
श्रुतभण्डार और ग्रन्थ प्रकाशन समिति
फलटण

वीर नि० सं० २५०५] वि० सं० २०३६ [ई० सन् १९७९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक
परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ति
आचार्य १०८ शांतिसागर दि० जैन
जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था
फलटण

वीर संवत्
२५०५
ई० सन् १९७९

प्रथमावृत्ति
प्रतियाँ १०००

मुद्रक
वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहरनगर कॉलोनी, दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी–२२१००१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय निवेदन

यह श्रावकाचार संग्रह ग्रन्थ उपासकाध्ययनांगका चरणानुयोगका प्रकाशक अनुपम ग्रन्थ है। इसमें सब श्रावकाचारोंका संग्रह एकत्रित किया है। श्रावक धर्मका स्वरूप क्या है, आत्मधर्मके उपासककी दिनचर्या कैसी होनी चाहिये, परिणामोंकी विशुद्धिके लिये क्रमपूर्वक व्रत-संयमका अनुष्ठान नितांत आवश्यक है इसका विस्तारपूर्वक विवरण इस ग्रन्थका पठन-पाठन करनेसे ज्ञात हो सकता है। स्व० श्रीमान् डा० ए० एन उपाध्येने सब श्रावकाचार ग्रन्थोंकी नामावली भेजकर यह ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिये मूलप्रेरणा दी इसलिये यह संस्था उनकी कृतज्ञ है।

श्रावकाचारके पाँचवें भागका संपादन श्री पं० हीरालालजी शास्त्री ब्यावरने तैयार करके ग्रंथमालाको जिनवाणीका प्रचार करनेमें सहयोग दिया है, जिसके लिये हम उक्त जैनधर्मसिद्धान्तके मर्मज्ञ विद्वान्को हार्दिक धन्यवाद समर्पण करते हैं।

इस ग्रंथका मुद्रण कार्य सुचारू रूपसे करनेमें श्री वर्द्धमान मुद्रणालय वाराणसी के संचालक वर्गने सहयोग दिया है इसलिये हम उनका भी आभार मानते हैं।

अंतमें इस ग्रन्थका पठन-पाठन घर-घरमें होकर श्रावकधर्मकी प्रशस्त तीर्थप्रवृत्ति अखंड प्रवाहसे सदैव कायम रहे यह मंगल भावना प्रकट करते हैं।

मंत्री	मंत्री
बालचन्द देवचन्द शहा, बम्बई	**श्री मोतीलाल मलुकचन्द दोशी, फलटण**
श्री दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था	श्रुत भण्डार व ग्रन्थ प्रकाशन समिति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्थाका

संक्षिप्त परिचय

परमपूज्य श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्थाका शुभसंकल्प विक्रम संवत् २००० में पर्यूषण पर्वके शुभ अवसरपर श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि क्षेत्र पर हुआ। संस्थाकी नियमावली बनाकर यह संस्था वि० सं० २००१ में बारामतीमें ट्रस्ट करनेमें आ गई। संस्थाका मुख्य उद्देश्य प्राचीन जैनसिद्धान्त शास्त्रोंका जीर्णोद्धार करके जैन-साहित्यका प्रकाशन करना तथा उसका प्रचार करना यह है।

धर्मसंस्कृतिका प्राण उसका साहित्य ही होता है। धर्मसंस्कृतिकी प्रभावनाका प्रमुख अंग प्राचीन जैन साहित्यकी रक्षा करना, तथा उसका प्रकाशन करना, पठन-पाठन कराकर प्रचार करना यह जानकर जब परमपूज्य आचार्य श्रीका वि० सं० २००० में श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि पर चातुर्मास था उस समय आचार्यश्रीको पता चला कि मूडविद्रीमें जैन सिद्धांतके मूलभूत प्राण प्राचीन ग्रन्थ धवला-जयधवला महाधवला ताड़पत्र ग्रन्थ बहुत जीर्ण अवस्थामें पड़े हुए हैं। उनमेंसे महाधवलाका करीब चार पाँच हजार श्लोक प्रमाण भाग कृमिकीटकों द्वारा नष्ट हो चुका है। यदि उनकी सुरक्षा न की जाय तो सभी सिद्धांत ग्रन्थ प्रायः नष्ट हो जावेंगे।

इस वार्तासे आचार्यश्री अत्यन्त चिंतित हुए। उस समय क्षेत्र पर (१) श्री १०५ भट्टारक जिनसेन मठाधीश कोल्हापूर, (२) श्री ध० दानवीर संघपति शेठ गेंदनमलजी, मुंबई, (३) श्री गुरुभक्त सेठ चंदुलाल ज्योतिचंद सराफ, बारामती, (४) श्री दानवीर रामचन्द्र धनजी दावड़ा, नातेपुते तथा अन्य उपस्थित धर्मानुरागी श्रावकोंके सम्मुख पू० आचार्य महाराजने आगमरक्षाकी अपनी अंतरंग व्यथा सुनवाई।

आचार्यश्रीके उपदेश तथा आदेशसे प्रेरित होकर उस कार्यकी पूर्ति करनेका संकल्प तुरंत किया गया। उसी समय लगभग एक लाख रुपयेके दानकी स्वीकृति प्राप्त हुई। तथा कार्यकी रूपरेखा निश्चित करनेके हेतु एक स्थायी कमेटी नियुक्त की गई।

उपरोक्त सिद्धांत ग्रन्थ आगामी कालमें दीर्घकाल तक सुरक्षित रहें इस उद्देश्यसे उनको ताम्रपत्रों पर खुदवाकर उनको सुरक्षित स्थान पर रखनेकी इच्छा आचार्यश्रीने प्रकट की। प्रथम उनको हस्तकारीगिरोंके द्वारा ताम्रपत्रों पर अक्षर खुदवानेका विचार किया गया। परन्तु इसमें अतिकष्ट तथा अशुद्धताका अधिक संभव, खर्चकी बहुलता तथा कार्यपूर्तिमें अतिविलंब आदि त्रुटियां अनुभवमें आई। श्रीमान् शेठ बालचंद देवचंद शहा बम्बई इन्होंने इस कार्यकी पूर्ति रासायनिक प्रक्रियासे होनी चाहिये, इससे यह कार्य अच्छी तरहसे और शीघ्रगतिसे पूरा हो सकेगा ऐसा प्रस्ताव रखा जो कि तत्काल सर्वसम्मत हुआ। उस समय वहाँ पूज्य श्री १०८ समंतभद्र महाराज उपस्थित थे। उनके सूचनानुसार श्रीमान् शेठ बालचंदजी शहाको मंत्रीपद देनेका आदेश आचार्य श्री शांतिसागर महाराजने देकर ताम्रपट बनानेका कार्यभार उन्हींको सौंपा गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वि० सं० २००१ में जब आचार्यश्री महाराज बारामतीमें गुरुभक्त शेठ चंदुलालजी सराफ इनके बगीचेमें विराजमान थे उस समय श्री पं० खूबचंदजी, श्री पं० मक्खनलालजी आदि विद्वान् तथा धर्मानुरागी श्रावक जनोंकी सभामें (१) सिद्धांत ग्रन्थोंका संशोधन पूर्वक देवनागरी लिपिमें ताम्रपत्रों पर अंकित करके उनकी स्थायी रक्षाका प्रबंध करना, तथा (२) अन्य प्राचीन ग्रन्थोंका जीर्णोद्धार करके उनको प्रकाशित कराकर उनका पठन-पाठन स्वाध्याय करनेके लिये त्यागीगणों-को, मंदिरको, तथा विद्वान् लोगोंको उनका बिना मूल्य वितरण करता इन दो प्रधान उद्देश्योंकी पूर्ति करनेके उद्देश्यसे—'श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था' इस नामसे संस्थाकी स्थापना की गई।

उसके लिये १००० रु० या अधिक दान देनेवाले संस्थाके स्थायी सदस्य हों ऐसी योजना बनाई गई। सर्वप्रथम बटरपेपरपर ग्रन्थ छपवाकर रासायनिक प्रक्रियासे ताम्रपत्र पर अंकित करवाना, तथा मूल ग्रन्थ की ५००-५०० प्रतियाँ छपवाना, एक एक मुद्रित प्रति स्थायी सदस्योंको भेंटरूपमें देना, तीर्थ क्षेत्रों पर तथा मंदिरोंमें एक एक प्रति रखना, इस प्रकार आचार्यश्रीके आदेशानुसार निर्णय लिया गया।

कानूनके अनुसार संस्था रजिस्टर करनेके लिये समितिका गठन हुआ। समितिमें श्री शेठ बालचंद देवचंद, श्री बालचंद देवीदास चवरे वकील, आकोला तथा श्री माधवराव लेले वकील, सोलापूर सदस्य थे। एकमतसे संस्थाकी नियमावली तैयार की गई। तथा सोसायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट २१-१८६० के अनुसार संस्थाका दिनांक २५-५-१९४५ को अ० नं १३७२ में रजिस्ट्रेशन सम्पन्न हुआ।

सिद्धांत ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रति पं० गजपती शास्त्री इन्होंने मूडबिद्रीसे लाई थी। उसका मूल ताडपत्र ग्रन्थसे मिलान करनेमें स्व० पं० लोकनाथ शास्त्रीजीका अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। तथापि उसमें बहुत-सी त्रुटियाँ रह गईं।

ताडपत्र ग्रन्थोंका संशोधन शुद्ध और साफ होना जरूरी था। इसलिये तथा ताडपत्र ग्रन्थ जीर्ण हुए हैं। भविष्यकालमें उनका दर्शन दुर्लभ होगा इस हेतुसे मूल ताडपत्र ग्रन्थोंके फोटो लेकर रखनेका निर्णय हुआ। इस कार्यमें ब्र० बोधिचंद्रजी, श्री १०५ भट्टारक चारुकीर्तिजी, मूड-बिद्रीके ट्रस्टीगण, पं० लोकनाथ शास्त्री, पं० वर्धमान शास्त्री सोलापूर, श्री झारापकर स्टुडिओंके संचालक वर्ग आदि सज्जनोंका अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ। उनका धन्यवाद पूर्वक आभार मानना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

ताडपत्र ग्रन्थोंके फोटो लेनेके लिये मंत्री श्री बालचंद देवचंद शहा, पं० वर्धमान शास्त्री, श्री झारापकर बंधु मूडबिद्री गये। वहाँ पन्द्रह दिन ठहरकर सिद्धांत ग्रन्थोंके ११०० फोटो लिये गये। उसका अंदाज खर्च रु० ११००० आया।

धवला ग्रन्थके मुद्रणका कार्य प्रथम बम्बईके निर्णयसागर प्रेसमें श्री पं० खूबचंदजी शास्त्री-के निगरानीमें प्रारंभ हुआ। श्री पंडितजीकी सेवा बिना वेतन प्राप्त हुई। छपाईका काम शीघ्र-गतिसे हो इस दृष्टिसे सोलापूरके कल्याण प्रेसमें श्री पं० पन्नालालजी सोनीके देखभालमें उक्त कार्य साढ़े तीन वर्षमें पूरा हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धवला ग्रन्थका संपादन-संशोधन-मुद्रण आदिके लिये रु० ३०००० धनराशि खर्च हुई। श्री धवला ग्रन्थ ताम्रपत्र बनानेमें रु० २१००० खर्च हुआ।

सं० २००६ में श्री गजपंथाजी सिद्ध क्षेत्रके वार्षिक सभाके अवसरपर श्री संघपति सेठ गेंदामलजीके शुभहस्त द्वारा संशोधित मुद्रित प्रति तथा ताम्रपत्र आचार्य श्रीको समर्पण करनेका समारोह संपन्न हुआ।

जैन समाजमें धर्मश्रद्धा तो है। परन्तु वह दृढ़मूल बनने स्थितिकरणमें मुख्य साधन जिनागमका स्वाध्याय-मनन आदि है। स्वाध्यायके लिए आगम ग्रन्थोंकी सुलभता होनी चाहिए। इस अभिप्रायसे वि० सं० २०१० में श्री चा० च० आचार्य शांतिसागर दि० जैन जीर्णोद्धार संस्था द्वारा प्रमाणित श्री श्रुतभंडार तथा ग्रन्थ प्रकाशन समिति नामक संस्था आचार्य श्रीके उपदेश तथा आदेशसे स्थापित हुई। आचार्यश्रीके हीरक जयंती महोत्सवके समय फलटणमें श्री चंद्रप्रभ मंदिरके सभा मंडपके ऊपर एक श्रुतभंडार हॉल बनवाया गया। वहींपर धवला ग्रन्थ ताम्रपट तथा मुद्रित ग्रन्थ सुरक्षित रखे गये गये हैं।

इस प्रकार आचार्यश्रीके आदेशसे और मंगल आशीर्वादसे आचार्य शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था स्थापन होकर उसके द्वारा धवला ग्रंथराजोंको ताम्रपटपर उत्कीर्ण कराकर उनको दीर्घकाल तक सुरक्षित रखनेका पवित्रतम कार्य संपन्न हुआ। तथा आजतक अनेक प्राचीन जैन साहित्यका प्रकाशन कराकर उनका विना मूल्य स्वाध्यायके लिये प्रचार करनेका पवित्र कार्य यह संस्था कर रही है और आगे भी करती रहेगी।

इस ग्रन्थ प्रकाशन समिति संस्था द्वारा आजतक निम्न ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं।

ग्रन्थ नाम		दातारोंके नाम
१. रत्नकरंड श्रावकाचार		श्री गंगाराम कामचंद फलटण
२. समयसार (आत्मख्याति)		,, हिराचंद केवलचंद दोशी फलटण
३. सर्वार्थसिद्धि		,, शिवलाल माणिकचंद कोठारी
४. मूलाचार		,, गुलाबचंद जीवनचंद गांधी दहीपठी
५. उत्तर पुराण		,, जीवराज खुशालचंद गांधी मुंबई
६. अनगारधर्मामृत		,, चंदूलाल कस्तूरचंद शहा मुंबई
७. सागारधर्मामृत		,, पद्मप्पा धरणाप्पा वैद्य निमगाँव
८. धवला (सूत्रार्थ)		,, हिराचंद तलकचंद बारामती
९. जयधवला		,, बाबूराम भरमाप्पा सेनापुरे-कुडची
१०. कुंदकुंद भारती		संस्था मार्फत
११. अष्ट पाहुड		,,
१२. श्रावकाचार संग्रह भाग १ (वीर संवत् २५०२)		,,
१३. महापुराण भाग १	,,	,,
१४. भगवान महावीर उपदेश परंपरा	,,	,,
१५. श्रावकाचार संग्रह (भाग २)	,,	,,
१६. श्रावकाचार संग्रह (भाग ३)	,,	,,
१७. श्रावकाचार संग्रह (भाग ५)	,,	,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ प्रकाशन कार्यका खर्च ध्रुवनिधिका जो व्याज आता है उसमेंसे किया जाता है। ध्रुवनिधि बैंकोंमें Fixed Diposit रूपसे सुरक्षित रखी गयी है।

इस प्रकार यह संस्था आचार्य महाराजके मंगल आशीर्वादसे प्राचीन जैन साहित्यका प्रकाशन तथा प्रचार कार्य कर रही है। प्रकाशित ग्रन्थ बिना मूल्य स्वाध्यायके लिये जिन मंदिरों-में तथा त्यागी गणोंको भेंट दिये जाते हैं। इस प्रकार यह संस्थाका संक्षिप्त परिचय सादर करते हैं।

मंत्री
बालचन्द देवचन्द शहा
अध्यक्ष
स्वस्तिश्री जिनसेन भट्टारक
श्री १०८ चा० च० आचार्य शांतिसागर दि० जैन
जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था

मंत्री
श्री मोतीलाल मलुकचन्द दोशी
अध्यक्ष
चंदुलाल ललकचंद शहा
श्रुतभंडार व ग्रन्थ प्रकाशन समिति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आद्य निवेदन

श्रावकाचार-संग्रहके इस चतुर्थ भागमें तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्डमें सभी श्रावकाचारोंके आधार पर प्रस्तावना दी गई है। द्वितीय खण्डमें सानुवाद कुन्दकुन्द श्रावकाचार है और तृतीय खण्डमें परिशिष्ट है।

इस विभाजनका कारण यह है कि सभी श्रावकाचारोंके मुद्रणके पश्चात् प्रस्तावनाका मुद्रण कार्य प्रारम्भ हुआ, अतः उसके पृष्ठोंकी संख्या पृथक् रखी गयी है। परिशिष्ट-गत श्लोकानुक्रमणिका आदिकी पृष्ठ-संख्या पृथक् देनेके दो कारण रहे हैं—प्रथम तो यह कि श्लोकोंकी अनुक्रमणिकाका सम्बन्ध श्रावकाचार-संग्रहके प्रथम भागसे लगाकर चारों भागोंके श्लोकोंसे है। दूसरा कारण यह रहा है कि कुन्दकुन्दश्रावकाचारके मुद्रणके समय यह विचार हुआ कि यतः श्लोकानुक्रमणिका बहुत बड़ी है उसके मुद्रणमें अधिक विलम्ब न हो, अतः उसके साथ ही इसक भी मुद्रण प्रारम्भ करना पड़ा, जिससे उसकी पृष्ठ-संख्याको पृथक् रखना पड़ा। फिर भी आशातीत विलम्ब हो ही गया।

श्रावकाचार-संग्रहका पंचम भाग—जिसमें कि हिन्दी पद्यमय श्रीपदमकविका श्रावकाचार, श्री किशनसिंहजीका क्रियाकोष और पं० दौलतरामजीका क्रियाकोष संकलित है—गत वर्ष ही प्रकाशित हो गया था। इस चतुर्थ भागके मुद्रणका कार्य भी पंचम भागके मुद्रणके साथ ही प्रारम्भ किया गया था। पर इस चतुर्थ भागमें संकलित कुन्दकुन्दश्रावकाचारके ज्योतिष, वैद्यक, सामुद्रिक एवं सर्प-विष-विषयक प्रकरण मेरे लिए सर्वथा अपरिचित थे, उसके लिए लगातार छह मास तक बनारसके तत्तद्विषयके विशेषज्ञोंसे सम्बन्ध स्थापित कर उनके अनुवाद करनेमें आशातीत समय लगा। फिर भी कुछ स्थल संदिग्ध रह गये हैं, जिनका शब्दार्थ-मात्र करके रह जाना पड़ा है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि कुन्दकुन्दश्रावकाचारकी जो प्रति मिली, वह बहुत ही अशुद्ध थी और प्रयत्न करनेपर भी अन्य शास्त्र-भण्डारोंसे दूसरी प्रति प्राप्त नहीं हो सकी।

शास्त्र-भण्डारोंके सम्बन्धमें नहीं चाहते हुए भी दुःख-पूर्वक यह लिखनेको बाध्य होना पड़ रहा है कि इन भण्डारोंके स्वामी पत्रोंके उत्तरका भी कष्ट नहीं उठाते हैं। राजस्थानके शास्त्र-भण्डारोंकी बड़ी-बड़ी ग्रन्थ-सूचियाँ अनेक भागोमें प्रकाशित हो गयी है, परन्तु जब किसी शास्त्रको उन भण्डारोंसे मंगाया जाता है, तो भेजना तो दूर रहा, पत्रका उत्तर तक भी नहीं देते हैं। अतः ग्रन्थ-सम्पादकको विवश होकर एक ही प्रतिके आधार पर ग्रन्थका सम्पादन और अनुवाद करना पड़ता है और इस कारण अशुद्धियाँ रहनेकी संभावना बनी रहती है। मेरा राजस्थानकें शास्त्र-भण्डारोंके स्वामियोंसे नम्र-निवेदन है कि वे अपने मोहको छोड़कर जेयपुरके महावीर-भवनमें सबको एकत्र कर रख देवें और महावीर-भवनके अधिकारी एक विद्वान्की नियुक्ति कर देवें—जो कि उनकी संभाल करते हुए समागत-पत्रोंका उत्तर एवं ग्रन्थ-प्रति भेजनेका कार्य करता रहे।

विनम्र निवेदक

दि० २५।१२।१९७९
वाराणसी

हीरालाल शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रधान सम्पादकीय

जैनधर्म मूलमें निवृत्तिप्रधान है; क्योंकि मोक्षका प्रधानकारण निवृत्ति है। किन्तु गृहस्थाश्रम प्रवृत्तिप्रधान होता है, प्रवृत्तिके बिना गृहस्थाश्रमका निर्वाह असंभव है। प्रवृत्ति अच्छी भी होती है और बुरी भी होती है। अच्छी प्रवृत्तिको शुभ और बुरी प्रवृत्तिको अशुभ कहते हैं। प्रवृत्तिके आधार तीन हैं—मन वचन और काय। इन तीनोंके द्वारा प्रवृत्ति किये जाने पर जो आत्माके प्रदेशोंमें हलन-चलन होता है उसे योग कहते हैं। यह योग ही आत्मामें कर्मपुद्गलोंको लानेमें निमित्त बनता है। जबतक इसका विरोध न किया जाये तबतक जीव नवीन कर्मबन्धनसे मुक्त नहीं होता। अतः मुमुक्षु श्रावक सबसे प्रथम अशुभ प्रवृत्तिसे विरत होकर शुभप्रवृत्तिका अभ्यासी बनता है। उसका यह अभ्यास ही श्रावकाचार कहलाता है। उसे ही आगममें व्रत कहा है। तत्त्वार्थसूत्रके सातवें अध्यायके प्रारम्भमें कहा है—

'हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।'

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहसे विरतिका नाम व्रत है। वह व्रत दो प्रकारका है—अणुव्रत, महाव्रत। पाँचों पापोंका एक देश त्याग अणुव्रत है उसे जो पालता है वह श्रावक होता है। अतः श्रावकधर्मका मूल पाँच अणुव्रत हैं। इसीके साथ मद्य, मांस और मधुके त्यागको मिलाकर श्रावकके आठ मूलगुण प्रसिद्ध हुए। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें प्रथम पाँच अणुव्रतोंका ही वर्णन है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत ये श्रावकके बारहव्रत हैं। इनमेंसे प्रथम श्रावकके लिये पाँच अणुव्रतोंका पालन आवश्यक है। यही प्राचीन परिपाटी रही है। इनके प्रारम्भमें सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चे देव शास्त्र गुरुकी श्रद्धा—सप्ततत्त्वकी श्रद्धा होना आवश्यक है। जब वही श्रावक प्रतिमारूप व्रत ग्रहण करता है तो दर्शन प्रतिमा और व्रतप्रतिमा धारण करता है दर्शन प्रतिमामें आठ अंगसहित सम्यग्दर्शन और व्रत प्रतिमामें निरतिचार बारह व्रत पालता है। किन्तु प्रतिमा रूप व्रत धारण करनेसे पूर्व साधारण श्रावक बननेकी स्थितिमें पाँच अणुव्रतोंका पालन करता है। यही प्राचीन पद्धति आचार्य कुन्दकुन्दके चारित्र पाहुड तथा आचार्य समन्तभद्रके रत्नकरण्डश्रावकाचारसे ज्ञात होती है। अतिचारोंका वर्णन साधारण श्रावकके लिये नहीं है व्रत-प्रतिमाधारीके लिये है। आचार्य कुन्दकुन्दके चारित्रपाहुडमें तो अतीचारोंका वर्णन नहीं है। तत्त्वार्थसूत्रमें प्रतिमाओंका उल्लेख नहीं है किन्तु रत्नकरण्डश्रावकाचारमें दोनोंका कथन है। १५० (डेढ़ सौ) श्लोकोंमें निबद्ध रत्नकरण्ड यथार्थमें रत्नोंका करण्ड है। दिगम्बर परम्पराके श्रावकाचार-का वही मूल है। उसे आधार बनाकर उत्तरकालीन श्रावकाचारोंका तुलनात्मक अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें किस प्रकार वृद्धि होती गई और श्रावकाचारोंका कलेवर बढ़ता गया। पाँच अणुव्रतोंका स्थान पाँच उदुम्बर फलोंको दे देनेसे तो श्रावकाचारका एक तरहसे प्राणान्त जैसा हो गया। पाँच अणुव्रतोंमें धार्मिकताके साथ नैतिकता समाविष्ट है। उनका पालक सच्चा श्रावक होता है। वह धार्मिक होनेके साथ अनैतिक नहीं हो सकता उसके व्यवहारमें सचाई, ईमानदारी होती है। किन्तु आज तो धार्मिकताका नैतिकताके साथ विछोह जैसा हो गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धार्मिक कहा जाने वाला आजका धर्मात्मा केवल मन्दिरमें धर्मात्मा रहता है। उससे बाहर निकलकर उसमें और अधर्मात्मा कहे जानेवालेमें कोई अन्तर नहीं है। आज कोरी भगवद्भक्ति ही धर्मके रूपमें शेष है, अन्याय अभक्ष्य और मिथ्यात्वका त्याग अब आवश्यक नहीं है।

रत्नकरण्डश्रावकाचारके पश्चात् नम्बर आता है पुरुषार्थसिद्धयुपाय का। वह अध्यात्मी अमृतचन्द्राचार्यकी कृति है और उसपर उनके अध्यात्मकी छाप सुस्पष्ट है। वह प्रारम्भमें जो चर्चा करते हैं वह श्रावकाचारके लिये उनकी अपूर्व देन है। प्रारम्भके १५ पद्य बहुमूल्य हैं, प्रत्येक श्रावकधर्मके पालकको उन सूत्रोंमें ग्रथित सत्यको सदा हृदयमें रखना चाहिये।

उन्होंने श्रावकाचारको 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' नाम देकर उसके महत्त्वको सुस्पष्ट कर दिया है।

१. निश्चय और व्यवहारको जानकर जो तात्त्विक रूपसे मध्यस्थ रहता है वही श्रावक देशनाके पूर्णफलको प्राप्त करता है।

२. पुरुष चैतन्यस्वरूप है वह अपने परिणामोंका कर्ता भोक्ता है। उसके परिणामोंको निमित्तमात्र करके पुद्गल स्वयं ही कर्मरूपसे परिणमित होते हैं। जीव भी अपने चैतन्यात्मक भावरूप स्वयं ही परिणमन करता है किन्तु पौद्गलिक कर्म उसमें भी निमित्तमात्र होते हैं। इस प्रकार यह जीव कर्मकृत भावोंसे असमाहित होते हुए भी मूर्खजनोंको संयुक्तकी तरह प्रतीत होता है। यह प्रतीति ही संसारका बीज है।

३. अतः विपरीत अभिनिवेशको त्यागकर और निजआत्मतत्त्वका निश्चय करके उससे विचलित न होना ही पुरुषार्थ सिद्धिका उपाय है।

उक्त शब्दोंमें समयसारका सार भरा है जो प्रत्येक मुमुक्षुके लिये उपादेय है। श्रावकधर्मके पालनसे पूर्व उसका ज्ञान होना आवश्यक है। किन्तु उत्तरकालीन किसी भी श्रावकाचारमें यह दृष्टि दृष्टिगोचर नहीं होती। धर्मका लक्ष्य जीवको कर्मबन्धनसे मुक्त करना है। किन्तु जो न आत्माको जानते हैं और न कर्मबन्धनको, वे धर्म धारण करके धर्मका परिहास कराते हैं। आदिकी तरह इस ग्रन्थका अन्त भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस तरहका श्रावकाचार यही एक मात्र है। आगेके श्रावकाचार तो लौकिक प्रभावोंसे प्रभावित हैं। उनमें लोकाचारकी बहुलता परिलक्षित होती है अन्तर्दृष्टिका स्थान बहिर्दृष्टिने ले लिया है। इसके लिये उत्तर कालमें आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वामी और पूज्यपादके नामपर रचे गये श्रावकाचारोंको देखना चाहिये। ये श्रावकाचार लोकाचारसे परिपूर्ण हैं और पाठकोंको प्रभावित करनेके लिये बड़े आचार्योंके नामसे उन्हें रचा गया है। अविवेकीजन उन्हें बड़े आचार्योंकी कृति मानकर उनपर विश्वास कर बैठते हैं और ठगाये जाते हैं।

श्रावकाचारोंका यह संग्रह, जो पाँच भागोंमें प्रकाशित किया गया है, इस दृष्टिसे बहुत उपयोगी है। एकत्र सब श्रावकाचारोंको पाकर उनका स्वाध्याय करनेसे साधारण स्वाध्यायप्रेमीको भी यह ज्ञात हो सकेगा कि उत्तरोत्तर श्रावकाचारोंमें किस प्रकारका परिवर्तन होता गया है। और निवृत्तिको प्रधान माननेवाला जैनधर्म हिन्दूधर्मकी तरह एकदम प्रवृत्ति प्रधान बनता गया है। उसीका यह फल है कि आजके आचार्य, मुनि और आर्यिकाजन भी प्रवृत्तिप्रधान ही देखे जाते हैं। वे स्वयं पूजापाठोंमें उलझे रहते हैं और श्रावकोंको भी उन्हींमें उलझाये रखते हैं। यहाँतक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखा जाता है कि वीतराग जिनेन्द्रदेवके उपासक सरागी देवोंके उपासक बन जाते हैं।

श्रावकाचारोंके सम्पादक पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्रीने श्रावकाचारोंके संकलन और सम्पादनमें जो श्रम किया है उसका मूल्यांकन विज्ञ ही कर सकते हैं। उसकी प्रस्तावना तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है उसमें उन्होंने ग्रन्थ और ग्रन्थकारोंके साथ श्रावकाचारकी प्रक्रिया पर भी विस्तारसे विचार किया है।

यह केवल श्रावकाचार नामके ग्रन्थोंका ही संकलन नहीं है किन्तु इसमें अन्य ग्रन्थोंमें चर्चित श्रावकाचार भी संकलित हैं पं० हीरालालजीने रत्नमालाको समन्तभद्राचार्यके शिष्य शिवकोटीकी मानकर प्राचीन बतलाया है किन्तु यह प्राचीन नहीं है यह उसके आन्तरिक अवलोकनसे स्पष्ट हो जाता है। इन श्रावकाचारोंके तुलनात्मक अध्ययनसे आचार सम्बन्धी अनेक बातें प्रकाशमें आती हैं। आचार्य सोमदेवके उपासकाध्ययनमें लोकाचारका प्रभाव परिलक्षित होता है उसीमें सर्वप्रथम पूजाकी विधि और फलोंके रससे भगवान्का अभिषेक देखनेमें आता है। उन्होंने स्वयं कहा भी है कि गृहस्थोंके दो धर्म होते हैं लौकिक और पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकाश्रित होता है। और पारलौकिक धर्म आगमाश्रित होता है आदि। पं० हीरालालजीने अपनी प्रस्तावनामें इन सबपर अच्छा प्रकाश डाला है।

श्रीमान् स्व० ब्र० जीवराज गौतमचन्दजी दोशी अपनी सब सम्पत्ति धर्मार्थ दे गये थे। उसीसे ग्रन्थमाला स्थापित की गई जिससे बराबर जैन ग्रन्थोंका प्रकाशन होता रहता है इस ग्रन्थमालाके अध्यक्ष सेठ लालचन्दजी तथा मंत्री सेठ बालचन्द देवचन्द शाह हैं, जो अतिवृद्ध होनेपर भी उत्साहपूर्वक ग्रन्थमालाका संचालन करते हैं। मैं उक्त महानुभावोंको धन्यवाद देते हुए सम्पादक पं० हीरालालजीका आभार मानता हूँ जिन्होंने रोगपीड़ित होते हुए भी इस वृद्धावस्था में इस महत् कार्यको पूर्ण किया। उनको साहित्यसेवा आजके विद्वानोंके लिये अनुकरणीय है।

कैलाशचन्द्र शास्त्री
ग्रन्थमाला सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रमणिका

		ठ
१.	सम्पादकीय वक्तव्य	१–४
२.	श्रावकाचार-संग्रहके सम्पादनमें प्रयुक्त लिखित एवं मुद्रित प्रतियोंका परिचय	५–११
३.	ग्रन्थ और ग्रन्थकार-परिचय	१२–५३
४.	चारित्रपाहुड श्रीकुन्दकुन्दाचार्य	१२
१.	तत्त्वार्थ सूत्र—आचार्य उमास्वाति गृद्धपिच्छाचार्य	१४
२.	रत्न करण्डक—स्वामी समन्तभद्र	१५
३.	कार्तिकेयानुप्रेक्षा—स्वामी कार्त्तिकेय	१७
४.	रत्नमाला—आचार्य शिवकोटि	१८
५	पद्मचरित—आचार्य रविषेण	१९
६.	वराङ्गचरित—आचार्य जटासिंहनन्दि	२०
७.	हरिवंश पुराण—आचार्य जिनसेन प्रथम	२१
८	महापुराण—आचार्य जिनसेन द्वितीय	२१
९.	पुरुषार्थ सिद्धयुपाय—आचार्य अमृतचन्द्र	२३
१०.	उपासकाध्ययन—आचार्य सोमदेव	२४
११.	अमितगति श्रावकाचार—आचार अमितगति	२७
१२.	चारित्रसार—श्री चामुण्डराय	२८
१३.	बसुनन्दि श्रावकाचार—आचार्य वसुनन्दि	२९
१४.	सावयधम्म दोहा—आचार्य देवसेन या लक्ष्मीचन्द्र (?)	३१
१५.	सागारधर्मामृत—पं० आशाधर	३२
१६.	धर्मसंग्रह श्रावकाचार—पं० मेधावी	३३
१७.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार—आचार्य सकलकीर्त्ति	३४
१८.	गुणभूषण श्रावकाचार—आचार्य गुणभूषण	३५
१९.	धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचार—श्री ब्रह्मनेमिदत्त	३६
२०.	लाटी संहिता—श्री राजमल्ल	३७
२१.	उमास्वामी श्रावकाचार—श्री उमास्वामी (?)	३८
२२.	पूज्यपाद श्रावकाचार—श्री पूज्यपाद (?)	४१
२३.	व्रतसार श्रावकाचार	४१
२४.	व्रतोद्योतन श्रावकाचार—श्री अभ्रदेव	४२
२५.	श्रावकाचार सारोद्धार—श्री पद्मनन्दी	४३
२६.	भव्यधर्मोपदेश उपासकाध्ययन—श्री जिनदेव	४४
२७.	पंचविंशतिकागत—श्रावकाचार—श्री पद्मनन्दि	४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८. प्राकृत भावसंग्रह-गत श्रावकाचार—श्री देवसेन ४५
२९. संस्कृत भावसंग्रह-गत श्रावकाचार—पं० वामदेव ४७
३०. रयणसार भावसंग्रह-गत श्रावकाचार—श्री कुन्दकुन्दाचार्य ४८
३१. पुरुषार्थानुशासन भावसंग्रह-गत श्रावकाचार—पं० गोविन्द ४९
३२. कुन्दकुन्द श्रावकाचार—स्वामी कुन्दकुन्द ५०

५. प्रस्तावना ५४–१७१

१. सम्यग्दर्शन ५४
२. उपासक या श्रावक ५८
३. उपासकाध्ययन या श्रावकाचार ५९
४. श्रावक-धर्म-प्रतिपादनके प्रकार ६०
५. अष्ट मूलगुणोंके विविध प्रकार ६६
६. शीलका स्वरूप एवं उत्तर व्रत-संख्या पर विचार ६८
७. वर्तमान समयके अनुकूल आठ मूलगुण ६९
७क. रात्रिभोजन ७०
७ख. वस्त्रगालित जल ७१
८. श्रावकाचारोंके वर्णन पर एक विहंगम दृष्टि ७२
९. श्रावक-प्रतिमाओंका आधार ८१–८७
१०. प्रतिमाओंका वर्गीकरण ८७
११. क्षुल्लक और ऐलक, क्षुल्लक शब्दका अर्थ, निष्कर्ष ८८–.३
१२. श्रावक-प्रतिमाओंके विषयमें कुछ विशेष ज्ञातव्य ९४
१३. श्वे० शास्त्रोंके अनुसार प्रतिमाओंका वर्णन और समीक्षा ९६–१००
१४. सामायिक शिक्षाव्रत और सामायिक प्रतिमामें अन्तर १०१
१५. प्रोषधोपवास शिक्षा व्रत और प्रोषध प्रतिमामें अन्तर १०२
१६. प्रतिमाओंके वर्णनमें एक और विशेषता १०४
१७. संन्यास. समाधिमरण या सल्लेखना १०६
१८. अतीचारोंकी पंचरूपताका रहस्य १०७–११३
१९. निदान एवं उसका फल ११४
२०अ. स्नपन, पञ्चामृताभिषेक या जलाभिषेक ११६–१२४
२०ब. आचमन, सकलीकरण और हवन १२५
२१. पूजन पद्धतिका क्रमिक विकास १२७
२२. पूजनकी विधि १३०
२३. आवाहन और विसर्जन १३५
२४. वैदिक पूजा पद्धति १३६
२५. शान्तिमंत्र, शान्तिधारा, पुण्याहवाचन और हवन १३७
२६. स्नपन, पूजन, स्तोत्र, जप, ध्यान और लय १३८–१४६
२७. श्रावकोंके कुछ अन्य कर्त्तव्य १४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८.	जिनेन्द्र-दर्शनका महत्त्व	१४८
२९.	निःसहीका रहस्य	१४९–१५५
३०.	जिनेन्द्र-पूजन कब सुफल देता है	१५६
३१.	गुरूपास्ति आदि शेष कर्त्तव्य	१५७
३२.	पर्व-माहात्म्य	१५९
३३.	चार प्रकारके श्रावक	१६०
३४.	यज्ञोपवीत	१६१
३५.	अचित्त या प्रासुक भक्ष्य वस्तु-विचार	१६२
३६.	जल-गालन एवं प्रासुक जल-विचार	१६२
३७.	अभक्ष्य विचार	१६३
३८.	भक्ष्य पदार्थोंकी काल-मर्यादा	१६५
३९.	द्विदलान्नको अभक्ष्यताका स्पष्टीकरण	१६६
४०.	सूतक-पातक-विचार	१६७
४१.	स्त्रीके मासिक धर्मका विचार	१६८
४२.	उपसंहार	१६९
४३.	कुन्दकुन्द श्रावकाचारकी विषय-सूची	१७३–१८४
६.	**कुन्दकुन्द श्रावकाचार**	१–१३४
	ग्रन्थ-संकेत-सूची	१३५
	टिप्पणीमें उपयुक्त ग्रन्थ-नाम-संकेत सूचो	१३६

परिशिष्ट-सूची

१.	तत्त्वार्थसूत्राणामनुक्रमणिका	१
२.	गाथानुक्रमणिका	२–२०
३.	संस्कृतश्लोकानुक्रमणिका	२१–२२१
४.	निषीधिका-दंडक	२२२
५.	धर्मसंग्रह श्रावकाचार-प्रशस्ति	२२४
६.	लाटी संहिता-प्रशस्ति	२३२
७.	पुरुषार्थानुशासन-प्रशस्ति	२३६
८.	श्रावकाचार सारोद्धार-प्रशस्ति	२४१
९.	रत्नकरण्डकमें उल्लिखित प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम	२४५
१०.	सप्त व्यसनोंमें प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम	२४५
११.	उग्र परीषह सह कर समाधिमरण करनेवालोंके नाम	२४५
१२.	रोहिणी आदि व्रतोंका उल्लेख	२४६
१३.	हिन्दी क्रियाकोषादि गत व्रत-विधान-सूची	२४६
१४.	कुन्दकुन्द श्रावकाचारके संशोधित पाठ	२४७
१५.	कुन्दकुन्द श्रावकाचारका शुद्धि-पत्रक	२५३
१६.	अन्तिम मंगल-कामना और क्षमा-याचना	२५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय-वक्तव्य

भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे सन् १९५२ में प्रकाशित वसुनन्दि श्रावकाचारकी प्रस्तावनामें मैंने श्रावकधर्मके प्रतिपादन-प्रकार, क्रमिक विकास और प्रतिमाओंका आधार आदि विषयोंपर पर्याप्त प्रकाश डाला था। उसके पश्चात् सन् १९६४ में भारतीय ज्ञानपीठसे ही प्रकाशित उपासकाध्ययनकी प्रस्तावनामें उसके सम्पादक श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने श्रावकधर्मपर और भी अधिक विशद प्रकाश डाला है। अब इस प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहके चार भागोंमें संस्कृत-प्राकृतके ३३ श्रावकाचार और पाँचवें भागमें हिन्दी-छन्दोबद्ध तीन श्रावकाचार एवं क्रियाकोष संकलित किये गये हैं। उन सबके आधारपर प्रस्तावनामें किन-किन विषयोंको रखा जायगा, इसकी एक रूप-रेखा इस संग्रहके तीसरे भागके सम्पादकीय वक्तव्यमें दी गई थी। उसके साथ श्रावक-आचार एवं उसके अन्य कर्तव्योंपर भी प्रकाश डालनेकी आवश्यकता अनुभव की गई। अतः इस भागके साथ दी गई प्रस्तावनामें मूलगुणोंकी विविधता, 'अतीचार-रहस्य, पञ्चामृताभिषेक, यज्ञोपवीत, आचमन, सकलीकरण, हवन, आह्वानन, स्थापन, विसर्जन आदि अन्य अनेक विषयोंकी चर्चा की गई है, जिसके स्वाध्यायशील पाठक जान सकेंगे कि इन सब विधि-विधानोंका समावेश श्रावकाचारोंमें कबसे हुआ है।

देव-दर्शनार्थ जिन-मन्दिर किस प्रकार जाना चाहिए, उसका क्या फल है? मन्दिरमें प्रवेश करते समय 'निःसही' बोलनेका क्या रहस्य है, इसपर भी विशद प्रकाश प्रस्तावनामें डाला गया है, क्योंकि 'निःसही' बोलनेकी परिपाटी प्राचीन है, हालाँकि श्रावकाचारोंमें सर्वप्रथम पं० आशाधरने ही इसका उल्लेख किया है। पर इस 'निःसही'का क्या अर्थ या प्रयोजन है, यह बात बोलने वालोंके लिए आज तक अज्ञात ही रही है। आशा है कि इसके रहस्योद्घाटनार्थ लिखे गये विस्तृत विवेचनको भी प्रबुद्ध पाठक एवं स्वाध्याय करनेवाले उसे पढ़कर वास्तविक अर्थको हृदयङ्गम करेंगे।

श्रावकके आचारमें उत्तरोत्तर नवीन कर्त्तव्योंको समावेश करके श्रावकाचार-निर्माताओंने यह ध्यान ही नहीं रखा कि दिन-प्रतिदिन हीनताको प्राप्त हो रहे इस युगमें मन्द बुद्धि और हीन शक्तिके धारक गृहस्थ इस दुर्वह श्रावकाचारके भारको वहन भी कर सकेंगे, या नहीं?

परवर्ती अनेक श्रावकाचार-रचयिताओंने मुनियोंके लिए आवश्यक माने जानेवाले कर्तव्योंका भी श्रावकोंके लिए विधान किया। इसी प्रकार मुनियोंके लिए मूलाचारमें प्रतिपादित सामायिक-वन्दनादिके ३२-३२ दोषोंके निवारणका भी श्रावकों के लिए विधान कर दिया। कुछने तो प्राथमिक श्रावकके लिए इतनी पाबन्दियाँ लगा दी हैं कि साधारण गृहस्थको उनका पालन करना ही असंभव-सा हो गया है। इन सब बातोंपर विचार करनेके बाद प्रस्तावनाके अन्तमें आजके युगानुरूप एक रूप-रेखा प्रस्तुत की गई है, जिसे पालन करते हुए कोई भी व्यक्ति अपनेको जैन या श्रावक मानकर उसका भलीभाँतिसे निर्वाह कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो महानुभाव श्रावकके सर्वव्रतों एवं कर्तव्योंका भले प्रकारसे निर्वाह कर सकते हैं उनको पालन करनेके लिए हमारा निषेध नहीं है, प्रत्युत हम उनका अभिनन्दन करते हैं। तथा जो व्यक्ति जितना भी श्रावक-धर्मका पालन करें, हम उसका भी स्वागत करते हैं। आज नयी पीढ़ीमें आचार-विचारका उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है, उसकी रोक-थामके लिए यह आवश्यक है कि हम प्रौढ़ जन स्वयं आवश्यक जैनत्वका पालन करते हुए भावी पीढ़ीके लिए आदर्श उपस्थित करके उन्हें सन्मार्गपर चलानेका सत्-प्रयास करें। यह हमारा नम्र निवेदन है।

प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहमें पूर्व-प्रकाशित जिन-जिन श्रावकाचारोंका संकलन किया गया है, उनके सम्पादकों एवं अनुवादकोंका मैं बहुत आभारी हूँ, उन सबका उल्लेख 'प्रति-परिचय'में किया गया है।

आजसे पूरे १३ वर्ष पूर्व जीवराज ग्रन्थमालाके मानद मंत्री श्रीमान् सेठ बालचन्द देवचन्द शहा और स्व० डॉ० ए० एन्० उपाध्येने सभी श्रावकाचारोंके एकत्र संग्रहकी जो भावना व्यक्त की थी और जिसे मैंने यह विचार करके स्वीकार किया था कि 'ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन'का विशाल ग्रंथ-संग्रह इसके सम्पादनमें मेरा सहायक होगा। आज उसे कार्यरूपमें परिणत देखकर मुझे अपार हर्षका अनुभव हो रहा है और साथ ही महान् दुःखका भी संवेदन हो रहा है कि इस संग्रहका सुझाव देनेवाले और जीवराज ग्रंथमालाके प्रधान सम्पादक डॉ० उपाध्ये साहब आज हमारे बीच नहीं हैं। यदि वे आज होते तो अवश्य ही परम सन्तोष व्यक्त करते।

इस संग्रहके सम्पादनमें उक्त सरस्वती भवनका मैंने भरपूर उपयोग किया है, इसके लिए मैं उसके संस्थापक ऐलक पन्नालालजी महाराजका जन्म-जन्मान्तरों तक ऋणी रहूँगा। मुझे सन् १९३१ में उनके चरण-सान्निध्यमें पूरे एक चतुर्मास तक रहनेका सौभाग्य तब प्राप्त हुआ था, जब कि मैं भा० व० दि० जैन महाविद्यालय ब्यावरमें धर्माध्यापक था और उनके लिए २-३ संस्कृत ग्रंथोंके अनुवाद करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था। यद्यपि उस समय तक ब्यावरमें उनके सरस्वती भवनकी शाखा स्थापित नहीं हुई थी, पर उन्होंने अपना भाव प्रकट करते हुए यह अवश्य कहा था कि जब भी यहाँ सरस्वती भवनकी शाखा स्थापित करूँगा, तब तुम्हें यहाँ नियुक्त करूँगा। दुःख है कि मैं उनके जीवन-कालमें ब्यावर नहीं पहुँच सका। फिर भी लगभग १४ बर्ष तक उक्त सरस्वती भवनके कार्य-भारको सँभालते हुए उनका सदा स्मरण बना रहा और इस संग्रहके सम्पन्न होनेके सुअवसरपर उनके चरणोंमें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। जैन समाजके धार्मिक धनिक वर्गमें सेठ चम्पालालजी रामस्वरूपजी रानी वालोंका घराना अग्रणी रहा है। मेरे ब्यावर रहनेके समय उनके परिवारवालों द्वारा उनकी नशियाँमें रहनेकी भरपूर सुविधा प्राप्त-कर मैं इस श्रावकाचारका सम्पादन सम्पन्न कर सका, उसके लिए मैं उनका और सरस्वती भवनके संचालकोंका कृतज्ञ हूँ।

ब्यावर सरस्वती भवनमें ताड़पत्रपर लिखित माघनन्दि श्रावकाचारकी एक प्राचीन प्रति है। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि यदि किसी प्रकार उसकी कनड़ी लिपिसे हिन्दी लिपि हो जाय तो उसे भी प्रस्तुत संग्रहमें संकलित कर लिया जाये। इसके लिए मूडबिद्रीके भट्टारकजीके साथ संस्थाके मंत्रीजीने लिखा-पढ़ी भी की और उनकी ओरसे आश्वासन भी मिला। परंतु नागरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिपि नहीं हो सकी। उक्त प्रतिको गत वर्षमें बनारस भी ले गया और वहाँ रहनेवाले कनड़ीके जानकार विद्वानोंके साथ संपर्क स्थापित कर उनसे बचानेका प्रयत्न भी किया। किन्तु प्राचीन कनड़ी लिपि होनेसे उन्हें भी बाँचनेमें सफलता मिली। वे केवल प्रारम्भका कुछ अंश बाँच सके, जो इस प्रकार है—

श्री शान्तिनाथाय नमः।

श्रीवीरं जिनमानम्य वस्तुतत्त्वोपदेशकम्।
श्रावकाचारसाराख्यं वक्ष्ये कर्णाटभाषया ॥ १ ॥

इन्तु मंगलाद्यर्थं विशिष्टदेवतानमस्कारमं माडि श्रावकाचारसारमन्दसाद्य यदि बिन्नेन······· ····।

इस उद्धरणसे यह तो ज्ञात हो सका है कि यह माघनन्दि-श्रावकाचारसार कनड़ी भाषामें ही रचा और कनड़ी लिपिमें ही लिखा गया है। यदि इसके सुननेका भी अवसर मिल जाता, तो उसकी विशेषताओंका भी उल्लेख प्रस्तावनामें कर दिया जाता। अन्तमें प्रस्तुत ग्रंथमालाके प्रधान सम्पादकजीके परामर्शसे यही निर्णय किया गया कि जब कभी उसकी नागरी लिपि हो सकेगी, तब उसे ग्रंथमालासे प्रकाशित कर दिया जायेगा।

प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहके पाँचों भागोंमेंसे सबसे अधिक कठिनाई मुझे इस भागमें संकलित कुन्दकुन्द श्रावकाचारके सम्पादनमें उसकी दूसरी प्रति अन्य किसी शास्त्र-भण्डारसे नहीं प्राप्त होनेके कारण हुई। ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन ब्यावरकी एकमात्र प्रतिके आधारपर ही इसका सम्पादन करना पड़ा है। परन्तु यह प्रति बहुत ही अशुद्ध थी अतः ज्योतिष शास्त्रसे सम्बद्ध मूल-पाठोंके संशोधनमें हमें ज्योतिष-शास्त्रालंकार श्रीमान् पं० हरगोविन्दजी द्विवेदी, वाराणसीसे भर-पूर सहायता प्राप्त हुई है और ज्योतिष-प्रकरणवाले सभी श्लोकोंका हिन्दी अनुवाद भी उन्हींकी कृपासे संभव हो सका है। आपने लगातार चार मासतक अपना बहुमूल्य समय देकर हमें अनुगृहीत किया है। इसके लिए आपका जितना भी आभार माना जावे, वह कम ही रहेगा। वैद्यक शास्त्रसे और खासकर सर्प-विषयक प्रकरणके संशोधन और हिन्दी अनुवाद करनेमें श्रीमान् डॉ० रामावलम्ब शास्त्री, नव्यन्याय-व्याकरण-ज्योतिष-पुराणेतिहास-आयुर्वेदाचार्य प्राध्यापक एवं चिकित्सक संस्कृत आयुर्वेद कालेज, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसीका परम दुर्लभ साहाय्य प्राप्त हुआ है, उसके लिए हम उनके चिर ऋणी रहेंगे। प्रतिष्ठापाठ एवं प्रतिमा-निर्माण-प्रकरणके संशोधन एवं हिन्दी अनुवादमें हमें श्रीमान् बारेलालजी राजवैद्य एवं प्रतिष्ठाचार्य टीकमगढ़का परम सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। उक्त प्रकरणोंके सिवाय शेष समस्त ग्रन्थके मूल पाठोंके संशोधन और अर्थ-निर्णयमें हमारे परम-स्नेही श्रीमान् पं० अमृतलालजी शास्त्री साहित्य और दर्शनाचार्य, प्राध्यापक सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसीसे भर-पूर अति दुर्लभ साहाय्य प्राप्त हुआ है, जिसके लिए मैं उनका चिर आभारी रहूँगा।

उक्त विद्वानोंके अतिरिक्त हमें ज्योतिष-वैद्यकसे सम्बद्ध अनेक श्लोकोंके संशोधन और अर्थ-स्पष्टीकरणमें श्री पं० सत्यनारायणजी त्रिपाठी, प्राध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय, श्री पं० विश्वनाथजी पाण्डेय, श्री डॉ० सहजानन्दजी आयुर्वेदाचार्य, श्री पं० अवधविहारीजी शास्त्री, रिटायर्ड प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसीका तथा श्री पं० गुलझारीलालजी आयुर्वेदाचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उज्जैनका सहयोग मिला है। हस्त-रेखा-प्रकरणमें विमल जैन, दुर्गाकुण्ड, वाराणसीका सहयोग मिला है। इन सबका मैं बहुत आभारी हूँ।

परमपूज्य श्रद्धेय वयोवृद्ध श्री १०८ मुनि श्री समन्तभद्रजी महाराज द्वारा विगत दो वर्षोंमें पत्रोंके माध्यमसे एवं दो बार बाहुबलीमें प्रत्यक्ष चरण-सान्निध्यमें बैठकर प्रस्तावनाके मुख्य-मुख्य स्थलोंको सुनानेके अवसरपर सत्परामर्श और शुभाशीर्वादके साथ जो प्रेरणाएँ प्राप्त हुई हैं, उनके लिए मैं उनका जन्म-जन्मान्तरों तक ऋणी रहूँगा। उनके ही प्रोत्साहन और शुभाशीर्वादका यह सुफल है कि इस वर्ष अनेक बार मृत्युके मुखमें पहुँचनेपर भी मैं जीवित बच सका और प्रस्तुत प्रस्तावनाको लिखकर पूर्ण कर सका हूँ। उनके ही सुयोग्य शिष्य श्री० ब्र० पं० माणिकचन्द्रजी चवरे कारंजा और श्री० ब्र० पं० माणिकचन्द्रजी भिसीकर बाहुबलीका आभार किन शब्दोंमें व्यक्त करूँ, जिन्होंने प्रस्तावनाके प्राग्-रूपको आद्योपान्त सुनकर और आवश्यक संशोधन-सुझाव देकर अनुगृहीत किया है।

कुन्दकुन्द श्रावकाचारके सम्पादनमें उपयुक्त ग्रन्थ हमें भारतीय ज्ञानपीठ काशीके ग्रन्थागार से प्राप्त हुए हैं, इसलिए मैं उसका और पं० महादेवजी चतुर्वेदी, व्याकरणाचार्यका आभारी हूँ।

पाठोंके संशोधन एवं अर्थ-भावार्थके स्पष्टीकरणमें विलम्ब होनेसे अनेक बार मेकप फर्मोंको तुड़ाकर नवीन मैटर जुड़वानेके कारण प्रेस-मालिक और उनके कम्पोजीटरोंको बहुत अधिक मुसीबतोंका सामना करना पड़ा है, फिर भी उन्होंने कभी किसी प्रकारका असन्तोष व्यक्त न करके सहर्ष मुद्रण-कार्यको किया है। इसके लिए मैं उन सबका बहुत आभारी हूँ।

गत वर्ष बनारस-प्रवासमें चार मासतक श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर भेलूपुरकी धर्मशालामें ठहरनेकी सुविधा प्रदान करनेके लिए मैं उसके व्यवस्थापकोंका भी आभारी हूँ।

अन्तमें श्री जीवराज ग्रन्थमालाके मानद मंत्री वयोवृद्ध सेठ श्री बालचंद देवचंद शहा बम्बई और ग्रंथमालाके प्रधान सम्पादक श्रीमान् पं० कैलाशचंद्रजी सिद्धान्ताचार्य बनारसका बहुत आभारी हूँ जिन्होंने कि प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहके सम्पादन-प्रकाशनकी स्वीकृति और समय-समयपर सत्परामर्श देकर मुझे अनुगृहीत किया है।

प्रस्तावनाके लिखनेमें अत्यधिक विलम्ब होनेके कारण चिरकालतक प्रतीक्षा करनवाले पाठकोंके समुख मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। तथा उनसे मेरा विनम्र निवेदन है कि जहाँपर भी जिस किसी श्लोकके अर्थमें विपर्यास देखें उसको सुधारने और मुझे लिखनेकी कृपा करें। तथा प्रस्तावनामें जहाँ उन्हें असंगति प्रतीत हो उससे मुझे अवगत करावें।

रक्षावन्धन, श्रावणीपूर्णिमा
वीर नि० सं० २५०६
वि० सं० २०३६।७८।७९

जिनवाणी-चरण-सरोरुह-चञ्चरीक
हीरालाल शास्त्री
हीराश्रम साढ़ूमल
जिला—ललितपुर (उ० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावकाचार-संग्रहके सम्पादनमें प्रयुक्त हस्तलिखित एवं मुद्रित प्रतियोंका परिचय

प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहमें जिन श्रावकाचारोंका संग्रह किया गया है उनमें अधिकांश पूर्व प्रकाशित हैं, तो भी ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन ब्यावरकी हस्तलिखित प्रतियोंका मूलके संशोधनमें उपयोग किया गया है। जिस-जिस श्रावकाचारका संशोधन भवनकी प्रतियोंसे किया गया है उनका परिचय इस प्रकार है—

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार—यद्यपि यह अनेकों बार विभिन्न स्थानोंसे मुद्रित हो चुका है। फिर भी इसका मिलान भवन की सं० १८९५ की हस्तलिखित प्रतिसे किया गया है। इसका क्रमांक ७४७ है। यह सटीक प्रति है। इसके ६१ पत्र हैं। आकार १२×६ इंच है और प्रतिपृष्ठ पंक्ति संख्या ११ और अक्षर संख्या ३६-३७ है।

इसका अनुवाद स्वतंत्र रूपसे किया गया है, फिर भी स्व० जुगलकिशोरजी मुख्तार लिखित अनुवादसे सहायता ली गई है।

२. स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा—श्रीमद् राजचन्द्र ग्रन्थमालासे प्रकाशित डा० ए० एन० उपाध्येसे सम्पादित और पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीसे अनूदित मुद्रित प्रतिपरसे धर्मभावनाके अन्तर्गत श्रावकधर्मका वर्णन प्रस्तुत संग्रहमें संकलित किया गया है। फिर भी भवनकी सं० १८२२ की लिखित प्रतिसे उक्त गाथाओंका मिलान किया गया। इसका क्रमांक ४२८ है। पत्र सं० ५६ और आकार ११×६ इञ्च है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० ६ और प्रति पंक्ति अक्षर सं० ३५-३६ है।

३. महापुराण-गत श्रावकाचार—भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित एवं पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यसे सम्पादित-अनुवादित संस्करणपरसे उक्त श्रावकाचारका संकलन किया गया है। फिर भी अनेक संदिग्ध स्थलोंका निर्णय पं० लालारामजी शास्त्री द्वारा सम्पादित प्रति परसे, तथा भवनकी हस्तलिखित प्रतिपरसे किया गया है। इसका क्रमांक २०३ है। पत्र सं० ३२५ है। आकार १२×६॥ इंच है। प्रतिपृष्ठ पंक्ति सं० १५ और प्रति पंक्ति अक्षर सं० ३९-४० है। यह प्रति सं० १६६६ की लिखी और बहुत शुद्ध है।

४. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय—यद्यपि यह अनेक स्थानोंसे प्रकाशित है तथापि राजचन्द्र ग्रंथ-मालासे प्रकाशित संस्करणके आधारपर मूलका संकलन किया गया है और अनुवाद उसीके आधार-पर स्वतंत्र रूपसे किया है। ब्यावर भवनकी प्रायः सभी प्रतियाँ सौ वर्षके भीतरकी लिखी हुई हैं, अतः उनसे कोई नवीन पाठ नहीं मिला है।

५. यशस्तिलक-गत उपासकाध्ययन—भारतीय ज्ञानपीठ दिल्लीसे प्रकाशित, एवं पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री से अनुवादित संस्करण परसे ही गद्यभागको छोड़कर श्लोकोंका प्रस्तुत संग्रहमें संकलन किया गया है। फिर भी अनेक संदिग्ध स्थलोंका निर्णय ब्यावर भवनकी हस्तलिखित प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परसे किया गया है जो कि सं० १७१७ की लिखी और बहुत शुद्ध है। इसका क्रमांक २८६ है। पत्र सं० ३६४ है। आकार १०×४ इंच है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० ९ है और प्रति पंक्ति अक्षर सं० ४२-४३ है।

६. चारित्रसारगत श्रावकाचार—माणिकचन्द्र ग्रन्थमालासे प्रकाशित मूल चारित्र-सारसे इसका संकलन किया गया है और संदिग्धपाठों का संशोधन ब्यावर भवन की हस्त लिखित प्रतिसे किया गया है जो कि सं० १५९८ की लिखी है। इसका क्रमांक ४३१ है। पत्र सं० ७५ है। आकार ११॥×४॥ इंच है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० ९ और अक्षर सं० ४०-४१ है। इसका अनुवाद स्वतंत्र रूपसे किया गया है।

७. अमितगति श्रावकाचार—अनन्तकीर्ति ग्रन्थमालासे प्रकाशित संस्करणपरसे मूल-भाग लिखा गया और उसका संशोधन ब्यावर भवनकी प्रतिसे किया गया जो सं० १९४९ की लिखी है। इसके अनुवादमें पं० भागचन्द्रजी रचित ढुंढारी भाषा वचनिकासे सहायता ली गई है।

८. वसुनन्दि श्रावकाचार—भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशित मेरे द्वारा सम्पादित और अनुवादित संस्करणको ही प्रस्तुत संग्रहमें ज्यों-का-त्यों दे दिया गया है। इसका सम्पादन अनेक स्थानोंकी प्रतियोंसे किया गया था जिसका उल्लेख उक्त संस्करणमें किया है। फिर भी यह ज्ञातव्य है कि उस समय भी भवन की सं० १६५४ की लिखी हुई प्रतिपरसे इसकी प्रेस कापी की गयी थी। उसका क्रमांक ३६७ है। आकार ११×५ इंच है। पत्र सं० ४१ है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० ९ और अक्षर सं० २८-२९ है।

९. सावयधम्मदोहा—स्व० डॉ० हीरालाल जैन सम्पादित एवं कारंजासे प्रकाशित मुद्रित प्रति प्रस्तुत संकलनमें आधार रही है, मूल दोहोंका संशोधन ब्यावर-भवनकी हस्तलिखित प्रतिसे किया गया है। जो कि सं० १६०९ की लिखी हुई है। इसका क्रमांक १०५४ है। पत्र सं० ९ है। आकार १२×६ इंच है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० १४ है और प्रति पंक्ति अक्षर संख्या ३९-४० हैं। इस प्रतिसे अनेक संदिग्ध एवं अशुद्ध पाठोंके शुद्ध करनेमें सहायता प्राप्त हुई है।

१०. सागारधर्मामृत—माणिकचन्द्र ग्रन्थमालासे प्रकाशित संस्कृत टीका युक्त मूल ग्रंथ एवं पं० लालारामजी, पं० देवकीनन्दनजी और पं० मोहनलालजी काव्यतीर्थ के अनुवादोंके आधारसे इसका स्वतंत्र अनुवाद किया गया है। विशेषार्थके रूपमें जो विवेचन है उसमें संस्कृत टीका आधार रही है।

२१. धर्मसंग्रह श्रावकाचार—इसके सम्पादनमें पं० उदयलालजी काशलीवाल द्वारा सम्पादित और अनुवादित मुद्रित प्रति आधार रही है। इसके मूल भागका संशोधन ब्यावर-भवन-की प्रतिपरसे किया गया है जिसका क्रमांक ८६ है। आकार १४×८ इंच है। पत्र सं० १३० है। प्रति पृष्ठ पंक्ति १६ है और प्रति पंक्ति अक्षर संख्या ४७-४८ है। मुद्रित अनुवादको संशोधित पाठ-के अनुसार शुद्ध किया गया है और अनावश्यक भावार्थोंको छोड़ दिया गया है।

१२. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार—इसका सम्पादन पं० लालारामजी द्वारा किये गये अनुवादके साथ मुद्रित शास्त्राकार प्रतिपरसे किया गया है। मूल पाठका संशोधन ब्यावर भवनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रमांक ४२७ की हस्तलिखित प्रतिसे किया गया है जो कि सं० १८२८ की लिखी है। इसका आकार ११×५॥ इञ्च है। पत्र सं० १८० है। प्रति पृष्ठ पंक्ति संख्या ९ और पंक्ति अक्षर संख्या २९-३० है। ब्यावर भवनमें इसकी ६ प्रतियाँ हैं। पर उनमें यह सबसे अधिक प्राचीन और शुद्ध है।

१३. गुणभूषणश्रावकाचार—यद्यपि यह श्रावकाचार जैनमित्रके १८ वें वर्षके उपहारमें पं० पन्नालालजीके अनुवादके साथ वी० नि० २४५१ में प्रकाशित हुआ है पर उसके अन्तमें जो मूल भाग छपा है, वह बहुत अशुद्ध था और अनेक श्लोक अधूरे थे। उन्हें ब्यावर-भवनकी हस्तलिखित प्रतिपरसे शुद्ध करके प्रेस कापी तैयार की गई। भवनकी प्रतिका क्रमांक १६३ है। पत्र सं० २१ है। आकार ११×४। इञ्च है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० ७ है और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ३०-३१ है यद्यपि इस प्रतिपर लेखनकाल नहीं दिया है, पर कागज स्याही और लिखावटसे ३०० वर्ष प्राचीन अवश्य है और बहुत शुद्ध है।

१४. धर्मोपदेश पीयूषवर्ष श्रावकाचार—यह मूल या अर्थके साथ पहिले कभी मुद्रित हुआ है यह मुझे ज्ञात नहीं। इसकी प्रेस कापी ब्यावर-भवनकी हस्तलिखित प्रतिसे की गई है जो सं० १७२८ की लिखी हुई है। इसकी पत्र सं० २६ है। आकार ११×४। इंच है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० ९ है और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ३२-३३ है। इसका अनुवाद मेरा ही किया हुआ है।

१५. लाटीसंहिता—यह मूल माणिकचन्द्र ग्रन्थमालासे और पं० लालारामजीके हिन्दी अनुवादके साथ भारतीय जैन सिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था कलकत्तासे वी० नि० २४६४ में प्रकाशित है। इसके आधारपर ही प्रेसकापी तैयार की गई है। पर मूलका संशोधन ब्यावर-भवनकी हस्त-लिखित प्रतिसे किया गया है। इसपर लेखनकाल नहीं दिया है फिर भी यह लगभग २०० वर्ष पुरानी अवश्य है। इसके सम्यक्त्व प्रकरणवाले श्लोकोंका अनुवाद पं० मक्खनलालजी, पं० देवकीनन्दनजी और पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीके द्वारा सम्पादित पंचाध्यायीके आधारपर किया गया है। तथा शेष भागका अनुवाद विस्तृत अंशको छोड़कर पं० लालारामजीके अनुवादपर-से ही किया गया है। ब्यावर-भवनकी हस्तलिखित मूल प्रतिका क्रमांक १९१ है। आकार १०×४॥ इंच है। पत्र सं० ८८ है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० ९ है और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ३३-३४ है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि पूर्व मुद्रित प्रतिमेंसे प्रथम सर्गको छोड़ दिया गया है क्योंकि वह कथामुख ही है। धर्मका वर्णन दूसरे सर्गसे प्रारंभ होता है। अतः वहींसे यह प्रस्तुत संकलनमें संगृहीत है। प्रशस्ति अधिक बड़ी होनेसे परिशिष्टमें दी गई है।

१६. उमास्वामि श्रावकाचार—यह श्री शान्ति धर्म दि० जैन ग्रन्थमाला उदयपुरसे वीर नि० २४६५ में पं० हलायुधके हिन्दी अनुवादके साथ प्रकाशित हुआ है। इसके मूल भागका संशोधन ब्यावर-भवनकी हस्तलिखित प्रतिसे किया गया है जिसका क्रमांक १२९ है। पत्र सं० ७९ है। आकार १२×७ इंच है। प्रति पृष्ठ पंक्ति-संख्या १३ और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ३७-३८ है। यद्यपि यह सं० १९६६ की ही लिखित है तथापि शुद्ध है। इसका अनुवाद स्वतंत्र रूपसे मूलानु-गामी किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७. पूज्यपाद श्रावकाचार—इसका मूल या अनुवादके साथ कहींसे प्रकाशन हुआ है यह मुझे ज्ञात नहीं। ब्यावर-भवनकी हस्तलिखित प्रतिपरसे इसकी प्रेस कापी तैयार की गई और अनुवाद भी मेरा ही किया हुआ है। इसकी प्रतिका क्रमांक ७४३, पत्र सं० ३ और आकार १२×७ इंच है। प्रति पृष्ठ पंक्ति सं० १२ है और प्रति पंक्ति अक्षर संख्या ३५-३६ है। इसका लेखनकाल सं० १९६४ है। ब्यावर-भवनकी अन्य अपूर्ण प्रतियोंसे मूलके संशोधनमें सहायता मिली है।

१८. व्रतसार-श्रावकाचार—यह श्रावकाचार कहींसे भी अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। ब्यावर-भवनमें इसकी हस्तलिखित एक प्रति है। जिसका एक ही पत्र है। उसका आकार १३×७ इंच और श्लोक सं० २२ है। इसपर न तो इसके रचयिताका नाम ही है और न लेखन-काल ही दिया गया है। इसी प्रतिसे इसकी प्रतिलिपि की गई है। इसका अनुवाद मेरा ही है।

१९. व्रतोद्योतन श्रावकाचार—यह श्रावकाचार भी अभी तक कहींसे भी प्रकाशित नहीं था। इसकी ब्यावर-भवनमें एक प्रति थी जिसका क्रमांक १६४ है और आकार ११॥×८ इंच, पत्र स० २२, प्रति पृष्ठ पंक्ति-सं० १५ और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ३७-३८ है। इसीपरसे प्रेस कापी और अनुवाद किया गया। दुःख है कि इसे देखनेके लिए डॉ० नेमिचन्द्रजी शास्त्रीने आरा मँगाया था। पर उनके स्वर्गवास हो जानेसे प्रयत्न करनेपर भी यह प्रति वापिस नहीं आ सकी। यही सौभाग्य रहा कि मैं इसकी प्रेस कापी पहिले कर चुका था। इसका अनुवाद भी मेरा ही है।

इस श्रावकाचारके मूल पृष्ठका संशोधन बम्बईके ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन-की प्रतिके आधारपर किया गया। प्रयत्न करनेपर भी अन्य स्थानोंसे इसकी दूसरी प्रतियाँ प्राप्त नहीं हो सकीं।

बम्बई भवनकी प्रति प्रेस कापी कर लेनेके पश्चात् प्राप्त हुई। इसका आकार १०॥×४॥ इंच है। पत्र संख्या ३० है, प्रति पृष्ठ पंक्ति संख्या १० और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ३७-३८ है। बम्बई भवन अब उज्जैन स्थानान्तरित हो गया है। इसलिए इसका संकेत 'उ' किया गया है। यह विक्रम संवत् १८३४ की लिखी है जैसा कि इसकी अन्तिम पुष्पिकासे स्पष्ट है।

'वेदाग्निकर्मविधुसंयुतसंवत्सरेऽस्मिन् मासे मधौ सितसुभिन्नतरे तृतीयायां चारुपुस्तकमिदं वर वारके च चान्द्रेभके परिसमाप्तिमगात् कृताढ्यः। श्रोतृ-वाचकयो.........'मंगलावली भूयात्'।

यह प्रति ब्यावर-भवनकी प्रतिकी अपेक्षा बहुत शुद्ध है और इसीके आधारपर अनेक संदिग्ध एवं अशुद्ध स्थल शुद्ध और निश्चित किये जा सके। पर छूटे हुए श्लोकोंकी पूर्ति इससे भी नहीं हो सकी। छूटे हुए श्लोकोंके संख्यांक २८५-२८६, तथा ४४४ और ४४५ है। पूर्वापर सम्बन्धको देखते हुए उक्त स्थलपर इन श्लोकोंका होना अत्यावश्यक है। अन्य शास्त्रोंके आधारपर उक्त श्लोकोंका हिन्दी अर्थ कर दिया गया है।

प्रस्तुत श्रावकाचारकी रचनामें संस्कृत व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ अनेक स्थलोंपर दृष्टि-गोचर होती हैं। यथा—'अनगार'के स्थानपर 'अनागार' (श्लोक ६) 'भगिनी'के स्थानपर 'भग्नी'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(श्लोक १५४-१५५) 'क्षमावान'के स्थानपर 'क्षमावान्' (श्लोक १७०) तथा 'मित्राणि'के स्थान-पर 'मित्राः' (श्लोक ३४१) आदि।

कितने ही स्थलोंपर प्रयत्न करनेके बाद भी कोई शुद्ध पाठ ध्यानमें नहीं आनेपर (?) प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया गया है। यथा—श्लोक २०, २८, ६०, ९१, १८८, २५८, २६०, २६९, २९४, ४०१, ४७४, ५२० आदि। इस प्रकारके स्थलोंपर प्रकरणके अनुसार अर्थकी संगति बैठाई गई है, पर वह सर्वथा संगत है, यह नहीं कहा जा सकता।

श्लोक ४५८ में 'चटन्ति सर्वार्थसिद्धि ते'का अर्थ यदि सर्वार्थसिद्धि विमान किया जाय तो वह आगमके विरुद्ध जाता है, क्योंकि शिक्षाव्रतोंका निरतिचार-पालक श्रावक सर्वार्थसिद्धिविमानमें उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः 'सर्व असर्थकी सिद्धिको प्राप्त करता है' ऐसा अर्थ किया गया है।

व्रतोद्योतन श्रावकाचार यह नाम ग्रन्थके आद्योपान्त अध्ययन करनेपर सार्थक प्रतीक होता है, क्योंकि श्रावकोंके आचार-विचारका तो प्रायः वही वर्णन है, जो कि अन्य श्रावकाचारोंमें पाया जाता है। पर इसमें प्रारम्भसे ही भावोंकी प्रधानता एवं उज्ज्वलतापर अधिक बल दिया गया है और भावोंकी विशुद्धिसे ही व्रतोंका उद्योत (प्रकाश) होता है। अतः यह व्रतोंका उद्योत करने-वाला श्रावकाचार समझना चाहिए।

२०. श्रावकाचारसारोद्धार—इसकी हस्तलिखित प्रति हमें श्री १०५ क्षुल्लक सिद्ध-सागरजीकी कृपासे प्राप्त हुई, जो कि जयपुरके किसी भंडार की है। इसका आकार १२॥ × ५ इंच है। पत्र संख्या ३८ है। प्रति पृष्ठ पंक्ति संख्या ११ है और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ५४-५५ है। इनके रचयिता श्रीपद्मनन्दी हैं। प्रतिके अन्तमें केवल इतना लिखा है—

'संवत् १५८० वर्षे शाके १४४५ प्रवर्तमाने' इससे यह ज्ञात नहीं होता है कि यह रचनाकाल है, अथवा प्रतिलेखनकाल।

चूँकि भट्टारक सम्प्रदाय पृ० ९६ में दिये गये बलात्कारगण-उत्तरशाखा-कालपटके अनुसार भट्टारक पद्मनन्दीका समय सं० १३८५-१४५० है। इसके तीन शिष्य थे। उनमेंसे भ० शुभचन्द्र दिल्ली-जयपुर शाखाके, भ० सकलकीर्त्ति ईडर शाखाके और भ० देवेन्द्रकीर्त्ति सूरत शाखाके पट्टपर आसीन हुए। इनका क्रमसे समय इस प्रकार है—

१. भ० शुभचन्द्र सं० १४५०-१५०७।
२. भ० सकलकीर्त्ति सं० १४५०-१५१०।
३. भ० देवेन्द्रकीर्ति सं० १४५०-१४९३।

उक्त तीनोंके समयको देखते हुए यही ज्ञात होता है कि ऊपर जो समय दिया गया है, वह श्रावकाचार सारोद्धारकी प्रति लिखनेका समय है। इस श्रावकाचारकी रचना सं० १४५० के पूर्व ही हो चुकी थी, क्योंकि पट्टावलियोंके अनुसार भट्टारक पद्मनन्दीका समय वि० सं० १३८५ से १४५० सिद्ध होता है।

२१. भव्य धर्मोपदेश उपासकाध्ययन—इसकी मूल प्रति किसी भी शास्त्र-भंडारसे प्राप्त नहीं हो सकी। किन्तु श्री क्षुल्लक स्वरूपानन्दजीके हाथसे लिखी प्रेस कापी उनकी कृपासे अवश्य प्राप्त हुई है। पर यह बहुत अशुद्ध थी और अनेक स्थानोंपर उन्होंने स्वयं नवीन पाठोंकी

२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पना करके उन्हें लाल स्याहीसे उसीपर लिखा था वे भी अधिकांश अशुद्ध थे। उनकी इस प्रेस कापीके आधारपर ही प्रस्तुत उपासकाध्ययनकी पाण्डुलिपि तैयार की गयी। जहाँ तक संभव हुआ, वहाँ तक अशुद्ध पाठोंको शुद्ध करनेका प्रयत्न किया गया, फिर भी अनेक अशुद्ध पाठोंको प्रश्न वाचक चिह्न लगाकर ज्यों-का-त्यों रखा गया है। जैसे—

१. सागार-नागारसुधर्ममार्गम् (भा० ३ पृ० ३७३ श्लो० ५३)
२. भव्यो वरसम्यकत्वम् (,, पृ० ३८९ श्लोक २४५) आदि

३. प्रथम प्रतिमाका नाम कहीं 'दर्शनीक' और कहीं 'दर्शनिक' दिया है। (भा० ३ पृ० ३७३ श्लोक ५४, ५७ आदि)।

४. सन्धिके नियमोंका उल्लंघन तो अनेक स्थानोंपर पाठकोंको स्वयं ही दृष्टि-गोचर होगा।

५. प्रयत्न करने पर भी श्लोक १०२ के प्रथम और तृतीय चरणके अशुद्ध पाठोंको शुद्ध नहीं किया जा सका। अतः उन पदोंका अर्थ भी नहीं दिया गया है। (भा० ३ पृ० ३७७ श्लोक १०२)

इस उपासकाध्ययनके बीचका एक पत्र श्री क्षुल्लकजीको भी प्राप्त नहीं हुआ, अतः श्लोक ३१० से लेकर ३३९ तकके ४० श्लोक छूटे हुए हैं'। प्रकरणके अनुसार उनमें दानका वर्णन होना चाहिए।

उक्त त्रुटियोंके होनेपर भी प्रस्तुत संग्रहमें उसे स्थान देनेका कारण तद्गत कुछ विशेषताएँ हैं, जिनका अनुभव पाठकोंको उसका स्वाध्याय करनेपर स्वयं होगा।

इसके रचयिता श्री जिनदेव हैं। उन्होंने अपने नामका उल्लेख प्रत्येक परिच्छेदके अन्तमें स्वयं किया है और अपने इस उपासकाध्ययनको भट्टारक श्री जिनचन्द्रके नामसे अंकित किया है।

इस उपासकाध्ययनके अन्तमें श्री जिनदेवने अपनी प्रशस्ति दी है, २५ श्लोक होनेपर भी वह अपूर्ण है। क्षुल्लकजीको संभवतः प्रतिका अंतिम पत्र भी प्राप्त नहीं हुआ है। जो प्रशस्ति मिली है, उससे उनके विद्यागुरु यशोधर कवि ज्ञात होते हैं, जिनके प्रसादसे जिनदेवने आगम, सिद्धान्त, पुराण, चरित आदिका अध्ययन किया था। प्रशस्तिमें यशोधर कविका विस्तृत परिचय दिया गया है, किन्तु उसके अपूर्ण प्राप्त होनेसे जिनदेवके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

२२. पुरुषार्थानुशासन-गत श्रावकाचार—पं० गोविन्द-रचित पुरुषार्थानुशासन नामक यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। सरस्वती भवन ब्यावरकी क्रमांक ८० की हस्तलिखित प्रतिपरसे इसकी प्रेस कापी की गई। इसकी पत्र-संख्या ८६ और आकार १३×८। इंच है। प्रति पृष्ठ पंक्ति-संख्या १५ और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ३७-३८ है। यह प्रति वि० सं० १९८४ की लिखी है और बहुत अशुद्ध है। इसका संशोधन बम्बई भवनकी प्रतिसे किया गया जो कि वि० सं० १८७६ की लिखी है और बहुत शुद्ध है। इसका आकार १०×५ इंच है। पत्र-संख्या ६२, प्रति पृष्ठ पंक्ति १२ और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ३३-३४ है।

पुरुषार्थानुशासनमें चारों पुरुषार्थोंका वर्णन है। उसमेंसे धर्म पुरुषार्थके अन्तर्गत जो श्रावक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मका वर्णन है, वही प्रस्तुत संग्रहमें संकलित किया गया है। पूरा ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली या जीवराज-ग्रन्थमालासे प्रकाशित होनेके योग्य है।

२३. कुन्दकुन्द श्रावकाचार——इसकी एक मात्र प्रति सरस्वती भवन ब्यावरसे प्राप्त हुई है, जिसका क्रमांक ४१४ है। इसका आकार ११×४॥ इंच है। पत्र-संख्या ५० है। प्रति पृष्ठ पंक्ति-संख्या १३ है और प्रति पंक्ति अक्षर-संख्या ४०-४१ है। पुष्ट कागजपर सुवाच्य अक्षरोंमें यह वि० सं० १९७० के माघ सुदी २ की लिखी हुई है, जिसे व्यास वनसीधर मच्छारामने लिखा है। प्रति जितनी सुवाच्य है, उतनी ही अशुद्ध है। इसके पाठोंका अधिकांश संशोधन अर्थको ध्यानमें रखकर किया गया है। फिर भी अनेक पाठ संदिग्ध रह गये हैं, उनके आगे (?) प्रश्नवाचक चिह्न लगाया गया है। इसका संकलन प्रस्तुत संग्रहके इसी चौथे भागमें किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ और ग्रन्थकार परिचय

प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहमें संकलित श्रावकधर्मका वर्णन करनेवाले आचार्योंका परिचय कालक्रमसे यहाँ दिया जाता है।

१. चरित्रपाहुड आचार्य—कुन्दकुन्द

इतिहासज्ञोंके मतसे, तथा मुनि आचारके साथ द्रव्यानुयोग अध्यात्मशास्त्र एवं पाहुडसूत्रोंके रचयिताके रूपमें श्रीकुन्दकुन्दाचार्य सर्वप्रथम ग्रन्थकार सिद्ध होते हैं। दिगम्बर-परम्परामें उनका स्थान सर्वोपरि है यह बात मंगलाचरणमें बोले जानेवाले इस मंगल-पद्यसे स्पष्ट है—

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

भगवान् महावीर और गौतम गणधरके पश्चात् उनका मंगलरूपसे स्मरण किया जाना ही उनकी सर्वोपरिताका द्योतक है।

यद्यपि इतिहासज्ञ उपलब्ध शिलालेखों आदिके आधार पर उनका समय विक्रमकी प्रथम शताब्दी निश्चित करते हैं, तथापि उनके द्वारा रचित बोधपाहुडके अन्तमें दी गई दो गाथाओंमें जब वे स्वयंको भद्रबाहु श्रुतकेवलीका शिष्य प्रकट करते हैं, तब उन्हें प्रथम शताब्दी मानना विचारणीय हो जाता है। ये दोनों गाथाएँ इस प्रकार हैं—

सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥ ६२॥
बारस अंग वियाणं चउदसपुव्वंग विउल वित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयऊँ॥ ६२॥

प्रथम गाथामें सामान्यरूपसे भद्रबाहुका उल्लेख करनेपर कोई शंकाकार कह सकता था कि वे कौनसे भद्रबाहु हैं, उसके समाधानके लिए ही भद्रबाहुके लिए तीन विशेषण दूसरी गाथामें दिये गये हैं— १ द्वादशाङ्गवेत्ता, चतुर्दशपूर्ववेत्ता और श्रुतज्ञानी। इन तीन विशेषणोंके प्रकाशमें यह स्पष्ट है कि वे अपनेको पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहुका ही शिष्य घोषित कर रहे हैं।

श्रुतावतारकथामें श्रुतधरोंके पट्ट पर आसीन होनेवाले आचार्योंकी परम्पराके नाम दिये गये हैं, जब कि ये आचरण करानेवाली आचार्य-परम्पराके आचार्य थे। यह बात मूलाचारके रचयिताके रूपमें उनके नामान्तर 'वट्टकेराचार्य' से सिद्ध होती है। आचार्य कुन्दकुन्द मुनिसंघमें 'प्रवर्तक' पद पर आसीन थे और मूलाचारके टीकाकार वसुनन्दीने 'वट्टओ संघपवट्टओ' अर्थात् जो संघका प्रवर्तक होता है उसे वर्तक कहा। वर्त्तकका ही प्राकृतरूप 'वट्टक' है और 'एलाचार्य' का प्राकृत रूप 'एराइरिय' है। इन दोनों पदोंके संयोगसे वट्टकेराइरिय वट्टकेराचार्य नाम प्रसिद्ध हो गया है। कुन्दकुन्दके पाँच नामोंमें एक नाम 'एलाचार्य' भी है। बाल-दीक्षित आचार्यको 'एलाचार्य' कहा जाता है, यह बात भी मूलाचारकी टीकासे ही सिद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ० कुन्दकुन्दके ग्रन्थकारोंमें प्राचीन होनेका एक सबल प्रमाण यह भी है कि जहाँ आ० गुणधरने पाँचवें पूर्वके तीसरे पाहुडका उपसंहार करके 'कसायपाहुड' की रचना की और आ० भूत-बलि-पुष्पदन्तने दूसरे पूर्वगत 'कम्मपयडिपाहुड' का उपसंहार कर षट्खण्डागमकी रचना की है, वहाँ बारहवें दृष्टिवादके अनेकों पूर्वोंका दोहन करके कुन्दकुन्दने अनेकों पाहुडोंकी रचना की है। प्रसिद्धि तो उनके द्वारा ८४ पाहुडोंके रचनेकी है, पर वर्तमानमें उनके द्वारा रचे हुए २०-२२ पाहुड तो उपलब्ध हैं ही। शुद्ध आत्मतत्त्वके निरूपणको देखते हुए 'समयसार' आठवें आत्मप्रवादपूर्वका सार प्रतीत होता है। इसी प्रकार पंचास्तिकाय अस्तिनास्ति प्रवादपूर्वका, नियमसार प्रत्याख्यान-पूर्वका और प्रवचनसार अनेक पूर्वोंका सार ज्ञात होता है। मूलाचारको तो आ० वसुनन्दीने स्पष्ट रूपसे आचाराङ्गका उपसंहार कहा है। इस प्रकारसे कुन्दकुन्द द्वादशाङ्ग श्रुतमेंसे अनेक अंग और पूर्वके ज्ञाता सिद्ध होते हैं। अस्तु

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि आ० कुन्दकुन्दने आचारांगका उपसंहार करके मूलाचारकी रचना की है, तब उपासकाध्ययन अंगका उपसंहार करके किसी स्वतंत्र उपासकाध्ययनकी रचना क्यों नहीं की? इसका उत्तर यह है कि उनके समयमें साधु लोग शिथिलाचारी होने लगे थे, और अपने आचारको भूल गये थे। उनको उनका जिन-प्रणीत मार्ग बतानेके लिए मूलाचार रचा। किन्तु उस समय श्रावक-लोग अपने कर्तव्योंको जानते थे एवं तदनुसार आचरण भी करते थे। अतः उनके लिए स्वतंत्र उपासकाध्ययनकी रचना करना उन्हें आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ। केवल चारित्रपाहुडके भीतर चारित्रके सकल और विकल भेद करके मात्र ६ गाथाओंमें विकल चारित्रका वर्णन करना ही उचित जंचा। पहली गाथामें संयमाचरणके दो भेद कहकर बताया कि सागार सयमाचरण गृहस्थोंके होता है। दूसरी गाथामें ११ प्रतिमाओंके नाम कहे। तीसरीमें सागारसंयमा-चरणको पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतरूप कहा। पश्चात् तीन गाथाओंमें उनके नाम गिनाये हैं। इन्होंने सल्लेखनाको चौथा शिक्षाव्रत माना है। देशावकाशिकव्रतको न गुणव्रतोंमें गिनाया है और न शिक्षाव्रतोंमें ही। इनके मतसे दिक्-परिमाण, अनर्थ-दंड-वर्जन और भोगोपभोग परिमाण ये तीन गुणव्रत हैं, तथा सामायिक, प्रोषध, अतिथिपूजा और सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत हैं। यहाँ यह विचारणीय कि मरणके अन्तमें की जानेवाली सल्लेखनाको शिक्षाव्रतोंमें किस दृष्टिसे कहा है? और क्या इस चौथे शिक्षाव्रतकी पूर्तिके बिना ही श्रावक तीसरी आदि प्रतिमाओंका धारी हो सकता है?

चारित्रपाहुड-गत उक्त गाथाएँ श्रावकाचार-संग्रहके तीसरे भागमें परिशिष्टके अन्तर्गत संकलित हैं।

आ० कुन्दकुन्द-रचित ८४ पाहुडोंकी प्रसिद्धि है। उनमेंसे आज २० उपलब्ध हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. समयपाहुड (समयसार), २. पंचास्तिकायपाहुड (पंचास्तिकाय), ३. प्रवचनसार, ४. नियम-सार, ५. दंसणपाहुड, ६. चारित्तपाहुड, ७. सुत्तपाहुड, ८. बोधपाहुड, ९. भावपाहुड, १०. मोक्ख-पाहुड, ११. लिंगपाहुड, १२. सीलपाहुड, १३. बारस अणुवेक्खा, १४. रयणसार, १५. सिद्धभक्ति, १६. सुदभत्ति, १७. चारित्तभत्ति, १८. जोगिभत्ति, १९. आइरियभत्ति, २०. णिव्वाणभत्ति, २१. पंच गुरुभत्ति, २२. तित्थयरभत्ति। अनुपलब्ध परिकर्मसूत्र भी इनके द्वारा रचा गया कहा जाता है।

यतः पाहुड पूर्वगत होते हैं, अतः कुन्दकुन्द पूर्वोंके एक देश ज्ञाता सिद्ध होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. तत्त्वार्थसूत्र—आचार्य उमास्वाति

उमास्वाति-द्वारा संस्कृत भाषामें निबद्ध तत्त्वार्थसूत्रमें श्रावक धर्मका वर्णन सर्व-प्रथम दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने तत्त्वार्थसूत्रके सातवें अध्यायमें व्रतीको सबसे पहले माया, मिथ्यात्व और निदान इन तीन शल्योंसे रहित होना आवश्यक बतलाया, जब कि स्वामि कार्त्तिकेयने दार्शनिक श्रावकको निदान-रहित होना जरूरी कहा है। इसके पश्चात् इन्होंने व्रतीके आगारी और अनगार भेद करके अणुव्रतीको आगारी बताया। पुनः अहिंसादि व्रतोंकी पाँच-पाँच भावनाओंका वर्णन किया[1] और प्रत्येक व्रतके पाँच-पाँच अतीचार बताये। इसके पूर्व न कुन्दकुन्दने अतीचारोंकी कोई सूचना दी है और न स्वामिकार्त्तिकेयने ही उनका कोई वर्णन किया है। तत्त्वार्थ सूत्रकारने अतीचारोंका यह वर्णन कहाँसे किया, यह एक विचारणीय प्रश्न है। अतीचारोंका विस्तृत वर्णन करने पर भी कुन्दकुन्द और कार्त्तिकेयके समान उमास्वातिने भी आठ मूल गुणोंका कोई वर्णन नहीं किया है, जिससे पता चलता है कि इनके समय तक मूल गुणोंकी कोई आवश्यकता अनुभव नहीं की गई थी। तत्त्वार्थसूत्रमें ग्यारह प्रतिमाओंका भी उल्लेख नहीं है, यह बात उस दशामें विशेष चिन्ताका विषय हो जाती है, जब हम उनके द्वारा व्रतोंकी भावनाओंका और अतीचारोंका विस्तृत वर्णन किया गया पाते हैं। इन्होंने कुन्दकुन्द और कार्त्तिकेय प्रतिपादित गुणव्रत और शिक्षाव्रतोंके नामोंमें भी परिवर्तन किया है। इनके मतानुसार दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदंड-विरति ये तीन गुणव्रत और सामायिक, प्रोषधोपवास उपभोग-परिभोग परिमाण, अतिथि संविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं। स्वामिकार्तिकेय-प्रतिपादित देशावकाशिकको इन्होंने गुणव्रतमें और भोगोपभोग-परिमाणको शिक्षाव्रतमें परिगणित किया है। सूत्रकारने मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भावनाओंका भी वर्णन किया है। इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्रमें अहिंसादिव्रतोंकी भावनाओं, अतीचारों और मैत्री, प्रमोद आदि भावनाओंके रूपमें तीन विधानात्मक विशेषताओंका, तथा अष्टमूलगुण और ग्यारह प्रतिमाओंके वर्णन नहीं करनेरूप दो अविधानात्मक विशेषताओंका दर्शन होता है।

समय-विचार

शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि गिद्धपिच्छाचार्य उमास्वाति श्री कुन्दकुन्दाचार्यके अन्वय या वंशमें हुए हैं। यथा—

१. तदीयवंशाकरतः प्रसिद्धादभूददोषा यतिरत्नमाला।
बभौ यदन्तर्मणिवन्मुनीन्द्रः स कुण्डकुन्दोदितचण्डदण्डः॥ १०॥

२. अभूदुमास्वातिमुनिः पवित्रे वंशे तदीये सकलार्थवेदी।
सूचीकृतं येन जिनप्रणीतं शास्त्रार्थजातं मुनिपुंगवेन॥ ११॥
(शिलालेख सं० भा० १ अभिले० १०८ पृ० २१०)

३. अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्यशब्दोत्तरगृद्धपिच्छः।
तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी॥
(शिलालेखसं० भा० १ अभिले० ४३ पृ० ४३)

---

१. कुछ विद्वान् इन भावनाओंको महाव्रतोंकी ही रक्षक मानते हैं। परन्तु लाटी-संहिताकारने उन्हें एक देशरूपसे अणुव्रतोंकी भी सयुक्तिक रक्षक सिद्ध किया है। (देखो–भाव ३ पृ० १०० श्लो०१८७ आदि)
—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्—भद्रबाहु श्रुतकेवलीको बंश-परम्परामें जो यति (साधु) रूप रत्नमाला शोभित हुई, उसमें मध्यवर्ती मणिके समान प्रचण्ड तेजस्वी कुन्दकुन्द मुनीन्द्र हुए। उन्हींके पवित्र वंशमें सकलार्थवेत्ता उमास्वाति मुनीश्वर हुए, जिन्होंने जिनप्रणीत शास्त्रसमूहको सूत्ररूपसे रचा। ये उमास्वाति गृद्धपिच्छाचार्यके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। उनके समान उस कालमें समस्त तत्त्वोंका वेत्ता और कोई नहीं था।

उक्त शिलालेखोंसे उमास्वातिका कुन्दकुन्दाचार्यके अन्वयमें होना प्रकट होता है, किन्तु नन्दिसंघकी पट्टावलीमें उनको कुन्दकुन्दके पट्टपर वि० सं० १०१ में बैठनेका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस पट्टावलीके अनुसार उमास्वाति ४० वर्ष ८ मास आचार्य पदपर रहे हैं। उनकी आयु ८४ वर्षकी थी और वि० सं० १४२ में उनके पट्ट पर लोहाचार्य द्वितीय प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार उमास्वातिका समय विक्रमकी प्रथम शतीका अन्तिम चरण और दूसरी शतीका पूर्बार्ध सिद्ध होता है।

तत्त्वार्थसूत्रका श्रावकधर्म-प्रतिपादक उक्त सातवाँ अध्याय सानुवाद श्रावकाचार-सग्रहके तीसरे भागके परिशिष्टमें दिया गया है।

उमास्वातिकी अन्य रचनाका कोई उल्लेख अभी तक कहींसे नहीं मिला है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार—स्वामी समन्तभद्र

तत्त्वार्थसूत्रके पश्चात् श्रावकाचारपर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखनेवाले स्वामी समन्तभद्रपर हमारी दृष्टि जाती है, जिन्होंने रत्नकरण्डक रचकर श्रावकधर्म-पिपासु एवं जिज्ञासु जनोंके लिए सचमुच रत्नोंका करण्डक (पिटारा) ही उपस्थित कर दिया है। इतना सुन्दर और परिष्कृत विवेचन उनके नामके ही अनुरूप है।

रत्नकरण्डकमें कुछ ऐसा वैशिष्टय है जो अपनी समता नहीं रखता। धर्मकी परिभाषा, सत्यार्थ देव,शास्त्र, गुरुका स्वरूप, आठ अंगों और तीन मूढ़ताओंके लक्षण, मदों के निराकरणका उपदेश, सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्रका लक्षण, अनुयोगोंका स्वरूप, सयुक्तिक चारित्रकी आवश्यकता और श्रावकके बारह व्रतों तथा ग्यारह प्रतिमाओंका इतना परिमार्जित और सुन्दर वर्णन अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता।

श्रावकोंके आठ मूल गुणोंका सर्वप्रथम वर्णन हमें रत्नकरण्डमें ही मिलता है। श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार पाँच अणुव्रत मूल गुण रूप और सात शीलव्रत उत्तर गुण रूप हैं और इस प्रकार श्रावकोंके मूल और उत्तर गुणोंकी सम्मिलित संख्या १२ है। परन्तु दिगम्बर परम्परामें श्रावकोंके मूलगुण ८ और उत्तर गुण १२ माने जाते है। स्वामिसमन्तभद्रने पाँच स्थूल पापोंके और मद्य, मांस, मधुके परित्यागको अष्टमूलगुण कहा है, परन्तु श्रावकके उत्तर गुणोंकी संख्याका कोई उल्लेख नहीं किया है। हाँ, परवर्त्ती सभी आचार्योंने उत्तरगुणोंकी संख्या १२ ही बताई है।

इसके अतिरिक्त समन्तभद्रने अपने सामने उपस्थित आगम-साहित्यका अवगाहन कर और उनके तत्त्वोंको अपनी परीक्षा-प्रधान दृष्टिसे कसकर बुद्धि-ग्राह्य ही वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—तत्त्वार्थसूत्रके सम्मुख होते हुए भी उन्होंने देशावकाशिकको गुणव्रत न मानकर शिक्षाव्रत माना और भोगोपभोग परिमाणको चारित्रपाहुडके समान गुणव्रत ही माना। उनकी दृष्टि इस बातपर अटकी कि शिक्षाव्रत तो अल्पकालिक साधना रूप होते हैं, पर भोगोपभोगका परिणाम तो यम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपसे यावज्जीवनके लिए भी होता है फिर उसे शिक्षाव्रतोंमें कैसे गिना जाय ! इसके साथ ही दूसरा संशोधन देशावकाशिकको प्रथम शिक्षाव्रत मानकर किया। उनकी तार्किक दृष्टि ने उन्हें बताया कि सामायिक और प्रोषधोपवासके पूर्व ही देशावकाशिका स्थान होना चाहिए, क्योंकि उन दोनोंकी अपेक्षा इसके कालकी मर्यादा अधिक है। इसके सिवाय उन्होंने आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रतिपादित सल्लेखनाको शिक्षाव्रत रूपसे नहीं माना। उनकी तार्किक दृष्टिको यह जँचा नहीं कि मरणके समय की जानेवाली सल्लेखना जीवन भर अभ्यास किये जानेवाले शिक्षाव्रतोंमें कैसे स्थान पा सकती है ? अतः उन्होंने उसके स्थानपर वैयावृत्य नामक शिक्षाव्रतको कहा। सूत्रकारने अतिथि-संविभाग नामक चौथा शिक्षाव्रत कहा है, परन्तु उन्हें यह नाम भी कुछ संकुचित या अव्यापक जँचा, क्योंकि इस व्रतके भीतर वे जितने कार्योंका समावेश करना चाहते थे, वे सब अतिथि-संविभागके भीतर नहीं आ सकते थे। उक्त संशोधनोंके अतिरिक्त अतीचारोंके विषयमें भी उन्होंने कई संशोधन किये। तत्त्वार्थसूत्रगत परिग्रह परिमाणव्रतके पाँचों अतीचार तो एक 'अतिक्रमण' नाममें ही आ जाते हैं, फिर उनके पंचरूपताकी क्या सार्थकता रह जाती है, अतः उन्होंने उसके स्वतंत्र ही पाँच अतीचारोंका प्रतिपादन किया। इसी प्रकार तत्त्वार्थसूत्रगत भोगोपभोग-परिमाणके अतीचार भी उन्हें अव्यापक प्रतीत हुए, क्योंकि वे केवल भोगपर ही घटित होते हैं, अतः इस व्रतके भी स्वतंत्र अतीचारोंका निर्माण किया और यह दिखा दिया कि वे गतानुगतिक या आज्ञा-प्रधान न होकर परीक्षाप्रधानी हैं। इसी प्रकार एक संशोधन उन्होंने ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतीचरोंमें भी किया। उन्हें इत्वरिकापरिगृहीतागमन और इत्वरिका-अपरिगृहीतागमनमें कोई खास भेद दृष्टिगोचर नहीं हुआ, क्योंकि स्वदार-सन्तोषीके लिए तो दोनों ही परस्त्रियाँ हैं। अतः उन्होंने उन दोनोंके स्थानपर एक इत्वरिका गमनको रखकर 'विटत्व' नामक एक और अतीचारकी स्वतंत्र कल्पना की, जो कि ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतीचार होनेके सर्वथा उपयुक्त है।

श्रावकधर्मके प्रतिपादन करनेवाले आदिके दोनों ही प्रकारोंको हम रत्नकरण्डकमें अपनाया हुआ देखते हैं, तथापि ग्यारह प्रतिमाओंका ग्रन्थके सबसे अन्तमें वर्णन करना यह बतलाता है कि उनका झुकाव प्रथम प्रकारकी अपेक्षा दूसरे प्रतिपादन-प्रकारकी ओर अधिक रहा है।

अर्हत्पूजन को वैयावृत्यके अन्तर्गत वर्णन करना रत्नकरण्डकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसके पूर्व पूजनको श्रावक-व्रतोंमें किसीने नहीं कहा है। सम्यक्त्वके आठ अंगोंमें, पाँच अणुव्रतोंमें, पाँच पापोंमें और चारों दानोंके देनेवालोंमें प्रसिद्धिको प्राप्त करनेवालोंके नामोंका उल्लेख भी रत्नकरण्डककी एक खास विशेषता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी समन्तभद्रने श्रावक धर्मको पर्याप्त पल्लवित और विकसित किया और उसे एक व्यवस्थित रूप देकर भविष्यकी पीढ़ीके लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

परिचय और समय

आचार्य समन्तभद्रके समयपर विभिन्न इतिहासज्ञोंने विभिन्न प्रमाणोंके आधारोंपर भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं। किन्तु स्वर्गीय जुगलकिशोर मुख्तारने उन सबका सयुक्तिक निरसन करके उन्हें विक्रमकी दूसरी शतीका आचार्य सिद्ध किया है और उनके इस मतकी डॉ० ज्योतिप्रसाद जैनने अनेक युक्तियोंसे समर्थन किया है। स्व० मुख्तार साहबने स्वामी समन्तभद्रके इतिहासपर बहुत विशद प्रकाश डाला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नकरण्डके अतिरिक्त आपकी निम्नांकित रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१. बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, २. देवागमस्तोत्र (आप्तमीमांसा), ३. स्तुति विद्या (जिनशतक), ४. युक्त्यनुशासन।

इनके सिवाय १. जीवसिद्धि, २. तत्त्वानुशासन, ३. प्रमाण पदार्थ, ४. गन्धहस्तिमहाभाष्य, ५. कर्मप्राभृतटीका और ६. प्राकृत व्याकरणके रचनेका भी उल्लेख मिलता है।

४. कार्तिकेयानुप्रेक्षा—स्वामी कार्तिकेय

स्वामी कार्तिकेयने अनुप्रेक्षा नामसे प्रसिद्ध अपने ग्रन्थमें धर्म भावनाके भीतर श्रावक धर्मका विस्तृत वर्णन किया है। इनके प्रतिपादनकी शैली स्वतंत्र है। इन्होंने जिनेन्द्र उपदिष्ट धर्मके दो भेद बताकर संगासक्तों—परिग्रहधारी गृहस्थोंके धर्मके बारह भेद बताये हैं। यथा—१. सम्यग्दर्शनयुक्त, २. मद्यादि स्थूल-दोषरहित, ३. व्रतधारी, ४. सामायिकी, ५. पर्वव्रती, ६. प्रासुक आहारी, ७ रात्रिभोजन विरत, ८. मैथुन त्यागी, ९. आरम्भत्यागी, १०. संगत्यागी, ११. कार्यानुमोदविरत और १२. उद्दिष्टाहारविरत। इनमें प्रथम नामके अतिरिक्त शेष नाम ग्यारह प्रतिमाओंके हैं। यतः श्रावकको व्रत धारण करनेके पूर्व सम्यग्दर्शनका धारण करना अनिवार्य है अतः सर्वप्रथम उसे भी गिनाकर उन्होंने श्रावक-धर्मके बारह भेद बतलाये हैं और उनका वर्णन पूरी ८५ गाथाओं में किया है। जिनमेंसे २० गाथाओं में तो सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति, उसके भेद, उनका स्वरूप, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिकी मनोवृत्ति और सम्यक्त्वका माहात्म्य बहुत सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है, जैसा कि अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। तत्पश्चात् दो गाथाओं द्वारा दार्शनिक श्रावकका स्वरूप कहा है, जिसमें बताया गया है कि जो त्रस-समन्वित या त्रस-घातसे उत्पन्न मांस, मद्य और निंद्य पदार्थोंका सेवन नहीं करता, तथा दृढ़चित्त, वैराग्य-भावना-युक्त और निदान रहित होकर एक भी व्रतको धारण करता है, वह दार्शनिक श्रावक है। तदनन्तर उन्होंने व्रतिक श्रावकके १२ व्रतोंका बड़ा हृदयग्राही, तलस्पर्शी और स्वतंत्र वर्णन किया है, जिसका आनन्द इस ग्रन्थका अध्ययन करके ही लिया जा सकता है। उन्होंने कुन्दकुन्द-सम्मत तीनों गुणव्रतोंको तो माना है, परन्तु शिक्षाव्रतोंमें कुन्दकुन्द-स्वीकृत सल्लेखनाको न मानकर उसके स्थान पर देशावकाशिकको माना है। इन्होंने समन्तभद्रके समान अनर्थ दंडके पाँच भेद कहे हैं। स्वामिकार्त्तिकेयने चारों शिक्षाव्रतोंका विस्तारके साथ विवेचन किया है। सामयिक शिक्षाव्रतके स्वरूपमें आसन, लय, काल आदिका वर्णन द्रष्टव्य है। इन्होंने प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतमें उपवास न कर सकनेवालेके लिए एक भक्त, निर्विकृति आदि करनेका विधान किया है। अतिथि संविभाग शिक्षाव्रतमें यद्यपि चारों दानोंका निर्देश किया है, पर आहार दान पर खास जोर देकर कहा है कि एक भोजन दानके देने पर शेष तीन स्वतः ही दे दिये जाते हैं। चौथे देशावकाशिक शिक्षाव्रतमें दिशाओंका संकोच और इन्द्रिय विषयोंका संवरण प्रतिदिन आवश्यक बताया है। इसके पश्चात् सल्लेखनाके यथावसर करनेकी सूचना की गयी है। सामायिक प्रतिमाके स्वरूपमें समन्तभद्रके समान कायोत्सर्ग, द्वादश आवर्त, दो नमन और चार प्रणाम करनेका विधान किया है। प्रोषध प्रतिमामें सोलह पहरके उपवासका विधान किया है। सचित्त त्याग प्रतिमाधारीके लिए सर्व प्रकारके सचित्त पदार्थोंके खानेका निषेध किया है और साथ ही यह भी आदेश दिया है कि जो स्वयं सचित्तका त्यागी है उसे सचित्त वस्तु अन्यको खानेके लिए देना योग्य नहीं है, क्योंकि खाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और खिलानेमें कोई भेद नहीं है। रात्रि-भोजन-त्याग प्रतिमाधारीके लिए कहा है कि जो चतुर्विध आहारको स्वयं न खानेके समान अन्यको भी नहीं खिलाता है वही निशि भोजन व्रती है। ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारीके लिए देवी, मनुष्यनी, तिर्यंचनी और चित्रगत सभी प्रकारकी स्त्रियोंकी मन, वचन, कायसे अभिलाषाके त्यागका विधान किया है। आरम्भविरत प्रतिमाधारीके लिए कृत, कारित और अनुमोदनासे आरम्भका त्याग आवश्यक बताया है। परिग्रह त्याग प्रतिमामें बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहके त्यागनेका विधान किया है। अनुमतिविरतके लिए गृहस्थीके किसी भी कार्यमें अनुमतिके देनेका निषेध किया है। उद्दिष्टाहारविरतके लिए याचना-रहित और नवकोटि-विशुद्ध योग्य भोज्यके लेनेका विधान किया गया है। स्वामी कार्त्तिकेयने ग्यारहवीं प्रतिमाके भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है जिससे पता चलता है कि उनके समय तक इस प्रतिमाके दो भेद नहीं हुए थे।

स्वामिकार्त्तिकेयने अपने इस 'अणुवेक्खा' ग्रन्थके अन्तमें जो प्रशस्ति दी है, उससे उनके समय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है, केवल इतना ही ज्ञात होता है कि स्वामिकुमारने यह ग्रन्थ जिन-वचनकी प्रभावना तथा अपने चंचल मनको रोकनेके लिए बनाया है। ये बारह अनुप्रेक्षाएँ जिनागमके अनुसार कही गयी हैं। जो इन्हें पढ़ता, सुनता और भावना करता है वह शाश्वत सुखको पाता है। कुमारकालमें दीक्षा ग्रहण करनेवाले वासुपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व और महावीर इन पाँच बालब्रह्मचारी तीर्थंकरोंकी मैं स्तुति करता हूँ।

परिचय और समय

उक्त प्रशस्तिसे केवल यही ज्ञात होता है कि इसके रचयिता स्वामीकुमार थे, वे बाल-ब्रह्मचारी रहे हैं, क्योंकि उन्होंने कुमारावस्थामें ही दीक्षा ग्रहण करनेवाले पाँच तीर्थंकरोंका अन्तमें स्तवन किया है। कार्त्तिकेयके अनेक पर्यायवाची नामोंमें एक नाम 'कुमार' भी है, सम्भवतः इसी कारण यह स्वामिकार्त्तिकेय-रचित प्रसिद्ध हुआ है। सर्वप्रथम इस नामका उल्लेख इसके संस्कृत-टीकाकार श्री श्रुतसागरने ही किया है।

इनका समय बहुत ऊहापोहके बाद श्री जुगलकिशोर मुख्तारने विक्रमकी दूसरी-तीसरी शताब्दी प्रकट किया है।

स्वामीकुमार या कार्त्तिकेय द्वारा रचित किसी अन्य ग्रन्थका कहीं कोई उल्लेख अभीतक नहीं मिला है।

५. रत्नमाला—आ० शिवकोटि

आ० शिवकोटिने रत्नमाला नामक एक लघुकाय ग्रन्थकी रचना की है, जिसमें उन्होंने रत्नत्रय धर्मकी महत्ता बतलाते हुए भी श्रावकधर्मका ही प्रमुखतासे वर्णन किया है। सर्व प्रथम सम्यक्त्वकी महिमा बता कर वीतरागी देव, सत्प्रतिपादित शास्त्र और निरारम्भी दिगम्बर गुरुके श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहा है और बताया है कि प्रशम-संवेगादिवान्, तत्त्वनिश्चयवान् मनुष्य जन्म-जरातीत मोक्ष पदवीको प्राप्त करता है। पुनः श्रावकोंके १२ व्रतोंका उल्लेख कर दिग्व्रत, अनर्थदण्डविरति और भोगोपभोगसंख्यान ये तीन गुणव्रत तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथि-पूजन और मारणान्तिकी सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत कहे हैं। इन्होंने समन्तभद्र-प्रतिपादित आठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलगुणोंका उल्लेख कर कहा है कि पंच उदुम्बरोंके साथ तीन मकारका त्याग तो बालकों और मूर्खोंमें भी देखा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि यथार्थं मूलगुण तो पंच अणुव्रतोंके साथ मद्य, मांस और मधुके त्याग रूप ही हैं। इन आठ मूलगुणोंके धारणका महान् फल बतलाते हुए पाँचों स्थूल पापों और तीनों मकारोंके त्यागका विशद सुफल-दायक स्वरूप निरूपण किया है। व्यसनोंके त्यागका, रात्रिभोजन त्यागके सुफलका, पंचनमस्कार मंत्रके जपनेका, अष्टमी आदि पर्वोंमें सिद्धभक्ति आदि करनेका, त्रिकाल वन्दना-करनेका, एवं शास्त्रोक्त अन्य भी क्रियाओंके करनेका विधान करके बताया गया है कि व्रतोंमें अतीचार लगनेपर गुरु-प्रतिपादित प्रायश्चित्त लेना चाहिए। चैत्य और चैत्यालय बनवानेका साधुजनोंकी वैयावृत्य करनेका तथा सिद्धान्त ग्रन्थ एवं आचारशास्त्रके बाचने वालोंमें धन-व्यय करनेका, जीर्ण चैत्यालयोंके उद्धार करनेका और दीन-अनाथजनोंको भी दान देनेका विधान किया है।

परिचय और समय

रत्नमालाके प्रारम्भमें ही स्वामी समन्तभद्रका जिन शब्दोंमें स्मरण किया गया है और इसके अन्तिम पदमें जिस प्रकार श्लेष रूपसे 'शिवकोटि' पद दिया गया है, उससे यह निर्विवाद सिद्ध है कि इस रत्नमालाके रचयिता शिवकोटि राजा स्वामी समन्तभद्रसे बहुत अधिक प्रभावित थे। समन्तभद्रके द्वारा चन्द्रप्रभजिनकी स्तुति करते हुए चन्द्रप्रभजिनबिम्ब प्रकट हुआ देखकर उससे प्रभावित एवं दीक्षित हुए शिष्यका उल्लेख जो शिलालेखोंमें, तथा विक्रान्त कौरव आदिमें पाया जाता है, उसके आधार पर प्रस्तुत रत्नमालाके रचयिता उन्हीं शिवकोटिके माननेमें कोई सन्देह नहीं रहता। श्री जुगलकिशोर मुख्तारने भी 'समन्तभद्रके इतिहासमें' इस तथ्यको स्वीकार किया है। (देखो पृष्ठ ९५-९६) इसलिए समन्तभद्रका जो विक्रमकी दूसरी शती समय है, वही शिवकोटिका भी समझना चाहिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शिवकोटिने समन्तभद्र और सिद्धसेनके सिवाय अन्य किसी भी आचार्यका स्मरण नहीं किया है।

शिवकोटिकी किसी अन्य रचनाका कहीं कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं हुआ है।

६. पद्मचरित—आ० रविषेण

जैन समाजमें पद्मपुराणसे प्रसिद्ध पद्मचरितकी रचना आ० रविषेणने की है। इसके चौदहवें पर्वमें श्रावक धर्मका वर्णन आया है, उसे प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागके परिशिष्टमें सानुवाद दिया गया है। यद्यपि पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतके रूपमें श्रावकके १२ व्रतोंका वर्णन किया गया है, तथापि उन्होंने अनर्थदंड विरति, दिग्व्रत और भोगोपभोग संख्यान ये तीन गुणव्रत, तथा सामायिक, प्रोषधानशन, अतिथिसंविभाग और सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत कहे हैं। अन्तमें मद्य, मांस, मधु, द्यूत, रात्रिभोजन और वेश्यासंगमके त्यागका विधान किया है।

उनके इस संक्षिप्त वर्णनसे दो बातें स्पष्ट हैं—गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंकी विभिन्नता और मूलगुणों या सप्त व्यसनोंका कोई उल्लेख न करके मद्यादि छह निन्द्य कार्योंके त्यागका विधान। इससे ज्ञात होता है कि उनके समय तक पंच उदुम्बर फलोंके भक्षणका, तथा द्यूत और वेश्यासंगम-के सिवाय शेष व्यसनोंके सेवनका कोई प्रचार नहीं था। अथवा सात व्यसनोंमें तीन मकारोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिगणित करने पर, तथा वेश्या सेवनमें परस्त्रीको भी ले लेनेपर छह व्यसनोंका निर्देश हो ही गया है। केवल आखेट (शिकार) खेलनेके स्थान पर रात्रिभोजनके त्यागकी प्रेरणा की है। इससे यह ज्ञात होता है कि उनके समयमें आखेट खेलनेकी प्रवृत्तिके स्थानमें रात्रिभोजनका प्रचार बढ़ रहा था, अतः उसके त्यागका विधान करना उन्होंने आवश्यक समझा।

परिचय और समय

आ० रविषेणने पद्मचरितकी रचना वीर निर्वाण सं० १२०३ में समाप्त की है। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है—

द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्धचतुर्थवर्षयुक्ते।
जिनभास्करवर्धमानसिद्धेश्चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥

(पद्मचरित पर्व १२३ श्लो १८२)

अर्थात्—भ० महावीरके मुक्त होनेके पश्चात् १२०३ वर्ष ६ मास बीतने पर मैंने पद्म नामक बलभद्र मुनिका यह चरित रचा।

उक्त आधार पर आ० रविषेणने वि० सं० ७३४ में पद्मचरित समाप्त किया। अतः उनका समय विक्रमकी आठवीं शतीका पूर्वार्ध निश्चित ज्ञात होता है।

पद्मचरितके अतिरिक्त आ० रविषेणकी अन्य रचनाका कहीं कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है।

७. वराङ्गचरित—आ० जटासिंहनन्दि

आचार्य जटासिंहनन्दिने 'वराङ्गचरित' नामके एक महाकाव्यकी रचना की है। उसके पन्द्रहवें सर्गमें श्रावकधर्मका वर्णन आया है, उसे ही प्रस्तुत संग्रहके परिशिष्टमें संकलित किया गया है। इसके प्रारम्भमें दयामयी धर्मसे सुखकी प्राप्ति बताकर उसके धारणकी प्रेरणा की गई है तथा गृहस्थोंको दुःखोंसे छूटनेके लिए व्रत, शील, तप, दान, संयम और अर्हत्पूजन करनेका विधान किया गया है। श्रावकके वे ही बारह व्रत कहे गये हैं जिन्हें कुन्दकुन्दाचार्यने कहा है। इसमें देवताकी प्रीतिके लिए, अतिथिके आहारके लिए, मंत्रके साधनके लिए, औषधिके बनानेके लिए और भयके प्रतीकारके लिए किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करनेको अहिंसाणुव्रत कहा गया है। प्रातः और सायंकाल शरण, उत्तम और मंगल स्वरूप अरिहन्त, सिद्ध, साधु और धर्मको नमस्कार पूर्वक उनके ध्यान करनेको, सर्व प्राणियोंपर समता भाव रखनेको, संयम धारणकी भावना करनेको और आर्त्त-रौद्रभावोंके त्यागको सामायिक व्रत कहा है। जीवनके अन्तमें सभी बहिरंग-अन्तरंग परिग्रहका त्यागकर और महाव्रतोंको धारण कर शरीर-त्यागको सल्लेखना शिक्षाव्रत कहा है। अन्तमें बताया है कि जो विधिसे उक्त व्रतोंका पालन करते हैं वे सौधर्मादि कल्पोंमें उत्पन्न होकर और वहाँसे आकर उत्तम वंशमें जन्म लेकर दीक्षित हो कर्म नष्ट कर परम पदको प्राप्त होते हैं।

परिचय और समय

यद्यपि वराङ्गचरितके अन्तमें आ० जटासिंहनन्दिने अपने परिचय और समयके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा है, तो भी उद्योतन सूरिने 'कुवलयमाला' में, जिनसेन प्रथमने 'हरिवंशपुराण' में और जिनसेन द्वितीयमें 'महापुराण' में इनका उल्लेख किया है, अतः ये उक्त आचार्योंसे पूर्ववर्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्ध होते हैं। तदनुसार इनका समय विक्रमकी आठवीं-नवमी शताब्दीका मध्यवर्ती काल सिद्ध होता है।

वराङ्गचरितके अतिरिक्त इनकी अन्य किसी रचनाका कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

८. हरिवंशपुराण—आ० जिनसेन प्रथम

आ० जिनसेन प्रथमने अपने हरिवंशपुराणके ५८वें सर्गमें श्रावकधर्मका वर्णन तत्त्वार्थसूत्रके सातवें अध्यायको सामने रखकर तदनुसार ही किया है। हाँ इसमें पापोंका स्वरूप पुरुषार्थ सिद्ध्युपायके समान बताकर अहिंसादि पाँचों अणुव्रतोंका स्वरूप कहा है। साथ ही रत्नकरण्ड श्रावकाचारके समान गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंका स्वरूप कहा है। भेद केवल इतना है कि तत्त्वार्थसूत्र-सम्मत ही गुणव्रत और शिक्षाव्रतके भेद कहे हैं। व्रतोंके अतीचार भी तत्त्वार्थसूत्र-सम्मत कहे हैं, परन्तु प्रत्येक अतीचारका स्वरूप भी संक्षेपसे दिया है। पाँचों अनर्थदण्डोंका स्वरूप रत्नकरण्डके समान कहा है। इन्होंने तत्त्वार्थसूत्रके समान आठ मूलगुणोंका कोई उल्लेख नहीं किया है। किन्तु भोगोपभोग-परिमाण शिक्षाव्रतमें मद्य, मांस, मधु, द्यूत, वेश्यासेवन और रात्रिभोजनके त्यागका विधान अवश्य किया है। पाँचों व्रतोंकी भावनाएँ भी तत्त्वार्थसूत्रके सदृश कही हैं और मैत्री आदि भावनाओंका भी वर्णन किया है।

परिचय और समय

आ० जिनसेनने अपना हरिवंशपुराण शक सं० ७०५ में लिखकर पूर्ण किया है, अतः इनका समय विक्रमकी आठवीं शताब्दीका मध्यभाग निश्चित है।

हरिवंशपुराण-गत उक्त श्रावकधर्मका वर्णन प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें परिशिष्टके अन्तर्गत दिया गया है।

९. महापुराण—आ० जिनसेन द्वितीय

आ० जिनसेनने अपने प्रसिद्ध महापुराणके भीतर ब्राह्मणोंकी सृष्टिका वर्णन और उनके क्रिया काण्डका विस्तृत निरूपण ३८, ३९ और ४० वें पर्वमें किया है। इन तीनों पर्वोंका संकलन इस श्रावकाचार-संग्रहके प्रथम भागमें किया गया है।

दिग्विजयसे लौटनेके पश्चात् उनके (सम्राट् भरत चक्रवर्तीके) हृदयमें यह विचार जाग्रत हुआ कि मेरी सम्पत्तिका सदुपयोग कैसे हो। मुनिजन तो गृहस्थोंसे धन लेते नहीं हैं। अतः गृहस्थोंकी परीक्षा करके जो व्रती सिद्ध हुए, उनका दानमानादिसे अभिनन्दन किया और उनके लिए इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तपका उपदेश दिया। इज्या नाम पूजाका है। उसके नित्यमह, महामह, चतुर्मुखमह और कल्पद्रुममह भेद बता कर उसकी विधि और अधिकारी बताये। विशुद्धवृत्तिसे कृषि आदिके द्वारा जीविकोपार्जन करना वार्ता है, पुनः दत्तिके चार भेदोंका उपदेश दिया। और स्वाध्याय, संयम एवं तपके द्वारा आत्मसंस्कारका उपदेश देकर उनकी द्विज या ब्राह्मण संज्ञा घोषितकर और ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) से चिन्हितकर उनके लिए विस्तारके साथ गर्भान्वयी दीक्षान्वयी और कर्त्रन्वयी क्रियाओंके करनेका जो उपदेश दिया, वही उक्त पर्वोंमें आ० जिनसेनने निबद्ध किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गर्भान्वयी क्रियाओंके ५३ भेदोंका विस्तृत वर्णन ३८ वें पर्वमें किया गया है। दीक्षान्वयी क्रियाओंका वर्णन ३९ वें पर्वमें किया गया है। व्रतोंका धारण करना दीक्षा है। यह व्रतोंका धारण अणुव्रत और महाव्रत रूपसे दो प्रकारका होता हैं। व्रत-धारण करनेके अभिमुख पुरुषकी क्रियाओं को दीक्षान्वयी क्रिया कहते हैं। इसके अवतार, वृत्तलाभ आदि आठ भेदोंका स्वरूप-निरूपणकर भरत सम्राट्ने इनका उद्देश्य कुलक्रमागत मिथ्यात्व छुड़ाकर सम्यक्त्वी और व्रती होना बताया। पुनः अतिनिकट भव्य पुरुषको प्राप्त होनेवाली कर्त्रन्वयी क्रियाओंका वर्णन किया। इनके अन्तर्गत सज्जातित्व, सद्-गृहित्व, पारिव्राज्य, सुरेन्द्रत्व, साम्राज्य, आर्हन्त्य और निर्वृत्ति (मुक्तिप्राप्ति) रूप सात परम स्थानोंका जो वर्णन चक्रवर्तीने किया उसे भी ३९ वें पर्वमें निबद्ध किया गया है।

सद्-गृहित्व क्रियाका वर्णन करते हुए यह आशंका की गई है कि कृषि आदि षट् कर्मोंसे आजीविका करनेवाले गृहस्थोंके हिंसा पापका दोष तो लगेगा ही। फिर उसकी शुद्धि कैसे होगी ? इसके उत्तरमें बताया गया कि पक्ष, चर्या और साधनके अनुष्ठानसे हिंसादि दोषोंकी शुद्धि होती है। सम्पूर्ण हिंसादि पापोंकी निवृत्तिका लक्ष्य रखना पक्ष कहलाता है। अहिंसादि व्रतोंका धारण करना चर्या है और जीवनके अन्तमें समाधिसे मरण करना अर्थात् संन्यास या सल्लेखनाको स्वीकार करना साधन है।

उपर्युक्त तीनों प्रकारकी क्रियाओंके जिन मंत्रोंका विधान आदि चक्रीने किया उनका वर्णन महापुराणके ४० वें पर्वमें निबद्ध किया गया है।

इस प्रकार बनाये गये ब्राह्मणका उपनयन संस्कार करते समय अणुव्रत, गुणव्रत और शीलादिसे संस्कार करनेका तथा व्रतावतरण क्रियाके समय मद्य, मांस, मधु और पंच उदुम्बरके त्यागका उपदेश दिया गया है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इस सारे ब्राह्मण सृष्टिके समय श्रावकके व्रतोंका किञ्चिन्मात्र भी स्वरूप-निरूपण आ० जिनसेनने इन तीनों पर्वोंमेंसे कहीं पर भी नहीं किया है। ये तीनों ही पर्व क्रियाकाण्ड और उनके मंत्रोंसे भरे हुए हैं।

आ० जिनसेनके सामने उक्त क्रियाकाण्डके वर्णनका क्या आधार रहा है ? इस आशंकाका समाधान उन्होंने औपासिकसूत्र,[1] श्रावकाध्याय-संग्रह, आदिका उल्लेखकर किया है[2]।

परिचय और समय

आ० जिनसेनने जयधवला टीकाको शक सं० ७५९ के फाल्गुन शुक्ल १० के दिन पूर्ण किया है और उसके पश्चात् महापुराणकी रचना की है। इससे महापुराणका रचनाकाल शक सं० ७६०-७७० के मध्य होना चाहिए। इस प्रकार इनका समय विक्रमकी नवीं शतीका उत्तरार्ध है।

आ० जिनसेन द्वितीयने महापुराणके अतिरिक्त कालिदासके प्रसिद्ध मेघदूत काव्यके पद्योंके पाद-पूर्तिके रूपमें 'पार्श्वाभ्युदय' नामक एक महाकाव्यकी भी रचना की है। तथा गुणधराचार्य-विरचित सिद्धान्त ग्रन्थ कसायपाहुडके ऊपर वीरसेनाचार्य-द्वारा रचित जयधवला-टीकाके शेष अंशको आपने ही पूर्ण किया है, जो कि ४० हजार श्लोक प्रमाण है और जिससे वे सिद्धान्त ग्रन्थोंके महान् वेत्ता सिद्ध होते हैं।

---

१. महापुराण पर्व ३८ श्लोक ३४। भा० १. पृ० ३०।

२. „ „ „ ५०। „ „ ३३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय—आ० अमृतचन्द्र

आचार्य कुन्दकुन्दके ग्रन्थोंके अमरटीकाकार श्री अमृतचन्द्रने पुरुषार्थसिद्धयुपायकी रचना की है। इसमें उन्होंने बताया है कि जब यह चिदात्मा पुरुष अचल चैतन्यको प्राप्त कर लेता है, तब वह परम पुरुषार्थरूप मोक्षकी सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। इस मुक्तिकी प्राप्तिका उपाय बतलाते हुए उन्होंने सर्वप्रथम सम्यग्दर्शनका साङ्गोपाङ्ग अपूर्व विवेचन किया है। पुनः सम्यग्ज्ञानकी अष्टाङ्ग-युक्त आराधनाका उपदेश दिया। तदनन्तर सम्यक्चारित्रकी व्याख्या करते हुए हिंसादि पापोंकी सम्पूर्णरूपसे निवृत्ति करनेवाले यति और एकदेश निवृत्ति करनेवाले उपासकका उल्लेख कर हिंसा और अहिंसाके स्वरूपका जैसा अपूर्व वर्णन किया है, वह इसके पूर्ववर्ती किसी भी ग्रन्थमें दृष्टिगोचर नहीं होता है। उन्होंने बताया है कि किस प्रकार एक मनुष्य हिंसा करे और अनेक मनुष्य उस हिंसाके फलको प्राप्त हों, अनेकजन हिंसा करें और एक व्यक्ति उस हिंसाका फ़ल भोगे। किसीकी अल्प हिंसा महाफलको देती है और किसीकी महाहिंसा अल्प फलको देती है इस प्रकार नाना विकल्पोंके द्वारा हिंसा-अहिंसाका विवेचन उपलब्ध जैन वाङ्मयमें अपनी समता नहीं रखता।

जो सम्पूर्ण हिंसाके त्यागमें असमर्थ हैं, उनके लिए एकदेश रूपसे उसके त्यागका उपदेश देते हुए सर्वप्रथम पाँच उदुम्बर और तीन मकारका परित्याग आवश्यक बताया और प्रबल युक्तियों से इनका सेवन करनेवालोंको महाहिंसक बताया और कहा कि इनका परित्याग करनेपर ही मनुष्य जैन धर्म धारण करनेका पात्र हो सकता है। 'धर्म, देवता या अतिथिके निमित्त की गई हिंसा हिंसा नहीं' इस मान्यताका अमृतचन्द्रने प्रबल युक्तियोंसे खंडन किया है। असत्य-भाषणादि शेष पापोंका मूल हिंसा ही है, अतः उसीके अन्तर्गत सर्व पापोंको घटाया गया है।

रात्रि भोजनमें द्रव्य और भावहिंसाका सयुक्तिक वर्णनकर अहिंसा व्रतीके लिए उसका त्याग आवश्यक बताकर गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंका सुन्दर वर्णनकर अन्तमें सभी व्रतोंके अतीचारोंका निरूपण किया है। पुनः 'समाधिमरण आत्मवध नहीं' इसका सयुक्तिक वर्णनकर मोक्षके कारणभूत १२ व्रतोंका, समता, वन्दनादि छह आवश्यकोंका, क्षमादि दशधर्मोंका, बाईस परीषहोंके सहनका उपदेश देकर कहा है कि जो व्यक्ति जितने अंशसे सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और सम्यक् चारित्री होता है, उसके उतने अंशसे कर्म-बन्धन नहीं होता है। किन्तु जितने अंशमें उसके रागका सद्भाव रहता है, उतने अंशसे उसके कर्म-बन्धन होता है।

अन्तमें कहा गया है कि उद्यमके साथ मुनि पदका अवलम्बन करके और समग्र रत्नत्रयको धारणकर यह चिदात्मा कृतकृत्य परमात्मा बन जाता है। इस प्रकार चारों पुरुषार्थोंमें प्रधान मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धिका इस ग्रन्थमें उपाय बताकर उसके नामकी सार्थकता सिद्ध की गई है।

श्वे० सम्प्रदायमें श्रावकधर्मका वर्णन करनेवाले दो ग्रन्थ प्रमुख हैं एक तो 'उपासकदशा सूत्र' जिसकी गणना ११ अंगोंमें की गई है, और जिसे गणधर-ग्रथित माना जाता है। और दूसरा ग्रन्थ है हरिभद्रसूरि-रचित 'सावयपण्णत्ती' या श्रावक प्रज्ञप्ति। इसकी स्वोपज्ञ संस्कृत विवृति भी है। उपासक दशाका वर्णन भ० महावीरके उपासकोंमें प्रधान आनन्द श्रावक आदिके व्रत-ग्रहण आदिके रूपमें है। किन्तु सावयपण्णत्तीमें श्रावकधर्मका क्रम-पूर्वक वर्णन है। जब हम पुरुषार्थ-सिद्धयुपायके विविध नय-गहन हिंसा-अहिंसाके विवेचनको सावयपण्णत्तीके हिंसा-अहिंसा-विषयक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णनके साथ मिलान करके देखते हैं, तब यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि पुरुषार्थसिद्ध्युपाय-के उक्त विवेचन पर सावयपण्णत्तीका स्पष्ट प्रभाव है। उक्त कथनकी पुष्टिमें अधिक उदाहरण न देकर केवल दो ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा। यथा—

(१) सावयपण्णत्ती—अण्णे उ दुहियसत्ता संसारं परिअटंती पावेण।
वावाएयव्वा खलु ते तक्खवणट्ठया बिंति ॥१३३॥

पुरुषार्थसि०—बहुदुःखा संज्ञपिता प्रयान्ति त्वचिरेण दुःखविच्छित्तिम्।
इतिवासना कृपाणीमादाय न दुःखिनोऽपि हन्तव्याः ॥८५॥

(२) सावयपण्णत्ती—सामाइयम्मि उ कए समणो —व सावओ हवइ जम्हा।
एएण कारणेणं वहुसा सामाइयं कुज्जा ॥२९९॥

पुरुषार्थसि०—रागद्वेषत्यागान्निखिलद्रव्येषु साम्यमवलम्ब्य।
तत्त्वोपलब्धिमूलं बहुशः सामायिकं कार्यम् ॥१४८॥

पाठक रेखाङ्कित पदोंसे स्वयं ही समताका अनुभव करेंगे।

सावयपण्णत्तीके रचयिता हरिभद्रसूरि बहुश्रुत, प्रखर प्रतिभाके धनी एवं अनेकों संस्कृत-प्राकृत प्रकरणोंके रचयिता हैं। और उनका समय बहुत ऊहापोहके पश्चात् भट्टाकलंकदेवके समकालिक इतिहासज्ञोंने निश्चित किया है। 'विक्रमार्कशकाब्दीव' इत्यादि श्लोकके आधार कुछ विद्वान् 'विक्रमार्क' पदके आधार पर अकलंकका समय विक्रम संवत् ७०० मानते हैं और कुछ विद्वान् 'शकाब्दीय' पदके आधार पर उनका समय शकसंवत् ७०० मानते हैं। जो भी समय अकलंक देवका माना जाय, उसीके आधार पर वे अमृतचन्द्रसे पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। अतः उनपर हरिभद्रकी सावयपण्णत्तीका प्रभाव होनेमें कोई असंगति नहीं है।

परिचय और समय

पुरुषार्थसिद्ध्युपायके अनेक श्लोक जयसेनाचार्य-रचित 'धर्मरत्नाकर'में ज्योंके त्यों पाये जाते हैं और जयसेनने उसे वि० सं० १०५५ में रचकर समाप्त किया है, इस आधार पर अमृत-चन्द्र उनसे पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। पट्टावलीमें अमृतचन्द्रके पट्टारोहणका समय वि० सं० ९६२ दिया है। इस प्रकार उनका समय विक्रमकी दशवीं शताब्दी निश्चित है।

(देखो–तोर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भा० पृ० ४०५)

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय यह आ० अमृतचन्द्रकी स्वतंत्र रचना है। इसके अतिरिक्त अभी हालमें 'लघुतत्त्वस्फोट' नामक अपूर्व ग्रन्थ और भी प्रकाशमें आया है। तत्त्वार्थसूत्रके आधार पर उसे पल्लवित करके तत्त्वसार रचा है। तथा आ० कुन्दकुन्दके महान् ग्रन्थ समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय पर गम्भीर टीकाएँ लिखी हैं, जिनका आज सर्वत्र स्वाध्याय प्रचलित है।

११. उपासकाध्ययन—सोमदेव

श्री सोमदेवसूरिने अपने प्रसिद्ध और महान् ग्रन्थ यशस्तिलकचम्पूके छठे, सातवें और आठवें आश्वासमें श्रावकधर्मका बहुत विस्तारसे वर्णन किया है और इसलिए उन्होंने स्वयं ही उन आश्वासोंका 'उपासकाध्ययन' नाम रखा है। पाँचवें आश्वासके अन्तमें उन्होंने कहा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इयता ग्रन्थेन मया प्रोक्तं चरितं यशोधरनृपस्य ।
इत उत्तरं तु वक्ष्ये श्रुतपठितमुपासकाध्ययनम् ॥

अर्थात्—यहाँ तकके ग्रन्थमें तो मैंने यशोधर राजाका चरित कहा। अब इससे आगे आगम-वर्णित उपासकाध्ययनको कहूँगा।

यद्यपि सोमदेवने यशोधर महाराजको लक्ष्य करके श्रावक-धर्मका वर्णन किया है, तथापि वह सभी भव्य पुरुषोंके निमित्त किया गया जानना चाहिए। इन्होंने धर्मका स्वरूप बताते हुए कहा कि जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्ति हो, वह धर्म है। गृहस्थका धर्म प्रवृत्तिरूप है और मुनिका धर्म निवृत्तिरूप होता है। पुनः सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्रको मोक्षका कारण बताकर उनका स्वरूप बतलाते हुए अन्य-मत-सम्मत मोक्षका स्वरूप बतलाते हुए प्रबल युक्तियोंसे उनका निरसन कर जैनाभिमत मोक्षका स्वरूप प्रतिष्ठित किया है। सोमदेवने आप्त आगम और पदार्थोंके त्रिमूढतादि दोषोंसे विमुक्त और अष्ट अंगोंसे संयुक्त श्रद्धानको सम्यक्त्व कहा। इस सन्दर्भमें आप्तके स्वरूपकी विस्तारके साथ मीमांसा करके आगम-वर्णित पदार्थोंकी परीक्षा की और मूढताओं-का उन्मथन करके सम्यक्त्वके आठ अंगोंका एक नवीन ही शैलीसे वर्णन कर प्रत्येक अंगमें प्रसिद्ध व्यक्तियोंका चरित्र चित्रण किया। प्रस्तुत संकलनमें उनका कथा भाग छोड़ दिया गया है। इस आश्वासके अन्तमें सम्यक्त्वके भेदों और दोषोंका वर्णन कर सम्यक्त्वकी महत्ता बतलायी और कहा कि सम्यक्त्वसे सुगति, ज्ञानसे कीर्त्ति, चारित्रसे पूजा और तीनोंसे मुक्ति प्राप्त होती है।

दूसरे आश्वासमें तीन मकार और पाँच उदुम्बर फलोंके त्यागको आठ मूलगुण बताते हुए कहा कि मांस-भक्षियोंमें दया नहीं होती, मद्य-पान करनेवालोंमें सत्य नहीं होता, तथा मधु और उदुम्बर-फलसेवियोंमें नृशंसताका अभाव नहीं होता। तदनन्तर श्रावकके १२ उत्तर गुणोंका नामोल्लेखकर पाँच अणुव्रतोंका स्वरूप और उनमें प्रसिद्ध पुरुषोंका वर्णन कर किया और कहा कि अहिंसाव्रतके रक्षार्थ रात्रि भोजन और अभक्ष्य वस्तु-भक्षणका त्याग आवश्यक है। इस प्रकरण-में उन्होंने यज्ञोंमें की जानेवाली पशु-बलिका कथानक देकर उसके दुष्परिणामको बताया। तत्पश्चात् तीनों गुणव्रतोंका निरूपण किया, जो अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी अपने आपमें पूर्ण और अपूर्व है।

तीसरे आश्वासमें चारों शिक्षाव्रतोंका वर्णन किया गया है। जिसमेंसे बहुभाग स्थान सामायिक शिक्षाव्रतके वर्णनने लिया है। सोमदेवने आप्तसेवा या देवसेवा सामायिक शिक्षाव्रत कहा है। अतएव उन्होंने इस प्रकरणमें स्नपन (अभिषेक),पूजन, स्तोत्र, जप, ध्यान, और श्रुतस्तव इन छह कर्त्तव्योंका करना आवश्यक बताकर उनका जैसा विस्तारसे वर्णन किया है, वैसा किसी श्रावकाचारमें नहीं मिलेगा।

यहाँ यह बात विचारणीय है कि जब समन्तभद्रने देवपूजाको चौथे वैयावृत्त्य शिक्षाव्रतके अन्तर्गत कहा है, तब सोमदेवने उसे सामायिक शिक्षा व्रतके अन्तर्गत क्यों कहा? आचार्य जिनसेनने इज्या (पूजा) के भेदोंका वर्णन करते हुए भी उसे किसी व्रतके अन्तर्गत न करके एक स्वतन्त्र कर्त्तव्यके रूपसे उसका प्रतिपादन किया है। देव-पूजाको वैयावृत्त्यके भीतर कहनेकी समन्तभद्रकी दृष्टि स्पष्ट है, वे उसे देव-वैयावृत्त्य मानकर तदनुसार उसका प्रतिपादन कर रहे हैं। पर सोमदेवके कथनके अन्तस्तलमें प्रवेश करनेपर ज्ञात होता है कि अन्य मतावलम्बियोंमें

४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रचलित त्रिसन्ध्या-पूजनका समन्वय करनेके लिए उन्होंने ऐसा किया है, क्योंकि सामायिकके त्रिकाल करनेका विधान सदासे प्रचलित रहा है। जैसा कि समन्तभद्र द्वारा सामायिक-प्रतिमाके वर्णनमें 'त्रिसन्ध्यमभिवन्दी' पद देनेसे स्पष्ट है।

पूजनके इस प्रकरणमें सोमदेवने उसकी दो विधियोंका वर्णन किया है—एक तदाकार मूर्त्तिपूजन विधि और दूसरी अतदाकार सांकल्पिक पूजन विधि। प्रथम विधिमें स्नपन और अष्ट-द्रव्यसे अर्चन प्रधान है और द्वितीय विधिमें आराध्यदेवकी आराधना, उपासना या भावपूजा प्रधान है। सामायिकका काल यतः तीनों सन्ध्याएँ हैं अतः उस समय गृहस्थ गृह-कार्योंसे निर्द्वन्द्व होकर अपने उपास्यदेवकी उपासना करे, यही उसकी सामायिक है। इस प्रकरणमें सोमदेवने त्रैकालिक सामायिककी भावना करते हुए कहा है—

> प्रातर्विधिस्तव पदाम्बुजपूजनेन मध्याह्नसन्निधिरयं मुनिमाननेन।
> सायन्तनोऽपि समयो मम देव यायान्नित्यं त्वदाचरणकीर्त्तनकामितेन॥

अर्थात्—हे देव, मेरा प्रातःकालका समय तेरे चरणारविन्दके पूजन-द्वारा, मध्याह्नकाल मुनिजनों-के सम्मान करनेसे और सायंकाल तेरे आचरणके कीर्त्तनसे व्यतीत होवे।

(देखो भा० १ पृ० १८५ श्लो० ५२९)

सोमदेवके इस कथनसे एक और नवीन बात पर प्रकाश पड़ता है, वह यह कि उनकी दृष्टिमें प्रातःकाल मौन-पूर्वक पूजनको, मध्याह्नमें भक्ति पूर्वक दिये गये मुक्तिदानको और सायंकाल किये गये स्तोत्र-पाठ, तत्त्व-चर्चा, आप्त-चरित चिन्तन आदिको गृहस्थकी त्रैकालिक सामायिक मान रहे हैं।

अन्तमें शेष शिक्षाव्रतोंका वर्णन और ११ प्रतिमाओंका दो श्लोकोंमें नामोल्लेख कर अपने कथनका उपसंहार किया है। सोमदेवने पाँचवीं प्रतिमाका 'अकृषि क्रिया' और आठवीं प्रतिमाका 'सचित्तत्याग' नाम दिया है। प्रचलित दि० परम्पराके अनुसार 'सचित्तत्याग पाँचवीं और कृषि आदि आरम्भोंका त्याग आठवीं प्रतिमा है' पर सोमदेवके तर्क-प्रधान चित्तको यह क्रम नहीं जँचा कि कोई व्यक्ति सचित्त भोजन और स्त्रीका परित्यागी होनेके पश्चात् भी कृषि आदि पापारम्भवाली क्रियाओंको कर सकता है ? अतः उन्होंने आरम्भ त्यागके स्थान पर सचित्त त्यागको और सचित्त-त्यागके स्थानपर आरम्भ-त्याग प्रतिमाको गिनाया। श्वे० आचार्य हरिभद्रने भी सचित्तत्यागको आठवीं प्रतिमा माना है। सोमदेवके पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी भी दि० आचार्य-द्वारा उनके इस मतकी पुष्टि नहीं दिखायी देती हैं।

सोमदेवसूरिने पूजनके प्रकरणमें गृहस्थोंके लिए कुछ ऐसे कार्य करनेको कहा है जिन पर कि ब्राह्मण धर्मका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। जैसे—बाहिरसे आनेपर आचमन किये बिना घरमें प्रवेश करनेका निषेध और भोजनकी शुद्धिके लिए होम और भूतबलिका विधान।

(देखो—भा० १ पृ० १७२ श्लोक ४३७ तथा ४४०)

स्मृति ग्रन्थोंमें भोजनसे पूर्व होम और भूतबलिका विधान पाया गया है। भोज्य अन्नको अग्निमें हवन करना होम कहलाता है। तथा भोजनसे पूर्व प्रथम ग्रासको देवतादिके उद्देश्यसे निकालना बलि है। इनको स्मृतिकारोंने वैश्वदेव कहा है। उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि वैश्व-देवको नहीं करके यदि ब्राह्मण भोजन करता है, तो वह मूढ पुरुष नरक जाता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुंक्ते ना यदि द्विजः। स मूढो नरकं याति' (स्मृतिचन्द्रिका पृ० २१३)

किन्तु स्वयं सोमदेवको उक्त विधान जैन परम्परामें नहीं होनेसे खटकता रहा। इसलिए उसके बाद ही वे लिखते हैं—

एतद्विधिर्न धर्माय नाधर्माय तदक्रियाः।
दर्भ-पुष्पाक्षतश्रोत्रवन्दनादिविधानवत् ॥४४१॥

अर्थात्—डाभ, पुष्प, अक्षत आदिके विधानके समान होम, भूतबलि आदि करनेसे न तो धर्म होता है और नहीं करनेसे न अधर्म ही होता है।

अन्तमें एक प्रकीर्णक-प्रकरण-द्वारा अनेक अनुक्त या दुरुक्त बातोंका स्पष्टीकरण कर सोमदेवने अपने उपासकाध्ययनको समाप्त किया है।

समय और परिचय

यशस्तिलकचम्पूकी अन्तिम प्रशस्तिके अनुसार सोमदेव देवसंघके आचार्य यशोदेवके प्रशिष्य और नेमिदेवके शिष्य थे। 'स्याद्वादाचलसिंह', 'तार्किक चक्रवर्ती' वादीभपंचानन, वाक्-कल्लोल-पयोनिधि और कविकुल राजकुंजर आदि उपाधियोंसे वे विभूषित थे। इनके यशस्तिलकके सिवाय नीतिवाक्यामृत नामके दो अन्य ग्रन्थ भी मुद्रित हो चुके हैं। नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि इन्होंने 'षण्णवतिप्रकरण', 'महेन्द्र-मातलि-संजल्प' और 'युक्तिचिन्तामणिस्तव' नामक ग्रन्थोंकी भी रचनाकी थी, पर अभी तक ये उपलब्ध नहीं हुए हैं।

सोमदेवने अपना यह उपासकाध्ययन शक सं० ८८१ में रचकर समाप्त किया है, तदनुसार इसका रचना-समय विक्रम सं० १०१६ है।

सोमदेवके द्वारा रचे गये उक्त यशस्तिलकचम्पूके सिवाय नीतिवाक्यामृत और अध्यात्म-तरङ्गिणी नामक दो ग्रन्थ और भी प्रकाशमें आ चुके हैं। इनके अतिरिक्त उनके द्वारा रचे गये 'युक्तिचिन्तामणिस्तव', 'त्रिवर्गमहेन्द्रमातलिसंजल्प', 'षण्णवतिप्रकरण' और 'स्याद्वादोपनिषद्' नामके ग्रन्थोंके भी उल्लेख मिलते हैं, जिनसे उनकी अपूर्व विद्वत्ताका पता चलता है। अकेला यशस्तिलक ही भारतीय संस्कृत-साहित्यमें अपूर्व ग्रन्थ है।

१२. अमितगतिश्रावकाचार—आचार्य अमितगति

आचार्य सोमदेवके पश्चात् संस्कृत साहित्यके प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य अमितगति हुए हैं। इन्होंने विभिन्न विषयोंपर अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। श्रावकधर्मपर भी एक स्वतन्त्र उपासका-ध्ययन बनाया है जो अमितगति-श्रावकाचार नामसे प्रसिद्ध है। इसमें १४ परिच्छेदोंके द्वारा श्रावक-धर्मका बहुत विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। प्रथम परिच्छेदमें धर्मका माहात्म्य, दूसरेमें मिथ्यात्वकी अहितकारिता और सम्यक्त्वकी हितकारिता, तीसरेमें सप्ततत्त्व, चौथेमें आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि और ईश्वर-सृष्टिकर्तृत्वका खंडन किया गया है। अन्तिम तीन परिच्छेदोंमें क्रमशः शील, द्वादश तप और बारह भावनाओंका वर्णन है। मध्यवर्ती परिच्छेदोंमें रात्रिभोजन, अनर्थदण्ड, अभक्ष्य भोजन, तीन शल्य, दान, पूजा और सामायिकादि षट् आवश्यकोंका वर्णन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह देखकर आश्चर्य होता है कि श्रावकके बारह व्रतोंका वर्णन एक ही परिच्छेदमें किया गया है और श्रावकधर्मके प्राणभूत ग्यारह प्रतिमाओंके वर्णनको तो एक स्वतन्त्र परिच्छेदकी भी आवश्यकता नहीं समझी गई है। मात्र ११ श्लोकोंमें बहुत ही साधारण ढंगसे उनका स्वरूप कहा गया है। स्वामी समन्तभद्रने भी एक-एक श्लोकके द्वारा ही एक-एक प्रतिमाका वर्णन किया है, पर वह सूत्रात्मक होते हुए भी बहुत विशद और गम्भीर है। प्रतिमाओंके नामोल्लेखनमात्र करनेका आरोप सोमदेवपर भी लागू है। इन्होंने प्रतिमाओंका वर्णन क्यों नहीं किया, यह बात विचारशणीय है।

अमितगतिने सप्त व्यसनोंका वर्णन यद्यपि ४६ श्लोकोंमें किया है, पर बहुत पीछे। यहाँ तक कि १२ व्रत, समाधिमरण और ११ प्रतिमाओंका वर्णन करनेके पश्चात् स्फुट विषयोंका वर्णन करते हुए। क्या अमितगति वसुनन्दिके समान सप्त व्यसनोंके त्यागको श्रावकका आदि कर्तव्य नहीं मानते थे?

अमितगतिने गुणव्रत और शिक्षाव्रतोंके नामोंमें उमास्वातिका और स्वरूप वर्णनमें सोमदेव-का अनुसरण किया है। पूजनके वर्णनमें देवसेनका अनुसरण करते हुए भी अनेक ज्ञातव्य बातें कही हैं। निदानके प्रशस्त-अप्रशस्त भेद, उपवासकी विविधता, आवश्यकोंमें स्थान, आसन, मुद्रा, काल आदिका वर्णन अमितगतिके श्रावकाचारकी विशेषता है। यदि संक्षेपमें कहा जाये तो पूर्ववर्ती श्रावकाचारोंका दोहन और उनमें नहीं कहे गये विषयोंका प्रतिपादन करना ही अमितगतिका लक्ष्य रहा है।

परिचय और समय

अमितगतिके प्रस्तुत श्रावकाचारके अतिरिक्त सुभाषितरत्नसन्दोह, धर्मपरीक्षा, सं० पंच संग्रह, आराधना, भावनाद्वात्रिंशिका ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। तथा इनके द्वारा रची गई चन्द्र-प्रज्ञप्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति और सार्धद्वयद्वीप प्रज्ञप्तिका भी उल्लेख मिलता है, पर अभी तक वे अप्राप्त हैं।

सुभाषितरत्नसंदोहकी रचना वि० सं० १०५० में और धर्मपरीक्षा वि० सं० १०७० में लिख-कर समाप्त की है। प्रस्तुत श्रावकाचारके अन्तमें रचनाकाल नहीं दिया है, तो भी उक्त आधारसे विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध उनका समय सिद्ध है।

१३. चारित्रसार-गत-श्रावकाचर—चामुण्डराय

श्रीचामुण्डरायने मुनि और श्रावकधर्मके प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थोंका दोहन करके गद्य रूपसे संस्कृतभाषामें चारित्रसार नामके ग्रन्थकी रचना की है। उनमेंसे श्रावकधर्म-प्रतिपादक पूर्वार्ध प्रस्तुत संग्रहके प्रथम भागमें संगृहीत है।

चारित्रसारमें ग्यारह प्रतिमाओंके आधारपर श्रावकधर्मका वर्णन किया गया है। दर्शन प्रतिमाका वर्णन करते हुए एक प्राचीन पद्य उद्धृत करके बताया गया है कि सम्यक्त्व संसार-सागर-में निर्वाण द्वीपको जानेवाले भव्य सार्थवाहके जहाजका कर्णधार है। इस प्रतिमाधारीको सप्त भयोंसे मुक्त और अष्ट अंगोंसे युक्त होना चाहिए।

व्रत प्रतिमावालेको पंच अणुव्रतोंके साथ रात्रिभोजन त्याग नामके छठे अणुव्रतको धारण करनेका विधान करते हुए अपने कथनकी पुष्टिमें एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है। अणुव्रतोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णनमें अतिचारोंकी व्याख्या भी की है। गुणव्रत और शिक्षाव्रतको शीलसप्तक कहा है। उनके नाम तत्त्वार्थसूत्रके अनुसार हैं। पांचों अनर्थ दण्डोंका वर्णन रत्नकरण्डकके आधारपर है।

बारह व्रतोंके वर्णनके पश्चात् कहा गया है कि हिंसादि पंच पापोंसे रहित पुरुषको द्यूत, मद्य और मांस-सेवनका अवश्य परिहार करना चाहिए। इन तीनोंके सेवन करके महा दुःख पानेवालोंके कथानक भी दिये गये हैं।

सामायिकादि शेष प्रतिमाओंका वर्णन रत्नकरण्डके ही समान है। केवल छठी प्रतिमाका वर्णन दिवा ब्रह्मचारीके रूपमें किया गया है। ग्यारहवीं प्रतिमाके भेद न करके उसे एक शाटकधर, भिक्षाभोगी पाणिपात्रसे बैठकर खानेका विधान किया गया है। उसे रात्रि प्रतिमादि विविध तपका धारक और आतापनादि योगसे रहित होना चाहिए।

उक्त ग्यारह प्रतिमाओंके आधारपर श्रावकधर्मका वर्णन करनेके पश्चात् महापुराणके अनुसार पक्ष, चर्या और साधनका वर्णन तथा सोमदेवके उपासकाध्ययनका श्लोक उद्धृतकर श्रावकके ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक इन चार आश्रमोंका वर्णनकर ब्रह्मचारीके उपनय, अवलम्ब, दीक्षा, गूढ और नैष्ठिकके रूपमें पाँच प्रकारोंका स्वरूप दिया गया है।

तदनन्तर महापुराणके अनुसार इज्या, वार्ता आदि षट् कर्तव्योंका वर्णनकर जिनरूपधारी भिक्षुओंके अनगार, यति, मुनि और ऋषि ये चार भेद बताकर उनके स्वरूपको भी कहा गया है। अन्तमें मारणान्तिकी सल्लेखनाका वर्णन किया गया है।

परिचय और समय

चामुण्डराय महाराज मारसिंह राजमल्ल द्वितीयके प्रधान मंत्री थे। इन्होंने अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्तकर 'वीरमार्तण्ड, रणरङ्गसिंह, समर धुरन्धर और वैरिकुल कालदण्ड' आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त की थीं। श्री अजितसेन और नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीसे आगम और सिद्धान्त ग्रन्थोंका अध्ययन करके जो धार्मिक आचरण किया था उसके फलस्वरूप इन्हें 'सम्यक्त्वरत्नाकर', शौचाभरण और सत्ययुधिष्ठिर' जैसी उपाधियोंसे अलंकृत किया गया था। इनकी कनड़ी मातृभाषा थी और उसमें उन्होंने 'त्रिषष्टिपुराण' रचा तथा संस्कृत भाषाके पारंगत विद्वान् थे, इसमें गद्य रूपसे श्रावक और मुनिधर्मके साररूप चारित्रसार लिखा।

चामुण्डरायने अपने उक्त पुराणको शक सं० ९०० में पूर्ण किया और श्रवणबेलगोलामें बाहुबलीकी संसार-प्रसिद्ध मूर्तिकी प्रतिष्ठा उसके तीन वर्ष बाद की। अतः इनका समय विक्रमकी दशवीं शतीका पूर्वार्ध निश्चित है।

१४. वसुनन्दि श्रावकचार—आचार्य वसुनन्दि

आचार्य वसुनन्दि आचारधर्म और सिद्धान्त ग्रन्थोंके महान् विद्वान् थे। इन्होंने मुनिधर्मप्रतिपादक मूलाधारकी संस्कृत टीका रची और श्रावकधर्मका निरूपण करनेके लिए श्रावकाचार रचा। जो कि प्रस्तुत संग्रहके प्रथम भागमें संकलित है।

आचार्य वसुनन्दिने ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर श्रावकधर्मका वर्णन किया है। उन्होंने सर्वप्रथम दार्शनिक श्रावकको सप्त व्यसनोंका त्याग आवश्यक बताकर व्यसनोंके दुष्फल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का विस्तारसे वर्णन किया। बारह व्रतों और ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन गणधर-ग्रथित माने जाने-वाले श्रावक-प्रतिक्रमणसूत्रके अनुसार किया गया है और उसकी गाथाओंका ज्यों-का-त्यों अपने श्रावकाचारमें संग्रह कर लिया है। उनकी विगत इस प्रकार है—

	श्रावक-प्रतिक्रमणसूत्र-गाथाङ्क				वसुनन्दि श्रावकाचार-गाथाङ्क		
१	दर्शन प्रतिमा	,,	,,	१	,,	,,	५७, २०५
२	व्रत प्रतिमा	,,	,,	२	,,	,,	२०७
३	सामायिक	,,	,,	३	,,	,,	२७५
४	प्रोषध	,,	,,	४	,,	,,	२८०
५	सचित्त त्याग	,,	,,	५	,,	,,	२९५
६	रात्रि भक्त	,,	,,	६	,,	,,	२९६
७	ब्रह्मचर्य	,,	,,	७	,,	,,	२९७
८	आरम्भव्यता	,,	,,	८	,,	,,	२९८
९	परिग्रह त्याग	,,	,,	९	,,	,,	२९९
१०	अनुमति त्याग	,,	,,	१०	,,	,,	३००
११	उद्दिष्ट त्याग	,,	,,	११	,,	,,	३०१

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आचार्य वसुनन्दिने श्रावक-प्रतिक्रमणसूत्रकी, ग्यारहवीं गाथा छोड़ दी है, जो कि इस प्रकार है—

णवकोडीसु विसुद्धं भिक्खायरणेण भुंजदे भुञ्जं।
जायणरहियं जोग्गं एयारस सावओ सो दु॥

अर्थात्—जो भिक्षावृत्तिसे याचना-रहित और नौ कोटिसे विशुद्ध योग्य भोजनको करता है, वह ग्यारहवीं प्रतिमाधारक श्रावक हैं।

इस गाथाको क्यों छोड़ दिया? इसका उत्तर यह है कि उन्हें इस प्रतिमाधारीके दो भेद बतलाना अभीष्ट था और उक्त गाथामें दो भेदोंका कोई संकेत नहीं है।

इस श्रावकाचारमें जिन-पूजन और जिन-बिम्ब-प्रतिष्ठाका विस्तारसे वर्णन किया गया है और धनियाँके पत्ते बराबर जिनभवन बनवाकर सरसोंके बराबर प्रतिमा-स्थापनका महान् फल बताया गया है। इस कथनको परवर्ती अनेक श्रावकाचार-रचयिताओंने अपनाया है। भाव पूजनके अन्तर्गत पिण्डस्थ आदि ध्यानोंका भी विस्तृत वर्णन किया गया है। अष्ट द्रव्योंसे पूजन करनेके फलके साथ ही छत्र, चमर और घण्टा-दानका भी फल बताया गया है। विनय और वैयावृत्य तप-का भी यथास्थान वर्णनकर श्रावकोंको उनके करनेकी प्रेरणा की गई है।

परिचय और समय

आचार्य वसुनन्दिने प्रतिष्ठा संग्रहकी रचना और मूलाचारकी टीका संस्कृतमें की, तथा प्रस्तुत श्रावकाचारको प्राकृतिक भाषामें रचा है, उससे सिद्ध है कि ये दोनों ही भाषाओंके विद्वान् थे। वसुनन्दि ने अपने श्रावकाचारके अन्तमें जो प्रशस्ति दी है उसके अनुसार उनके दादा गुरुने 'सुदंसणचरिउ' की रचना वि० सं० ११०० में पूर्ण की है। उन्होंने जिन शब्दोंमें अपने दादा गुरुका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशंसापूर्वक उल्लेख किया है उससे यह ध्वनित होता है कि वे उनके सामने विद्यमान रहे हैं। अतः विक्रमकी बारहवीं शतीका पूर्वार्ध उसका समय जानना चाहिए।

१५. सावयधम्मदोहा—देवसेन वा लक्ष्मीचन्द्र (?)

अपभ्रंश भाषामें रचित दोहात्मक इस ग्रन्थमें श्रावकधर्मका वर्णन संक्षेपमें सरल शब्दोंके द्वारा किया गया है। प्रारम्भमें मनुष्यभवकी दुर्लभता बताकर वीतराग देव, उनके द्वारा प्रतिपादित शास्त्र और निर्ग्रन्थ गुरुके श्रद्धानका उपदेश देकर ग्यारह प्रतिमारूप श्रावकधर्मका निर्देश किया गया है। प्रथम प्रतिमाधारीको पंच उदुम्बर और सप्तव्यसनके त्यागके साथ निर्दोष सम्यक्त्वका पालना आवश्यक है। इस प्रकारसे एक-एक दोहेमें ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन वसुनन्दिके समान ही किया गया है और उन्हींके समान ग्यारहवीं प्रतिमाका वर्णन दोनों भेदोंके साथ किया है।

तत्पश्चात् पाँच उदुम्बरफल और तीनों मकारोंके त्यागरूप आठ मूलगुणका वर्णन, अगालित जल-पानका निषेध, चर्मस्थित घृत-तेलादिका परिहार, पात्र-कुपात्रादिको दान देनेका फल, उपवासका माहात्म्य, इन्द्रिय-विषयों एवं कषायोंके जीतनेका उपदेश, चारों गतियोंके कर्म-बन्धोंका निरूपण और धर्म-धारण करनेका सुफल बताकर जिनेन्द्रदेवके अभिषेक-पूजन करनेकी प्रेरणा की गई है।

अन्तमें जिनालय, जिन-बिम्ब-निर्माणका उपदेश देकर जिन-मन्दिरमें तीन लोकके चित्र आदि लिखानेका फल बताकर 'अर्हं' आदि मंत्रोंके जाप-ध्यानकी प्रेरणाकर ग्रन्थ पूरा किया गया है। संक्षेपमें कहा जाय तो सरल शब्दोंमें वर्तमान कालके अनुरूप श्रावकधर्मका वर्णन कर 'सावय-धम्मदोहा' इस नामको सार्थक किया गया है। परवर्ती अनेक श्रावकाचारोंमें इसके अनेक दोहे उद्धृत किये गये हैं।

अभी तक इसके रचयिताका निर्णय नहीं हो सका है। दोहाङ्क २२४ के पश्चात् 'कारंजा' भण्डारकी एक प्रतिमें निम्न-लिखित एक दोहा अधिक पाया जाता है—

इय दोहा बद्ध वयधम्मं देवसेणें उवदिट्ठु।
लहु अक्खर मत्ताहीणयो पय सयण खमंतु॥

अर्थात्—इस प्रकार देवसेनने इस दोहा बद्ध श्रावकधर्मके व्रतोंका उपदेश दिया। इसमें लघु अक्षर और मात्रासे हीन जो पद हों उन्हें सज्जन क्षमा करें।

अनेक प्रतियोंके अन्तमें इसे श्री लक्ष्मीचन्द्र-रचित होनेका भी उल्लेख मिलता है।

यथा—पाटोदी जैनमन्दिर जयपुरकी प्रति जो वि० सं० १५५५ के कार्त्तिक सुदि १५ सोमवार-की लिखी है, तथा ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन ब्यावरकी प्रति जो वि० सं० १६०९ के चैत्रवदि ९ रविवारकी लिखी है इन दोनोंमें स्पष्टरूपसे 'इति श्रावकाचार दोहकं लक्ष्मीचन्द्रकृतं समाप्तम्' लिखा है। भाण्डारकर रि० इं० पूनाकी एक प्रति जो वि० सं० १५९९ की लिखी है उसके अन्तमें लिखा है—'इति उपासकाचारे आचार्य लक्ष्मीचन्द्र विरचिते दोहकसूत्राणि समाप्तानि'।

किसी किसी प्रतिमें इसका कर्ता जोइन्दु या योगीन्द्र भी लिखा मिलता है। भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूनाकी एक सटीक प्रतिमें लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'मूलं योगीन्द्रदेवस्य लक्ष्मीचन्द्रस्य पञ्जिका'

अर्थात् मूलग्रन्थ योगीन्द्र देवका और पंजिका लक्ष्मीचन्द्रकी है। यदि 'योगीन्द्र' पदको देवका विशेषण माना जावे तो इसे देवसेन-रचित माना जा सकता है, क्योंकि देवसेन-रचित भावसंग्रहकी अनेक गाथाओंका और इसके अनेक दोहोंका परस्पर बहुत सादृश्य पाया जाता है। देवसेनने अपना दर्शनसार वि० सं० ९९० में बनाकर समाप्त किया है। अतः उनका समय विक्रमकी दशवीं शताब्दी निश्चित है।

१६. सागारधर्मामृत—पं० आशाधर

पण्डित-प्रवर आशाधरजीने अपनेसे पूर्ववर्ती समस्त दि० और श्वे० श्रावकाचार रूप समुद्रका मन्थन कर अपने 'सागारधर्मामृत' की रचना की है। किसी भी पूर्ववर्ती आचार्य-द्वारा वर्णित कोई भी श्रावकका कर्तव्य इनके वर्णनसे छूटने नहीं पाया है। आपने श्रावकधर्मके प्रतिपादन करनेवाले तीनों प्रकारोंका एक साथ वर्णन करते हुए उनके निर्वाहका सफल प्रयास किया है। आपने सोमदेवके उपासकाध्ययन और नीतिवाक्यामृतका, तथा हरिभद्रसूरिकी श्रावक प्रज्ञप्तिका भरपूर उपयोग किया है। व्रतोंके समस्त अतीचारोंकी व्याख्या पर श्वे० आचार्योंकी व्याख्याका प्रभाव ही नहीं, बल्कि शब्दशः समानता भी है। उक्त कथनकी पुष्टिके लिए एक उद्धरण यहाँ दिया जाता है—

श्वे० उपासकदशासूत्र—थूलगमुसावायवेरमणं पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—कण्णालियं
गोवालियं भोमालियं णासावहारो कूडसक्खेसंधिकरणे।

इस सूत्रको हरिभद्रसूरिने इस प्रकारसे गाथाबद्ध किया है—

श्वे० सावयपण्णत्ती—थूलमुसावायस्स उ विरई दुच्चं स पंचहा होई।
कन्ना-गो-भुआलिय-नासहरण-कूडसक्खिज्जे ॥२६०॥

सागारधर्मामृत—कन्या-गो-क्ष्मालीक-कूटसाक्ष्य-न्यासापलापवत्।
स्यात् सत्याणुव्रती सत्यमपि स्वान्यापदे त्यजन् ॥ अ० ४ श्लो० ४० ॥

हरिभद्रसूरिकी श्रावकप्रज्ञप्तिके उत्तरार्धको सागारधर्मामृतके श्लोकके पूर्वार्धमें लिया गया है और चतुर्थ चरणमें रत्नकरण्डकके श्लोक ५५ के द्वितीय चरणको अपनाया गया है।

उक्त सावयपण्णत्तीपर हरिभद्रसूरिने स्वोपज्ञ संस्कृत टीका भी लिखी है, उसमें व्रतोंके अतीचारोंकी जैसी व्याख्या की गई है, और परवर्ती श्वे० हेमचन्द्र आदिने अतीचारोंका जिस रूपसे वर्णन किया है, उसे आशाधरजीने ज्यों का त्यों अपना लिया है। इसके लिए अचौर्य और ब्रह्मचर्य अणुव्रतके अतीचारोंकी व्याख्या खास कर अवलोकनीय है।

सप्त व्यसनोंके एवं अष्टमूलगुणोंके अतीचारोंका वर्णन सागारधर्मामृतके पूर्ववर्ती किसी भी श्रावकाचारमें नहीं पाया जाता। श्रावककी दिनचर्या और साधककी सल्लेखनाका वर्णन भी बहुत सुन्दर किया गया है। सागारधर्मामृत यथार्थमें श्रावकोंके लिए धर्मरूप अमृत ही है।

पं० आशाधरजीने सटीक सागारधर्मामृतके अतिरिक्त १. सटीक अनगारधर्मामृत, २. ज्ञान दीपिका पंजिका, ३. अध्यात्मरहस्य, ४. मूलाराधनाटीका, ५. इष्टोपदेशटीका, ६. भूपालचतुर्विंशति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तोत्र टीका, ७. आराधनासार टीका, ८. अमरकोष टीका, ९. काव्यालंकार टीका, १०. सटीक सहस्रनामस्तवन, ११. सटीक जिनयज्ञकल्प, १२. क्रियाकलाप, १३. राजमतीविप्रलम्भ, १४. त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र, १५. नित्यमहोद्योत, १६. रत्नत्रयविधान, १७. अष्टाङ्गहृदयोद्योतिनी टीका, १८. प्रमेयरत्नाकर और १९. भरतेश्वराभ्युदय काव्य।

इस प्रकार पं० आशाधरजीने विशाल परिमाणमें धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, वैद्यक, अध्यात्म, पूजन-विधान एवं काव्य-साहित्यका सर्जन किया है। उनकी उक्त रचनाओंसे उनके महान् पाण्डित्य-का परिचय मिलता है। उक्त ग्रन्थोंमेंसे प्रमेयरत्नाकर, भरतेश्वराभ्युदय आदि रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं, जिनका अन्वेषण आवश्यक है।

पं० आशाधरजीने अनगारधर्मामृतकी प्रशस्तिमें उक्त ग्रन्थोंके रचे जानेकी सूचना दी है और उसकी स्वोपज्ञ टीका वि० सं १३०० में रचकर पूर्ण की है। संभवतः उनकी यही अन्तिम रचना है। अन्य रचनाएँ वि० सं० १२६१ से लेकर वि० सं० १३०० के मध्यमें हुई हैं। अतः उनका समय तेरहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध निश्चित रूपसे जानना चाहिए।

१७. धर्मसंग्रह श्रावकाचार—पं० मेधावी

अपने पूर्ववर्ती समन्तभद्र, वसुनन्दि और आशाधरके श्रावकाचारोंका आश्रय लेकर पं० मेधावीने अपने धर्मसंग्रह श्रावकाचारकी रचना की है, ऐसा उन्होंने प्रशस्तिके श्लोक २३ में स्वयं उल्लेख किया है। पर यथार्थमें आशाधरके सागारधर्मामृतके प्रत्येक श्लोकके कुछ शब्द बदलकर पूर्ण-रूपसे अनुकरण किया है। हाँ कहीं-कहीं स्थान-परिवर्तन अवश्य किया गया है। यथा—

(१) सागार० अ० २—धर्मसन्ततिमक्लिष्टां रतिं वृत्तकुलोन्नतिम्।
देवादिसत्कृतिं चेच्छन् सत्कन्यां यत्नतो वहेत्॥ ६०॥

धर्मसं० श्रा० अ० ६—कुलवृत्तोन्नतिं धर्मसन्ततिं स्वेच्छया रतिम्।
देवादीष्टिं च वाञ्छन् सत्कन्यां यत्नात्सदा वहेत्॥ २०५॥

(२) सागार ध० अ० २—सुकलत्रं विना पात्रे भूहेमादिव्ययो वृथा।
कीटैर्दंदश्यमानेऽन्तः कोऽम्बुसेकाद् द्रुमे गुणः॥ ६१॥

धर्मसं० श्रा० अ० ६—धर्मपत्नीं विना पात्रे दानं हेमादिकं मुधा।
कीटैर्बोभुज्यमानेऽन्तः कोऽम्भः सेकाद् गुणो द्रुमे॥ २०६॥

उक्त दोनों उद्धृत श्लोकोंके अर्थमें कोई अन्तर नहीं है, केवल शब्द-परिवर्तन एवं स्थान परिवर्तन ही किया गया है। इसी प्रकार दोनों ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेवाले संस्कृतपाठी पाठक सागारधर्मामृतका अनुसरण सर्वत्र देखेंगे।

प्रस्तुत श्रावकाचारका प्रारम्भ कथा-ग्रन्थोंके समान मगधदेश तथा श्रेणिक नरेशके वर्णनसे किया गया है और इसी वर्णनमें प्रथम अधिकार समाप्त हुआ है। दूसरे अधिकारमें वनपाल-द्वारा भ० महावीरके विपुलाचल पर पधारनेकी सूचना मिलने पर राजा श्रेणिकका भगवान्‌की वन्दनाको जानेका और समवशरणका विस्तृत वर्णन है। तीसरे अधिकारमें श्रेणिकका भगवान्‌की वन्दना-स्तुति करके मनुष्योंके कोठेमें बैठना और उपदेश सुनकर व्रत-नियमादिके विषयमें पूछने पर गौतम गणधर-द्वारा धर्मका उपदेश प्रारम्भ किया गया है। अतएव इस प्रस्तुत संग्रहमें उक्त तीन अधिकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपयोगी न होनेसे नहीं दिये गये हैं और चौथे अधिकारको प्रथम मानकर आगेके सब अधिकार दिये गये हैं। ग्रन्थकी प्रशस्ति बहुत विस्तृत होनेसे इस भागके परिशिष्टमें दी गई है।

यद्यपि इस श्रावकाचारका प्रारम्भ गौतम गणधरसे कराया गया है, तो भी पं० मेधावी उसका अन्त तक निर्वाह नहीं कर सके हैं', यह बात बीच-बीचमें दिये गये 'यथोक्तं पूर्वसूरिभिः' (अ० ४ श्लो० ७३) 'आशाधरोदित' (अ० ४ श्लो० १३१) 'एतद्ग्रन्थानुसारेण' (अ० ५ श्लो० ४) आदि वाक्योंसे सिद्ध है।

इसके प्रथम अधिकारमें सम्यक्त्व और उसके महत्त्वका वर्णन है। दूसरे अधिकारमें प्रथम दर्शन प्रतिमाका वर्णन और अष्टमूल गुणोंका निरूपण तथा काक-मांस-त्यागी खदिरसारका कथानक है। तीसरेमें पंच अणुव्रतोंका, चौथेमें गुणव्रत और शिक्षाव्रतोंका वर्णन कर आशाधर-प्रतिपादित दिनचर्याका निर्देश किया गया है।

पाँचवें अधिकारमें सामायिक प्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमाका वर्णन है। छठे अधिकारमें अणुव्रतोंके रक्षणार्थ समितियोंका, चार आश्रमोंका इज्या, वार्तादि षट्कर्मोंका, पूजनके नाम-स्थानादि छहप्रकारोंका और दत्ति आदिका विस्तृत वर्णन है। सातवें अधिकारमें सल्लेखनाका वर्णन है।

सूतक-पातकका वर्णन सर्वप्रथम इसीमें मिलता है।

अन्तिम प्रशस्तिमें पंच परमेष्ठीका स्तवन और शान्ति-मंगल-पाठ बहुत सुन्दर एवं नित्य पठनीय हैं।

प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि ये अग्रवाल जातिके से उद्धरण और उनकी पत्नी भीषुहीके पुत्र तथा श्रीजिनचन्द्रसूरिके शिष्य थे। पं० मेधावीने इस श्रावकाचारका प्रारम्भ हिसारमें किया और समापन नागपुर (नागौर राजस्थान) में वि० सं० १५४१ की कार्त्तिककृष्णा १३ के दिन किया। अतः विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीका पूर्वार्ध इनका समय जानना चाहिए।

इन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थके सिवाय किसी अन्य ग्रन्थकी रचना की, यह इनकी प्रशस्तिसे ज्ञात नहीं होता है।

१८. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार—श्री सकलकीर्त्ति

आचार्य सकलकीर्त्ति संस्कृत भाषाके प्रौढ विद्वान् थे। इनके द्वारा संस्कृतमें रचित २९ ग्रन्थ और राजस्थानीमें रचित ८ ग्रन्थ उपलब्ध हैं। मूलाचार प्रदीपमें मुनिधर्मका और प्रस्तुत श्रावकाचारमें श्रावक धर्मका विस्तारसे वर्णन किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि ये आचार शास्त्रके महान् विद्वान् थे। सिद्धान्तसारदीपक, तत्त्वार्थसारदीपक, कर्मविपाक और आगमसार आदि करणानुयोग और द्रव्यानुयोगके ग्रन्थ हैं। शान्तिनाथ, मल्लिनाथ और वर्धमानचरित आदि प्रथमानुयोगके ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त पचपरमेष्ठिपूजा, गणधर वलयपूजा आदि अनेक पूजाएँ और समाधिमरणोत्साहदीपक आदिकी रचनाओंको करके इन्होंने अपनी बहुश्रुतज्ञताका परिचय दिया है।

प्रस्तुत श्रावकाचार संग्रहके द्वितीय भागमें इनका प्रश्नोत्तर श्रावकाचार संकलित है। इसकी श्लोक संख्या २८८० है और यह सभी श्रावकाचारोंसे बड़ा है। शिष्यके प्रश्न करनेपर उत्तर देनेके रूपमें इसकी रचना की गई है। इसके २४ परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेदमें धर्मकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्ता, दूसरेमें सम्यग्दर्शन और उसके विषयभूत सप्त तत्त्वोंका एवं पुण्य-पापका विस्तृत वर्णन, तीसरेमें सत्यार्थ देव, गुरु, धर्म और कुदेव, कुगुरु, कुधर्मका विस्तृत वर्णन है। चौथे परिच्छेदसे लेकर दशवें परिच्छेद सम्यक्त्वके आठों अंगोंमें प्रसिद्ध पुरुषोंके कथानक दिये गये हैं। ग्यारहवें परिच्छेदमें सम्यक्त्वकी महिमाका वर्णन है। तेरहवें परिच्छेदमें अष्टमूलगुण, सप्तव्यसन, हिंसाके दोषों और अहिंसाके गुणोंका वर्णनकर अहिंसाणुव्रतमें प्रसिद्ध मातंगका और हिंसा-पापमें प्रसिद्ध धनश्रीका कथानक दिया गया है। इसी प्रकार तेरहवें परिच्छेदसे लेकर सोलहवें परिच्छेदतक सत्यादि चारों अणुव्रतोंका वर्णन और उनमें प्रसिद्ध पुरुषों के तथा असत्यादि पापोंमें प्रसिद्ध पुरुषों-के कथानक दिये गये हैं। सत्तरहवें परिच्छेदमें तीनों गुणव्रतोंका वर्णन है। अठारहवें परिच्छेदमें देशावकाशिक और सामायिक शिक्षाव्रतका तथा उसके ३२ दोषोंका विस्तृत विवेचन है। उन्नीसवें परिच्छेदमें प्रोषधोपवासका और बीसवें परिच्छेदमें अतिथिसंविभागका विस्तारसे वर्णन किया गया है। इक्कीसवें परिच्छेदमें चारों दानोंमें प्रसिद्ध व्यक्तियोंके कथानक हैं। बाईसवें परिच्छेदमें समाधि-मरणका विस्तृत निरूपणकर तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी प्रतिमाका स्वरूप बताकर रात्रि भोजनके दोषोंका वर्णन किया गया है। तेसईवें परिच्छेदमें सातवीं, आठवीं और नवमी प्रतिमाका स्वरूप वर्णन है। चौबीसवें परिच्छेदमें दशवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाका वर्णन करके अन्तमें छह आवश्यकोंका निरूपण किया गया है।

परिचय और समय

'सकलकीर्त्ति रासके अनुसार इनका जन्म वि० सं० १४४३ में हुआ था। इनके पिताका नाम कर्मसिंह और माताका नाम शोभा था। ये हूमड़ जातिके थे और अणहिल्लपट्टणके रहनेवाले थे। इनका गृहस्थावस्थाका नाम पूर्नसिंह या पूर्णसिंह था।

जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १३ में प्रकाशित एक ऐतिहासिक पत्रके अनुसार सकलकीर्त्ति २६ वर्षकी अवस्थातक घरमें रहे। तत्पश्चात् संयम धारणकर ८ वर्षतक गुरुके पास सर्व शास्त्रोंको पढ़ा। वि० सं० १४९९ में आपका समाधिमरण हुआ। इस प्रकार उन्होंने ३४ वर्षकी अवस्थाके पश्चात् जीवनके अन्तिम समयतक ग्रन्थ-रचना की और अनेक स्थानोंपर मूर्त्ति प्रतिष्ठाएँ कीं।

सकलकीर्त्तिने प्रत्येक श्रावकको अपने घरमें जिनबिम्बको स्थापित करनेका उपदेश देते हुए यहाँतक लिखा है—

यस्य गेहे जिनेन्द्रस्य बिम्बं न स्याच्छुभप्रदम्।
पक्षिगृहसमं तस्य गेहं स्याददतिपापदम्॥

अर्थात्—जिसके घरमें शुभ-फल-दायक जिनेन्द्रका बिम्ब नहीं है, उसका घर पक्षियोंके घोंसलेके समान और पाप-दायक है। (अ० २ श्लो० १८५)

उक्त पत्रसे इनका समय विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दी निश्चित है।

१९. गुणभूषण श्रावकाचार—श्री गुणभूषण

गुणभूषण-रचित श्रावकाचारका संकलन प्रस्तुत संग्रहके दूसरे भागमें किया गया है। इसके प्रथम उद्देशमें मनुष्यभव और सद्धर्मकी प्राप्ति दुर्लभ बताकर सम्यग्दर्शन धारण करनेका उपदेश दिया गया है, तथा सम्यक्त्वके अंगों और भेदोंका और उसकी महिमाका वर्णन किया गया है। दूसरे उद्देशमें सम्यग्ज्ञानका स्वरूप बताकर मतिज्ञान आदि पाँचों ज्ञानोंका वर्णन किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीसरे उद्देशमें चारित्रका स्वरूप बताकर विकल चारित्रका वर्णन ग्यारह प्रतिमाओंको आश्रय करके किया गया है। इसीके अन्तमें विनय, वैयावृत्य, पूजन और ध्यानके प्रकारोंका भी वर्णन है।

सप्ततत्त्वोंका, श्रावकके १२ व्रतोंका, ११ प्रतिमाओंका, विनय, वैयावृत्त्य, पूजनके भेद और पिण्डस्थ आदि ध्यानोंका वर्णन वसुनन्दि-श्रावकाचारकी गाथाओंके संस्कृत छायानुवादके रूपमें श्लोकों द्वारा किया गया है, यह प्रथम भागके टिप्पणोंमें दिये गये गुणभूषण श्रावकाचारके श्लोकोंसे सिद्ध है।

कहीं-कहीं आशाधरके सागारधर्मामृतका भी अनुसरण स्पष्ट दिखता है। यथा—

(१) सागारध० अ० ३—सन्धातकं त्यजेत्सर्वं दधि-तक्रं द्व्यहोषितम्।
कान्जिकं पुष्पितमपि मद्यव्रतमलोऽन्यथा ॥ ११ ॥

गुण० श्राव० उ० ३—कान्जिकं पुष्पितमपि दधितक्रं द्व्यहोषितम्।
सन्धातकं नवनीतं त्यजेन्नित्यं मधुव्रती ॥ १८ ॥

(२) सागारध० अ० ३—चर्मस्थमम्भः स्नेहश्च हिंग्वसंहृतचर्म च।
सर्वं च भोज्यं व्यापन्नं दोषः स्यादामिषव्रते ॥ १२ ॥

गुणभू० श्राव० उ० ३—विशोध्याद्यात् फलसिम्बि द्विदलमुम्बरव्रतम्।
त्यजेत्स्नेहाम्बु चर्मस्थं व्यापन्नान्नं फलव्रती ॥ १७ ॥

(श्रावकाचार-संग्रह भाग २)

इस प्रकारसे पूर्व-रचित श्रावकाचारोंका अनुकरण करते हुए भी इसकी यह विशेषता है कि अपनी नवीन प्रत्येक बातको संक्षेपमें सुन्दर ढंगसे कहा गया है।

इस श्रावकाचारके प्रत्येक उद्देशके अन्तमें जो पुष्पिका दी गई है, उससे ज्ञात होता है कि गुणभूषणने अपने इस श्रावकाचारका नाम 'भव्यजन-चित्तवल्लभ श्रावकाचार' रखा है और इसे साधु (साहु) नेमिदेवके नामसे अङ्कित किया है।

परिचय और समय

इस श्रावकाचारके अन्तमें जो प्रशस्ति दी गई है, उससे ज्ञात होता है कि मूलसंघमें विनयचन्द्र मुनि हुए, उनके शिष्य त्रैलोक्यकीर्त्ति मुनि हुए और उनके शिष्य गुणभूषणने पुरपाट-वंशज सेठ कामदेवके पौत्र और जोमनके पुत्र नेमिदेवके लिए उसके त्याग आदि गुणोंसे प्रभावित होकर इस श्रावकाचारकी रचना की है। प्रशस्तिसे गुणभूषणके समयका कोई पता नहीं चलता है। पर ये वसुनन्दिसे पीछे हुए हैं : इतना निश्चित है।

२०. धर्मोपदेश पीयूषवर्ष श्रावकाचार—श्री ब्रह्मनेमिदत्त

इस श्रावकाचारका संकलन प्रस्तुत संग्रहके दूसरे भागमें किया गया है। इसमें पाँच अधिकार हैं। प्रथम अधिकारमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताकर उसके आठों अंगोंका, २५ दोषोंका और सम्यक्त्वके भेदोंका वर्णन है। दूसरे अधिकारमें सम्यग्ज्ञान और चारों अनुयोगोंका स्वरूप बताकर द्वादशाङ्ग श्रुतके पदोंकी संख्याका वर्णन है। तीसरेमें आठ मूल गुणोंका, चौथेमें बारह व्रतोंका वर्णनकर मंत्र-जाप, जिन-बिम्ब और जिनालयके निर्माणका फल बताकर ११ प्रतिमाओंका निरूपण किया गया है। पाँचवें अधिकारमें सल्लेखनाका वर्णनकर इसे समाप्त किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री ब्रह्मनेमिदत्तने परिग्रह परिमाण व्रतके अतीचार स्वामी समन्तभद्रके समान ही कहे हैं। तथा रात्रिभोजन त्यागको छठा अणुव्रत कहा है।

इस श्रावकाचारमें ३५ गाथाएँ और श्लोक 'उक्तं च' कहकर उद्धृत किये गये हैं, जिनमें रत्नकरण्डक, वसुनन्दि श्रावकाचार, गो० जीवकाण्ड, सावयधम्मदोहा, यशस्तिलक, द्रव्यसंग्रह और एकीभाव स्तोत्रके नाम उल्लेखनीय हैं। सबसे अधिक उद्धृत दोहे सावयधम्मदोहाके हैं।

समय और परिचय

इस श्रावकचारकी अन्तिम प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि भट्टारक श्री विद्यानन्दिके पट्टपर भट्टारक मल्लिभूषण हुए। उनके शिष्य मुनि सिंहनन्दि हुए और उनके शिष्य ब्रह्मनेमिदत्तने इस श्रावकाचारकी रचना की।

भट्टारक सम्प्रदायके अनुसार भ० विद्यानन्दिका समय वि० सं० १४९९ से लगाकर १५३७ तक है और उनके शिष्य मल्लिभूषणका समय १५४४ से १५५५ तकका दिया गया है। अतः मल्लिभूषणके शिष्य सिंहनन्दिका समय उनके बादका ही होना चाहिए।

ब्रह्मनेमिदत्तकी इस श्रावकाचारके अतिरिक्त जो रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—१. आराधना कथाकोश, २. नेमिनाथ पुराण, ३. श्रीपालचरित, ४. सुदर्शनचरित, ५. रात्रिभोजन कथा, ६. प्रीतिंकर मुनिचरित, ७. धन्यकुमारचरित, ८. नेमिनिर्माण काव्य, ९. नागकुमार कथा, १०. मालारोहणी और ११. आदित्यवार व्रतरास।

यद्यपि ब्रह्मनेमिदत्तने उक्त श्रावकाचारके अन्तमें रचनाकाल नहीं दिया है, तथापि इन्होंने वि० सं० १५७५ में आराधना कथाकोश और वि० सं० १५८५ में नेमिपुराणको रचकर पूर्ण किया है। अतः उक्त भट्टारकपरम्पराके पट्टकालोंके साथ इनके समयका निर्णय हो जाता है। तदनुसार इनका समय विक्रमकी सोलहवीं शतीका उत्तरार्ध निश्चित रूपसे ज्ञात होता है। आराधना कथाकोशकी प्रशस्तिमें ब्रह्मनेमिदत्तने भ० मल्लिभूषणका गुरुरूपसे स्मरण किया है।

२१. लाटीसंहिता—श्री राजमल्ल

जैन सिद्धान्तके गम्भीर अभ्यासी श्री राजमल्लने लाटीसंहिताके प्रत्येक सर्गके अन्तमें जो पुष्पिका दी है, उसमें इसे 'श्रावकाचार अपर नाम लाटीसंहिता' दिया है, तो भी उनका यह श्रावकाचार लाटीसंहिताके नामसे ही प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है। लाट देशमें प्रचलित गृहस्थ-धर्म या जैन आचार-विचारोंका संग्रह होनेसे इसका लाटीसंहिता नाम स्वयं राजमल्लजीने रखा है। जैसा कि इसकी प्रशस्तिके ३८ वें श्लोकके द्वितीय चरणसे स्पष्ट है।

'तेनोच्चैः कारितेयं सदनसमुचिता संहिता नाम लाटी'

अर्थात्—संघपति फामनने गृहस्थके योग्य इस लाटीसंहिताको निर्माण कराया।

लाटीसंहितामें ७ सर्ग हैं। उनमेंसे प्रथमसर्गमें वैराट नगर, अकबर बादशाह, काष्ठासंघी भट्टारक-वंश और उनके वंशधरों द्वारा बनाये गये जिनालय आदिका विस्तृत वर्णन है। प्रस्तुत संग्रहमें उपयोगी न होनेसे उसका संकलन नहीं किया गया है और द्वितीय सर्गको प्रथम मानकर सर्ग-संख्या दी गई है। प्रशस्ति बहुत बड़ी होनेसे इस भागके परिशिष्टमें दी जा रही है। इससे अनेक नवीन बातों पर प्रकाश पड़ेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाटीसंहिताके प्रथम सर्गमें अष्ट मूलगुणोंके धारण करने और सप्त व्यसनोंके त्यागका वर्णन है। दूसरे सर्गमें सम्यग्दर्शनका सामान्य स्वरूप भी बहुत सूक्ष्म एवं गहन-गाम्भीर्यसे वर्णन किया गया है। तीसरे सर्गमें सम्यग्दर्शनके आठों अंगोंका विस्तृत विवेचन है। चौथे सर्गमें अहिंसाणुव्रत-का विस्तृत वर्णन है। पंचम सर्गमें शेष चार अणुव्रतोंका और गुणव्रत-शिक्षाव्रतके भेदोंका और सल्लेखनाका वर्णन है। छठे सर्गमें सामायिकादि शेष प्रतिमाओंका और द्वादश तपोंका निरूपण किया गया है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि राजमल्लजीने श्रावकधर्मका वर्णन ११ प्रतिमाओंके आधार-पर ही किया है।

यद्यपि श्रावकव्रतोंका वर्णन परम्परागत ही है, तथापि प्रत्येक व्रतके विषयमें उठनेवाली शंकाओंको स्वयं उद्भावन करके उसका सयुक्तिक और सप्रमाण समाधान किया है।

लाटीसंहिताकारने व्रती श्रावकको घोड़े आदिकी सवारीका निषेध किया है। (देखो—भा० ३ पृ० १०४, श्लोक २२४)

इन्होंने ही ग्यारहवीं प्रतिमावाले दोनों भेदोंको सर्वप्रथम, 'क्षुल्लक' और 'ऐलक' नामोंसे उल्लेख किया। (भा० ३ पृ० २४६, श्लोक ५५)

प्राणियोंपर दया करना व्रतका बाह्यरूप है और अन्तरंगमें कषायोंका त्याग होना व्रतका अन्तरंगरूप है। (भा० ३, पृ० ८२ श्लोक ३८ आदि)

परिचय और समय

प्रस्तुत लाटीसंहिताके अतिरिक्त राजमल्लजीने जम्बूस्वामिचरित, अध्यात्मकमल मार्तण्ड और पिंगलशास्त्र रचा है। पंचाध्यायीकी रचनाका संकल्प करके भी वे उसे पूरा नहीं कर सके। उसके डेढ़ अध्यायको ही रच पाये। उसके भी श्लोकोंकी संख्या (७६८–११४५) १९१३ है। राजमल्लजी इसे कितना विशाल रचना चाहते थे, यह उनके प्रारम्भमें दिये 'ग्रन्थराज' पदसे स्पष्ट है। जब डेढ़ अध्यायमें ही लगभग दो हजार श्लोक हैं, तब पंचाध्यायी पूरी रचे जानेपर तो उसके श्लोकोंकी संख्या दश हजारसे ऊपर ही होती।

जम्बूस्वामिचरितकी रचना वि० सं० १६३२ के चैत कृष्णा अष्टमीके दिन समाप्त हुई है। अतः इनका समय विक्रमकी सत्तरहवीं शतीका मध्य भाग जानना चाहिए।

२२. उमास्वामिश्रावकाचार—उमास्वामी (?)

उमास्वामीके नाम पर किसी भट्टारकने इस श्रावकाचारकी रचना की है। तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता उमास्वामी या उमास्वातिकी यह रचना नहीं है, क्योंकि इसको प्रारम्भ करते हुए मंगलाचरणके बाद दूसरे श्लोक में कहा गया है कि मैं पूर्वाचार्य प्रणीत श्रावकाचारोंको भली भाँति-से देखकर इस श्रावकाचारकी रचना करूँगा। वह श्लोक इस प्रकार है—

पूर्वाचार्यप्रणीतानि श्रावकाध्ययनान्यलम्।
दृष्ट्वाऽहं श्रावकाचारं करिष्ये मुक्तिहेतवे ॥२॥

तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वामीसे पहिले रचे गये किसी भी श्रावकाचारका अभी तक कहीं कोई उल्लेख नहीं प्राप्त हुआ है और इस उक्त श्लोकमें स्पष्ट रूपसे पूर्वाचार्य-प्रणीत श्रावकाचारों-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का उल्लेख है, अतः यह बहुत पीछे रचा गया है, जब कि उनके समय तक अनेक श्रावकाचार रचे जा चुके थे।

दूसरे इस श्रावकाचारमें पुरुषार्थसिद्धयुपाय, यशस्तिलक-उपासकाध्ययन, श्वे० योगशास्त्र, विवेकविलास और धर्मसंग्रह श्रावकाचारके अनेक श्लोक ज्योंके त्यों अपनाये गये हैं और अनेक श्लोक शब्द परिवर्तनके साथ रचे गये हैं। श्वे० योगशास्त्रके १५ खर कर्म वाले श्लोक भी साधारणसे शब्द-परिवर्तनके साथ ज्योंके त्यों दिये गये हैं। इन सबसे यह सिद्ध है कि यह तत्त्वार्थ-सूत्रकार-रचित नहीं है। किन्तु पं० मेधावी—जिन्होंने अपना धर्मसंग्रहश्रावकाचार वि० सं० १५४ में रच कर पूर्ण किया है—उनसे भी पीछे सोलहवीं-सत्तरहवीं शताब्दीके मध्य किसी इसी नामधारी भट्टारकने रचा है, या अन्य नामधारी भट्टारकने रचकर उमास्वामीके नामसे अंकित कर दिया है, जिससे कि इसमें वर्णित सभी बातों पर प्राचीनताकी मुद्रा अंकित मानी जा सके। इस श्रावका-चारमें अन्य कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिन परसे पाठक सहजमें ही इसकी अर्वाचीनताको स्वयं ही जान सकेंगे।

प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें इसके संकलनका उद्देश्य यह है कि पाठक स्वयं यह अनुभव कर सकें कि स्वामी समन्तभद्रके पश्चात् समय-परिवर्तनके साथ किस-किस प्रकारसे श्रावकके आचारमें क्या क्या वृद्धि होती रही है। यही बात पूज्यपाद और कुन्दकुन्दके नामसे अंकित श्रावकाचारोंके विषयमें भी समझनी चाहिए।

इस श्रावकाचारमें अध्याय विभाग नहीं है। प्रारम्भमें धर्मका स्वरूप बताकर सम्यक्त्वका साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। पुनः देवपूजादि श्रावकके षट् कर्तव्योंमें विभिन्न परिमाणवाले जिनबिम्बके पूजनेके शुभ-अशुभ फलका वर्णन है। तथा इक्कीस प्रकार वाला पूजन, पंचामृताभिषेक, गुरूपास्ति आदि शेष आवश्यक, १२ तप और दानका विस्तृत वर्णन है। तत्पश्चात् सम्यग्ज्ञानका वर्णन कर सम्यक् चारित्रके विकल भेदरूप श्रावकके ८ मूलगुणों और १२ उत्तर व्रतोंका, सल्लेखनाका और सप्त व्यसनोंके त्यागका उपदेश देकर इसे समाप्त किया गया है। ग्रन्थके अन्तिम श्लोकमें कहा है कि इस सम्बन्धमें जो अन्य ज्ञातव्य बातें हैं, उन्हें मेरे द्वारा रचे गये अन्य ग्रन्थमें देखना चाहिए। यथा—

इति वृत्तं यथोद्दिष्टं संश्रये षष्ठकेऽखिलम्।
चान्यन्मया कृते ग्रन्थेऽन्यस्मिन् द्रष्टव्यमेव च॥४७७॥

पर अभी तक इनके द्वारा रचित किसी अन्य ग्रन्थका पता नहीं लगा है।

इस श्रावकाचारकी कुछ विशेष बातें—

१. सौ वर्षसे अधिक प्राचीन वंगित भी प्रतिमा पूज्य है। (भा० ३ पृ० १६१ श्लोक १०८)

२. प्रातः पूजन कपूरसे, मध्याह्नमें पुष्पोंसे और सायंकाल दीप धूप से करे। (भा० ३ पृ० १६३ श्लोक १२५-१२६)

३. फूलोंके अभावमें पीले अक्षतोंसे पूजन करे। (भा० ३ पृ० १६३ श्लोक १२९)

४. अभिषेकार्थ दूधके लिए गाय रखे, जलके लिए कूप बनवाये और पुष्पोंके लिए वाटिका (बगीची) बनवावे (भा० ३ पृ० १६३ श्लोक १३३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. प्रातःकालीन पूजन पाप विनाशक, मध्याह्निक पूजन लक्ष्मी-कारक और सन्ध्याकालीन पूजन मोक्ष-कारक है। (भा० ३ पृ० १६७ श्लोक १८१)

एक विचारणीय वर्णन

इस श्रावकाचारमें २१ प्रकारके पूजनके वर्णनमें आभूषण-पूजन और वसन-पूजनका भी उल्लेख किया गया है। यह स्पष्टतः श्वेताम्बर-परम्परामें प्रचलित मूर्त्ति पूजनका अनुकरण है। क्योंकि दिगम्बर-परम्परामें कभी भी वस्त्र और आभूषणोंसे पूजन करनेका प्रचार नहीं रहा है। सभी श्रावकाचारोंमेंसे केवल इसीमें इस प्रकारका वर्णन आया है, जो कि अत्यधिक विचारणीय है। (देखो भा० ३ पृ० १६४ श्लोक १३६)

इस श्रावकाचारमें तीसरे भागके पृष्ठ १६० परके श्लोक १०० से लेकर १०३ तकके ४ श्लोक श्वेताम्बरीय आचार दिनकरसे लिये गये ज्योंके त्यों पाये जाते हैं। केवल भेद यह है कि इसमें सौवें श्लोकका पूर्वार्ध श्लोक १०३ के स्थान पर है इससे भी उपर्युक्त वस्त्र और आभूषण पूजनका वर्णन श्वेताम्बरीय पूजनके अनुकरणको सिद्ध करता है।

उमास्वामि-श्रावकाचारके अन्तमें आये श्लोकाङ्क ४६४ के 'सूत्रे तु सप्तमेऽप्युक्ताः पृथङ्-नोक्तास्तदर्थतः' इस पदसे, तथा श्लोकाङ्क ४७३ के 'गदितमतिसुबोधोपास्त्यकं स्वामिभिश्च' इस पदसे जो लोग इस श्रावकाचारका रचयिता सूत्रकार उमास्वामीको मानते हैं, सो यह उनका भ्रम है। इसके लिए निम्न-लिखित तीन प्रमाण पर्याप्त हैं—

१. प्रारम्भमें पूर्व-प्रणीत श्रावकाचारोंको देखकर रचनेका उल्लेख।

२. सोमदेवके उपासकाध्ययन, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि अनेक ग्रन्थोंके श्लोकोंका ज्योंका त्यों बिना नामोल्लेखके अपनाना।

३. श्रावकाचारसारोद्धारके दो सौ से अधिक श्लोकोंको अपना करके भी अन्तमें उसके श्लोकके २-३ पदोंका परिवर्तन करके अपने बनानेका उल्लेख करना। यथा—

इति दुरितदुरौघं श्रावकाचारसारं गदितमतिसुबोधोपास्त्यकं स्वामिभिश्च।
विनयभरनताङ्गाः सम्यगाकर्णयन्तु विशदमतिमवाप्य ज्ञानयुक्ता भवन्तु ॥४७६॥
(उमास्वामि श्रावकाचार भा० ३ पृ० १९१)

इति हतदुरितौघं श्रावकाचारसारं गदितमवधिलीलाशालिना गौतमेन।
विनयभरनताङ्गः सम्यगाकर्ण्य हर्षं विशदमतिरवाप श्रेणिकः क्षोणिपालः ॥३७४॥
(श्रावकाचारसारोद्धार, भा० ३ पृ० ३६८)

आचार्य पद्मनन्दीने अपने श्रावकाचार-सारोद्धारकी उत्थानिकामें जैसे श्रेणिकके प्रश्न पर गौतम-गणधरके द्वारा श्रावक-धर्मका वर्णन प्रारम्भ कराया है, उसी प्रकार ग्रन्थके अन्तमें उन्हीं श्रेणिकका उल्लेख करते हुए उसे समाप्त किया है, जो कि स्वाभाविक है।

उमास्वामि श्रावकाचारमें कोई अन्तिम प्रशस्ति नहीं है। तथा कुछ अनिरूपित विषयोंको अपने द्वारा रचित अन्य ग्रन्थमें देखनेका उल्लेख मात्र किया है। पर श्रावकाचारसारोद्धारमें पद्मनन्दीने विस्तृत प्रशस्ति दी है और जिसके लिए उसे रचा है उसका भी परिचय दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्मनन्दीने अपनी गुरु परम्पराका स्पष्ट उल्लेख किया है, पर उमास्वामी श्रावकाचारके रचयिताने न अपनी गुरुपरम्पराका उल्लेख किया है और न अपना ही कोई परिचय दिया है।

पट्टावलियोंमें भी श्रावकाचारके रचनेवाले उमास्वामीका कहीं कोई उल्लेख नहीं है, जब कि तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति या उमास्वामीका उल्लेख शिलालेखों तकमें पाया जाता है।

इन सब कारणोंसे यही सिद्ध होता है कि यह श्रावकाचार किसी भट्टारकने इधर-उधरके अनेकों श्लोकोंको लेकर तथा बीच-बीचमें कुछ स्वयं रचित श्लोकोंका समावेश करके रचा है।

२३. पूज्यपाद-श्रावकाचार—श्रीपूज्यपाद

यह श्रावकाचार भी जैनेन्द्रव्याकरण, सर्वार्थसिद्धि आदि प्रसिद्ध ग्रन्थोंके प्रणेता पूज्यपाद देवनन्दिका रचा हुआ नहीं है। किन्तु इस नामके किसी भट्टारक या अन्य विद्वान्का रचा हुआ है। ऐ० पन्नालाल सरस्वती-भवन ब्यावरमें इसकी दो प्रतियाँ है, जिसमें एक अधूरी है और दूसरीमें न कोई अन्तिम प्रशस्ति है और न प्रति-लेखन-काल हो दिया हुआ है। तो भी कागज-स्याही लिखावट आदिकी दृष्टिसे वह दो सौ वर्ष पुरानी अवश्य है।

इसमें कोई अधिकार विभाग नहीं है। श्लोक संख्या १०३ है। प्रारम्भमें सम्यक्त्वका स्वरूप और माहात्म्य बताकर आठ मूलगुणोंका वर्णन है। पुनः श्रावकके १२ व्रतोंका निरूपण करके सप्त व्यसनोंके त्यागका और कन्दमूलादि अभक्ष्य पदार्थोंके भक्षणका निषेध किया गया है। तत्पश्चात् मौनके गुण बताकर चारों प्रकारके दानोंको देनेका और दानके फलका विस्तृत वर्णन है। पुनः जिनबिम्बके निर्माणका, जिन-पूजन करने और पर्वके दिनोंमें उपवास करनेका फल बताकर उनके करनेकी प्रेरणा की गई है। अन्तमें रात्रि-भोजन करनेके दुष्फलोंका और नहीं करनेके सुफलोंका सुन्दर वर्णन कर धर्म-सेवन सदा करते रहनेका उपदेश दिया है क्योंकि कब मृत्युरूप यमराज लेनेको आ जावे। इस प्रकार संक्षेपमें श्रावकोचित सभी कर्तव्योंका विधान इसमें किया गया है।

इस श्रावकाचारमें महापुराण, यशास्तलक, उमास्वामि श्रावकाचार, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार आदिके श्लोकोंको 'उक्तं च' आदि न लिखकर ज्योंका त्यों अपनाया गया है और श्लोक ७८ में जिनसंहिताका स्पष्ट उल्लेख है, अतः यह उक्त श्रावकाचारोंसे पीछे रचा गया सिद्ध होता है। श्रावकाचारके नाते इसे प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें संकलित किया गया है।

भट्टारक-सम्प्रदायकी किसी भी शाखामें 'पूज्यपाद' नामके भट्टारकका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया है, अतः निश्चितरूपसे इसका रचना-काल अज्ञात है। अनुमानतः यह सकलकीर्तिके प्रश्नोत्तर श्रावकाचारके पीछे रचा गया प्रतीत होता है।

२४. व्रतसार श्रावकाचार

प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहमें संकलित श्रावकाचारोंमें यह सबसे लघुकाय है। इसमें केवल २२ श्लोक हैं जिनमें दो प्राकृत गाथाएँ भी परिगणित हैं। इसके भीतर सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टिका स्वरूप, समन्तभद्र-प्रतिपादित श्लोकके साथ अष्टमूलगुणोंका निर्देश, अभक्ष्य पदार्थोंके भक्षणका, अगालित जल-पानका निषेध, बारह व्रतोंका नामोल्लेख और हिंसक पशु-पक्षियोंको पालनेका निषेध किया गया है। रात्रि-भोजनको तत्त्वतः आत्मघात कहा गया है। सुख-दुःख, मार्ग, संग्राम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि सर्वत्र पंच नमस्कारमंत्रके पाठ करते रहनेका उपदेश देकर यात्रा, पूजा प्रतिष्ठा और जीर्ण-चैत्य-चैत्यालयादिके उद्धारकी प्रेरणाकर इसे समाप्त किया गया है।

इसके रचयिताने अपने नामका कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। पर इसे 'व्रतसार' नाम अन्तिम श्लोकमें अवश्य दिया है और कहा है कि जो इस 'व्रतसार' को शक्तिके अनुसार पालन करेगा, वह स्वर्गके सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्षको जायगा।

२५. व्रतोद्योतन श्रावकाचार—श्री अभ्रदेव

श्री अभ्रदेव-विरचित व्रतोद्योतन श्रावकाचार प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें संकलित है। यह अपने नामके अनुरूप ही व्रतोंका उद्योत करनेवाला श्रावकाचार है। ५४२ श्लोकवाले इस श्रावकाचारमें कोई अध्याय-विभाग नहीं किया गया है। प्रारम्भमें प्रातः काल उठकर शरीर-शुद्धिकर जिन-बिम्ब-दर्शन एवं पूजन करनेका उपदेश है। तत्पश्चात् रजस्वलास्त्रीके पूजन और गृह कार्य करनेका निषेध कर पूर्व भवमें मुनिनिन्दा करनेवाली स्त्रियोंका उल्लेख है। पुनः अभक्ष्य-भक्षण, कषायोंके दुष्फल, पंचेन्द्रिय-विषय और सप्त व्यसन-सेवनके दुष्फल बताकर कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि पुरुष नवीन मुनिकी तीन दिन तक परीक्षा करके पीछे नमस्कार करे। तदनन्तर श्रावकके बारह व्रतोंका, सल्लेखनाका, ग्यारह प्रतिमाओंका और बारह भावनाओंका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् पाक्षिक नैष्ठिक, साधकका स्वरूप-वर्णन कर परीषह सहने, समिति पालने, अनशनादि तपोंके करने और सोलह कारण भावनाओंके भानेका उपदेश दिया गया है। पुनः सम्यक्त्वके आठ अंगोंका, रत्नत्रय और क्षमादि दश धर्मोंका वर्णन कर आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि-की गई है। पुनः ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्वका निराकरण कर जैन मान्यता प्रतिष्ठित की गई है। अन्तमें मिथ्यात्व आदि कर्म-बन्धके कारणोंका वर्णन कर अहिंसादि व्रतोंके अतिचारोंका, व्रतोंकी भावनाओं-का, सामायिकके बत्तीस और वन्दनाके बत्तीस दोषोंका वर्णन कर सम्यग्दर्शनकी महिमाका निरूपण किया गया है।

इस श्रावकाचारके विचारणीय कुछ विशेष वर्णन इस प्रकार हैं—

१. अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंका अर्थ	(भा० ३ पृ० २२७ श्लोक १९२)
२. अणु और परमाणुका स्वरूप	(,, २२८ ,, १९९)
३. जीवद्रव्यका स्वरूप	(,, ३ ,, २२९ श्लोक २०९)
४. पुलाक-बकुश आदिका स्वरूप	(,, २२९ ,, २१५)
५. पाक्षिक, नैष्ठिक, साधकका स्वरूप	(,, २३४ ,, २५९-६१)
६. अनशन तपका स्वरूप	(,, ३ ,, २३६ श्लोक २८२)

इस श्रावकाचारकी रचना कवित्वपूर्ण एवं प्रसादगुणसे युक्त है और महाकाव्योंके समान विविध छन्दोंमें इसकी रचना की गई है।

बौद्ध, नैयायिकादिके मतोंकी समीक्षासे ज्ञात होता है कि अभ्रदेव विभिन्न मत-मतान्तरोंके अच्छे ज्ञाता थे।

परिचय और समय

इस श्रावकाचारके अन्तिम श्लोकसे ज्ञात होता है कि बुध अभ्रदेवने इसे प्रवरसेन मुनिके आग्रहसे रचा है। ये प्रवरसेन मुनि कब हुए और अभ्रदेवका क्या समय है, इसका पता न डॉ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिचन्द्रशास्त्री-लिखित, 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा' से ही चलता है और न जोहरापुरकर-सम्पादित 'भट्टारक-सम्प्रदाय' में ही उक्त दोनों नामोंका कहीं कोई उल्लेख है।

सरस्वती भवन ब्यावरकी हस्तलिखित प्रतिमें इसका लेखन-काल नहीं दिया गया है। किन्तु उदयपुरके दि० जैन अग्रवाल मन्दिरकी प्रतिमें लेखन काल १५९३ दिया हुआ है। उसकी अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

'अथ संवत्सरेऽस्मिन् १५९३ वर्षे पौषसुदि २ आदित्यवारे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये ब्र० मानिक लिखापितं आत्मपठनार्थं परोपकाराय च।'

इस पुष्पिकासे इतना तो निश्चित है कि सं० १५९३ के पूर्व यह रचा गया है और इसीसे यह भी सिद्ध होता है कि प्रवरसेन और अभ्रदेव इससे पूर्व ही हुए हैं।

प्रस्तुत श्रावकाचारके श्लोक २९३ में श्रुतसागरसूरिके उल्लेखसे सिद्ध है कि ये अभ्रदेव उनसे पीछे हुए हैं। श्रुतसागरका समय वि० सं० १५०२ से १५५६ तकका रहा है। अतः इनका समय वि० सं० १५५६ से १५९३ के मध्यमें जानना चाहिए।

२६. श्रावकाचार सारोद्धार—श्रीपद्मनन्दि

श्रीपद्मनन्दिका यह श्रावकाचार तीसरे भागमें संकलित है। मंगलाचरणमें सिद्धपरमात्मा, ऋषभजिन, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, वर्धमान, गौतमगणधर और सरस्वतीको नमस्कार कर आ० कुन्दकुन्द, अकलंक, समन्तभद्र, वीरसेन और देवनन्दिका बहुत प्रभावक शब्दोंमें स्मरण किया गया है।

प्रथम परिच्छेदमें पुराणोंके समान मगध देश, राजा श्रेणिक आदिका वर्णनकर गौतम गणधरके द्वारा धर्मका निरूपण करते हुए सम्यक्त्वके आठों अंगोंका वर्णन किया है। दूसरे परिच्छेदमें सम्यग्ज्ञानका केवल १२ श्लोकों द्वारा वर्णनकर अष्टाङ्गों द्वारा उपासना करनेका विधान किया गया है। तीसरे परिच्छेदमें चारित्रकी आराधना करनेका उपदेश देकर आठ मूलगुणोंका वर्णन करते हुए मद्य, मांसादिके सेवन-जनित दोषोंका विस्तृत वर्णन है। इस प्रकरणमें अमृतचन्द्रके नामोल्लेखके साथ पुरुषार्थसिद्ध्युपायके अनेक श्लोक उद्धृत किये हैं। रात्रिभोजनके दोष बताकर उसका निषेधकर श्रावकके बारह व्रतोंका विस्तृत विवेचनकर सल्लेखना-विधिका वर्णन करते हुए 'समाधिमरण आत्मघात नहीं है' यह सयुक्तिक सिद्ध किया गया है। अन्तमें सप्त व्यसन-सेवनके दोषोंको बताकर उनके त्यागका उपदेश दिया गया है। इस श्रावकाचारमें श्रावककी ११ प्रतिमाओंके नामोंका उल्लेख तक भी नहीं किया गया है।

इसे श्रावकाचार-सारोद्धार नामसे प्रख्यात करते और अनेकों श्रावकाचारोंके श्लोकोंको 'उक्तं च' कहकर उद्धृत करते हुए भी 'अमृतचन्द्रसूरि' के सिवाय किसी भी श्रावकाचार रचयिताके नामका उल्लेख नहीं किया गया है, जबकि रत्नकरण्डके और सोमदेवके उपासकाध्ययनके बीसों श्लोक इसमें उद्धृत किये गये हैं।

पं० मेधावीके समान इसमें भी श्रावकधर्मका उपदेश प्रारम्भ गौतम गणधरसे कराके बीच-बीचमें 'उक्तं च' कहकर अन्य ग्रन्थोंके उद्धरण देकर उसका निर्वाह पद्मनन्दि नहीं कर सके हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रात्रिमें अशन-पानका निषेध करते हुए परमतके जो श्लोक दिये गये हैं, वे मननीय हैं। (देखो भा० ३ पृ० ३४१-३४२ श्लोक ९७ से ११९)

इस श्रावकाचारमें स्थल-विशेषोंपर जो सूक्तियाँ दी गई हैं, वे पठनीय हैं।

समय और परिचय

पद्मनन्दिने अपने इस श्रावकाचारको 'वासाधर' नामके किसी गृहस्थ-विशेषके लिए रचा है और उसीके नामसे अङ्कित किया है जैसे कि प्रत्येक परिच्छेदकी अन्तिम पुष्पिकाओंसे सिद्ध है। ये वासाधर लमेंचू जातिके थे यह अन्तिम प्रशस्तिसे ज्ञात होता है। दूसरे परिच्छेदके प्रारम्भमें जो आशीर्वाद रूप पद्य दिया है, उससे ज्ञात होता है कि वासाधर जिनागमके वेत्ता, पात्रोंको दान देनेवाले, विनयी जीवोंके रक्षक, दयाशील और सम्यग्दृष्टि थे। पूरी प्रशस्ति इस भागके परिशिष्ट-में दी गई है।

प्रस्तुत श्रावकाचारके अन्तमें दी गई प्रशस्तिके अनुसार पद्मनन्दि श्रीप्रभाचन्द्रके शिष्य थे, इतना ही ज्ञात होता है। 'भट्टारक सम्प्रदाय' में विभिन्न आधारोंसे बताया गया है कि इनका पट्टाभिषेक वि० सं० १३८५ में हुआ। ये १५ वर्ष ७ माह १३ दिन घरपर रहे। पीछे दीक्षित होकर १३ वर्ष तक ज्ञान और चारित्रकी आराधना करते रहे। २९ वर्षकी अवस्थामें ये प्रभाचन्द्रके पट्ट-पर आसीन हुए और ६५ वर्ष तक पट्टाधीश बने रहे। इस प्रकार इनका समय विक्रमकी चौदहवीं शतीका पूर्वार्ध सिद्ध होता है।

इन्होंने प्रस्तुत श्रावकाचारके सिवाय वर्धमानचरित, अनन्तव्रतकथा, भावनापद्धति और जीरापल्ली पार्श्वनाथ स्तवनकी रचना की है।

२७. भव्यधर्मोपदेश-उपासकाध्ययन—श्री जिनदेव

इस श्रावकाचारमें छह परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेदमें भरत क्षेत्र, मगध देश और राजा श्रेणिकका वर्णन, भ० महावीरका विपुलाचलपर पदार्पण, राजा श्रेणिकका वन्दनार्थ गमन, धर्मो-पदेश श्रवण और इन्द्रभूति गणधर-द्वारा श्रावकधर्मका प्रारम्भ कराया गया है। गणधर देवने ११ प्रतिमाओंका निर्देशकर सर्वप्रथम दर्शन प्रतिमाका निरूपण किया, इस प्रतिमाधारीको निर्दोष अष्ट अङ्ग युक्त सम्यग्दर्शन धारण करनेके साथ अष्टमूल गुणोंका पालन, रात्रि-भोजन और सप्त व्यसन-सेवनका त्याग, आवश्यक बताया गया है। दूसरे परिच्छेदमें जीवादिक तत्त्वोंका वर्णन किया गया है। तीसरे परिच्छेदमें जीवतत्त्वका आयु, शरीर-अवगाहना, कुल, योनि आदिके द्वारा विस्तृत विवेचन किया गया है। चौथे परिच्छेदमें व्रत-प्रतिमाके अन्तर्गत श्रावकके १२ व्रतोंका और सल्लेखनाका संक्षिप्त वर्णन है, पाँचवें परिच्छेदमें सामायिक प्रतिमाके वर्णनके साथ ध्यान पद्धतिका वर्णन है। छठे परिच्छेदमें प्रोषध प्रतिमाका विस्तारसे और शेष प्रतिमाओंका संक्षेपसे वर्णन किया गया है। अन्तमें ग्रन्थ प्रशस्ति दी गई है।

इस श्रावकाचारकी कुछ विशेषताएँ

१. दर्शन प्रतिमाधारीको रात्रिभोजन और अगालित जलपानका त्याग आवश्यक बताते हुए कहा है कि मत्स्य पकड़नेवाला धीवर तो आजीविकाके निमित्तसे जीवघात करता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु अगालित जल पीनेवाला बिना निमित्तके ही जीवघात करता है। (तृतीय भाग, पृ० ३७५ श्लोक ८५)

२. दर्शनाचारसे हीन स्ववंशज एवं स्वजातीय व्यक्तिके घरकी भोज्य वस्तु और भाण्डे बर्तनादि भी ग्राह्य नहीं हैं। (तृतीय भा० पृ० ३७७ श्लोक १०६)

३. प्रथम स्वर्ग, प्रथम नरक और सद्मावासी (भवनवासी) की जघन्य आयु 'अयुत' प्रमाण कही है, वह आगम-विरुद्ध है (तृतीय भाग, पृ० ३८८ श्लोक २२९)

४. देव-पूजनके पूर्व मुख शुद्धि और शरीर शुद्धि करके अपनेमें इन्द्रका संकल्पकर देव-प्रतिमाके स्थापनके बाद दिग्पालोंके आह्वान और क्षेत्रपाल-युक्त यक्ष-यक्षीका स्थापन और सकलीकरणका विधान किया गया है। (तृतीय भाग, ३९६ श्लोक ३४९-३५१)

परिचय और समय

इस श्रावकाचारके रचयिता श्री जिनदेव हैं, उन्होंने अपने नामका उल्लेख प्रत्येक परिच्छेदके अन्तमें स्वयं किया है और अपनी इस रचनाको भट्टारक जिनचन्द्रके नामसे अंकित किया है। ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिसे जिनदेवका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। केवल उनके विद्यागुरु यशोधर कवि ज्ञात होते हैं। भट्टारक जिनचन्द्र सम्भवतः जिनदेवके दीक्षागुरु रहे हैं। यदि ये जिनचन्द्र पं० मेधावीके गुरु हैं, तो ये पं० मेधावीके समकालिक सिद्ध होते हैं। पं० मेधावीका समय विक्रमकी सोलहवीं शताब्दी है। और यदि ये जिनचन्द्र पं० मेधावीके गुरुसे भिन्न हैं, तो फिर जिनदेवका समय विचारणीय हो जाता है।

जिनदेवकी अन्य रचनाका अभी तक कोई पता नहीं लगा है।

२८. पंचविंशतिका गत श्रावकाचार—श्री पद्मनन्दी

आचार्य पद्मनन्दीकी पंचविंशतिका प्रसिद्ध है। उसका 'उपासक संस्कार' नामक प्रकरण प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें संकलित है। इसमें गृहस्थके देवपूजादि षट्कर्तव्योंका वर्णन करते हुए सामायिककी सिद्धिके लिए सप्त व्यसनोंका त्याग आवश्यक बताया गया है। तत्पश्चात् श्रावकके १२ व्रतोंके पालनेका, वस्त्र-गालित जल पीनेका और रात्रिभोजन-परिहारका उपदेश दिया गया है। विनयको मोक्षका द्वार बताकर विनय-पालनकी, दानहीन घरको कारागार बताकर दान देनेकी और दयाको धर्मका मूल बताकर जीव-दया करनेकी प्रेरणाकर बारह भावनाओंके चिन्तन और यथाशक्ति क्षमादि दश धर्मके पालनका उपदेश देकर इस प्रकरणको समाप्त किया गया है।

देशव्रतोद्योतन

यह भी उक्त पंचविंशतिकाका एक अध्याय है। इसमें सर्वप्रथम सम्यक्त्वी पुरुषकी प्रशंसा और मिथ्यात्वकी निन्दाकर सम्यक्त्वको प्राप्त करनेका उपदेश दिया गया है। तत्पश्चात् रात्रि-भोजन-त्याग, गालित-जलपान और बारह व्रत-पालनका उपदेश देकर देवपूजनादि कर्तव्योंको नित्य करनेकी प्रेरणा करते हुए चारों दानोंके देनेका उपदेश देकर कहा गया है कि दानसे ही गृहस्थापना सार्थक है और दान ही संसार-सागरसे पार करनेके लिए जहाजके समान है। दानके बिना गृहाश्रम पाषाणकी नावके समान है। अन्तमें जिनचैत्य और चैत्यालयोंके निर्माणकी प्रेरणा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हुए कहा है कि उनके होनेपर ही पूजन-अभिषेक आदि पुण्य कार्योंका होना संभव है। इस प्रकारसे संक्षेपमें श्रावकके कर्तव्योंका विधान इसमें किया गया है। इसे प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें संकलित किया गया है।

परिचय और समय

यद्यपि पद्मनन्दी नामके अनेक आचार्य हुए हैं। तथापि उनमें जंबूदीवपण्णत्तीके कर्ताको प्रथम और पंचविंशतिकाके कर्त्ताको द्वितीय पद्मनन्दी इतिहासज्ञोंने माना है और अनेक आधारोंसे छान-बीनकर इनका समय विक्रमकी बारहवीं शताब्दी निश्चित किया है।

इनकी रचनाओंका संग्रह यद्यपि पंचविंशतिकाके नामसे प्रसिद्ध है, तो भी उसमें ये २६ रचनाएँ संकलित हैं— १. धर्मोपदेशामृत, २. दानोपदेशन, ३. अनित्य पञ्चाशत्, ४. एकत्वसप्तति, ५. यतिभावनाष्टक, ६. उपासक संस्कार, ७. देशव्रतोद्योतन, ८. सिद्धस्तुति, ९. आलोचना, १०. सद्बोधचन्द्रोदय, ११. निश्चयपञ्चाशत्, १२. ब्रह्मचर्य-रक्षावर्ति, १३. ऋषभस्तोत्र, १४. जिन-दर्शनस्तवन, १५. श्रुतदेवतास्तुति, १६. स्वयम्भूस्तुति, १७. सुप्रभाताष्टक, १८. शान्तिनाथस्तोत्र, १९. जिनपूजाष्टक, २०. करुणाष्टक, २१. क्रियाकाण्डचूलिका, २२. एकत्वभावनादशक, २३. परमार्थविंशति, २४. शरीराष्टक, २५. स्नानाष्टक और २६. ब्रह्मचर्याष्टक।

इसमेंसे प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें छठी और सातवीं रचना संग्रहीत है।

२९. प्राकृत भावसंग्रह-गत श्रावकाचार—श्री देवसेन

आचार्य देवसेनने अपने भावसंग्रहमें चौदह गुणस्थानोंके आश्रयसे औपपादिक आदि भावोंके वर्णनके साथ प्रथम, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम गुणस्थानोंके स्वरूप आदिका विस्तृत वर्णन किया है। उसमेंसे प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें पाँचवें गुणस्थानका वर्णन संकलित किया गया है। प्रारंभमें पंचम गुणस्थानका स्वरूप बताकर आठ मूलगुणों और बारह व्रतोंका निर्देश किया गया है। यतः आरम्भी-परिग्रही गृहस्थके आर्त-रौद्रध्यानकी बहुलता रहती है, अतः उसे धर्म-ध्यानकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना आवश्यक बताकर उसके चारों भेदोंका निरूपण किया गया है। पुनः धर्मध्यानके सालम्ब और निरालम्ब भेद बताकर और गृहस्थके निरालम्ब ध्यानकी प्राप्ति असंभव बताकर पंचपरमेष्ठी आदिके आश्रयसे सालम्ब ध्यान करनेका उपदेश दिया गया है। इस सालम्ब ध्यानके लिए देवपूजा, जिनाभिषेक, सिद्धचक्र यंत्र, पंचपरमेष्ठी यंत्र आदिकी आराधना करनेका विस्तृत वर्णन किया गया है। तदनन्तर श्रावकके बारह व्रतोंका वर्णन करते हुए दानके भेद, दानका फल, पात्र-अपात्रका निर्णय और पुण्यके फलका विस्तारसे वर्णन कर अन्तमें भोगभूमिके सुखोंका वर्णन किया गया हैं।

देव-पूजनके वर्णनमें शरीर शुद्धि, आचमन और सकलीकरणका विधान है। अभिषेकके समय अपनेमें इन्द्रत्वकी कल्पनाकर और शरीरको आभूषणोंसे मंडित कर सिंहासनको सुमेरु मानकर उसपर जिन-बिम्बको स्थापन करने, दिग्पालोंका आह्वान करके उन्हें पूजन-द्रव्य आदि यज्ञांश प्रदान करनेका भी विधान किया गया है। इसी प्रकरणमें पूजनके आठों द्रव्योंके चढ़ानेके फलका भी वर्णनकर पूर्वमें आहूत देवोंके विसर्जनका निर्देश किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिचय और समय

देवसेनने भावसंग्रहकी अन्तिम प्रशस्तिमें रचना-काल नहीं दिया है किन्तु दर्शनसारके अन्तमें दी गई प्रशस्तिके अनुसार उसे वि० सं० ९९० में रच कर पूर्ण किया है। कुछ इतिहासज्ञ भावसंग्रहके कर्ता देवसेनको दर्शनसारके कर्तासे भिन्न मानते हैं। किन्तु श्वेताम्बर-मतकी उत्पत्ति-वाली दोनों ग्रन्थोंकी समानतासे दोनोंके रचयिता एक ही व्यक्ति सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त वसुनन्दिने अपने श्रावकाचारमें 'अतो गाथाषट्कं भावसंग्रहात्' लिखकर 'संकाइदोसरहियं' आदि छह गाथाओंको उद्धृत कर अपने श्रावकाचारका अंग बनाया है, इससे भावसंग्रह वसुनन्दिसे पूर्व-रचित सिद्ध है। वसुनन्दीका समय विक्रमकी ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दीका मध्यकाल है अतः दर्शनसारके कर्ता देवसेन ही भावसंग्रहके कर्ता सिद्ध होते हैं। इनके द्वारा रचित १ दर्शनसार, २ भाव-संग्रह, ३ आराधनासार, ४ तत्त्वसार, ५ लघुनयचक्र और ६ आलाप पद्धति ये छह ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

इतिहासज्ञ विद्वान् देवसेन-द्वारा रचित ग्रन्थोंका रचना-काल वि० सं० ९९० से लेकर वि० सं० १०१२ तक मानते हैं, अतः इनका समय विक्रमकी दशवीं शतीका अन्तिम चरण और ग्यारहवीं शतीका प्रथम चरण सिद्ध होता है।

३०. संस्कृत भावसंग्रह-गत श्रावकाचार—पं० वामदेव

देवसेनके प्राकृत भावसंग्रहका आधार लेकर पं० वामदेवने संस्कृत भावसंग्रहकी रचना की है। उसके पंचम गुणस्थानवाले वर्णनको प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें संकलित किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें ग्यारह प्रतिमाओंके आधार पर श्रावकधर्मका वर्णन किया गया है। सामायिक शिक्षाव्रतके अन्तर्गत जिन-पूजनका विधान और उसकी विस्तृत विधिका वर्णन प्राकृत भाव संग्रहके ही समान किया गया है। अतिथिसंविभागव्रतका वर्णन दाता, पात्र, दान विधि और देय वस्तुके साथ विस्तारसे किया गया है। तीसरी प्रतिमाधारीको 'यथाजात' होकर सामायिक करनेका विधान किया गया है। शेष प्रतिमाओंका वर्णन परम्पराके अनुसार ही है। प्रतिमाओंके वर्णनके पश्चात् देवपूजा-गुरूपास्ति आदि षट् कर्तव्योंका, पूजाके भेदोंका, चारों दानोंका वर्णन कर भोगभूमिके सुखोंका वर्णन किया गया है और बताया गया है कि भद्र मिथ्यादृष्टि जीव अपने दानके फलानुसार यथा योग्य उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमियों एवं कुभोगभूमियोंमें उत्पन्न होते हैं। अन्तमें पुण्योपार्जन करते रहनेका उपदेश दिया गया है।

प्राकृत भावसंग्रहमें पंचम गुणस्थानका वर्णन जहाँ २५० गाथाओंमें किया गया है, वहाँ इस संस्कृत भावसंग्रहमें १७९ श्लोकोंमें ही किया गया है, यह भी इसकी एक विशेषता है। प्रतिमाओंके वर्णन पर रत्नकरण्डके अनुसरणका स्पष्ट प्रभाव है, पर इसमें ग्यारहवीं प्रतिमाधारीके दो भेदोंका उल्लेख किया गया है। प्राकृत और संस्कृत दोनों ही भावसंग्रहोंमें व्रतोंके अतीचारोंका कोई वर्णन नहीं है।

परिचय और समय

सं० भावसंग्रहकी प्रशस्तिके अनुसार पं० वामदेव मुनि लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य थे। वामदेवने अपने समयका कोई उल्लेख नहीं किया है पर इनके द्वारा रचित 'त्रैलोक्य-दीपक' की जो प्रति योगिनीपुर (दिल्ली) में लिखी गई है उसमें लेखनकाल वि० सं० १४३६ दिया हुआ है, अतः इससे पूर्वका ही इनका समय सिद्ध होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत भावसंग्रहके अतिरिक्त इन्होंने १ प्रतिष्ठासूक्ति संग्रह, २ त्रैलोक्य-दीपक, ३ त्रिलोकसार पूजा, ४ तत्त्वार्थसार, ५ श्रुतज्ञानोद्यापन और ६ मन्दिरसंस्कार पूजन नामक ६ ग्रन्थोंको भी रचा है।

त्रैलोक्यदीपककी प्रशस्तिके अनुसार पं० वामदेवका कुल नैगम था। नैगम या निगम कुल कायस्थोंका है। इससे ये कायस्थ जातिके प्रतीत होते हैं।

३१. रयणसार—आचार्य कुन्दकुन्द (?)

कुछ इतिहासज्ञ विद्वान् रयणसारको आचार्य कुन्दकुन्द-रचित नहीं मानते हैं, किन्तु अभी वीर निर्वाण महोत्सवपर प्रकाशित और डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री द्वारा सम्पादित रयणसार ताड़पत्रीय प्रतिके आधारपरसे कुन्दकुन्द-रचित ही सिद्ध किया गया है। परम्परासे भी वह इनके द्वारा ही रचित माना जाता है। इसमें रत्नत्रयधर्मका वर्णन करते हुए श्रावक और मुनिधर्मका वर्णन किया गया है, उसमेंसे प्रस्तुत संग्रहमें केवल श्रावकधर्मका वर्णन ही संकलित किया गया है।

इसके प्रारम्भमें सुदृष्टि और कुदृष्टिका स्वरूप बताकर सम्यग्दृष्टिको आठ मद, छह अनायतन, आठ शंकादि दोष, तीन मूढ़ता, सात व्यसन, सात भय और पाँच अतीचार इन चवालीस दोषोंसे रहित होनेका निर्देश किया गया है। आगे बताया गया है कि दान, शील, उपवास और अनेक प्रकारका तपश्चरण यदि सम्यक्त्व सहित हैं, तो वे मोक्षके कारण हैं, अन्यथा वे दीर्घ संसारके कारण हैं। श्रावकधर्ममें दान और जिन-पूजन प्रधान हैं और मुनिधर्ममें ध्यान एवं स्वाध्याय मुख्य हैं। जो सम्यग्दृष्टि अपनी शक्तिके अनुसार जिन-पूजन करता है और मुनियोंको दान देता है, वह मोक्षमार्गपर चलनेवाला और श्रावकधर्मका पालनेवाला है। इससे आगे दानका फल बताकर कहा गया है कि जिस प्रकार माता गर्भस्थ बालकी सावधानीसे रक्षा करती है, उसी प्रकारसे निरालस होकर साधुओंकी वैयावृत्य करनी चाहिए। इससे आगे जो वर्णन है उसका सार इस प्रकार है—जीर्णोद्धार, पूजा-प्रतिष्ठादिसे बचे हुए धनको भोगनेवाला मनुष्य दुर्गतियोंके दुःख भोगता है। दान-पूजादिसे रहित, कर्तव्य-अकर्तव्यके विवेकसे हीन एवं क्रूर-स्वभावी मनुष्य सदा दुःख पाता है। इस पंचम कालमें मिथ्यात्वी श्रावक और साधु मिलना सुलभ है, किन्तु सम्यक्त्वी श्रावक और साधु मिलना दुर्लभ है। इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त अज्ञानीकी अपेक्षा इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त ज्ञानी श्रेष्ठ है। गुरुभक्ति-विहीन अपरिग्रही शिष्योंका तपश्चरणादि ऊषर भूमिमें बोये गये बीजके समान निष्फल है। उपशमभाव पूर्वोपार्जित कर्मका क्षय करता है और नवीन कर्मोंका आस्रव रोकता है। मिथ्यादृष्टि जीव मोक्षकी प्राप्तिके लिए नाना प्रकारके शारीरिक कष्टोंको सहन करता है, परन्तु मिथ्यात्वको नहीं छोड़ता। फिर मोक्ष कैसे पा सकता है? इस प्रकार रत्नत्रयधर्ममें सारभूत सम्यग्दर्शनका माहात्म्य बतलाकर इस ग्रन्थका 'रयणसार'- (रत्नसार) यह नाम सर्वथा सार्थक रखा गया है।

अभी तक किसी भी आधारसे रयणसारको अन्य आचार्य-रचित होना प्रमाणित नहीं हुआ है, अतः उसे कुन्दकुन्द-रचित माननेमें कोई बाधा नहीं है। समयसार प्रवचनसार आदिसे पूर्वकी यह उनकी प्रारम्भिक रचना होनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२. पुरुषार्थानुशासन-गत श्रावकाचार—पं० गोविन्द

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका वर्णन कर उन्हें किस प्रकारसे पालन करना चाहिए, इसका अनुशासन करनेसे ग्रन्थका 'पुरुषार्थानुशासन' यह नाम सर्वथा सार्थक है। इसमें धर्म पुरुषार्थका वर्णन श्रावक और मुनिके आश्रयसे किया गया है। उसमेंसे श्रावकके आश्रय-से किये गये धर्मका संकलन प्रस्तुत संग्रहके तीसरे भागमें किया गया है।

पुरुषार्थानुशासनमें अध्याय या परिच्छेदके स्थान पर 'अवसर' नामका प्रयोग किया है। प्रथम 'अवसर' में चारों पुरुषार्थोंकी विशेषताओंका दिग्दर्शन है और दूसरे 'अवसर' में पुराणोंके समान राजा श्रेणिकका भ० महावीरके वन्दनार्थ जाने और 'मनुष्य जन्मकी सार्थकताके लिए किस प्रकारका आचरण करना चाहिए', इस प्रकारका प्रश्न पूछनेपर गौतम गणधर-द्वारा पुरुषार्थोंके वर्णनरूप कथा-सम्बन्धका वर्णन है। अतः इन दो को छोड़ कर तीसरे 'अवसर' से छठे 'अवसर' का अंश संगृहीत है। जिसका सार इस प्रकार है—

तीसरे अवसरमें—धर्मका स्वरूप और फल बताकर ११ प्रतिमाओंके आधार पर श्रावक धर्मका वर्णन, सभी व्रतों और शीलोंमें सम्यग्दर्शनकी प्रधानता, देव-शास्त्र-गुरु और धर्मका स्वरूप, सम्यक्त्वका स्वरूप और भेदोंका वर्णन, आठों अंगोंका वर्णन और २५ दोषोंका वर्णन कर अन्तमें सम्यक्त्वकी महिमाका वर्णन दर्शनप्रतिमामें किया गया है।

चौथे अवसरमें—आठों मूलगुणोंका वर्णन कर मद्य-मांसादिके सेवनके दोषोंका विस्तृत निरूपण, सप्त व्यसनोंके दोष बताकर उनके त्यागका उपदेश, रात्रि-भोजनकी निन्द्यताका वर्णन, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और भोगोपभोग एवं अतिथिसंविभाग इन दो शिक्षा व्रतोंका वर्णन व्रतप्रतिमाके अन्तर्गत किया गया है।

पाँचवें अवसरमें—सामायिक प्रतिमाके अन्तर्गत सामायिकका स्वरूप बताकर उसे द्रव्य, क्षेत्रादिकी शुद्धि-पूर्वक करनेका विधान है। इसके बत्तीस दोष बताकर उनसे रहित ही सामायिक करनेका उपदेश देकर पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत धर्मध्यानका विस्तृत निरूपण कर उनके चिन्तनका विधान किया गया है।

छठे अवसरमें चौथी प्रोषधप्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तककी ८ प्रतिमाओंका बहुत सुन्दर एवं विशद वर्णन किया गया है। अनुमति त्यागी किस प्रकारके कार्योंमें अनुमति न दे, और किस प्रकारके कार्योंमें देवे, इसका विस्तृत वर्णन पठनीय है। ग्यारहवीं प्रतिमाका वर्णन बिना भेदके ही किया गया है। अन्तमें समाधिमरणका निरूपण कर श्रावक धर्मका वर्णन समाप्त किया गया है।

परिचय और समय

पुरुषार्थानुशासनके अन्तमें ग्रन्थकारने जो बृहत्प्रशस्ति दी है, उससे ज्ञात होता है कि मूल संघमें भट्टारक श्री जिनचन्द्र, उनके पट्टपर मलयकीर्त्ति और उनके पट्ट पर कमलकीर्त्ति आचार्य हुए। उनके समयमें कायस्थोंके माथुर वंशमें श्री अमर सिंह हुए। उनके पुत्र लक्ष्मण हुए। उन्होंने अग्रवाल जातिके गार्ग्य गोत्रोत्पन्न पं० गोविन्दसे इस पुरुषार्थानुशासन नामक ग्रन्थकी रचना करायी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशस्तिगत वे पद्य इस प्रकार हैं—

तस्यानेकगुणस्य शस्यधिषणस्यामर्त्यसिंहस्य स
ख्यातः सूनुरभूत् प्रतापवसतिः श्री लक्ष्मणाख्यः क्षितौ ।
यं वीक्ष्येति वितर्क्यते सुकविभिर्नीत्वा तनुं मानवीं
धर्मोऽयं नु नयोऽथवाऽथ विनयः प्राप्तः प्रजापुण्यतः ॥ १८ ॥

यशो यैर्लक्ष्मणस्यैणलक्ष्मणाऽत्रोपमीयते ।
शङ्के न तत्र तैः साक्षाच्चिल्लाक्षैर्लक्ष्म लक्षितम् ॥ १९ ॥

स नय-विनयोपेतैर्वाक्यैर्मुहुः कविमानसं
सुकृत-सुकृतापेक्षो दक्षो विधाय समुद्यतम् ।
श्रवणयुगलस्याऽऽत्मीयस्यावतंसकृते
कृतीस्तु विशदमिदं शास्त्राम्भोजं सुबुद्धिरकारयत् ॥ २१ ॥

अथाऽस्त्यग्रोतकानां सा पृथ्वी पृथ्वीव सन्ततिः ।
सच्छायाः सफला यस्यां जायन्ते नर-भूरुहाः ॥ २२ ॥

गोत्रं गार्ग्यमलञ्चकार य इह श्रीचन्द्रमाश्चन्द्रमो-
बिम्बास्यस्तनयोऽस्य धीर इति तत्पुत्रश्च होंगाभिधः ।
देहे लब्धनिजोद्भवेन सुधियः पद्मश्रियस्तत्स्त्रियो
नव्यं काव्यमिदं व्यधायि कविनाऽर्हत्पादपद्मालिना ॥ २३ ॥

(१. पदादिवर्णसंज्ञेन गोविन्देन)

इसी कारण पं० गोविन्दने इसे श्री लक्ष्मणके नामसे अंकित किया है' । जैसा कि 'अवसर' के अन्तमें पाई जानेवाली पुष्पिकाओंसे स्पष्ट है—

इति श्री पंडित गोविन्द-विरचिते पुरुषार्थानुशासने कायस्थमाथुरवंशावतंस
श्री लक्ष्मणनामाङ्किते गृहस्थधर्मोपदेशाख्योऽयं षष्ठोऽवसरः ॥ ६ ॥

'भट्टारक-सम्प्रदायमें 'मलयकीर्त्ति' नामके दो भट्टारकोंका उल्लेख है। एक वे जिन्होंने वि० सं० १५०२ में एक मंत्रको लिखाया और वि० सं० १५१० में एक मूर्त्ति प्रतिष्ठित करायी। दूसरे वे जिनके पट्टशिष्य नरेन्द्रकीर्त्तिने पिरोजसाहकी सभामें समस्या पूर्ति करके जिनमन्दिरके जीर्णोद्धार करानेकी अनुज्ञा प्राप्त की। पिरोज साह या फिरोज शाहने वि० सं० १४९३ में दिल्ली-के समीप फेरोजाबाद बसाया था। इस प्रकार दोनों ही मलयकीर्त्ति इसीके बाद हुए सिद्ध होते हैं। संभवतः दूसरे मलयकीर्तिके दूसरे शिष्य कमलकीर्त्ति हुए हैं, उनके समयमें पुरुषार्थानुशासन रचा गया है, अतः पं० गोविन्दका समय विक्रमकी सोलहवीं शतीका पूर्वार्ध जानना चाहिए।

३३. कुन्दकुन्द-श्रावकाचार—स्वामी कुन्दकुन्द

यद्यपि प्रस्तुत श्रावकाचारके रचयिताने प्रथम उल्लासके अन्तमें दी गई पुष्पिकामें अपनेको श्री जिनचन्द्राचार्यका शिष्य स्पष्ट शब्दोंमें घोषित किया है और ग्रन्थारम्भके तीसरे श्लोकमें 'वन्दे जिनविधुं गुरुम्' लिखकर अपने गुरु जिनचन्द्रको वन्दन किया है, तथापि प्रस्तुत श्रावकाचार-के रचयिता दि० सम्प्रदायमें गौतम गणधरके बाद स्मरण किये जानेवाले 'कुन्दकुन्द' नहीं है। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चित रूपसे कहा जा सकता है। इसके प्रमाणमें प्रस्तुत ग्रन्थके अनेक उल्लेख उपस्थित किये जा सकते हैं। उनमेंसे कुछको यहाँ दिया जाता है।

(१) सर्व शास्त्रोंसे कुछ सारको निकालकर अपने तथा दूसरोंके लिए पुण्य-सम्पादनार्थ इस संक्षिप्त श्रावकाचारको प्रारम्भ करना। (प्र० उ० श्लोक ८-९)

(२) पृथ्वी, जल आदिका पाँच तत्त्वोंके रूपमें उल्लेख। (प्र० उ० श्लोक २४-४३)

(३) विभिन्न प्रकारके वृक्षोंकी दातुनोंके विभिन्न गुणोंका उल्लेख। (प्र० उ० श्लोक ६३-६६)

(४) मनुस्मृति आदिके श्लोकोंके उद्धरण। (प्र०उ० श्लोक ८५-८६ आदि)

(५) खड्गासन और पद्मासन जिन-प्रतिमाओंके मान-प्रमाण आदिका विधान (प्र० उ० श्लोक १२१-१३२)

(६) हीनाधिक अंग और विभिन्न दृष्टिवाली प्रतिमा-पूजनके दुष्फलोंका वर्णन। (प्र० उ० १३८-१४४ तथा १४९-१५०)

(७) भूमि-परीक्षा। (प्र० उ० श्लोक १५३-१७०)

(८) प्रतिमा-काष्ठ-पाषाण-परीक्षा। (प्र० उ० श्लोक १७७-१८२)

(९) स्नान करनेके लिए तिथि, वार और नक्षत्रादिका विचार। (द्वि० उ० श्लोक १-१४)

(१०) क्षौर कर्मके लिए तिथि, वार और नक्षत्रादिका विचार। (द्वि० उ० श्लोक १५-२०)

(११) नवीन वस्त्र पहिरनेमें तिथि, वार और नक्षत्रादिका विचार। (द्वि० उ० श्लोक २२-२६)

(१२) ताम्बूल भक्षणके गुणगान। (द्वि० उ० श्लोक ३५-४०)

(१३) खेती करने और पशु पालनेका विधान। (द्वि० उ० श्लोक ४६-४९)

(१४) व्यापारियोंके हस्ताङ्गुलि संकेतोंका वर्णन। (द्वि० उ० श्लोक ५२-५९)

(१५) स्वामी और सेवकका स्वरूप बताकर स्वामि-सेवाका विधान। (द्वि० उ० श्लोक ७७-१०५)

(१६) मध्याह्न-कालकी पूजाके पश्चात् अपने घरके देवोंके लिए एवं अन्य देवोंके लिए पात्रमें रखकर अन्नादि समर्पणका विधान। (तृ० उ० श्लोक ८)

(१७) अतिथिको दान देनेके प्रकरणमें अजैन ग्रन्थका उद्धरण। (तृ० उ० श्लोक १६)

(१८) भोजनानन्तर मुखशुद्धिके प्रकरणमें महाभारतके श्लोकका उद्धरण। (तृ० उ० श्लोक ५४)

(१९) पुरुषके शारीरिक शुभाशुभ लक्षणोंका विस्तृत वर्णन। (पं० उ० श्लोक १०-८६)

(२०) वधूके शारीरिक शुभाशुभ लक्षणोंका विस्तृत वर्णन। (पं० उ० श्लोक ८७-११०)

(२१) विषकन्या का वर्णन। (पं० उ० श्लोक १२१-१२६)

(२२) विभिन्न ऋतुओंमें स्त्री-सेवनके कालका विधान और वात्स्यायन तथा वाग्भट्टका उल्लेख। (पं० उ० श्लोक १४४-१४६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२३) ऋतुकालमें स्त्री-सेवनका विधान। (पं० उ० श्लोक १७८-१८३)

(२४) शरीरमें वीर्यवृद्धिके लिए वृष्ययोगका निरूपण। (पं० उ० श्लोक २००-२०१)

(२५) छहों ऋतुओंके आहार-विहारादिका वर्णन। (पूरा छठा उल्लास)

(२६) अर्थोपार्जनकी प्रेरणा। (पूरा सातवाँ उल्लास)

(२७) गृहस्थजीवनमें आवश्यक देशाटक, शकुन अपशकुन, गृह-निर्माण, वास्तु-शुद्धि, आय-ज्ञान, गुरु-शिष्य-लक्षण, लौकिक शास्त्रोंके अध्ययनकी प्रेरणा, संगीत और कामशास्त्रकी उपयोगिता, सर्पोंके भेद, स्वरूप और उनके विषादिका विस्तृत वर्णन आदि। (अष्टम उल्लास श्लोक १-२४०)।

(२८) विवेकपूर्वक वचनोच्चारण, निरीक्षण-प्रकार और गमनादिक वर्णन। अष्टम उ० श्लोक ३०६-३५०)

इस प्रकारके वर्णन प्रसिद्ध समयसारादि अध्यात्म ग्रन्थोंके प्रणेता श्री कुन्दकुन्दाचार्यके द्वारा किया जाना कभी संभव नहीं है। भट्टारकोंको उनके भक्त लोग 'स्वामी' शब्दसे अभिहित करने लगे थे, अतः यही जान पड़ता है कि इस श्रावकाचारकी रचना कुन्दकुन्दाचार्यके नामपर किसी भट्टारकके द्वारा की गई है।

इसके रचयिता जैनदर्शन और धमंसम्बन्धी अध्ययन बिलकुल साधारण-सा प्रतीत होता है, इसका अनुभव 'षट्दर्शन विचार' शीर्षकके अन्तर्गत जैनदर्शनके वर्णनसे पाठकोंको स्वयं होगा। जहाँपर कि पुण्यका अन्तर्भाव संवरतत्त्वमें किया गया है। (भा० ४ पृ० ९७ श्लोक २४९)

प्रसिद्ध कुन्दकुन्दाचार्यंने अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध समयसारके प्रारम्भमें ही 'सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा' कहकर जिस काम-भोग-बन्धकथाको त्यागकर शुद्ध आत्माका निरूपण अपने समयसारमें किया है उनसे इस प्रकार अर्थ और कामपुरुषार्थका वर्णन होना सम्भव नहीं है।

दूसरे आचार्य कुन्दकुन्दके सभी ग्रन्थ प्राकृत भाषामें रचित हैं और उनकी गाथाएँ परवर्ती अनेक आचार्योंके द्वारा अपने-अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत पायी जाती हैं। परन्तु प्रस्तुत श्रावकाचारका एक भी श्लोक किसी ग्रन्थमें उद्धृत नहीं पाया जाता है।

तीसरे आचार्य कुन्दकुन्दने अपने ग्रन्थोंमें किसी पूर्ववर्ती ग्रन्थोंसे कुछ भी उद्धरण देनेका उल्लेख नहीं किया है, जबकि प्रस्तुत श्रावकाचारमें स्पष्ट शब्दोंके द्वारा सर्वशास्त्रोंके सारको निकालकर अपने ग्रन्थ-निर्माण करनेका उल्लेख किया है। उनके इस कथनका जब पूर्व-रचित जैन ग्रन्थोंके साथ मिलान करते हैं, तब किसी भी पूर्व-रचित जैन ग्रन्थसे सार लेकर ग्रन्थका रचा जाना सिद्ध नहीं होता है, प्रत्युत अनेक जैनेतर ग्रन्थोंका सार लेकर प्रस्तुत ग्रन्थका रचा जाना ही सिद्ध होता है।

चौथे आचार्य कुन्दकुन्दने अपने चारित्र पाहुडमें ग्यारह प्रतिमाओंका नाम-निर्देश करके श्रावकधर्मके १२ व्रतोंका केवल नामोल्लेखमात्र करके वर्णन किया है, जबकि प्रस्तुत सम्पूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावकाचारमें कहींपर भी न ग्यारह प्रतिमाओंका नामोल्लेख है और न स्पष्टरूपसे कहींपर भी श्रावकोंके अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप बारह व्रतोंका ही निर्देश किया गया है।

पाँचवें आचार्य कुन्दकुन्दने अपने अध्यात्म ग्रन्थोंमें पापके समान पुण्यको भी हेय बताकर उसके त्यागका ही उपदेश किया है, जब प्रस्तुत श्रावकाचारमें स्थान-स्थानपर पुण्यके उपार्जनकी प्रेरणा पायी जाती है।

इन सब कारणोंसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रस्तुत श्रावकाचार प्रसिद्ध आचार्य कुन्दकुन्दके द्वारा नहीं रचा गया है। किन्तु परवर्ती किसी कुन्दकुन्द-नामधारी व्यक्तिके द्वारा रचा गया है।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

१. सम्यग्दर्शन

श्रावकधर्मका ही नहीं, अपितु मुनिधर्मका भी मूल आधार सम्यग्दर्शन ही है। इसलिए सभी श्रावकाचारोंमें सर्व प्रथम इसीका वर्णन किया गया है। किन्तु इसके विषयमें स्वामी समन्तभद्रने जिस प्रकारसे उस पर प्रकाश डालकर धर्म-धारकोंका उद्बोधन किया है, और सरल एवं विशद रीतिसे उसका वर्णन किया है, वह अनुपप एवं अनुभव-पूर्ण है। उनके जीवनमें जो उत्तर-चढ़ाव आया और जैसी घटनाएँ घटीं, उन सब पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने सम्यग्दर्शनका स्वरूप, उसके अंग और दोष बताकर उसे निर्दोष पालन करनेकी प्रेरणा करते हुए सम्यक्त्वकी महिमा बतानेके साथ किसी भी प्रकारके गर्व करनेवालों पर जो प्रहार किया है, वह सचमुच अद्वितीय है।

स्वामी समन्तभद्रने अपने पूर्ववर्ती कुन्दकुन्दाचार्यके समान न निश्चय सम्यक्त्वकी चर्चा की, और न उमास्वातिके समान तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप व्यवहार सम्यक्त्वका निरूपण किया। किन्तु परमार्थ स्वरूप आप्त (देव) तत्प्रतिपादित आगम और निर्ग्रन्थ गुरुओंका तीन मूढ़ताओं और आठ मदोंसे रहित एवं आठ अंगोंसे युक्त होकर श्रद्धान करनेको सम्यग्दर्शन कहा है। यहाँ 'आप्त' पद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि उसके स्थान पर 'देव' शब्द कहते, तो स्वर्गादिके देवोंका ग्रहण संभव था, यदि 'ईश्वर' का प्रयोग करते तो उससे शश्वत्कर्म-विमुक्त अनादिनिधन माने जानेवाले सनातन परमेश्वर या 'महेश्वर' आदिका ग्रहण संभव था। और यदि इसी प्रकारके किसी अन्य शब्दको कहते तो उससे अवतार लेनेवाले, सृष्टि-(जन्म) और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिका ग्रहण संभव था। अतः उन सबका व्यवच्छेद करनेके लिए उन्होंने 'आप्त' पदका प्रयोग किया। इस आप्तके स्वरूपमें प्रयुक्त उत्सन्न-दोष (वीतराग) सर्वज्ञ और आगमेशी (सार्व, शास्ता या हितोपदेशी) ये तीनों ही विशेष विशेषण अपूर्व हैं। 'उत्सन्न दोष' इस पदसे सभी रागी-द्वेषी, जन्म-मरण करनेवाले एवं क्षुधा-पिपासादि दोषोंसे युक्त सभी प्रकारके देवोंका निराकरण किया गया है, 'सर्वज्ञ' पदसे अल्पज्ञानियोंका और 'आगमेशी' पदसे स्वकल्पित या कपोल-कल्पित शास्त्रज्ञोंका निराकरण कर यह प्रकट किया है कि जो सार्व अर्थात् सर्व प्राणियोंके हितका उपदेशक हो, वही आप्त हो सकता है इन तीन विशिष्ट गुणोंके बिना 'आप्तता' संभव नहीं है। यह 'आप्त' पद उन्हें कितना प्रिय था, कि उसकी मीमांसा स्वरूप देवागमस्तोत्र नामसे प्रसिद्ध 'आप्तमीमांसा' की रचना की है।

आगम या शास्त्रके लक्षणको बतलाते हुए कहा है कि जो आप्त-प्रणीत हो, वादी या प्रतिवादीके द्वारा अनुल्लंघनीय हो, प्रत्यक्ष-अनुमानादि किसी भी प्रमाणसे जिसमें विरोध या बाधा न आती हो, प्रयोजनभूत तत्त्वोंका उपदेशक हो और कुमार्गोंका उन्मूलन करनेवाला हो, ऐसा हितोपदेशी शास्तारूप आप्तके द्वारा कथित शास्त्र ही आगम कहला सकता है, इसके विपरीत जिसके प्रणेताका ही पता नहीं, ऐसे हिंसा-प्रधान वेदादिको आगम नहीं माना जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरुका स्वरूप बताते हुए कहा है कि जो इन्द्रियोंके विषयोंसे निष्पृह हो, आरम्भ और परिग्रहसे रहित हो, तथा ज्ञान, ध्यान और तपमें संलग्न रहता हो। उक्त विशेषणोंसे सभी प्रकारके ढोंगी, विषय-भोगी, आरंभी, परिग्रही और ज्ञान-ध्यानसे रहित मूढ साधुओंका निराकरण किया गया है।

इस प्रकारके आप्त, आगम और साधुओंकी श्रद्धा भक्ति, रुचि या दृढ़ प्रतीतिको सम्यक्त्वका स्वरूप बताकर स्वामी समन्तभद्रने उसके आठों अंगोंका स्वरूप और उनमें ख्याति-प्राप्त प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम कहे और साथ ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह कही कि जैसे एक अक्षरसे भी हीन मंत्र सर्प-विषको दूर करनेमें समर्थ नहीं होता है, उसी प्रकार एक भी अंगसे हीन सम्यक्त्व भी संसारकी परम्पराको काटनेमें समर्थ नहीं है।

एक-एक अंगकी इस महत्ता पर उन लोगोंका ध्यान जाना चाहिए—जो कि पर-निन्दा और आत्म-प्रशंसा करते हुए भी स्वयंको सम्यग्दृष्टि मानते हैं। स्वामी समन्तभद्रने आठ मदोंका वर्णन करते हुए दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह कही कि जो व्यक्ति ज्ञान, तप आदिके मदावेशमें दूसरे धर्मात्मा पुरुषोंकी निन्दा तिरस्कार या अपमान करता है, वह उनका नहीं, अपितु अपने ही धर्मका अपमान करता है, क्योंकि धार्मिक जनोंके बिना धर्म रह नहीं सकता। जो जाति और कुलकी उच्चतासे दूसरे हीन जाति या कुलमें उत्पन्न हुए जनोंकी निन्दा या अपमान करते हैं उन्हें फटकारते हुए कहा—केवल सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न चाण्डालको भी गणधरादिने देव जैसा उच्च कहा है। जैसे भस्माच्छादित अंगार अपने आन्तरिक तेजसे सम्पन्न रहता है। भले ही भस्मसे ढके होनेसे उसका तेज लोगोंको बहिर न दिखे। सम्यक्त्व जैसे आत्मिक अन्तरंग गुणका कोई बाह्य रूप-रंग नहीं कि जो बाहिरसे देखनेमें आवे।

इस वर्णनसे उनके भस्मक व्याधि-कालके अनुभव परिलक्षित होते हैं, जब कि उस व्याधिके प्रशमनार्थ विभिन्न देशोंमें विभिन्न वेष धारण करके उन्हें परिभ्रमण करना पड़ा था और लोगोंके मुखोंसे नाना प्रकारकी निन्दा सुनना पड़ी थी। पर वे बाह्य वेष बदलते हुए भी अन्तरंगमें सम्यक्त्वसे सम्पन्न थे।

जाति और कुलके मद करनेवालोंको लक्ष्य करके कहा—जाति-कुल तो देहाश्रित गुण हैं। जीवन-भर उच्च गोत्री बना देव भी पापके उदयसे क्षण भरमें कुत्ता बन जाता है, और जीवन-भर नीच गोत्र वाला कुत्ता भी मर कर पुण्यके उदयसे देव बन जाता है।

सम्यक्त्वकी महत्ता बताते हुए उन्होंने कहा—यह सम्यग्दर्शन तो मोक्षमार्गमें कर्णधार है, इसके बिना न कोई भव-सागरसे पार ही हो सकता है और न ज्ञान-चारित्ररूप वृक्षकी उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल-प्राप्ति ही हो सकती है। सम्यक्त्व-हीन साधुसे सम्यक्त्व युक्त गृहस्थ मोक्षमार्गस्थ एवं श्रेष्ठ है। तीन लोक और तीन कालमें सम्यक्त्वके समान कोई श्रेयस्कर नहीं और मिथ्यात्वके समान कोई अश्रेयस्कारी नहीं है। अन्तमें पूरे सात श्लोकों द्वारा सम्यग्दर्शनकी महिमाका वर्णन करते हुए उन्होंने बताया—इसके ही आश्रयसे जीव उत्तरोत्तर विकास करते हुए तीर्थंकर बनकर शिव पद पाता है।

कुन्दकुन्द स्वामीके सभी पाहुड सम्यक्त्वकी महिमासे भरपूर हैं, फिर भी उन्होंने इसके लिए एक दंसणपाहुडकी स्वतंत्र रचनाकर कहा है कि दर्शनसे भ्रष्ट ही व्यक्ति वास्तविक भ्रष्ट है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र-भ्रष्ट हुआ नहीं, क्योंकि दर्शन-भ्रष्ट निर्माणपद नहीं पा सकता। दर्शन-विहीन व्यक्ति वन्दनीय नहीं है, सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह ही कर्म-बन्धका विनाशक है, धर्मात्माके दोषोंको कहनेवाला स्वयं भ्रष्ट है, सम्यक्त्वसे ही हेय-उपादेयका विवेक प्राप्त होता है, सम्यक्त्व ही मोक्ष-महलका मूल एवं प्रथम सोपान है।

सम्यक्त्व-विषयक उक्त वर्णनको प्रायः सभी परवर्ती श्रावकाचार-रचयिताओंने अपनाया फिर भी कुछने जिन नवीन बातोंपर प्रकाश डाला है, उनका उल्लेख करना आवश्यक है।

स्वामी कार्तिकेयने सम्यक्त्वके उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक भेदोंका स्वरूप कहकर बताया कि आदिके दो सम्यक्त्वोंको तो यह जीव असंख्य बार ग्रहण करता और छोड़ता है, किन्तु क्षायिकको ग्रहण करनेके बाद वह छूटता नहीं और उसी तीसरे और चौथे भवमें निर्वाण पद प्राप्त कराता है। इन्होंने वीतराग देव, दयामयी धर्म और निर्ग्रन्थ गुरुके माननेवालेको व्यवहार सम्यग्-दृष्टि और द्रव्योंको और उनकी सर्व पर्यायोंको निश्चयरूपसे यथार्थ जानता है, उसे शुद्ध सम्यग्-दृष्टि कहा है। सम्यक्त्व सर्व रत्नोंमें महा रत्न है, सर्व योगोंमें उत्तम योग है, सर्व ऋद्धियोंमें महा ऋद्धि और यही सभी सिद्धियोंको करनेवाला है। सम्यग्दृष्टि दुर्गतिके कारणभूत कर्मका बन्ध नहीं करता है और अनेक भव-बद्ध कर्मोंका नाश करता है।

आचार्य अमृतचन्द्रने बताया कि मोक्ष-प्राप्तिके लिए सर्वप्रथम सभी प्रयत्न करके सम्यक्त्व-का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि इसके होनेपर ही ज्ञान और चारित्र होते हैं। इन्होंने जीवादि तत्त्वोंके विपरीताभिनिवेश-रहित श्रद्धानको सम्यक्त्व कहा। निर्विचिकित्सा अंगके वर्णनमें यहाँ तक कहा कि इस अंगके धारकको मल-मूत्रादि को देखकर ग्लानि नहीं करनी चाहिए। उपगूह-नादि शेष चार अंगोंका स्व और परकी अपेक्षा किया गया वर्णन अपूर्व है।

सोमदेवसूरिने अपने समयमें प्रचलित सभी मत-मतान्तरोंकी समीक्षा करके उनका निरसन कर सत्यार्थ आप्त, आगम और पदार्थोंके श्रद्धानको सम्यक्त्व और अश्रद्धानको मिथ्यात्व कहा। सम्यक्त्वके सराग-वीतरागरूप दो भेदोंका, उपशमादिरूप तीन भेदोंका और आज्ञा, मार्ग आदि दश भेदोंका वर्णनकर उसके २५ दोषोंको बतलाकर आठों अंगोंका वर्णन प्रसिद्ध पुरुषोंके विस्तृत कथाओंके साथ किया। प्रस्तुत संग्रहमें कथा भाग छोड़ दिया गया है।

चामुण्डरायने जिनोपदिष्ट मोक्षमार्गके श्रद्धानको सम्यक्त्वका स्वरूप बतलाकर सम्यक्त्वी जीवके संवेग, निर्वेग, आत्मा-निन्दा, आत्म-गर्हा, शमभाव, भक्ति, अनुकम्पा और वात्सल्य गुणोंका भी निरूपण किया।

आ० अमितगतिने अपने उपासकाचारके दूसरे अध्यायमें सम्यक्त्वकी प्राप्ति, और उसके भेदोंका विस्तृत स्वरूप वर्णन करते हुए लिखा है कि वीतराग सम्यक्त्वका लक्षण उपेक्षाभाव है और सराग सम्यक्त्वका लक्षण प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भावरूप है। इनका बहुत सुन्दर विवेचन करते हुए सम्यक्त्वके श्रद्धा भक्ति आदि आठ गुणोंका वर्णनकर अन्तमें लिखा है कि जो एक अन्तर्मुहूर्तको भी सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं वे भी अनन्त संसारको सान्त कर लेते हैं।

आ० वसुनन्दिने सम्यक्त्वका स्वरूप बताकर कहा है कि उसके होनेपर जीवमें संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशमभाव, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा ये आठ गुण प्रकट होते हैं। वस्तुतः सम्यक्त्वी पुरुषकी पहिचान ही इन आठ गुणोंसे होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सावयधम्मदोहाकारने सम्यक्त्वकी महिमा बताते हुए लिखा है कि जहाँ पर गरुड बैठा हो, वहाँ पर क्या विष-धर सर्प ठहर सकते हैं, इसी प्रकार जिसके हृदयमें सम्यक्त्वगुण प्रकाशमान है, वहाँ पर क्या कर्म ठहर सकते हैं ? अर्थात् शीघ्र ही निर्जीर्ण हो जाते हैं।

पं० आशाधरने सम्यक्त्वकी महत्ता बताते हुए कहा है कि जो व्यक्ति सर्वज्ञकी आज्ञासे 'इन्द्रिय-विषय-जनित सुख हेय है और आत्मिक सुख उपादेय है' ऐसा दृढ़ श्रद्धान करते हुए भी चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे वैषयिक सुखोंका सेवन करता है और दूसरोंको पीड़ा भी पहुँचाता है, फिर भी इन कार्योंको बुरा जानकर अपनी आलोचना, निन्दा और गर्हा करता है, वह अविरत सम्यक्त्वी भी पाप-फलसे अतिसन्तप्त नहीं होता है। जैसे कि चोरीको बुरा कार्य माननेवाला भी चोर कुटुम्ब-पालनादिसे विवश होकर चोरीको करता है और कोतवालके द्वारा पकड़े जानेपर तथा मार-पीटसे पीड़ित होनेपर अपने निन्द्य कार्यकी निन्दा करता है तो वह भी अधिक दण्डसे दण्डित नहीं होता हैं।

पं० मेधावीने उक्त बातका उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक मुहूर्त्तमात्र भी सम्यक्त्वको धारण कर छोड़नेवाला जीव भी दीर्घकाल तक संसारमें परिभ्रमण नहीं करता। साथ ही यह भी कहा है कि आठ अंगों और प्रशम-संवेगादि भावोंसे ही सम्यक्त्वीकी पहिचान होती है।

आ० सकलकीर्त्तिने लिखा है कि सम्यक्त्वके बिना व्रत-तपादिसे मोक्ष नहीं मिलता। गुणभूषणने भी समन्तभद्रादिके समान सम्यक्त्वका वर्णन कर अन्तमें कहा है कि जिसके केवल सम्यक्त्व ही उत्पन्न हो जाता है, उसका नीचेके छह नरकोंमें, भवत्रिक देवोंमें, स्त्रियोंमें, कर्मभूमिज तिर्यंचों एवं दीन-दरिद्री मनुष्योंमें जन्म नहीं होता।

पं० राजमल्लजीने सम्यक्त्वका जैसा अपूर्व सांगोपांग सूक्ष्म वर्णन किया है वह श्रावकाचारोंमें तो क्या, करणानुयोग या द्रव्यानुयोगके किसी भी शास्त्रमें दृष्टि-गोचर नहीं होता। सम्यक्त्वविषयक उनका यह समग्र विवेचन पढ़कर मनन करनेके योग्य है। प्रशम-संवेगादि गुणोंका विशद वर्णन करते हुए लिखा है कि ये बाह्य दृष्टिसे सम्यक्त्वके लक्षण हैं। यदि वे सम्यक्त्वके बिना हों तो उन्हें प्रशमाभास आदि जानना चाहिए।

उमास्वामि-श्रावकाचारमें रत्नकरण्डक, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि पूर्व-रचित श्रावकाचारोंके अनुसार ही सम्यग्दर्शन, उसके अंगोंका भेद, महिमा आदिका वर्णन करते हुए लिखा है कि हृदयस्थित सम्यक्त्व निःशंकितादि आठ अंगोंसे जाना जाता है। इस श्रावकाचारमें प्रशम, संवेग आदि गुणोंके स्वरूपका विशद वर्णन किया गया है और अन्तमें लिखा है कि जिसके हृदयमें इन आठ गुणोंसे युक्त सम्यक्त्व स्थित है, उसके घरमें निरन्तर निर्मल लक्ष्मी निवास करती है।

पूज्यपाद श्रावकाचारमें कहा है कि जैसे भवनका मूल आधार नींव है उसी प्रकार सर्व व्रतोंका मूल आधार सम्यक्त्व है। व्रतसार श्रावकाचारमें भी यही कहा है। व्रतोद्योतन श्रावकाचार में कहा है कि सम्यग्दर्शनके बिना व्रत, समिति और गुप्तिरूप तेरह प्रकारका चारित्र धारण करना निरर्थक है। श्रावकाचारसारोद्धारमें तो रत्नकरण्डके अनेक श्लोक उद्धृत करके कहा है कि एक भी अंगसे हीन सम्यक्त्व जन्म-सन्ततिके छेदनेमें समर्थ नहीं है। पुरुषार्थानुशासनमें कहा है कि सम्यक्त्वके बिना दीर्घकाल तक तपश्चरण करनेपर भी मुक्तिकी प्राप्ति संभव नहीं है। इस प्रकार सभी श्रावकाचारोंमें सम्यक्त्वकी जो महिमाका वर्णन किया गया है उसपर रत्नकरण्डका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी समन्तभद्रने तो सम्यक्त्वके आठों अंगोंमें प्रसिद्धि-प्राप्त पुरुषोंके नामोंका केवल उल्लेख ही किया है, पर सोमदेव और उनसे परवर्ती अनेक आचार्योंने तो उनके कथानकोंका विस्तारसे वर्णन भी किया है।

उपर्युक्त सर्व कथनका सार यह है कि प्रत्येक विचार-शील व्यक्तिको धर्मके मूल आधार सम्यक्त्वको सर्व प्रथम धारण करनेका प्रयत्न करना चाहिए और इसके लिए गुरूपदेश-श्रवण और तत्त्व-चिन्तन-मननसे आत्म-श्रद्धाकी प्राप्ति आवश्यक है।

सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेपर नरक, तिर्यंच और मनुष्य गतिका आयु-बन्ध न होकर देवगतिका ही आयु-बन्ध होता है। यदि मिथ्यात्वदशामें आयु-बन्ध नरकादि गतियोंका हो भी गया हो तो सातवें नरककी ३३ सागरकी भी आयु-घटकर प्रथम नरककी रह जाती है। नरक-आयुकी इतनी अधिक कमी कैसे होती है? इसका उत्तर यह है कि सम्यक्त्वी जीव प्रतिदिन प्रति समय जो अपने किये हुए खोटे कार्यकी निन्दा, गर्हा और आलोचना किया करता है, उसका ही यह सुफल होता है कि वह पूर्व-बद्ध तीव्र अनुभाग और अधिक स्थितिवाले कर्मोंको मन्द अनुभाग और अल्प स्थितिवाला कर देता है। अतः प्रत्येक विवेकी पुरुषको प्रति दिन अपने द्वारा किये गये पाप-कार्योंकी आलोचना, निन्दा और गर्हा करते रहना चाहिए। सम्यक्त्वी पुरुषके आत्म-निन्दा और गर्हा ये गुण माने गये हैं। इनके द्वारा ही अविरत सम्यक्त्वी पुरुष भी प्रति समय असंख्यात-गुणी कर्म-निर्जरा करता रहता है।

२. उपासक या श्रावक

गृहस्थ व्रतीको उपासक, श्रावक, देशसंयमी, आगारी आदि नामोंसे पुकारा जाता है। यद्यपि साधारणतः ये सब पर्यायवाची नाम माने गये हैं, तथापि यौगिक दृष्टिसे उनके अर्थोंमें परस्पर कुछ विशेषता है। यहाँ क्रमशः उक्त नामोंके अर्थोंका विचार किया जाता है।

'उपासक' पदका अर्थ उपासना करनेवाला होता है। जो अपने अभीष्ट देवकी, गुरुकी, धर्मकी उपासना अर्थात् सेवा, वैयावृत्य और आराधना करता है, उसे उपासक कहते हैं। गृहस्थ मनुष्य वीतराग देवकी नित्य पूजा-उपासना करता है, निर्ग्रन्थ गुरुओंकी सेवा-वैयावृत्त्यमें नित्य तत्पर रहता है और सत्यार्थ धर्मकी आराधना करते हुए उसे यथाशक्ति धारण करता है, अतः उसे उपासक कहा जाता है।

'श्रावक' इस नामकी निरुक्ति इस प्रकार की गई है:—

> 'श्रन्ति पचन्ति तत्त्वार्थश्रद्धानं निष्ठां नयन्तीति श्राः,
> तथा वपन्ति गुणवत्सप्तक्षेत्रेषु धनबीजानि निक्षिपन्तीति वाः,
> तथा किरन्ति क्लिष्टकर्मरजो विक्षिपन्तीति काः
> ततः कर्मधारये श्रावका इति भवति।' (अभिधानराजेन्द्र 'सावय' शब्द)

इसका अभिप्राय यह है कि 'श्रावक' इस पदमें तीन शब्द हैं। इनमेंसे 'श्रा' शब्द तो तत्त्वार्थ-श्रद्धानकी सूचना करता है, 'व' शब्द सप्त धर्म-क्षेत्रोंमें धनरूप बीज बोनेकी प्रेरणा करता है और 'क' शब्द क्लिष्ट कर्म या महापापोंको दूर करनेका संकेत करता है। इस प्रकार कर्मधारय समास करने पर 'श्रावक' यह नाम निष्पन्न हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ विद्वानोंने श्रावक पद का इस प्रकारसे भी अर्थ किया है:—

अभ्युपेतसम्यक्त्वः प्रतिपन्नाणुव्रतोऽपि प्रतिदिवसं यतिभ्यः सकाशात्साधूनामागारिणां च सामाचारीं शृणोतीति श्रावकः।—श्रावकधर्म प्र० गा० २

अर्थात् जो सम्यक्त्वी और अणुव्रती होने पर भी प्रतिदिन साधुओंसे गृहस्थ और मुनियोंके आचार धर्मको सुने, वह श्रावक कहलाता है।

कुछ विद्वानोंने इसी अर्थको और भी पल्लवित करके कहा है:—

श्रद्धालुतां श्राति शृणोति शासनं दीने वपेदाशु वृणोति दर्शनम्।
कृतत्वपुण्यानि करोति संयमं तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः॥

अर्थ—जो श्रद्धालु होकर जैन शासनको सुने, दीन जनोंमें अर्थको तत्काल वपन करे अर्थात् दान दे, सम्यग्दर्शनको वरण करे, सुकृत और पुण्यके कार्य करे, संयमका आचरण करे उसे विचक्षण जन श्रावक कहते हैं।

उपर्युक्त सर्व विवेचनका तात्पर्य यही है कि जो गुरुजनोंसे आत्म-हितकी बातको सदा सावधान होकर सुने, वह श्रावक कहलाता है[1]।

अणुव्रतरूप देश संयमको धारण करनेके कारण देशसंयमी या देशविरत कहते हैं। इसीका दूसरा नाम संयतासंयत भी है क्योंकि यह स्थूल या त्रसहिंसाकी अपेक्षा संयत है और सूक्ष्म या स्थावर हिंसाकी अपेक्षा असंयत है। घरमें रहता है, अतएव इसे गृहस्थ, सागार, गेही, गृही और गृहमेधी आदि नामोंसे भी पुकारते हैं। यहाँ पर 'गृह' शब्द उपलक्षण है, अतः जो पुत्र, स्त्री, मित्र, शरीर, भोग आदिसे मोह छोड़नेमें असमर्थ होनेके कारण घरमें रहता है उसे गृहस्थ सागार आदि कहते हैं।

३. उपासकाध्ययन या श्रावकाचार

उपासक या श्रावक जनोंके आचार-धर्मके प्रतिपादन करनेवाले सूत्र, शास्त्र या ग्रन्थको उपासकाध्ययन-सूत्र, उपासकाचार या श्रावकाचार नामोंसे व्यवहार किया जाता है। द्वादशांग श्रुतके बारह अंगोंमें श्रावकोंके आचार-विचारका स्वतन्त्रतासे वर्णन करनेवाला सातवाँ अंग उपासकाध्ययन माना गया है। आंचार्य वसुनन्दिने तथा अन्य भी श्रावकाचार रचयिताओंने अपने ग्रन्थका नाम उपासकाध्ययन ही दिया है।

स्वामी समन्तभद्रने संस्कृत भाषामें सबसे पहले उक्त विषयका प्रतिपादन करनेवाला स्वतन्त्र ग्रन्थ रचा और उसका नाम 'रत्नकरण्डक' रक्खा। उसके टीकाकार आचार्य प्रभाचन्द्रने अपनी टीकामें और उसके प्रत्येक परिच्छेदके अन्तमें 'रत्नकरण्डकनाम्नि उपासकाध्ययने' वाक्यके द्वारा 'रत्नकरण्डक नामक उपासकाध्ययन' ऐसा लिखा है। इस उल्लेखसे भी यह सिद्ध है कि

---

१. परलोयहियं सम्मं जो जिणवयणं सुणेइ उवजुत्तो।
अइतिव्वकम्मविगमा सुक्कोसो सावगो एत्थ॥—पंचा० १ विव०
अवाप्तदृष्ट्यादिविशुद्धसम्पत्परं समाचारमनुप्रभातम्।
शृणोति यः साधुजनादतन्द्रस्तं श्रावकं प्राहुरमी जिनेन्द्राः॥—(अभिधानराजेन्द्र, 'सावय' शब्द)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक-धर्मके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रको सदासे उपासकाध्ययन ही कहा जाता रहा है। पीछे लोग अपने बोलनेकी सुविधाके लिए श्रावकाचार नामका व्यवहार करने लगे।

आचार्य सोमदेवने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ यशस्तिलकके पाँचवें आश्वासके अन्तमें 'उपासकाध्ययन' कहनेकी प्रतिज्ञा की है। यथा—

इयता ग्रन्थेन मया प्रोक्तं चरितं यशोधरनृपस्य।
इत उत्तरं तु वक्ष्ये श्रुतपठितमुपासकाध्ययनम्॥

अर्थात् इस पाँचवें आश्वास तक तो मैंने महाराज यशोधरका चरित कहा। अब इससे द्वादशांग-श्रुत-पठित उपाकाध्ययनको कहूँगा।

दिगम्बर-परम्परामें श्रावक-धर्मका प्रतिपादन करनेवाले जितने श्रावकाचार हैं, उन सबका संकलन प्रस्तुत संग्रहमें कर लिया गया है। उसके अतिरिक्त स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षाकी धर्मभावनामें, तत्त्वार्थसूत्रके सातवें अध्याय, आदिपुराणके ३८, ३९, ४०वें पर्वमें, यशस्तिलकके ६, ७, ८वें आश्वासमें, तथा प्रा० सं० भावसंग्रहमें भी श्रवकधर्मका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। उनका भी संकलन प्रस्तुत संग्रहमें है। श्वेताम्बर-परम्परामें उपासकदशासूत्र, श्रावकधर्मप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

४. श्रावकधर्म-प्रतिपादनके प्रकार

उपलब्ध जैन वाङ्मयमें श्रावक-धर्मका वर्णन तीन प्रकारसे पाया जाता है :—

१. ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर।
२. बारह व्रत और मारणान्तिकी सल्लेखनाका उपदेश देकर।
३. पक्ष, चर्या और साधनका प्रतिपादन कर।

(१) उपर्युक्त तीनों प्रकारोंमेंसे प्रथम प्रकारके समर्थक या प्रतिपादक आचार्य कुन्दकुन्द, स्वामी कार्त्तिकेय और वसुनन्दि आदि रहे हैं। इन्होंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर ही श्रावक-धर्मका वर्णन किया है। आ० कुन्दकुंदने यद्यपि श्रावक-धर्मके प्रतिपादनके लिए कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ या पाहुडकी रचना नहीं की है, तथापि चारित्र-पाहुडमें इस विषयका वर्णन उन्होंने गाथाओं द्वारा किया है। यह वर्णन अति संक्षिप्त होनेपर भी अपने-आपमें पूर्ण है और उसमें प्रथम प्रकारका स्पष्ट निर्देश किया गया है। स्वामी कार्त्तिकेयने भी श्रावक धर्मपर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं रचा है, पर उनके नामसे प्रसिद्ध 'अनुप्रेक्षा' में धर्मभावनाके भीतर श्रावक धर्मका वर्णन बहुत कुछ विस्तारके साथ किया है। इन्होंने भी बहुत स्पष्ट रूपसे सम्यग्दर्शन और ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर ही श्रावक धर्मका वर्णन किया है। स्वामिकार्त्तिकेयके पश्चात् आ० वसुनन्दिने भी उक्त सरणिका अनुसरण किया। इन तीनों ही आचार्योंने न अष्ट मूल गुणोंका वर्णन किया है और न बारह व्रतोंके अतीचारोंका ही। प्रथम प्रकारका अनुसरण करनेवाले आचार्योंमेंसे स्वामिकार्त्तिकेयको छोड़कर शेष सभीने सल्लेखनाको चौथा शिक्षाव्रत माना है।

उक्त तीनों प्रकारोंमेंसे यह प्रथम प्रकार ही आद्य या प्राचीन प्रतीत होता है, क्योंकि धवला और जयधवला टीकामें आ० वीरसेनने उपासकाध्ययन नामक अंगका स्वरूप इस प्रकार दिया है—

१. उवासयज्झयणं णाम अंगं एक्कारस लक्ख-सत्तरि सहस्सपदेहि 'दंसण वद''''''इदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक्कारसवि उवासगाणं लक्खणं तेसिं च वदारोवणविहाणं तेसिमाचरणं च वण्णेदि। (षट्खंडागम धवलाटीका भा० १ पृ० १०२)

२. उवासयज्झयणं णाम अंगं दंसण-वय-सामाइय-पोसहोववास-सचित्त-रायिभत्त बंभारंभ-परिग्गहाणुमणुद्दिट्ठणामाणमेकारसण्हमुवासयाणं धम्ममेक्कारसविहं वण्णेदि (कसायपाहुड जयधवला-टीका भा० ९ पृ० १३०)

अर्थात् उपासकाध्ययननामा सातवाँ अंग, दर्शन, व्रत, सामायिक आदि ग्यारह प्रकारके उपासकोंका लक्षण, व्रतारोपण आदिका वर्णन करता है।

स्वामिकार्त्तिकेयके पश्चात् ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर श्रावक-धर्मका प्रतिपादन करनेवालोंमें आ० वसुनन्दि प्रमुख हैं।[1] इन्होंने अपने उपासकाध्ययनमें उसी परिपाटीका अनुसरण किया है, जिसे कि आ० कुन्दकुन्द और स्वामिकार्त्तिकेयने अपनाया है।

स्वामिकार्त्तिकेयने सम्यक्त्वकी विस्तृत महिमाके पश्चात् ग्यारह प्रतिमाओंके आधार पर बारह व्रतोंका स्वरूप निरूपण किया है। पर वसुनन्दिने प्रारम्भमें सात व्यसनोंका और उनके दुष्फलोंका खूब विस्तारसे वर्णन कर मध्यमें बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमाओंका, तथा अन्तमें विनय, वैयावृत्त्य, पूजा, प्रतिष्ठा और दानका वर्णन भी विस्तारसे किया है। इस प्रकार प्रथम प्रकार प्रतिपादन करनेवालोंमें तदनुसार श्रावक धर्मका प्रतिपादन क्रमसे विकसित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

(२) द्वितीय प्रकार अर्थात् बारह व्रतोंको आधार बनाकर श्रावकधर्मका प्रतिपादन करने-वाले आचार्योंमें उमास्वाति और समन्तभद्र प्रधान हैं। आ० उमास्वातिने अपने तत्त्वार्थसूत्रके सातवें अध्यायमें श्रावक-धर्मका वर्णन किया है। इन्होंने व्रतीके आगारी और अनगारी भेद करके अणुव्रतधारीको आगारी बताया और उसे तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत रूप सप्त शीलसे सम्पन्न कहा[2]। आ० उमास्वातिने ही सर्वप्रथम बारह व्रतोंके पाँच-पाँच अतीचारोंका वर्णन किया है। तत्त्वार्थसूत्रकारने अतीचारोंका यह वर्णन कहाँसे किया, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसके निर्णयार्थ जब हम वर्तमानमें उपलब्ध समस्त दि० श्वे० जैन वाङ्मयका अवगाहन करते हैं, तब हमारी दृष्टि उपासकदशा सूत्र पर अटकती है। यद्यपि वर्तमानमें उपलब्ध यह सूत्र तीसरी वाचना-के बाद लिपि-बद्ध हुआ है, तथापि उसका आदि स्रोत तो श्वे० मान्यताके अनुसार भ० महावीरकी वाणीसे ही माना जाता है। जो हो, चाहे अतीचारोंके विषयमें तत्त्वार्थसूत्रकारने उपासकदशासूत्र-का अनुसरण किया हो और चाहे उपासकदशासूत्रकारने तत्त्वार्थसूत्रका, पर इतना निश्चित है कि दि० परम्परामें तत्त्वार्थसूत्रसे पूर्व अतीचारोंका वर्णन किसीने नहीं किया।

तत्त्वार्थसूत्र और उपासकदशासूत्रमें एक समता और पाई जाती है और वह है मूलगुणोंके न वर्णन करनेकी। दोनों ही सूत्रकारोंने आठ मूलगुणोंका कोई वर्णन नहीं किया है। यदि कहा जाय कि तत्त्वार्थसूत्रकी संक्षिप्त रचना होनेसे अष्टमूलगुणोंका वर्णन न किया गया होगा, सो माना

---

१. यद्यपि अमितगतिने भी ११ प्रतिमाओंका वर्णन किया है, पर श्रावकके व्रतोंके वर्णनके पश्चात् किया है। ११ प्रतिमाओंके आधार पर नहीं किया है।—सम्पादक

२. देखो तत्त्वार्थ० अ० ७, सू० १८-२१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं जा सकता। क्योंकि जब सूत्रकार एक-एक व्रतके अतीचार बतानेके लिए पृथक्-पृथक् सूत्र बना सकते थे, अहिंसादि व्रतोंकी भावनाओंका भी पृथक्-पृथक् वर्णन कर सकते थे, तो क्या अष्टमूलगुणोंके लिए एक भी सूत्रको स्थान नहीं दे सकते थे ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसके साथ ही सूत्रकारने श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंका भी कोई निर्देश नहीं किया ? यह भी एक दूसरा विचारणीय प्रश्न है।

तत्त्वार्थसूत्रसे उपासकदशासूत्रमें इतनी बात अवश्य विशेष पाई जाती है कि उसमें ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन १२ व्रतोंके सातिचार वर्णनके पश्चात् और सल्लेखना धारण करनेके पूर्व किया है। इस उपासकदशासूत्रमें वर्णित दशों ही श्रावकोंने बारह व्रतोंको जीवनके अधिकांश भागमें पालकर समाधिमरणसे पूर्व ही ११ प्रतिमाओंका पालन कर सल्लेखना स्वीकार की है। उक्त उपासकदशासूत्रमें कुन्दकुन्द या स्वामिकार्त्तिकेयके समान प्रतिमाओंको आधार बनाकर श्रावक-धर्मका वर्णन नहीं किया गया है। किन्तु एक नवीन ही रूप वहाँ दृष्टिगोचर होता है। जो इस प्रकार है :—

आनन्द नामक एक बड़ा धनी सेठ भ० महावीरके उपदेशसे प्रभावित होकर विनयपूर्वक निवेदन करता है कि भगवन्, मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनकी श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ और वह मुझे सर्व प्रकारसे अभीष्ट एवं प्रिय भी है। भगवान्‌के दिव्य-सान्निध्यमें जिस प्रकार अनेक राजे-महाराजे और धनाढ्य पुरुष प्रव्रजित होकर धर्म-साधन कर रहे हैं, उस प्रकारसे मैं प्रव्रजित होनेके लिए अपनेको असमर्थ पाता हूँ। अतएव भगवन्, मैं आपके पास पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकारके गृहस्थ धर्मको स्वीकार करना चाहता हूँ।[1] इसके अनन्तर उसने क्रमशः एक-एक पापका स्थूल रूपसे प्रत्याख्यान करते हुए पाँच अणुव्रत ग्रहण किये और दिशा आदिका परिमाण करते हुए सात शिक्षाव्रतोंको ग्रहण किया। तत्पश्चात् उसने घरमें रहकर बारह व्रतोंका पालन करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत किये। पन्द्रहवें वर्षके प्रारम्भमें उसे विचार उत्पन्न हुआ कि मैंने जीवनका बड़ा भाग गृहस्थीके जंजालमें फँसे हुए निकाल दिया है। अब जीवनका तीसरा पन है, क्यों न गृहस्थीके संकल्प-विकल्पोंसे दूर होकर और भ० महावीरके पास जाकर मैं जीवन-का अवशिष्ट समय धर्म-साधनमें व्यतीत करूँ ? ऐसा विचार कर उसने जातिके लोगोंको आमन्त्रित करके उनके सामने अपने ज्येष्ठ पुत्रको गृहस्थीका सर्व भार सौंप कर सबसे बिदा ली और भ० महावीरके पास जाकर उपासकोंकी 'दंसणपडिमा' आदिको स्वीकार कर उनका यथाविधि पालन करने लगा। एक-एक 'पडिमा' को उस-उस प्रतिमाकी संख्यानुसार उतने-उतने मास तक पालन करते हुए आनन्द श्रावकने ग्यारह पडिमाओंके पालन करनेमें ६६ मास अर्थात् ५।। वर्ष व्यतीत किये। तपस्यासे अपने शरीरको अत्यन्त कृश कर डाला। अन्तमें भक्त-प्रत्याख्यान नामक

---

१. सद्दहामि णं भंते, णिग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते, णिग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते, णिग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते, तहमेयं भंते, अवितहमेयं भंते, इच्छियमेयं भंते, पडिच्छियमेयं भंते, इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते, से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु जहा णं देवाणुप्पियाणं अन्तिए बहवे राईसर तलवर-मांडविक-कोडुम्बिय-सेट्ठि-सत्थवाहप्पभिइया मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुंडे जाव पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवाल-सविहं गिहिधम्मं पडिवज्जस्सामि। उपासकदशासूत्र अ० १ सू० १२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संन्यासको धारण कर समाधिमरण किया और शुभ परिणाम वा शुभ लेश्याके योगसे सौधर्म स्वर्गमें चार पल्योपमकी स्थितिका धारक महर्द्धिक देव उत्पन्न हुआ।[1]

इस कथानकसे यह बात स्पष्ट है कि जो सीधा मुनि बननेमें असमर्थ है, वह श्रावकधर्म धारण करे और घरमें रहकर उसका पालन करता रहे। जब वह घरसे उदासीनताका अनुभव करने लगे और देखे कि अब मेरा शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण हो रहा है और इन्द्रियोंकी शक्ति घट रही है, तब घरका भार बड़े पुत्रको संभलवाकर और किसी गुरु आदिके समीप जाकर क्रमशः ग्यारह प्रतिमाओंका नियत अवधि तक अभ्यास करते हुए अन्तमें या तो मुनि बन जाय, या संन्यास धारण कर आत्मार्थको सिद्ध करे।

तत्त्वार्थसूत्रमें यद्यपि ऐसी कोई सीधी बात नहीं कही गई है, पर सातवें अध्यायका गम्भीर अध्ययन करनेपर निम्न सूत्रोंसे उक्त कथनकी पुष्टिका संकेत अवश्य प्राप्त होता है। वे सूत्र इस प्रकार हैं :—

अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोग-परिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥ तत्त्वार्थसूत्र, अ० ७।

इनमेंसे प्रथम सूत्रमें बताया गया है कि अगारी या गृहस्थ पंच अणुव्रतका धारी होता है। दूसरे सूत्रमें बताया गया है कि वह दिग्व्रत आदि सात शीलोंसे सम्पन्न भी होता है। तीसरे सूत्रमें बताया गया है कि वह जीवनके अन्तमें मारणान्तिकी सल्लेखनाको प्रेमपूर्वक धारण करे।

यहाँ पर श्रावकधर्मका अभ्यास कर लेनेके पश्चात् मुनि बननेकी प्रेरणा या देशना न करके सल्लेखनाको धारण करनेका ही उपदेश क्यों दिया? इस प्रश्नका स्पष्ट उत्तर यही है कि जो समर्थ है और गृहस्थीसे मोह छोड़ सकता है, वह तो पहले ही मुनि बन जाय। पर जो ऐसा करनेके लिए असमर्थ है, वह जीवन-पर्यन्त बारह व्रतोंका पालन कर अन्तमें संन्यास या समाधिपूर्वक शरीर त्याग करे।

इस संन्यासका धारण सहसा हो नहीं सकता, घरसे, देहसे और भोगोंसे ममत्व भी एकदम छूट नहीं सकता, अतएव उसे क्रम-क्रमसे कम करनेके लिए ग्यारह प्रतिमाओंकी भूमिका तैयार की गई प्रतीत होती है. जिसमें प्रवेश कर वह सांसारिक भोगोपभोगोंसे तथा अपने देहसे भी लालसा, तृष्णा, गृद्धि, आसक्ति और स्नेहको क्रमशः छोड़ता और आत्मिक शक्तिको बढ़ाता हुआ उस दशाको सहजमें ही प्राप्त कर लेता है, जिसे चाहे साधु-मर्यादा कहिये और चाहे सल्लेखना। यहाँ यह आशंका व्यर्थ है कि दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं, उन्हें एक क्यों किया जा रहा है? इसका उत्तर यही है कि भक्त-प्रत्याख्यान समाधिमरणका उत्कृष्ट काल बारह वर्षका माना गया है, जिसमें ग्यारहवीं प्रतिमाके पश्चात् संन्यास स्वीकार करते हुए पाँच महाव्रतोंको धारण करने पर वह साक्षात् मुनि बन ही जाता है।

तत्त्वार्थसूत्र और उपासकदशासूत्रके वर्णनसे निकाले गये उक्त मथितार्थकी पुष्टि स्वामी समन्तभद्रके रत्नकरण्ड-श्रावकाचारसे भी होती है। जिन्होंने मननके साथ रत्नकरण्डकका अध्ययन किया है, उनसे यह अविदित नहीं है कि कितने अच्छे प्रकारसे आचार्य समन्तभद्रने यह प्रतिपादन

१. देखो उपासकदशा सूत्र, अध्ययन १ का अन्तिम भाग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है कि श्रावक बारह व्रतोंका विधिवत् पालन करके अन्तमें उपसर्ग, दुर्भिक्ष, जरा, रोग आदि निष्प्रतीकार आपत्तिके आ जानेपर अपने धर्मकी रक्षाके लिए सल्लेखनाको धारण करे।[1] सल्लेखना-का क्रम और उसके फलको अनेक श्लोकों द्वारा बतलाते हुए उन्होंने अन्तमें बताया है कि इस सल्लेखनाके द्वारा वह दुस्तर संसारसागरको पार करके परम निःश्रेयस—मोक्षको प्राप्त कर लेता है, जहाँ न कोई दुःख है, न रोग, चिन्ता, जन्म, जरा, मरण, भय, शोक आदिक। जहाँ रहनेवाले अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख-आनन्द, परम सन्तोष आदिका अनन्त काल तक अनुभव करते रहते हैं। इस समग्र प्रकरणको और खास करके उसके अन्तिम श्लोकोंको देखते हुए एक बार ऐसा प्रतीत होता है मानों ग्रन्थकार अपने ग्रन्थका उपसंहार करके उसे पूर्ण कर रहे हैं। इसके पश्चात् ग्रन्थके सबसे अन्तमें एक स्वतन्त्र अध्याय बनाकर एक-एक श्लोकमें श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंका स्वरूप-वर्णनकर ग्रन्थको समाप्त किया गया है। श्रावक-धर्मका अन्तिम कर्त्तव्य समाधिमरणका सांगोपांग वर्णन करनेके पश्चात् अन्तमें ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन करना सचमुच एक पहेली-सी प्रतीत होती है और पाठकके हृदयमें एक आशंका उत्पन्न करती है कि जब समन्तभद्रसे पूर्ववर्त्ती कुन्दकुन्द आदि आचार्योंने ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर श्रावक-धर्मका वर्णन किया, तब समन्तभद्रने वैसा क्यों नहीं किया? और क्यों ग्रन्थके अन्तमें उनका वर्णन किया? पर उक्त आशंकाका समाधान उपासकदशाके वर्णनसे तथा रत्नकरण्डकके टीकाकार द्वारा प्रतिमाओंके वर्णन के पूर्व दी गई उत्थानिकासे भली भाँति हो जाता है, जहाँ उन्होंने लिखा है—

'साम्प्रतं योऽसौ सल्लेखनानुष्ठाता श्रावकस्तस्य कति प्रतिमा भवन्तीत्याशङ्क्याह।

अर्थात्—सल्लेखनाका अनुष्ठान करनेवाले श्रावककी कितनी प्रतिमा होती है, इस आशंका-का उत्तर देते हुए ग्रन्थकारने आगेका श्लोक कहा।

(३) श्रावक धर्मके प्रतिपादनका तीसरा प्रकार पक्ष, चर्या और साधनका निरूपण है। इस मार्गके प्रतिपादन करनेवालोंमें हम सर्वप्रथम आचार्य जिनसेनको पाते हैं। आचार्य जिनसेनने यद्यपि श्रावकाचार पर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं रचा है, तथापि उन्होंने अपनी सबसे बड़ी कृति महापुराणके ३९-४० और ४१वें पर्वमें श्रावक धर्मका वर्णन करते हुए ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति, उनके लिए व्रत-विधान, नाना क्रियाओं और उनके मन्त्रादिकोंका खूब विस्तृत वर्णन किया है। वहीं पर उन्होंने पक्ष, चर्या और साधनरूपसे श्रावक-धर्मका निरूपण इस प्रकारसे किया है—

स्यादारेका च षट्कर्मजीविनां गृहमेधिनाम्।
हिंसादोषोऽनुसंगी स्याज्जैनानां च द्विजन्मनाम्॥ १४३॥
इत्यत्र ब्रूमहे सत्यमल्पसावद्यसंगतिः।
तत्रास्त्येव तथाप्येषां स्याच्छुद्धिः शास्त्रदर्शिता॥ १४४॥
अपि चैषां विशुद्ध्यंगं पक्षश्चर्या च साधनम्।
इति त्रितयमस्त्येव तदिदानीं विवृण्महे॥ १४५॥
तत्र पक्षो हि जैनानां कृत्स्नहिंसाविवर्जनम्।
मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यैरुपबृंहितम्॥ १४६॥

---

१. उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥१२२॥—रत्नकरण्ड श्रावकाचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चर्या तु देवतार्थं वा मंत्रसिद्धयर्थमेव चा।
औषधाहारक्लृप्त्यै वा न हिंस्यामीति चेष्टितम् ॥ १४७ ॥

तत्राकामकृते शुद्धिः प्रायश्चित्तैर्विधीयते।
पश्चाच्चात्मान्वयं सूनौ व्यवस्थाप्य गृहोज्झनम् ॥ १४८ ॥

चर्यैषा गृहिणां प्रोक्ता जीवितान्ते तु साधनम्।
देहाहारेहितत्यागाद् ध्यानशुद्धयाऽऽत्मशोधनम् ॥ १४९ ॥

त्रिष्वेतेषु न संस्पर्शो वधेनार्हद्-द्विजन्मनाम्।
इत्यात्मपक्षनिक्षिप्तदोषाणां स्यान्निराकृतिः ॥ १५० ॥

—आदिपुराण पर्व ३९

अर्थात् यहाँ यह आशंका की गई है कि जो षट्कर्मजीवी द्विजन्मा जैनी गृहस्थ हैं, उनके भी हिंसा दोषका प्रसंग होगा ? इसका उत्तर दिया गया है कि हाँ, गृहस्थ अल्प सावद्यका भागी तो होता है, पर शास्त्रमें उसकी शुद्धि भी बतलाई गई है। शुद्धिके तीन प्रकार हैं :—पक्ष, चर्या और साधन। इसका अर्थ इस प्रकार है—समस्त हिंसाका त्याग करना ही जैनोंका पक्ष है। उनका यह पक्ष मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्यरूप चार भावनाओंसे वृद्धिगत रहता है। देवताकी आराधनाके लिए, या मंत्रकी सिद्धिके लिए, औषधि या आहारके लिए मैं कभी किसी भी प्राणीको नहीं मारूँगा, ऐसी प्रतिज्ञाको चर्या कहते हैं। इस प्रतिज्ञामें यदि कभी कोई दोष लग जाय तो प्रायश्चित्तके द्वारा उसकी शुद्धि बताई गई है। पश्चात् अपने सब कुटुम्ब और गृहस्थाश्रमका भार पुत्रपर डालकर घर त्याग कर देना चाहिए। यह गृहस्थोंकी चर्या कही गई है। अब साधनको कहते हैं—जीवनके अन्तमें अर्थात् मरणके समय शरीर, आहार और सर्व इच्छाओंका परित्याग करके ध्यानकी शुद्धि द्वारा आत्माके शुद्ध करनेको साधन कहते हैं। अर्हद्देवके अनुयायी द्विजन्मा जैनोंको इन पक्ष, चर्या और साधनका साधन करते हुए हिंसादि पापोंका स्पर्श भी नहीं होता है और इस प्रकार ऊपर जो आशंका की गई थी, उसका परिहार हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचनका निष्कर्ष यह है कि जिसे अर्हद्देवका पक्ष हो, जो जिनेन्द्रके सिवाय किसी अन्य देवको, निर्ग्रन्थ गुरुके अतिरिक्त किसी अन्य गुरुको और जैनधर्मके सिवाय किसी अन्य धर्मको न माने, जैनत्वका ऐसा दृढ़ पक्ष रखनेवाले व्यक्तिको पाक्षिक श्रावक कहते हैं। इसका आत्मा मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्यभावनासे सुवासित होना ही चाहिए।[1] जो देव, धर्म, मन्त्र, औषधि, आहार आदि किसी भी कार्यके लिए जीवघात नहीं करता, न्यायपूर्वक आजीविका करता हुआ श्रावकके बारह व्रतोंका और ग्यारह प्रतिमाओंका आचरण करता है, उसे चर्याका आचरण

---

१. स्यान्मैत्र्याद्युपबृंहितोऽखिलवधत्यागी न हिंस्यामहं,
धर्माद्यर्थमितीह पक्ष उदितं दोषं विशोध्योज्झतः।
सूनौ न्यस्य निजान्वयं गृहमथो चर्या भवेत्साधनम्,
त्वन्तेऽत्रेह तनूज्झनाद्विशदया ध्यात्याऽऽत्मनः शोधनम् ॥१९॥
पाक्षिकादिभिदा त्रेधा श्रावकस्तत्र पाक्षिकः।
तद्धर्मगृह्यस्तन्निष्ठो नैष्ठिकः साधकः स्वयुक् ॥२०॥—सागारधर्मामृत अ० १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनेवाला नैष्ठिक श्रावक कहते हैं।[1] जो जीवनके अन्तमें देह, आहार आदि सर्व विषय-कषाय और आरम्भको छोड़कर परम समाधिका साधन करता है, उसे साधक[2] श्रावक कहते हैं। आ० जिनसेनके पश्चात् पं० आशाधरजीने तथा अन्य विद्वानोंने इन तीनोंको ही आधार बनाकर सागार-धर्मका प्रतिपादन किया है।

५. अष्ट मूलगुणोंके विविध प्रकार

यहाँ प्रकरणवश अष्टमूलगुणोंका कुछ स्पष्टीकरण अप्रासंगिक न होगा। श्रावकधर्मके आधारभूत मुख्य गुणको मूलगुण कहते हैं। मूलगुणोंके विषयमें आचार्योंके अनेक मत रहे हैं जिनकी तालिका इस प्रकार है :—

आचार्य नाम	मूलगुणोंके नाम
(१) **आचार्य समन्तभद्र** या अनेक श्रमणोत्तम	स्थूल हिंसादि पाँच पापोंका तथा मद्य, मांस मधु त्याग।[3]
(२) **आचार्य जिनसेन**	स्थूल हिंसादि पाँच पापोंका तथा द्यूत, मांस और मद्यका त्याग।[4]
(३) **आचार्य सोमदेव**	आचार्य अमृतचन्द्र, पद्मनन्दि, आशाधर, मेधावी, सकलकीर्त्ति, ब्रह्मनेमिदत्त, राजमल्ल आदि। मद्य, मांस और मधुका त्याग।[5]
(४) **अज्ञात नाम**	(पं० आशाधरजी द्वारा उद्धृत)—मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग, रात्रिभोजनत्याग, पंच उदुम्बरफलत्याग, देवदर्शन या पंचपरमेष्ठीका स्मरण, जीवदया और वस्त्रसे छने जलका पान।[6]

---

१. देशयमघ्नकषायक्षयोपशमतारतम्यवशतः स्यात्।
दर्शनिकाद्येकादशावशो नैष्ठिकः सुलेश्यतरः ॥१॥—सागारध० अ० ३

२. देहाहारेहितत्यागाद् ध्यानशुद्धयाऽऽत्मशोधनम्।
यो जीवितान्ते सम्प्रीतः साधयत्येष साधकः ॥—सागारध० अ० ८

३. मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥—रत्नक०

४. हिंसासत्यास्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च वादरभेदात्।
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी मूलगुणाः ॥—महापुराण (चारित्रसारे उक्तम्)

५. मद्यमांसमधुत्यागैः सहोदुम्बरपंचकैः।
अष्टावेते गृहस्थानामुक्ता मूलगुणाः श्रुते ॥—यशस्तिलकचम्पू

६. मद्यपलमधुनिशाशनपंचफलीविरतिपंचकाप्तनुती।
जीवदया जलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥१८॥—सागारध० अ० २
क्वचित् क्वापि शास्त्रे। यद् वृद्धा पठन्ति-
मद्योदुम्बरपञ्चामिषमधुत्यागाः कृपा प्राणिनां
नक्तंभुक्तिविमुक्तिराप्तविनुतिस्तोयं सुवस्त्रस्रुतम्।
एतेऽष्टौ प्रगुणा गुणा गणधरैरागारिणां कीर्त्तिताः
एकेनाप्यमुना विना यदि भवेद् भूतो न गेहाश्रमी ॥—(सागारध०, ज्ञानपञ्जिका, पृ० ६३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० आशाधरने जिस मतका 'क्वचिद्' करके उल्लेख किया है, वह नीचे टिप्पणीमें दिया गया है, उसमें इतना और विशेष लिखा है कि इन अष्टमूलगुणोंमेंसे यदि एक भी मूलगुणके बिना गृहस्थ है तो वह गृहस्थ या श्रावक नहीं है।

इन चारों मतोंके अतिरिक्त एक मत और भी उल्लेखनीय है और वह मत है आचार्य अमितगगतिका। उन्होंने मूलगुण यह नाम और उनकी संख्या इन दोनों बातोंका उल्लेख किये बिना ही अपने उपासकाध्ययनमें उनका प्रतिपादन इस प्रकासे किया है :—

मद्यमांसमधुरात्रिभोजमं क्षीरवृक्षफलवर्जनं त्रिधा।
कुर्वते व्रतजिघृक्षया बुधास्तत्र पुष्यति निषेविते व्रतम् ॥

—अमितगति श्रा० अ० ५ श्लोक १

अर्थात्—व्रतग्रहण करनेकी इच्छा से विद्वान् लोग मन, वचन, कायसे मद्य, मांस, मधु, रात्रिभोजन और क्षीरी वृक्षोंके फलोंको सेवनका त्याग करते हैं, क्योंकि इनके त्याग करनेपर गृहीत व्रत पुष्ट होता है।

इस श्लोकमें न 'मूलगुण' शब्द है और न संख्यावाची आठ शब्द। फिर भी यदि क्षीरी फलोंके त्यागको एक गिनें तो मूलगुणोंकी संख्या पाँच ही रह जाती है और यदि क्षीरी फलोंकी संख्या पाँच गिनें, तो नौ मूलगुण हो जाते हैं, जो कि अष्ट मूलगुणोंकी निश्चित संख्याका अतिक्रमण कर जाते हैं। अतएव अमितगतिका मत एक विशिष्ट कोटिमें परिगणनीय है।

सावयधम्मदोहाकारने आठ मूलगुणोंका नामोल्लेख तो नहीं किया है, पर प्रथम प्रतिमाके स्वरूपमें पाँच उदुम्बर फलोंका और व्यसनोंके त्यागका विधान किया है, अतः मद्य, मांस और मधुके त्यागरूप आठ मूलगुण आ जाते हैं। यही बात गुणभूषण श्रावकाचारमें भी है।

आ० रविषेणने पद्मचरितमें आठ मूलगुणोंका नामोल्लेखन करके मद्य, मांस, मधु, द्यूत, रात्रिभोजन और वेश्यागमन-त्यागको नियम कहा है (देखो—भा० ३ पृ० ४१७ श्लोक २३)

आ० जिनसेनने हरिवंश पुराणमें भी उक्त विधान के साथ अनन्तकायवाले मूलकन्दादिके त्यागका विधान भोगोपभोग परिमाणव्रतके अन्तर्गत किया है। (देखो—भा० ३ पृ० ४२३ श्लोक ४३)

मूलगुणोंके ऊपर दिखाये गये भेदोंको देखनेपर यह बात बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि इनके विषयमें मूलगुण माननेवाली परम्परामें भी भिन्न-भिन्न आचार्योंके विभिन्न मत रहे हैं।

सूत्रकार उमास्वातिने अपने तत्त्वार्थसूत्रमें यद्यपि मूलगुण ऐसा नाम नहीं दिया है और न उनकी कोई संख्या ही बताई है और न उनके टीकाकारोंने ही। पर सातवें अध्यायके सूत्रोंका पूर्वापर क्रम सूक्ष्मेक्षिकासे देखनेपर एक बात हृदयपर अवश्य अंकित होती है और वह यह कि सातवें अध्यायके प्रारम्भमें उन्होंने सर्वप्रथम पाँच पापोंके त्यागको व्रत कहा।[1] पुनः उनका देश और सर्वके भेदसे दो प्रकार बतलाया[2]। पुनः व्रतोंकी भावनाओंका विस्तृत वर्णन किया। अन्तमें पाँचों

१. हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥
२. देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापोंका स्वरूप कहकर व्रतीका लक्षण कहा[1] और व्रतीके अगारी और अनगारी ऐसे दो भेद कहे[2]। पुनः अगारीको अणुव्रतधारी बतलाया[3] और उसके पश्चात् ही उसके सप्त व्रत (शील) समन्वित होनेको सूचित किया[4]। इन अन्तिम दो सूत्रोंपर गम्भीर दृष्टिपात करते ही यह शंका उत्पन्न होती है कि यदि अगारी पाँच अणुव्रत और सात शीलोंका धारी होता है, तो दो सूत्र पृथक्-पृथक् क्यों बनाये ? दोनोंका एक ही सूत्र कह देते। ऐसा करनेपर 'सम्पन्न' और 'च' शब्दका भी प्रयोग न करना पड़ता और सूत्र-लाघव भी होता। पर सूत्रकारने ऐसा न करके दो सूत्र ही पृथक्-पृथक् बनाये, जिससे प्रतीत होता है कि सूत्रकारको पाँच अणुव्रत मूलगुण रूपसे और सात शील उत्तर गुण रूपसे विवक्षित रहे हैं, जिसका समर्थन श्वे० तत्त्वार्थभाष्यसे भी होता है, यह आगे बताया जायगा।

एक विचारणीय प्रश्न

यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब समन्तभद्र और चारित्रसारके उल्लेखानुसार गुणभद्र या जिनसेन जैसे महान् आचार्य पाँच अणुव्रतोंको मूलगुणोंमें परिगणित कर रहे हों, तब अमृतचन्द्र सोमदेव या उनके पूर्ववर्त्ती किसी अन्य आचार्यने उनके स्थानपर पंचक्षीरी फलोंके परित्यागको मूलगुण कैसे माना ? उदुम्बर फलोंमें अगणित त्रसजीव स्पष्ट दिखाई देते हैं और उनके खानेमें अहिंसाका या मांस खानेका पाप लगता है। त्रसहिंसाके परिहारसे उसका अहिंसाणुव्रतमें अन्तर्भाव किया जा सकता था ? ऐसी दशामें पंच उदुम्बरोंके परित्यागको पाँच मूलगुण न मानकर एक ही मूलगुण मानना अधिक तर्कयुक्त था। विद्वानोंके लिए यह प्रश्न अद्यावधि विचारणीय बना हुआ है। संभव है किसी समय क्षीरी फलोंके भक्षणका सर्वसाधारणमें अत्यधिक प्रचार हो गया हो, और उसे रोकनेके लिए तात्कालिक आचार्योंको उसके निषेधका उपदेश देना आवश्यक रहा हो और इसीलिए उन्होंने पंचक्षीरी फलोंके परिहारको मूलगुणोंमें स्थान दिया हो।

लाटीसंहिताकार राजमल्लजीने उदुम्बरको उपलक्षण मानकर त्रसजीवोंसे आश्रित फलोंके और अनन्तकायिक साधारण वनस्पतिके भक्षणका भी निषेध अष्टमूलगुणके अन्तर्गत कहा है।

(देखो भा० ३, पृ० १० श्लोक ७८-७९)

६. शीलका स्वरूप एवं उत्तरव्रत-संख्यापर विचार

सूत्रकार द्वारा गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंको जो 'शील' संज्ञा दी गई है, उस 'शील' का क्या स्वरूप है, यह शंका उपस्थित होती है। आचार्य अमितगतिने अपने श्रावकाचारमें 'शील' का स्वरूप इस प्रकारसे दिया है :—

संसारारातिभीतस्य व्रतानां गुरुसाक्षिकम्।
गृहीतानामशेषाणां रक्षणं शीलमुच्यते ॥ ४१ ॥

(अमि० श्रा० परि० १२, श्रा० सं० भा० १)

---

१. निःशल्यो व्रती ॥१८॥

२. अगार्यनगारश्च ॥१९॥

३. अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥

४. दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥

—तत्त्व० अ० ७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्—संसारके कारणभूत कर्मशत्रुओंसे भयभीत श्रावकके गुरुसाक्षीपूर्वक ग्रहण किये गये सब व्रतोंके रक्षणको शील कहते हैं।

पूज्यपाद श्रावकाचारमें शीलका लक्षण इस प्रकार दिया है :—

यद् गृहीतं व्रतं पूर्वं साक्षीकृत्य जिनान् गुरून्।
तद्व्रताखंडनं शीलमिति प्राहुर्मुनीश्वराः ॥ ७८ ॥

अर्थात्—देव या गुरुकी साक्षीपूर्वक जो व्रत पहले ग्रहण कर रखा है, उसका खंडन नहीं होने देनेको अर्थात् सावधानीपूर्वक उसकी रक्षा करनेको मुनीश्वर 'शील' कहते हैं।

शीलके इसी भावको बहुत स्पष्ट शब्दोंमें अमृतचन्द्राचार्यने अपने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें व्यक्त किया है कि जिस प्रकार कोट नगरोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार शील व्रतोंकी रक्षा करते हैं, अतएव व्रतोंकी करनेके लिए शीलोंको भी पालना चाहिए[१]।

व्रतका अर्थ हिंसादि पापोंका त्याग है और शीलका अर्थ गृहीत व्रतकी रक्षा करना है। जिस प्रकार कोट नगरका या बाढ़ बीजका रक्षक है उसी प्रकार शील भी व्रतोंका रक्षक है। नगर मूल अर्थात् प्रथम है और कोट उत्तर अर्थात् पीछे है। इसी प्रकार बीज प्रथम या मूल है और काँटे आदिकी बाढ़ उत्तर है। ठीक इसी प्रकार अहिंसादि पाँच व्रत श्रावकोंके और मुनियोंके मूलगुण हैं और शेष शील व्रत या उत्तर गुण हैं, यह फलितार्थ जानना चाहिए।

तत्त्वार्थभाष्यके उल्लेखानुसार श्रावकके शील और उत्तरगुण एकार्थक रहे हैं। यही कारण है कि सूत्रकारादि जिन अनेक आचार्योंने गुणव्रत और शिक्षाव्रतकी शील संज्ञा दी है, उन्हें ही सोमदेव आदिने उत्तरगुणोंमें गिना है। हाँ, मुनियोंके अठारह हजार शीलके भेद और चौरासी लाख उत्तरगुण उत्तरोत्तर विकास और परम यथाख्यात चारित्रकी अपेक्षा कहे गये हैं।

उक्त निष्कर्षके प्रकाशमें यह माना जा सकता है कि उमास्वाति या उनके पूर्ववर्ती आचार्योंको श्रावकोंके मूलव्रत या मूलगुणोंकी संख्या पाँच और शीलरूप उत्तरगुणकी संख्या सात अभीष्ट थी। परवर्त्ती आचार्योंने उन दोनोंकी संख्याको पल्लवितकर मूलगुणोंकी संख्या आठ और उत्तरगुणोंकी संख्या बारह कर दी। हालाँकि समन्तभद्रने आचार्यान्तरोंके मतसे मूलगुणोंकी संख्या आठ कहते हुए भी स्वयं मूलगुण या उत्तरगुणोंकी कोई संख्या नहीं कही है, और न मूल वा उत्तर रूपसे कोई विभाग ही किया है।

७. वर्तमान समयके अनुकूल आठ मूलगुण

आजकलके वर्तमान समयको देखते हुए पं० आशाधर द्वारा मतान्तररूपसे उद्धृत आठ मूलगुण अधिक उपयुक्त हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. मद्यपान त्याग, २. मांस-भक्षण त्याग, ३. मधु-सेवन त्याग, ४. रात्रिभोजन त्याग, ५. उदुम्बरफल भक्षण त्याग, ६. अगालित जलपान त्याग, ७. नित्यदेवदर्शन या पंचपरमेष्ठी-स्मरण और ८. जीव दया-पालन। (देखो—भा० २ पृ० ८ श्लोक १८)

---

१. परिधय इव नगराणि व्रतानि किल पालयन्ति शीलानि।
व्रतपालनाय तस्माच्छीलान्यपि पालनीयानि ॥१३६॥—पुरुषार्थसि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावकके इन आठ मूलगुणोंकी पुष्टि व्रतोद्योतन श्रावकाचारके श्लोक २४४ (देखो—भा० ३, पृ० २३२) से तथा सावयधम्मदोहाके दोहा ७७ से भी होती है। (देखो—भा० १ पृ० ४९०)

रात्रि-भोजन

शीतकालमें जबकि दिन बहुत छोटे होने लगते हैं—खेती करनेवाले और सरकारी नौकरी करनेवाले लोगोंको सायंकालका भोजन सूर्यास्तके पूर्व करनेमें कठिनाईका अनुभव होता है, उनके लिए प्रथम और श्रेष्ठ मार्ग तो यह है कि वे खेतपर या नौकरीपर जाते समय ही सायंकालका भोजन साथ ले जावें और सूर्यास्तसे पूर्व भोजन कर लेवें। यदि ऐसा न कर सकें तो उन्हें रात्रिमें कालकृत नियम अवश्य कर लेना चाहिए कि हम रातमें सात या आठ बजे तक ही भोजन करेंगे, उसके पश्चात् नहीं करेंगे। शास्त्रोंमें ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं कि जिसने एक प्रहर-प्रमाण भी रात्रि-भोजनका त्याग किया है, वह भी उसके सुफलको प्राप्त हुआ है।

आजके विद्युत्-प्रकाशको लेकर लोग रात्रि-भोजन करनेमें जीव-घात न होने या जीव-भक्षण न होनेकी बात कहते हैं, किन्तु उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि विद्युत्के तीव्र प्रकाशसे और भी अधिक जीव आकृष्ट होते हैं और वे गमनागमनके द्वारा या भोजनमें गिरकर मृत्युको प्राप्त होते हैं। आ० अमृतचन्द्र, अमितगति, सकलकीर्त्ति आदिने रात्रिभोजनके दोषोंका बहुत विस्तृत वर्णन किया है, रात्रिमें भोजन करनेवाले व्यक्तियोंको उनपर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

कुछ लोग रात्रिमें अन्नसे बने भोज्य पदार्थोंके न खानेका नियम लेकर सिंघाड़ा, राजगिर आदिसे बने विविध पक्वानों या मिष्ठान्नों और रात्रिमें ही उनके द्वारा बनाये गये नमकीन भुजियोंको खाते हें, उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि उनके ऐसा करनेमें तो और भी अधिक जीव-हिंसा होती है और वे और भी अधिक पापके भागी होते हैं।

रात्रिमें भोजन न करने और सूर्यास्तसे पूर्व भोजन करनेका एक प्रसंग याद आ रहा है। जब हम षट्खण्डागमके तीसरे भागमें आये गणितके स्पष्टीकरणार्थ अमरावती कालेजमें गणितके प्रोफेसर श्री काशीनाथ पाण्डेके यहाँ चार बजे शामको जाया करते थे, तब एक दिन उन्होंने सूर्यास्तसे पूर्व शामके भोजनकी प्रशंसा करते हुए बताया कि हमारी पत्नी इससे बहुत अधिक प्रभावित हैं। वे कहती हैं कि १० मास तो हम अमरावती (स्वर्ग) में रहते हैं और दो मास लखनऊ (नरक) में रहते हैं। जब उनसे इसका खुलासा करनेको कहा गया तो उन्होंने बतलाया कि १० मास तक यहाँ रहनेपर हम लोग शामका भोजन सूर्यास्तसे पूर्व कर लेते हैं, और रसोई-घरकी सफाई आदि हो जाती है। किन्तु २ मासके ग्रीष्मावकाशमें लखनऊ (स्वदेश) जाते हैं। वहाँपर कुटुम्बका कोई व्यक्ति ८ बजे, कोई ९ बजे और कोई १०-११ बजे रातमें खाने आता है। फलस्वरूप रसोईघरकी सफाई नहीं हो पाती है और प्रातःकाल अनेकों कीड़े-मकोड़ोंसे भरे हुए बर्तनोंको देखकर रसोईघर नरक-सा दिखता है।

इस प्रसंगके उल्लेख करनेका अभिप्राय यही है कि अजैन लोग तो जैनियोंके इस अनस्तमित भोजनकी महत्ताको समझकर उसे पालनेका प्रयत्न करें और हम जैन लोग जो कुलक्रमागत रूपसे रात्रि-भोजी नहीं रहे हैं—अब रात्रिभोजन करनेकी ओर उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहे हैं, यह महान् दुःखकी बात है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी सूर्यास्तसे पूर्व भोजन करना परम हितकारी है। आयुर्वेदके शास्त्र बतलाते हैं कि सायंकालके भोजनके एक प्रहर पश्चात् शयन करना चाहिए, अन्यथा अजीर्ण आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। रात्रिके प्रथम और द्वितीय प्रहरमें भोजन जैसा अच्छी तरह और जल्दी पचता है, वैसा तीसरे और चौथे प्रहरमें नहीं पचता। जो लोग रात्रिमें भोजन करते हैं, उनपर ही हैजा (कालरा) आदि संक्रामक रोगोंका अधिक प्रभाव पड़ता है। हैजेसे मरनेवालोंमें बहुसंख्यक रात्रिभोजी ही मिलते हैं अतः रात्रिभोजनका परित्याग हर एक विवेकी पुरुषको अवश्य ही करना चाहिए।

वस्त्र-गालित जल

वस्त्रसे गालित जल-पान करनेकी महत्ता भी सर्वविदित है। अनछने जलमें अनेक सूक्ष्म त्रस जीव होते हैं, वे जलके पीनेके साथ साथ उदरमें जानेपर स्वयं तो अनेक मर जाते हैं और अनेक जीवित रहकर बड़े हो जाते हैं और नेहरुआ जैसे भयंकर रोगोंको उत्पन्न करते हैं। इसलिए जीव-रक्षण और स्वास्थ्य-संरक्षणकी दृष्टिसे वस्त्र-गालित जलका पीना आवश्यक है।

जैन कुलमें यद्यपि मद्य, मांस और मधुका सेवन परम्परासे नहीं होता रहा है, पर आजकी नवीन पीढ़ीमें इनका प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है और प्रायः बड़े नगरोंके जैन नवयुवक आधुनिक होटलोंमें जाकर मद्यपान और विविध व्यंजनोंके रूपोंमें मांस-भक्षण करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं। उनके माता-पिताओंका कर्त्तव्य है कि वे घरमें ही अन्नके सरस भोज्य पदार्थ बना और खिलाकर अपनी सन्तानको होटलोंमें जाने और उक्त निन्द्य वस्तुओंके सेवन करनेसे रोकें।

इस प्रसंगमें एक सत्य घटनाका उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। सन् ४३-४४ में जब मैं उज्जैन था, तब मेरे निवास स्थानके सामने एक जर्मन महिला मिस क्राउजे रहती थीं। द्वितीय युद्धके कारण वे उज्जैन नगर सीमामें नजरबंद थीं। सन् २१ में वे जैनधर्मका अभ्यास करनेके लिए जर्मनीसे भारत आयी थीं। जब वे भारत आने लगीं तो उनका पिता बोला—घास-फूस खानेवाले शाकाहारी लोगोंके देशमें जाकर मांस जैसे पौष्टिक आहारको न करके तू बिना मौत ही मर जायगी। मिस क्राउजेने कहा—जाकर देखूँगी कि आखिर शाकभोजी लोग क्या खाकर जीवित रहते हैं। उन्होंने बताया कि जब मैं यहाँ आई और बेसन, मैदा आदिके घृत-पक्व मिष्टान्न आदि खाये, तब मैंने अपने पिताको इस विषयमें लिखा और जब मैं पहिली बार स्वदेश गयी तो वे भारतीय पकवान बना करके अपने पिताको खिलाये। वे उन्हें खाकरके अत्यधिक प्रभावित हुए और भारतीय शाकाहारके प्रशंसक ही नहीं, अपितु मांस खाना छोड़कर शाकाहारी बन गये।

मिस क्राउजे शुद्ध शाकाहारी और अनस्तमितभोजी थीं।

तत्त्वार्थसूत्रकारसे लेकर परवर्ती प्रायः सभी श्रावकाचारकारोंने ग्रहण किये गये अहिंसादि व्रतोंकी स्थिरताके लिए पाँच-पाँच भावनाएँ बतायी है। आजके जैनोंको उनकी आठ मूलगुणोंकी स्थिरता और दृढ़ताके लिए निम्न प्रकारसे भावना करनी चाहिए—

१. मैं अपने शुभ-अशुभ कर्मबन्धका स्वयं ही कर्ता और उनके फलका भोक्ता हूँ, अन्य कोई नहीं हूँ, अतः मैं दुखादिके प्रतीकारार्थ किसी भी देवी-देवताकी उपासना नहीं करूँगा। केवल वीतरागी जिनेन्द्रदेव दयामयी धर्म और निर्ग्रन्थ गुरुकी ही श्रद्धा, भक्ति और उपासना करूँगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. स्वप्नमें भी मेरे मांस-भक्षणके भाव न हों।

३. स्वप्नमें भी मेरे मदिरा आदि नशीली वस्तुओंके सेवनके भाव न हों।

४. रोगादिकी प्रबलतामें भी मधुके साथ औषधि-सेवनके भाव न हों।

५. बड़, पीपल, अंजीर आदि त्रस जीव-व्याप्त किसी भी प्रकारके गीले या सूखे फलादि खानेके भाव न हों।

६. स्वप्नमें भी कभी किसी प्राणीके घात करनेके भाव न हों, किन्तु सदा जीवोंकी रक्षाके भाव बढ़ते रहें।

जिस प्रकार मिथ्यात्व और पाप कर्मोंसे बचनेके लिए उक्त भावनाएँ करनी आवश्यक हैं, उसी प्रकार आत्मविशुद्धिकी वृद्धिके लिए निम्न भावनाएँ भी करनी चाहिए—

१. संसारके समस्त प्राणियोंके साथ मेरा सदा मैत्री भाव बना रहे।

२ गुणी जनोंमें मेरा प्रमोद भाव सदा बढ़ता रहे।

३. दुखी एवं विपद्-ग्रस्त जीवोंपर मेरी करुणा सदा जागृत रहे।

४. मेरे शत्रुओंपर भी क्षोभ न आवे, किन्तु मध्यस्थ भाव रहे।

प्रत्येक जैन या पाक्षिक श्रावकको प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल बैठकर उक्त भावनाएँ करनी आवश्यक हैं। इनके करनेसे व्यक्तिका उत्तरोत्तर विकास होगा। इस विषयमें श्री सोमदेव सूरिने बहुत उत्तम बात कही है—

अल्पात् क्लेशात्सुखं सुष्ठु स्वात्मनः यदि वाञ्छति।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

(भा० १, पृ० १४७ श्लोक २६७)

अर्थात् मनुष्य यदि अल्प ही कष्ट उठाकर अपने लिए उत्तम सुख चाहता है तो उसे चाहिए कि वह अपने लिए प्रतिकूल कर्मोंको दूसरेके साथ न करे।

८. श्रावकाचारोंके वर्णन पर एक विहंगम दृष्टि

स्वामी समन्तभद्रके रत्नकरण्डकका अनुसरण प्रायः परवर्ती सभी श्रावकाचार-रचयिताओंने किया है, फिर भी वसुनन्दी आदि कुछ आचार्योंने उसका अनुसरण न करके मूलगुण, अतीचार आदिका भी वर्णन न करके स्वतंत्र शैलीमें वर्णन क्यों किया ? इस पर विचार किया जाता है—

प्रस्तावनाके प्रारंभमें श्रावक धर्मके जिन तीन प्रतिपादन-प्रकारोंका उल्लेख किया गया है, संभवतः वसुनन्दिको उनमेंसे प्रथम प्रकार ही प्राचीन प्रतीत हुआ और उन्होंने उसीका अनुसरण किया हो। अतः उनके द्वारा श्रावकधर्मका प्रतिपादन प्राचीन पद्धतिसे किया गया जानना चाहिए। आ० वसुनन्दिने स्वयं अपनेको कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्पराका अनुयायी बतलाया है। अतएव इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं जो इसी कारणसे उन्होंने कुन्दकुन्द-प्रतिपादित ग्यारह प्रतिमारूप सरणिका अनुसरण किया हो। इसके अतिरिक्त वसुनन्दिने आ० कुन्दकुन्दके समान ही सल्लेखना-को चतुर्थ शिक्षाव्रत माना है जो कि उक्त कथनकी पुष्टि करता है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि वसुनन्दिने जिस उपासकाध्ययन का बार-बार उल्लेख किया है, संभव है उसमें श्रावक धर्मका प्रतिपादन ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर ही किया गया हो और इसी कारण उन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसकी प्रतिपादन-पद्धतिका भी अनुसरण किया हो। जो कुछ हो, पर इतना निश्चित है कि दिगम्बर-परम्पराके उपलब्ध ग्रन्थोंमें ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर श्रावकधर्मके प्रतिपादन-का प्रकार ही सर्वप्राचीन रहा है। यही कारण है कि समन्तभद्रादिके श्रावकाचारोंके सामने होते हुए भी, और संभवतः उनके आप्तमीमांसादि ग्रन्थोंके टीकाकार होते हुए भी वसुनन्दिने इस विषय-में उनकी तार्किक सरणिका अनुसरण न करके प्राचीन आगमिक-पद्धतिका ही अनुकरण किया है।

आचार्य वसुनन्दिने श्रावकके मूलगुणोंका वर्णन क्यों नहीं किया, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। वसुनन्दिने ही क्या, आचार्य कुन्दकुन्द और स्वामी कात्तिकेयने भी मूलगुणोंका कोई विधान नहीं किया है। श्वेतांबरीय उपासकदशासूत्र और तत्त्वार्थसूत्रमें भी अष्टमूलगुणोंका कोई निर्देश नहीं है। जहाँ तक मैंने श्वेताम्बर ग्रन्थोंका अध्ययन किया है, वहाँ तक मैं कह सकता हूँ कि प्राचीन और अर्वाचीन किसी भी श्वे० आगम सूत्र या ग्रन्थमें अष्टमूलगुणोंका कोई वर्णन नहीं है। दि० ग्रन्थोंमें सबसे पहिले स्वामी समन्तभद्रने ही अपने रत्नकरण्डकमें आठ मूलगुणोंका निर्देश किया है। पर रत्नकरण्डकके उक्त प्रकरणको गवेषणात्मक दृष्टिसे देखनेपर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वयं समन्तभद्रको भी आठ मूलगुणोंका वर्णन मुख्य रूपसे अभीष्ट नहीं था। यदि उन्हें मूलगुणोंका वर्णन मुख्यतः अभीष्ट होता तो वे चारित्रके सकल और विकल भेद करनेके साथ ही मूलगुण और उत्तरगुण रूपसे विकलचारित्रके भी दो भेद करते। पर उन्होंने ऐसा न करके यह कहा है कि विकल चारित्र अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत-रूपसे तीन प्रकारका है और उसके क्रमशः पाँच, तीन और चार भेद हैं।[1] इतना ही नहीं, उन्होंने पाँचों अणुव्रतोंका स्वरूप, उनके अतीचार तथा उनमें और पापोंमें प्रसिद्ध होनेवालोंके नामोंका उल्लेख करके केवल एक श्लोकमें आठ मूलगुणोंका निर्देश कर दिया है। इस अष्टमूलगुणका निर्देश करनेवाले श्लोकको भी गंभीर दृष्टिसे देखनेपर उसमें दिए गए 'आहुः' और 'श्रमणोत्तमाः' पद पर दृष्टि अटकती है। दोनों पद स्पष्ट बतला रहे हैं कि समन्तभद्र अन्य प्रसिद्ध आचार्योंके मन्तव्यका निर्देश कर रहे हैं। यदि उन्हें आठ मूलगुणोंका प्रतिपादन स्वयं अभीष्ट होता तो वे मद्य, मांस और मधुके सेवनके त्यागका उपदेश आगे जाकर, भोगोपभोग परिमाण-व्रतमें न करके यहीं, या इसके भी पूर्व अणुव्रतोंका वर्णन प्रारंभ करते हुए देते।

भोगोपभोगपरिमाणव्रतके वर्णनमें दिया गया वह श्लोक इस प्रकार है—

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥—रत्नक०

अर्थात् जिन भगवान्के चरणोंकी शरणको प्राप्त होनेवाले व्यक्ति त्रसजीवोंके घातका परिहार करनेके लिए मांस और मधुको तथा प्रमादका परिहार करनेके लिए मद्यका परित्याग करें।

इतने सुन्दर शब्दोंमें जैनत्वकी ओर अग्रेसर होनेवाले मनुष्यके कर्त्तव्यका इससे उत्तम और क्या वर्णन हो सकता था। इस श्लोकके प्रत्येक पदकी स्थितिको देखते हुए यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इसके बहुत पहिले अष्टमूलगुणोंका उल्लेख किया गया है वह केवल आचार्यान्तरों-का अभिप्राय प्रकट करनेके लिए ही है। अन्यथा इतने उत्तम, परिष्कृत एवं सुन्दर श्लोकको भी वहीं, उसी श्लोकके नीचे ही देना चाहिए था।

---

१. देखो रत्नक० श्लोक ५१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नकरण्डकके अध्याय-विभाग-क्रमको गम्भीर दृष्टिसे देखनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकारको पाँच अणुव्रत ही श्रावकके मूलगुण रूपसे अभीष्ट रहे हैं। पर इस विषयमें उन्हें अन्य आचार्योंका अभिप्राय बताना भी उचित जँचा और इसलिए उन्होंने पाँच अणुव्रत धारण करनेका फल आदि बताकर तीसरे परिच्छेदको पूरा करते हुए मूलगुणके विषयमें एक श्लोक द्वारा मतान्तरका भी उल्लेख कर दिया है।

जो कुछ भी हो, चाहे अष्टमूलगुणोंका वर्णन स्वामी समन्तभद्रको अभीष्ट हो या न हो, पर उनके समयमें दो परम्पराओंका पता अवश्य चलता है। एक वह—जो मूलगुणोंकी संख्या आठ प्रतिपादन करती थी। और दूसरी वह—जो मूलगुणोंको या तो नहीं मानती थी, या उनको संख्या पाँच प्रतिपादन करती थी।

मूलगुणोंकी पाँच संख्या माननेवालोंमें स्वयं तत्त्वार्थसूत्रकार हैं, इसके लिए दो प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं— प्रथम तो यह कि उन्होंने ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रतको 'शील' नामसे कहा है। और शीलका अर्थ आचार्य अमृतचन्द्रने व्रत-परिरक्षक कहा है जैसे कि नगरका रक्षक उसका परकोटा होता है। (देखो भा० १ पृ० ११२ श्लोक १३६) द्वितीय प्रमाण यह है कि श्वे० तत्त्वार्थभाष्यकारने उक्त शील व्रतोंको उत्तरव्रत रूपसे स्पष्ट निर्देश किया है। यथा—

१. भाष्य—एभिश्च **दिग्व्रतादिभिरुत्तरव्रतैः** सम्पन्नोऽगारी व्रती भवति।

२. टीका—प्रतिपन्नाणुव्रतस्यागारिणस्तेषामेवाणुव्रतानां दार्ढ्यापादनाय शीलोपदेशः। शीलं च गुण-शिक्षाव्रतम्।

३. तत्र तेषु **उत्तरगुणेषु** सप्तसु दिग्व्रतं नाम दशानां दिशां यथाशक्ति गमनपरिमाणाभिग्रहः।

(सप्तम अध्याय सूत्र १६)

इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि तत्त्वार्थसूत्रके भाष्यकार मूल व्रत ५ और उत्तरव्रत ७ मानते थे।

आचार्य कुन्दकुन्द, स्वामी कार्तिकेय, उमास्वाति और तात्कालिक श्वेताम्बराचार्य पाँच संख्याके, या न प्रतिपादन करनेवाली परम्पराके प्रधान थे, तथा स्वामी समन्तभद्र, सोमदेव, अमृतचन्द्र आदि आठ मूलगुण प्रतिपादन करनेवालोंमें प्रधान थे। ये दोनों परम्पराएँ विक्रमकी ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी तक बराबर चली आईं। तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकार—पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्द आदि न माननेवाली परम्पराके आचार्य प्रतीत होते हैं। तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकारोंका उल्लेख इसलिए करना पड़ा कि उन सभीने भोगोपभोगपरिमाण व्रतकी व्याख्या करते हुए ही मद्य, मांस, मधुके त्यागका उपदेश दिया है। इसके पूर्व अर्थात् अणुव्रतोंकी व्याख्या करते हुए किसी भी टीकाकारने मद्य, मांस, मधु सेवनके निषेधका या अष्टमूलगुणोंके विधानका कोई संकेत नहीं किया है। उपलब्ध श्वे० उपासकदशासूत्रमें भी अष्टमूलगुणोंका कोई जिक्र नहीं है। सम्भव है, इसी प्रकार वसुनन्दिके सम्मुख जो उपासकाध्ययन रहा हो, उसमें भी अष्टमूलगुणोंका विधान न हो और इसी कारण वसुनन्दिने उनका नामोल्लेख तक भी करना उचित न समझा हो।

वसुनन्दिके उपासकाध्ययनकी वर्णन-शैलीको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि जब सप्तव्यसनोंमें मांस और मद्य ये दो स्वतंत्र व्यसन माने गये हैं और मद्य व्यसनके अन्तर्गत मधुके परित्यागका भी स्पष्ट निर्देश किया है, तथा दर्शनप्रतिमाधारीके लिए सप्त व्यसनोंके साथ पंच उदुम्बरके त्यागका भी स्पष्ट कथन किया है, तब द्वितीय प्रतिमामें या उसके पूर्व प्रथम प्रतिमामें ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमूलगुणोंके पृथक् प्रतिपादनका कोई स्वारस्य नहीं रह जाता है। उनकी इस वर्णन-शैलीसे मूलगुण मानने और न माननेवाली दोनों परम्पराओंका संग्रह हो जाता है। माननेवाली परम्पराका संग्रह तो इसलिए हो जाता है कि मूलगुणोंके अन्तस्तत्त्वका निरूपण कर दिया है और मूलगुणोंके न माननेवाली परम्पराका संग्रह इसलिए हो जाता है कि मूलगुण या अष्टमूलगुण ऐसा नामोल्लेख तक भी नहीं किया है। उनके इस प्रकरणको देखनेसे यह भी विदित होता है कि उनका झुकाव सोमदेव और देवसेन-सम्मत अष्ट मूलगुणोंकी ओर रहा है, पर प्रथम प्रतिमाधारीको रात्रि-भोजनका त्याग आवश्यक बता[2] कर उन्होंने अमितगतिके मतका भी संग्रह कर लिया है।

अन्तिम मुख्य प्रश्न अतीचारोंके न वर्णन करनेके सम्बन्धमें है। यह सचमुच एक बड़े आश्चर्यका विषय है कि जब उमास्वातिसे लेकर अमितगति तकके वसुनन्दिसे पूर्ववर्त्ती सभी आचार्य एक स्वरसे व्रतोंके अतीचारोंका वर्णन करते आ रहे हों, तब वसुनन्दि इस विषयमें सर्वथा मौन धारण किये रहें और यहाँ तक कि समग्र ग्रन्थ भरमें अतीचार शब्दका उल्लेख तक न करें। इस विषयमें विशेष अनुसन्धान करनेपर पता चलता है कि वसुनन्दि ही नहीं, अपितु वसुनन्दिपर जिनका अधिक प्रभाव है ऐसे अन्य अनेक आचार्य भी अतीचारोंके विषयमें मौन रहे हैं। आचार्य कुन्दकुन्दने चारित्र-पाहुडमें जो श्रावकके व्रतोंका वर्णन किया है, उसमें अतीचारका उल्लेख नहीं है। स्वामि-कार्त्तिकेयने भी अतीचारोंका कोई वर्णन नहीं किया है। इसके पश्चात् आचार्य देवसेनने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ भावसंग्रहमें जो पाँचवें गुणस्थानका वर्णन किया है वह पर्याप्त विस्तृत है, पूरी २४९ गाथाओंमें श्रावक धर्मका वर्णन है, परन्तु वहाँ कहीं भी अतीचारोंका कोई जिक्र नहीं है। इस सबके प्रकाशमें यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस विषयमें आचार्योंकी दो पराम्पराएँ रही हैं— एक अतीचारोंका वर्णन करनेवालोंकी, और दूसरी अतीचारोंका वर्णन न करनेवालोंकी। उनमेंसे आचार्य वसुनन्दि दूसरी परम्पराके अनुयायी प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपनी गुरुपरम्पराके समान स्वयं भी अतीचारोंका कोई वर्णन नहीं किया है।

अब ऊपर सुझाई गई कुछ अन्य विशेषताओंके ऊपर विचार किया जाता है—

१—(अ) वसुनन्दिसे पूर्ववर्ती श्रावकाचार-रचयिताओंमें समन्तभद्रने ब्रह्मचर्याणुव्रतका स्वरूप स्वदार-सन्तोष या परदारा-गमनके परित्याग रूपसे किया है।[3] सोमदेवने उसे और भी स्पष्ट करते हुए 'स्ववधू और वित्तस्त्री' (वेश्या) को छोड़कर शेष परमहिला-परिहार रूपसे वर्णन किया है।[4] परवर्ती पं० आशाधरजी आदिने 'अन्यस्त्री और प्रकटस्त्री' (वेश्या) के परित्याग रूपसे प्रतिपादन किया है।[5] पर वसुनन्दिने उक्त प्रकारसे न कहकर एक नवीन ही प्रकारसे ब्रह्मचर्याणुव्रतका स्वरूप कहा है। वे कहते हैं कि 'जो अष्टमी आदि पर्वोंके दिन स्त्री-सेवन नहीं करता है

---

१. देखो भाग १, प्रस्तुत ग्रन्थकी गाथा नं० ५७-५८।

२. देखो भाग १, प्रस्तुत ग्रन्थकी गाथा नं० ३१४।

३. न तु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥—रत्नक० श्लो० ५९

४. वधू-वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ॥—यशस्ति० आ० ७

५. सोऽस्ति स्वदारसन्तोषी योऽन्यस्त्री-प्रकटस्त्रियौ।
न गच्छत्यंहसो भीत्या नान्यैर्गमयति त्रिधा ॥—सागार० आ० ४ श्लो० ५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और सदा अनंग-क्रीड़ाका परित्यागी है, वह स्थूल ब्रह्मचारी या ब्रह्मचर्याणुव्रतका धारी है। (देखो—भाग १ प्रस्तुत ग्रन्थकी गाथा नं० २१२)। इस स्थितिमें स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आ० वसुनन्दिने समन्तभद्रादि-प्रतिपादित शैलीसे ब्रह्मचर्याणुव्रतका स्वरूप न कहकर उक्त प्रकारसे क्यों कहा ? पर जब हम उक्त श्रावकाचारोंका पूर्वापर-अनुसन्धानके साथ गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि समन्तभद्रादिने श्रावकको अणुव्रतधारी होनेके पूर्व सप्त-व्यसनोंका त्याग नहीं कराया है, अतः उन्होंने उक्त प्रकारसे ब्रह्मचर्याणुव्रतका स्वरूप कहा है। पर वसुनन्दि तो प्रथम प्रतिमाधारीको ही सप्तव्यसनोंके अन्तर्गत जब परदारा और वेश्यागमन रूप दोनों व्यसनोंका त्याग करा आये हैं, तब द्वितीय प्रतिमामें उनका दुहराना निरर्थक हो जाता है। यतः द्वितीय प्रतिमाधारी पहलेसे ही परस्त्री त्यागी और स्वदार-सन्तोषी है, अतः उसका यही ब्रह्मचर्य-अणुव्रत है कि वह अपनी स्त्रीका भी पर्वके दिनोंमें उपभोग न करे और अनंगक्रीड़ाका सदाके लिए परित्याग करे। इस प्रकार वसुनन्दिने पूर्व सरणिका परित्याग कर जो ब्रह्मचर्याणु-व्रतका स्वरूप कहनेके लिए शैली स्वीकार की है, वह उनकी सैद्धान्तिक-विज्ञताके सर्वथा अनुकूल है। पं० आशाधरजी आदि जिन परवर्ती श्रावकाचार-रचयिताओंने समन्तभद्र, सोमदेव और वसु-नन्दिके प्रतिपादनका रहस्य न समझकर ब्रह्मचर्याणुव्रतका जिस ढंगसे प्रतिपादन किया है और जिस ढंगसे उनके अतीचारोंकी व्याख्या की है, उससे वे स्वयं स्ववचन-विरोधी बन गये हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है :—

उत्तर प्रतिमाओंमें पूर्व प्रतिमाओंका अविकल रूपसे पूर्ण शुद्ध आचरण अत्यन्त आवश्यक है, इसीलिए समन्तभद्रने 'स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह सन्तिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः'[1] और सोमदेवने 'पूर्व-पूर्वव्रतस्थिताः' कहा है।[2] पर पं० आशाधरजी उक्त बातसे भली-भाँति परिचित होते हुए और प्रकारान्तरसे दूसरे शब्दोंमें स्वयं उसका निरूपण करते हुए भी दो-एक स्थलपर कुछ ऐसा वस्तु-निरूपण कर गये हैं, जो पूर्वापर-क्रमविरुद्ध प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ—सागारधर्मामृतके तीसरे अध्यायमें श्रावककी प्रथम प्रतिमाका वर्णन करते हुए वे उसे जुआ आदि सप्तव्यसनोंका परित्याग आवश्यक बतलाते हैं[3] और व्यसन-त्यागीके लिए उनके अतिचारोंके परित्यागका भी उपदेश देते हैं, जिसमें वे एक ओर तो वेश्याव्यसनत्यागीको गीत, नृत्य, वादित्रादिके देखने, सुनने और वेश्याके यहाँ जाने-आने या संभाषण करने तकका प्रतिबन्ध लगाते हैं,[4] तब दूसरी ओर वे ही इससे आगे चलकर चौथे अध्यायमें दूसरी प्रतिमाका वर्णन करते समय ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतीचारोंकी व्याख्यामें भाड़ा देकर नियत कालके लिए वेश्याको भी स्वकलत्र बनाकर उसे सेवन करने तकको अतीचार

---

१. देखो—रत्नकरण्डक, श्लोक १३६।

२. अध्यधिव्रतमारोहेत्पूर्वपूर्वव्रतस्थिरताः।
सर्वत्रापि समाः प्रोक्ताः ज्ञान-दर्शनभावनाः॥—यशस्ति० आ० ८।

३. देखो—सागारधर्मामृत अ० ३, श्लो० १७

४. त्यजेत्तौर्यत्रिकासक्तिं वृथाट्यां षिङ्गसंगतिम्।
नित्यं पण्यांगनात्यागी तद्गेहगमनादि च॥
टीका—तौर्यत्रिकासक्तिं—गीतनृत्यवादित्रेषु सेवानिबन्धनम्। वृथाट्यां—प्रयोजनं विना विचरणम्। तद्-गेहगमनादि—वेश्यागृहगमन-संभाषण-सत्कारादि।—(सागारध० अ० ३, श्लो० २०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बताकर प्रकारान्तरसे उसके सेवनकी छूट दे देते हैं।[1] क्या यह पूर्व गुणके विकासके स्थानपर उसका ह्रास नहीं है ? और इस प्रकार क्या वे स्वयं स्ववचन-विरोधी नहीं बन गये हैं ? वस्तुतः संगीत, नृत्यादिके देखनेका त्याग भोगोपभोगपरिमाण व्रतमें कराया गया है।[2]

पं० आशाधरजी द्वारा इसी प्रकारकी एक और विचारणीय बात चोरी व्यसनके अतीचार कहते हुए कही गई है। प्रथम प्रतिमाधारीको तो वे अचौर्य-व्यसनकी शुचिता (पवित्रता या निर्मलता) के लिए अपने सगे भाई आदि दायादारोंके भी भूमि, ग्राम, स्वर्ण आदि दायभागको राजवर्चस् (राजाके तेज या आदेश) से, या आजकी भाषामें कानूनकी आड़ लेकर लेनेकी मनाई करते हैं।[3] परन्तु दूसरी प्रतिमाधारीको अचौर्याणुव्रतके अतीचारोंकी व्याख्यामें चोरोंको चोरीके लिए भेजने, चोरीके उपकरण देने और चोरीका माल लेनेपर भी व्रतकी सापेक्षता बताकर उन्हें अतीचार ही बतला रहे हैं।

ये और इसी प्रकारके जो अन्य कुछ कथन पं० आशाधरजी द्वारा किये गये हैं, वे आज भी विद्वानोंके लिए रहस्य बने हुए हैं और इन्हीं कारणोंसे कितने ही लोग उनके ग्रंथोंके पठन-पाठनका विरोध करते रहे हैं। पं० आशाधर जैसे महान् विद्वान्के द्वारा ये व्युत्क्रम-कथन कैसे हुए, इस प्रश्नपर जब गम्भीरतासे विचार करते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने श्रावक-धर्मके निरूपणकी परम्परागत विभिन्न दो धाराओंके मूलमें निहित तत्त्वको दृष्टिमें न रखकर उनके समन्वयका प्रयास किया, और इसी कारण उनसे उक्त कुछ व्युत्क्रम-कथन हो गये। वस्तुतः ग्यारह प्रतिमाओंको आधार बनाकर श्रावक-धर्मका प्रतिपादन करनेवाली परम्परासे बारह व्रतोंको आधार बनाकर श्रावक-धर्मका प्रतिपादन करनेवाली परम्परा बिलकुल भिन्न रही है। अतीचारोंका वर्णन प्रतिमाओंको आधार बनाकर श्रावक-धर्मका प्रतिपादन करनेवाली परम्परामें नहीं रहा है। यह अतीचार-सम्बन्धी समस्त विचार बारह व्रतोंको आधार बनाकर श्रावक-धर्मका वर्णन करनेवाले उमास्वाति, समन्तभद्र आदि आचार्योंकी परम्परामें ही रहा है।

(ब) देशावकाशिक या देशव्रतको गुणव्रत माना जाय, या शिक्षाव्रत, इस विषयमें आचार्यों के दो मत हैं, कुछ आचार्य इसे गुणव्रतमें परिगणित करते हैं और कुछ शिक्षाव्रतमें। पर उसका स्वरूप वसुनन्दिसे पूर्ववर्ती सभी श्रावकाचारोंमें एक ही ढंगसे कहा है और वह यह कि जीवन-पर्यन्तके लिए किये हुए दिग्व्रतमें कालकी मर्यादा द्वारा अनावश्यक क्षेत्रमें जाने-आनेका परिमाण करना देशव्रत है। पर आ० वसुनन्दिने एकदम नवीन ही दिशासे उसका स्वरूप कहा है। वे कहते हैं :—

'दिग्व्रतके भीतर भी जिस देशमें व्रत-भंगका कारण उपस्थित हो, वहाँपर नहीं जाना सो दूसरा गुणव्रत है।' (देखो गा० २१५)

---

१. भाटिप्रदानान्नियतकालस्वीकारेण स्वकलत्रीकृत्य वेश्यां वेत्वरिकां सेवमानस्य स्वबुद्धिकल्पनया स्वदारत्वेन व्रतसापेक्षचित्तत्वादल्पकालपरिग्रहाच्च न भंगो वस्तुतोऽस्वदारत्वाच्च भंग इति भंगाभंगरूपोऽतिचारः।
—सागारध० अ० ४ श्लो० ५८ टीका।

२. देखो—रत्नकरण्डक, श्लो० ८८।

३. दायादाज्जीवतो राजवर्चसाद् गृह्णतो धनम्।
दायं वाऽपह्नुवानस्य क्वाऽऽचौर्यव्यसनं शुचि ॥—सागारध० अ० ३, २१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ० वसुनन्दिके इस स्वरूपका अनुसरण परवर्ती कुछ श्रावकाचार-रचयिताओंने भी किया है। यथा—पं० मेधावी कहते हैं—जहाँ अपना व्रतभङ्ग होता हो और जिस देशमें जैन शासन न हो, उस देशमें कभी नहीं जाना चाहिए। (देखो भा० २ पृ० १३४ श्लो० ३८) गुणभूषणने भी इसी बातको दुहराया है। (देखो—भा० २ पृ० ४५० श्लो० ३३)

जब हम देशव्रतके उक्त स्वरूपपर दृष्टिपात करते हैं और उसमें दिये गये 'व्रत-भंग-कारण' पदपर गम्भीरतासे विचार करते हैं, तब हमें उनके द्वारा कहे गये स्वरूपकी महत्ताका पता लगता है। कल्पना कीजिए—किसीसे वर्तमानमें उपलब्ध दुनियामें जाने-आने और उसके बाहर न जानेका दिग्व्रत लिया। पर उसमें अनेक देश ऐसे हैं जहाँ खानेके लिए मांसके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता, तो दिग्व्रतकी मर्यादाके भीतर होते हुए भी उनमें अपने अहिंसा व्रतकी रक्षाके लिए न जाना देशव्रत है। एक दूसरी कल्पना कीजिए— किसी व्रतीने भारतवर्षका दिग्व्रत किया। भारतवर्ष आर्यक्षेत्र भी है। पर उसके किसी देश-विशेषमें ऐसा दुर्भिक्ष पड़ जाय कि लोग अन्नके दाने-दानेको तरस जायँ, तो ऐसे देशमें जानेका अर्थ अपने आपको और अपने व्रतको संकटमें डालना है। इसी प्रकार दिग्व्रत-मर्यादित क्षेत्रके भीतर जिस देशमें भयानक युद्ध हो रहा हो, जहाँ मिथ्यात्वियों या विधर्मियोंका बाहुल्य हो, व्रती संयमीका दर्शन दुर्लभ हो, जहाँ पीनेके लिए पानी भी शुद्ध न मिल सके, इन और इन जैसे व्रत-भंगके अन्य कारण जिस देशमें विद्यमान हों, उनमें नहीं जाना, या जानेका त्याग करना देशव्रत है। इसका गुणव्रतपना यही है कि उक्त देशोंमें न जानेसे उसके व्रतोंकी सुरक्षा बनी रहती है। इस प्रकारके सुन्दर और गुणव्रतके अनुकूल देशव्रतका स्वरूप प्रतिपादन करना सचमुच आचार्य वसुनन्दिकी सैद्धान्तिक पदवीके सर्वथा अनुरूप है।

(स) देशव्रतके समान ही अनर्थदण्डव्रतका स्वरूप भी आचार्य वसुनन्दिने अनुपम और विशिष्ट कहा है। वे कहते हैं कि 'खड्ग, दंड, फरशा, अस्त्र आदिका न बेंचना, कूटतुला न रखना, हीनाधिक- मानोन्मान न करना, क्रूर एवं मांस-भक्षी जानवरोंका न पालना तीसरा गुणव्रत है।' (देखो गाथा नं० २१६)

अनर्थदण्डके पाँच भेदोंके सामने उक्त लक्षण बहुत छोटा या नगण्य सा दिखता है। पर जब हम उसके प्रत्येक पदपर गहराईसे विचार करते हैं, तब हमें यह उत्तरोत्तर बहुत विस्तृत और अर्थपूर्ण प्रतीत होता है। उक्त लक्षणसे एक नवीन बातपर भी प्रकाश पड़ता है, वह यह कि आचार्य वसुनन्दि कूटतुला और हीनाधिक-मानोन्मान आदिको अतीचार न मानकर अनाचार ही मानते थे। ब्रह्मचर्याणुव्रतके स्वरूपमें अनंग-क्रीडा-परिहारका प्रतिपादन भी उक्त बातकी ही पुष्टि करता है।

(२) आचार्य वसुनन्दिने भोगोपभोग-परिमाणनामक एक शिक्षाव्रतके विभाग कर भोग-विरति और उपभोग-विरति नामक दो शिक्षाव्रत गिनाये हैं। जहाँ तक मेरा अध्ययन है, मैं समझता हूँ कि समस्त दिगम्बर और श्वेताम्बर साहित्यमें कहींपर भी उक्त नामके दो स्वतंत्र शिक्षाव्रत देखनेमें नहीं आये। केवल एक अपवाद है। और वह है गणधर-रचित माने जानेवाला 'श्रावक-प्रतिक्रमण सूत्र'। वसुनन्दिने ग्यारह प्रतिमाओंका स्वरूप वर्णन करनेवाली जो गाथाएँ अपने श्रावकाचारमें निबद्ध की हैं वे उक्त श्रावक-प्रतिक्रमणसूत्रमें ज्योंकी त्यों पाई जाती हैं। जिससे पता चलता है कि उक्त गाथाओंके समान भोग-विरति और उपभोग-विरति नामक दो शिक्षाव्रतोंके प्रतिपादनमें भी उन्होंने 'श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र' का अनुसरण किया है। अपने कथनकी प्रामाणिकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिपादनार्थ उन्होंने 'तं भोयविरइ भणियं पढमं सिक्खावयं सुत्ते' (गाथा २१७) वाक्य कहा है। यहाँ सूत्र पदसे वसुनन्दिका किस सूत्रकी ओर संकेत रहा है, यद्यपि यह अद्यावधि विचारणीय है, तथापि उनके उक्त निर्देशसे उक्त दोनों शिक्षाव्रतोंका पृथक् प्रतिपादन असंदिग्ध रूपसे प्रमाणित है।

(३) आचार्य वसुनन्दि द्वारा सल्लेखनाको शिक्षाव्रत प्रतिपादन करनेके विषयमें भी यही बात है। प्रथम आधार तो उनके पास श्रावक-प्रतिक्रमणसूत्रका था ही। फिर उन्हें इस विषयमें आचार्य कुन्दकुन्द और देवसेन जैसोंका समर्थन भी प्राप्त था। अतः उन्होंने सल्लेखनाको शिक्षाव्रतोंमें गिनाया।

उमास्वाति, समन्तभद्र आदि अनेकों आचार्योंके द्वारा सल्लेखनाको मारणान्तिक कर्त्तव्यके रूपमें पृथक् प्रतिपादन करनेपर भी वसुनन्दिके द्वारा उसे शिक्षाव्रतमें गिनाया जाना उनके तार्किक होनेकी बजाय सैद्धान्तिक होनेकी ही पुष्टि करता है। यही कारण है कि परवर्ती विद्वानोंने अपने ग्रन्थोंमें उन्हें उक्त पदसे संबोधित किया है।

(४) आचार्य कुन्दकुन्द, स्वामो कार्तिकेय और समन्तभद्र आदिने छठी प्रतिमाका नाम 'रात्रिभुक्तित्याग' रखा है। और तदनुसार ही उस प्रतिमामें चतुर्विध रात्रिभोजनका परित्याग आवश्यक बताया है। आचार्य वसुनन्दिने भी ग्रन्थके आरम्भमें गाथा नं० ४ के द्वारा इस प्रतिमाका नाम तो वही दिया है पर उसका स्वरूप-वर्णन दिवामैथुनत्याग रूपसे किया है। तब क्या यह पूर्वापर विरोध या पूर्व-परम्पराका उल्लंघन है? इस आशंकाका समाधान हमें वसुनन्दिकी वस्तु-प्रतिपादन-शैलीसे मिल जाता है। वे कहते हैं कि रात्रि-भोजन करनेवाले मनुष्यके तो पहिली प्रतिमा भी संभव नहीं है, क्योंकि रात्रिमें खानेसे अपरिमित त्रस जीवोंकी हिंसा होती है। अतः अर्हन्मतानुयायीको सर्वप्रथम मन, वचन, कायसे रात्रि-भुक्तिका परिहार करना चाहिए। (देखो गाथा नं० ३१४-३१८)। ऐसी दशामें पाँचवीं प्रतिमा तक श्रावक रात्रिमें भोजन कैसे कर सकता है? अतएव उन्होंने दिवामैथुन त्याग रूपसे छठी प्रतिमाका वर्णन किया। इस प्रकारसे वर्णन करनेपर भी वे पूर्वापर-विरोध रूप दोषके भागी नहीं हैं, क्योंकि 'भुज' धातुके भोजन और सेवन ऐसे दो अर्थ संस्कृत-प्राकृत साहित्यमें प्रसिद्ध हैं। समन्तभद्र आदि आचार्योंने 'भोजन' अर्थका आश्रय लेकर छठी प्रतिमाका स्वरूप कहा है और वसुनन्दिने 'सेवन' अर्थको लेकर।

आचार्य वसुनन्दि तक छठी प्रतिमाका वर्णन दोनों प्रकारोंसे मिलता है। वसुनन्दिके पश्चात् पं० आशाधरजी आदि परवर्ती दि० और श्वे० विद्वानोंने उक्त दोनों परम्पराओंसे आनेवाले और भुज् धातुके द्वारा प्रकट होनेवाले दोनों अर्थोंके समन्वयका प्रयत्न किया है और तदनुसार छठी प्रतिमामें दिनको स्त्री-सेवनका त्याग तथा रात्रिमें सर्व प्रकारके आहारका त्याग आवश्यक बताया है।

(५) आचार्य वसुनन्दिके उपासकाध्ययनकी एक बहुत बड़ी विशेषता ग्यारहवीं प्रतिमाधारी प्रथमोत्कृष्ट श्रावकके लिए भिक्षा-पात्र लेकर, अनेक घरोंसे भिक्षा मांगकर और एक ठौर बैठकर खानेके विधान करनेकी है। दि० परम्परामें इस प्रकारका वर्णन करते हुए हम सर्वप्रथम आचार्य वसुनन्दिको ही पाते हैं। सैद्धान्तिक-पद-विभूषित आचार्य वसुनन्दिने प्रथमोत्कृष्ट श्रावकका जो इतना विस्तृत और स्पष्ट वर्णन किया है वह इस बातको सूचित करता है कि उनके सामने इस विषयके प्रबल आधार अवश्य रहे होंगे। अन्यथा उन जैसा सैद्धान्तिक विद्वान् पात्र रखकर और पाँच-सात घरसे भिक्षा मांगकर खानेका स्पष्ट विधान नहीं कर सकता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब हमें देखना यह है कि वे कौनसे प्रबल प्रमाण उनके सामने विद्यमान थे, जिनके आधारपर उन्होंने उक्त प्रकारका वर्णन किया ? सबसे पहले हमारी दृष्टि उक्त प्रकरणके अन्तमें कही गई गाथापर जाती है, जिसमें कहा गया है कि 'इस प्रकार मैंने ग्यारहवें स्थानमें सूत्रानुसार दो प्रकारके उद्दिष्टपिंडविरत श्रावकका वर्णन संक्षेपसे किया।' (देखो गाथा नं० ३१३)। इस गाथामें दिये गये दो पदोंपर हमारी दृष्टि अटकती है। पहला पद है 'सूत्रानुसार', जिसके द्वारा उन्होंने अपने प्रस्तुत वर्णनके स्वकपोल-कल्पितत्वका परिहार किया है। और दूसरा पद है 'संक्षेपसे' जिसके द्वारा उन्होंने यह भाव व्यक्त किया है कि मैंने जो उद्दिष्ट-पिंडविरतका इतना स्पष्ट और विस्तृत वर्णन किया है, उसे कोई 'तिलका ताड़' या 'राईका पहाड़' बनाया गया न समझे, किन्तु आगम-सूत्रमें इस विषयका जो विस्तृत वर्णन किया गया है, उसे मैंने 'सागरको गागरमें भरने'के समान अत्यन्त संक्षेपसे कहा है।

अब देखना यह है कि वह कौन-सा सूत्र-ग्रन्थ है, जिसके अनुसार वसुनन्दिने उक्त वर्णन किया है ? उनके उपासकाध्ययनपर जब हम एक बार आद्योपान्त दृष्टि डालते हैं तो उनके द्वारा बार-बार प्रयुक्त हुआ 'उवासयज्झयण' पद हमारे सामने आता है। वसुनन्दिके पूर्ववर्त्ती आचार्य अमितगति, सोमदेव और भगवज्जिनसेनने भी अपने-अपने ग्रन्थोंमें 'उपासकाध्ययन' का अनेक बार उल्लेख किया है। उनके उल्लेखोंसे इतना तो अवश्य ज्ञात होता है कि वह उपासकाध्ययन सूत्र प्राकृत भाषामें रहा है, उसमें श्रावकोंके १२ व्रत या ११ प्रतिमाओंके वर्णनके अतिरिक्त पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक रूपसे भी श्रावक-धर्मका वर्णन था। भगवज्जिनसेनके उल्लेख से यह भी ज्ञात होता है कि उसमें दीक्षान्वयादि क्रियाओंका, षोडश संस्कारोंका, सज्जातित्व आदि सप्त परम स्थानोंका, नाना प्रकारके व्रत-विधानोंका और यज्ञ, जप, हवन आदि क्रियाकांडका समंत्र सविधि वर्णन था। वसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, जयसेन प्रतिष्ठापाठ और सिद्धचक्रपाठ आदिके अवलोकनसे उपलब्ध प्रमाणोंके द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि उस उपासकाध्ययनमें क्रियाकांड-सम्बन्धी मंत्र तक प्राकृत भाषामें थे। इतना सब होनेपर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि उक्त सभी आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट उपासकाध्ययन एक ही रहा है। यदि सभीका अभिप्रेत उपासकाध्ययन एक ही होता, तो जिनसेनसे सोमदेवके वस्तु-प्रतिपादनमें इतना अधिक मौलिक अन्तर दृष्टिगोचर न होता। यदि सभीका अभिप्रेत उपासकाध्ययन एक ही रहा है, तो निश्चयतः वह बहुत विस्तृत और विभिन्न विषयोंकी चर्चाओंसे परिपूर्ण रहा है, पर जिनसेन आदि किसी भी परवर्त्ती विद्वान्को वह अपने समग्र रूपमें उपलब्ध नहीं था। हाँ, खंड-खंड रूपमें वह यत्र-तत्र तत्तद्विषयके विशेषज्ञोंको स्मृत या उनके पास अवश्य रहा होगा और संभवतः यही कारण रहा है कि जिसे जो अंश उपलब्ध रहा, उसने उसीका ग्रन्थमें उपयोग किया।

दि० साहित्यमें अन्वेषण करनेपर भी ऐसा कोई आधार नहीं मिलता है जिससे कि प्रथमोत्कृष्ट श्रावककी उक्त चर्या प्रमाणित की जा सके। हाँ, बहुत सूक्ष्म रूपमें कुछ बीज अवश्य उपलब्ध हैं। पर जब वसुनन्दि कहते हैं कि मैंने उक्त कथन संक्षेपसे कहा है, तब निश्चयतः कोई विस्तृत और स्पष्ट प्रमाण उनके सामने अवश्य रहा प्रतीत होता है। कुछ विद्वान् उक्त चर्याका विधान शूद्र-जातीय उत्कृष्ट श्रावकके लिए किया गया बतलाते हैं, पर वसुनन्दिके शब्दोंसे ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता है।

श्वेताम्बरीय आगम-साहित्यसे उक्त चर्याकी पुष्टि अवश्य होती है जो कि साधुके लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बताई गई है। और इसीलिए ऐसा माननेको जी चाहता है कि कहीं श्वे० साधुओंको संग्रह करनेकी दृष्टिसे प्रथमोत्कृष्ट श्रावककी वैसी चर्याका वर्णन न किया हो? श्वेताम्बरीय साधुओंके गोचरी-विधानमें ५-७ घरोंसे थोड़ी-थोड़ी मात्रामें भिक्षा लानेका अवश्य विधान है। और वह आज तक प्रचलित है।

स्वामी समन्तभद्रने ग्यारहवीं प्रतिमाका जो स्वरूप-वर्णन किया है, वह इस प्रकार है—

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः॥ (श्री० भा० १ पृ० १८ श्लोक १४७)

इस पद्यका एक-एक पद अतिमहत्त्व-पूर्ण है। पद्यके प्रथम चरणके अनुसार इस प्रतिमाधारीको घरका त्याग कर वनमें मुनिजनोंके पास जाना आवश्यक है, दूसरे चरणके अनुसार किन ही नवीन व्रतोंका ग्रहण करना भी आवश्यक है। तीसरे चरणके अनुसार भिक्षावृत्तिसे भोजन करना और तपश्चरण करना आवश्यक है और चौथे चरणके 'चेलखण्डधरः' पदके अनुसार वह उत्कृष्ट प्रतिमाधारी वस्त्र-खण्ड धारण करता है।

उक्त पद्यके दो पद खास तौरसे विचारणीय हैं—पहला-'भैक्ष्याशन' और दूसरा 'चेलखण्डधर'। दो-चार घरसे भिक्षा मांगकर खाना 'भैक्षाशन' कहलाता है और कमर पर वस्त्रके टुकड़ेको बाँधना 'चेलखण्ड' धारण है। प्राचीन कालमें श्वेताम्बरीय साधु केवल कमर-पर ही वस्त्र-खण्ड धारण करते थे। पीछे-पीछे उनमें वस्त्रोंका परिमाण बढ़ता गया है। संभव है कि वसुनन्दिके समय तक उक्त दोनोंका प्रचार रहा हो इसलिए प्रथमोत्कृष्ट श्रावकके लिए उन्होंने ५-७ घरोंसे भिक्षा लानेका विधान किया है।

स्वामी समन्तभद्रके उक्त 'भैक्ष्याशन' के विधानकी पुष्टि स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षाके 'जो णवकोडिविसुद्धं भिक्खायदणेण भुंजदे भोज्जं' (भा० १ पृ० २८ गाथा ९०) वाक्यसे भी होती है। इसका अर्थ है कि जो अपने योग्य नौ कोटिसे विशुद्ध भोजनको भिक्षाचरणसे प्राप्त कर खाता है, वह उद्दिष्ट-आहार-विरत है।

श्वे० आगम सूत्रोंके अनुसार ग्यारहवीं प्रतिमाका नाम 'श्रमणभूत प्रतिमा' है और स्वामी समन्तभद्रके अनुसार ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक 'श्रमण' (साधु) जैसा हो ही जाता है।

श्वे० परम्परामें साधुके दो कल्प हैं—स्थविर कल्प और जिनकल्प। उनकी मान्यता है कि वर्तमानमें 'जिनकल्प' विच्छिन्न हो गया है और श्रावकोंकी प्रतिमाधारणकी परम्परा भी विच्छिन्न हो गई है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'श्रमणभूत प्रतिमा' के धारण करनेवालोंका संग्रह उन्होंने स्थविर कल्पमें कर लिया है और स्थविर कल्पी साधुके लिए वस्त्र धारण करनेका विधान कर सचेल साधुको भी स्थविरकल्पी कहा जाने लगा है।

९. श्रावक-प्रतिमाओंका आधार

श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंका आधार क्या है, और किस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए इनकी कल्पना की गयी है, इन दोनों प्रश्नोंपर जब हम विचार करते हैं, तो इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि प्रतिमाओंका आधार शिक्षाव्रत है और शिक्षाव्रतोंका मुनिपदकी प्राप्ति रूप जो उद्देश्य है, वही इन प्रतिमाओंका भी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षाव्रतोंका उद्देश्य—जिन व्रतोंके पालन करनेसे मुनिव्रत धारण करनेकी, या मुनि बननेकी शिक्षा मिलती है, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं। स्वामी समन्तभद्रने प्रत्येक शिक्षाव्रतका स्वरूप वर्णन करके उसके अन्तमें बताया है कि किस प्रकार इससे मुनि समान बननेकी शिक्षा मिलती है और किस प्रकार गृहस्थ उस व्रतके प्रभावसे 'चेलोपसृष्टमुनिरिव' यति-भावको प्राप्त होता है।[1]

गृहस्थका जीवन उस व्यापारीके समान है, जो किसी बड़े नगरमें व्यापारिक वस्तुएँ खरीदनेको गया। दिन भर उन्हें खरीदनेके पश्चात् शामको जब घर चलनेकी तैयारी करता है तो एक बार जिस क्रमसे वस्तु खरीद की थी, बीजक हाथमें लेकर तदनुसार उसकी सम्भाल करता है और अन्तमें सबकी सम्भालकर अपने अभीष्ट ग्रामको प्रयाण कर देता है। ठीक यही दशा गृहस्थ श्रावक की है। उसने इस मनुष्य पर्यायरूप व्रतोंके व्यापारिक केन्द्रमें आकर बारह व्रतरूप देशसंयम-सामग्रीकी खरीद की। जब वह अपने अभीष्ट स्थानको प्रयाण करनेके लिए समुद्यत हुआ, तो जिस क्रमसे उसने जो व्रत धारण किया है उसे सम्भालता हुआ आगे बढ़ता जाता है और अन्तमें सबकी सम्भालकर अपने अभीष्ट स्थानको प्रयाण कर देता है।

श्रावकने सर्वप्रथम सम्यग्दर्शनको धारण किया था, पर वह श्रावकका कोई व्रत न होकर उसकी मूल या नींव है। उस सम्यग्दर्शन मूल या नींवके ऊपर देशसंयम रूप भवन खड़ा करनेके लिए भूमिका या कुरसीके रूपमें अष्ट मूलगुणोंको धारण किया था और साथ ही सप्त व्यसनका परित्याग भी किया था। संन्यास या साधुत्वकी ओर प्रयाण करनेके अभिमुख श्रावक सर्वप्रथम अपने सम्यक्त्वरूप मूलको और उसपर रखी अष्टमूलगुणरूप भूमिकाको सम्भालता है। श्रावकके इस निरतिचार या निर्दोष सम्भालको ही दर्शन-प्रतिमा कहते हैं।

इसके पश्चात् उसने स्थूल वधादि रूप जिन महापापोंका त्यागकर अणुव्रत धारण किये थे, उनके निरतिचारिताकी सम्भाल करता है और इस प्रतिमाका धारी बारह व्रतोंका पालन करते हुए भी अपने पाँचों अणुव्रतोंमें और उनकी रक्षाके लिए बाढ़ स्वरूपसे धारण किये गये तीन गुणव्रतोंमें कोई भी अतीचार नहीं लगने देता और उन्हींकी निरतिचार परिपूर्णताका उत्तरदायी है। शेष चारों शिक्षाव्रतोंका वह यथाशक्ति अभ्यास करते हुए भी उनकी निरतिचार परिपालनाके लिए उत्तरदायी नहीं है। इस प्रतिमाको धारण करनेके पूर्व ही तीन शल्योंका दूर करना अत्यन्त आवश्यक है।

तीसरी सामायिक प्रतिमा है, जिसमें कि सामायिक नामक प्रथम शिक्षाव्रतकी परिपूर्णता, त्रैकालिक साधना और निरतिचार परिपालना अत्यावश्यक है। दूसरी प्रतिमामें सामायिक शिक्षा-व्रत अभ्यास दशामें था, अतः वहाँपर दो या तीन बार करनेका कोई बन्धन नहीं था, वह इतने ही कालतक सामायिक करे, इस प्रकार कालकृत नियम भी शिथिल था। पर तीसरी प्रतिमामें सामायिकका तीनों संध्याओंमें किया जाना आवश्यक है और वह भी एक बारमें कमसे कम दो घड़ी या एक मुहूर्त (४८ मिनिट) तक करना ही चाहिए। सामायिकका उत्कृष्ट काल छह घड़ीका है। साथ ही तीसरी प्रतिमा-धारीको 'यथाजात' रूप धारणकर सामायिक करनेका विधान समन्त-

---

१. सामयिके सारम्भाः परिग्रहाः नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम्॥ १०२॥—रत्नकरण्डक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भद्रने स्पष्ट शब्दोंमें किया है।[1] इस 'यथाजात' पदसे स्पष्ट है कि तीसरी प्रतिमाधारीको सामायिक एकान्तमें नग्न होकर करना चाहिए। चामुण्डराय और वामदेवने भी अपने संस्कृत भाव-संग्रहमें यथाजात होकर सामायिक करनेका विधान किया है।[2] इसका अभिप्राय यही है कि इस प्रतिमाका धारक श्रावक प्रतिदिन तीन बार कमसे कम दो घड़ी तक नग्न रहकर साधु बननेका अभ्यास करें। इस प्रतिमाधारीको सामायिक-सम्बन्ध दोषोंका परिहार भी आवश्यक बताया गया है। इस प्रकार तीसरी प्रतिमाका आधार सामायिक नामका प्रथम शिक्षाव्रत है।

चौथी प्रोषध प्रतिमा है, जिसका आधार प्रोषधोपवास नामक दूसरा शिक्षाव्रत है। पहले यह अभ्यास दशामें था, अतः वहाँपर सोलह, बारह या आठ पहरके उपवास करनेका कोई प्रतिबन्ध नहीं था, आचाम्ल, निर्विकृति आदि करके भी उसका निर्वाह किया जा सकता था। अतीचारोंकी भी शिथिलता थी। पर इस चौथी प्रतिमामें निरतिचारता और नियतसमयता आवश्यक मानी गई है। इस प्रतिमाधारीको पर्वके दिन स्वस्थ दशामें सोलह पहरका उपवास करना ही चाहिए। अस्वस्थ या असक्त अवस्थामें ही बारह या आठ पहरका उपवास विधेय माना गया है। उपवासके दिन गृहस्थीके सभी आरम्भ-कार्य त्यागकर मुनिके समान अहर्निश धर्म-ध्यान करना आवश्यक बताया गया है।

इस प्रकार प्रथम और द्वितीय शिक्षाव्रतके आधारपर तीसरी और चौथी प्रतिमा अवलम्बित है, यह निर्विवाद सिद्ध होता है। आगेके लिए पारिशेषन्यायसे हमें कल्पना करनी पड़ती है कि तीसरे और चौथे शिक्षाव्रतके आधारपर शेष प्रतिमाएँ भी अवस्थित होनी चाहिए। पर यहाँ आकर सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होती है कि शिक्षाव्रतोंके नामोंमें आचार्योंके अनेक मत-भेद हैं जिनका यहाँ स्पष्टीकरण आवश्यक है। उनकी तालिका इस प्रकार है :—

आचार्य या ग्रन्थ नाम	प्रथम शिक्षाव्रत	द्वितीय शिक्षाव्रत	तृतीय शिक्षाव्रत	चतुर्थ शिक्षाव्रत
१ श्रावक प्रतिक्रमणसूत्र नं० १	सामायिक	प्रोषधोपवास	अतिथि पूजा	सल्लेखना
२ आ० कुन्दकुन्द	,,	,,	,,	,,
३ ,, स्वामिकार्त्तिकेय	,,	,,	,,	देशावकाशिक
४ ,, उमास्वाति	,,	,,	भोगोपभोगपरिमाण,	अतिथिसंविभाग
५ ,, समन्तभद्र	देशावकाशिक	सामायिक	प्रोषधोपवास	वैयावृत्य
६ ,, सोमदेव	सामायिक	प्रोषधोपवास	भोगोपभोगपरिमाण,	दान
७ ,, देवसेन	,,	,,	अतिथिसंविभाग	सल्लेखना
८ श्रावकप्रतिक्रमणसूत्र नं० २	भोगपरिमाण	उपभोगपरिमाण	,,	,,
९ वसुनन्दि	भोगविरति	उपभोगविरति	,,	,,

आचार्य जिनसेन, अमितगति, आशाधर आदिने शिक्षाव्रतोंके विषयमें उमास्वातिका अनुकरण किया है।

---

१. चतुरावर्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥ (रत्नकरण्डक १३९)

२. देखो भाग० ३, पृ० ४७१ श्लो० ९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त मत-भेदोंमें शिक्षाव्रतोंकी संख्याके चार होते हुए भी दो धाराएँ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम धारा श्रावकप्रतिक्रमण सूत्र नं० १ की है, जिसके समर्थक कुन्दकुन्द जैसे महान् आचार्य हैं। इस परम्परामें सल्लेखनाको चौथा शिक्षाव्रत माना गया है। दूसरी धाराके प्रवर्त्तक आचार्य उमास्वाति आदि हैं, जो कि मरणके अन्तमें की जानेवाली सल्लेखनाको शिक्षाव्रतोंमें ग्रहण न करके उसके स्थानपर भोगोपभोग-परिमाणव्रतका निर्देश करते हैं और अतिथिसंविभागको तीसरा शिक्षाव्रत न मानकर चौथा मानते हैं। इस प्रकार यहाँ आकर हमें दो धाराओंके संगमका सामना करना पड़ता है। इस समस्याको करते समय हमारी दृष्टि श्रावकप्रतिक्रमण सूत्र नं १ और नं० २ पर जाती है,[1] जिनमेंसे एकके समर्थक आ० कुन्दकुन्द और दूसरेके समर्थक आ० वसुनन्दि हैं। सभी प्रतिक्रमणसूत्र गणधर-ग्रथित माने जाते हैं, ऐसी दशामें एक ही श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रके ये दो रूप कैसे हो गये, और वे भी कुन्दकुन्द और उमास्वातिके पूर्व ही, यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि भद्रबाहुके समयमें होनेवाले दुर्भिक्षके कारण जो संघभेद हुआ, उसके साथ ही एक श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रके भी दो भेद हो गये। दोनों प्रतिक्रमण सूत्रोंकी समस्त प्ररूपणा समान है। भेद केवल शिक्षाव्रतोंके नामोंमें है। यदि दोनों धाराओंको अर्ध-सत्यके रूपमें मान लिया जाय तो उक्त समस्याका हल निकल आंता है। अर्थात् नं० १ के श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रके सामायिक और प्रोषधोपवास, ये दो शिक्षाव्रत ग्रहण किये जावें, तथा २ के श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रसे भोगपरिमाण और उपभोग परिमाण ये दो शिक्षाव्रत ग्रहण किये जावें। ऐसा करनेपर शिक्षाव्रतोंके नाम इस प्रकार रहेंगे—१. सामाजिक, २. प्रोषधोवास, ३. भोगपरिमाण और ४. उपभोगपरिमाण। इनमेंसे प्रथम शिक्षाव्रतके आधारपर तीसरी प्रतिमा है और द्वितीय शिक्षाव्रतके आधारपर चौथी प्रतिमा है, इसका विवेचन हम पहले कर आये हैं।

उक्त निर्णयके अनुसार तीसरा शिक्षाव्रत भोगपरिमाण है। भोग्य अर्थात् एक बार सेवनमें आनेवाले पदार्थोंमें प्रधान भोज्य पदार्थ हैं। भोज्य पदार्थ दो प्रकारके होते हैं—सचित्त और अचित्त। साधुत्व या संन्यासकी ओर अग्रसर होनेवाला श्रावक जीवरक्षार्थ और रागभावके परिहारार्थ सबसे पहिले सचित्त शाक, फलादि पदार्थोंके खानेका यावज्जीवनके लिए त्याग करता है और इस प्रकार वह सचित्तत्याग नामक पाँचवीं प्रतिमाका धारी कहलाने लगता है। इस प्रतिमाका धारी सचित्त जलको भी न पीता है और नं स्नान करने या कपड़े धोने आदिके काममें ही लाता है।

उपरि-निर्णीत व्यवस्थाके अनुसार चौथा शिक्षाव्रत उपभोगपरिमाण स्वीकार किया गया है। उपभोग्य पदार्थोंमें सबसे प्रधान वस्तु स्त्री है, अतएव वह दिनमें स्त्रीके सेवनका मन, वचन, कायसे परित्याग कर देता है। यद्यपि इस प्रतिमाके पूर्व भी वह दिनमें स्त्री सेवन नहीं करता था, पर उससे हँसी-मजाकके रूपमें जो मनोविनोद कर लेता था, इस प्रतिमामें आकर उसका भी दिनमें परित्याग कर देता है और इस प्रकार वह दिवामैथुनत्याग नामक छठी प्रतिमाका धारी बन जाता है। इस दिवामैथुनत्यागके साथ ही वह तीसरे शिक्षाव्रतको भी यहाँ बढ़ानेका प्रयत्न करता है और दिनमें अचित्त या प्रासुक पदार्थोंके खानेका व्रती होते हुए भी रात्रिमें कारित और अनुमोदनासे भी रात्रिभुक्तिका सर्वथा परित्याग कर देता है और इस प्रकार रात्रिभुक्ति-त्याग नामसे

---

१. ये दोनों श्रावकप्रतिक्रमणसूत्र क्रिया-कलापमें मुद्रित हैं, जिसे कि पं० पन्नालालजी सोनीने सम्पादित किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसिद्ध और अनेक आचार्योंसे सम्मत छठी प्रतिमाका धारी बन जाता है। इस प्रतिमाधारीके लिए दिवा-मैथुन त्याग और रात्रि-भुक्ति त्याग ये दोनों कार्य एक साथ आवश्यक हैं, इस बातकी पुष्टि दोनों परम्पराओंके शास्त्रोंसे होती है। इस प्रकार छठी प्रतिमाका आधार रात्रिभुक्ति-परित्यागकी अपेक्षा भोगविरति और दिवा-मैथुन-परित्यागकी अपेक्षा उपभोगविरति ये दोनों ही शिक्षाव्रत सिद्ध होते हैं।

सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। छठी प्रतिमामें स्त्रीका परित्याग वह दिनमें कर चुका है, अब वह स्त्रीके अंगको मलयोनि, मलबीज, गलन्मल और पूतगन्धि आदिके स्वरूपमें देखता हुआ रात्रिको भी उनके सेवनका सर्वथा परित्यागकर पूर्ण ब्रह्मचारी बन जाता है, और इस प्रकार उपभोगपरिमाण नामक शिक्षाव्रतको एक कदम और भी ऊपर बढ़ाता है।

उपर्युक्त विवेचनके अनुसार पाँचवीं, छठी और सातवीं प्रतिमामें श्रावकने भोग और उपभोगके प्रधान साधन सचित्त भोजन और स्त्रीका सर्वथा परित्याग कर दिया है। पर अभी वह भोग और उपभोगकी अन्य वस्तुएँ महल-मकान, बाग-बगीचे और सवारी आदिका उपभोग करता था। इनसे भी विरक्त होनेके लिए वह विचारता है कि मेरे पास इतना धन-वैभव है, और मैंने स्त्री तकका परित्याग कर दिया है। अब 'स्त्रीनिरीहे कुतः धनस्पृहा' की नीतिके अनुसार स्त्री-सेवनका त्याग करनेपर मुझे नवीन धनके उपार्जनकी क्या आवश्यकता है? बस, इस भावनाकी प्रबलताके कारण वह असि, मषि, कृषि, वाणिज्य आदि सर्व प्रकारके आरम्भोंका परित्याग कर आरम्भत्याग नामक आठवीं प्रतिमाका धारी बन जाता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि इस प्रतिमामें व्यापारादि आरम्भोंके स्वयं न करनेका ही त्याग होता है, अतः पुत्र, भृत्य आदि जो पूर्वसे व्यापारादि कार्य करते चले आ रहे हैं, उनके द्वारा वह यतः करानेका त्यागी नहीं है, अतः कराता रहता है। इस बातकी पुष्टि प्रथम तो श्वे० आगमोंमें वर्णित नवमी प्रतिमाके 'पेस-परिन्नाए' नामसे होती है, जिसका अर्थ है कि वह नवमी प्रतिमामें आकर प्रेष्य अर्थात् भृत्यादि वर्गसे भी आरम्भ न करानेकी प्रतिज्ञा कर लेता है। दूसरे, दशवीं प्रतिमाका नाम अनुमति त्याग है। इस प्रतिमाका धारी आरम्भादिके विषयमें अनुमोदनाका भी परित्याग कर देता है। यह अनुमति पद अन्त दीपक है, जिसका यह अर्थ होता है कि दशवीं प्रतिमाके पूर्व वह नवमी प्रतिमामें आरम्भादिका कारितसे त्यागी हुआ है, और उसके पूर्व आठवीं प्रतिमामें कृतसे त्यागी हुआ है, यह बात बिना कहे ही स्वतः सिद्ध हो जाती है।

उक्त विवेचनसे यह निष्कर्ष निकला कि श्रावक भोग-उपभोगके साधक आरम्भका कृतसे त्यागकर आठवीं प्रतिमाका धारी, कारितसे भी त्याग करनेपर नवमी प्रतिमाका धारी और अनुमतिसे भी त्याग करनेपर दशवीं प्रतिमाका धारी बन जाता है। पर स्वामिकार्त्तिकेय अष्टम प्रतिमाधारीके लिए कृत, कारित और अनुमोदनासे आरम्भका त्याग आवश्यक बतलाते हैं। यहाँ इतनी बात विशेष ज्ञातव्य है कि ज्यों-ज्यों श्रावक ऊपर चढ़ता जाता है, त्यों-त्यों अपने बाह्य परिग्रहोंको भी घटाता जाता है। आठवीं प्रतिमामें जब उसने नवीन धन उपार्जनका त्याग कर दिया तो उससे एक सीढ़ी ऊपर चढ़ते ही संचित धन, धान्यादि बाह्य दशों प्रकारके परिग्रहसे भी ममत्व छोड़कर उनका परित्याग करता है, केवल वस्त्रादि अत्यन्त आवश्यक पदार्थोंको रखता है और इस प्रकार वह परिग्रह-त्याग नामक नवमी प्रतिमाका धारी बन जाता है। यह सन्तोषकी परम मूर्ति, निर्ममत्वमें रत और परिग्रहसे विरत हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशवीं अनुमतित्याग प्रतिमा है। इसमें आकर श्रावक व्यापारादि आरम्भके विषयमें, धन-धान्यादि परिग्रहके विषयमें और इहलोक-सम्बन्धी विवाह आदि किसी भी लौकिक कार्यमें अनुमति नहीं देता है। वह घरमें रहते हुए भी घरके इष्ट-अनिष्ट कार्योमें राग-द्वेष नहीं करता है और जलमें कमलके समान सर्व गृह-कार्योंसे अलिप्त रहता है। केवल वस्त्रके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु अपने पास नहीं रखता। अतिथि या मेहमानके समान उदासीन रूपसे घरमें रहता है। घर वालोंके द्वारा भोजनके लिए बुलानेपर भोजन करने चला जाता है। इस प्रतिमाका धारी भोग सामग्रीमेंसे केवल भोजनको, भले ही वह उसके निमित्त बनाया गया हो, स्वयं अनुमोदना न करके ग्रहण करता है और परिमित वस्त्रके धारण करने तथा उदासीन रूपसे एक कमरेमें रहनेके अतिरिक्त और सर्व उपभोग सामग्रीका भी परित्यागी हो जाता है। इस प्रकार वह घरमें रहते हुए भी भोगविरति और उपभोगविरतिकी चरम सीमापर पहुँच जाता है। यहाँ इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि दशवीं प्रतिमाका धारी उद्दिष्ट अर्थात् अपने निमित्त बने हुए भोजन और वस्त्रके अतिरिक्त समस्त भोग और उपभोग सामग्रीका सर्वथा परित्यागी हो जाता है।

जब श्रावकको घरमें रहना भी निर्विकल्पता और निराकुलताका बाधक प्रतीत होता है, तब वह पूर्ण निर्विकल्प निजानन्दकी प्राप्तिके लिए घरका भी परित्याग कर वनमें जाता है और निर्ग्रन्थ गुरुओंके पास व्रतोंको ग्रहण कर भिक्षावृत्तिसे आहार करता हुआ तथा रात-दिन स्वाध्याय और तपस्या करता हुआ जीवन यापन करने लगता है। वह इस अवस्थामें अपने निमित्त बने हुए आहार और वस्त्र आदिको भी ग्रहण नहीं करता है[1]। अतः उद्दिष्ट भोगविरति और उद्दिष्ट उपभोगविरतिकी चरम सीमापर पहुँच जानेके कारण उद्दिष्ट-त्याग नामक ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक कहलाने लगता है। इसके पश्चात् वह मुनि बन जाता है, या समाधिमरणको अंगीकार करता है।

उक्त प्रकार तीसरीसे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तक सर्व प्रतिमाओंके आधार चार शिक्षाव्रत है, यह बात असंदिग्ध रूपसे शास्त्राधार पर प्रमाणित हो जाती है।

इस प्रकार शिक्षाव्रतोंका उद्देश जो मुनि बननेकी शिक्षा प्राप्त करना है, अथवा समाधिमरण-की ओर अग्रेसर होना ही वह सिद्ध हो जाता है।

यदि तत्त्वार्थसूत्र-सम्मत शिक्षाव्रतोंको भी प्रतिमाओंका आधार माना जावे, तो भी कोई आपत्ति नहीं है। पाँचवीं प्रतिमासे लेकर उपर्युक्त प्रकारसे भोग और उपभोगका क्रमशः परित्याग करते हुए जब श्रावक नवीं प्रतिमामें पहुँचता है, तब वह अतिथि संविभागके उत्कृष्टरूप सकल-दत्तिको स्वीकार करता है, जिसका विशद विवेचन पं० आशाधरजीने सागारधर्मामृतके सातवें अध्यायमें इस प्रकार किया है—

जब क्रमशः ऊपर चढ़ते हुए श्रावकके हृदयमें यह भावना प्रवाहित होने लगे कि ये स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी जन वा धनादिक न मेरे हैं और न मैं इनका हूँ। हम सब तो नदी-नाव संयोगसे इस भवमें एकत्रित हो गये हैं और इसे छोड़ते ही सब अपने-अपने मार्ग पर चल देंगे, तब वह परिग्रह-

१. उद्दिष्टविरतः-स्वनिमित्तनिर्मिताहारग्रहणरहितः स्वोद्दिष्टपिंडोपधिशयनवसनादेर्विरत उद्दिष्टविनिवृत्तः।
—स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, गा० ३०६ टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को छोड़ता है और उस समय जाति-बिरादरीके मुखिया जनोंके सामने अपने ज्येष्ठ पुत्र या उसके अभावमें गोत्रके किसी उत्तराधिकारी व्यक्तिको बुलाकर कहता है कि हे तात, हे वत्स, आज तक मैंने इस गृहस्थाश्रमका भलीभाँति पालन किया। अब मैं इस संसार, देह और भोगोंसे उदास होकर इसे छोड़ना चाहता हूँ, अतएव तुम हमारे इस पदको धारण करनेके योग्य हो। पुत्रका पुत्रपना यही है कि जो अपने आत्महित करनेके इच्छुक पिताके कल्याण-मार्गमें सहायक हो, जैसे कि केशव अपने पिता सुविधिके हुए। (इसकी कथा आदिपुराणसे जाननी चाहिए।) जो पुत्र पिता-के कल्याण-मार्गमें सहायक नहीं बनता, वह पुत्र नहीं, शत्रु है। अतएव तुम मेरे इस सब धनको, पोष्यवर्गको और धर्म्यकार्योंको संभालो। यह सकलदत्ति है जो कि शिवार्थी जनोंके लिए परम पथ्य मानी गई है। जिन्होंने मोहरूप शार्दूलको विदीर्ण कर दिया है, उसके पुनरुत्थानसे शंकित गृहस्थोंको त्यागका यही क्रम बताया गया है, क्योंकि शक्त्यनुसार त्याग ही सिद्धिकारक होता है। इस प्रकार सर्वस्वका त्याग करके मोहको दूर करनेके लिए उदासीनताकी भावना करता हुआ वह श्रावक कुछ काल तक घरमें रहे। (देखो श्रावका० भा० २ पृ० ७२-७३)

उक्त प्रकारसे जब श्रावकने नवमी प्रतिमामें आकर 'स्व' कहे जानेवाले अपने सर्वस्वका त्याग कर दिया, तब वह बड़ेसे बड़ा दानी या अतिथि-संविभागी सिद्ध हुआ। क्योंकि सभी दानों-में सकलदत्ति ही श्रेष्ठ मानी गई है। सकलदत्ति करनेपर वह श्रावक स्वयं अतिथि बननेके लिए अग्रेसर होता है और एक कदम आगे बढ़कर गृहस्थाश्रमके कार्योंमें भी अनुमति देनेका परित्याग कर देता है। तत्पश्चात् एक सीढ़ी और आगे बढ़कर स्वयं अतिथि बन जाता है और घर-द्वारको छोड़कर मुनि-वनमें रहकर मुनि बननेकी ही शोधमें रहने लगता है। इस प्रकार दसवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाका आधार विधि-निषेधके रूपमें अतिथि-संविभाग व्रत सिद्ध होता है।

१०. प्रतिमाओंका वर्गीकरण

श्रावक किस प्रकार अपने व्रतोंका उत्तरोत्तर विकास करता है, यह बात 'प्रतिमाओंका आधार' शीर्षकमें बतलाई जा चुकी है। आचार्योंने इन ग्यारह प्रतिमा-धारियोंको तीन भागोंमें विभक्त किया है—गृहस्थ, वर्णी या ब्रह्मचारी और भिक्षुक[१]। आदिके छह प्रतिमाधारियोंको गृहस्थ, सातवीं, आठवीं और नवमी प्रतिमाधारीको वर्णी और अन्तिम दो प्रतिमाधारियोंको भिक्षुक संज्ञा दी गई है[२]। कुछ आचार्योंने इनके क्रमशः जघन्य, मध्यम और उत्तम श्रावक ऐसे नाम भी दिये हैं, जो कि उक्त अर्थके ही पोषक हैं[३]।

यद्यपि स्वामिकार्त्तिकेयने इन तीनोंमेंसे किसी भी नामको नहीं कहा है, तथापि ग्यारहवीं प्रतिमाके स्वरूपमें उन्होंने जो 'भिक्खायरणेण' पद दिया है,[४] उससे 'भिक्षुक' इस नामका समर्थन अवश्य होता है। आचार्य समन्तभद्रने भी उक्त नामोंका कोई उल्लेख नहीं किया है, तथापि ग्यारहवीं प्रतिमाके स्वरूपमें जो 'भैक्ष्याशनः' और 'उत्कृष्टः' ये दो पद दिये हैं, उनसे 'भिक्षुक'

१. देखो—श्रावकाचार भाग १ पृ० २२३ श्लोक ८२४।
२. श्रावकाचार भाग २ पृ० २२ श्लोक २-३।
३. श्रावकाचार भाग १ पृ० २५७ श्लोक २०।
४. श्रावकाचार भाग १ पृ० २८, गाथा ९०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और 'उत्कृष्ट' या 'उत्तम' नामकी पुष्टि अवश्य होती है, क्योंकि 'उत्तम और उत्कृष्ट' पद तो एकार्थक ही हैं। आदिके छह प्रतिमाधारी श्रावक यतः स्त्री-सुख भोगते हुए घरमें रहते हैं, अतः उन्हें 'गृहस्थ' संज्ञा स्वतः प्राप्त है। यद्यपि समन्तभद्रके मतसे श्रावक दसवीं प्रतिमा तक अपने घरमें ही रहता है, पर यहाँ 'गृहिणीं गृहमाहुर्न कुड्यकटसंहतिम्' की नीतिके अनुसार स्त्रीको ही गृह संज्ञा प्राप्त है और उसके साथ रहते हुए ही वह गृहस्थ संज्ञाका पात्र है। यतः प्रतिमाधारियों-में प्रारम्भिक छह प्रतिमाधारक स्त्री-भोगी होनेके कारण गृहस्थ हैं, अतः वे सबसे छोटे भी हुए, इसलिए उन्हें जघन्य श्रावक कहा गया है। पारिशेष-न्यायसे मध्यवर्ती तीन प्रतिमाधारी मध्यम श्रावक सिद्ध होते हैं। पर दसवीं प्रतिमाधारीको मध्यम न मानकर उत्तम श्रावक माना गया है, इसका कारण यह है कि वह घरमें रहते हुए भी नहीं रहने जैसा है, क्योंकि वह गृहस्थीके किसी भी कार्यमें अनुमति तक भी नहीं देता है। पर दसवीं प्रतिमाधारीको भिक्षावृत्तिसे भोजन न करते हुए भी 'भिक्षुक' कैसे माना जाय, यह एक प्रश्न विचारणीय अवश्य रह जाता है। संभव है, भिक्षुकके समीप होनेसे उसे भी भिक्षुक कहा गया हो, जैसे चरम भवके समीपवर्ती अनुत्तर विमान-वासी देवोंको 'द्विचरम' कह दिया जाता है। सातवींसे लेकर आगेके सभी प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी हैं, जब उनमेंसे अन्तिम दो को भिक्षुक संज्ञा दे दी गई, तब मध्यवर्त्ती तीन (सातवीं, आठवीं और नवमी) प्रतिमाधारियोंकी ब्रह्मचारी संज्ञा भी स्वतः सिद्ध है। पर ब्रह्मचारीको वर्णी क्यों कहा जाने लगा, यह एक प्रश्न यहाँ आकर उपस्थित होता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, सोमदेव और जिनसेनने तथा इनके पूर्ववर्त्ती किसी भी आचार्यने 'वर्णी' नामका विधान जैन परम्परामें नहीं किया है। परन्तु उक्त तीन प्रतिमा-धारियोंको पं० आशाधरजीने ही सर्वप्रथम 'वर्णिनस्त्रयो मध्याः' कहकर वर्णी पदसे निर्देश किया है और उक्त श्लोककी स्वोपज्ञटीकामें 'वर्णिनो ब्रह्मचारिणः' लिखा है, जिससे यही अर्थ निकलता है कि वर्णीपद ब्रह्मचारीका वाचक है, पर 'वर्णी' पदका क्या अर्थ है, इस बातपर उन्होंने कुछ प्रकाश नहीं डाला है। सोमदेवने ब्रह्म शब्दके काम-विनिग्रह, दया और ज्ञान ऐसे तीन अर्थ किये हैं, (देखो भा० २ पृ० २२५ श्लोक ८४०) मेरे ख्याल-से स्त्रीसेवनत्यागकी अपेक्षा सातवीं प्रतिमाधारीको, दयार्द्र होकर पापारंभ छोड़नेकी अपेक्षा आठवीं प्रतिमाधारीको और निरन्तर स्वाध्यायमें प्रवृत्त होनेकी अपेक्षा नवीं प्रतिमाधारीको ब्रह्मचारी कहा गया होगा।

११. क्षुल्लक और ऐलक

ऊपर प्रतिमाओंके वर्गीकरणमें बताया गया है कि स्वामी कार्त्तिकेय और समन्तभद्रने यद्यपि सीधे रूपमें ग्यारहवीं प्रतिमाधारीका 'भिक्षुक' नाम नहीं दिया है, तथापि उनके उक्त पदोंसे इस नामकी पुष्टि अवश्य होती है। परन्तु ग्यारहवीं प्रतिमाधारीके दो भेद कबसे हुए और उन्हें 'क्षुल्लक' और 'ऐलक' कबसे कहा जाने लगा, इन प्रश्नोंका ऐतिहासिक उत्तर अन्वेषणीय है, अतएव यहाँ उनपर विचार किया जाता है :—

(१) आचार्य कुन्दकुन्दने सूत्रपाहुडमें एक गाथा दी है :

दुइयं च वुत्तलिंगं उक्किट्ठं अवर सावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्तो समिदीभासेण मोणेण ॥ २१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् मुनिके पश्चात् दूसरा उत्कृष्टलिंग गृहत्यागी उत्कृष्ट श्रावकका है। वह पात्र लेकर ईर्यासमिति पूर्वक मौन के साथ भिक्षाके लिए परिभ्रमण करता है।

इस गाथामें ग्यारहवीं प्रतिमाधारी 'उत्कृष्ट श्रावक' ही कहा गया है, अन्य किसी नामकी उससे उपलब्धि नहीं होती। हां, 'भिक्खं भमेइ पत्तो' पदसे उसके 'भिक्षुक' नामकी ध्वनि अवश्य निकलती है।

(२) स्वामी कार्त्तिकेय और समन्तभद्रने भी ग्यारहवीं प्रतिमाधारीके दो भेद नहीं किये हैं, न उनके लिए किसी नामकी ही स्पष्ट संज्ञा दी है। हाँ, उनके पदोंसे भिक्षुक नामकी पुष्टि अवश्य होती है। इनके मतानुसार भी उसे गृहका त्याग करना आवश्यक है।

(३) आचार्य जिनसेनने अपने आदिपुराणमें यद्यपि कहीं भी ग्यारह प्रतिमाओंका कोई वर्णन नहीं किया है, परन्तु उन्होंने ३८ वें पर्वमें गर्भान्वय क्रियाओंमें मुनि बननेके पूर्व 'दीक्षाद्य' नामकी क्रियाका जो वर्णन किया है, वह अवश्य ग्यारहवीं प्रतिमाके वर्णनसे मिलता-जुलता है। वे लिखते हैं :—

त्यक्तागारस्य सद्दृष्टेः प्रशान्तस्य गृहीशिनः।
प्राग्दीक्षोपयिकात्कालादेकशाटकधारिणः ॥ १५७ ॥
यत्पुरश्चरणं दीक्षाग्रहणं प्रतिधार्यते।
दीक्षाद्यं नाम तज्ज्ञेयं क्रियाजातं द्विजन्मनः ॥ १५८ ॥
(श्रावका० भा० १ पृ० ४२)

अर्थात्—जिनदीक्षा धारण करनेके कालसे पूर्व जिस सम्यग्दृष्टि, प्रशान्तचित्त, गृहत्यागी, द्विजन्मा और एक धोती मात्रके धारण करनेवाले गृहीशीके मुनिके पुरश्चरणरूप जो दीक्षा ग्रहण की जाती है, उस क्रिया-समूहके करनेको 'दीक्षाद्य' क्रिया जानना चहिए। इसी क्रियाका स्पष्टीकरण आ० जिनसेनने ३९ वें पर्वमें भी किया है :—

त्यक्तागारस्य तस्यातस्तपोवनमुपेयुषः।
एकशाटकधारित्वं प्राग्वद्दीक्षाद्यमिष्यते ॥ ७७ ॥
(श्रावका० भा० १ पृ० ६३)

इसमें 'तपोवनमुपेयुषः' यह एक पद और अधिक दिया है।

इसमें 'दीक्षाद्यक्रिया' से दो बातोंपर प्रकाश पड़ता है, एक तो इस बातपर कि उसे इस क्रियाको करनेके लिए घरका त्याग आवश्यक है, और दूसरी इस बातपर कि उसे एक ही वस्त्र धारण करना चाहिए। आचार्य समन्तभद्रके 'गृहतो मुनिवनमित्वा' पदके अर्थकी पुष्टि 'त्यक्तागारस्य' और 'तपोवनमुपेयुषः' पदसे और 'चेलखण्डधरः' पदके अर्थकी पुष्टि 'एकशाटकधारिणः' पदसे होती है, अतः इस दीक्षाद्यक्रियाको ग्यारहवीं प्रतिमाके वर्णनसे मिलता-जुलता कहा गया है।

आचार्य जिनसेनने इस दीक्षाद्यक्रियाका विधान दीक्षान्वय-क्रियाओंमें भी किया है और वहाँ बतलाया है कि जो मनुष्य अदीक्षार्ह अर्थात् मुनिदीक्षाके अयोग्य कुलमें उत्पन्न हुए हैं, विद्या और शिल्पसे आजीविका करते हैं, उनके उपनीति आदि संस्कार नहीं किये जाते। वे अपने पदके योग्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रतोंको और उचित लिंगको धारण करते हैं तथा संन्याससे मरण होने तक एक धोतीमात्रके धारी होते हैं। वह वर्णन इस प्रकार है :—

अदीक्षार्हे कुले जाता विद्याशिल्पोपजीविनः।
एतेषामुपनीत्यादिसंस्कारो नाभिसम्मतः॥ १७०॥
तेषां स्यादुचितं लिंगं स्वयोग्यव्रतधारिणाम्।
एकशाटकधारित्वं संन्यासमरणावधि॥ १७१॥

(श्रावका० भा० १ पृ० ९३)

आचार्य जिनसेनने दीक्षार्ह कुलीन श्रावककी 'दीक्षाद्य क्रिया' से अदीक्षार्ह, अकुलीन श्रावककी दीद्याद्य क्रियामें क्या भेद रखा है, यह यहाँ जानना आवश्यक है। वे दोनोंको एक वस्त्रका धारण करना समानरूपसे प्रतिपादन करते हैं, इतनी समानता होते हुए भी वे उसके लिए उपनीति संस्कार अर्थात् यज्ञोपवीतके धारण आदिका निषेध करते हैं, और साथ ही स्व-योग्य व्रतोंके धारणका विधान करते हैं। यहाँ ही दीक्षाद्यक्रियाके धारकोंके दो भेदोंका सूत्रपात प्रारंभ होता हुआ प्रतीत होता है, और संभवतः ये दो भेद ही आगे जाकर ग्यारहवीं प्रतिमाके दो भेदोंके आधार बन गये हैं। 'स्वयोग्य-व्रतधारण' से आचार्य जिनसेनका क्या अभिप्राय रहा है, यह उन्होंने स्पष्ट नहीं किया है। पर इसका स्पष्टीकरण प्रायश्चित्तचूलिकाके उस वर्णनसे बहुत कुछ हो जाता है, जहाँपर कि प्रायश्चित्तचूलिकाकारने कारु-शूद्रोंके दो भेद करके उन्हें व्रत-दान आदिका विधान किया है। प्रायश्चित्तचूलिकाकार लिखते हैं :—

कारुणो द्विविधाः सिद्धा भोज्याभोज्यप्रभेदतः।
भोज्येष्वेव प्रदातव्यं सर्वदा क्षुल्लकव्रतम्॥ १५४॥

अर्थात्—कारु शूद्र भोज्य और अभोज्यके भेदसे दो प्रकारके प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे भोज्य शूद्रोंको ही सदा क्षुल्लक व्रत देना चाहिए।

इस ग्रन्थके संस्कृत टीकाकार भोज्य पदकी व्याख्या करते हुए कहते हैं :—

भोज्याः—यदन्नपानं ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा भुञ्जते। अभोज्याः—तद्विपरीतलक्षणाः। भोज्येष्वेव प्रदातव्या क्षुल्लकदीक्षा, नापरेषु।

अर्थात्—जिनके हाथका अन्न-पान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र खाते हैं, उन्हें भोज्य कारु कहते हैं। इनसे विपरीत अभोज्यकारु जानना चाहिए। क्षुल्लक व्रतकी दीक्षा भोज्य कारुओंमें ही देना चाहिए, अभोज्य कारुओंमें नहीं।

इससे आगे क्षुल्लकके व्रतोंका स्पष्टीकरण प्रायश्चित्तचूलिकामें इस प्रकार किया गया है।

क्षुल्लकेष्वेककं वस्त्रं नान्यत्र स्थितिभोजनम्।
आतापनादियोगोऽपि तेषां शश्वन्निषिध्यते॥ १५५॥
क्षौरं कुर्याच्च लोचं वा पाणौ भुंक्तेऽथ भाजने।
कौपीनमात्रतंत्रोऽसौ क्षुल्लकः परिकीर्त्तितः॥ १५६॥

अर्थात्—क्षुल्लकोंमें एक ही वस्त्रका विधान किया गया है, वे दूसरा वस्त्र नहीं रख सकते। वे मुनियोंके समान खड़े-खड़े भोजन नहीं कर सकते। उनके लिए आतापन योग, वृक्षमूल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग आदि योगोंका भी शाश्वत निषेध किया गया है। उस्तरे आदिसे क्षौरकर्म शिरमुंडन भी करा सकते हैं और चाहें तो केशोंका लोंच भी कर सकते हैं। वे पाणिपात्रमें भी भोजन कर सकते हैं और चाहें तो काँसेके पात्र आदिमें भी भोजन कर सकते हैं। ऐसा व्यक्ति जो कि कौपीनमात्र रखनेका अधिकारी है, क्षुल्लक कहा गया है। टीकाकारोंने कौपीनमात्रतंत्रका अर्थ-कर्पटखंडमंडितकटीतटः अर्थात् खंड वस्त्रसे जिसका कटीतट मंडित हो, किया है, और क्षुल्लकका अर्थ—उत्कृष्ट अणुव्रत-धारी किया है।

आदिपुराणकारके द्वारा अदीक्षार्ह पुरुषके लिए किये गये व्रतविधानकी तुलना जब हम प्रायश्चित्तचूलिकाके उपर्युक्त वर्णनके साथ करते हैं, तब असंदिग्ध रूपसे इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि जिनसेनने जिन अदीक्षार्ह पुरुषोंको संन्यासमरणावधि तक एक वस्त्र और उचित व्रत-चिह्न आदि धारण करनेका विधान किया है, उन्हें ही प्रायश्चित्तचूलिकाकारने 'क्षुल्लक' नामसे उल्लेख किया है।

क्षुल्लक शब्दका अर्थ

अमरकोषमें क्षुल्लक शब्दका अर्थ इस प्रकार दिया है :—

विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथक्जनः।
निहीनोऽपसदो जाल्पः क्षुल्लकश्चेतरश्च सः।। १६ ।।
(दश नीचस्य नामानि) अमर० द्वि० कां० शूद्रवर्ग।

अर्थात्—विवर्ण, पामर, नीच, प्राकृत जन, पृथक् जन, निहीन, अपसद, जाल्प, क्षुल्लक और इतर ये दश नीच नाम हैं।

उक्त श्लोक शूद्रवर्गमें दिया हुआ है। अमरकोषके तृतीय कांडके नानार्थ वर्गमें भी 'स्वल्पेऽपि क्षुल्लकस्त्रिषु' पद आया है, वहाँपर इसकी टीका इस प्रकार की है :—

'स्वल्पे, अपि शब्दान्नीच-कनिष्ठ-दरिद्रेष्वपि क्षुल्लकः'

अर्थात्—स्वल्प, नीच, कनिष्ठ और दरिद्रके अर्थोंमें क्षुल्लक शब्दका प्रयोग होता है।

'रभसकोष'में भी 'क्षुल्लकस्त्रिषु नीचेऽल्पे' दिया है। इन सबसे यही सिद्ध होता है कि क्षुल्लक शब्दका अर्थ नीच या हीन है।

प्रायश्चित्तचूलिकाके उपर्युक्त कथनसे भी इस बातकी पुष्टि होती है कि शूद्रकुलोत्पन्न पुरुषोंको क्षुल्लक दीक्षा दी जाती थी। तत्त्वार्थराजवार्तिक आदिमें भी महाहिमवान्‌के साथ हिमवान् पर्वतके लिए क्षुल्लक या क्षुद्र शब्दका उपयोग किया गया है, जिससे भी यही अर्थ निकलता है कि हीन या क्षुद्रके लिए क्षुल्लक शब्दका प्रयोग किया जाता था। श्रावकाचारोंके अध्ययनसे पता चलता है कि आचार्य जिनसेनके पूर्व तक शूद्रोंको दीक्षा देने या न देनेका कोई प्रश्न सामने नहीं था। जिनसेनके सामने जब यह प्रश्न आया, तो उन्होंने अदीक्षार्ह और दीक्षार्ह कुलोत्पन्नोंका विभाग किया और उनके पीछे होनेवाले सभी आचार्योंने उनका अनुसरण किया। प्रायश्चित्त-चूलिकाकारने नीचकुलोत्पन्न होनेके करण ही संभवतः आतापनादि योगका क्षुल्लकके लिए निषेध किया था, पर परवर्ती श्रावकाचारकारोंने इस रहस्यको न समझनेके कारण सभी ग्यारहवीं प्रतिमाधारकोंके लिए आपातनादि योगका निषेध कर डाला। इतना ही नहीं, आदि पदके अर्थको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भी बढ़ाया और जिन-प्रतिमा, वीरचर्या, सिद्धान्त ग्रन्थ और प्रायश्चित्तशास्त्रके अध्ययन तकका उनके लिए निषेध कर दिया। किसी-किसी विद्वान्‌ने तो सिद्धान्त ग्रन्थ आदिके सुननेका भी अनधिकारी घोषित कर दिया। यह स्पष्टतः वैदिक संस्कृतिका प्रभाव है, जहाँ पर कि शूद्रोंको वेदाध्ययनका सर्वथा निषेध किया गया है, और उसके सुननेपर कानोंमें गर्म शीशा डालनेका विधान किया गया है।

क्षुल्लकोंको जो पात्र रखने और अनेक घरोंसे भिक्षा लाकर खानेका विधान किया गया है, वह भी संभवतः उनके शूद्र होनेके कारण ही किया गया प्रतीत होता है। सागारधर्मामृतमें ग्यारहवीं प्रतिमाधारी द्वितीयोत्कृष्ट श्रावकके लिए जो 'आर्य' संज्ञा दी गई है, वह भी क्षुल्लकोंके जाति, कुल आदिकी अपेक्षा हीनत्वका द्योतन करती है।

उक्त स्वरूपवाले क्षुल्लकोंको किस श्रावक प्रतिमामें स्थान दिया जाय, यह प्रश्न सर्वप्रथम आचार्य वसुनन्दिके सामने आया प्रतीत होता है, क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम ग्यारहवीं प्रतिमाके दो भेद किये हैं। इनके पूर्ववर्त्ती किसी भी आचार्यने इस प्रतिमाके दो भेद नहीं किये हैं, प्रत्युत बहुत स्पष्ट शब्दोंमें उसकी एकरूपताका ही वर्णन किया है। आचार्य वसुनन्दिने इस प्रतिमाधारीके दो भेद करके प्रथमको एक वस्त्रधारक और द्वितीयको कौपीनधारक कहा है (देखो गाथा नं० ३०१)। वसुनन्दिने प्रथमोत्कृष्ट श्रावकका जो स्वरूप दिया है, वह क्षुल्लकके वर्णनसे मिलता-जुलता है और उसके परवर्त्ती विद्वानोंने प्रथमोत्कृष्टकी स्पष्टतः क्षुल्लक संज्ञा दी है, अतः यही अनुमान होता है कि उक्त प्रश्नको सर्वप्रथम वसुनन्दिने ही सुलझानेका प्रयत्न किया है। इस प्रथमोत्कृष्टको क्षुल्लक शब्दसे सर्वप्रथम लाटीसंहिताकार पं० राजमल्लजीने ही उल्लेख किया है, हालांकि स्वतन्त्र रूपसे क्षुल्लक शब्दका प्रयोग और क्षुल्लक व्रतका विधान प्रायश्चित्तचूलिकामें किया गया है, जो कि ग्यारहवीं शताब्दीके पूर्वकी रचना है। केवल क्षुल्लक शब्दका उपयोग पद्मपुराण आदि कथा ग्रन्थोंमें अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है और उन क्षुल्लकोंका वैसा ही रूप वहाँ पर मिलता है, जैसा कि प्रायश्चित्तचूलिकाकारने वर्णन किया है।

ग्यारहवीं प्रतिमाके दो भेदोंका उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य वसुनन्दिने किया, पर वे दो भेद प्रथमोत्कृष्टके रूपसे ही चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी तक चलते रहे। सत्तरहवीं शतीके विद्वान् पं० राजमल्लजीने अपनी लाटीसंहितामें सर्वप्रथम उनके लिए क्रमशः क्षुल्लक और ऐलक शब्दका प्रयोग किया है[1]। क्षुल्लक शब्द कबसे और कैसे चला, इसका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं। यह 'ऐलक' शब्द कैसे बना और इसका क्या अर्थ है, यह बात यहाँ विचारणीय है। इस 'ऐलक' पदके मूल रूपकी ओर गंभीर दृष्टिपात करनेपर यह भ० महावीरसे भी प्राचीन प्रतीत होता है। भ० महावीरके भी पहलेसे जैन साधुओंको 'अचेलक' कहा जाता था। चेल नाम वस्त्रका है। जो साधु वस्त्र धारण नहीं करते थे, उन्हें अचेलक कहा जाता था। भगवती आराधना, मूलाचार आदि सभी प्राचीन ग्रन्थोंमें दिगम्बर साधुओंके लिए अचेलक पदका व्यवहार हुआ है। पर भ० महावीरके समय अचेलक साधुओंके लिए नग्न, निर्ग्रन्थ और दिगम्बर शब्दोंका प्रयोग बहुलतामें होने लगा। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध और उनका शिष्य-समुदाय

---

१. उत्कृष्टः श्रावको द्वेधा क्षुल्लकश्चैलकस्तथा।
एकादशव्रतस्थौ द्वौ स्तो द्वौ निर्जरकौ क्रमात् ॥५५॥—(श्रावका० भा० ३ पृ० १४६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्त्रधारी था, अतः तात्कालिक लोगोंने उनके व्यवच्छेद करनेके लिए जैन साधुओंको नग्न, निर्ग्रन्थ आदि नामोंसे पुकारना प्रारम्भ किया। यही कारण है कि स्वयं बौद्ध ग्रन्थोंमें जैन साधुओंके लिए 'निग्गंठ' या 'णिगंठ' नामका प्रयोग किया गया है, जिसका कि अर्थ निर्ग्रन्थ है। अभी तक नञ् समासका सर्वथा प्रतिषेध-परक 'न + चेलकः = अचेलकः' अर्थ लिया जाता रहा है। पर जब नग्न साधुओंको स्पष्ट रूपसे दिगम्बर, निर्ग्रन्थ आदि रूपसे व्यवहार किया जाने लगा, तब तो जो अन्य समस्त बातोंमें तो पूर्ण साधुव्रतोंका पालन करते थे, परन्तु लज्जा, गौरव या शारीरिक लिंग-दोष आदिके कारण लंगोटी मात्र धारण करते थे, ऐसे ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकोंके लिए नञ् समासके ईषदर्थका आश्रय लेकर 'ईषत् + चेलकः - अचेलकः' का व्यवहार प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है जिसका कि अर्थ नाममात्रका वस्त्र धारण करनेवाला होता है। ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दीसे प्राकृतके स्थानपर अपभ्रंश भाषाका प्रचार प्रारम्भ हुआ और अनेक शब्द सर्वसाधारण-के व्यवहारमें कुछ भ्रष्ट रूपसे प्रचलित हुए। इसी समयके मध्य 'अचेलक' का स्थान 'ऐलक' पदने ले लिया, जो कि प्राकृत-व्याकरणके नियमसे भी सुसंगत बैठ जाता है। क्योंकि प्राकृतमें 'क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां प्रायो लुक्' (हैम० प्रा० १,१७७) इस नियमके अनुसार 'अचेलक' के चकारका लोप हो जानेसे 'अ ए ल क' पद अवशिष्ट रहता है। यही (अ + ए = ऐ) सन्धिके योगसे 'ऐलक' बन गया।

उक्त विवेचनसे यह बात भली भाँति सिद्ध हो जाती है कि 'ऐलक' पद भले ही अर्वाचीन हो पर उसका मूल रूप 'अचेलक' शब्द बहुत प्राचीन है। लाटीसंहिताकारको या तो 'ऐलक' का मूलरूप समझमें नहीं आया, या उन्होंने सर्वसाधारणमें प्रचलित 'ऐलक' शब्दको ज्योंका त्यों देना ही उचित समझा। इस प्रकार ऐलक शब्दका अर्थ नाममात्रका वस्त्रधारक अचेलक होता है और इसकी पुष्टि आचार्य समन्तभद्रके द्वारा ग्यारहवीं प्रतिमाधारीके लिए दिये गये 'चेलखण्डधरः' पदसे भी होती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त सर्व विवेचनका निष्कर्ष यह है—

क्षुल्लक—उस व्यक्तिको कहा जाता था, जो कि मुनिदीक्षाके अयोग्य कुलमें या शूद्र वर्णमें उत्पन्न होकर स्व-योग्य, शास्त्रोक्त, सर्वोच्च व्रतोंका पालन करता था, एक वस्त्रको धारण करता था, पात्र रखता था, अनेक घरोंसे भिक्षा लाकर और एक जगह बैठकर खाता था, वस्त्रादिका प्रतिलेखन रखता था, कैंची या उस्तरेसे शिरोमुंडन कराता था। इसके लिए वीरचर्या, आतापनादि योग करने और सिद्धान्त ग्रन्थ तथा प्रायश्चित्तशास्त्रके पढ़नेका निषेध था।

ऐलक—मूल में 'अचेलक' पद नग्न मुनियोंके लिए प्रयुक्त होता था। पीछे जब नग्न मुनियोंके लिए निर्ग्रन्थ, दिगम्बर आदि शब्दोंका प्रयोग होने लगा, तब यह शब्द ग्यारहवीं प्रतिमा-धारक और नाममात्रका वस्त्र-खंड धारण करनेवाले उत्कृष्ट श्रावकके लिए व्यवहृत होने लगा। इसके पूर्व ग्यारहवीं प्रतिमाधारीका 'भिक्षुक' नामसे व्यवहार होता था। इस भिक्षुक या ऐलकके लिए लंगोटी मात्रके अतिरिक्त सर्व वस्त्रों और पात्रोंके रखनेका निषेध है। साथ ही मुनियोंके समान खड़े-खड़े भोजन करने, केशलुंच करने और मयूरपिच्छिका रखनेका विधान है। इसे ही विद्वानोंने 'ईषन्मुनि' 'देश यति' आदि नामोंसे व्यवहार किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समयके परिवर्त्तनके साथ शूद्रोंको दीक्षा देना बन्द हुआ, या शूद्रोंने जैनधर्म धारण करना बन्दकर दिया और तेरहवीं शताब्दीसे लेकर इधर मुनिमार्ग प्रायः बन्द-सा हो गया तथा धर्मशास्त्र-के पठन-पाठनकी गुरु-परम्पराका विच्छेद हो गया, तब लोगोंने ग्यारहवीं प्रतिमाके ही दो भेद मान लिये और उनमेंसे एकको क्षुल्लक और दूसरेको ऐलक कहा जाने लगा।

क्या आज उच्चकुलीन, ग्यारहवीं प्रतिमाधारक उत्कृष्ट श्रावकोंको 'क्षुल्लक' कहा जाना योग्य है? यह अद्यापि विचारणीय है।

१२. श्रावक प्रतिमाओंके विषयमें कुछ विशेष ज्ञातव्य

(१) आचार्य कुन्दकुन्द, स्वामी समन्तभद्र, स्वामी कार्त्तिकेय, सोमदेव, चामुण्डराय, अमित-गति आदि अनेक आचार्योंने ग्यारहवीं प्रतिमाके दो भेद नहीं कहे हैं, जबकि वसुनन्दी, आशाधर, मेधावी, गुणभूषण आदि अनेक श्रावकाचारकारोंने दो भेद किये हैं।

(२) सोमदेवने सचित्तत्यागको आठवीं प्रतिमा कहा है और कृषि आदि आरम्भके त्यागको पाँचवीं प्रतिमा कहा है, जो अधिक उपयुक्त एवं क्रम-संगत प्रतीत होता है (देखो—भाग १, पृ० २३३, श्लोक ८२१)

(३) सकलकीर्तिने ग्यारहवीं प्रतिमाधारीके लिए मुहूर्त्तप्रमाण निद्रा लेना कहा है (देखो—भाग २, पृ० ४३४, श्लोक ११०)

(४) सकलकीर्त्तिने ग्यारहवीं प्रतिमावालेको क्षुल्लक कहा है। उसे सद्-धातुका कमण्डलु, और छोटा पात्र—थाली रखनेका विधान किया हैं। (देखो—भाग २, पृ० ४२५-४२६, श्लोक ३४, ४१-४२)

(५) क्षुल्लकके लिए अनेक श्रावकाचारकारोंने सहज प्राप्त प्रासुक द्रव्यसे जिन-पूजन करने-का भी विधान किया है। (देखो—लाटीसंहिता भाग ३, पृ० १४८, श्लोक ६९। पुरुषार्थानुशासन भाग ३, पृ० ५२९ श्लोक ८०)

(६) पुरुषार्थानुशासनमें ग्यारहवीं प्रतिमाके दो भेद नहीं किये गये हैं और उसे 'कौपीन' के सिवाय स्पष्ट शब्दोंमें सभी वस्त्रके त्यागका विधान किया है। (देखो—भाग ३, पृ० ५२९, श्लोक ७४)

(७) लाटीसंहितामें क्षुल्लकके लिए कांस्य या लोहपात्र भिक्षाके लिए रखनेका विधान है। (देखो—भाग ३, पृ० ५२८, श्लोक ६४)

(८) पुरुषार्थानुशासनमें दशवीं प्रतिमाधारीके पाप कार्यों या गृहारम्भोंमें अनुमति देनेका विस्तृत निषेध और पुण्य कार्योंमें अनुमति देनेका विस्तृत विधान किया है। (देखो—भाग ३, पृ० ५२८, श्लोक ६०-७०)

(९) पं० दौलतरामजीने अपने क्रियाकोषमें नवमी प्रतिमाधारीके लिए काठ और मिट्टीका पात्र रखने और धातुपात्रके त्यागका स्पष्ट कथन किया है। (देखो—भाग ५, पृ० ३७५)

(१०) गुणभूषणने नवमी प्रतिमाधारीके लिए वस्त्रके सिवाय सभी परिग्रहके त्यागका विधान किया है। (देखो—भाग २, पृ० ४५४, श्लोक ७३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११) सकलकीर्त्तिने आठवीं प्रतिमाधारीको रथादि सवारीके त्यागका विधान किया है। (देखो—भाग २, पृ० ४१८, श्लोक १०७)

(१२) लाटीसंहितामें छठी प्रतिमाधारीके लिए रोगादिके शमनार्थं रात्रिमें गन्ध-माल्य, विलेपन एवं तैलाभ्यङ्ग आदिका भी निषेध किया है। (देखो—भाग ३, पृ० १४३, श्लोक २०)

(१३) पं० दौलतरामजीने छठी प्रतिमाधारीके लिए रात्रिमें गमनागमनका निषेध किया है, तथा अन्य आरम्भ कार्योंके करनेका भी निषेध किया है। (देखो—भाग ५, पृ० ३७२, ३७३)

(१४) लाटीसंहितामें दूसरी प्रतिमाधारीके लिए रात्रिमें लम्बी दूर जाने-आनेका निषेध किया गया है। (देखो—भाग ३, पृ० १०४, श्लोक २२३)

तथा इसी व्रत-प्रतिमावालेको घोड़े आदिकी सवारी करके दिनमें भी गमन करनेका निषेध किया है, उनका तर्क है कि किसी सवारीपर चढ़कर जानेमें ईर्यासंशुद्धि कैसे संभव है। (देखो—भाग ३, पृ० १०४, श्लोक २२४)

(१५) पुरुषार्थानुशासनमें श्रावक-प्रतिमाओंको क्रमसे तथा क्रमके बिना भी धारण करनेका विधान किया है। (देखो—भाग ३, पृ० ५३१, श्लोक ९४) जबकि सभी श्रावकाचारमें क्रमसे ही प्रतिमाओंके धारण करनेका स्पष्ट विधान किया गया है।

(१६) धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें प्रथमोत्कृष्टसे 'श्वेतैकपटकौपीनधारक' कहा है। (देखो—भाग २, पृ० १४९, श्लोक ६१) सागारधर्मामृतमें भी 'सितकौपीनसंव्यानः' कहा है। (देखो—भाग २, पृ० ७४, श्लोक ३८) तथा द्वितीयोत्कृष्टको 'रक्तकौपीनसंग्राही' कहा है। (देखो—भाग २, पृ० १५०, श्लोक ७२)

श्रावककी ११ प्रतिमाओंके विषयमें यह विशेष ज्ञातव्य है कि उमास्वातिने अपने तत्त्वार्थसूत्र-में, तथा उसके टीकाकार पूज्यपाद, अकलंक और विद्यानन्दिने प्रतिमाओंका कोई उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार शिवकोटिने रत्नमालामें, रविषेणने पद्मचरितमें, जटासिंहनन्दिने वराङ्ग-चरितमें, जिनसेनने हरिवंशपुराणमें, पद्मनन्दिने पंचविंशतिकामें, देवसेनने प्राकृत भावसंग्रहमें और रयणसारके कर्त्ताने रयणसारमें तथा अमृतचन्द्रने पुरुषार्थसिद्धयुपायमें भी श्रावककी ११ प्रतिमाओंका कोई वर्णन नहीं किया है। इसके विपरीत समन्तभद्र, सोमदेव, अमितगति, वसुनन्दि, आशाधर, मेधावी, सकलकीर्त्ति आदि श्रावकाचार-कर्ताओंने ग्यारह प्रतिमाओंका नाम निर्देश ही नहीं, प्रत्युत विस्तारके साथ उनके स्वरूपका निरूपण किया है।

आचार्य कुन्दकुन्दने ग्यारह प्रतिमाओंके नामवली जिस गाथाको कहा है, वही गाथा षट्-खण्डागमकी धवला और कषायपाहुडकी जयधवला टीकामें भी पायी जाती है।

उक्त विश्लेषणसे ज्ञात होता है कि श्रावकधर्मके वर्णन करनेके विषयमें दिगम्बर सम्प्रदायमें दो परम्पराएँ रही हैं। इसी प्रकार श्वे० सम्प्रदायमें तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकारोंने भी प्रतिमाओंका कोई वर्णन नहीं किया है, परन्तु हरिभद्रकी उपासक-विंशतिकामें तथा दशाश्रुतस्कन्धमें प्रतिमाओंका वर्णन पाया जाता है, इससे यह निष्कर्ष निकल जाता है दि० श्वे० दोनों ही परम्पराओंमें प्रतिमा-के वर्णन और नहीं वर्णन करनेकी दो परम्पराएँ रही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३. श्वे० शास्त्रोंके अनुसार प्रतिमाओंका वर्णन

श्वेताम्बर-सम्प्रदायके दशाश्रुत स्कन्धगत छट्ठी दशामें श्रावकको ११ प्रतिमाओंका वर्णन है। तथा हरिभद्रसूरिकृत विंशतिकाकी दशवीं विंशिकामें भी ११ प्रतिमाओंका वर्णन है। उनके नामोंमें दिगम्बर-परम्परासे जो कुछ भेद है, तथा स्वरूपमें भी जो विभिन्नता है, वह यहाँ दी जाती है—

प्रतिमाओंके नामोंमें खास अन्तर सचित्तत्याग प्रतिमाका है। श्वे० मान्यताके अनुसार इसे सातवीं प्रतिमा मानी है। नवमी प्रतिमाका नाम प्रेष्यप्रयोग त्याग है, दशवींका नाम उद्दिष्ट त्याग और ग्यारहवींका नाम श्रमणभूत प्रतिमा है।[1]

प्रतिमाओंके स्वरूपमें भी कुछ विशेषता है वह उक्त दोनों ग्रन्थोंके आधारपर यहाँ दी जाती है—

१. दर्शनप्रतिमाधारी—देव-गुरुकी शुश्रूषा करता है, धर्मसे अनुराग रखता है, यथा—समाधि, गुरुजनोंकी वैयावृत्य करता तथा श्रावक और मुनिधर्मपर दृढ़ श्रद्धा रखता है।[2]

२. व्रत प्रतिमाधारी—अतिचार रहित पंच अणुव्रतोंका पालन करता है, बहुतसे शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान और प्रोषधोपवासका अभ्यास करता है, किन्तु सामायिक और देशावकाशिक शिक्षाव्रतका सम्यक् प्रकार पालन करता है।[3]

३. सामायिक प्रतिमाधारी—अपने बल-वीर्यके उल्लाससे पूर्व प्रतिमाओंके कर्तव्योंका पालन करता हुआ अनेक बार सामायिक करता है और देशावकाशिक व्रतका भी भलीभाँति पालन करता है किन्तु अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वोंमें विधिपूर्वक परिपूर्ण प्रोषधोववासका सम्यक् परि-

---

१. दंशण वय सामाइय पोसह पडिमा अबंभ सच्चित्ते।
आरंभ पेस उद्दिट्ठवज्जए समणभूए य ॥ १ ॥
एया खलु इक्कारस गुणठाणगभेयओ मुणेयव्वा।
समणोवासगपडिमा बज्झाणुट्ठाणलिंगेहिं ॥ २ ॥

२. पढमा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवति। तस्स णं बहूइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं नो सम्मं पट्ठवित्ताइं भवंति। से तं पढमा उवासग-पडिमा।
सुस्सूसाई जम्हा दंसणपमुहाण कज्जसूय त्ति।
कायकिरियाइ सम्मं लक्खिज्जइ ओहओ पडिमा ॥ ३ ॥
सुस्सूस धम्मराओ गुरुदेवाणं जहासमाहीए।
वेयावच्चे नियमो दंसणपडिमा भवे एसा ॥

३. अहावरा दोच्चा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ। तस्स णं बहूइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवित्ताइं भवंति। से णं सामाइयं देसावगासियं नो सम्मं अणुपालित्ता भवइ। तं दोच्चा उवासग-पडिमा।
पंचाणुव्वयधारित्तमणइयारं वएसु पडिबंधो।
वयणा तदणइयारा वयपडिमा सुप्पसिद्ध त्ति ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पालन नहीं करता है ।[1]

४. प्रोषध प्रतिमाधारी—अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी आदि पर्वों में सम्यक् प्रकारसे यति-भावके साधनार्थ परिपूर्ण प्रोषधोपवास करता है। किन्तु एकरात्रिक उपासकप्रतिमाका सम्यक् परिपालन नहीं करता है।

५. एकरात्रिप्रतिमाधारी—अष्टमी आदि पर्वके दिनोंमें पूर्ण प्रोषधोपवासको धारण करता हुआ भी स्नान नहीं करता, प्रकाशमें (दिनमें) ही भोजन करता है, अर्थात् रात्रिभोजनका त्यागी होता है, धोतीकी लांग नहीं लगाता, और दिनमें परिपूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करता है, तथा रात्रिमें भी मैथुन-सेवनका परिमाण रखता है। इस प्रतिमाको उत्कर्षसे पाँच मास तक पालता है।[2]

६. ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी—उक्त क्रियाओंको करता हुआ रात्रिमें भी परिपूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करता है अर्थात् स्त्री-सेवनका सर्वथा त्याग कर देता है । किन्तु सचित्त भोजनका त्यागी होता है। इस प्रतिमाको उत्कर्षसे छह मास तक पालता है।[3]

७. सचित त्याग प्रतिमाधारी—यावज्जीवनके लिए सर्व प्रकारके सचित्त आहारपानका

---

१. अहावरा तच्चा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई या वि भवइ। तस्स णं बहूइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति। से णं सामाइयं देसावगासियं सम्मं अणुपालित्ता भवइ। से णं चउद्दसि-अट्ठमिउद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहोववासं नो सम्मं अणुपालित्ता भवइ। से तं तच्चा उवासग-पडिमा ।
तह अत्तवीरिउल्लासजोगओ रयतसुद्धिदित्तिसमं ।
सामाइयकरणमसइ सम्मं सामाइयप्पडिमा ॥ ६ ॥

२. अहावरा चउत्था उवासग-पडिमा—सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ। तस्स णं बहूइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति। से णं सामाइयं देसावगासियं सम्मं अणुपालित्ता भवइ। से णं चउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालित्ता भवइ। से णं एग-राइयं उवासग-पडिमं नो सम्मं अणुपालित्ता भवइ। से तं चउत्था उवासग-पडमा ।
पोसहकिरियाकरणं पव्वेसु तहा तहा सुपरिसुद्धं ।
जइभावभावसाहगमणघं तह पोसहप्पडिमा ॥ ७ ॥

३. अहावरा पंचमा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ। तस्स णं बहुइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं सम्मं अणुपालित्ता भवइ। से णं सामाइयं देसावगासियं अहासुत्तं अहाकप्पं अहातच्चं अहामग्गं सम्मं काएणं फासित्ता पालित्ता, सोहित्ता, पूरित्ता, किट्टित्ता, आणाए अणुपालित्ता भवइ। से णं चउद्दसि-अट्ठमि-उद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं अणुपालित्ता भवइ। से णं एग-राइयं उवासग पडिमं सम्मं अणुपालित्ता भवइ। से णं असिणाणए, वियडभोई, मउलिकडे, दिया बंभचारी, रत्ति परिमाणकडे। से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे जहण्णेण एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा जाव उक्कोसेण पंच मासं विहरइ। से तं पंचमा उवासग-पडिमा ।
पव्वेसु चेव राइं असिणाणाइकिरियासमाजुत्तो ।
मासपणगावहि तहा पडिमाकरणं तु तप्पडिमा ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्याग कर देता है और प्रासुक आहारपानको ग्रहण करता है। इस प्रतिमाको उत्कर्षसे सात मास तक पालन करता है।[1]

८. आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी—सर्व प्रकारके सावद्य आरम्भका स्वयं परिपूर्ण त्यागी होता है, किन्तु प्रेष्य (सेवक) वर्गसे आरम्भ करानेका त्यागी नहीं होता। हाँ, वह शक्ति-भर उपयुक्त रहकर अल्प ही आरम्भ कार्य सेवकोंसे कराता है। इस प्रतिमाको वह उत्कर्षसे आठ मास तक परिपालन करता है।[2]

९. प्रेष्यारम्भ परित्याग प्रतिमाधारी—सेवक जनोंसे भी रंचमात्र सावद्य आरम्भको नहीं कराता है और न स्वयं करता है। किन्तु उद्दिष्ट भोजनका त्यागी नहीं होता है। इस प्रतिमाको उत्कर्षसे नौ मास तक परिपालन करता है।[3]

१०. उद्दिष्टाहार त्यागी—अपने निमित्तसे बने हुए आहारपानका सर्वथा त्याग कर देता है और निरन्तर शास्त्र स्वाध्याय एवं आत्मध्यानमें संलग्न रहता है। यह शिरके बालोंको क्षुरासे

---

१. अहावरा छट्ठा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ। जाव से ण एगराइयं उवासग-पडिमं सम्मं अणुपालित्ता भवइ। से णं असिणाणए, वियडभोई, मउलिकडे, दिया वा राओ वा बंभयारी, सचित्ताहारे से अपरिण्णाए भवइ। से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे-जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा जाव उक्कोसेणं छम्मासं विहरेज्जा। से तं छट्ठा उवासग-पडिमा।

असिणाण वियडभोई मउलियडो रत्तिबंभमाणेण।
पडिवक्खमंतजावाइसंगओ चेव सा किरिया॥ ९॥
एवं किरियाजुत्तोऽबंभं वज्जेइ नवर राइं पि।
कम्मासावहि नियमा एसा उ अबंभपडिमत्ति॥ १०॥
जावज्जोवाए वि हु एसाऽबंभस्स वज्जणा होइ।
एवं चिय जं चित्तो सावगधम्मो बहुपगारो॥ ११॥

२. अहावरा सत्तमा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवति। जाव राओवरायं वा बंभयारी सचित्ताहारे से परिण्णाए भवति। आरंभे से अपरिणाए भवति। से णं एयारूवेणं विहरमाणे-जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा जाव उक्कोसेणं सत्तमासे विहरेज्जा। से तं सत्तमा उवासग-पडिमा।

एवंविहो उ नवरं सच्चित्तं पि परिवज्जए सव्वं।
सत्त य मासे नियमा फासुयभोगेण तप्पडिमा॥ १२॥
जावज्जीवाए वि हु एसा सच्चित्तवज्जणा होइ।
एवं चिय जं चित्तो सावगधम्मो बहुपगारो॥ १३॥

३. अहावरा अट्ठमा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवति। जाव राओवरायं बंभयारी। सचित्ताहारे से परिण्णाए भवइ। आरम्भे से परिण्णाए भवइ। पेसारंभे अपरिण्णाए भवइ। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे जाव-जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा जाव-उक्कोसेणं अट्ठमासे विहरेज्जा। से त अट्ठमा उवासग-पडिमा।

एवं चिय आरम्भं वज्जइ सावज्जमट्ठमासं जा।
तप्पडिमा पेसेहि वि अप्पं कारेइ उवउत्तो॥ १४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुंडन कराता है, किन्तु शिखा (चोटी) रखता है। वह जानी हुई बातको कहता है, नहीं जानी हुई बातको किसीके द्वारा पूछनेपर भी नहीं कहता है। इस प्रतिमाको उत्कर्षसे दश मास तक पालता है।[1]

११. **श्रमणभूत प्रतिमाधारी**—उद्दिष्ट भोजनका त्यागी होती है, दाढ़ी, सिर, मूंछके बालोंको क्षुरासे मुंड़वाता है, अथवा अपने हाथसे केश-लुंच करता है। सचेल साधु जैसा वेष धारण करता है और साधुजनोचित उपकरण-पात्र रखता है। चार हाथ भूमिको शोध कर चलता है। केवल जातिवर्ण (कुटुम्ब जनों) से प्रेम-विच्छिन्न नहीं होनेके कारण उनके यहाँ गोचरी कर सकता है। गृहस्थके घर गोचरीके लिए प्रवेश करनेपर यह कहता है—'प्रतिमाधारी श्रमणभूत श्रमणोपासकके, भिक्षा दो' इस प्रतिमाको वह ग्यारह मास तक पालन करता है।[2]

दशाश्रुतस्कन्धके अनुसार ग्यारहवीं प्रतिमाको ११ मास पालन करनेके बाद वह साधुपदको यावज्जीवनके लिए स्वीकार कर लेता है। किन्तु हरिभद्र सूरिकी उपासक-विंशिकाके अनुसार कोई संक्लेशके बढ़नेसे मुनि न बनकर गृहस्थ भी हो जाता है।[3]

---

१. अहावरा नवमा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ। जाव-राओवरायं बंभयारी, सचित्ताहारे से परिण्णाए भवइ। आरंभे से परिण्णाए भवइ। पेसारंभे से परिण्णाए भवइ। उद्दिट्ठ-भत्ते से अपरिण्णाए भवइ। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे-जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा जाव-उक्कोसेणं नव मासे विहरेज्जा। से तं नवमा उवासग-पडिमा।

तेहिं पि न कारेई नवमासे जाव पेसपडिम त्ति।
पुव्वोइया उ किरिया सव्वा एयस्स सविसेसा॥ १५॥

२ अहावरा दसमा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ। जाव-उद्दिट्ठ-भत्ते से परिण्णाए भवइ। से णं खुरमुंडए वा सिहा-धारए वा तस्स णं आभट्ठस्स समाभट्ठस्स वा कप्पंति दुवे भासाओ भासित्तए, जहा-जाणं वा जाणं, अजाणं वा णो जाणं। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे-जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा-जाव-उक्कोसेण दस मासे विहरेज्जा। तं दसमा उवासग-पडिमा।

उद्दिट्ठाहाराईण वज्जणं इत्थ होइ तप्पडिमा।
दसमासावहि सज्झायझाणजोगप्पहाणस्य॥ १६॥

३. अहावरा एक्कादसमा उवासग-पडिमा-सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ। जाव-उद्दिट्ठ-भत्ते से परिण्णाए भवइ। से णं खुरमुंडए, वा लुंचसिरए वा, गहियायार-भंडग-नेवत्थे। जारिसे समणाणं निग्गंथाणं धम्मे पण्णत्ते, तं सम्मं काएणं फासेमाणे, पालेमाणे, पुरओ जुगमायाए पेहमाणे, दट्ठूण तसे पाणे उद्धट्टु पाए रीएज्जा साहट्टु पाए रीएज्जा, तिरिच्छं वा पायं कट्टु रीएज्जा सति परक्कमे संजयामेव परिक्कमेज्जा, नो उज्जुयं गच्छेज्जा। केवलं से नायए पेज्जबंधणे अवोच्छिन्ने भवइ। एवं से कप्पति नाय-विहिं एत्तए।

इक्कारस मासे जाव समणभूयपडिमा उ चरिम त्ति।
अणुचरइ साहुकिरियं इत्थ इमो अविगलं पायं॥ १७॥
आसेविऊण एयं कोई पव्वयइ तह गिही होइ।
तब्भावभेयओ च्चिय विसुद्धिसंकेसभेएणं॥ १८॥
एया उ जहुत्तरमो असंखकम्मक्खओवसमभावा।
हुंति पडिमा पसत्था विसोहिकरणाणि जीवस्य॥ १९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि श्वे० परम्पराके शास्त्रोंमें जिस प्रकार प्रत्येक प्रतिमाके धारण करनेके समयका उल्लेख है, उस प्रकारसे दि० परम्पराके शास्त्रोंमें नियत समयका कोई उल्लेख नहीं है। यह साधक श्रावककी शक्ति और अवस्थापर निर्भर है कि वह पूर्व-पूर्व प्रतिमामें अपनेको सर्व प्रकारसे निष्णात देखकर आगे-आगेकी प्रतिमाओंको स्वीकार करता हुआ अन्तमें या तो मुनि बन जावे, अथवा समाधिमरणको अंगीकार करे।

श्वे० परम्पराके अनुसार पहली प्रतिमाके धारण करनेका उत्कृष्ट काल एक मास, दूसरीका दो मास, तीसरीका तीन मास, चौथीका चार मास, पाँचवींका पाँच मास, छठीका छह मास, सातवींका सात मास, आठवींका आठ मास, नवमीका नौ मास, दशवींका दश मास और ग्यारहवींका ग्यारह मास है। इसका अर्थ है कि (१ + २ + ३ + ४ + ५ + ६ + ७ + ८ + ९ + १० + ११ = ६६) छयासठ मास अर्थात् साढ़े पाँच वर्षके पश्चात् उसे मुनि बन जाना चाहिए, अथवा संन्यास धारण कर लेना चाहिए।

समीक्षा

दिगम्बर परम्परामें सोमदेवको छोड़कर सभी श्रावकाचार-कर्ताओंने सचित्त त्यागको पाँचवीं और आरम्भ त्यागको आठवीं प्रतिमा माना है। पर सोमदेवके तर्क-प्रधान एवं बहुश्रुतज्ञ चित्तको यह बात नहीं जँची कि कोई व्यक्ति सचित्त भोजन और स्त्री-सेवनका त्यागी होनेके पश्चात् भी कृषि आदि पापारम्भवाली क्रियाओंको कर सकता है। अतः उन्होंने आरम्भ-त्यागके स्थानपर सचित्त त्याग और सचित्त त्यागके स्थानपर आरम्भ-त्याग प्रतिमको कहा।

उपरि-दर्शित श्वेताम्बरीय दशाश्रुतस्कन्ध और हरिभद्र-रचित विंशति विंशतिकाकी प्रतिमा-विंशतिकामें सचित्त त्यागको सातवीं और ब्रह्मचर्य-प्रतिमाको छट्ठी माना है। संभवतः सोमदेव उक्त दोनों ग्रन्थोंसे परिचित रहे हैं। फिर भी अपनी तार्किक बुद्धिसे श्वेताम्बरीय प्रतिमाक्रमको अपनाते हुए भी आरम्भ त्याग करनेवाली प्रतिमा को दिवा ब्रह्मचर्य और नवधा ब्रह्मचर्यसे पहिले ही स्थान देना उचित समझा है।

यहाँपर सप्रमाण श्वेताम्बरीय मान्यताको देनेका अभिप्राय यही है कि विद्वज्जन प्रतिमाओंके विषयमें विभिन्न मतोंसे परिचित हो सकें।

श्वेताम्बरीय परम्परामें पाँचवीं एकरात्रिक प्रतिमा है। इस प्रतिमाधारीको पर्वके दिनोंमें स्नानका त्यागी और रात्रिमें भोजन करनेका त्यागी होना आवश्यक है।

दिगम्बर परम्परामें दशवीं अनुमति त्याग प्रतिमा है। पर इस नामवाली कोई प्रतिमा श्वेताम्बर परम्परामें नहीं है। वहां उद्दिष्टाहार त्यागको दशवीं प्रतिमा माना गया है। तथा ग्यारहवीं प्रतिमाको श्रमणभूत प्रतिमा कहा है। वह सचेल साधु जैसा वेष धारण करता है,

---

आसेविऊण एयाभावेण निओगओ जई होइ।
जं उवरि सव्वविरई भावेणं देसविरई उ॥ २०॥

सूचना—टिप्पणीमें दी गई सभी गाथाएं हरिभद्रसूरि-रचित प्रतिभा-विंशिका की हैं। और उक्त सभी प्राकृत गद्यभाग दशाश्रुतस्कन्धके उवासगदशा प्रकरणके हैं।—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3848

उन्हींके समान उपकरण-पात्र रखता है, केशोंको क्षुरासे मुंड़वाता है अथवा अथवा केश-लोंच करता है। केवल कुटुम्बी जनोंके साथ प्रेम बना रहनेसे उनके यहाँ गोचरी कर सकता है। दिगम्बर मान्यताके अनुसार उनके यहाँ ग्यारहवीं प्रतिमाके दो भेद नहीं किये गये हैं।

दिगम्बर परम्परामें किस प्रतिमाको कितने समय तक पालन करे, इसका कोई विधान दृष्टिगोचर नहीं होता है। परन्तु श्वेताम्बर परम्परामें प्रतिमाओंके पालन करनेके जघन्य और उत्कृष्ट कालका स्पष्ट विधान है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। तदनुसार ग्यारहवीं प्रतिमाको ११ मास तक पालन. करनेके पश्चात् दशाश्रुतस्कन्धके अनुसार उसे साधु बन जाना आवश्यक है, अथवा उपासकदशासूत्रके अनुसार समाधिमरण करना आवश्यक है। इसकी पुष्टि रत्नकरण्डकसे और उसके टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्यकी प्रतिमा-व्याख्यासे पूर्व दी गई उत्थानिकासे भी होती है।[1]

१४. सामायिक शिक्षाव्रत और सामायिक प्रतिमामें अन्तर

आचार्योंने 'सर्वविरतिलालसः खलु देशविरतिपरिणामः' कहकर सर्व पापोंसे निवृत्त होनेका लक्ष्य रखना ही देशविरतिका फल बतलाया है। यह सर्व सावद्य विरति सहसा संभव नहीं है, इसके अभ्यासके लिए शिक्षाव्रतोंका विधान किया गया है। स्थूल हिंसादि पाँच पापोंका त्याग अणुव्रत है और उनकी रक्षार्थ गुणव्रतोंका विधान किया गया है। गृहस्थ प्रतिदिन कुछ समय तक सर्व सावद्य (पाप) योगके त्यागका भी अभ्यास करे इसके लिए सामायिक शिक्षाव्रतका विधान किया गया है। अभ्यासको एकाशन या उपवासके दिनसे प्रारम्भ कर प्रतिदिन करते हुए क्रमशः प्रातः सायंकाल और त्रिकाल करने तकका विधान आचार्योंने किया है। यह दूसरी प्रतिमाका विधान है। इसमें कालका बन्धन और अतीचारोंके त्यागका नियम नहीं है, हाँ उनसे बचनेका प्रयास अवश्य किया है। सकलकीर्त्तिने एक वस्त्र पहिन कर सामायिक करनेका विधान किया है।[2]

किन्तु तीसरी प्रतिमाधारीको तीनों सन्ध्याअं.में कमसे कम दो घड़ी (४८ मिनिट) तक निरतिचार सामायिक करना आवश्यक है। वह भी शास्त्रोक्त कृति कर्मके साथ और यथाजातरूप धारण करके।[3] रत्नकरण्डकके इस 'यथाजात' पदके ऊपर वर्तमानके व्रती जनों या प्रतिमाधारी श्रावकोंने ध्यान नहीं दिया है। समन्तभद्रने जहाँ सामायिक शिक्षाव्रतीको 'चेलोपसृष्टमुनिरिव' (वस्त्रसे लिपटे मुनिके तुल्य) कहा है, वहाँ सामायिक प्रतिमाधारीको यथाजात (नग्न) होकरके सामायिक करनेका विधान किया है। चारित्रसारमें भी यथाजात होकर सामायिक करनेका निर्देश है[4] और व्रतोद्योतन श्रावकाचारमें तो बहुत स्पष्ट शब्दोंमें 'यथोत्पन्नस्तथा भूत्वा कुर्यात्सामायिकं च सः' कहकर जैसा नग्न उत्पन्न होता है, वैसा ही नग्न होकर सामायिक करनेका विधान तीसरी प्रतिमाधारीके लिए किया गया है।[5]

---

१. साम्प्रतं योऽसौ सल्लेखनानुष्ठाता श्रावकस्तस्य कति प्रतिमा भवन्तीत्याऽऽशङ्क्य आह। (रत्नक० श्लो० १३६ उत्थानिका)

२. एकवस्त्रं विना त्यक्त्वा सर्वबाह्यपरिग्रहान्।
प्रोषधं चैकभक्तं वा कृत्वा सामायिकं कुरु॥ (श्रा० सं० भा० २ पृ० ३४३ श्लोक ३४)

३. देखो—रत्नकरण्डक श्लो० १३९। ४. चारित्रसार भा० १ पृ० २२५ श्लो० १९। ५. व्रतोद्योतन श्रावकाचार। (भा० ३, पृ० २५८, श्लो० ५०४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथाजातरूप धारण करके भी जघन्य दो घड़ी, मध्यम चार घड़ी और उत्कृष्ट छह घड़ीका काल तीसरी प्रतिमामें बताया गया है। कुछ आचार्योंने तो मुनियोंके समान ३२ दोषोंसे रहित सामायिक करनेका विधान तीसरी प्रतिमाधारीके लिए किया है।[1]

सामायिक शिक्षाव्रतमें जहाँ स्वामी समन्तभद्रने अशरण, अनित्य, अशुचि आदि भावनाओं-को भाते हुए संसारको दुःखरूप चिन्तन करने, तथा मोक्षको शरण, नित्य और पवित्र आत्म-स्वरूपसे चिन्तन करनेका निरूपण किया है, वहाँ सामायिक प्रतिमामें उक्त चिन्तनके साथ आगे-पीछे किये जानेवाले कुछ भी विशेष कर्तव्योंका विधान किया है। वहाँ बताया है कि चार बार तीन-तीन आवर्त और चार नमस्कार रूप कृत्ति कर्मको भी त्रियोगकी शुद्धि पूर्वक करे।

वर्तमानमें सामायिक करनेके पूर्व चारों दिशाओंमें एक-एक कायोत्सर्ग करके तीन-तीन बार मुकुलित हाथोंके घुमानेरूप आवर्त करके नमस्कार करनेकी विधि प्रचलित है। पर इस विधि-का लिखित आगम-आधार उपलब्ध नहीं है। सामायिक प्रतिमाके स्वरूपवाले 'चतुरावर्तत्रितय' इस श्लोककी व्याख्या करते हुए प्रभाचन्द्राचार्यने लिखा है कि एक-एक कायोत्सर्ग करते समय 'णमो अरिहंताणं' इत्यादि सामायिक दण्डक और 'थोस्सामि हं जिणवरे तित्थवरे केवली अणंतजिणे' इत्यादि स्तवदण्डक पढ़े। इन दोनों दंडकोंके आदि और अन्तमें तीन-तीन आवर्तोंके साथ एक-एक नमस्कार करे। इस प्रकार बारह आवर्त और चार नमस्कारोंका विधान किया है। सामायिक-दण्डक और स्तवदण्डक मुद्रित क्रिया कलापसे जानना चाहिए।

आवर्तके द्रव्य और भावरूपसे दो प्रकारका निरूपण है। दोनों हाथोंको मुकुलित कर अंजुली बाँधकर-प्रदक्षिणा रूपसे घुमानेको द्रव्य आवर्त कहा गया है।[2] मन, वचन और कायके परावर्तनको भाव आवर्त कहा गया है[3]। जैसे—सामायिक दण्डक बोलनेके पूर्व क्रिया विज्ञापनरूप मनो-विकल्प होता है, उसे छोड़कर सामायिक दण्डकके उच्चारणमें मनको लगाना मन—परावर्तन है। इसी सामायिक दण्डकके पूर्व भूमिको स्पर्श करते हुए नमस्कार किया जाता है, उसके पश्चात् खड़े होकर तीन बार हाथोंको घुमाना कायपरावर्तन है। तत्पश्चात् 'चैत्यभक्ति कायोत्सर्गं करोमि' इत्यादि उच्चारणको छोड़कर 'णमो अरहंताणं' इत्यादि पाठका उच्चारण करना वचन परावर्तन है। इस प्रकार सामायिक दण्डकसे पूर्व मन, काय और वचनके परावर्तन रूप तीन आवर्त होते हैं। इसी प्रकार सामायिक दण्डकके अन्तमें तीन आवर्त, तथा स्तवदण्डकके आदि और अन्तमें तीन-तीन आवर्त होते हैं। उक्त विधिसे एक कायोत्सर्गमें सब मिलकर बारह आवर्त होते हैं।

१५. प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत और प्रोषध प्रतिमामें अन्तर

प्रोषधोपवास यह शब्द प्रोषध और उपवास इन दो शब्दोंकी सन्धिसे बना है। स्वामी समन्तभद्रने प्रोषध शब्दका अर्थ एक बार भोजन करना अर्थात् एकाशन किया है। एकाशनके

---

१. देखो—श्राव० सं० भा० २ पृ० ३४९ श्लो० ११०–११४।

२. त्रिःसम्पुटीकृतौ हस्तौ भ्रामयित्वा पठेत्पुनः।
साम्यं पठित्वा भ्रामयेत्तौ स्तवेऽप्येतदाचरेत्॥ (क्रियाकलाप पृ० ६)

३. कथिता द्वादशावर्ता वपुर्वचनचेतसाम्।
स्तवसामायिकाद्यन्तपरावर्तनलक्षणाः॥ (अमित० श्रा० पृ० ३३९ श्लो० ६५। क्रियाक० पृ० ५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ जो उपवास किया जाता है उसे प्रोषधोपवास नामक शिक्षाव्रत कहा गया है। किन्तु अकलंकदेवने प्रोषध शब्दको पर्वका पर्यायवाची माना है। तदनुसार अष्टमी आदि पर्वके दिन जो उपवास किया जाता है, उसे प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहा है। इस अर्थभेदके साथ जब प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत और प्रोषधप्रतिमाके स्वरूप पर विचार करते हैं तो दोनोंमें महान् अन्तर पाते हैं और उसका संकेत मिलता है स्वामी समन्तभद्रके ही द्वारा प्रतिपादित प्रोषधप्रतिमाके स्वरूपसे। जहाँ कहा गया है कि—

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः॥ (र० क० श्लो० १४०)

इस श्लोकका प्रत्येक पद अपनी-अपनी एक खास विशेषताको प्रकट करता है। प्रथम चरणमें पठित 'अपि' शब्द एवकारका वाचक है, जिससे यह अर्थ निकलता है कि दोनों पक्षकी दो अष्टमी और दो चतुर्दशी इन चारों ही पर्वोंमें प्रोषधोपवास करना चौथी प्रतिमाधारीके लिए आवश्यक है। शिक्षाव्रतके भीतर यह प्रोषधोपवास अभ्यास रूप था, अतः कभी उपवास न करके एक बार नीरस भोजन, जल-पान आदि भी कर लेता था, जिसकी सूचना स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा आदिमें वर्णित इसके स्वरूपसे मिलती है। उत्तरार्धके 'मासे-मासे' और 'स्वशक्तिमनिगुह्य' पद यह प्रकट करते हैं कि प्रत्येक मासमें पर्वके दिन उपवास करना आवश्यक है, चाहे ग्रीष्म-ऋतुके मासोंमें कितनी ही भयंकर गर्मी क्यों न पड़ रही हो, पर उसे चारों प्रकारके आहारका सर्वथा त्याग करके उपवास करना ही पड़ेगा। इस प्रतिमामें अपनी शक्तिको छिपानेरूप बहानेका कोई स्थान नहीं है। इसी अर्थकी पुष्टि श्लोकके तीसरे चरणसे होती है और चौथे चरणमें पठित 'प्रणधिपरः' पद तो स्पष्टरूपसे कह रहा है कि अत्यन्त सावधानी पूर्वक इस प्रतिमाका पालन करना चाहिए, तभी वह प्रोषधप्रतिमाका धारी कहा जा सकता है।

स्वामी कार्त्तिकेयने जहाँ शिक्षाव्रतके अभ्यासीके लिए उपवास करनेकी शक्ति न होनेपर नीरस भोजन, एकाशन आदिकी छूट दी है, वहाँ चौथी प्रतिमाधारीके लिए किसी भी प्रकारकी छूट न देकर अष्टमी चतुर्दशीके पूर्व और उत्तरवर्ती दिनोंमें भी एकाशनके साथ उपवास करनेका एवं उक्त समयके भीतर धर्मध्यानादि करनेका विशद विवेचन किया है।

आचार्य वसुनन्दीने जो चौथी प्रतिमाके स्वरूपमें उत्तम, मध्यम और जघन्यरूपसे उपवास करनेका विधान किया है, उसका एक खास कारण यह है कि उन्होंने प्रोषधोपवास नामका कोई शिक्षाव्रत माना ही नहीं है। अतः उन्होंने चौथी प्रतिमावालेको १६, १२ और ८ पहरके उपवासकी सुविधा हीनाधिक शक्तिवाले व्यक्तियोंके लिए दी है। पर जिन-जिन आचार्योंने प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत माना है, उनके अनुसार चौथी प्रतिमावालेको १६ पहरका ही उपवास करना आवश्यक है, तभी उसका 'प्रोषधानशन' या 'प्रोषधोपवास' यह नाम सार्थक हो सकता है, अन्यथा नहीं।

उपर्युक्त अर्थकी पुष्टि प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतके 'अनादर' और 'विस्मरण' नामक दो अतिचारोंसे भी होती है। और इन अतिचारोंके परिहारार्थ स्वामी समन्तभद्रने चौथी प्रतिमाके स्वरूपमें 'प्रोषधनियमविधायी और 'प्रणधिपरः' इन पदोंको कहा है। व्रत प्रतिमाके अभ्यासियोंके लिए ही अतिचारोंकी संभावना है, किन्तु तीसरी-चौथी आदि प्रतिमाधारियोंके लिए किसी भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकारके अतिचारोंकी गुंजायश नहीं है, यह बात लाटीसंहिताकारने उक्त प्रतिमाके विवेचनमें बहुत स्पष्ट की है।

इस चौथी प्रतिमाधारीको रात्रिमें श्मशान आदिमें जाकर रात-भर प्रतिमायोग धारण कर कायोत्सर्ग करना भी आवश्यक है, जिसका स्पष्ट विधान आचार्य जयसेनने अपने रत्नाकरमें उदाहरणके साथ इस प्रकार किया है—

प्राचीनप्रतिमाभिरुद्वहति चेद्यः प्रोषधं ख्यापितं
तद्रात्रौ पितृकानने निजगृहे चैत्यालयेऽन्यत्र वा।
व्युत्सर्गी सिचयेन संवृततनुस्तिष्ठेत्तनावस्पृहो
दूरत्यक्तमहाभयो गुरुरतिः स प्रोषधी प्राञ्चितः॥ ३२॥
(धर्मर० पृ० ३३६)

वारिषेणोऽत्र दृष्टान्तः प्रोषधव्रतधारणे।
रजनीप्रतिमायोगपालनेऽप्यतिदुष्करे ॥ ११॥ (धर्मर० पृ० ३४२)

भावार्थ—जो पूर्वकी तीन प्रतिमाओंके साथ इस प्रोषधव्रतको धारण करता है, तथा रात्रिके समय श्मशानमें, अपने घरमें, चैत्यालय या अन्य एकान्त स्थानमें शरीरसे ममत्व छोड़कर और निर्भय होकर कायोत्सर्गसे अवस्थित रहता है, वह व्यक्ति श्रेष्ठ प्रोषधप्रतिमाधारी है। इस अति दुष्कर रात्रिप्रतिमायोगके पालनमें और प्रोषधव्रतके धारण करनेमें वारिषेण दृष्टान्त हैं।

चौथी प्रतिमाधारीके लिए रात्रिप्रतिमायोगका वर्णन पं० आशाधरने भी किया है। यथा—

निशां नयन्तः प्रतिमायोगेन दुरितच्छिदे।
ये क्षोभ्यन्ते न केनापि तान्नुमस्तुर्यभूमिगान्॥ ७॥ (सागार० अ० ५)

भावार्थ—जो अपने पाप कर्मोंके नष्ट करनेके लिए प्रतिमायोगसे रात्रिको बिताते हैं और किसी भी उपसर्गादिसे क्षोभको प्राप्त नहीं होते हैं, उन चौथी प्रतिमावालोंको नमस्कार है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि चौथी प्रतिमाधारीने १६ पहरका उपवास करना और अष्टमी या चतुर्दशीकी रात्रिको प्रतिमायोग धारण कर बिताना आवश्यक है। पर दूसरी प्रतिमाके अभ्यासीको ये दोनों बातें आवश्यक नहीं हैं। यही प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत और प्रोषधप्रतिमामें महान् अन्तर है।

१६. प्रतिमाओंके वर्णनमें एक और विशेषता

प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहमें संकलित श्रावकाचारोंमें श्रावककी ११ प्रतिमाओंके वर्णनमें जो विशेषता या विभिन्नता है, उसे ऊपर दिखाया गया है। आचार्य जयसेन-रचित धर्मरत्नाकरमें प्रत्येक प्रतिमाका वर्णन उत्तम, मध्यम और जघन्य रूपसे भी किया गया है। प्रतिमा-वर्णनकी इस त्रिविधताका कुछ दिग्दर्शन यहाँ कराया जाता है—

१. जो सप्त व्यसन और रात्रिभोजनका त्याग कर आठ मूलगुणोंके साथ शुद्ध (निरतिचार) सम्यक्त्वको धारण करता है, वह उत्कृष्ट प्रथम प्रतिमाधारी है। जो रात्रिभोजन त्यागके साथ आठ मूलगुणोंको धारण करता है और यथा संभव एकादि व्यसनका त्यागी है, वह मध्यम है। तथा जो चारित्रमोहनीयके तीव्र उदयसे एक भी व्रतका पालन नहीं कर पाता, किन्तु व्रत धारणकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावना रखता हुआ निरतिचार सम्यग्दर्शनको धारण करता है वह जघन्य दर्शन प्रतिमाका धारक है। (धर्मरत्ना० पृ० २३५-२३६ श्लोक ६२-६४)

२. जो केवल अणुव्रतोंका ही पालन करता है वह जघन्य व्रत प्रतिमाधारक है। जो मूलगुणोंका पालन करता है वह मध्यम है। तथा जो निर्मल सम्यग्दर्शनके साथ निरतिचार अणुव्रत और गुणव्रतोंका पालन करता है वह उत्तम व्रत प्रतिमाधारी है।

(धर्मर० पृ० २९७ श्लोक ३५-३६)

३. जो सामायिकको सब दोष और अतिचारोंसे रहित तीनों सन्ध्याओंमें नियत समय पर नियत काल तक करता है, वह उत्तम सामायिक प्रतिमाधारी है। जो अणुव्रतों और गुणव्रतोंको निरतिचार पालन करते हुए भी सामायिकको निर्दोष पालन नहीं करता है, वह मध्यम है और जो अणुव्रतों गुणव्रतोंको भी निरतिचार नहीं पालन करते हुए सामायिक भी सदोष या सातिचार करता है, वह जघन्य सामायिक प्रतिमाधारी है। (धर्मर० पृ० ३२३ श्लोक ७६-७७)

४. जो प्रारम्भकी तीनों प्रतिमाओंको यथाविधि निर्दोष पालन करते हुए प्रत्येक मासके चारों पर्वोंमें १६ प्रहरका निर्दोष उपवास करता है और पर्वके दिनकी रात्रिमें प्रतिमायोग धारण कर कार्योत्सर्गसे अवस्थित रहता हुआ भयंकर भी उपसर्गोंसे भयभीत या चलायमान नहीं होता है वह उत्तम प्रोषध प्रतिमाधारी है। जो पूर्वोक्त प्रतिमाओंको निर्दोष पालन करते हुए १२ या ८ प्रहर वाले उपवासको करता है और रातमें प्रतिमायोगको धारण नहीं करता वह मध्यम है। जो पूर्वोक्त प्रतिमाओंको और उपवासको जिस किसी प्रकारसे यथाकथंचित् धारण करता है वह जघन्य प्रोषधप्रतिमाधारी है। (धर्मर० पृ० ३३६ श्लोक ३२-३३)

५. जो श्रावक पूर्व प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करते हुए मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदना, सचित्त वस्तुके खान-पानका यावज्जीवनके लिए त्याग करता है, वह उत्तम सचित्त त्याग प्रतिमाका धारक है। जो पूर्वोक्त प्रतिमाओंको भली भाँतिसे धारण करते हुए भी प्रोषधोपवासके दिन ही सचित्त वस्तुओंका त्यागी है, वह मध्यम है। तथा जो पूर्व प्रतिमाओंको भी यथा कथंचित् पालता है और सचित्त वस्तुओंका यथा कथंचित् त्याग करता है, वह जघन्य सचित्तत्याग प्रतिमाधारी है। (धर्मर० पृ० ३४२ श्लोक ९-१०)

६. जो व्यक्ति पूर्वकी सर्व प्रतिमाओंके साथ दिनमें पूर्णरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करता है और अपनी स्त्रीकी ओर भी रागभावसे नहीं देखता है वह दिवामैथुनत्याग प्रतिमाधारियोंमें उत्तम है। जो पूर्व प्रतिमाओंका पालन करते हुए भी इस प्रतिमाका यथा कथंचित् विरलतासे पालन करता है, अर्थात् क्वचित् कदाचित् अपनी स्त्रीके साथ हँसी मजाक आदि करता है, वह मध्यम है। और जो पूर्व प्रतिमाओंको भी और इस प्रतिमाको भी यथा कथंचित् पालता है, वह जघन्य दिवामैथुनत्याग प्रतिमाका धारक है। (धर्मर० पृ० ३४४ श्लोक १७)

७. जो मनुष्य पूर्व प्रतिमाओंके साथ निर्मल ब्रह्मचर्यको मन वचन कायसे धारण करते हैं, वे उत्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमाके धारक हैं। जो उक्त व्रतोंके साथ मनसे कायसे ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भी मनसे निर्मल ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर पाते हैं, वे मध्यम ब्रह्मचर्यप्रतिमाके धारक हैं। जो न पूर्व प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करते हैं और न ब्रह्मचर्यका भी यथा कथंचित् पालन करते हैं वे जघन्य ब्रह्मचर्यप्रतिमाके धारक हैं। (धर्मर० पृ० ३४८ श्लोक २७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. जो व्यक्ति निर्दोष पूर्व प्रतिमाओंको पालते हुए गृहस्थीके सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग कर और स्वीकृत धनका भी याचकोंको दान करता हुआ घरमें उदासीन होकर रहता है वह उत्तम आरम्भत्यागप्रतिमाका धारक है। जो पूर्वोक्त प्रतिमाओंका सदोष पालन करते हुए आठवीं प्रतिमाका निर्दोष पालन करते हैं, वे मध्यम हैं और जो पूर्वोक्त व्रतोंको और इस प्रतिमाका यदा-कदाचित् सदोष पालन करते हैं वे जघन्य आरम्भत्यागप्रतिमाके धारक हैं।

(धर्मर० पृ० ३५० श्लोक ३६)

९. जो पूर्वकी आठों प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करता हुआ अपने संयमके साधनोंके सिवाय शेष समस्त प्रकारके बाह्य परिग्रहका त्यागकर उसे निर्दोष पालन करता है, वह उत्तम परिग्रहत्यागप्रतिमाका धारक है। जो पूर्वोक्त प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करता हुआ भी इसे यथा कथंचित् पालन करता है अर्थात् त्यक्त परिग्रहमें क्वचित् कदाचित् ममत्वभाव रखता है तो वह मध्यम परिग्रहत्यागप्रतिमाधारी है। तथा पूर्व व्रतोंको और इस प्रतिमाको भी दोष लगाते हुए पालन करता है, वह जघन्य परिग्रहत्यागप्रतिमाका धारक है। (धमर० पृ० ३५४ श्लोक ४४)

१०. जो पूर्वोक्त प्रतिमाओंके निर्दोष परिपालनके साथ इस लोक-सम्बन्धी सभी प्रकारके आरम्भ और परिग्रह सम्बन्धी कार्योंमें अपने पुत्रादि स्वजनोंको या परजनोंको किसी भी प्रकारकी अनुमति नहीं देता है, वह अनुमति त्यागप्रतिमाधारियोंमें श्रेष्ठ है। जो पूर्व प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करते हुए भी क्वचित् कदाचित् पुत्रादिको लौकिक कार्योंके करनेके लिए अनुमति देता है, वह मध्यम अनुमति त्यागप्रतिमाका धारक है। जो पूर्वोक्त प्रतिमाओंको और इस प्रतिमाको भी सदोष पालन करता है, वह जघन्य अनुमति त्यागी है। (धर्मर० पृ० ३७९ श्लोक ६७)

११. जो आदिकी दशों प्रतिमाओंका निर्दोष पालन करते हुए अपने निमित्तसे बने उद्दिष्ट आहार-पानका यावज्जीवनके लिए त्याग करता है और उसमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं लगने देता है वह उत्कृष्ट उद्दिष्ट त्यागी है। जो पूर्व प्रतिमाओंका तो निर्दोष पालन करता है, किन्तु क्वचित् कदाचित् उद्दिष्ट त्यागमें दोष लगाता है वह मध्यम उद्दिष्ट त्यागी है। तथा जो पूर्व प्रतिमाओंका भी सदोष पालन करता है और इस उद्दिष्ट त्यागको भी यथा कथंचित् पालता है, वह जघन्य उद्दिष्ट त्यागी है। (धर्मर० पृ० ३८० श्लोक ७३)

वास्तविक स्थिति यह है कि देशसंयम लब्धिके असंख्यात स्थान सिद्धान्त ग्रन्थोंमें बताये गये हैं। जिसके जैसा-जैसा अप्रत्याख्यानावरणकषायका क्षयोपशम बढ़ता जाता है, उसके वैसा ही संयमासंयम लब्धिस्थान भी बढ़ता जाता है। अतः प्रत्येक प्रतिमाधारीके भी अप्रत्याख्यानावरण-कषायकी तीव्र-मन्दताके अनुसार संयमासंयम लब्धिके स्थान भी घटते बढ़ते रहते हैं और तदनुसार ही वह उत्कृष्ट मध्यम या निकृष्टप्रतिमाका धारक बन जाता है। किन्तु कषायोंपर विजय पानेका प्रयत्न करते रहनेपर व्रतोंका भी निर्दोष पालन होता रहता है। अतः प्रत्येक साधकको कषायोंको जीतनेका उत्तरोत्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

१७. संन्यास, समाधिमरण या सल्लेखना

श्रावकको जीवनके अन्तमें सल्लेखना धारण करनेका विधान समस्त श्रावकाचारोंमें किया गया है। वहाँ बताया गया बुढ़है कि जब ापा आजावे, शरीर और इन्द्रियाँ शिथिल हो जावें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना कार्य न कर सकें, अथवा असाध्य रोग हो जावे, भयंकर उपसर्ग आ जावे, अथवा इसी प्रकारका अन्य संकट आ जावे, तब अपने जीवन भर पालित धर्मकी रक्षाके लिए शरीरको छोड़ना सल्लेखना है। इस सल्लेखनाको जीवन भर आचरण किये गये तपका फल कहा गया है। इस सल्लेखनाका ही दूसरा नाम संन्यास है। यदि अन्तिम समय शान्ति और समाधि पूर्वक मरण नहीं हुआ, तो जीवन भरका तपश्चरण और व्रत-धारण व्यर्थ हो जाता है। स्वामी समन्तभद्रने इस सल्लेखनाकी विधिका बहुत उत्तम प्रकारसे वर्णन किया है और पं० आशाधरजी आदिने उपसर्ग आदिके आनेपर शम भावसे उन्हें सहन करनेवालोंके उदाहरण देकर इस विषयका बहुत विशद वर्णन कर साधकको सावधान किया है।

प्राण-घातक रोग उपसर्ग आदिके आनेपर मरनेका आभास तो प्रातः सभीको हो जाता है। किन्तु जीवनके अन्तिम समयका आभास हर एक व्यक्तिको नहीं हो पाता है, अतः कुन्दकुन्द-श्रावकाचारके अन्तमें कहा गया है—

स ज्ञानी स गुणिव्रजस्य तिलको जानाति यः स्वां मृतिम् ॥ १२ ॥

अर्थात् जो व्यक्ति अपने मृत्यु-कालको जानता है, वह ज्ञानी है और गुणी जनोंका तिलक है। (देखो प्रस्तुत भाग, पृ० १३४)

अपना मरण-काल जाननेके लिए भद्रबाहु संहिता आदिमें अनेक निमित्त बताये गये हैं, जिनसे भावी मरणकालकी सूचना मिलती है। उनमेंसे पाठकोंके परिज्ञानार्थ कुछको यहाँ दिया जाता है—

१. प्रत्येक वस्तुके लाल दिखनेपर, वृक्षोंके जलते हुए दिखनेपर, नेत्रोंकी चमक चले जानेपर, जीभ या नासाग्र भाग आँखोंसे नहीं दिखनेपर, अपनी छायामें अपना शिर न दिखनेपर और रात्रिमें ध्रुवतारा न दिखनेपर अपना मरण-काल समीप जाने।

२. दोनों कानोंमें अंगुली देनेसे शब्द नहीं सुनाई देनेपर, भौंहके टेढ़ी होनेपर, हाथकी रेखाएँ नहीं दिखनेपर, छींक आनेके साथ ही मलमूत्र निकल आनेपर, दर्पण या पानीमें शिरके न दिखनेपर, सूर्य-चन्द्रमें छिद्र दिखनेपर, शरीरकी छाया विपरीत दिखनेपर, हाथ-पैर आदिके छोटा दिखनेपर, थालीमें सूर्यका बिम्ब काला दिखनेपर मृत्यु समीप जाने।

३. उक्त बाह्य निमित्तोंके सिवाय जन्म कुंडलीके घातक-योगोंसे तथा हाथकी जीवन-रेखा-से भी मृत्यु-काल जाना जा सकता है। अतः साधक-श्रावकको इस विषयमें सदा जागरूक रहना चाहिए।

१८. अतिचारोंकी पंचरूपताका रहस्य

देव, गुरु, संघ, आत्मा आदिकी साक्षी-पूर्वक जो हिंसादि पापोंका—बुरे कार्योंका—परित्याग किया जाता है, उसे व्रत कहते हैं। पाँचों पापोंका यदि एक देश, आंशिक या स्थूल त्याग किया जाता है, तो उसे अणुव्रत कहते हैं और यदि सर्वदेश त्याग किया जाता है, तो उसे महाव्रत कहते हैं। यतः पाप पाँच होते हैं, अतः उनके त्याग रूप अणुव्रत और महाव्रत भी पाँच-पाँच ही होते हैं। इस व्यवस्थाके अनुसार महाव्रतोंके धारक मुनि और अणुव्रतोंके धारक श्रावक कहलाते हैं। पाँचों अणुव्रत श्रावकके शेष व्रतोंके, तथा पाँचों महाव्रत मुनियोंके शेष व्रतोंके मूल आधार हैं, अतएव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें मूलव्रत या मूलगुणके नामसे भी कहा जाता है। मूलव्रतों या मूलगुणोंकी रक्षाके लिए जो अन्य व्रतादि धारण किये जाते हैं, उन्हें उत्तर गुण कहा जाता है। इस व्यवस्थाके अनुसार मूलमें श्रावक-के पाँच मूल गुण और सात उत्तर गुण बताये गये हैं। कुछ आचार्योंने उत्तर गुणोंकी 'शीलव्रत' संज्ञा भी दी है। कालान्तरमें श्रावकके मूलगुणोंकी संख्या पाँचसे बढ़कर आठ हो गई, अर्थात् पाँचों पापोंके त्यागके साथ मद्य, मांस और मधु इन तीन मकारोंके सेवनका त्याग करनेको आठ मूलगुण माना जाने लगा। तत्पश्चात् पाँच पापोंका स्थान पाँच उदुम्बर फलोंने ले लिया और एक नये प्रकारके आठ मूलगुण माने जाने लगे। इस प्रकार पाँचों अणुव्रतोंकी गणना उत्तर गुणोंमें की जाने लगी और सातके स्थान पर बारह उत्तर गुण या उत्तर व्रत श्रावकोंके माने जाने लगे। किन्तु यह परिवर्तन श्वेताम्बर परम्परामें दृष्टिगोचर नहीं होता।

साधुओंके पाँचों पापोंका सर्वथा त्याग नव कोटिसे अर्थात् मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे होता है अतएव उनके व्रतोंमें किसी प्रकारके अतिचारके लिए स्थान नहीं रहता है। पर श्रावकोंके प्रथम तो सर्व पापोंका सर्वथा त्याग संभव ही नहीं है। दूसरे हर एक व्यक्ति नव कोटिसे स्थूल भी पापोंका त्याग नहीं कर सकता है। तीसरे प्रत्येक व्यक्तिके चारों ओरका वातावरण भी भिन्न-भिन्न प्रकारका रहता है। इन सब बाह्य कारणोंसे तथा प्रत्या-ख्यानावरण, संज्वलन और नोकषायोंके तीव्र उदयसे उसके व्रतोंमें कुछ न कुछ दोष लगता रहता है। अतएव व्रतकी अपेक्षा रखते हुए भी प्रमादादि, तथा बाह्य परिस्थिति-जनित कारणोंसे गृहीत व्रतोंमें दोष लगनेका, व्रतके आंशिक रूपसे खण्डित होनेका और स्वीकृत व्रतकी मर्यादाके उल्लंघन-का नाम ही शास्त्रकारोंने 'अतिचार' रखा है। यथा—

'सापेक्षस्य व्रते हि स्यादतिचारोंऽशभंजनम्। (सागारधर्मामृत अ० ४ श्लोक १८)

सम्यग्दर्शन, बारह व्रत और समाधिमरण या सल्लेखनाके अतिचारोंका स्वरूप प्रस्तुत संग्रहमें संकलित अनेक श्रावकाचारोंमें किया गया है। अतः उनका स्वरूप न लिखकर उनके पाँच-पाँच भेद रूप संख्याके आधारसे उनकी विशेषताका विचार किया जाता है।

जब अप्रत्याख्यानावरण कषायका तीव्र उदय होता है, तो व्रत जड़-मूलसे ही खण्डित हो जाता है। उसके लिए आचार्योंने 'अनाचार' नामका प्रयोग किया है। यदि किसी व्रतके लिए १०० अंक मान लिए जावें, तो एकसे लेकर ९९ अंक तकका व्रत-खण्डन अतिचारकी सीमाके भीतर आता है। क्योंकि व्रत-धारककी एक प्रतिशत अपेक्षा व्रत-धारणमें बनी हुई है। यदि वह एक प्रतिशत व्रत-सापेक्षता भी न रहे और व्रत शत-प्रतिशत खण्डित हो जावे, तो उसे अनाचार कहते हैं। अनेक आचार्योंने इस दृष्टिको लक्ष्यमें रख करके अतिचारोंकी व्याख्या की है। किन्तु कुछ आचार्योंने अतिचार और अनाचार इन दोके स्थानपर अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार ऐसे चार विभाग किये हैं। उन्होंने मनके भीतर व्रत-सम्बन्धी शुद्धिकी हानिको अतिक्रम, व्रतकी रक्षा करनेवाली शील-बाढ़के उल्लंघनको व्यतिक्रम, विषयोंमें प्रवृत्ति करनेको अतिचार और विषय-सेवनमें अति आसक्तिको अनाचार कहा है। जैसा कि आ० अमितगतिने कहा है—

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम्॥

—सामायिक पाठ श्लोक ९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस व्यवस्थाके अनुसार १ से लेकर ३३ अंश तकके व्रत-भंगको अतिक्रम, ३४ से लेकर ६६ अंश तकके व्रत-भंगको व्यतिक्रम, ६७ से लेकर ९९ अंश तकके व्रत-भंगको अतिचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंगको अनाचार समझना चाहिए।

परन्तु प्रायश्चित्त-शास्त्रोंके प्रणेताओंने उक्त चारके साथ 'आभोग' को बढ़ा करके व्रत-भंगके पाँच विभाग किये हैं। उनके मतसे एक बार व्रत खण्डित करनेका नाम अनाचार है और व्रत खण्डित होनेके बाद निःशंक होकर उत्कट अभिलाषाके साथ विषय-सेवन करनेका नाम आभोग है। किसी-किसी प्रायश्चित्त-शास्त्रकारने अनाचारके स्थानपर 'छन्नभंग' नाम दिया है।

प्रायश्चित्त-शास्त्रकारोंके मतसे १ अंशसे लेकर २५ अंश तकके व्रत-भंगको अतिक्रम, २६ से लेकर ५० अंश तकके व्रत-भंगको व्यतिक्रम, ५१ से लेकर ७५ अंश तकके व्रत-भंगको अतिचार, ७६ से लेकर ९९ अंश तकके व्रत-भंगको अनाचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंगको आभोग समझना चाहिए।

श्रावकके जो बारह व्रत बतलाये गये हैं उनमेंसे प्रत्येक व्रतके पाँच-पाँच अतिचार बतलाये गये हैं। जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र अ० ७ के सू० २४ से सिद्ध है—

'व्रत-शीलेषु पंच पंच यथाक्रमम्।'

ऐसी दशामें स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रत्येक व्रतके पाँच-पाँच ही अतिचार क्यों बतलाये गये हैं? तत्त्वार्थसूत्रकी उपलब्ध समस्त दिगम्बर और श्वेताम्बर टीकाओंके भीतर इस प्रश्नका कोई उत्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। जिन-जिन श्रावकाचारोंमें अतिचारोंका निरूपण किया गया है उनमें, तथा उनकी टीकाओंमें भी इस प्रश्नका कोई समाधान नहीं मिलता है। पर इस प्रश्नके समाधानका संकेत मिलता है प्रायश्चित-विषयक ग्रन्थोंमें—जहाँपर कि अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार और आभोगके रूपमें व्रत-भंगके पाँच प्रकार बतलाये गये हैं।

कुछ वर्ष पूर्व अजमेरके बीसपंथ धडेके शास्त्र-भंडारसे जो 'जीतसार-समुच्चय' नामक ग्रंथ उपलब्ध हुआ है, उसके अन्तमें 'हेमनाभ' नामका एक प्रकरण दिया गया है। इसके भीतर भरतके प्रश्नोंका भ० ऋषभदेवके द्वारा उत्तर दिलाया गया है। वहाँपर प्रस्तुत अतिचारोंकी चर्चा इस प्रकारसे दी गई है—

दृग्-व्रत-गुण-शिक्षाणां पंच-पंचैकशो मलाः।
अतिक्रमादिभेदेन पंचषष्टिश्च सन्ततेः॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन तेरह व्रतोंमेंसे प्रत्येक व्रतके अतिक्रम आदिके भेदसे पाँच-पाँच मल या दोष होते हैं अतएव सर्वमलोंकी संख्या (१३×५=६५) पैंसठ हो जाती है।

इसके आगे सातवें आदि श्लोकोंमें अतिक्रम-व्यतिक्रम आदि पाँचों भेदोंका स्वरूप देकर कहा गया है—

त्रयोदश-व्रतेषु स्युर्मानस-शुद्धिहानितः।
त्रयोदशातिचारास्ते विनश्यन्त्यात्मनिन्दतात्॥ १०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

.योदश-व्रतानां स्वप्रतिपक्षाभिलाषिणाम् ।
त्रयोदशातिचारास्ते शुद्धयन्ति स्वान्तनिग्रहात् ॥ ११ ॥
त्रयोदश-व्रतानां तु क्रियाऽऽलस्यं प्रकुर्वतः ।
त्रयोदशातिचाराः स्युस्तत्त्यागान्निर्मलो गृही ॥ १२ ॥
त्रयोदश-व्रतानां तु छन्नं भंगं वितन्वतः ।
त्रयोदशातिचाराः स्युः शुद्धयन्ते योगदण्डनात् ॥ १३ ॥
त्रयोदश-व्रतानां तु साभोग-व्रतभंजनात् ।
त्रयोदशातिचाराः स्युश्छन्नं शुद्धयधिकान्नयात् ॥ १४ ॥

अर्थात् उक्त तेरह व्रतोंमें मानस-शुद्धिकी हानिरूप अतिक्रमसे जो तेरह अतिचार लगते हैं, वे अपनी निन्दासे दूर हो जाते हैं। तेरह व्रतोंके स्व-प्रतिपक्षरूप विषयोंकी अभिलाषासे जो व्यतिक्रम-जनित तेरह अतिचार लगते हैं, वे मनके निग्रह करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। तेरह व्रतोंके आचरण रूप क्रियामें आलस्य करनेसे तेरह अतिचार लगते हैं, उनके त्याग करनेसे गृहस्थ निर्मल या शुद्ध हो जाता है। तेरह व्रतोंके अनाचार रूप छन्न भंगको करनेसे जो तेरह अतिचार लगते हैं, वे मन-वचन-काय रूप तीनों योगोंके निग्रहसे शुद्ध हो जाते हैं। तेरह व्रतोंके आभोगजनित व्रत-भंगसे जो तेरह अतिचार उत्पन्न होते हैं, वे प्रायश्चित्त-वर्णित नय-मार्गसे शुद्ध होते हैं ॥ १०–१४ ॥

इस विवेचनसे सिद्ध है कि प्रत्येक व्रतके पाँच-पाँच अतिचारोंमेंसे एक-एक अतिचार अतिक्रम-जनित है, एक-एक व्यतिक्रम-जनित है, एक-एक अतिचार-जनित है, एक-एक अनाचार-जनित है और एक-एक आभोग-जनित है। उक्त सन्दर्भसे दूसरी बात यह भी प्रकट होती है कि प्रत्येक अतिचारकी शुद्धिका प्रकार भी भिन्न-भिन्न ही है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि यतः व्रत-भंगके प्रकार पाँच हैं, अतः तज्जनित दोष या अतिचार भी पाँच ही हो सकते हैं।

प्रायश्चित्तचूलिकाके टीकाकारने भी उक्त प्रकारसे ही व्रत-सम्बन्धी दोषोंके पाँच-पाँच भेद किये हैं। यथा—

'सर्वेऽपि व्रत-दोषाः पंचषष्टिभेदा भवंति। तद्यथा—अतिक्रमो व्यतिक्रमोऽतिचारोऽनाचार आभोग इति। एषामर्थश्चायमभिधीयते—जरद्-गवन्यायेन। यथा-कश्चिद् जरद्-गवः महाशस्य-समृद्धि-सम्पन्नं क्षेत्रं समवलोक्य तत्सीम-समीप-प्रदेशे समवस्थितस्तत्प्रति स्पृहां संविधत्ते सोऽतिक्रमः। पुनर्विवरोदरान्तरास्यं संप्रवेश्य ग्रासमेकं समाददामीत्यभिलाषकालुष्यमस्य व्यतिक्रमः। पुनरपि तद्-वृत्ति-समुल्लंघनमस्यातिचारः। पुनरपि क्षेत्रमध्यमधिगम्य ग्राममेकं समादाय पुनरस्यापसरण-मनाचारः। भूयोऽपि निःशंकितः क्षेत्रमध्यं प्रविश्य यथेष्टं संभक्षणं क्षेत्रप्रभुणा प्रचण्डदण्डताडनखलीकारः आभोगकारः आभोग इति। एवं व्रतादिष्वपि योज्यम्।

—प्रायश्चित्तचूलिका० श्लो० १४६ टीका

भावार्थ—प्रत्येक व्रतके दोष अतिक्रम आदिके भेदसे पाँच प्रकारके होते हैं। इन पाँचोंका अर्थ एक बूढ़े बैलसे दृष्टान्त-द्वारा स्पष्ट किया गया है। कोई बूढ़ा बैल धान्यके हरे-भरे किसी खेत को देखकर उसकी बाढ़के समीप बैठा हुआ उसे खानेकी मनमें इच्छा करता है, यह अतिक्रम दोष है। पुनः वह बैठा-बैठा ही बाढ़के किसी छिद्रसे भीतर मुख डालकर एक ग्रास धान्य खानेकी अभिलाषा करे तो यह व्यतिक्रम दोष है। अपने स्थानसे उठकर और खेतकी बाढ़को तोड़कर भीतर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घुसनेका प्रयत्न करना अतिचार नामका दोष है। पुनः खेतमें घुसकर एक ग्रास घास या धान्यको खाकर वापिस लौट आवे, तो यह अनाचार नामका दोष है। किन्तु जब वह निःशंक होकर और खेतके भीतर घुस कर यथेच्छ घास खाता है और खेतके स्वामी द्वारा डण्डोंसे पीटे जानेपर भी घास खाना नहीं छोड़ता तो आभोग नामका दोष है। जिस प्रकार अतिक्रमादि दोषोंको बूढ़े बैलके ऊपर घटाया गया है, उसी प्रकारसे व्रतोंके ऊपर भी घटितकर लेना चाहिये।

इस विवेचनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि अतिक्रमादि पांच प्रकारके दोषों-को ध्यानमें रखकर ही प्रत्येक व्रतके पाँच-पाँच अतिचार बतलाये गये हैं।

श्रावकधर्मका वर्णन करनेवाले जितने भी ग्रन्थ हैं उनमेंसे व्रतोंके अतिचारोंका वर्णन श्वे० उपासकदशांगसूत्र और तत्त्वार्थसूत्रमें ही सर्व प्रथम दृष्टिगोचर होता है। तथा श्रावकाचारों-मेंसे सर्वप्रथम रत्नकरण्डश्रावकाचारमें अतिचारोंका वर्णन पाया जाता है। जब तत्त्वार्थसूत्र-वर्णित अतिचारोंका उपासकदशांगसूत्रसे-जो श्वेताम्बरों द्वारा सर्वमान्य है—तुलना करते हैं, तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि एकका दूसरे पर प्रभाव ही नहीं है, अपितु एकने दूसरेके अतिचारोंका अपनी भाषामें अनुवाद किया है। यदि दोनोंके अतिचारोंमें कहीं अन्तर है तो केवल भोगोपभोगपरिमाण व्रतके अतिचारोंमें है। उपासकदशासूत्रमें इस व्रतके अतिचार दो प्रकारसे बतलाए हैं—भोगतः और कर्मतः। भोगकी अपेक्षा वे ही पाँच अतिचार बतलाये गये हैं जो तत्त्वार्थसूत्रमें दिये गये हैं। कर्मकी अपेक्षा उपासकदशासूत्रमें पन्द्रह अतिचार कहे गये हैं जो कि खर-कर्मके नामसे प्रसिद्ध हैं और पं० आशाधरजीने सागारधर्मामृतमें जिनका उल्लेख किया है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि उपासकदशामें कर्मकी अपेक्षा जो पन्द्रह अतिचार बतलाये गये हैं, उन्हें तत्त्वार्थसूत्रकारने क्यों नहीं बतलाया ? मेरी समझसे इसका कारण यह प्रतीत होता है कि तत्त्वार्थसूत्रकार 'व्रतशीलेषु पंच-पंच यथाक्रमम्' इस प्रतिज्ञासे बंधे हुए थे, इसलिए उन्होंने व्रतके पाँच-पाँच ही अतिचार बताये। पर उपासकदशाकारने इस प्रकारकी कोई प्रतिज्ञा अतिचारोंके वर्णन करनेके पूर्व नहीं की, अतः वे पाँचसे अधिक भी अतिचारोंके वर्णन करनेके लिए स्वतन्त्र रहे हैं।

तत्त्वार्थसूत्र और रत्नकरण्डश्रावकाचार-वर्णित अतिचारोंका जब तुलनात्मक दृष्टिसे मिलान करते हैं, तो कुछ व्रतोंके अतिचारोंमें एक खास भेद दृष्टि-गोचर होता है। उनमेंसे दो स्थल खास तौरसे उल्लेखनीय हैं—एक परिग्रह-परिमाण व्रत और दूसरा भोगोपभोगपरिमाणव्रत। तत्त्वार्थसूत्रमें परिग्रहपरिमाणव्रतके जो अतिचार बताये गये हैं, उनसे पाँचकी एक निश्चित संख्या-का अतिक्रमण होता है। तथा भोगोपभोगव्रतके जो अतिचार बताये गये हैं, वे केवल भोगपर ही घटित होते हैं, उपभोग पर नहीं, जबकि व्रतके नामानुसार उनका दोनोंपर ही घटित होना आवश्यक है। रत्नकरण्डके कर्त्ता स्वामी समन्तभद्र जैसे तार्किक आचार्यके हृदयमें उक्त बात खट-की और इसीलिए उक्त दोनों ही व्रतोंके एक नये ही प्रकारके पाँच-पाँच अतिचारोंका निरूपण किया जो कि उपर्युक्त दोनों आपत्तियोंसे रहित हैं।

यहाँ पर सम्यग्दर्शन, बारह व्रत और सल्लेखनाके अतिचारोंका अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार और आभोग इन पाँच प्रकारके दोषोंमें वर्गीकरण किया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१	२	३	४	५	६
व्रतनाम	अतिक्रम	व्यतिक्रम	अतिचार	अनाचार	आभोग
सम्यग्दर्शन—	शंका	कांक्षा	विचिकित्सा	अन्यदृष्टिप्रशंसा	अन्यदृष्टिसंस्तव
अहिंसाणुव्रत—	बन्धन	पीडन	छेदन	अतिभारारोपण	अन्न-पाननिरोध
सत्याणुव्रत—	परिवाद	रहोऽभ्याख्यान	पैशुन्य	कूटलेखकरण	न्यासापहार
अचौर्याणुव्रत—	विरुद्धराज्यातिक्रम	सदृशसम्मिश्रण	हीनाधिकविनिमान	चौरप्रयोग	चौरार्थादान
ब्रह्मचर्याणुव्रत—	अन्यविवाहकरण	विटत्व	अनंगक्रीड़ा	विपुलतृषा	इत्वारिकागमन
परिग्रहपरिमाणव्रत- (रत्नकरण्डश्रा०के अनुसार)	विस्मय	अतिलोभ	अतिवाहन	अतिभारारोपण	अतिसंग्रह
दिग्व्रत—	ऊर्ध्वव्यतिक्रम	अधोव्यतिक्रम	तिर्यग्व्यतिक्रम	अवधिविस्मरण	क्षेत्रवृद्धि
देशव्रत—	रूपानुपात	शब्दानुपात	पुद्गलक्षेप	आनयन	प्रेष्य-प्रयोग
अनर्थदण्डव्रत—	कन्दर्प	कौत्कुच्य	मौखर्य	असमीक्ष्याधिकरण	अतिप्रसाधन
सामायिक—	मनोदुःप्रणिधान	वचोदुःप्रणिधान	कायदुःप्रणिधान	अनादर	विस्मरण
प्रोषधोपवास—	अदृष्टमृष्टग्रहण	अ०मृ०विसर्ग	अ०मृ०आस्तरण	अनादर	विस्मरण
भोगोपभोगपरिमाण—	विषय-विषतोऽनुप्रेक्षा	अनुस्मृति	अतिलौल्य	अतितृषा	अतिअनुभव
अतिथिसंविभाग—	हरित-पिधान	हरित-निधान	मात्सर्य	अनादर	विस्मरण
सल्लेखना-	भय	मित्रानुराग	जीविताशंसा	मरणाशंसा	निदान

उपर्युक्त वर्गीकरण रत्नकरण्ड-वर्णित अतिचारोंका लक्ष्यमें रखकर किया गया है, क्योंकि ये अतिचार सबसे अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होते हैं। तथा भोगोपभोग व्रतके अतिचारोंमें जो विसंगति ऊपर बताई गई है, वह भी रत्नकरण्डश्रावकाचारमें वर्णित-अतिचारोंमें नहीं रहती है।

सारे कथनका सार यह है कि सभी अतिचारोंको एक-सा न समझना चाहिए, किन्तु प्रत्येक व्रतके अतिचारोंमें व्रतभंग संबंधी तर-तमता है, उनके फलमें और उनकी शुद्धिमें भी तर-तमता-गत भेद है, भले ही उन्हें अतिचार, व्यतीपात मल या दोष जैसे किसी भी सामान्य शब्दसे कहा गया हो।

यहाँ इतना विशेष और ज्ञातव्य है कि ये पाँच-पाँच अतीचार स्थूल एवं उपलक्षण रूप हैं, अतः जैसा भी व्रतमें दोष लगे, उसे यथासंभव तदनुकूल अतीचारमें परिगणित कर लेना चाहिए। यथार्थमें तो अतिक्रम, व्यतिक्रम आदिके भी गणनातीत सूक्ष्म भेद होते हैं, जिन्हें ज्ञानी एवं जागरूक श्रावक स्वयं ही जानने और उनकी संशुद्धि करनेमें सावधान रहता है।

जिस प्रकार अहिंसाणुव्रत आदिके अतीचार बताये गये हैं, उसी प्रकारसे सप्त व्यसनों तथा मद्य, मांस, मधु त्यागके भी अतीचार बतलाये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. द्यूतव्यसन त्यागके अतीचार—होड़ लगाना, सौदा-सट्टा करना, हार-जीतकी भावनासे ताश-पत्ते आदि खेलना।

२. वेश्याव्यसन त्यागके ,, —गीत, संगीत और वाद्योंकी ध्वनि सुननेमें आसक्ति, व्यभिचारी जनोंकी संगति, वेश्यागृह-गमनादि, सिनेमा-नाटकादि देखना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. चोरी व्यसन त्यागके अतीचार—भागीदारके भागको हड़पना, भाई-बन्धुओंका भाग न देना, अपने समीपवाली दूसरोंकी भूमिमें अपना अधिकार बढ़ाना आदि।

४. शिकार व्यसन ,, ,, —चित्रोंको फाड़ना, चित्रवाले वस्त्रोंको फाड़ना, मिट्टी-प्लास्टिक आदिसे बने जानवरोंको तोड़ना आदि।

५. परस्त्री सेवन व्यसन ,, ,, —अपने साथ विवाहकी इच्छासे किसी कन्याको दूषण लगाना, गन्धर्व विवाह करना, कन्याओंको उड़ाकर उनसे दुराचार कराना आदि।

६. मांस-भक्षण त्याग ,, ,, —चमड़ोंमें रखे घी, तेल, जलादिका सेवन करना चालित रसवाले दूध, दही आदिको खाना, खीलन-फूलनवाले पक्वान्नों आदिको खाना, मांस-मिश्रित या निर्मित दवाएँ बेचना आदि।

७. मद्य त्याग ,, ,, —सभी प्रकारके अचार, मुरब्बा, आसव आदिका सेवन करना, मर्यादाके बाहरके अर्क पीना, कोकाकोला आदि पीना, गाँजा, अफीम, चरस, बीड़ी-सिगरेट आदि पीना, मदिरादिका बेचना।

८. मधु त्याग ,, ,, —गुलाब आदि फूलोंका खाना, उनसे बने गुलकन्द खाना, महुआ खाना, मधु-मिश्रित अवलेह आदि खाना, वस्ति-कर्म, नेत्राञ्जन आदिमें मधुका उपयोग करना और मधु आदिका बेचना आदि।

(सागार० भा० २ पृ० २४-२६ गत श्लोक)

कुछ श्रावकाचारोंमें पूजन, अभिषेक आदिके भी अतीचार बतलाये गये हैं। यथा—

१. पूजनके अतीचार—पूजन करते हुए नाक छिनकना, खाँसी आनेपर कफ थूकना, जंभाई लेना, अशुद्ध देह होनेपर भी पूजन करना, अशुद्ध वस्त्र पहन कर पूजन करना आदि।

२. अभिषेकके ,, —अभिषेक करते समय पाद-संकोच करना, फैलाना, भृकुटि चढ़ाना, अति तीव्र या अति मन्द स्वरसे अभिषेक पाठ बोलना और वेगके साथ जलधारा छोड़ना आदि।

३. मौन व्रतके ,, —हाथ आदिसे संकेत करना, खंखारकर बुलाना, थाली आदि बजाकर बुलाना, मेंढकके समान टर्र-टर्र करते हुए अस्पष्ट बोलना या गुनगुनाना आदि।

(देखो—व्रतोद्योतन० भाग ३ पृ० २५५ श्लोक ४६२-६४)

४. अनस्तमित व्रत या रात्रिभोजन

त्याग व्रतके अतीचार—सूर्यास्तके पश्चात् भी प्रकाश रहने तक खाना-पीना, अन्न न

१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाकर रात्रिमें दूध, फलादिका सेवन करना, दूसरोंको खिलाना-पिलाना, रात्रिमें भोजनादि बनाना या रात्रिमें बने पदार्थ खाना आदि।

५. जल-गालनके अतीचार—दो मुहूर्त्तके बाद बिना छना पानी पीना, पतले और जीर्ण वस्त्रसे गालना, जिवानी यथास्थान नहीं डालना आदि।

(सागार० भाग २, पृ० २४, श्लोक १६)

१९. निदान एवं उसका फल

आचार्योंने दो स्थलों पर निदानका वर्णन किया है। एक तो "निःशल्यो व्रती" कहकर इसे शल्योंमें परिगणित किया है और दूसरे सल्लेखनाके अतिचारोंमें इसे गिना है। धर्म सेवन करके उसके फलस्वरूप आगामी भवमें भोगोंकी आकांक्षा करना, इन्द्रादिके अथवा नारायण चक्रवर्ती आदि पदोंके पानेकी इच्छा करना निदान कहलाता है। अन्य श्रावकाचार रचयिताओंने इसके भेदोंका वर्णन नहीं किया है, किन्तु अमितगतिने इसके मूलमें दो भेद किये हैं—प्रशस्त निदान और अप्रशस्त निदान। पुनः प्रशस्त निदानके भी मुक्ति और संसारके निमित्तसे दो भेद किये हैं।

हम कर्म-बन्धनसे कब मुक्त हों, हमारे सांसारिक दुःखोंका कब विनाश हो, हमें बोधि और समाधि कब प्राप्त हो। इस प्रकारकी वांछाको मुक्ति-हेतुक प्रशस्त निदान कहते हैं।

जिनधर्मको भली-भाँतिसे पालन कर सकें इसलिए हमारा जन्म आगामी भवमें बड़े कुटुम्बमें न हो क्योंकि कुटुम्बकी विडम्बनासे धर्म-साधनमें बाधा होती है। धनिकके महारंभी-परिग्रही होनेसे धर्म-साधनके भाव नहीं होते, इसलिए आगे मेरा जन्म उत्तम कुल जातिवाले गरीब घरमें हो, इस प्रकारका निदान संसार निमित्त प्रशस्त निदान है।

अप्रशस्त निदान भी भोग-निमित्त और मान-निमित्तसे दो प्रकारका है—

जो सांसारिक भोगोंकी प्राप्तिके लिए निदान किया जाता है, वह भोग-निमित्तिक अप्रशस्त निदान है।

जो संसारमें मान-सम्मान प्राप्तिके लिए निदान किया जाता है, वह मान-निमित्तक अप्रशस्त निदान है।

ये दोनों ही प्रकारके निदान संसार पतनके कारण हैं। (देखो—श्रावकाचार सं० भाग १, पृ० ३२५ श्लोक २०-३३)

दिगम्बर-परम्परामें अमितगतिके सिवाय किसी अन्य आचार्यने निदानके और भेद-प्रभेदोंका वर्णन किया हो, यह हमारे दृष्टि-गोचर नहीं हुआ है। हाँ, श्वेताम्बरीय दशाश्रुत-स्कन्धकी दशवीं "आयति ठाण दसा" में निदानके नौ प्रकारोंका विस्तृत वर्णन दिया है जिसे यहाँ पाठकोंकी जानकारीके लिए संक्षेपसे दिया जाता है।

१. किसी राजा-महाराजाको सांसारिक सुखोंका उपभोग करते हुए देखकर कोई साधु या श्रावक यह इच्छा करे कि यदि मेरे तप, नियम एवं ब्रह्मचर्य-पालनका फल हो तो मैं भी ऐसे मानुष्य काम-भोग भोगू? इस प्रकारका निदान करनेवाला व्रत संयमके फलसे देवलोकमें उत्पन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर मनुष्य लोकमें उक्त प्रकारके मनोवांछित भोगोंको भोगता है, पर अन्तमें वह दुर्गतिका ही पात्र होता है। यह प्रथम निदान है।

२. जो साध्वी या श्राविका व्रत, नियम, संयमादिका पालन करते हुए किसी राज-रानी-को नाना प्रकारके सांसारिक सुखोंको उपभोग करती देखकर यह इच्छा करती है कि यदि मेरे व्रत-शीलादिका कुछ फल हो तो आगामी भवमें मुझे भी ऐसे ही काम-भोग प्राप्त हों, वह मरकर स्वर्गमें देवी होकर मनुष्य लोकमें राज-रानी बनती है और वहाँ पर काम-भोगोंमें आसक्त रहकर मरण करके दुर्गतियोंके दुःख भोगती है। यह दूसरा निदान है।

उक्त दोनों प्रकारके निदान करनेवाले मनुष्योंको मनुष्य जन्ममें धर्म सुननेका अवसर मिलनेपर भी धर्म धारण करनेका भाव जाग्रत नहीं होता है।

३. कोई साधु या श्रावक व्रत-नियमादिका पालन करते हुए कामोद्रेकसे ब्रह्मचर्य पालन करनेमें असमर्थ हो किसी महारानीको नाना प्रकारके काम-सुख भोगती हुई देखकर विचार करे— कि मनुष्यका जन्म बड़ा संकटमय रहता है, युद्धोंमें जाकरके शस्त्रोंके आघात सहन करने पड़ते हैं, नाना प्रकारके दुःखोंको सहते हुए धनोपार्जन करना पड़ता है, इससे तो स्त्रीका जीवन सुखमय है, मेरे व्रत-शीलादिका कुछ भी फल हो तो मैं अगले जन्ममें ऐसी भाग्यशालिनी स्त्री बनूं। इस निदानके फलसे वह आगामी भवमें भाग्यशालिनी स्त्री बन जाता है, पर अन्तमें दुर्गतियोंके दुःख भोगना पड़ते हैं।

४. कोई साध्वी या श्राविका व्रत-शील आदिका पालन करते हुए विचार करे कि स्त्रीका जीवन दुःखमय है, वह स्वतन्त्रतासे पतिकी इच्छाके बिना कुछ भी काम नहीं कर सकती है और न कहीं आ जा सकती है, पुरुषोंका जीवन सुखमय है यदि मेरे व्रतादिका कुछ भी फल हो तो मैं आगामी भवमें पुरुषका जन्म धारण करूँ? उक्त निदानके फलसे वह आगामी भवमें पुरुष रूपसे जन्म लेती है।

उक्त तीसरे और चौथे निदान करनेवालोंका धर्म सुननेका अवसर मिलनेपर भी धर्म धारण करनेके भाव नहीं होते हैं और अन्त में दुर्गतिके दुःख भोगना पड़ते हैं।

५. कोई साधु या श्रावक व्रत-तपश्चरणादि करते हुए भी कामोद्रेकसे विचार करे कि मानुषी स्त्रियोंका देह मल-मूत्रादिसे भरा हैं, सदा दुर्गन्ध आती है। किन्तु देवियोंकी देह मल-मूत्रादि-से रहित एवं सुगन्धित, होता है, यदि मेरे व्रतादिका फल हो तो मैं देवियोंके साथ उत्तम भोगोंको भोगूँ? इस प्रकारके निदान वाला स्वर्गमें देवियोंके साथ दिव्य सुखका उपभोग करता है और वहाँसे मनुष्य लोकमें आकर मनुष्य होता है वह धर्मको सुन करके भी उसे धारण नहीं करता है।

६. कोई साधु या श्रावक व्रतादिका पालन करते हुए मनुष्यके काम-भोगोंको अनित्य अध्रुव सोचकर उनसे विरक्त हो स्वर्गीय काम-भोगोंको नित्य शाश्वत समझ करके उनके भोगनेकी इच्छा करे तो उसके फलसे वह देवलोकमें किल्विषिक आदि नीच देवोंमें उत्पन्न होकर संसार-परिभ्रमण करता है।

७. जो साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका व्रत-तपश्चरण आदि करते हुए हीन जातिके देव देवियोंके सुखोंको हीन समझकर उनसे ग्लानि कर उत्तम जातिके देव देवियोंके सुख भोगनेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामना करते हैं, वे मरकर उत्तम जातिके देव-देवियोंमें उत्पन्न होकर वहाँके सुख भोगते हैं, पुनः वहाँसे च्युत होकर मनुष्य हो कर केवलि प्ररूपित धर्मको सुनकर उसपर श्रद्धा करते हैं, पर व्रत शीलादिका पालन नहीं कर पाते हैं। हाँ, सम्यक्त्वके प्रभावसे वे मरकर देवलोकमें उत्पन्न होते हैं।

८. जो साधु व्रतोंको भली-भाँतिसे पालन करते हुए मनुष्यके काम भोगोंको अनित्य, दुःखदायी और भव-भ्रमणका कारण जानकर उनसे विरक्त हो करके भी यह विचारता है कि यदि मेरे व्रत-संयमादिका फल हो तो मैं अग्रिम भवमें राजवंश, उग्रवंश आदि उत्तम कुलमें जन्म लूँ और वहाँ पर आदर्श श्रावक धर्मका पालन करूँ? क्योंकि साधु धर्मकी साधना बड़ी कठिन है। ऐसे निदान वाला देवलोकमें उत्पन्न होकर उत्तम वंशमें जन्म लेता है और वहाँ सद्-धर्मको सुनकर श्रावक धर्मका भली-भाँतिसे पालन करता है, पर वह सकल संयमको धारण नहीं कर पाता है।

९. जो साधु या श्रावक व्रतोंका पालन करता हुआ सोचता है कि मनुष्यके ये काम-भोग अनित्य, दुःखदायी और भव-भ्रमण-कारक हैं। मनुष्योंमें भी बड़े कुलोंमें जन्म लेनेपर कुटुम्बकी विडम्बनासे मुक्ति पाना बड़ा कठिन है। यदि मेरे व्रतादिका कुछ फल हो तो मैं अगले मनुष्य भवमें निर्धन, तुच्छ या भिक्षुक कुलमें जन्म लेऊँ? जिससे कि जिन-दीक्षाको धारण करनेके लिए सरलताके गृहस्थीके बन्धनसे छूट सकूँ। ऐसे निदान वाला देवलोकमें उत्पन्न होकर दरिद्रादि कुलमें उत्पन्न होता है और सद्-धर्म सुनकर जिन दीक्षा आदि धारण कर लेता है, भक्त-प्रत्याख्यान संन्यासको भी धारण करता है परन्तु उसी भवसे मोक्ष नहीं जा सकता।

जो साधु व्रत संयमादिको निर्दोष, निराकांक्ष होकर बिना किसी भोग-लालसाके पालन करते हैं और सदा संसारके दुःखदायी स्वरूपका चिन्तन करते हुए आत्म-ध्यानमें संलग्न रहते हैं, उनमेंसे अनेक तो उसी भवसे ही कर्म-मुक्त होकर सिद्ध पदको प्राप्त करते हैं और अनेक साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका देवलोकमें उत्पन्न हो वहाँसे च्युत हो मनुष्य होकर प्रव्रजित हो मुक्ति प्राप्त करते हैं। (दशाश्रुतस्कन्ध, आयतिठाणदसा १०)

२०. स्नपन

श्री सोमदेवसूरिने उपासकाध्ययनमें तथा श्री जयसेनाचार्यने अपने धर्मरत्नाकरमें देव-पूजाके अन्तर्गत छह कार्य करनेका विधान किया है—

यथा—स्नपनं पूजनं स्तोत्रं जपो ध्यानं श्रुतस्तवः।
षोढा क्रियोदिता सद्भिर्देवसेवासु गेहिनाम्॥ (धर्मर० २०, श्लोक १५९६)

अर्थात्—गृहस्थोंको देवसेवाके समय स्नपन, पूजन, स्तोत्र-पाठ, जप, ध्यान और श्रुतस्तवन करना चाहिए। अतः सर्वप्रथम यह देखना आवश्यक है कि स्नपनसे अभिप्राय जलाभिषेकसे है, या पञ्चामृताभिषेकसे।

पञ्चामृताभिषेक या जलाभिषेक

प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहमें संकलित श्रावकाचारोंका एक ओरसे पर्यवेक्षण करनेपर पाठक यह निष्कर्ष निकाल सकेंगे कि किस-किस आचार्यने पूजनके साथ जलाभिषेक या पञ्चामृताभिषेकका वर्णन किया है और किस-किसने नहीं किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. स्वामी समन्तभद्रने रत्नकरण्डकमें अर्हत्पूजनका विधान करते हुए भी अभिषेकका कोई वर्णन नहीं किया है। (देखो—भा० १ पृ० १४ श्लोक ११९-१२०)

२. कार्त्तिकेयानुप्रेक्षामें प्रोषधोपवासकी समाप्तिपर पात्रको दान देनेके पूर्व पूजन करनेका उल्लेखमात्र किया है। अभिषेकका कोई संकेत नहीं है। (भा० १ पृ० २६ गा० ७५)

३. महापुराणमें पूजनके नित्यमह आदि चारों भेदोंका स्वरूप-वर्णन करते हुए और एक स्थानपर 'बलि-स्नपनादि' का उल्लेख करते हुए (भा० १ पृ० ३१ श्लोक ३३) भी पञ्चामृता-भिषेकका कहीं कोई निर्देश नहीं है। जबकि गर्भाधानादि क्रियाओंका वर्णन करते हुए अपने कथन-की पुष्टिमें 'श्रुतोपासकसूत्र' (भा० १ पृ० ३० श्लोक २४। पृ० ९३ श्लोक १७४), 'श्रावकाध्याय-संग्रह' (भा० १ पृ० ३३ श्लोक ५०), मूलोपासकसूत्र (पृ० ३५ श्लोक ८६। पृ० ६१ श्लोक ५७। पृ० ६४ श्लोक ९५), क्रियाकल्प (पृ० ३४ श्लोक ६९। पृ० ६१ श्लोक ५३), औपासिकसूत्र (पृ० ३८ श्लोक ११८), उपासकाध्ययन (पृ० ९२ श्लोक १६१), उपासकाध्याय (पृ० ९२ श्लोक १६५), उपासकसंग्रह (पृ० ९३ श्लोक १७७) और औपासिक सिद्धान्त (पृ० ९६ श्लोक २१३) आदि विभिन्न नामोंसे विभिन्न स्थलोंपर उपासकाचारसूत्रका उल्लेख किया है।

४. पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें प्रभावना अंगका वर्णन करते हुए 'दान-तपो-जिनपूजा' वाक्यमें केवल जिनपूजाका नामोल्लेख है (भा० १ पृ० १०१ श्लोक ३०) तथा प्रोषधोपवासके दिन प्रासुक द्रव्योंसे जिनपूजन करनेका विधान किया है (पृ० ११५ श्लोक १५५) जलाभिषेक या पञ्चामृता-षेकका कोई निर्देश नहीं है।

५. सोमदेवने यशस्तिलकगत उपासकाध्ययनमें पूजनका विस्तृत वर्णन किया है और अभिषेक-का वर्णन करते हुए लिखा है—'ये वे ही जिनेन्द्रदेव हैं, यह सिंहासन ही सुमेरु पर्वत है और कलशोंमें भरा हुआ यह जल ही साक्षात् क्षीरसागरका जल है, ऐसा कहकर (भा० १ पृ०१८२ श्लोक ५०३) ज़लसे अभिषेक कराया है। पश्चात् दाख, खजूर, नारियल, ईख, आँवला, केला, आम तथा सुपारीके रसोंसे अभिषेक कराया है (भा० १ पृ० १८२ श्लोक ५०७) तत्पश्चात् घी, दूध, दही, इलायची और लोंग आदिके चूर्णसे जिन बिम्बकी उपासना करनेका विधान किया है (भा० १ पृ० १८२ श्लोक ५०८-५११)।

इस प्रकार सोमदेवने सर्वप्रथम पञ्चामृताभिषेकका विधान किया है। उनका यह विधान अन्यत्र दर्शित आचमन आदिके विधानके समान ही हिन्दुओंमें प्रचलित पूजन-अभिषेकका अनु-करण है।

६. चामुण्डरायने अपने चारित्रसार में श्रावक व्रतोंका वर्णन कर अन्तमें इज्या, वार्ता आदि छह आर्य कर्मोंके वर्णनमें पूजनके महापुराणोक्त चारों प्रकारोंकी पूजाओंका स्वरूप कहकर स्नपन-अभिषेक करनेका निर्देश मात्र किया है। (भा० १ पृ० २५८ अनु० २)

७. अमितगतिने अपने श्रावकाचार में पूजनके दो भेद करके द्रव्यपूजा और भावपूजाका स्वरूप वर्णन किया है, (भा० १ पृ० ३७३ श्लोक ११-१५), इससे आगे उन्होंने जिन-पूजाका माहात्म्य और फल वर्णन करके लिखा है कि जिनस्तव, जिनस्नान और जिनोत्सव करनेवाले पुरुष भी लक्ष्मीको प्राप्त होते हैं (पृ० ३७५ श्लोक ४०)। इसके सिवाय और कहींपर भी अभि-षेकका कोई निर्देश नहीं किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. वसुनन्दीने अपने श्रावकाचारमें प्रोषध प्रतिमाका वर्णन करते हुए द्रव्य और भाव-पूजन करनेका विधान किया है। (भा० १ पृ० ४५२ गा० २८७)। पुनः श्रावकके अन्य कर्तव्योंका वर्णन करते हुए पूजनका विस्तृत वर्णन किया है; वहाँपर नाम, स्थापनादि पूजनके ६ भेद बताकर स्थापना पूजनमें नवीन प्रतिमाका निर्माण कराके उनकी प्रतिष्ठा विधिका वर्णन कर अन्तमें शास्त्रमार्गसे स्नपन करनेका विधान किया है। (पृ० ४६८ गा० ४२४) तदनन्तर कालपूजाका वर्णन करते हुए तीर्थंकरोंके गर्भ-जन्मादि कल्याणकोंके दिन इक्षुरस, घी, दही, दूध, गन्ध और जलसे भरे कलशोंसे जिनाभिषेकका वर्णन किया है। (भा० १ पृ० ४७१ गा० ४५३-४५४)

९. सावयधम्मदोहामें जिन-पूजनका वर्णन करते हुए लिखा है कि जो जिनदेवको घी और दूधसे नहलाता है वह देवोंके द्वारा नहलाता जाता है। (भा० १ पृ- ४९९ दोहा १८९)

१०. सागारधर्मामृतके दूसरे अध्यायमें महापुराणका अनुसरण कर पूजाके नित्यमह आदि भेदोंका वर्णन कर और तदनुसार ही 'बलि-स्तवन' आदिका भी निर्देश कर इस स्थलपर पञ्चामृताभिषेकका कोई वर्णन नहीं किया है। (देखो—भाग २ पृ० ९-१० श्लोक २४-३०)

इससे आगे श्रावकके १२ व्रतोंका विस्तारसे तीन अध्यायोंमें वर्णन करके छठे अध्यायमें श्रावककी प्रातःकाल जागनेसे लेकर रात्रिमें सोने तककी दिनचर्याका वर्णन किया गया है। वहाँपर प्रातःकाल जिनालयमें जाकर पौर्वाह्णिक पूजनका विधान किया है। तत्पश्चात् अपने व्यापारादिके उचित स्थान दुकान आदिपर जाकर न्यायपूर्वक जीविकोपार्जनका निर्देश किया है (भा० २ पृ० ६४ श्लोक १५ ।) पुनः भोजनका समय होनेपर घर आकर यथादोष स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहिनके माध्याह्निक करनेका विधान किया है। उसकी विधिमें आशाधरजीने वही श्लोक दिया है जिसे कि उन्होंने 'प्रतिष्ठासारोद्धार' नामक अपने प्रतिष्ठा पाठके शास्त्रमें दिया है। उसका भाव यह है—

अभिषेककी प्रतिज्ञा करके भूमिका शोधन करे, उसपर सिंहासन रखे, उसके चारों कोनोंपर जलसे भरे चार कलश स्थापित करे, सिंहासन पर चन्दनसे श्री और ह्री लिखकर कुशा क्षेपण करे। पुनः उसपर जिन-बिम्ब-स्थापन करे, और इष्ट दिशामें खड़े होकर आरती करे। तदनन्तर जल, रस, घी, दूध और दहीसे अभिषेक करे। पुनः लवंगादिके चूर्णसे उद्वर्तन कर चारों कोनोंपर रखे कलशोंके जलसे अभिषेक कर जल-गन्धादि द्रव्योंसे पूजन करे और अन्तमें जिनदेवको नमस्कार कर उनके नामका स्मरण करे। (भा० २ पृ० ६५ श्लोक २२)

इस स्थलपर सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि आशाधरने प्रातःकालीन पूजनके समय जिनालयमें जाकर पूजनके समय उक्त अभिषेकका विधान क्यों नहीं किया और मध्याह्न-पूजनके समय अपने घर पर ही भूमि-शोधनकर उपर्युक्त प्रकारसे जिनबिम्बके अभिषेकको दूध-दही आदिसे करनेका वर्णन क्यों किया ? इस प्रश्नके अन्तस्तलमें जानेपर सहजमें ही यह ज्ञात हो जाता है कि आशाधरके समय तक सार्वजनिक जिन-मन्दिरमें पञ्चामृताभिषेकका प्रचलन नहीं था। किन्तु यतः आशाधर मूर्त्ति-प्रतिष्ठा शास्त्रके ज्ञाता और निर्माता थे, तथा प्रतिष्ठाके समय नवीन मूर्त्तिका पञ्चामृताभिषेक किया जाता था, अतः उन्होंने उसी पद्धतिके प्रचारार्थ मध्याह्न-पूजाके समय घर पर सहज-सुलभ दूध-दही आदिसे भी अभिषेक करनेका विधान कर दिया। यदि ऐसा न होता, तो वे दूसरे अध्यायमें नित्यमह आदि चारों भेदोंका वर्णन करते हुए पञ्चामृताभिषेक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वक ही नित्य-पूजन करनेका विधान करते। किन्तु यतः महापुराणकार जिनसेनने चारों प्रकारकी पूजाओंका वर्णन करते हुए भी उसके पूर्व या पश्चात् पंचामृताभिषेकका कोई वर्णन नहीं किया है और न गर्भाधानादि क्रियाओंका वर्णन करते हुए पञ्चामृताभिषेकका कोई निर्देश किया है, अतः उक्त स्थलपर आशाधरने पञ्चामृताभिषेकका वर्णन करना उचित नहीं समझा।

११. धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें पं० मेधावीने प्रातः या मध्याह्न-पूजनके समय पञ्चामृताभिषेकका कोई वर्णन नहीं किया है। केवल 'काल-पूजा' के वर्णनमें वसुनन्दीके समान ही इक्षु-घृतादि रसोंके द्वारा स्तपनकर जिनपूजन करनेका निर्देश किया है। (भा० २ पृ० १६० श्लोक ९६)

१२. प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें आचार्य सकलकीर्त्तिने बीसवें अध्यायमें जिन-पूजनका विस्तृत वर्णन करते हुए भी पञ्चामृताभिषेकका कोई वर्णन नहीं किया है। अभिषेकके विषयमें केवल इतना ही लिखा है—

जिनाङ्गं स्वच्छनीरेण क्षालयन्ति सुभावतः।
येऽतिपापमलं तेषां क्षयं गच्छति धर्मतः॥

(भा० २ पृ० १७८ श्लोक १९६)

अर्थात्—जो उत्तम भावसे स्वच्छ जलके द्वारा जिनदेवके अंगका प्रक्षालन करते हैं, उस धर्मसे उनका महापाप-मल क्षय हो जाता है।

इससे सिद्ध है कि आचार्य सकलकीर्त्ति पञ्चामृताभिषेकके पक्षमें नहीं थे, जबकि वे स्वयं प्रतिष्ठाएँ कराते थे।

१३. गुणभूषण श्रावकाचारमें श्री गुणभूषणने तीसरे उद्देशमें नामादि छह प्रकारके पूजनका विस्तारसे वर्णन करते हुए भी जलाभिषेक या पञ्चामृताभिषेकका कोई वर्णन नहीं किया है। (भा० २ पृ० ४५६-४५९)

१४. धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचारमें श्री नेमिदत्तने चौथे अध्यायमें पञ्चामृताभिषेक करनेका केवल एक श्लोकमें विधान किया है। (भा० २ पृ० ४९२ श्लोक २०६)

१५. लाटीसंहितामें राजमल्लजीने दो स्थानपर पूजन करनेका विधान किया है—प्रथम तो दूसरे सर्गके १६३-१६४ वें श्लोकों द्वारा, और दूसरे—सामायिक शिक्षाव्रतका वर्णन करते हुए पंचम सर्गमें श्लोक १७० से १७७ तक आठ श्लोकों द्वारा। परन्तु इन दोनों ही स्थलोंपर न जलाभिषेकका निर्देश किया है और न पञ्चामृताभिषेकका ही।

१६. उमास्वामि श्रावकाचारमें उसके रचयिताने प्रातःकालीन पूजनके समय जिनालयोंमें पञ्चामृताभिषेक करनेका स्पष्ट विधान किया है और यहाँ तक लिखा है कि दूधके लिए गायको रखनेवाला, जलके लिए कूपको बनवानेवाला और पुष्पोंके लिए बगीची लगवानेवाला पुरुष अधिक दोषका भागी नहीं है। (भा० ३ पृ० १६३ श्लोक १३३-१३४)

१७. पूज्यपाद श्रावकाचारमें उसके रचयिताने स्वर्ण, चन्दन और पाषाणसे जिन-बिम्ब-निर्माण कराके प्रतिदिन पूजन करनेका विधान किया है, पर अभिषेकका कोई निर्देश नहीं किया है। (भा० ३ पृ० १९७ श्लोक ७४)

१८. व्रतसार श्रावकाचार—इस अज्ञात-कर्तृक २२ श्लोक-प्रमित श्रावकाचारमें पञ्चामृता-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भिषेकका कोई निर्देश नहीं है। केवल एक श्लोकमें त्रिकाल प्रतिमार्चन-संयुक्त वन्दन करनेका निर्देश मात्र है। (भा० ३ पृ० २०५ श्लोक १५)

१९. व्रतोद्योतनश्रावकाचारमें श्री अभ्रदेवने पञ्चामृताभिषेकका कोई वर्णन नहीं किया है। केवल इतना ही कहा है कि जो भावपूर्वक जिनेन्द्रदेवका स्नपन करता है वह सिद्धालयके परम सुखको प्राप्त होता है। (भा० ३ पृ० २२८ श्लोक १९८)

२०. श्रावकाचारसारोद्धारमें श्री पद्मनन्दिने जिनपूजनका विधान प्रोषधोपवासके दिन केवल आधे श्लोकमें किया है, जबकि यह ११५९ श्लोक-प्रमाण है। (भा० ३ पृ० ३६२ श्लोक ३१३)

२१. भव्य धर्मोपदेश उपासकाध्ययनमें जिनदेवने सोमदेव और वसुनन्दीके समान पञ्चामृताभिषेकका विधान किया है (भा० ३ पृ० ३९६ श्लोक ३४९-३५३)। तत्पश्चात् पूर्व आहूत देवोंके विसर्जनका विधान किया है (श्लोक ३५६)। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि उक्त विधान चौथी प्रतिमाके अन्तर्गत किया गया है और सबसे अधिक विचारणीय बात तो यह है कि इस श्रावकाचारके रचयिताने उक्त सर्व कथन श्रेणिकको सम्बोधित करते हुए इन्द्रभूतिगणधरके मुखसे कराया है। (देखो—भाग, ३ पृ० ३७३ श्लोक ५३)

२२ उपासक संस्कारमें आ० पद्मनन्दीने श्रावकके देवपूजादि षट् आवश्यकोंका विस्तृत वर्णन करते हुए भी पञ्चामृताभिषेकका कोई उल्लेख नहीं किया है (भा० ३ पृ० ४२८ श्लोक १४-१६)

२३. देशव्रतोद्योतनमें आ० पद्मनन्दीने जिनबिम्ब और जिनालय बनवा करके श्रावकको नित्य ही स्नपन और पूजनादि करके पुण्योपार्जनका विधान किया है। (भाग ३ पृ० ४३८ श्लोक २२-२३)

२४. प्राकृत भावसंग्रहमें आचार्य देवसेनने देव-पूजनकी महत्ता बताकर जिनदेवके समीप पद्मासनसे वैठकर पिण्डस्थ-पदस्थादिरूपसे धर्मध्यान करनेका विधान किया हैं। पुनः अपनेको इन्द्र मान कर, सिंहासनको सुमेरु और जिनबिम्बको साक्षात् जिनेन्द्रदेव मानकर जल, घी, दूध और दहीसे भरे कलशोंसे स्नपन कर पूजन करनेका विधान किया है। (भा० ३ पृ० ४४८ गा० ८७-९३)

२५. संस्कृत भावसंग्रहमें पण्डित वामदेवने प्रा० भावसंग्रहका अनुसरण करते हुए अधिक विस्तारसे पञ्चामृताभिषेकका वर्णन किया है। (भा० ३ पृ० ४६७-४६८, श्लोक २८-५८) यहाँ इतनी विशेषता है कि जहाँ देवसेनने अभिषेक-पूजनादि करनेके स्थानका स्पष्ट निर्देश नहीं किया है, वहाँ वामदेवने उक्त पञ्चामृताभिषेक और पूजन घर पर करके पीछे जिनचैत्यालय जाकर पूजन करनेका भी विधान किया है। (भा० ३ पृ० ४६९ श्लोक ६०-६१)

२६. रयणसारमें दान और पूजाको गृहस्थोंका मुख्य कर्त्तव्य बतलाने पर भी पञ्चामृताभिषेक या पूजनका कोई वर्णन नहीं है। (भा० ३ पृ० ४८० गा० ९-९३)

२७. पुरुषार्थानुशासन-गत श्रावकाचारमें सामायिक प्रतिमाके अन्तर्गत नित्य पूजन करनेका निर्देश करके भी अभिषेकका कोई निर्देश नहीं है। हाँ, जिनसंहितादि ग्रन्थोंसे स्फुट अर्चाविधि जाननेकी सूचना अवश्य की गई है। (भा० ३ पृ० ५२३ श्लोक ९७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८. श्रावकाचार-संग्रहके तीसरे भागके अन्तमें दिये गये परिशिष्टके अन्तर्गत कुन्दकुन्दके चारित्रपाहुडमें, उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें, रविषेणके पद्मचरित-गत, जटासिंहनन्दिके वराङ्गचरित-गत, और जिनसेनके हरिवंश-गत श्रावकधर्मके वर्णनमें पूजन और अभिषेकका कोई वर्णन नहीं है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पञ्चामृताभिषेकका विधान सोमदेवसे पूर्व किसी भी श्रावकाचार-कर्त्ताने नहीं किया है। पर-वर्ती श्रावकाचार-रचयिताओंमेंसे भी अनेकोंने उसका कोई विधान नहीं किया है, जिन्होंने पञ्चामृताभिषेकका वर्णन किया भी है, उनपर सोमदेवके वर्णनका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

इस सन्दर्भमें सबसे अधिक विचारणीय बात तो यह है कि आचार्य रविषेणने पद्मपुराण नामसे प्रसिद्ध अपने पद्मचरितके चौदहवें पर्वके भीतर श्रावक धर्मके वर्णनमें बारह व्रतोंका स्वरूप कहते हुए और अन्य आवश्यक कर्तव्योंको बताते हुए पूजन और अभिषेकका कोई वर्णन नहीं किया है। जबकि उन्होंने आगे जाकर राम-लक्ष्मणके वन-गमन कर जानेसे शोक-सन्तप्त भरतको संबोधित करते हुए मुनिराजके मुखसे सागार धर्मका उपदेश दिलाकर जिन-पूजन और पञ्चा-मृताभिषेक करनेका विधान कराया है?

पद्मचरित सोमदेवके यशस्तिलकचम्पूसे लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व रचा गया है। इससे पूर्व-रचित किसी भी दि० जैन चरित, पुराण आदिमें पञ्चामृतभिषेकका कोई वर्णन अन्वेषण करनेपर भी नहीं मिलता है। किन्तु श्वेताम्बर माने जानेवाले विमल सूरि द्वारा प्राकृत-भाषामें रचित 'पउमचरिय' में उक्त पञ्चामृताभिषेकका वर्णन बहुत स्पष्टरूपसे किया गया मिलता है। विमल-सूरिका समय इतिहासज्ञोंने बहुत छान-बीनके पश्चात् विक्रमकी पाँचवीं शती निश्चित किया है अतः वे रविषेणसे दो शताब्दीपूर्वके सिद्ध होते हैं।

विमलसूरिके 'पउमचरिय' और रविषेणके 'पद्मचरित' को सामने रखकर दोनोंका मिलान करनेपर स्पष्टरूपसे ज्ञात होता है कि रविषेणका 'पद्मचरित' प्राकृत पउमचरियका पल्लवित संस्कृत रूपान्तर है। यह बात नीचे उद्धृत दोनोंके पञ्चामृताभिषेकके वर्णनसे ही पाठक जान लेंगे।

१. पउमचरिय—काऊण जिनवराणं अभिसेयं सुरहिगंधसलिलेण।
(उद्देश ३२) सो पावइ अभिसेयं उप्पज्जइ जत्थ जत्थ नरो॥ ७८॥

पद्मचरित—अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा।
(पर्व ३२) अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते॥ १६५॥

२. पउमचरिय—खीरेण जोऽभिसेयं कुणइ जिणिंदस्स भत्तिराएण।
(उद्देश ३२) सो खीरविमलधवले रमइ विमाणे सुचिरकालं॥ ७९॥

पद्मचरित—अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया।
(पर्व ३२) विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः॥ १६६॥

३. पउमचरिय—दहिकुंभेसु जिणं जो ण्हवेइ दहिकोट्टिमे सुरविमाणे।
(उद्देश ३२) उप्पज्जइ लच्छिधरो देवो दिव्वेण रूवेणं॥ ८०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्मचरित —दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् ।
(पर्व ३२) दध्याभकुट्टिमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ।। १६७ ।।

४. पउमचरिय—एत्तो घियाभिसेयं जो कुणइ जिणेसरस्स पययमणो ।
(उद्देश ३२) सो होइ सुरहिदेहो सुर-पवरो वरविमाणम्मि ।। ८१ ।।

पद्मचरित —सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् ।
(पर्व ३२) कान्ति-द्युतिप्रभावाढ्यो विमानेशः स जायते ।। १६८ ।।

५. पउमचरिय—अभिसेयपभावेणं बहवे सुव्वंत्तिऽणंतविरियाई ।
(उद्देश ३२) लद्धाहिसेयरिद्धी सुर-वर-सोक्खं अणुहवंति ।। ८२ ।।

पद्मचरित —अभिषेकप्रभावेण श्रूयन्ते बहवो बुधाः ।
(पर्व ३२) पुराणेऽनन्तवीर्याद्याः द्यु-भूलब्धाभिषेचनाः ।। १६९ ।।

भावार्थ—जो सुगन्धित जलसे जिनेन्द्रदेवका अभिषेक करता है, वह जहाँ भी उत्पन्न होता है, वहाँपर अभिषेकको प्राप्त होता है। जो दूधकी धारासे जिनदेवोंका अभिषेक करता है वह दूधके समान धवल आभावाले देव विमानमें उत्पन्न होता है। जो दही भरे कलशोंसे जिनेश्वरोंका अभिषेक करता है, वह दहीके समान आभाके धारक कुट्टिम (फर्श) वाले स्वर्गमें उत्तम देव होता है। जो जिननाथका घीसे अभिषेक करता है वह कान्ति-द्युतिसे युक्त सुगन्धित देहका धारक विमानका स्वामी देव होता है। पुराणमें ऐसा सुना जाता है कि अभिषेकके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक बुधजन स्वर्ग और भूतलपर अभिषेक-वैभव पाकर देवोंके उत्तम सुखको प्राप्त हुए हैं।

इस सम्बन्धमें सबसे बड़ी बात तो समानताकी यह है कि 'पउमचरिय' के उद्देशकी संख्या और 'पद्मचरित' की पर्व संख्या एक ही है। गाथाओंकी संख्या और श्लोकोंकी संख्या भी ५-५ ही है। अनुक्रमांकमें जो अन्तर है वह इसके पूर्व वर्णित कथा भागके पल्लवित करनेके कारण है।

वराङ्गचरित और हरिवंशपुराण-गत श्रावकधर्मके वर्णनमें पञ्चामृताभिषेकका कोई वर्णन नहीं है। किन्तु आगे जाकर एक कथाके प्रसंगमें उन्होंने भी पञ्चामृताभिषेकका वर्णन किया है। जटासिंहनन्दि और जिनसेन यतः रविषेणसे लगभग एक शताब्दी पीछे हुए हैं, अतः संभव है कि उन्होंने रविषेणका अनुकरण किया हो।

वस्तु-स्थिति जो भी हो, परन्तु वर्तमानमें उपलब्ध दिगम्बर-श्वेताम्बर साहित्यके अध्ययन करनेपर इतना तो निश्चितरूपसे ज्ञात होता है कि मूर्त्ति-पूजन श्वेताम्बर जैनोंमें पूर्वमें प्रचलित हुई है।

सोमदेवके उपासकाध्ययनकी प्रस्तावनामें पञ्चामृताभिषेककी चर्चा करते हुए उसके सम्पादक श्री पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने लिखा है कि इन्द्रने तो सुमेरु पर्वतपर केवल क्षीरसागर-के जलसे ही भगवान्‌का अभिषेक किया था, फिर भी जैन परम्परामें घी, दूध, दही आदिसे अभिषेककी परम्परा कैसे चल पड़ी, यह प्रश्न विचारणीय हैं। (प्रस्तावना पृ० ५४)

वसुनन्दि-श्रावकाचारके सम्पादनकालसे ही उक्त प्रश्न मेरे भी सामने रहा है और इस श्रावकाचारके सम्पादन प्रारम्भ करनेके समयसे तो और भी अधिक मस्तिष्कको उद्वेलित करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चला आ रहा है। फलस्वरूप बनजी ठोलिया ग्रन्थमालासे प्रकाशित अभिषेक पाठ-संग्रहका परायण करनेपर जो तथ्य सामने आये हैं, वे इस प्रकार हैं—

पं० आशाधरने 'नित्यमहोद्योत' नामक अभिषेक पाठकी रचना की है। सिंहासनके चारों कोणोंमें रखे हुए कलशोंपर उत्प्रेक्षा करते हुए उन्होंने लिखा है—

क्षीरोदाद्याः समुद्राः किमुत जलमुचः पुष्करावर्तकाद्याः
किं वाद्यैवं विवृत्ताः सुरसुरभिकुचा विद्भिरित्यूहमानैः।
पीयूषोत्सारि-वारि-प्रसर-भरकिलद्दिग्गजव्रातमेतै-
स्तन्मः यस्तैरुदस्तैर्युगपदभिषवं श्रीपतेः पूर्णकुम्भैः॥

(अभिषेक पाठ संग्रह, पृ० २३९ श्लोक १३०)

अर्थात्—अभिषेकके लिए सिंहासनके चारों कोणोंमें जो जलसे भरे हुए कलश स्थापित किये गये हैं, उनपर उत्प्रेक्षा की गई है कि क्या क्षीरसागरको आदि लेकर चार समुद्र हैं, अथवा पुष्करावर्त आदि चार जातिके मेघ हैं, अथवा सुरभि (कामधेनु) के चार स्तन हैं, अथवा अमृतका भी तिरस्कार करनेवाले जलमें क्रीड़ा करते हुए दिग्गजोंका समूह ही इस अभिषेकके समय उपस्थित हुआ है ? इस प्रकारके जलपूर्ण प्रशस्त कुम्भोंसे हम श्रीपति जिनेन्द्रका अभिषेक करते हैं।

यद्यपि इस पद्यमें चारों कलशोंके लिए चार प्रकारके उपमानोंकी केवल कल्पना ही की गई है, तथापि 'क्षीरोदाद्याः समुद्राः' पद खासतौरसे विचारणीय है। इन दोनों पद्योंका टीकाकार श्रुतसागरसूरिने अर्थ किया है—

'क्षीरोदाद्याः क्षीरोदप्रभृतयः, समुद्राः चत्वारः सागराः अद्य घटरूपप्रकारेण पर्यायान्तरं प्राप्ताः।'

अर्थात्—इस अभिषेकके समय क्षीरसागर आदि चार समुद्र क्या घटरूप पर्यायको धारण कर उपस्थित हुए हैं ?

यह उत्प्रेक्षा क्षीरसागर, घृतवरसागर आदिपर की गई है और इसे कोरी उत्प्रेक्षा ही नहीं माना जा सकता, क्योंकि जहाँ अनेक देव क्षीरसागरसे जल भरकर ला रहे हों, वहाँ भक्तिसे प्रेरित अन्य देवोंका उससे भी आगे स्थित घृतसागर आदिसे भी जल भरकर लाना संभव है। इसकी पुष्टि उक्त अभिषेक पाठके निम्न पद्यसे होती है। वह पद्य इस प्रकार है—

अम्भोधिभ्यः स्वयम्भूरमणपृथुनदीनाथपर्यन्तकेभ्यो
गङ्गादिभ्यः सरिद्भ्यः कुलधरणिधराधित्यकोद्भूतिभाग्भ्यः।
पद्मादिभ्यः सरोभ्यः सरसिरुहरजःपिञ्जरेभ्यः समन्ता-
दानीतैः पूर्णकुम्भैरनिमिषपतिभिर्योऽभिषिक्तः सुराद्रौ॥

अर्थात् जिस जिनेन्द्रदेवका अभिषेक स्वयम्भूरमणान्त समुद्रोंसे, हिमवान् आदि कुलाचलोंसे निकली हुई गंगादि नदियोंसे और कमल-परागसे पिंजरित पद्म आदि सरोवरोंसे लाये गये जलोंसे भरे हुए कलशोंसे सुमेरुपर्वतपर किया गया है, उन्हींका मैं सिंहासनके चारों कोणोंपर स्थित कलशोंसे करता हूँ। यह आगेके ६७ पद्यका भाव है। (अभिषेक पाठ संग्रह पृ० २९ श्लोक ६६-६७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त पद्यसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सौधर्म और ऐशान इन्द्र भले ही केवल क्षीरसागरके जलसे अभिषेक करते हों ? परन्तु अन्य देव स्वयम्भूरमणान्त समुद्रोंसे, गंगादि नदियोंसे और पद्म आदि सरोवरोंसे लाये गये जलोंसे भी सुमेरुगिरिपर तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक करते रहे हैं।

गुणभद्रके उक्त कथनकी पुष्टि अय्यपार्य-रचित अभिषेक पाठके निम्न पद्यसे भी होती है—

श्रीमत्पुण्यनदी-नदाब्धि-सरस-कूपादितीर्थाहृतै-
हंस्ताहस्तिकया चतुर्विधसुरानीकैरिवार्पितैः ।
रत्नालङ्कृतहेमकुम्भनिकरानीतैर्जगत्पावनैः
कुर्वे मज्जनमम्बुभिर्जिनपतेस्तृष्णापहैः शान्तये ॥

अर्थात्—पवित्र नदियोंसे, समुद्रोंसे, सरोवरोंसे और कूप आदि तीर्थोंसे मानों चारों प्रकारके देवों द्वारा हाथों-हाथ ला कर समर्पित किये गये जगत्पावन, रत्नालंकृत, तृष्णाछेदक इन सुवर्ण कुम्भोंके जलोंसे मैं शान्तिके लिए जिनपतिका मज्जन करता हूँ। (अभिषेक पाठ संग्रह पृ० ३०५ श्लोक ५१)

अय्यपार्यके इस पद्यसे भी सभी पवित्र नदी, समुद्रादिकके जलोंसे तीर्थकरोंका अभिषेक किया गया प्रमाणित होता है।

यद्यपि गुणभद्र, अय्यपार्य आदि बहुत अर्वाचीन हैं, तो भी ऐसा संभव है कि उनके सामने भी कोई प्राचीन आधार रहा हो और उसी आधारपरसे भक्तोंने घृतसागर आदिके स्थानपर घी दही आदिसे अभिषेक करना प्रारंभ कर दिया हो तथा उसी प्रचलित परम्पराका अनुसरण विमलसूरि, रविषैण और जटासिंहनन्दिने किया हो।

उपर्युक्त सभी आधारोंसे तीर्थंकरोंके अभिषेककी ही पुष्टि होती है। और क्षीरसागरसे लेकर भले ही आगेके घृतसागर आदिके जलोंसे अभिषैक किया गया हो, पर उन समुद्रोंका जल जल ही था, न कि दूध, घी आदि। दूसरे किसी भी शास्त्राधारसे समवशरणस्थ अरहन्तदेवके अभिषेक करनेकी पुष्टि नहीं होती है। कहींपर भी कोई ऐसा उल्लेख देखनेमें नहीं आया है जिसमें कि दीक्षा लेनेके पश्चात् मोक्ष जाने तककी अवस्थामें किसी तीर्थंकरादिका पञ्चामृताभिषेककी तो बात ही क्या, जलसे भी अभिषेक करनेका वर्णन हो ?

पं० आशाधरने मध्याह्नपूजनके समय जिस 'आश्रुत्य स्नपनं' इत्यादि श्लोकोंके द्वारा जिन-प्रतिमाके दही, दूध आदिसे अभिषेक करनेका विधान किया है, वही श्लोक उन्होंने प्रतिष्ठा-सारोद्धारमें भी दिया है, यह पहिले बता आये हैं। किन्तु प्रतिष्ठासारोद्धारमें अचलप्रतिमाकी प्रतिष्ठा-विधिको समाप्त करनेके पश्चात् **'अथ चलजिनेन्द्रप्रतिबिम्बप्रतिष्ठाचतुर्थदिन स्नपन क्रिया'** इस उत्थानिकाके साथ उक्त श्लोक दिया है। अर्थात् अब चलजिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन की जानेवाली स्नपन क्रिया कही जाती है। उनकी इस उत्थानिकासे सिद्ध है कि दही, दूध आदिसे अभिषेकका विधान चलप्रतिमाकी प्रतिष्ठाके समय था। उनके ही शब्दोंसे इतना स्पष्ट विधान होते हुए भी उन्होंने प्रतिदिन की जानेवाली माध्याह्निक पूजनके समय उक्त विधान कैसे कर दिया ? यह एक आश्चर्य-कारक विचारणीय प्रश्न है।

गहराईसे विचार करनेपर यही प्रतीत होता है कि नव-निर्मित जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठाके समय उसका दूध, दही आदिसे अभिषेक किया जाना उचित है, अर्थात् जिस धातु या पाषाणादिसे उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमाका निर्माण हुआ है, उसकी द्रव्य-शुद्धिके लिए पञ्चामृताभिषेक करना योग्य है। किन्तु जिस प्रतिमाकी पंच कल्याणकोंके साथ प्रतिष्ठा की जा चुकी है और जिसे अरहन्त और सिद्ध पदको प्राप्त हुई मान लिया गया है, उस प्रतिमाका प्रतिदिन जन्म मानकर सुमेरुगिरि और पांडुकशिलाकी कल्पना करते हुए जन्माभिषेक करना कहाँ तक उचित है ? इस सब कथनका फलितार्थ यही है कि प्रतिष्ठित प्रतिमाका पञ्चामृताभिषेक करना उचित नहीं है। यही तर्क जलसे अभिषेक नहीं करनेके लिए भी दिया जा सकता है। परन्तु उसका उत्तर यह है कि जन्माभिषेककी कल्पना करके जलसे भी अभिषेक करना अनुचित है। किन्तु वायुसे उड़कर प्रतिमापर लगे हुए रजकणोंके प्रक्षालनार्थ जलसे अभिषेक करना उचित है।

जीव-हिंसाकी दृष्टिसे दूध, आदिसे अभिषेक करना उचित नहीं है। क्योंकि श्रावकाचारोंमें बतायी गयी विधिसे शुद्ध दूध, दही और घीका मिलना सर्वत्र सुलभ नहीं है और अमर्यादित दूध, दही आदिमें सम्मूर्छन असंख्य त्रसजीव उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे अभिषेकके पश्चात् यह सब जहाँ फेंका जाता है, वहाँपर भी असंख्य त्रसजीव पैदा होते और मरते हैं। तीसरे असावधानी-वश यदि मूर्त्तिके हस्त-पाद आदिकी सन्धियोंमें कहीं दूध, दही आदि लगा रह जाता है, तो वहाँपर असंख्य चींटी आदि चढ़ी, चिपटी और मरी हुई देखी गयी हैं। इस भारी त्रस-हिंसासे बचनेके लिए दही, दूध आदिसे अभिषेकका नहीं करना श्रेयस्कर है।

आचमन, सकलीकरण और हवन

सोमदेवसूरिने और परवर्ती अनेक श्रावकाचार रचयिताओंने पूजन, मंत्र, जाप आदिके पूर्व आचमन आदिका विधान किया है, अतः उनपर विचार किया जाता है—

हाथकी चुल्लूमें पानी लेकर कुल्ला करनेको आचमन कहते हैं। हिन्दू-पूजा-पद्धतिमें आचमन करके ही पूजन करनेका विधान है। सोमदेवने इसका समर्थन करते हुए यहाँ तक लिखा है कि बिना आचमन किये घरमें भी प्रवेश नहीं करना चाहिए। (भाग १, पृ० १७२, ४३७) इसी प्रकार मंत्रादिके जापको प्रारम्भ करनेके पूर्व वैदिक-परम्परामें प्रचलित सकलीकरणका विधान भी सोमदेवने किया है। (भाग १, १९२, श्लोक ५७४) परन्तु उसकी कोई विधि नहीं बतलायी है। अमितगतिने अपने श्रावकाचारमें उसकी विधि बतलायी है, जो इस प्रकार है—

मंत्रका जप प्रारम्भ करनेके पूर्व किसी पात्रमें शुद्धजलको रख लेवे। तत्पश्चात् 'ओं णमो अरहंताणं ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' यह मंत्र बोलकर दोनों अंगूठोंको जलमें डुबोकर शुद्ध करे। पुनः 'ओं णमो सिद्धाणं ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः' बोलकर दोनों तर्जनी अंगुलियोंको शुद्ध करे। पुनः 'ओं णमो आयरियाणं ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः' बोलकर दोनों मध्यमा अंगुलियोंको शुद्ध करे। पुनः 'ओं णमो उवज्झायाणं ह्रौं अनामिकाभ्यां नमः' बोलकर दोनों अनामिका अंगुलियोंको शुद्ध करे। पुनः 'ओं णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः कनिष्ठिकाभ्यां नमः' बोलकर दोनों कनिष्ठिका अंगुलियोंको शुद्ध करे। इस प्रकार तीन बार पाँचों अंगुलियोंपर मंत्र विन्यासकर उन्हें शुद्ध करे। तत्पश्चात् 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' यह मंत्र बोलकर दोनों हथेलियोंकी दोनों ओरसे शुद्धि करे। पुनः 'ओं णमो अरहंताणं ह्रां मम शीर्षं रक्ष रक्ष स्वाहा' यह मंत्र बोलकर मस्तकपर क्षेपण करे। पुनः 'ओं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वदनं रक्ष रक्ष स्वाहा' बोलकर मुखपर पुष्प क्षेपण करे। पुनः 'ओं णमो आयरियाणं ह्रूं मम हृदयं रक्ष रक्ष स्वाहा' बोलकर हृदयपर पुष्प क्षेपण करे। पुनः 'ओं णमो उवज्झायाणं ह्रौं मम नाभिं रक्ष रक्ष स्वाहा' बोलकर नाभिपर पुष्प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेपण करे। पुनः ओं णमो लोए सव्वसाहूणं ह्लः मम पादौ रक्ष रक्ष स्वाहा' बोलकर दोनों पैरोंपर पुष्प क्षेपण करे। (भाग १, पृ० ४१२-४१३)

सोमदेवने जिस सकलीकरणका विधान एक श्लोक-द्वारा सूचित किया है, उसका स्पष्टीकरण अमितगतिने उक्त मन्त्रों द्वारा सर्वाङ्ग शुद्धिके रूपमें किया है। उक्त सकलीकरणके मंत्रोंमें प्रयुक्त 'ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लौं ह्लः' ये बीजाक्षर वैदिक सम्प्रदायके मंत्रोंमें भी पाये जाते हैं। जैन सम्प्रदायमें इन पाँचोंके साथ नमस्कार मंत्रका एक एक पद जोड़कर जैन संस्करण कर दिया गया है।

अमितगतिने नियत परिमाणमें किये गये मंत्र-जापके दशमांश रूप हवनका भी विधान किया है। (भाग १, पृ० ४१०, श्लोक ३९ तथा नीचेका गद्यांश) अमितगतिसे पूर्वके किसी श्रावकाचार-में इस दशांश होम करनेका विधान नहीं है। जिनसेनने इतने क्रिया कांड और उनके मंत्रोंको लिखते हुए भी दशमांश होम करनेका कोई निर्देश नहीं किया है।

देवसेनने प्राकृत भावसंग्रहमें पूजनके पूर्व आचमन और सकलीकरणका विधान किया है। (भाग ३, पृ० ४४७, गाथा ७८ और ८५) पूजनके बाद मंत्र-जापका उल्लेख करते हुए भी होम करनेका कोई उल्लेख नहीं किया है।

वामदेवने भी संस्कृत भावसंग्रहमें देवसेनका अनुसरण करते और मंत्र जापका उल्लेख करते हुए भी होम करनेका कोई निर्देश नहीं किया है। (देखो—भाग ३, पृ० ४६७, श्लोक २८ और ३४)

उमास्वामीने अपने श्रावकाचारमें अपने चैत्यालयस्थ जिनबिम्बकी पूजाके प्रकरणमें 'पूजा-होम-जपादिका' उल्लेख मात्र किया है। यथा—

प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम्।
सर्वं विलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥ १०७ ॥

अर्थात्—ध्वजा-रहित प्रासाद (भवन) में किया गया, पूजा-होम और जपादि सर्व व्यर्थ जाता है। अतः जिन-भवनपर ध्वजारोहण करना चाहिए। (भाग ३, पृ० १६१)

इतने मात्र उल्लेखके उन्होंने होम-जपादिके विषयमें और कुछ भी नहीं कहा है।

पण्डित गोविन्दने अपने पुरुषार्थानुशासनमें सामायिक प्रतिमाके वर्णनमें जलस्नान और मंत्रस्नान करके सकलीकरणादि वेत्ता श्रावकको जिनपूजन करनेको निर्देशमात्र किया है। (भाग ३, पृ० ५२३, श्लोक ९६)

उक्त श्रावकाचारोंके सिवाय परवर्ती अन्य श्रावकाचारोंमें भी आचमन, सकलीकरण और होम करनेका कोई विधान नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सोमदेवने जिस आचमन और सकलीकरणादिका निर्देशमात्र किया था, उसे परवर्ती श्रावकाचार-रचयिताओंने उत्तरोत्तर पल्लवित किया है। ये सब विधि-विधान वैदिक सम्प्रदायसे लिये गये हैं, इसका स्पष्ट संकेत सोमदेवके उक्त प्रकरणमें दिये गये निम्नांकित श्लोकसे होता है। यथा—

एतद्विधिर्न धर्माय नाधर्माय तदक्रिया।
दर्भपुष्पाक्षतश्रोत्रवन्दनादिविधानवत् ॥ ४४१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः ।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः ॥ ४४२ ॥
सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥ ४४६ ॥

(उक्त श्लोकोंका अर्थ प्रस्तुत संग्रहके भाग १ के पृ० १७२-१७३ पर देखें)

उक्त श्लोकोंसे स्पष्ट है कि वे लोकमें प्रचलित वैदिक आचारको गृहस्थोंका लौकिक धर्म बताकर भी यह निर्देश कर रहे हैं कि ऐसी सभी लौकिक विधियाँ जैनियोंके प्रमाणरूप हैं, जिनके करनेसे न तो सम्यक्त्वकी हानि हो और न ही व्रतमें कोई दूषण ही लगे।

२१. पूजन-पद्धतिका क्रमिक विकास

स्नपनके बाद आचार्य जिनसेनने गृहस्थोंका दूसरा कर्तव्य पूजन कहा है। उसका निरूपण करनेके पूर्व यह देखना आवश्यक है कि प्रस्तुत संग्रहके श्रावकाचारोंमें कहाँ किसने किस प्रकारसे इसपर प्रकाश डाला है।

१. प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहमेंसे सर्व प्रथम स्वामी समन्तभद्रने चौथे शिक्षाव्रतके भीतर जिन-पूजन करनेका विधान किया है। पर वह जिन-पूजन किस प्रकारसे करना चाहिए, इसका उन्होंने कोई वर्णन नहीं किया है। (देखो—भा० १ पृ० १४ श्लोक ११९)

२. स्वामी कार्त्तिकेयने प्रोषधोपवासके दूसरे दिन **'पुज्जणविहिं च किच्चा'** कह कर पूजन करनेका निर्देश मात्र किया है। (देखो—भा० १ पृ० २६ गा० ७५)

३. जिनसेनने भरतचक्री द्वारा ब्राह्मण-सृष्टि करनेके बाद इज्या (पूजा) के चार भेदोंका विस्तृत वर्णन कराया है, परन्तु पूजनकी विधि क्या है, इसपर कोई प्रकाश नहीं डाला है। (देखो—भा० १ पृ० ३०-३१ श्लोक २६-३३)

४. अमृतचन्द्रने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें प्रभावना अंगका वर्णन करते हुए **'दान-तपो-जिनपूजा-विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः'** कहकर जिनपूजाका नामोल्लेख मात्र किया है। (देखो—भा० १ पृ० १०१ श्लोक ३०)। तथा उपवासके दूसरे दिन **'निर्वर्तयेद् यथोक्तां जिनपूजां प्रासुकैर्द्रव्यैः'** कह कर प्रासुक द्रव्योंसे पूजन करनेका विधान मात्र किया है। पूजनकी कोई विधि नहीं बतलायी है। (देखो—भा० १ पृ० ११५ श्लोक १२५)

५. सोमदेवने अपने उपासकाध्ययनमें पूजनके भेद और उसकी विधिका विस्तृत वर्णन किया है, जिसे आगे बताया गया है। (देखो—भा० १ पृ० १७१-१८५)

६. चामुण्डरायने अपने चारित्रसारमें अतिथिकी नवधा भक्तिमें **'अर्चन'** का नाम निर्देश किया है। तथा इज्याके जिनसेनके समान ही नित्यमह, चतुर्मुखमह, कल्पवृक्षमह, आष्टाह्निकमह इन चारमें ऐन्द्रध्वजमहको मिलाकर पाँच भेदोंका वर्णन किया है। परन्तु कौन सी पूजा किस विधिसे करनी चाहिए, इसका कोई खुलासा नहीं किया है। हाँ, जिनसेनके समान अपने घरसे जल-गन्धाक्षतादि ले जाकर जिन-पूजन करनेको नित्यमह कहा है और उसीके अन्तर्गत बलि और स्नपनका भी विधान किया है। (देखो—भा० १ पृ० २५८)

७. अमितगतिने अपने श्रावकाचारके बारहवें परिच्छेदमें पूजनके दो भेद किये हैं—द्रव्यपूजा और भावपूजा। उन्होंने वचन और कायके संकोच करनेको द्रव्यपूजा और मनके संकोच करनेको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् जिन-भक्तिमें मनके लगानेको भावपूजा कहा है। अथवा गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करनेको द्रव्य-पूजा और जिनदेवके गुण.के चिन्तन करनेको भावपूजा कहा है । (देखो—भा० १ पृ० ३७३ श्लोक १२-१४)

८. वसुनन्दिने अपने श्रावकाचारमें पूजनके ६ भेद बतलाये हैं—१. नामपूजा, २. स्थापना-पूजा, ३. द्रव्यपूजा, ४. क्षेत्रपूजा, ५. कालपूजा और ६. भावपूजा । अर्हन्त देवादिके नामोंका उच्चारण कर पुष्पक्षेपण करना नामपूजा है । तदाकार और अतदाकार-पूजनको स्थापनापूजा कहते हैं । इन्होंने तदाकारपूजनके अन्तर्गत प्रतिमा-प्रतिष्ठाका विस्तारसे वर्णन कर इस कालमें अतदाकार पूजनका निषेध किया है । जल-गन्धाक्षतादि अष्टद्रव्योंसे साक्षात् जिनदेवकी या उनकी मूर्त्तिकी पूजा करनेको द्रव्यपूजा कहा है। तीर्थंकरोंके जन्म, निष्क्रमण आदि कल्याणकोंके स्थानोंपर, तथा निर्वाण भूमियोंमें पूजन करनेको क्षेत्रपूजा कहा है । तीर्थंकरोंके गर्भादि पंच कल्याणकोंके दिन पूजन करनेको कालपूजा कहा है और जिनदेवके अनन्तचतुष्टय आदि गुणोंके कीर्तन करनेको भावपूजा कहा है । इसी भावपूजाके अन्तर्गत पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान करने-का भी विधान किया है । (देखो—भा० १ पृ० ४६४-४७४ गत गाथाएँ)

९. सावयधम्म दोहाकारने जल-गंधाक्षतादि अष्टद्रव्योंके द्वारा जिनपूजन करनेका विधान किया है । (देखो—भा० १ पृ० ४९९-५०० गत दोहा)

१०. पं० आशाधरने सागारधर्मामृतमें महापुराणके अनुसार नित्यमह आदि ४ भेदोंका ही निरूपण किया है । किन्तु तदाकार और अतदाकार पूजनके विषयमें कोई निर्देश नहीं किया है । इन्होंने 'इज्यायै वाटिकाद्यपि न दुष्यति' (भा० २, पृ० १३ श्लोक ४०) पूजनार्थ पुष्पादिकी प्राप्तिके लिए बगीची आदि लगानेका भी विधान किया है । तथा अष्टद्रव्योंसे पूजन करनेका फल बताकर प्रकारान्तरसे उनके द्वारा पूजन करनेका निर्देश किया है ।

११. पं० मेधावीने अपने धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें आह्वानन, स्थापन, सन्निधीकरण और अष्टद्रव्यसे पूजनके पश्चात् 'संहितोक्त मंत्रों' से विसर्जन करनेका स्पष्ट विधान किया है । (देखो—भा० २ पृ० १५६ श्लोक ५६-५७)

पूजा करनेवाला किस प्रकारके जलसे स्नान करे, इसका भी पं० मेधावीने विस्तारसे वर्णन किया है । (देखो—भा० २ पृ० १५६ श्लोक ५१-५५)

इन्होंने सोमदेवके समान ही दातुन करके पूजन करनेका विधान किया है । (देखो—भा० २ पृ० १५६, श्लोक ५०)

पं० मेधावीने पूजनके वसुनन्दिके समान सचित्त, अचित्त और मिश्र ये तीन भेद किये हैं । तथा उन्हींके समान नाम, स्थापनादि छह भेद करके उनका विशद वर्णन किया है । (देखो—भा० २ पृ० १५९ श्लोक ८५-१००)

१२. आचार्य सकलकीर्त्तिने अपने प्रश्नोत्तर श्रावकाचारके बीसवें परिच्छेदमें जिनबिम्ब और जिन-मन्दिर-प्रतिष्ठाकी महिमा बताकर अष्टद्रव्योंसे पूजन करनेके फलका विस्तृत वर्णन किया है । किन्तु पूजनके भेदोंका और उसकी विधिका कोई वर्णन नहीं किया है । (देखो—भा० २, पृ० ३७७-३७८ गत श्लोक)

१३. गुणभूषणने अपने श्रावकाचारमें नाम, स्थापनादि छह प्रकारकी पूजाओंका नाम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देश और स्वरूप-वर्णन कर जलादि अष्टद्रव्योंसे द्रव्यपूजनका, मंत्र जाप एवं पिण्डस्थ-पदस्थ आदि ध्यानोंके द्वारा भावपूजनका वर्णन वसुनन्दिके समान ही किया है। (देखो—भा० २ पृ० ४५६-४५८ गत श्लोक)

१४. ब्रह्मनेमिदत्तने अपने धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचारमें जिनपूजनको अष्टद्रव्योंसे करनेका विधान और फलका विस्तृत वर्णन करते हुए भी उसके भेदोंका तथा विधिका कोई वर्णन नहीं किया है। (देखो—भा० २ पृ० ४९२-४९३)

१५. पं० राजमल्लजीने अपनी लाटीसंहितामें पूजनके आह्वान, प्रतिष्ठापन, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन रूप पंच उपचारोंका नाम निर्देश करके जलादि अष्टद्रव्योंसे पूजनका विधान तो किया है, परन्तु उसकी विशेष विधिका कोई वर्णन नहीं किया है। इसी प्रकार त्रिकाल पूजन-का निर्देश करते हुए भी अर्धरात्रिमें पूजन करनेका स्पष्ट शब्दोंमें निषेध किया है। (देखो—भा० ३, पृ० १३१-१३३ गत श्लोक)

१६. उमास्वामीने अपने श्रावकाचारमें ग्यारह अंगुलसे बड़े जिन विम्बको अपने घरके चैत्यालयमें स्थापन करनेका निषेध तथा विभिन्न प्रमाणवाले जिन-बिम्बके शुभाशुभ फलोंका विस्तृत वर्णन कर आह्वानादि पंचोपचारी पूजनका तथा स्नान, विलेपनादि इक्कीस प्रकारके पूजनका वर्णन किया है। यह इक्कीस प्रकारका पूजन अन्य श्रावकाचारोंमें दृष्टिगोचर नहीं होता है। हाँ, वैदिकी पूजा-पद्धतिमें सोलह उपचार वाले पूजनका विधान पाया जाता है, जिसे आगे दिखाया गया है। इन्होंने अष्टद्रव्योंसे पूजन करनेके फलका भी विस्तृत वर्णन किया है और अन्तमें नामादि चार निक्षेपोंसे जिनेन्द्रदेवका विन्यास कर पूजन करनेका विधान किया है। (देखो—भा० ३ पृ० १६०-१६७ गत श्लोक)

१७. पूज्यपादकृत श्रावकाचारमें नामादि चार निक्षेपोंसे और यंत्र-मंत्र क्रमसे जिनाकृतिकी स्थापना करके जिनपूजनके करनेका विधान मात्र किया है। (देखो—भा० ३ पृ० १९८ श्लोक ७८)

१८. **व्रतसार श्रावकाचार**—यह अज्ञात व्यक्ति-रचित केवल २२ श्लोक प्रमाण है और इसके १५ वें श्लोकमें प्रतिमा पूजनके साथ त्रिकाल वन्दना करनेका विधान मात्र किया गया है। (देखो—भा० ३ पृ० २०५)

१९. श्री अभ्रदेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावकाचारमें अष्टद्रव्योंसे जिनदेव, श्रुत और गुरुके पूजनका विधान करके भावपूर्वक जिन-स्नपन करनेका विधान मात्र किया है। (देखो—भा० ३ पृ० २२६ श्लोक १८०। पृ० २२८ श्लोक १९८)

२०. पद्मनन्दिने अपने श्रावकाचारसारोद्धारमें प्रोषधोपवासके दूसरे दिन जल-गन्धाक्षतादिसे जिन-पूजा करनेका विधान मात्र किया है (देखो—भा० ३ पृ० ३६२ श्लोक ३१३) इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी पूजाके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा है।

२१. जिनदेवने अपने उपासकाध्ययनमें दानका वर्णन करनेके पश्चात् पूजनका विधान किया है कि गृहस्थ चाँदी, सुवर्ण, स्फटिक आदिकी जिन-प्रतिमा निर्माण कराकर और उसकी प्रतिष्ठा कराके पूजा करे। पूजनके पूर्व दातुन करके मुख-शुद्ध कर, गालित जलसे स्नान कर देव-विसर्जन करने तक मौन धारण कर पूजन आरम्भ करे। अपनेमें इन्द्रका संकल्प कर आभूषणोंसे भूषित होकर, स्थापना मंत्रोंसे जिनदेवकी स्थापना करे। पुनः दिक्पालोंका आवाहन कर, क्षेत्रपालके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ यक्ष-यक्षीकी स्थापना करे। पुनः मंत्र बीजाक्षरोंसे सकलीकरण करके अपनेको शुद्धकर अष्ट-द्रव्योंसे जिनपूजा प्रारम्भ करे। तत्पश्चात् पूर्व-आहूत देवोंको पूजकर उनका विसर्जन करे। (देखो भा० ३ पृ० ३९५-३९६ श्लोक ३४३-३५६)

परिशिष्टमें दिये गये श्रावक-धर्मका वर्णन करनेवाले अंशोंमेंसे आचार्य कुन्दकुन्दके चारित्र-पाहुडमें और उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रके सातवें अध्यायमें, पूजनका कोई वर्णन नहीं है। शिवकोटि-की रत्नमालामें केवल इतना वर्णन है कि नन्दीश्वर पर्वके दिनोंमें बलि-पुष्प संयुक्त शान्तिभक्ति करनी चाहिए (देखो—भा० ३ पृ० ४१४ श्लोक ४९)

आचार्य रविषेणके पद्मचरितगत श्रावकधर्मके वर्णनमें भी जिन-पूजनका कोई विधान नहीं है। जटासिंहनन्दिके वराङ्गचरितगत श्रावकाचारमें केवल इतना उल्लेख है कि दुःख दूर करनेके लिए व्रत, शील, तप, दान, संयम और अर्हंत्पूजन करे। (देखो--भा० ३ पृ० श्लोक ४)

आचार्य जिनसेन-रचित हरिवंशपुराण-गत श्रावकधर्मके वर्णनमें भी जिनपूजनका कोई वर्णन नहीं है। पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका गत श्रावकधर्मके वर्णनमें श्रावकके षट् कर्मोंमें देवपूजाका नामोल्लेख मात्र है, उसकी विधि आदिका कोई वर्णन नहीं है (देखो भा० ३ पृ० ४२७ श्लोक ७)

पद्मनन्दि-रचित देशव्रतोद्योतनके सातवें श्लोकमें देवाराधन-पूजनका उल्लेख है। श्लोक २० से २३ तक जिन-बिम्ब और जिनालय बनवाकर स्नपनके साथ जलादि द्रव्योंसे पूजन करके पुण्योपार्जनका विधान किया गया है। (देखो—भा० ३ पृ० ४३८)

देवसेन-रचित प्राकृत भावसंग्रहमें पञ्चामृताभिषेक पूर्वक अष्टद्रव्योंमें पूजन करनेका विस्तृत वर्णन है। अभिषेकके अन्तर्गत इन्द्र, यम, वरुणादि देवोंके आवाहनका विधान किया गया है। तथा सिद्धचक्रयंत्रादिके उद्धार और पूजनका भी वर्णन है। (देखो—भा० ३ पृ० ४४७-४५२ गत गाथाएँ)

वामदेव-रचित संस्कृत भावसंग्रहमें भी सामायिक शिक्षाव्रतके अन्तर्गत जिनाभिषेक और अष्टद्रव्यसे पूजनका वर्णन है। देखो—भा० ३ पृ० ४६६-४६७ गत श्लोक)

आचार्य कुन्दकुन्द-रचित माने जानेवाले रयणसारमें 'श्रावकोंका दान-पूजन करना मुख्य कर्त्तव्य है, ऐसा वर्णन होनेपर भी, तथा पूजनका फल देव-पूज्य पद प्राप्त करनेका उल्लेख होनेपर भी पूजन-विधिका कोई वर्णन नहीं है। (देखो—भाग ३ पृष्ठ ४८० गाथा १०, १३)

पं० गोविन्द-विरचित पुरुषार्थानुशासनमें सामायिक प्रतिमाके अन्तर्गत नित्य अर्हत्पूजनका जलादि शुद्ध द्रव्योंसे विधान करके पूजा-विधिको 'जिनेन्द्र संहिताओं' से जाननेकी सूचना की गई है। (देखो—भाग ३ पृष्ठ ५२२-५२३ श्लोक ८६, ९७)

जैन परम्परामें जल, गन्ध, अक्षत आदि आठ द्रव्योंसे पूजनकी परिपाटी रही है। यह बात ऊपर दिये गये विवरणसे प्रकट होती है, परन्तु उमास्वामी श्रावकाचारमें जो २१ प्रकारके उपचार वाले पूजनका विधान किया है, उसपर स्पष्ट रूपसे वैदिकी पूजा-पद्धतिका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है यह आगेके विवरणसे पाठक स्वयं जान लेंगे।

२२. पूजनकी विधि

देवपूजनके विषयमें कुछ और स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है, क्योंकि सर्वसाधारणजन इसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिदिन करते हुए भी उसके वास्तविक रहस्यसे अनभिज्ञ हैं, यही कारण है कि वे यद्वा-तद्वा रूपसे करते हुए सर्वत्र देखे जाते हैं।

यद्यपि इज्याओंका विस्तृत वर्णन सर्वप्रथम आचार्य जिनसेनने किया है, तथापि उन्होंने उसकी कोई व्यवस्थित प्ररूपणा नहीं की है। जहाँतक मेरा अध्ययन है, पूजनका व्यवस्थित एवं विस्तृत निरूपण सर्वप्रथम आचार्य सोमदेवने ही किया है।

पूजनका उपक्रम

देवपूजा करनेके लिए उद्यत व्यक्ति सर्वप्रथम अन्तःशुद्धि और बहिःशुद्धिको करे। चित्तकी चंचलता, मनकी कुटिलता या हृदयकी अपवित्रता दूर करनेको अन्तःशुद्धि कहते हैं। दन्तधावन आदि करके निर्मल एवं प्रासुक जलसे स्नानकर धुले स्वच्छ शुद्ध वस्त्र-धारण करनेको बहिःशुद्धि कहते हैं।[1]

पूजनका अर्थ और भेद

जिनेन्द्रदेव, गुरु, शास्त्र, रत्नत्रय धर्म आदिकी आराधना, उपासना या अर्चा करनेको पूजन कहते हैं। आचार्य वसुनन्दिने पूजनके छह भेद गिनाकर उसका विस्तृत विवेचन किया है। (देखो भाग १ पृष्ठ ४६४–४७६, गाथा ३८१ से ४९३ तक) छह भेदोंमें एक स्थापना पूजा भी है। साक्षात् जिनेन्द्रदेव या आचार्यादि गुरुजनोंके अभावमें उनकी स्थापना करके जो पूजा की जाती है उसे स्थापना पूजा कहते हैं। यह स्थापना दो प्रकारसे की जाती है, तदाकार रूपसे और अतदाकार रूपसे। जिनेन्द्रका जैसा शान्त वीतराग स्वरूप परमागममें बताया गया है, तदनुसार पाषाण, धातु आदिकी मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठा-विधिसे उसमें अर्हन्तदेवकी कल्पना करनेको तदाकार स्थापना कहते हैं। इस प्रकारसे स्थापित मूर्तिको लक्ष्य करके, या केन्द्र-बिन्दु बनाकर जो पूजा की जाती है, उसे तदाकार स्थापना पूजन कहते हैं। इस प्रकारके पूजनके लिए आचार्य सोमदेवने प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना, सन्निधापन, पूजा और पूजा-फल इन छह कर्तव्योंका करना आवश्यक बताया है। यथा—

---

१. अन्तःशुद्धिं बहिःशुद्धिं विदध्याद्देवतार्चनम्।
आद्या दौश्चित्यनिर्मोक्षादन्या स्नानाद्यथाविधिः॥ ४२८॥
आप्लुतः संप्लुतः स्वान्तः शुचिवासां विभूषितः।
मौन-संयमसंपन्नः कुर्याद्देवार्चनाविधिम्॥ ४३८॥
दन्तधावनशुद्धास्यो मुखवासोचिताननः।
असंजातान्यसंसर्गः सुधीर्देवानुपाचरेत्॥ ४३९॥ (देखो—भाग १, पृष्ठ १७१–१७२)

कितने ही लोग बिना दातुन किये ही पूजन करते हैं, उन्हें 'दन्तधावनशुद्धास्यः' पदपर ध्यान देना चाहिए, जिसमें बताया गया है कि मुखको दातुनसे शुद्ध करके भगवान्‌की पूजा करे। इस सम्बन्धमें इसी श्लोकके द्वारा एक और पुरानी प्रथापर प्रकाश पड़ता है, वह यह कि मुखपर वस्त्र बाँधकर भगवान्‌की पूजा करे। पुराने लोग दुपट्टेसे मुखको बाँधकर पूजन करते रहे हैं, बुन्देलखंडके कई स्थानोंमें यह प्रथा आज भी प्रचलित है। मूर्तिपूजक श्वेताम्बरोंमें भी मुख बाँधकर ही पूजा की जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम् ।
पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम् ॥

(देखो—भाग १ पृष्ठ १८० श्लोक ४९५)

पूजनके समय जिनेन्द्र-प्रतिमाके अभिषेककी तैयारी करनेको **प्रस्तावना** कहते हैं। जिस स्थानपर अर्हद्बिम्बको स्थापितकर अभिषेक करना है, उस स्थानकी शुद्धि करके जलादिकसे भरे हुए कलशोंको चारों ओर कोणोंमें स्थापना करना **पुराकर्म** कहलाता है। इन कलशोंके मध्यवर्ती स्थानमें रखे हुए सिंहासनपर जिनबिम्बके स्थापन करनेको **स्थापना** कहते हैं। 'ये वही जिनेन्द्र हैं, यह वही सुमेरुगिरि है, यह वही सिंहासन है, यह वही साक्षात् क्षीरसागरका जल कलशोंमें भरा हुआ है, और मैं साक्षात् इन्द्र बनकर भगवान्का अभिषेक कर रहा हूँ', इस प्रकारकी कल्पना करके प्रतिमाके समीपस्थ होनेको **सन्निधापन** कहते हैं। अर्हंत्प्रतिमाकी आरती उतारना, जलादिकसे अभिषेक करना, अष्टद्रव्यसे अर्चा करना, स्तोत्र पढ़ना, चंवर ढोरना, गीत, नृत्य आदिसे भगवद्-भक्ति करना यह **पूजा** नामका पाँचवाँ कर्तव्य है। जिनेन्द्र-बिम्बके पास स्थित होकर इष्ट प्रार्थना करना कि हे देव, सदा तेरे चरणोंमें मेरी भक्ति बनी रहे, सर्व प्राणियोंपर मैत्री भाव रहे, शास्त्रों का अभ्यास हो, गुणी जनोंमें प्रमोद भाव हो, परोपकारमें मनोवृत्ति रहे, समाधिमरण हो, मेरे कर्मोंका क्षय और दुःखोंका अन्त हो, इत्यादि प्रकारसे इष्ट प्रार्थना करनेको पूजा फल कहा गया है। (देखो श्रावका० भाग १ पृष्ठ १८० आदि, श्लोक ४९६ आदि)

पूजाफलके रूपमें दिये गये निम्न श्लोकोंसे एक और भी तथ्यपर प्रकाश पड़ता है। वह श्लोक इस प्रकार है—

प्रातर्विधिस्तव पदाम्बुजपूजनेन मध्याह्नसन्निधिरयं मुनिमाननेन ।
सायंतनोऽपि समयो मम देव यायान्नित्यं त्वदाचरणकीर्तनकामितेन ॥

(भाग १ पृ० १८५ श्लोक ५२९)

अर्थात्—हे देव, मेरा प्रातःकाल तेरे चरणोंकी पूजासे, मध्याह्नकाल मुनिजनोंके सन्मानसे और सायंकाल तेरे आचरणके संकीर्तनसे नित्य व्यतीत हो।

पूजा-फलके रूपमें दिये गये इस श्लोकसे यह भी ध्वनि निकलती है कि प्रातःकाल अष्ट द्रव्योंसे पूजन करना पौर्वाह्णिक पूजा है, मध्याह्नकालमें मुनिजनोंको आहार आदि देना माध्याह्णिक पूजा है और सायंकालके समय भगवद्-गुण कीर्तन करना अपराह्णिक पूजा है। इस विधिसे त्रिकाल पूजा करना श्रावकका परम कर्तव्य है और सहज साध्य है।

उक्त विवेचनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आह्वानन, स्थापन और सन्निधीकरणका आर्ष-मार्ग यह था, पर उस मार्गके भूल जानेसे लोग आजकल यद्वा-तद्वा प्रवृत्ति करते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

तदाकार स्थापनाके अभावमें अतदाकार स्थापना की जाती है। अतदाकार स्थापनामें प्रस्तावना, पुराकर्म आदि नहीं किये जाते, क्योंकि जब प्रतिमा ही नहीं है, तो अभिषेक आदि किसका किया जायगा? अतः पवित्र पुष्प, पल्लव, फलक, भूर्जपत्र, सिकता, शिलातल, क्षिति, व्योम या हृदयमें अर्हन्तदेवकी अतदाकार स्थापना करनी चाहिए। वह अतदाकार स्थापना किस प्रकार करनी चाहिए, इसका वर्णन आचार्य सोमदेवने इस प्रकार किया है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्हन्नतनुमध्ये दक्षिणतो गणधरस्तथा पश्चात्।
श्रुतगीः साधुस्तदनु च पुरोऽपि दृगवगमवृत्तानि ॥ ४४८ ॥
भूर्जे, फलके सिचये शिलातले सैकते क्षितौ व्योम्नि।
हृदये चेति स्थाप्याः समयसमाचारवेदिभिर्नित्यम् ॥ ४४९ ॥

(देखो भाग १ पृ० १७३)

अर्थात्—भूर्जपत्र आदि पवित्र बाह्य वस्तुमें या हृदयके मध्य भागमें अर्हन्तको, उसके दक्षिण भागमें गणधरको, पश्चिम भागमें जिनवाणीको, उत्तरमें साधुको और पूर्वमें रत्नत्रयरूप धर्मको स्थापित करना चाहिए। यह रचना इस प्रकार होगी :—

	रत्नत्रय धर्म	
साधु	अर्हन्तदेव	गणधर
	जिनवाणी	

इसके पश्चात् भावात्मक अष्टद्रव्यके द्वारा क्रमशः देव, शास्त्र, गुरु और रत्नत्रय धर्मका पूजन करे। तथा दर्शनभक्ति, ज्ञानभक्ति, चारित्रभक्ति, पंचगुरुभक्ति, सिद्धभक्ति, आचार्यभक्ति और शान्तिभक्ति करे। आचार्य सोमदेवने इन भक्तियोंके स्वतंत्र पाठ दिये हैं। शान्तिभक्तिका पाठ इस प्रकार है :—

भवदुःखानलशान्तिर्धर्मामृतवर्षजनितजनशान्तिः।
शिवशर्मास्रवशान्तिः शान्तिकरः स्ताज्जिनः शान्तिः ॥ ४८१ ॥

(देखो—भाग १ पृष्ठ १७८)

यह पाठ हमें वर्तमानमें प्रचलित शान्तिपाठकी याद दिला रहा है।

उपर्युक्त तदाकार और अतदाकार पूजनके निरूपणका गंभीरतापूर्वक मनन करनेपर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वर्तमानमें दोनों प्रकारकी पूजन-पद्धतियोंकी खिचड़ी पक रही है, और लोग यथार्थ मार्गको बिलकुल भूल गये हैं।

निष्कर्ष—तदाकार पूजन द्रव्यात्मक और अतदाकार पूजन भावात्मक है। गृहस्थ सुविधानुसार दोनों कर सकता है। पर आचार्य वसुनन्दि और गुणभूषण इस हुंडावसर्पिणीकालमें अतदाकार स्थापनाका निषेध करते हैं। वे कहते हैं कि लोग यों ही कुलिंगियोंके यद्वा-तद्वा उपदेशसे मोहित हो रहे हैं, फिर यदि ऐसी दशामें अर्हन्मतानुयायी भी जिस किसी वस्तुमें अपने इष्ट देवकी स्थापना कर उसकी पूजा करने लगेंगे, तो साधारण लोगोंसे विवेकी लोगोंमें कोई भेद न रह सकेगा। तथा सर्वसाधारणमें नाना प्रकारके सन्देह भी उत्पन्न होंगे। (देखो—भाग १ पृष्ठ ४६४ गाथा ३८५)

यद्यपि आचार्य वसुनन्दिका अतदाकार स्थापना न करनेके विषयमें तर्क या दलील है तो युक्ति-संगत, पर हुंडावसर्पिणीका उल्लेख किस आधारपर कर दिया, यह कुछ समझमें नहीं आया ? खासकर उस दशामें, जब कि उनके पूर्ववर्त्ती आचार्य सोमदेव बहुत विस्तारके साथ उसका प्रतिपादन कर रहे हैं। फिर एक बात और विचारणीय है कि क्या पंचम कालका ही नाम हुंडावसर्पिणी है, या प्रारंभके चार कालोंका नाम भी है। यदि उनका भी नाम है, तो क्या चतुर्थकालमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी अतदाकार स्थापना नहीं की जाती थी ? यह एक प्रश्न है, जिसपर कि विद्वानों द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है।

उमास्वामिश्रावकाचार, धर्मसंग्रह श्रावकाचार और लाटीसंहितामें पूजनके पाँच उपचार बतलाये हैं—आवाहन, स्थापन, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन। इन तीनों ही श्रावकाचारोंमें स्थापनाके तदाकार और अतदाकार भेद न करके सामान्यरूपसे पूजनके उक्त पाँच प्रकार बतलाये हैं। फिर भी जब सोमदेव-प्ररूपित उक्त छह प्रकारोंको सामने रखकर इन पाँच प्रकारोंपर गम्भीरतासे विचार करते हैं, तब सहजमें ही यह निष्कर्ष निकलता है कि ये पाँचों उपचार अतदाकार स्थापना वाले पूजनके हैं, क्योंकि अतदाकार या असद्भावस्थापनामें जिनेन्द्रके आकारसे रहित ऐसे अक्षत-पुष्पादिमें जो स्थापना की जाती है, उसे अतदाकार या असद्भाव स्थापना कहते हैं। अक्षत-पुष्पादिमें जिनेन्द्रदेवका संकल्प करके 'हे जिनेन्द्र, अत्र अवतर, अवतर' उच्चारण करके आह्वानन करना, 'अत्र तिष्ठ तिष्ठ' बोलकर स्थापन करना और 'अत्र मम सन्निहितो भव' कहकर सन्निधीकरण करना आवश्यक है। तदनन्तर जलादि द्रव्योंसे पूजन करना चौथा उपचार है। पुनः जिन अक्षत-पुष्पादिमें जिनेन्द्रदेवकी संकल्पपूर्वक स्थापना की गई है उन अक्षत-पुष्पादिका अविनय न हो, अतः संकल्पसे ही विसर्जन करना भी आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार अतदाकार स्थापनामें यह पञ्च उपचार सुघटित एवं सुसंगत हो जाते हैं इस कथनकी पुष्टि प्रतिष्ठा दीपकके निम्न-लिखित श्लोकोंसे होती है—

साकारा च निराकारा स्थापना द्विविधा मता।
अक्षतादिनिराकारा साकारा प्रतिमादिषु॥ १॥
आह्वानं प्रतिष्ठानं सन्निधीकरणं तथा।
पूजा विसर्जनं चेति निराकारे भवेदिति॥ २॥
साकारे जिनबिम्बे स्यादेक एवोपचारकः।
स चाष्टविध एवोक्तं जल-गन्धाक्षतादिभिः॥ ३॥

अर्थ—स्थापना दो प्रकारकी मानी गयी है—साकारस्थापना और निराकारस्थापना। प्रतिमा आदिमें साकार स्थापना होती है और अक्षत-पुष्पादिमें निराकार स्थापना होती है। निराकार स्थापनामें आह्वानन, स्थापन, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन ये पाँच उपचार होते हैं। किन्तु साकार स्थापनामें जल, गन्ध, अक्षत आदि अष्ट प्रकारके द्रव्योंसे पूजन करने रूप एक ही उपचार होता है।

इन सब प्रमाणोंके प्रकाशमें यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्तमानमें जो पूजन-पद्धति चल रही है, वह साकार और निराकार स्थापनाकी मिश्रित परिपाटी है। विवेकी जनोंको उक्त आगम-मार्गसे ही पूजन करना चाहिए।

अतएव निराकार पूजनके विसर्जनमें 'आहूता ये पुरा देवा' इत्यादि श्लोक न बोलकर 'सङ्कल्पित जिनेन्द्रान् विसर्जयामि' इतना मात्र बोलकर पुष्प-क्षेपण करके विसर्जन करना चाहिए।

'आहूता ये पुरा देवा' इत्यादि विसर्जन पाठ-गत श्लोक तो मूर्त्ति-प्रतिष्ठा और यज्ञादि करनेके समय आह्वानन किये गये इन्द्र, सोम, यम, वरुण आदि देवोंके विसर्जनार्थ है और उन्हींको लक्ष्य करके 'लब्धभागा यथाक्रमम्' पद बोला जाता है, जैसा कि आगे किये गये वर्णनसे पाठक जान सकेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२३. आवाहन और विसर्जन

सोमदेवने पूजनके पूर्व अभिषेकके लिए सिंहासन पर जिनबिम्बके विराजमान करनेको स्थापना कहा है और उसके पश्चात् लिखा है कि इस अभिषेक महोत्सवमें कुशल-क्षेम-दक्ष इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण वायु, कुवेर और ईश, तथा शेष चन्द्र आदि आठ प्रमुख ग्रह अपने-अपने परिवारके साथ आकर और अपनी-अपनी दिशामें स्थित होकर जिनाभिषेकके लिए उत्साही पुरुषोंके विघ्नोंको शान्त करें। (श्रावकाचार सं० भाग १ पृष्ठ १८२ श्लोक ५०४)

देवसेनने प्राकृत भावसंग्रहमें सिंहासनको ही सुमेरु मानकर उसपर जिनबिम्बको स्थापित करनेके बाद दिग्पालोंको आवाहन करके अपनी-अपनी दिशामें स्थापित कर और उन्हें यज्ञ भाग देकर तदनन्तर जिनाभिषेक करनेका विधान किया है। (श्रावकाचार सं० भाग ३ पृष्ठ ४४८ गाथा ८८-९२)

अभिषेकके पश्चात् जिनदेवका अष्ट द्रव्योंसे पूजन करके, तथा पञ्च परमेष्ठीका ध्यान करके पूर्व-आहूत दिग्पाल देवोंको विसर्जन करनेका विधान किया है। यथा—

झाणं झाऊण पुणो मज्झाणिलवंदणत्थ काऊण।
उवसंहरिय विसज्जउ जे पुव्वावाहिया देवा॥ (भाग ३ पृष्ठ ४५२ गाथा १३२)

अर्थात्—जिनदेवका ध्यान करके और माध्याह्निक वन्दन-कार्य करके पूजनका उपसंहार करते हुए पूर्व आहूत देवोंका विसर्जन करे।

वामदेवने संस्कृत भावसंग्रहमें भी उक्त-अर्थको इस प्रकार कहा है—

स्तुत्वा जिनं विसर्ज्यापि दिगीशादि मरुद्-गणान्।
अर्चिते मूलपीठेऽथ स्थापयेज्जिननायकम्॥ (भाग ३ पृष्ठ ४६८ श्लोक ४७)

अर्थात्—अभिषेकके बाद जिनदेवकी स्तुति करके और दिग्पालादि देवोंको विर्सजित करके जिनबिम्बको जहाँसे उठाया था, उसी मूलपीठ (सिंहासन) पर स्थापित करे।

उक्त उल्लेखोंसे यह बात स्पष्ट है कि अभिषेकके समय आहूत दिग्पालादि देवोंके ही विसर्जनका विधान किया गया है और उन्हींको लक्ष्य करके यह बोला जाता है—

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम्।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम्॥

अर्थात्—जिन दिग्पालादि देवोंका मैंने अभिषेकके पहिले आवाहन किया था, वे अपने यज्ञ-भागको लेकर यथा स्थान जावें।

यहाँ यह आशंका की जा सकती है कि जिनाभिषेकके समय इन दिग्पाल देवोंके आवाहनकी क्या आवश्यकता है? इसका समाधान मिलता है श्री रयधुरचित 'वड्ढमाणचरिउ' से। वहाँ बतलाया गया है कि भ० महावीरके जन्माभिषेकके समय सौधर्म इन्द्र सोम, यम, वरुण आदि दिग्पालोंको बुलाकर और पांडुक शिलाके सर्व ओर प्रदक्षिणा रूपसे खड़े कर कहता है—

णिय णिय दिस रक्खडु सावहाण, मा कोवि विसउ सुरु मज्झ ठाण।
(ब्यावर भवन प्रति, पत्र ३६ ए)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्—हे दिग्पालो, तुम लोग सावधान होकर अपनी-अपनी दिशाका संरक्षण करो और अभिषेक करनेके इस मध्यवर्ती स्थानमें किसी भी देवको प्रवेश मत करने दो।

यह व्यवस्था ठीक उसी प्रकारकी है, जैसीकी आज भी किसी महोत्सव या सभा आदिके अधिवेशनके समय कमाण्डर अपने सैनिकोंको, या स्वयंसेवकनायक अपने स्वयंसेवकोंको रंगमंच या सभा-मंडपके सर्व ओर नियुक्त करके उन्हें शान्ति बनाये रखने और किसीको भी रंगमंच या सभा-मंडपमें प्रविष्ट नहीं होने देनेके लिए देता है। जब उक्त कार्य सम्पन्न हो जाता है तो इन नियुक्त पुरुषोंको धन्यवादके साथ पारितोषिक देकर विसर्जित करता है।

तीर्थंकरोंके जन्माभिषेकके समयकी यह व्यवस्था आज भी लोग पञ्चामृताभिषेकके समय करते हैं। पर यह बताया जा चुका है कि नवीन मूर्त्तिकी प्रतिष्ठाके समय जन्मकल्याणकके दिन बनाये गये सुमेरु पर्वत पर ही यह सब किया जाना चाहिए। पञ्चकल्याणकोंसे प्रतिष्ठित मूर्त्तिका प्रतिदिन जन्मकल्याणककी कल्पना करके उक्त विधि-विधान करना उचित नहीं है, क्योंकि मुक्तिको प्राप्त तीर्थंकरोंका न आगमन ही होता है और न वापिस गमन ही। अतएव ऊपर उद्धृत प्रतिष्ठा दीपकके उल्लेखानुसार जिनबिम्बका केवल जलादि अष्टद्रव्योंसे पूजन ही करना शास्त्र-विहित मार्ग है। प्रतिमाके सम्मुख विद्यमान होते हुए न आह्वानन आदिकी आवश्यकता है और न विसर्जन की ही।

पूर्व कालमें चतुर्विंशति-तीर्थंकर-भक्ति, सिद्ध भक्ति आदिके बाद शान्ति भक्ति बोली जाती थी, आज उनका स्थान चौबीस तीर्थंकर पूजा और सिद्ध पूजाने तथा शान्ति भक्तिका स्थान वर्तमानमें बोले जानेवाले शान्ति पाठने ले लिया है, अतः पूजनके अन्तमें शान्ति पाठ तो अवश्य बोलना चाहिए। किन्तु विसर्जन-पाठ बोलना निरर्थक ही नहीं, प्रत्युत भ्रामक भी है, क्योंकि मुक्तात्माओंका न आगमन ही संभव है और न वापिस गमन ही।

हिन्दू-पूजा पद्धति या वैदिकी पूजा-पद्धतिमें यज्ञके समय आहूत देवोंके विसर्जनार्थ यही 'आहूता ये पुरा देवा' श्लोक वोला जाता है।

२४. वैदिकपूजा-पद्धति

वैदिकधर्ममें पूजाके सोलह उपचार बताये गये हैं—१. आवाहन, २. आसन, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमनीय, ६. स्नान, ७. वस्त्र, ८. यज्ञोपवीत, ९. अनुलेपन या गन्ध, १०. पुष्प, ११. धूप, १२. दीप, १३. नैवेद्य, १४. नमस्कार, १५. प्रदक्षिण और १६. विसर्जन और उद्वासन। विभिन्न ग्रन्थोंमें कुछ भेद भी पाया जाता है—किसीमें यज्ञोपवीतके पश्चात् भूषण और प्रदक्षिणा या नैवेद्यके बाद ताम्बूलका उल्लेख है, अतः कुछ ग्रन्थोंमें उपचारोंकी संख्या अठारह है, किसीमें आवाहन नहीं है, किन्तु आसनके बाद स्वागत और आचमनीयके बाद मधुपर्क है। किसीमें स्तोत्र और प्रणाम भी है। जो वस्त्र और आभूषण समर्पण करनेमें असमर्थ है, वह सोलहमेंसे केवल दश उपचारवाली पूजा करता है। जो इसे भी करनेमें असमर्थ है, वह केवल पुष्पोपचारी पूजा करता है[1]।

---

१. श्री पं० कैलाशचन्द्रजी लिखित उपासकाध्ययनकी प्रस्तावनासे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठित प्रतिमामें आवाहन और विसर्जन नहीं होता, केवल चौदह ही उपचार होते हैं। अथवा आवाहन और विसर्जनके स्थानमें मन्त्रोच्चारण-पूर्वक पुष्पाञ्जलि दी जाती है। नवीन प्रतिमामें सोलह उपचारवाली ही पूजा होती है[1]।

जैन पूजापद्धति

उक्त पूजापद्धतिको जैन परम्परामें किस प्रकारसे परिवर्धित करके अपनाया गया है, यह उमास्वामि-श्रावकाचारके श्लोक १३६ और १३७ में देखिये। यहाँ इक्कीस प्रकारकी बतलायी गयी है। यथा—१. स्नानपूजा, २. विलेपनपूज, ३. आभूषणपूजा, ४. पुष्पपूजा, ५. सुगन्धपूजा, ६. धूपपूजा, ७. प्रदीपपूजा, ८. फलपूजा, ९. तन्दुलपूजा, १०. पत्रपूजा, ११. पुंगीफलपूजा, १२. नैवेद्यपूजा, १३. जलपूजा, १४. वसनपूजा, १५. चमरपूजा, १६. छत्रपूजा, १७. वादित्रपूजा, १८. गीतपूजा, १९. नृत्यपूजा, २० स्वस्तिकपूजा और २१. कोषवृद्धिपूजा अर्थात् भण्डारमें द्रव्य देना।

पाठक स्वयं ही अनुभव करेंगे कि जैन परम्परामें प्रचलित अष्ट द्रव्योंमेंसे जो द्रव्य वैदिक-परम्पराकी पूजामें नहीं थे, उनको निकाल करके किस विधिसे युक्तिके साथ इक्कीस प्रकारके पूजनका विधान उमास्वामीने अपने श्रावकाचारमें किया है। (देखो—भाग ३, पृ० १६४, श्लोक १३५-१३७

इससे आगे चलकर उमास्वामीने पंचोपचारवाली पूजाका भी विधान किया है। वे पाँच उपचार ये हैं—१. आवाहन, २. संस्थापन, ३. सन्निधीकरण, ४. पूजन और ५. विसर्जन[2]। इस पंचोपचारी पूजनका विधान धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें पं० मेधावीने[3] तथा लाटीसंहितामें पं० राजमल्लजीने भी किया है[4]।

शान्तिमंत्र, शान्तिधारा, पुण्याहवाचन और हवन

यद्यपि जैनधर्म निवृत्ति-प्रधान है और उसमें पापरूप अशुभ और पुण्यरूप शुभ क्रियाओंकी निवृत्ति होने तथा आत्मस्वरूपमें अवस्थिति होनेपर ही मुक्तिकी प्राप्ति बतलायी गयी है। पर यह अवस्था वीतरागी साधुओंके ही संभव है; सरागी श्रावक तो उक्त लक्ष्यको सामने रखकर यथासंभव अशुभ क्रियाओंकी निवृत्तिके साथ शुभक्रियाओंमें प्रवृत्ति करता है। इसी दृष्टिसे आचार्योंने देव-पूजा आदि कर्तव्योंका विधान किया है। वर्तमानमें निष्काम वीतरागदेवके पूजनका स्थान सकाम देवपूजन लेता जा रहा है और जिनपूजनके पूर्व अभिषेकके समय शान्तिधारा बोलते हुए तथा पूजनके पश्चात् शान्तिपाठके स्थानपर या उसके पश्चात् अनेक प्रकारके छोटे-बड़े शान्तिमंत्र बोलनेका प्रचार बढ़ता जा रहा है। इन शान्तिमंत्रोंमें बोले जानेवाले पदों एवं वाक्योंपर बोलने-वालोंका ध्यान जाना चाहिए कि क्या हमारे वीतरागी जिनदेव कोई अस्त्र-शस्त्र लेकर बैठे हुए हैं

---

१. 'प्रतिष्ठितप्रतिमायामावाहन-विसर्जनयोरभावेन चतुर्दशोपचारैव पूजा। अथवा आवाहन-विसर्जनयोः स्थाने मन्त्रपुष्पाञ्जलिदानम्। नूतनप्रतिमायां तु षोडशोपचारैव पूजा। (संस्काररत्नमाला पृष्ठ २७)।

२. श्रा० सं० भाग ३, पृष्ठ १६५, श्लोक १४७–१४८।

३. श्रा० सं० भाग ३, पृष्ठ १५६, श्लोक ५६।

४. श्रा० सं० भाग ३, पृष्ठ १३१–१३२, श्लोक १७३–१७४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो कि हमारे द्वारा 'सर्वशत्रुं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द', बोलनेपर हमारे शत्रुओंका विनाश कर देंगे। फिर यह भी तो विचारणीय है कि हमारा शत्रु भी तो यही पद या वाक्य बोल सकता है! तब वैसी दशामें जिनदेव आपकी इष्ट प्रार्थनाको कार्यरूपसे परिणत करेंगे, या आपके शत्रुकी प्रार्थनापर ध्यान देंगे? वास्तविक बात यह है कि क्रियाकाण्डी भट्टारकोंने ब्राह्मणी शान्तिपाठ आदिकी नकल करके उक्त प्रकार पाठोंको जिनदेवोंके नामोंके साथ जैन रूप देनेका प्रयास किया है और सम्यक्त्वके स्थानपर मिथ्यात्वका प्रचार किया है। वास्तविक शान्तिपाठ तो 'क्षेमं सर्वप्रजानां' आदि श्लोकोंवाला ही है, जिसमें सर्व सौख्यप्रदायी जिनधर्मके प्रचारकी भावना की गई है और अन्तमें 'कुर्वन्तु जगतः शान्ति' वृषभाद्या जिनेश्वराः की निःस्वार्थ निष्काम भावना भायी गयी है।

जैन पद्धतिसे की जानेवाली विवाह-विधिके अन्तमें तथा मूर्ति प्रतिष्ठाके अन्तमें किया जानेवाला पुण्याह वाचन भी वैदिक पद्धतिके अनुकरण हैं और नियत परिणाममें किये जानेवाले मंत्र-जापोंके दशमांश प्रमाण हवन आदिका किया-कराया जाना भी अन्य सम्प्रदायका अन्धानुसरण है, फिर भले ही उसे जैनाचारमें किसीने भी सम्मिलित क्यों न किया हो?

जैनधर्मकी सारी भित्ति सम्यक्त्वरूप मूल नींवपर आश्रित है। सम्यक्त्वके दूसरे निःकांक्षित अंगके स्वरूपमें बतलाया गया है कि धर्म धारण करके उसके फलस्वरूप किसी भी लौकिक लाभ की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि कोई जैनी इस निःकांक्षित अंगका पालन नहीं करता है, प्रत्युत धर्मसाधन या अमुक मंत्रजापसे किसी लौकिक लाभकी कामना करता है, तो उसे मिथ्यात्वी जानना चाहिए।

२६. स्नपन, पूजन, स्तोत्र, जप, ध्यान और लय

सोमदेवने अपने उपासकाध्ययनमें सामायिक शिक्षाव्रतके अन्तर्गत देवपूजनका विधान किया है और देवपूजाके समय छह क्रियाओंके करनेका उल्लेखकर उनका विस्तृत वर्णन किया है। वे छह क्रियाएँ इस प्रकार हैं—

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं जपो ध्यानं श्रुतस्तवः।
षोढा क्रियोदिता सद्भिर्देवसेवासु गेहिनाम्॥

(भाग १, पृष्ठ २२९, श्लोक ८८०)

अर्थात्—सन्त पुरुषोंने गृहस्थोंके लिए देवोपासनाके समय स्नपन, पूजन, स्तोत्र, जप, ध्यान और श्रुतस्तव (शास्त्रभक्ति और स्वाध्याय) इन छह क्रियाओंका विधान किया है।

स्नपन नाम अभिषेकका है। इसका विचार 'जलाभिषेक या पञ्चामृताभिषेक' शीर्षकमें पहिले किया जा चुका है। स्नपन यतः पूजनका ही अंग है, अतः उसका फल भी पूजनके ही अन्तर्गत जानना चाहिए। हालांकि आचार्योंने एक-एक द्रव्यसे पूजन करनेका और जल-दुग्ध आदिके अभिषेक करनेका फल पृथक्-पृथक् कहा है। पर उन सबका अर्थ स्वर्ग-प्राप्तिरूप एक ही है।

श्रुतस्तव नाम सबहुमान जिनागमकी भक्ति करना और उसका स्वाध्याय करना श्रुतस्तव कहलाता है। स्नपन पूजन और श्रुतस्तवके सिवाय शेष जो तीन कर्तव्य और कहे हैं—जप, ध्यान और लय। इनका स्वरूप आगे कहा जा रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व साधारण लोग पूजा, जप आदिको ईश्वर-आराधनाके समान प्रकार समझकर उनके फलको भी एक-सा ही समझते हैं। कोई विचारक पूजाको श्रेष्ठ समझता है, तो कोई जप, ध्यान आदिको। पर शास्त्रीय दृष्टिसे जब हम इन पाँचोंके स्वरूपका विचार करते हैं तो हमें उनके स्वरूपमें ही नहीं, फलमें भी महान् अन्तर दृष्टिगोचर होता है। आचार्योंने इनके फलको उत्तरोत्तर कोटि-गुणित बतलाया है। जैसा कि इस अत्यन्त प्रसिद्ध श्लोकसे सिद्ध है—

पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्र-कोटिसमो जपः।
जप-कोटिसमं ध्यानं ध्यान-कोटिसमो लयः॥

अर्थात्—एक कोटिवार पूजा करनेका जो फल है, उतना फल एकवार स्तोत्र-पाठ करनेमें है। कोटि वार स्तोत्र पढ़नेसे जो फल होता है, उतना फल एक वार जप करनेमें होता है। इसी प्रकार कोटि जपके समान एक वारके ध्यानका फल और कोटि ध्यानके समान एक वारके लयका फल जानना चाहिए।

पाठकगण शायद उक्त फलको बांचकर चौंकेंगे और कहेंगे कि ध्यान और लयका फल तो उत्तरोत्तर कोटिगुणित हो सकता है, पर पूजा, स्तोत्र और जपका उत्तरोत्तर कोटि-गुणित फल कैसे सम्भव है? उनके समाधानार्थ यहाँ उनके स्वरूपपर कुछ प्रकाश डाला जाता है:

१. **पूजा**—पूज्य पुरुषोंके सम्मुख जानेपर अथवा उनके अभावमें उनकी प्रतिकृतियोंके सम्मुख जानेपर सेवा-भक्ति करना, सत्कार करना, उनकी प्रदक्षिणा करना, नमस्कार करना, उनके गुण-गान करना और घरसे लाई हुई भेंटको उन्हें समर्पण करना पूजा कहलाती है। वर्तमानमें विभिन्न सम्प्रदायोंके भीतर जो हम पूज्य पुरुषोंकी उपासना-आराधनाके विभिन्न प्रकारके रूप देखते हैं, वे सब पूजाके ही अन्तर्गत जानना चाहिए। जैनाचार्योंने पूजाके भेद-प्रभेदोंका बहुत ही उत्तम रीतिसे सांगोपांग वर्णन किया है। प्रकृतमें हमें स्थापना-पूजा और द्रव्य-पूजासे प्रयोजन है। क्योंकि भाव-पूजामें तो स्तोत्र, जप आदि सभीका समावेश हो जाता है। हमें यहाँ वर्तमानमें प्रचलित पद्धति-वाली पूजा ही विवक्षित है और जन-साधारण भी पूजा-अर्चासे स्थापना पूजा या द्रव्यपूजाका ही अर्थ ग्रहण करते हैं।

२. **स्तोत्र**—वचनोंके द्वारा गुणोंकी प्रशंसा करनेको स्तवन या स्तुति कहते हैं। जैसा अरहंत-देवके लिए कहना—तुम वीतराग विज्ञानसे भरपूर हो, मोहरूप अन्धकारके नाश करनेके लिए सूर्यके समान हो, आदि। इसी प्रकारकी अनेक स्तुतियोंके समुदायको स्तोत्र कहते हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, कनड़ी, तमिल आदि भाषाओंमें स्व या पर-निर्मित गद्य या पद्य रचनाके द्वारा पूज्य पुरुषोंकी प्रशंसामें जो वचन प्रकट किये जाते हैं, उन्हें स्तोत्र कहते हैं।

३. **जप**—देवता-वाचक या बीजाक्षररूप मंत्र आदिके अन्तर्जल्परूपसे वार-वार उच्चारण करनेको जप कहते हैं। परमेष्ठी-वाचक विभिन्न मंत्रोंका किसी नियत परिमाणमें स्मरण करना जप कहलाता है।

४. **ध्यान**—किसी ध्येय वस्तुका मन ही मन चिन्तन करना ध्यान कहलाता है। ध्यान शब्दका यह यौगिक अर्थ है। सर्व प्रकारके संकल्प-विकल्पोंका अभाव होना; चिन्ताका निरोध होना यह ध्यान शब्दका रूढ अर्थ है, जो वस्तुतः लय या समाधिके अर्थको प्रकट करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. **लय**—एकरूपता, तल्लीनता या साम्य अवस्थाका नाम लय है। साधक किसी ध्येय विशेषका चिन्तवन करता हुआ जब उसमें तन्मय हो जाता है, उसके भीतर सर्व प्रकारके संकल्प-विकल्पों और चिन्ताओंका अभाव हो जाता है और जब परम समाधिरूप निर्विकल्प दशा प्रकट होती है, तब उसे लय कहते हैं।

पूजा, स्तोत्र आदिके उक्त स्वरूपका सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करने और गम्भीरतासे विचारनेपर यह अनुभव हुए विना न रहेगा कि ऊपर जो इनका उत्तरोत्तर कोटि-गुणित फल बतलाया गया है, वह वस्तुतः ठीक ही है। इसका कारण यह है कि पूजामें बाह्य वस्तुओंका आलम्बन और पूजा करनेवाले व्यक्तिके हस्तादि अंगोंका संचालन प्रधान रहता है। और यह प्रत्येक शास्त्राभ्यासी जानता है कि बाहरी द्रव्य क्रियाओंसे भीतरी भावरूप क्रियाओंका महत्त्व बहुत अधिक होता है। असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच यदि अत्यधिक संक्लेश-युक्त होकर भी मोह कर्मका बन्ध करे, तो एक हजार सागरसे अधिकका नहीं कर सकेगा, जब कि संज्ञी पंचेन्द्रिय साधारण मनुष्यकी तो बात रहने दें, अत्यन्त मन्दकषायी और विशुद्ध परिणामवाला अप्रमत्तसंयत साधु भी अन्तःकोटाकोटी सागरोपमकी स्थितिवाले कर्मोंका बन्ध करेगा, जो कई करोड़ सागर-प्रमाण होता है। इन दोनोंके बन्धनेवाले कर्मोंकी स्थितिमें इतना महान् अन्तर केवल मनके सद्भाव और अभावके कारण ही होता है। प्रकृतमें इसके कहनेका अभिप्राय यह है कि किसी भी व्यक्ति-विशेषका भले ही वह देव जैसा प्रतिष्ठित और महान् क्यों न हो—स्वागत और सत्कारादि तो अन्यमनस्क होकर भी सम्भव है, पर उसके गुणोंका सुन्दर, सरल और मधुर शब्दोंमें वर्णन अनन्य-मनस्क या भक्ति-भरित हुए बिना सम्भव नहीं है।

यहाँ यह एक बात ध्यानमें रखना आवश्यक है कि दूसरेके द्वारा निर्मित पूजा-पाठ या स्तोत्र-उच्चारणका उक्त फल नहीं बतलाया गया है। किन्तु भक्त द्वारा स्वयं निर्मित पूजा, स्तोत्र पाठ आदिका यह फल बतलाया गया है। पुराणोंके कथानकोंसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। दो एक अपवादोंको छोड़कर किसी भी कथानकमें एकवार पूजा करनेका वैसा चमत्कारी फल दृष्टिगोचर नहीं होता, जैसा कि भक्तामर, कल्याण-मन्दिर, एकीभाव, विषापहार, स्वयम्भू स्तोत्र आदिके रचयिताओंको प्राप्त हुआ है। स्तोत्र-काव्योंकी रचना करते हुए भक्त-स्तोताके हृदयरूप मानसरोवरसे जो भक्ति-सरिता प्रवाहित होती है, वह अक्षत-पुष्पादिके गुण बखानकर उन्हें चढ़ानेवाले पूजकके सम्भव नहीं है। पूजनका ध्यान पूजनकी बाह्य सामग्रीकी स्वच्छता आदिपर ही रहता है, जबकि स्तुति करनेवाले भक्तका ध्यान एकमात्र स्तुत्य व्यक्तिके विशिष्ट गुणोंकी ओर ही रहता है। वह एकाग्रचित्त होकर अपने स्तुत्यके एक-एक गुणका वर्णन मनोहर शब्दोंके द्वारा व्यक्त करनेमें निमग्न रहता है। इस प्रकार पूजा और स्तोत्रका अन्तर स्पष्ट लक्षित हो जाता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि पूजा-पाठोंमें अष्टकके अनन्तर जो जयमाल पढ़ी जाती है, वह स्तोत्रका ही कुछ अंशोंमें रूपान्तर है।

स्तोत्र-पाठसे भी जपका माहात्म्य कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि स्तोत्र पाठमें तो बाहिरी इन्द्रियों और वचनोंका व्यापार बना रहता है, परन्तु जपमें उस सबको रोककर और परिमित क्षेत्रमें एक आसनसे अवस्थित होकर मौन-पूर्वक अन्तर्जल्पके साथ आरा-ध्यके नामका उसके गुण-वाचक मन्त्रोंका उच्चारण किया जाता है। अपने द्वारा उच्चारण किया हुआ शब्द स्वयं ही सुन सके और समीपस्थ व्यक्ति भी न सुन सके, जिसके उच्चारण करते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओंठ कुछ फड़कतेसे रहें, पर अक्षर बाहिर न निकलें, ऐसे भीतरी मन्द एवं अव्यक्त या अस्फुट उच्चारणको अन्तर्जल्प कहते हैं। व्यवहारमें देखा जाता है कि जो व्यक्ति सिद्धचक्रादिकी पूजा-पाठमें ६-६ घंटे लगातार खड़े रहते हैं, वे ही उसी सिद्धचक्र मन्त्रका जप करते हुए आध घंटेमें ही घबड़ा जाते हैं, आसन डांवाडोल हो जाता है, और शरीरसे पसीना झरने लगता है। इससे सिद्ध होता है कि पूजा-पाठ और स्तोत्रादिके उच्चारणसे भी अधिक इन्द्रिय-निग्रह जप करते समय करना पड़ता है और इसी इन्द्रिय-निग्रहके कारण जपका फल स्तोत्रसे कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है।

जपसे ध्यानका माहात्म्य कोटि-गुणित बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि जपमें कमसे कम अन्तर्जल्परूप वचन-व्यापार तो रहता है, परन्तु ध्यानमें तो वचन-व्यापारको भी सर्वथा रोक देना पड़ता है और ध्येय वस्तुके स्वरूप-चिन्तनके प्रति ध्याताको एकाग्र चित्त हो जाना पड़ता है। मनमें उठनेवाले संकल्प-विकल्पोंको रोककर चित्तका एकाग्र करना कितना कठिन है, यह ध्यानके विशिष्ट अभ्यासी जन ही जानते हैं। **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः'** की उक्तिके अनुसार मन ही मनुष्योंके बन्ध और मोक्षका प्रधान कारण माना गया है। मनपर काबू पाना अति कठिन कार्य है। यही कारण है कि ज़पसे ध्यानका माहात्म्य कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है।

ध्यानसे भी लयका माहात्म्य कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि ध्यानमें किसी एक ध्येयका चिन्तन तो चालू रहता है, और उसके कारण आत्म-परिस्पन्द होनेसे कर्मास्रव होता रहता है, पर लयमें तो सर्व-विकल्पातीत निर्विकल्प दशा प्रकट होती है, समताभाव जागृत होता है और आत्माके भीतर परम आह्लादज़नित एक अनिर्वचनीय अनुभूति होती है। इस अवस्थामें कर्मोंका आस्रव रुककर संवर होता है, इस कारण ध्यानसे लयका माहात्म्य कोटि-गुणित अल्प प्रतीत होता है। मैं तो कहूँगा संवर और निर्जराका प्रधान कारण होनेसे लयका माहात्म्य ध्यानकी अपेक्षा असंख्यात-गुणित है और यही कारण है कि परम समाधिरूप इस चिल्लय (चेतनमें लय) की दशामें प्रतिक्षण कर्मोंकी असंख्यातगुणी निर्जरा होती है।

यहाँ पाठक यह बात पूछ सकते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र आदिमें तो संवरका परम कारण ध्यान ही माना है, यह जप और लयकी बला कहाँसे आई ? उन पाठकोंको यह जान लेना चाहिए कि शुभ ध्यानके जो धर्म और शुक्लरूप दो भेद किये गये हैं, उनमेंसे धर्मध्यानके भी अध्यात्म दृष्टिसे पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, और रूपातीत ये चार भेद किये गये हैं। इसमेंसे आदिके दो भेदोंकी जप संज्ञा और अन्तिम दो भेदोंकी ध्यान संज्ञा महर्षियोंने दी है। तथा शुक्ल ध्यानको परम समाधिरूप 'लय' नामसे व्यवहृत किया गया है। ज्ञानार्णव आदि योग-विषयक शास्त्रोंमें पर-समय-वर्णित योगके अष्टाङ्गोंका वर्णन स्याद्वादके सुमधुर समन्वयके द्वारा इसी रूपमें किया गया है।

उपर्युक्त पूजा स्तोत्रादिका जहाँ फल उत्तरोत्तर अधिकाधिक है, वहाँ उनका समय उत्तरोत्तर हीन-हीन है। उनके उत्तरोत्तर समयकी अल्पता होनेपर भी फलकी महत्ताका कारण उन पाँचोंकी उत्तरोत्तर हृदय-तल-स्पर्शिता है। पूजा करनेवाले व्यक्तिके मन, वचन, कायकी क्रिया अधिक बहिर्मुखी एवं चंचल होती है। पूजा करनेवालेसे स्तुति करनेवालेके मन, वचन, कायकी क्रिया स्थिर और अन्तर्मुखी होती है। आगे जप, ध्यान और लयमें यह स्थिरता और अन्तर्मुखता

Gaṇesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि लयमें वे दोनों उस चरम सीमाको पहुँच जाती हैं, जो कि छद्मस्थ वीतरागके अधिकसे अधिक संभव है।

उपर्युक्त विवेचनसे यद्यपि पूजा, स्तोत्रादिकी उत्तरोत्तर महत्ताका स्पष्टीकरण भली भाँति हो जाता है, पर उसे और भी सरल रूपमें सर्वसाधारण लोगोंको समझानेके लिए यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है। जिस प्रकार शारीरिक सन्तापकी शांति और स्वच्छताकी प्राप्तिके लिए प्रतिदिन स्नान आवश्यक है, उसी प्रकार मानसिक सन्तापकी शांति और हृदयकी स्वच्छता या निर्मलताकी प्राप्तिके लिए प्रतिदिन पूजा-पाठ आदि भी आवश्यक जानना चाहिए। स्नान यद्यपि जलसे ही किया जाता है, तथापि उसके पाँच प्रकार हैं—१ कुएँसे किसी पात्र-द्वारा पानी निकाल कर, २ बालटी आदिमें भरे हुए पानीको लोटे आदिके द्वारा शरीर पर छोड़ कर, ३ नलके नीचे बैठ कर, ४ नदी, तालाब आदिमें तैरकर और ५ कुआँ, बावड़ी आदिके गहरे पानीमें डुबकी लगाकर। पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि कुएँसे पानी निकाल कर स्नान करनेमें श्रम अधिक है और शान्ति कम। पर इसकी अपेक्षा किसी बर्तनमें भरे हुए पानीसे लोटे द्वारा स्नान करनेमें शान्ति अधिक प्राप्त होगी और श्रम कम होगा। इस दूसरे प्रकारके स्नानसे भी तीसरे प्रकारके स्नानमें श्रम और भी कम है और शांति और भी अधिक। इसका कारण यह है कि लोटेसे पानी भरने और शरीर पर डालनेके मध्यमें अन्तर आ जानेसे शान्तिका बीच-बीचमें अभाव भी अनुभव होता था, पर नलसे अजस्र जलधारा शरीर पर पड़नेके कारण स्नान-जनित शान्तिका लगातार अनुभव होता है। इस तीसरे प्रकारके स्नानसे भी अधिक शान्तिका अनुभव चौथे प्रकारके स्नानसे प्राप्त होता है, इसका तैरकर स्नान करनेवाले सभी अनुभवियोंको पता है। पर तैरकर स्नान करनेमें भी शरीरका कुछ न कुछ भाग जलसे बाहिर रहनेके कारण स्नान-जनित शांतिका पूरा-पूरा अनुभव नहीं हो पाता। इस चतुर्थ प्रकारके स्नानसे भी अधिक आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति किसी गहरे जलके भीतर डुबकी लगानेमें मिलती है। गहरे पानीमें लगाई गई थोड़ी सी देरकी डुबकीसे मानों शरीरका सारा सन्ताप एकदम निकल जाता है, और डुबकी लगाने वालेका दिल आनन्दसे भर जाता है।

उक्त पाँचों प्रकारके स्नानोंमें जैसे शरीरका सन्ताप उत्तरोत्तर कम और शान्तिका लाभ उत्तरोत्तर अधिक होता जाता है, ठीक इसी प्रकारसे पूजा, स्तोत्र आदिके द्वारा भक्त या आराधकके मानसिक सन्ताप उत्तरोत्तर कम और आत्मिक शान्तिका लाभ उत्तरोत्तर अधिक होता है। स्नानके पाँचों प्रकारोंको पूजा-स्तोत्र आदि पाँचों प्रकारके क्रमशः दृष्टान्त समझना चाहिए।

जप, ध्यान और समाधि (लय) का इतना अधिक महत्त्व होते हुए भी ध्यानका और उसके भेदोंका वर्णन सर्वप्रथम किस श्रावकाचारमें पाया जाता है यह अन्वेषणीय है।

१. रत्नकरण्डकमें सामायिक शिक्षाव्रतके भीतर सामायिकके समय-पर्यन्त समस्त पापोंका त्याग कर संसारके अशरण, अशुभ, अनित्य और दुःखरूप चिन्तनका तथा मोक्षका इससे विपरीत स्वरूप चिन्तन करनेका निर्देश मात्र है। परन्तु ध्यान आदिका कोई वर्णन नहीं है।

२. स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षामें भी सामायिकके समय एकाग्रमन होकर कायको संकोचकर स्व-स्वरूपमें लीन होनेका और वन्दनाके अर्थको चिन्तन करनेका विधान है। पर ध्यानके भेदादिका कोई उल्लेख नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. महापुराणके अन्य पर्वोंमें ध्यानके भेद-प्रभेदोंका विस्तृत वर्णन होते हुए भी ३८, ३९ ४० वें पर्वमें जहाँपर कि श्रावकधर्मके अन्य कर्त्तव्योंका विस्तृत विवेचन किया गया है—ध्यान करनेका कोई विधान नहीं है।

४. पुरुषार्थसिद्धयुपायमें श्रावकधर्मका वर्णन करनेके बाद लिखा है कि यतः चरित्रके अन्तर्गत तप भी मोक्षका अंग है अतः अपने बल वीर्यको न छिपाकर तपका भी आचरण करना चाहिए तत्पश्चात् बारह तपोंका, 'छह आवश्यकोंका और गुप्ति-समिति आदिका उल्लेख होते हुए भी ध्यानके भेदोंका कोई वर्णन नहीं है और जो तपादिका वर्णन किया गया है, वह मुनियोंको लक्ष्य करके ही किया गया है, क्योंकि सर्वोत्कृष्ट मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धिका उपाय बताना ही इस ग्रन्थका मुख्य उद्देश्य है।

५. सोमदेवने सर्वप्रथम अपने उपासकाध्ययन पूजन और स्तोत्र-पाठ करनेके पश्चात् णमोकार मंत्र आदिके जप करनेका विधान किया है। जाप करते समय पर्यङ्कासनसे बैठकर, इन्द्रियोंको निश्चल कर अंगुलीके पर्वों या मणि-मुक्तादिके दानोंसे जाप करनेका उल्लेख कर बताया है कि वचन बोलकर जप करनेकी अपेक्षा एकाग्र मनसे जप करनेपर सहस्रों गुणा फल प्राप्त होता है। (देखो—भा० १ पृ० १९१ श्लोक ५६६-५७०)

जपको करते हुए जब इन्द्रिय और शान्त हो जावे तथा ध्याता पुरुष वायुके प्रचारका ज्ञाता अर्थात् पूरक, रेचक और कुम्भक विधिसे प्राणायाममें निपुण हो जावे तब उसे ध्यान करनेका अभ्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् उन्होंने ध्यान, ध्याता, ध्येयादिका विस्तृत एवं अनुपम वर्णन किया है। (देखो—भाग १ पृ० १९३-२१०) इस प्रकरणमें धर्म ध्यानके आज्ञाविचय आदि भेदोंका वर्णन करते हुए भी पिण्डस्थ, पदस्थ आदि भेदोंका कोई वर्णन नहीं किया गया है।

६. चारित्रसारगत-श्रावकधर्मके वर्णनमें ध्यानका कोई उल्लेख नहीं है।

७. अमितगति-श्रावकाचारमें धर्म भावनाके वर्णनके पश्चात् पन्द्रहवें परिच्छेदमें ध्यानके आर्त-रौद्रादिक भेदोंका स्वरूप और उनके स्वामियोंको वताकर आदिके दो ध्यानोंको हेय और अन्तिम दो ध्यानोंको उपादेय कहकर धर्मध्यानका विस्तारसे वर्णन किया है। पुनः ध्येयका स्वरूप वता करके उससे पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत इन चारों भेदोंका निरूपण किया है। पदस्थ ध्यानका वर्णन करते हुए ''अर्हं'' 'अ सि आ उ सा' आदि विभिन्न पदोंके आश्रयसे ध्यान करनेका विधान किया है। इस प्रकरणमें पंच दल और अष्ट दल कमलपर विभिन्न अक्षरों और मंत्रोंको स्थापित कर उनका ध्यान करने तथा गणधरवलय यंत्रके आश्रयसे ध्यान करनेका वर्णन किया है। तदनन्तर पिण्डस्थ आदि ध्यानोंका निरूपण किया है।

८. वसुनन्दि श्रावकाचारमें भावपूजनके अन्तर्गत णमोकार मंत्रादिके जाप करनेका और पिण्डस्थ आदि ध्यानोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। (देखो—भाग १ पृ० ४७२-४७४)

९. सावयवधम्मदोहामें 'अ सि आ उ सा' आदि मंत्राक्षरोंके जपका विधान तो है परन्तु पिण्डस्थ आदि ध्यानोंका कोई उल्लेख नहीं है। (देखो—भाग १ पृ० ५०२ दोहा २१२-२१७)

१०. सागारधर्माभृतमें सामायिक शिक्षाव्रतके अन्तर्गत मंत्र जापका विधान है, परन्तु ध्यान आदिका कोई वर्णन नहीं है। (देखो—भाग २ पृ० ५४ श्लोक ३१)

११. धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें मंत्र जापका और सालम्ब और निरालम्ब ध्यानोंका वर्णन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। अरहन्त आदि पाँच परमेष्ठीके गुण आदिके आश्रयसे जो ध्यान किया जाता है वह सालम्ब ध्यान है और जो बिना किसी आश्रयके अपने शुद्ध आत्म-स्वरूपका चिन्तन किया जाता है वह निरालम्ब ध्यान है। (भाग २ पृ० १९० श्लोक १२८-१३६)

१२. प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें सामायिकके समय आज्ञा-विचय आदि धर्म ध्यानोंके करनेका निर्देश मात्र है। (देखो—भाग २ पृ० ३४५ श्लोक ५२)

१३. गुणभूषण श्रावकाचारमें भाव पूजनके अन्तर्गत पंचपरमेष्ठीके मंत्र पदोंके जापका और पिण्डस्थ आदि चारों ध्यानोंका विस्तृत वर्णन है। (देखो—भाग २ पृ० ४५०-४५९ गतश्लोक)

१४. धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचारमें जिन-पूजनके पश्चात् पंचपरमेष्ठी-वाचक मंत्रोंके जापका तो विधान है, पर ध्यानोंका कोई वर्णन नहीं है। (देखो—भाग २ पृ० ४९३ श्लोक २१३-२१६)

१५. लाटी संहितामें सामायिकके समय आत्माके शुद्ध-चिद्रूपके चिन्तनका तो उल्लेख है, किन्तु पिण्डस्थ आदि ध्यानोंका कोई वर्णन नहीं है। (देखो—भाग ३ पृ० १२९ श्लोक १५३)

१६. उमास्वामि श्रावकाचारमें सामायिकके समय या अन्य कालमें ध्यान करनेका कोई वर्णन नहीं है।

१७. पूज्यपाद श्रावकाचार और व्रतसार-श्रावकाचारमें व्रतोद्योतन श्रावकाचार और श्रावकाचार सारोद्धारमें ध्यानका कोई वर्णन नहीं है।

१८. भव्यमार्गोपदेश उपासकाध्ययनमें पदस्थ आदि चारों प्रकारोंके ध्यानोंका, तथा पिण्डस्थ ध्यानकी पार्थिवी आदि धारणाओंका विशद निरूपण है। (देखो—भाग ३ पृ० ३९२-३९४)

१९. परिशिष्टगत श्रावकाचारोंमेंसे ध्यानके भेदोंका वर्णन प्राकृतभावसंग्रह, संस्कृतभाव-संग्रह और पुरुषार्थानुशासनमें विस्तारसे किया गया है।

२०. कुन्दकुन्द श्रावकाचारके ग्यारहवें उल्लासमें पिण्डस्थ आदि ध्यानोंका सुन्दर वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष और समीक्षा

सोमदेव, अमितगति, वसुनन्दि, मेधावी, गुणभूषण, जिनदेव, देवसेन, वामदेवके और कुन्दकुन्द श्रावकाचारमें तथा पं० गोविन्द-रचित श्रावकाचारोंमें ध्यानका वर्णन है। इनमें सोमदेवके ध्यानका वर्णन सबसे भिन्न एक नवीन रूपसे किया है, जो प्रथम भाग-गत उनके उपासकाध्ययनसे ज्ञातव्य है। शेष श्रावकाचार-रचयिताओंमेंसे आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक विचय और संस्थान विचय इन चारों धर्म ध्यानोंका वर्णन तत्त्वार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धि आदि टीकाओंके अनुसार तथा पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानोंका तथा पार्थिवी आदि धारणाओंका वर्णन ज्ञानार्णवमें वर्णित पद्धतिके अनुसार किया है। आचार्य देवसेन और वामदेवने अपने भाव-संग्रहमें धर्म ध्यानका सालम्ब और निरालम्ब भेद करके बताया है कि पंचपरमेष्ठीके गुणोंका आलम्बन लेकर उनके स्वरूपका जो चिन्तन किया जाता है वह सालम्ब ध्यान है। बाह्य आलम्बन-के बिना अपने निर्विकल्प शुद्ध चिदानन्द निजात्म-स्वरूपके चिन्तन करनेको निरालम्ब ध्यान कहते हैं। आचार्य देवसेन और उनका अनुसरण करनेवाले वामदेवका कहना है कि यह मुख्यरूपसे निरालम्ब धर्म ध्यान सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती मुनियोंके ही संभव है छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती मुनियोंके और गृहस्थारम्भ वाले पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकोंके संभव नहीं है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके उपचारसे धर्म ध्यान कहा है। इसका कारण यह है कि गृहस्थोंके बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह कुछ न कुछ रहते ही हैं, और वह अनेक प्रकारके आरम्भोंमें प्रवृत्त रहता है। जब वह बिना किसी बाह्य आलम्बनके ध्यान करनेको आँख बन्द करके बैठता है, तभी वे सभी करणीय गृह व्यापार उसके सामने आकरके उपस्थित हो जाते हैं ऐसी दशामें शुद्ध चिद्रूप आत्माका ध्यान कहाँ संभव है ? यथा—

धरवाणारा केई करणीया अत्थि तेण ते सव्वे।
झाणलियस्स पुरओ चिट्ठंति णिमी लियच्छिस्स ॥

(भाग ३ पृष्ठ ४४३ गाथा ३६)

गृहव्यापार युक्तेन शुद्धात्मा चिन्त्यते यदा।
प्रस्फुरन्ति तदा सर्वे व्यापारा नित्यभाविताः ॥

(भाग ३ पृष्ठ ४७७ श्लोक १६८)

आचार्य देवसेनका उक्त कथन कितना अनुभव-गम्य है, इसे वे ही ध्याता गृहस्थ जानते हैं, जिन्होंने कभी निरालम्ब रूपातीत ध्यानका अभ्यास करनेका प्रयत्न किया है। सालम्ब ध्यानमें पदस्थ, पिण्डस्थ और रूपस्थ ध्यान आते हैं। इनमेंसे पदस्थ ध्यान पंच परमेष्ठी वाचक मंत्रोंका जाप प्रधान है जब कोई माला लेकर या अंगुलीके पर्वों परसे जाप करनेको आँख बन्द करके बैठता है, तब भी जाप करनेवालेके सामने बार-बार गृह-व्यापार आकरके उपस्थित होते हैं ऐसा प्रायः सभी जाप करनेवालोंका अनुभव है। ऐसी दशामें पूछा जा सकता है कि उस समय क्या किया जावे। इसका उत्तर यही है कि जप-प्रारम्भ करते हुए आँख बन्द करके न बैठे, किन्तु नासा-दृष्टि रखकर और सामनेकी ओर किसी वस्तुको केन्द्र बनाकर उसपर ध्यान केन्द्रित करे। ऐसा करनेपर भी जब मन घरके किसी कार्यकी ओर जावे, तब उसे सम्बोधित करते हुए विचार करे—हे आत्मन्, तुम क्या करनेको बैठे थे और क्या सोचने लगे ? कहाँ जा पहुँचे। अरे, तुम अपने आरम्भ किये हुए भगवान्के नाम स्मरणको छोड़कर बाहिरी बातोंमें उलझ गये हो, यह बड़े दुःखकी बात है।[1] इस प्रकार विचार करनेमें लगेगा। किन्तु फिर भी कुछ देरके बाद पुनः घर-व्यापार सामने आकर खड़े होंगे। तब भी उक्त प्रकारसे अपने आपको सम्बोधित करना चाहिए। इस प्रकार पुनः पुनः अपनेको सम्बोधित करते हुए मनकी चंचलता रुकेगी, वह इधर-उधर कम भागेगा और धीरे-धीरे कुछ दिनोंमें स्थिरता आ जावेगी।

इस सम्बन्धमें एक बातकी ओर पाठकों या अभ्यासियोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ कि यह मंत्र-जाप या ध्यानादि सामायिकके समय ही करनेका विधान है। और सामायिक करनेकी विधि यह है कि एकान्त शान्त और निरुपद्रव स्थानमें २-४ मिनटसे लेकर उत्तरोत्तर दो घड़ी (४८ मिनिट) तक स्थिर पद्मासनसे बैठनेका अभ्यास करे। बैठते समयमें इतने समयके लिए सर्व पापोंका और गृहारम्भ करने तथा दूसरोंसे वचन बोलनेका त्याग करता हूँ ऐसा संकल्प करके बैठे। उस समय ३५ या १६ अक्षरादि वाले बड़े मंत्रोंका जाप प्रारम्भ न करे। किन्तु सर्व प्रथम 'ओं' इस एकाक्षरी मंत्रका पूर्वोक्त विधिसे १०८ बार जाप करनेका अभ्यास करे। जब एकाक्षरी

१. किन्नु कर्तुं त्वयाऽऽरब्धं किन्नु वा क्रियतेऽधुना।
आत्मन्नारब्धमुत्सृज्य हन्त बाह्येन मुह्यसि ॥ (क्षत्रचूड़ामणि लम्ब २ श्लोक ८०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्रको जपते हुए मन स्थिर हो जावे, तब 'अर्हं' या 'सिद्ध' इस दो अक्षरी मंत्रका जाप प्रारम्भ करे। जब उसको जपते हुए मन स्थिर रहने लगे तब चार अक्षरी 'अरहंत' और पाँच अक्षरी ,अ सि आ उ सा' आदि अधिक अक्षरों वाले मंत्रोंका जाप करे। इस प्रकार ज्यों-ज्यों स्थिरता आती जावे त्यों-त्यों अधिक अक्षर वाले मंत्रोंको जाप करनेका अभ्यास बढ़ाते जाना चाहिए।

उक्त मंत्रोंके पदरूप पदस्थ ध्यानके अभ्यास हो जानेपर पिण्डस्थ ध्यानके अन्तर्गत पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती, वारुणी और रूपवती धारणाओंका अभ्यास प्रारम्भ करे। (इन धारणाओंका वर्णन श्रावकाचार सं० के भाग ३ में पृष्ठ ५१९ पर संक्षेपसे और ज्ञानार्णवमें विस्तारसे किया गया है। जिज्ञासुओंको वहाँसे जानना चाहिए।)

पिण्डस्थ ध्यानका अभ्यास हो जानेपर रूपस्थ ध्यानका प्रारम्भ करे। इसका विशद वर्णन अमितगति, वसुनन्दि आदि श्रावकाचारोंमें विस्तारसे किया गया है, (विशेष जाननेके लिए इच्छुक वहाँसे जानें)।

जिन्होंने विधिवत् इस विषयके ग्रन्थोंका स्वाध्याय किया है वे जानते हैं कि आ० नेमिचन्द्रने द्रव्य संग्रहमें सर्वप्रथम ध्यान करनेके अभ्यासीके लिए कहा है—

मा चिट्ठह मा जपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं॥

अर्थात्—सर्वप्रथम कायको वशमें करनेके लिए हस्त पाद आदिके संचालन रूप कुछ भी मत बोलो अर्थात् वचन योग पर नियंत्रण स्थापित करो। तदनन्तर मनसे कुछ भी चिन्तन मत करो, जिससे कि मनोयोग पर भी नियंत्रण हो जावे इस क्रमसे तीनों योगोंके ऊपर नियंत्रण हो जानेपर आत्माका अपने आपमें निरत होना ही परम ध्यान है।

यदि वास्तवमें देखा जाय तो ध्यानका विधान मुनियोंके लिए है यही कारण है कि समन्तभद्रके रत्नकरण्डकमें उसका कोई उल्लेख नहीं है। परवर्ती श्रावकाचार कर्त्ताओंमेंसे अनेकने सामायिकके अन्तर्गत श्रावकको ध्यान करनेका विधान किया है और अनेकने ध्यानका कोई विधान नहीं किया है।

सामायिक शिक्षाव्रत वालेको सर्वपापोंका नियत समयके लिए त्यागकर अपने दोषोंकी आलोचना करना, पंच परमेष्ठीकी स्तुति और वन्दना करना, प्रतिक्रमण करना, कायोत्सर्ग करना और सर्व प्राणियों पर समताभाव रखना चाहिए। अभ्यासी श्रावकको इतना करना ही पर्याप्त है किन्तु जो इससे आगे बढ़ना चाहते हैं उन्हें आत्म विशुद्धिकी वृद्धि और चंचल मनोवृत्तिकी निवृत्तिके लिए ध्यानका अभ्यास करना आवश्यक है।

ध्यानका वर्णन करते हुए आचार्य अमितगतिने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि "आदिके तीन संहननोंमेंसे किसी एक संहननके धारक साधुके अन्तर्मुहूर्त तक ही एक वस्तुएँ चिन्तवन करने रूप ध्यान सम्भव है। उक्त तीन संहननोंके सिवाय अन्य संहनन वाले पुरुषके तो मनका निरोध रूप ध्यान एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह आदि क्षण (समय) तक ही संभव है। (देखो भाग १ पृष्ठ ४०५ श्लोक ५-६)

मनकी चंचलता रोकनेके लिए अमितगतिने चार, आठ आदि पत्र वाले कमलकी नाभिमें, हृदयमें, मुखमें, ललाटपर या मस्तक पर स्थापना करके इन पत्रों पर 'अ सि आ उ सा' आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीजाक्षरोंको स्थापित करके चिन्तन या जाप करनेका विधान किया है। उक्त कमल-रत्नोंपर निहित बीजाक्षरों पर प्रदक्षिणा क्रमसे जाप करते हुए मन इधर-उधर नहीं भागता है। मनकी इसी चंचलताके रोकनेके लिए उन्होंने अन्य भी अनेक यंत्र बताये और उनपर विभिन्न बीजाक्षरोंका जाप करनेका विधान किया है इससे उत्तरोत्तर स्थिरता आती जाती है। इसी अनुक्रममें उन्होंने गणधरवलय जैसे बृहद् यंत्रका भी वर्णन किया है। (भाग १ पृष्ठ ४१२ पर दिया चित्र)

मनकी स्थिरताके लिए देवसेनने लघु और बृहत् सिद्धचक्र यंत्रका भी वर्णन किया है। (देखो भाग ३ पृष्ठ ४४९ गत गाथाएँ तथा यंत्रोंके चित्र तीसरे भागके सबसे अन्तमें देखें)।

वस्तुतः इन यंत्रोंको अपने सम्मुख रखकर उनमें लिखे मंत्रोंको प्रदक्षिणा क्रमसे जपनेका उद्देश्य मनकी चंचलताको रोकना था। परन्तु भट्टारकीय युगमें उनकी पूजा बनाकर यंत्रों पर द्रव्य चढ़ाया जाने लगा जिससे उनका यथार्थ उद्देश्य ही दब गया।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अमितगतिको छोड़कर अन्य किसी भी श्रावकाचार-कर्तानि अमुक प्रमाणमें अमुक मंत्रका जाप करके उसे दशमांश आहुति देनेका विधान नहीं किया है। अमितगतिने ही सर्व प्रथम 'ओं जोग्गे मग्गे' आदि प्राकृत भाषाका एक मंत्र लिखकर उसका १२ हजार प्रमाण जाप करने और १२०० प्रमाण आहुति देनेका तथा 'ओं ह्रीं णमो अरहंताणं नमः' इस मंत्रका १० हजार जाप करने और १ हजार होम करनेका स्पष्ट वर्णन किया है (देखो भाग १ पृष्ठ ४११)

इसी प्रकार अमितगतिने सकलीकरणकी विधि भी सर्वप्रथम कही है। (देखो—भाग १ पृष्ठ ४१३) परवर्ती श्रावकाचारोंमेंसे जिन श्रावकाचारकर्त्ताओंने सकलीकरण करनेका विधान किया है उनपर अमितगतिका स्पष्ट प्रभाव है। और यदि भावसंग्रहको दर्शनसारके कर्त्ता देवसेन-रचित माना जावे तो भावसंग्रहका प्रभाव अमितगति पर मानना चाहिए, क्योंकि भावसंग्रहमें सकलीकरण करनेका विधान किया गया है। (देखो—भाग ३ पृष्ठ ४४७ गाथा ८५)

उक्त हवन और सकलीकरणका विधान जैन धर्मकी दृष्टिसे विद्वानोंके लिए विचारणीय है। इनका वर्णन 'आचमन, सकलीकरण और हवन' शीर्षकमें कर आये हैं।

२७. श्रावकोंके कुछ अन्य कर्तव्य

आचार्योंने श्रावकोंके आठ मूलगुण और बारह व्रतों या उत्तरगुणोंके अतिरिक्त अन्य छह और भी प्रतिदिन करने योग्य कार्योंका विधान किया है। यथा—

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने॥

गृहस्थोंको प्रतिदिन देवपूजा, गुरुजनोंकी उपासना, शास्त्र-स्वाध्याय, संयम धारण, तपश्चरण और दान देना ये छह कार्य अवश्य करना चाहिए। यद्यपि स्वामी समन्तभद्रने देवपूजाको चौथे वैयावृत्त्य शिक्षाव्रतके अन्तर्गत और सोमदेवसूरिने पहिले सामायिक शिक्षाव्रतके अन्तर्गत कहा है, परन्तु जब सर्व साधारण गृहस्थोंमें श्रावकके बारह व्रतोंका धारण एवं पालन उत्तरोत्तर कम होने लगा, तब आचार्योंने उनमें जैनत्व या श्रावकत्वको स्थिर रखनेके लिए उक्त षट् कर्तव्योंका विधान किया है।

उक्त षट् कर्तव्योंमें यतः देवपूजाका प्रथम स्थान है, अतः गृहस्थोंने उसे करना अपना आद्य कर्तव्य माना। शारीरिक शुद्धि करके स्वच्छ वस्त्र धारण कर अक्षत, पुष्पादि लेकर जिनेन्द्रदेवको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण-गान पूर्वक चढ़ानेका नाम देव-पूजा है। यदि विना अक्षत-पुष्पादि चढ़ाये केवल स्तुति करके जिनदेवको वन्दन-नमस्कार किया जाता है तो उसे देव-दर्शन कहा जाता है। आज समस्त भारत-वर्षमें जैन कहलानेवाला प्रत्येक व्यक्ति जिनेन्द्रदेवका प्रतिदिन प्रातःकाल दर्शन करना अपना कर्त्तव्य मानता है।

श्री अभ्रदेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावकाचारके प्रारम्भमें कहा है—

भव्येन प्रातरुत्थाय जिनबिम्बस्य दर्शनम्।
विधाय स्वशरीरस्य क्रियते शुद्धिरुत्तमा ॥ २ ॥

(श्रावकाचार सं० भाग ३, पृष्ठ २०६)

अर्थात् भव्य पुरुषको प्रातःकाल उठकर शरीरकी शुद्धि करने जिनबिम्बका दर्शन करना चाहिए।

आचार्य पद्मनन्दीने अपनी पञ्चविंशतिकाके उपासक संस्कार नामक अध्ययनमें देव और गुरुके दर्शन और वन्दनपर जोर देते हुए कहा है—

प्रातरुत्थाय कर्त्तव्यं देवता-गुरुदर्शनम्।
भक्त्या तद्वन्दना कार्या धर्मश्रुतिरुपासकैः ॥ १६ ॥

(श्रावका० भाग ३, पृष्ठ ४२८)

अर्थात् श्रावकोंको प्रातःकाल उठ करके भक्तिके साथ देव और गुरुका दर्शन और उनकी वन्दना करनी चाहिए।

प्रायः सभी श्रावकाचारोंमें जिनेन्द्रदेवके दर्शनको जाते हुए ईर्यासमितिसे गमन करनेका विधान किया है।

२८. जिनेन्द्र-दर्शनका महत्त्व

यद्यपि प्रत्येक जैनी जिनेन्द्रदेवके दर्शनके महत्त्वसे भलीभाँति परिचित हैं और दर्शनाष्टक आदि स्तोत्रोंमें उसके विशाल फलका वर्णन किया गया है, तथापि उसके पूर्व जिनेन्द्र-दर्शनार्थ जानेका विचार करनेपर, गमन करनेपर, और साक्षात् जिनेन्द्र-दर्शन करनेपर क्या और कैसा फल प्राप्त होता है, यह दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थोंके आधारपर यहाँ दिया जाता है।

दि० परम्परामें रविषेणाचार्य-रचित **'पद्मचरित'** और श्वे० परम्परामें विमलसूरि रचित **'पउमचरिय'** में कहा है—जब कोई व्यक्ति जिनेन्द्रदेवके दर्शनार्थ जानेका मनमें विचार करता है, तब वह चतुर्थभक्त अर्थात् एक उपवासका फल प्राप्त करता है। जब वह चलनेके लिए उद्यत होता है, तब षष्ठभक्त अर्थात् दो उपवासका फल पाता है। जब वह जिनेन्द्र-दर्शनार्थ गमन करनेका उपक्रम करता है, तब अष्टमभक्त अर्थात् तीन उपवासका फल पाता है। गमन प्रारम्भ करनेपर दशमभक्त (चार उपवास) का फल, कुछ दूर चलनेपर द्वादशभक्त (पाँच उपवास) का फल, आधे मार्गमें पहुँचनेपर एक पक्षके उपवासका फल, जिनेन्द्र-भवनके दिखनेपर एक मासके उपवासका फल, जिन-भवन पहुँचनेपर छह मासके उपवासका फल, मन्दिरकी देहलीपर पहुँचते हुए एक वर्षके उपवासका फल, जिनेन्द्रदेवकी प्रदक्षिणा करते समय सौ उपवासका फल, जिनेन्द्रदेवके नेत्रोंसे दर्शन करनेपर हजार उपवासका फल और जिनेन्द्रदेवका स्तवन करनेपर अनन्त पुण्यका फल प्राप्त करता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणसा होइ चउत्थं, छट्ठफलं उट्ठियस्स संभवइ।
गमणस्स उ आरंभे, हवइ फलं अट्ठमोवासे ॥ ८९ ॥
गमणे दसमं तु भवे तह चेव दुवालसं गए किंचि।
मज्झे पक्खोवासं मासोवासं तु दिट्ठेण ॥ ९० ॥
संपत्तो जिणभवणं लहई छम्मासियं फलं पुरिसो।
संवच्छरियं तु फलं अणंतपुण्णं जिणथुईए ॥ ९१ ॥ (पउमचरिय, उद्देश ३२)

इसी बातको आ० रविषेणने इस प्रकारसे प्रतिपादन किया है—

फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य षष्ठस्योद्यानमात्रतः।
अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥ १७८ ॥
द्वादशस्य ततः किञ्चिन्मध्ये पक्षोपवासजम्।
फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात् ॥ १७९ ॥
चैत्याङ्गणं समासाद्य याति षाण्मासिकं फलम्।
फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते ॥ १८० ॥
फलं प्रदक्षिणीकृत्य भुंङ्क्ते वर्षशतस्य तु।
दृष्ट्वा जिनाऽऽस्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रजम् ॥ १८१ ॥
अनन्तफलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः।
न हि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥ १८२ ॥ (पद्मचरित, पर्व ३२)

उपर्युक्त फल तभी प्राप्त होता है जब घरसे जिनेन्द्र दर्शनार्थ जानेवाला व्यक्ति मौनपूर्वक ईर्यासमितिसे गमन करता और जीव-रक्षा करता हुआ जाता है।

उक्त भावको किसी हिन्दी कविने एक दोहेमें कहा है—

जब चिन्तों तब सहस फल, लक्खा गमन करेय।
कोड़ाकोड़ि अनन्त फल, जब जिनवर दरसेय ॥

२९. निःसहीका रहस्य (णमो णिसीहीए)

पं० आशाधरजीने तथा कुछ अन्य श्रावकाचारकर्ताओंने जिन-मन्दिरमें 'निःसही'[1] ऐसा उच्चारण करते हुए प्रवेश करनेका विधान किया है। जैन समाजमें प्रायः आज सर्वत्र यह प्रचलित है कि लोग 'ओं जय जय निःसही' बोलते हुए ही मन्दिरोंमें प्रवेश करते हैं। इस 'निःसही' पदका क्या अर्थ है, यह न किसी श्रावकाचार-रचयिताने स्पष्ट किया है और न उनके व्याख्याकार या हिन्दी अनुवादकोंने ही। बहुत पहले लगभग ६० वर्ष पूर्व ज्ञानचन्द्र जैनी लाहौर वालोंने अपने जैनबालगुटकाके दूसरे भागमें इसका यह अर्थ किया था कि 'यदि कोई देवादिक जिन-भगवान्‌के दर्शन कर रहा हो तो वह निकल जाय, या दूर हो जाय पर इसका पोषक-प्रमाण आज तक भी जैन ग्रन्थोंमें दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

हाँ, श्रावक-प्रतिक्रमणपाठोंमें एक निषीधिका-दंडक अवश्य उपलब्ध है, जो इस प्रकारका है—

---

१. पूर्ण निषीधिका दंडक अर्थके साथ परिशिष्टमें दिया है।—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णमो जिणाणं ३, णमो णिसीहीए ३ ।

इसका अर्थ यह है कि जिनेन्द्रोंको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, निषीधिकाको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो ।

यह निसीही या निषीधिका क्या है और इसका क्या अर्थ है । यह विचारणीय है ।

१. जैन शास्त्रों और शिलालेखोंकी छान-बीन करनेपर हमें इसका सबसे पुराना उल्लेख खारवेलके शिलालेखमें मिलता है, जो कि उदयगिरि पर अवस्थित है और जिसे कलिंग-देशाधिपति महाराज खारवेलने आजसे लगभग २२०० वर्ष पहले उत्कीर्ण कराया था । इस शिलालेखकी १४ वीं पंक्तिमें '...... **कुमारीपवते अरहते पखीणसंसतेहि काय-निसीदियाय**.........' और १५ वीं पंक्तिमें.........."**अरहतनिसीदियासमीपे पाभारे** ....' पाठ आया है । यद्यपि खारवेलके शिलालेखका यह अंश अभी तक पूरी तौरसे पढ़ा नहीं जा सका है और अनेक स्थल अभी भी सन्दिग्ध हैं, तथापि उक्त दोनों पंक्तियोंमें 'निसीदिया' पाठ स्पष्ट रूपसे पढ़ा जाता है जो कि निसीहियाका ही रूपान्तर है ।

२. 'निसीहिया' शब्दके अनेक उल्लेख विभिन्न अर्थोंमें दि० श्वे० आगमोंमें पाये जाते हैं । श्वे० आचारांग सूत्र (२, २, २) में 'निसीहिया' की संस्कृत छाया 'निशीथिका' कर उसका अर्थ स्वाध्यायभूमि और भगवतीसूत्र (१४-१०) में अल्प कालके लिए गृहीत स्थान किया गया है । समवायांगसूत्रमें 'निसीहिया' की संस्कृत छाया 'नैषेधिकी' कर उसका अर्थ स्वाध्यायभूमि, प्रतिक्रमणसूत्रमें पाप क्रियाका त्याग, स्थानांगसूत्रमें व्यापारान्तरके निषेधरूप समाचारी आचार, वसुदेवहिण्डिमें मुक्ति, मोक्ष, स्मशानभूमि, तीर्थंकर या सामान्य केवलीका निर्वाण-स्थान, स्तूप और समाधि अर्थ किया गया है । आवश्यकचूर्णिमें शरीर, वसतिका—साधुओंके रहनेका स्थान और स्थण्डिल अर्थात् निर्जीव भूमि अर्थ किया गया है ।

गौतम गणधर-ग्रथित माने जाने वाले दिगम्बर प्रतिक्रमणसूत्रमें निसीहियाओंकी वन्दना-करते हुए—

'जाओ अण्णाओ काओवि **णिसीहियाओ** जीवलोयम्मि' यह पाठ आया है—अर्थात् इस जीव-लोकमें जितनी भी निषीधिकाएँ हैं, उन्हें नमस्कार हो ।

उक्त प्रतिक्रमण सूत्रके संस्कृत टीकाकार आचार्य प्रभाचन्द्रने जो कि संभवतः प्रमेयकमल-मार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र आदि अनेक दार्शनिक ग्रन्थोंके रचयिता और समाधिशतक, रत्नकरण्डक आदि अनेक ग्रन्थोंके टीकाकार हैं—निषीधिकाके अनेक अर्थोंका उल्लेख करते हुए अपने कथनकी पुष्टिमें कुछ प्राचीन गाथाएँ उद्धृत की हैं, जो इस प्रकार हैं—

जिण-सिद्धबिंब-णिलया किदगाकिदगा य रिद्धिजुदसाहू ।
णाणजुदा मुणिपवरा णाणुप्पत्तीय णाणिजुदखेत्तं ॥ १ ॥

सिद्धा य सिद्धभूमी सिद्धाण समासिओ णहो देसो ।
सम्मत्तादिचउक्कं उप्पण्णं जेसु तेहिं सिदखेत्तं ॥ २ ॥

चत्तं तेहिं य देहं तट्ठविदं जेसु ता **णिसीहीओ** ।
जेसु विसुद्धा जोगा जोगधरा जेसु संठिया सम्मं ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोगपरिमुक्कदेहा पण्डितमरणट्ठिदा **णिसीहीओ**।
तिविहे पण्डितमरणे चिट्ठंति महामुणी समाहीए ॥ ४ ॥
एदाओ अण्णाओ **णिसीहियाओ** सया वंदे।

अर्थात्—कृत्रिम और अकृत्रिम जिनबिम्ब, सिद्धप्रतिबिम्ब, जिनालय, सिद्धालय, ऋद्धि-सम्पन्नसाधु, तत्सेवित क्षेत्र, अवधिमनःपर्यय और केवलज्ञानके धारक मुनिप्रवर, इन ज्ञानोंके उत्पन्न होनेके प्रदेश, उक्त ज्ञानियोंसे आश्रित क्षेत्र, सिद्ध भगवान्‌के निर्वाणक्षेत्र, सिद्धोंसे समाश्रित सिद्धालय, सम्यक्त्वादि चार आराधनाओंसे युक्त तपस्वी, उक्त आराधकोंसे आश्रित क्षेत्र, आराधक या क्षपकके द्वारा छोड़े गये शरीरके आश्रयवर्ती प्रदेश, योगस्थित तपस्वी, तदाश्रित क्षेत्र, योगियोंके द्वारा उन्मुक्त शरीरके आश्रित प्रदेश और भक्त-प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन इन तीन प्रकारके पण्डितमरणमें स्थित साधु तथा पण्डितमरण जहाँ पर हुआ है, ऐसे क्षेत्र : ये सब निषीधिकापदके वाच्य हैं।

निषीधिकापदके इतने अर्थ करनेके अनन्तर आचार्य प्रभाचन्द्र लिखते हैं—

अन्ये तु 'णिसीधियाए' इत्यस्यार्थमित्थं व्याख्यानयन्ति
'णि त्ति णियमेहिं जुत्तो सित्ति य सिद्धि तहा अहिग्गामी।
धि त्ति य धिदिबद्धकओ एत्ति य जिणसासणो भत्तो ॥ १ ॥

अर्थात् कुछ लोग 'निसीधिया' पदकी निरुक्ति करके उसका इस प्रकार अर्थ करते हैं :— **नि**—जो व्रतादिकके नियमसे युक्त हो, **सि**—जो सिद्धिको प्राप्त हो या सिद्धिको पानेको अभिमुख हो, **धि**—जो धृति अर्थात् धैर्यसे बद्ध-कक्ष हो, और या—अर्थात् जिनशासनको धारण करनेवाला हो, उसका भक्त हो। इन गुणोंसे युक्त पुरुष 'निसीधिया' पदका वाच्य है।

साधुओंके दैवसिक-रात्रिकप्रतिक्रमणमें 'निषिद्धिकादंडक' नामसे एक पाठ है। उसमें णिसी-हिया या निषिद्धिकाकी वंदना की गई है। 'निसीहिया' किसका नाम है और उसका मूलमें क्या रूप रहा है इसपर उससे बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। पाठकोंकी जानकारीके लिए उसका कुछ आवश्यक अंश यहाँ दिया जाता है—

'णमो जिणाणां ३। णमो णिसीहियाए ३। णमोत्थु दे अरहंत, सिद्ध बुद्ध, णीरय, णिम्मल, ...गुणरयण, सीलसायर, अणंत, अप्पमेय, महदिमहावीर वड्ढमाण, बुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे। (क्रियाकलाप पृष्ठ ५५)

........सिद्धिणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थि-वालियसहाए जाओ अण्णाओ काओ वि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि, इसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं परियाणं णिम्मलाणं गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पवत्ति-थेर-कुलयराणं चाउव्वण्णे य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु।' (क्रियाकलाप पृष्ठ ५६)।

अर्थात् जिनोंको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। निषीधिकाको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। अरहंत, सिद्ध, बुद्ध आदि अनेक विशेषण-विशिष्ट महतिमहावीर-वर्धमान बुद्धिऋषिको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अष्टापद, सम्मेदाचल, उर्जयन्त, चंपापुरी, पावापुरी, मायापुरी और हस्तिपालितसभामें तथा जीवलोकमें जितनी भी निषीधिकाएँ हैं, तथा ईषत्प्राग्भारनामक अष्टम पृथ्वीतलके अग्र भाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर स्थित सिद्ध, बुद्ध, कर्मचक्रसे विमुक्त, नीराग, निर्मल, सिद्धोंकी तथा गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, कुलकर (गणधर) और चार प्रकारके श्रमणसंघकी पाँच महाविदेहोंमें और दश भरत और दश ऐरावत क्षेत्रोंमें जो भी निषिद्धिकाएँ हैं, उन्हें नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

इस उद्धरणसे एक बात बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि निषीधिका उस स्थानका नाम है, जहाँसे महामुनि कर्मोंका क्षय करके निर्वाण प्राप्त करते हैं और जहाँ पर आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, कुलकर और ऋषि, यति, मुनि, अनगाररूप चार प्रकारके श्रमण समाधिमरण करते हैं, वे सब निषीधिकाएँ कहलाती हैं।

बृहत्कल्पसूत्रनिर्युक्तिमें निषीधिकाको उपाश्रय या वसतिकाका पर्यायवाची माना है। यथा—

अवसग पडिसगसेज्जाआलय, वसधी णिसीहियाठाणे।
एगट्ठ वंजणाई उवसग वगडा य निक्खेवो ॥ ३२९५ ॥

अर्थात्—उपाश्रय, प्रतिश्रय, शय्या, आलय, वसति, निषीधिका और स्थान ये सब एकार्थवाचक नाम हैं।

इस गाथाके टीकाकारने निषीधिकाका अर्थ इस प्रकार किया है :—

"निषेधः गमनादिव्यापारपरिहारः स प्रयोजनमस्याः, तमर्हतीति वा नैषेधिकी।"

अर्थात्—गमनागमनादि कायिक व्यापारोंका परिहारकर साधुजन जहाँ निवास करें, उसे निषीधिका कहते हैं।

इससे आगे कल्पसूत्रनिर्युक्तिकी गाथा नं० ५५४१ में भी 'निसीहिया' का वर्णन आया है पर वहाँपर उसका अर्थ उपाश्रय न करके समाधिमरण करनेवाले क्षपक साधुके शरीरको जहाँ छोड़ा जाता है, या दाहसंस्कार किया जाता है, उसे निसीहिया या निषिद्धिका कहा गया है। यहाँ टीकाकारने 'नैषधिक्यां शवप्रतिष्ठापनभूम्याम्' ऐसा स्पष्ट अर्थ किया है। जिसकी पुष्टि आगेकी गाथा नं० ५५४२ से भी होती है।

भगवती आराधनामें जो कि दिगम्बर-सम्प्रदायका अति प्राचीन ग्रन्थ है—वसतिकासे निषीधिकाको सर्वथा भिन्न अर्थमें लिया है। साधारणतः जिस स्थानपर साधुजन वर्षाकालमें रहते हैं, अथवा विहार करते हुए जहाँ रात्रिको बस जाते हैं, उसे वसतिका कहा है। वसतिकाका विस्तृत विवेचन करते हुए लिखा है :—

'जिस स्थानपर स्वाध्याय और ध्यानमें कोई बाधा न हो, स्त्री, नपुंसक, नाई, धोबी, चाण्डाल आदि नीच जनोंका सम्पर्क न हो, शीत और उष्णकी बाधा न हो, एकदम बन्द या खुला स्थान न हो, अँधेरा न हो, भूमि विषम-नीची—ऊँची न हो, विकलत्रय जीवोंकी बहुलता न हो, पंचेन्द्रिय पशु-पक्षियों और हिंसक जीवोंका संचार न हो, तथा जो एकान्त, शान्त, निरुपद्रव और निर्व्याक्षेप स्थान हो, ऐसे उद्यान-गृह, शून्य-गृह, गिरि-कन्दरा और भूमि-गुहा आदि स्थानमें साधुओंको निवास करना चाहिए। ये वसतिकाएँ उत्तम मानी गई हैं।'

(देखो—भग० आराधना गाथा २२८-२३०, ६३३-६४१)

परन्तु वसतिकासे निषीधिका बिलकुल भिन्न होती है, इसका वर्णन भगवती आराधनामें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें किया गया है और बतलाया गया है कि जिस स्थानपर समाधिमरण करनेवाले क्षपकके शरीरका विसर्जन या अन्तिम संस्कार किया जाता है, उसे निषीधिका कहते हैं।

यथा—निषीधिका-आराधकशरीर-स्थापनास्थानम्।

(गाथा १९६७ की मूलाराधना टीका)

साधुओंको आदेश दिया गया है कि वर्षाकाल प्रारम्भ होनेके पूर्व चतुर्मास-स्थापनाके साथ ही निषीधिका-योग्य भूमिका अन्वेषण और प्रतिलेखन कर लेवें। यदि कदाचित् वर्षाकालमें किसी साधुका मरण हो जाय और निषीधिका योग्य भूमि पहलेसे देख न रखी हो, तो वर्षाकालमें उसे ढूँढ़नेके कारण हरितकाय और त्रस जीवोंकी विराधना सम्भव है, क्योंकि हरितकायसे उस समय सारी भूमि आच्छादित हो जाती है। अतः वर्षावासके साथ ही निषीधिकाका अन्वेषण और प्रतिलेखन कर लेना चाहिए।

भगवती आराधनाकी वे सब गाथाएँ इस प्रकार हैं:—

विजहणा निरूप्यते—
एवं कालगदस्स दु सरीरमंतो बहिज्ज वाहिं वा।
विज्जावच्चकरा तं सयं विकिंचंति जदणाए॥ १९६६॥
समणाणं ठिदिकप्पो वासावासे सहेव उडुबंधे।
पडिलिहिदव्वा णियमा णिसीहिया सव्वसाधूहिं॥ १९६७॥
एवंता सालोगा णादिविकिट्ठा ण चावि आसण्णा।
वित्थिण्णा विद्धत्ता णिसीहिया दूरमागाढा॥ १९६८॥
अभिसुआ असुसिराअघसा उज्जोवा बहुसमायअसिणिद्धा।
णिज्जंतुगा अहरिदा अविला य तहा अणाबाधा॥ १९६९॥
जा अवर दक्खिणाए व दक्खिणाए व अध व अवराए।
वसधीदो वणिज्जदि णिसीधिया सा पसत्थत्ति॥ १९७०॥

अब समाधिसे मरे हुए साधुके शरीरको कहाँ परित्याग करे, इसका वर्णन करते हैं—इस प्रकार समाधिके साथ काल-गत हुए साधुके शरीरको वैयावृत्य करनेवाले साधु नगरसे बाहिर स्वयं ही यतनाके साथ प्रतिष्ठापन करें। साधुओंको चाहिए कि वर्षावासके तथा वर्षाऋतुके प्रारम्भमें निषीधिकाका नियमसे प्रतिलेखन कर लें, यही श्रमणोंका स्थितिकल्प है। वह निषीधिका कैसी भूमिमें हो, इसका वर्णन करते हुए कहा गया है—वह एकान्त स्थानमें हो, प्रकाश-युक्त हो, वसतिकासे न बहुत दूर हो, न बहुत पास हो, विस्तीर्ण हो, विध्वस्त या खण्डित न हो, दूर तक जिसकी भूमि दृढ़ या ठोस हो, दीमक-चींटी आदिसे रहित हो, छिद्र-रहित हो, घिसी हुई या नीची-ऊँची न हो, सम-स्थल हो, उद्योतवती हो, स्निग्ध या चिकनी फिसलनेवाली भूमि न हो, निर्जन्तुक हो, हरितकायसे रहित हो, विलोंसे रहित हो, गीली या दल-दल युक्त न हो, और मनुष्य-तिर्यंचादिकी बाधासे रहित हो। वह निषीधिका वसतिकासे नैऋत्य, दक्षिण या पश्चिम दिशामें हो तो प्रशस्त मानी गई है।

इससे आगे भगवती आराधनाकारने विभिन्न दिशाओंमें होनेवाली निषीधिकाओंके शुभाशुभ फलका वर्णन इस प्रकार किया है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि वसतिकासे निषीधिका नैऋत्य दिशामें हो, तो साधु संघमें शान्ति और समाधि रहती है, दक्षिण दिशामें हो तो संघको आहार सुलभतासे मिलता है, पश्चिम दिशामें हो तो संघका विहार सुखसे होता है और उसे ज्ञान-संयमके उपकरणोंका लाभ होता है। यदि निषीधिका आग्नेय कोणमें हो, तो संघमें स्पर्धा अर्थात् तूं तूं-मैं मैं होती है, वायव्य दिशामें हो तो संघमें कलह उत्पन्न होता है, उत्तर दिशामें हो तो व्याधि उत्पन्न होती है, पूर्व दिशामें हो तो परस्परमें खींचातानी होती है और संघमें भेद पड़ जाता है। ईशान दिशामें हो तो किसी अन्य साधुका मरण होता है। (भगवती आराधना गाथा १९७१-१९७३)

इस विवेचनसे वसतिका और निषीधिकाका भेद बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। ऊपर उद्धृत गाथा नं० १९७० में यह स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि वसतिकासे दक्षिण, नैऋत्य और पश्चिम दिशामें निषीधिका प्रशस्त मानी गई है। यदि निषीधिका वसतिकाका ही पर्यायवाची नाम होता, सो ऐसा वर्णन क्यों किया जाता?

प्राकृत 'णिसीधिया' का अपभ्रंश ही 'निसीहिया' हुआ और वह कालान्तरमें निसिया होकर आजकल नशियाके रूपमें व्यवहृत होने लगा।

इसके अतिरिक्त आज कल लोग जिन-मन्दिरमें प्रवेश करते हुए 'ओं जय जय जय, निस्सही निस्सही, निस्सही, नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु' बोलते हैं। यहाँ बोले जानेवाले 'निस्सही' पदसे क्या अभिप्रेत था और आज हम लोगोंने उसे किस अर्थमें ले रखा है, यह भी एक विचारणीय बात है। कुछ लोग इसका यह अर्थ करते हैं कि 'यदि कोई देवादिक भगवान्के दर्शन-पूजनादि कर रहा हो तो वह दूर या एक ओर हो जाय।' पर दर्शनके लिए मन्दिरमें प्रवेश करते हुए तीन बार निस्सही बोलकर 'नमोस्तु' बोलनेका यह अभिप्राय नहीं रहा है, किन्तु जैसा कि 'निषिद्धिका दंडकका उद्धरण देते हुए ऊपर बतलाया जा चुका है, वह अर्थ यहाँ अभिप्रेत है। ऊपर अनेक अर्थोंमें यह बताया जा चुका है कि निसीहिया या निषीधिकाका अर्थ जिन, जिन-बिम्ब, सिद्ध, सिद्ध-बिम्ब और जिनालय भी होता है। तदनुसार दर्शन करनेवाला तीन बार 'निस्सही'—जो कि 'णिसिहीए' का अपभ्रंश रूप है—को बोलकर उसे तीन बार नमस्कार करता है। यथार्थमें हमें मन्दिरमें प्रवेश करते समय 'णमो णिसीहियाए' या इसका संस्कृत रूप 'निषीधिकाए' नमोऽस्तु, अथवा 'णिसीहियाए णमोत्थु' पाठ बोलना चाहिए।

यहाँ यह शंका की जा सकती है कि फिर यह अर्थ कैसे प्रचलित हुआ—कि यदि कोई देवादिक दर्शन-पूजन कर रहा हो तो वह दूर हो जाय। मेरी समझमें इसका कारण 'निःसही या निस्सही जैसे अशुद्धपदके मूल रूपको ठीक तौरसे न समझ सकनेके कारण 'निर् उपसर्ग पूर्वक सृ' गमनार्थक धातुका आज्ञा जकारके मध्यम पुरुषको एकवचनका बिगड़ा रूप मानकर लोगोंने वैसी कल्पना कर डाली है। अथवा दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि साधुको किसी नवीन स्थानमें प्रवेश करने या वहाँसे जानेके समय निसीहिया और आसिया करनेका विधान है। उसकी नकल करके लोगोंने मन्दिर-प्रवेशके समय बोले जानेवाले 'निसीहिया' पदका भी वही अर्थ लगा लिया है।

साधुओंके १० प्रकारके[1] समाचारोंमें निसीहिया और आसिया नामके दो समाचार हैं और उनका वर्णन मूलाचारमें इस प्रकार किया गया है:—

१. साधुओंका अपने गुरुओंके साथ अन्य साधुओंके साथ जो पारस्परिक शिष्टाचारका व्यवहार होता है, उसे समाचार कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कंदर-पुलिण-गुहादिसु पवेसकाले णिसिद्धियं कुज्जा।
तेहिंतो णिग्गमणे तहासिया होदि कायव्वा ॥ १३४॥

(मूलाचार समा० अधि०)

अर्थात्—गिरि-कंदरा, नदी आदिके पुलिन-मध्यवर्ती जलरहित स्थान और गुफा आदिमें प्रवेश करते हुए निषिद्धिका समाचारको करे और वहाँसे निकलते या जाते समय आशिका समाचारको करे। इन दोनों समाचारोंका अर्थ टीकाकार आचार्य वसुनन्दिने इस प्रकार किया है :—

टीका—पविसंते य प्रविशति व प्रवेशकाले णिसिही निषेधिका तत्रस्थानमभ्युपगम्य स्थानकरणं, सम्यग्दर्शनादिषु स्थिरभावौ वा, णिग्गमणे निर्गमकाले आसिया देव-गृहस्थादीन् परिपृच्छ्य यानं, पापक्रियादिभ्यो मनोनिवर्तनं वा।'

अर्थात्—साधु जिस स्थानमें प्रवेश करे, उस स्थानके स्वामीसे आज्ञा लेकर प्रवेश करें। यदि उस स्थानका स्वामी कोई मनुष्य है तो उससे पूछे और यदि मनुष्य नहीं है तो उस स्थानके अधिष्ठाता देवताको सम्बोधन कर उससे पूछें, इसीका नाम निसीहिका समाचार है। इसी प्रकार उस स्थानसे जाते समय भी उसके स्वामी मनुष्य या क्षेत्रपालको पूछकर और उसका स्थान उसे संभलवा करके जावे। यह उनका आसिका समाचार है। अथवा करके इन दोनों पदोंका टीकाकारने एक दूसरा भी अर्थ किया है। वह यह कि विवक्षित स्थानमें प्रवेश करके सम्यग्दर्शनादिमें स्थिर होने का 'निसीहिया' और पाप-क्रियाओंसे मनके निवर्तनका नाम 'आसिया' है। आचारसारके कर्त्ता आ० वीरनन्दिने उक्त दोनों समाचारोंका इस प्रकार वर्णन किया है :—

जीवानां व्यन्तरादीनां बाधायै यन्निषेधनम्।
अस्माभिः स्थीयते युष्मद्दिष्टयैवेति निषिद्धिकाम् ॥११॥
प्रवासावसरे कन्दरावासादेर्निपिद्धिका।
तस्मान्निर्गमने कार्या स्यादाशीर्वैरहारिणी ॥१२॥—(आचारसार द्वि० अ०)

अर्थात् व्यन्तरादिक जीवोंकी बाधा दूर करने के लिए जो निषेधात्मक वचन कहे जाते हैं कि भो क्षेत्रपाल यक्ष, हम लोग तुम्हारी अनुज्ञासे यहाँ निवास करते हैं, तुम लोग रुष्ट मत होना, इत्यादि व्यवहारको निषिद्धिका समाचार कहते हैं और वहाँ से जाते समय उन्हें वैर दूर करने वाला आशीर्वाद देना यह आशिका समाचार है।

ऐसा मालूम होता है कि लोगोंने साधुओंके लिए विधान किये गये समाचारोंका अनुसरण किया और 'व्यन्तरादीनां बाधायै यन्निषेधनम्' पदका अर्थ मन्दिर प्रवेशके समय लगा लिया कि यदि कोई व्यन्तरादिक देव-दर्शनादिक कर रहा हो तो वह दूर हो जाय और हमें बाधा न दे। पर वास्तवमें 'निस्सही' पद बोलनेका अर्थ निषीधिका अर्थात् जिनदेवका स्मरण कराने वाले स्थान या उनके प्रतिबिम्ब के लिए नमस्कार अभिप्रेत रहा है।

जिन-मन्दिरमें प्रवेश करते समय 'निस्सही' पदका पूर्ण रूप 'णमो णिसीहियाए' है और इसका प्रकृतमें अर्थ है, इस जिन-मन्दिरको नमस्कार हो। इसे यतः जिन-मन्दिरमें प्रवेश करते हुए बोला जाता है, अतः मन्दिरकी देहलीको हाथसे स्पर्श कर मस्तक पर लगाते हुए तीन बार बोलना चाहिए।

शास्त्रों के अवलोड़नसे यह भी ज्ञात होता है, कि मन्दिरमें प्रवेश करते समय पूर्वकालमें 'निषीधिकादंडक' वाला पाठ बोला जाता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वामदेवने अपने संस्कृत भावसंग्रहमें लिखा है—'जिनावासं विशेन्मन्त्री समुच्चार्य निषेधिकाम्' अर्थात् 'निषेधिका'का उच्चारण कर जिनालयमें प्रवेश करे। श्रावक प्रतिक्रमणपाठमें वह निषेधिकादण्डक इस प्रकार दिया गया है—

जैन परम्परामें नौ देव माने गये हैं—१. अरिहन्त, २. सिद्ध, ३. आचार्य, ४. उपाध्याय, ५. साधु, ६. जिन मन्दिर, ७. जिन-विम्ब, ८. जिनधर्म, और ९. जिनशास्त्र। प्रकृत 'णमो णिसीहियाए' का अर्थ जिन-बिम्ब युक्त जिन मन्दिरको नमस्कार हो' यह लेना चाहिए। उक्त पद बोलते हुए जिनमन्दिरकी देहलीका स्पर्शकर मस्तकपर लगानेका अर्थ जिनमन्दिरको नमस्कार करना है।

३०. जिनेन्द्र-पूजन कब सुफल देता है

यद्यपि स्वामी समन्तभद्रने पांच अणुव्रत और तीन गुणव्रत धारण करनेके पश्चात् शिक्षा व्रतोंके अभ्यास करने वाले श्रावकको चौथे शिक्षाव्रतके अन्तर्गत जिन-पूजनका विधान किया है, तो भी सामान्य गृहस्थोंका ध्यान उस पर न जाकर 'देव-पूजा' श्रावकका प्रथम कर्तव्य है, इसलिए उसे करना चाहिए। इस विचारसे वे उसे करते हैं। परन्तु किसी भी शुभ कार्यको करनेके पूर्व अशुभ कार्यकी निवृत्ति आवश्यक है, इस बात पर उनका ध्यान ही नहीं जाता है। वस्त्र-गत या शरीर-गत मलको दूर किये बिना वस्त्र या शरीरकी शुद्धि या स्वच्छता जैसे संभव नहीं है, उसी प्रकार पंच पापरूप मलको दूर किये बिना जिन-पूजन के योग्य आत्मिक शुद्धि या पवित्रताका होना भी संभव नहीं है। यही कारण है कि पाँच पापोंके स्थूल त्याग किये बिना अर्थात् अणुव्रतोंके धारण किये बिना जो लोग जिन-पूजन करते हैं उन्हें उसका यथेष्ट फल नहीं मिलता है।

पउमचरिय और पद्मचरितके अनुसार श्रीद्युति आचार्य भरतको जिन-पूजन करनेका उपदेश देते हुए कहते हैं—

हे भरत, जो प्रथम अहिंसारत्नको ग्रहण कर जिनदेवका पूजन करता है वह देवलोकमें अनुपम इन्द्रिय-सौख्य भोगता है।[1] जो सत्यव्रतका नियम धारण करके जिनपरको पूजता है, वह मधुर-भाषी, आदेय-वचन होकर संसारमें अपनी कीर्त्तिका विस्तार करता है।[2] जो अदत्तादान (चोरी) का त्यागकर जिन-नाथको पूजता है वह मणि-रत्नोंसे परिपूर्ण नव निधियोंका स्वामी[3]

---

१. पढममहिंसारयणं गेण्हेउं जो जिणं समच्चेइ।
सो भुंजइ सुरलोए इंदियसोक्खं अणोवमियं ॥ ६३ ॥ (पउम० उ० ३२)
अहिंसारत्नमादाय विपुलं यो जिनाधिपम्।
भक्त्यार्च्चयत्यसौ नाके परमां वृद्धिमश्नुते ॥ १४९ ॥ (पद्मच० प० ३२)

२. सच्चवयणियमधरो जो पूयइ जिणवरं पयत्तेणं।
सो होइ महुर-वयणो भुंजइ य परंपरसुहाइं ॥ ६४ ॥ (पउम० उ० ३२)
सत्यव्रतधरः सृग्भिर्यः करोति जिनार्चनम्।
भवत्यादेयवाक् योऽसौ सत्कीर्त्तिव्याप्तविष्टपः ॥ १५० ॥ (पद्मच० प० ३२)

३. परिहरिऊण अदत्तं जो जिणणाहस्स कुणइ वर-पूयं।
सो णवणिहीण सामी होही मणि-रयणपुण्णाणं ॥ ६५ ॥ (उम० उ० ३२)
अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति।
जायते रत्नपूर्णानां नदीनां स विभुर्नरः ॥ १५१ ॥ (पद्मच० प० ३२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। जो पर-नारी-प्रसंगको छोड़कर जिन-पूजन करता है वह कामदेव जैसा श्रेष्ठ शरीर धारण करके सौभाग्य-भाजन और सर्वजनोंके नेत्रोंको आनन्द देने वाला होता है। जो परिग्रहकी सीमा करके सन्तोष-व्रत धारण करता है वह विविध रत्नोंसे समृद्ध होकर सर्व जनोंका पूज्य होता है।[२]

उपरि-लिखित शास्त्रीय प्रमाणोंसे यह भले प्रकार सिद्ध है कि जो पाँच पापों का स्थूल रूपसे त्यागकर अर्थात् पंच अणुव्रत धारण कर जिनेन्द्रदेवका पूजन करता है, वही जिनपूजनके उपर्युक्त यथार्थ फलको प्राप्त करता है। किन्तु आजकल प्रायः इससे विपरीत बात ही देखी जाती है। लोग सर्व प्रकारके पापोंको करते हुए भी जिनदेवका पूजन करके और अपने पापोंकी शुद्धि मानकर स्वयंको कृतार्थ मानते हैं। यही कारण है कि वे पूजनके वास्तविक फलको प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

३१. गुरूपास्ति आदि शेष कर्तव्य

दूसरा कर्त्तव्य गुरूपास्ति है, निर्ग्रन्थ, वीतरागी, निरारम्भी और ज्ञान-ध्यान-तपमें अनुरक्त साधुजनोंकी उपासना करना, रोगादिके समय उनकी परिचर्या और वैय्यावृत्ति करना गुरूपास्ति है, इसका सुन्दर विवेचन सर्वप्रथम रत्नकरण्डकमें और उनके पश्चात् रचे गये प्रायः सभी श्रावकाचारोंमें किया गया है। आजके कुछ श्रावक तो इस गुरूपास्तिमें अन्धभक्त बनकर विधेय और अविधेयका भी विचार नहीं करके गुरूपास्तिकी सीमाका भी अतिक्रमण कर डालते हैं।

तीसरा कर्त्तव्य स्वाध्याय है। यह छहों कर्त्तव्योंमें सबसे श्रेष्ठ है। इसकी गणना अन्तरंग तपोंमें चौथे स्थानपर की गई है और कुन्दकुन्दाचार्यने तो यहाँ तक कहा है—'ण हि सज्झायसमो तवो' अर्थात् स्वाध्यायके समान और कोई श्रेष्ठतप नहीं है, क्योंकि यह आत्मबोध और आत्म-स्थिरताका प्रधान कारण है, इसी कारण ध्यानके पूर्व स्वाध्यायको कहा गया है। जिस किसी भी शास्त्रके कुछ पत्रोंके पढ़नेका नाम स्वाध्याय नहीं है, किन्तु शास्त्र-वाचना, शुद्ध उच्चारण करना, प्रश्न पूछना, तत्त्व-चिन्तन करना और धर्मका उपदेश देना बाहिरी या व्यवहार स्वाध्याय है और स्व + अध्ययन करना अर्थात् अपने आत्म-स्वरूपका विचार करना अन्तरंग या निश्चय स्वाध्याय है।

चौथा संयम नामका कर्त्तव्य है। इसके इन्द्रिय-संयम और प्राणि-संयम ऐसे दो भेद कहे गये हैं। इसका पूर्णरूपसे पालन तो निर्ग्रन्थ साधुओंके ही संभव है। गृहस्थको यथाशक्ति

---

१. परनारीसु पसंगं न कुणइ जो जिणमयासिओ पुरिसो।
सो पावइ सोहग्गं णयणाणंदो वरतणूणं ॥ ६६ ॥ (पउम० उ० ३२)
यो रत्यं परनारीषु न करोति जिनाश्रितः।
सोऽथ गच्छति सौभाग्यं सर्वनेत्रमलिम्लुचः ॥ १५२ ॥ (पद्मच० प० ३२)

२. संतोषवयामूलं धारइ य जिणिंदवयणकयभावो।
सो विविहधणसमिद्धो होइ णरो सव्वजणपुज्जो ॥ ६७ ॥ (पउम० उ० ३२)
जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रहः।
लभतेऽसावतिस्फीतान् लाभान् लोकस्य पूजितः ॥ १५३ ॥ (पद्मच० प० ३२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकदेश इनका पालन करना आवश्यक है इस पर भी अनेक श्रावकाचारोंमें पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

पांचवां कर्त्तव्य तप है। इसके भी दो भेद हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। तथा प्रत्येकके ६-६ भेद हैं। उन सबका पालन यद्यपि साधुओंका प्रधान कर्त्तव्य है, तथापि गृहस्थोंको यथाशक्ति-अपनी परिस्थितिके अनुसार पर्वादिके दिन उपवास, एकाशन, नीरस भोजनादिके रूपमें बाह्य तप और अपने दोषोंको देखकर प्रायश्चित्त लेना, गुरुजनोंकी विनय करना और वैय्यावृत्त्य करना आदिके रूपमें अन्तरंग तप करना आवश्यक है। बाह्य तपसे शरीर-शुद्धि और अन्तरंग तपसे आत्म शुद्धि होती है।

आज-कल लोग उपवास आदिको ही तप समझते हैं, जबकि वह बाह्य तप है। अपने दोषको स्वीकारना, जिसके साथ वैर-भाव हो गया हो उससे क्षमा-याचना करना, अभिमान-त्याग करके ज्ञान, तप, वय, बुद्धि आदिमें वृद्धजनोंका विनय-सम्मान करना अन्तरंग तप है। बाह्य तपकी अपेक्षा अन्तरंग तपसे असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा होती है। शमभाव या क्षमाको धारण कर क्रोधको जीतना सबसे बड़ा धर्म या तप है। जैसा कि कहा है—

पठतु शास्त्र-समूहमनेकधा, जिनसमर्चनमर्चयतां सदा।
गुरुनतिं कुरुतां धरतां व्रतं, यदि शमो न वृथा सकलं ततः ॥२९॥

(व्रतोद्यो० श्राव० भा० ३ पृ० २०९)

अर्थात्—यदि शमभाव नहीं है तो अनेक प्रकारके शास्त्र-समूहको पढ़ना जिनेन्द्रदेवकी सदा पूजा करना, गुरुजनोंको नमस्कार करना और व्रत-धारण करना ये सब व्यर्थ हैं।

छठा कर्त्तव्य दान है। गृहस्थ दैनिक आरम्भ-समारम्भ-जनित जो पाप-संचय करता है, उसकी शुद्धिके लिए उसे प्रतिदिन दान देनेका विधान आचार्योंने किया है।

यद्यपि सभी श्रावकाकारोंमें चौथे अतिथिसंविभागके अन्तर्गत आहार, औषध, अभय और ज्ञानदानका विधान किया है, फिर सोमदेव जयसेन आदि अनेक श्रावकाचार-रचयिताओंने देव पूजा आदि ६ कर्त्तव्योंके भीतर दानका पृथक् रूपसे निरूपण किया है। गृहस्थ अपनी आयका कितना भाग किस कार्यमें व्यय करे, इसका भी विभिन्न आचार्योंने विभिन्न प्रकारसे वर्णन किया है। उन सबमें धर्मरत्नाकर जो कि इसी जीवराज ग्रन्थमालासे प्रकाशित और जयसेनाचार्य विरचित है, उसका दानके लिए आयको विभाजनका वर्णन सबसे अधिक प्रभावक है, अतः उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है—

भागद्वयी कुटुम्बार्थे संचयार्थे तृतीयकः।
स्वरायो यस्य धर्मार्थे तुर्यस्त्यागी स सत्तमः ॥१३८॥
भागत्रयं तु पोष्यार्थे कोषार्थे तु द्वयी सदा।
षष्ठं दानाय यो युङ्क्ते स त्यागी मध्यमोऽधमात् ॥१३९॥
स्वस्वस्य यस्तु षड्भागान् परिवाराय योजयेत्।
त्रीन् संचयेद् दशांशं च धर्मे त्यागी लघुश्च सः ॥१४०॥

भावार्थ—जो गृहस्थ अपनी आय (आमदनी) के चार भाग करके दो भाग तो कुटुम्ब-परिवारके भरण-पोषणके लिए व्यय करता है, तीसरा भाग आपत्ति आदिके लिए संचित करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और चौथा भाग धर्म-कार्यमें लगाता है, वह उत्तम पुरुष है ॥१३८॥ जो व्यक्ति अपनी आयके छह भाग करके उनमेंसे तीन भाग अपने पुत्रादि पोष्य वर्गके लिए व्यय करता है, दो भाग कोषमें संचित करता है और छठा भाग दानमें व्यय करता है वह मध्यम पुरुष है ॥ १३९ ॥ जो व्यक्ति अपनी आयके दश भाग करके उनमेंसे छह भाग परिवार-पालनके लिए खर्च करता है, तीन भाग भविष्यके लिए संचित करता है और दशवां भाग धर्म-कार्यमें लगाता है, वह लघु या जघन्य श्रेणीका पुरुष है ।

वास्तवमें अतिथिके लिए जो अपनी आयका विभाग किया जाता है, उसे ही अतिथि संविभाग कहते हैं जैसा कि—पुरुषार्थानुशासनमें कहा है—

स्वायस्यातिथये भव्यैर्यो विभागो विधीयते ।
अतिथेः संविभागाख्यं शीलं तज्जगदुर्जिनाः ॥ १६८ ॥—(भा० ३ पृ० ५१३)

गृहस्थीमें रहनेवाला पुरुष धन-वैभव भी चाहता है, नीरोग शरीर भी चाहता है, मान-सन्मानके साथ ज्ञानवान् भी होना चाहता है और निर्भय भी रहना चाहता है, अतः उक्त चारों प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिए उसे क्रमशः आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान और अभयदान देते रहना चाहिए ।

जैसा कि कहा है—

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः ।
अन्नदानाद् धनी नित्यं नीरोगी भेषजाद् भवेत् ॥

३२. पर्व-माहात्म्य

पर्व शब्दका अर्थ है—पूरण करनेवाला दिन । इसका अभिप्राय यह है कि गृहस्थ जिस आत्मिक कार्यको सांसारिक कार्योंमें उलझे रहकरके अन्य दिनोंमें सम्पन्न नहीं कर पाता है, उसे वह पर्वके दिन पूरा करे ।

पर्व दो प्रकारके होते हैं—नित्य पर्व और नैमित्तिक पर्व । प्रत्येक मासकी अष्टमी, चतुर्दशी और पंचमी नित्य पर्व हैं । आष्टाह्निक, दशलक्षण, रत्नत्रय आदि नैमित्तिक पर्व हैं । प्रत्येक पक्षकी अष्टमीके दिन आरम्भ-कार्योंको छोड़कर आत्मीय कार्योंको करनेका उद्देश्य आत्मा पर लगे हुए आठ कर्मोंके नाश करनेका है । आचार्य सकलकीर्त्तिने लिखा है—

अष्टम्यामुपवासं हि ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।
हत्वा कर्माष्टकं तेऽपि यान्ति मुक्ति सुदृष्टयः ॥ ३४ ॥
(भाग २ पृष्ठ २५९)

अर्थात् जो पुरुषोत्तम सम्यग्दृष्टि अष्टमीको उपवास करते हैं, वे आठ कर्मका नाशकर मोक्ष जाते हैं ।

इसी प्रकार चतुर्दशीके दिन उपवास करनेका उद्देश्य चौदहवें गुणस्थानको प्राप्त होकर सिद्धपद पानेका है । जैसा कि कहा है—

प्रोषधं नियमेनैव चतुर्दश्यां करोति यः ।
चतुर्दशगुणस्थानान्यतीत्य मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ (भाग २ पृ० २५९)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमीके दिन उपवास करनेका उद्देश्य पाँचवें केवलज्ञानके प्राप्त करनेका है। उक्त तीनों व्रत दिनोंके उपवासोंके फलको बतलाते हुए पूज्यपाद श्रावकाचारमें कहा है—

अष्टमी चाष्टकर्मघ्नी सिद्धिलाभा चतुर्दशी।
पञ्चमी ज्ञानलाभाय तस्मात्त्रितयमाचरेत् ॥ (भाग ३, पृ० १९८, श्लोक ८४)

अर्थात्—अष्टमी आठ कर्मोंकी घातक है, चतुर्दशी सिद्धि (मुक्ति) का लाभ कराती है और पञ्चमी केवलज्ञानकी प्राप्तिके लिए है, इसलिए श्रावकको इन तीनों ही पर्वके दिनोंमें उपवास पूर्वक स्वाध्याय और ध्यानमें समय बिताना चाहिए।

उपवासके दिन गृहारम्भ, शरीर-संस्कार और स्नान तकके त्यागनेका विधान प्रायः सभी श्रावकाचार-कारोंने किया है। नित्य पूजनके नियम वालों तकको भावपूजन करनेका निर्देश किया गया है। इस प्रकारके उपवास करनेपर ही उससे मुनि व्रत पालन करनेकी शिक्षा मिलती है और तभी उसका शिक्षा व्रत नाम सार्थक होता है।

३३. चार प्रकारके श्रावक

जैनाचार्योंने प्रत्येक तत्त्वके वर्णनके लिए चार निक्षेपोंका विधान किया है और उनके द्वारा किसी भी वस्तुके यथार्थ स्वरूपको समझनेके लिए कहा है। जैन या श्रावकका भी वर्णन उन्होंने उन्हीं नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप चार निक्षेपोंसे किया है। पण्डित आशाधरजीने जैनत्वके गुणोंसे रहित नाम मात्रके जैनको भी अजैन लोगोंसे श्रेष्ठ कहा है। नाम-जैनसे भी स्थापना जैनको उत्तम कहा है; द्रव्य जैनको उससे भी उत्तम कहा है और भाव जैनको तो सर्वोत्तम महापुरुष कहा है।[1]

इसी प्रकार श्री अभ्रदेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावकाचारमें श्रावकोंका भी चार निक्षेपोंके द्वारा इस प्रकार वर्णन किया है—

जिन पुरुषोंने व्रतोंको धारण नहीं किया है, किन्तु गुरुजनोंसे व्रत-आदिकी चर्चा सुनते हैं, वे नामश्रावक हैं। जो गुरुजनोंसे व्रतादिको ग्रहण करके भी उनको पालते नहीं है, वे स्थापना श्रावक हैं। जो श्रावकके आचारसे संयुक्त हैं, दान-पूजनादि करते हैं और श्रावकके उत्तर गुणोंके धारण करनेके लिए उत्सुक है, तथा दान-पूजनादि करते हैं, वे द्रव्य श्रावक हैं। जो भावसे श्रावक व्रतोंसे सम्पन्न हैं और श्रावकके आचार पालनमें सदा जागरूक रहते हैं, वे भावश्रावक है।[2]

नैष्ठिक श्रावकोंकी गणना भाव श्रावकोंमें की गई है। यहाँ यह विशेष बात ध्यानमें रखना चाहिए कि जब तक अन्तरंगमें सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं हुआ है, तब तक श्रावक व्रतोंको पालते हुए भी वह द्रव्यश्रावक ही है और जो सम्यक्त्वके साथ श्रावकके व्रतोंका पालन करते हैं, वे भाव श्रावक हैं।

देश चारित्र या संयमासंयम लब्धिके अध्यवसाय स्थान असंख्यात बतलाये गये हैं, अतः भाव श्रावकके भी उनकी अपेक्षा सूक्ष्म दृष्टिसे असंख्यात भेद होते हैं, किन्तु स्थूल दृष्टिसे आदिकी

---

१. सागारधर्मामृत अ० २ श्लोक ५४, भाग २ पृ० १५। २. व्रतोद्योतन श्रावकाचार, श्लोक २४५—२५० भाग ३ पृ० २३२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ प्रतिमाधारी श्रावकोंको जघन्य, सातवीं, आठवीं और नौवीं प्रतिमाधारीको मध्यम और अन्तिम दो प्रतिमाधारियोंको उत्कृष्ट भाव श्रावक कहा गया है।

व्रतोद्योतन श्रावकाचारमें रात्रिमें भोजन त्याग, वस्त्र गालित जलपान, पञ्च परमेष्ठि-दर्शन, और जीवदया पालन करनेवालेको सामान्य रूपसे श्रावक कहा गया है।[1]

सावयधम्मदोहाकारने लिखा है कि पञ्चमकालमें जो मद्य, मांस और मधुका त्यागी है, वह श्रावक है। (देखो—भाग १ पृ० ४९० दोहा ७७)

३४. यज्ञोपवीत

जिस यज्ञोपवीतको धारण करनेके लिए वर्तमानका अधिकांश मुनि-समुदाय अपने उपदेशों द्वारा अहर्निश गृहस्थोंको प्रेरित करता रहता है और उसके धारण किये बिना उसे श्रावक धर्मका अधिकारी या मुनि दानका अधिकारी नहीं मानता है, उस यज्ञोपवीतकी चर्चा केवल जिनसेनके सिवाय किसी भी श्रावकाचार-कर्त्ताने नहीं की है। पण्डित आशाधरजीने 'स्यात्कृतोपनयो द्विजः' (सागार० आ० २ श्लोक १९) लिखकर महापुराण-प्रतिपादित उपनीति या उपनयनसंस्कारका उल्लेख तो किया है, पर उसकी व्याख्यामें भी स्पष्टरूपसे यज्ञोपवीतका कोई विधान नहीं किया है। पण्डित मेधावीने भी पण्डित आशाधरका अनुसरण किया है।

आचार्य देवसेनने भावसंग्रहमें पूजनके समय 'मैं इन्द्र हूँ' ऐसा संकल्प करके कंकण, मुकुट, मुद्रिका इन आभूषणोंके साथ यज्ञोपवीत धारण करनेका वर्णन किया है। (देखो—भाग पृ० ४४८ गाथा ८७) यदि श्रावकको उपनयन संस्कार आवश्यक होता तो पूजनके समय उसे पहरनेका विधान क्यों किया जाता?

आचार्य जिनसेनने अपने महापुराणमें जिस प्रकारके द्विजों या ब्राह्मणोंकी सृष्टि भरत चक्रवर्तीके द्वारा कराई है और उनके लिए गर्भान्वयक्रिया, दीक्षान्वय क्रिया और कर्त्रन्वय क्रियाओं-का विधान किया है, वह सब वर्णन सर्वज्ञ-प्रतिपादित नहीं है, किन्तु अपने समयकी परिस्थितिसे प्रेरित होकर प्रतिदिन जैनों पर ब्राह्मण धर्मके प्रचारक राजाओंके द्वारा होनेवाले अत्याचारोंके परित्राणार्थ उन्होंने लोक-प्रचलित उक्त क्रियाओंका प्रतिपादन किया है, वह सब जैन शास्त्रोंके अभ्यासियोंसे एवं भारतके इतिहाससे अभिज्ञ विद्वानोंसे अपरिचित नहीं है।

श्वेताम्बरीय जैन आगमोंमें एवं पीछे रचे गये शास्त्रोंमें भी यज्ञोपवीतका कहीं कोई वर्णन नहीं है। प्रतिष्ठा शास्त्रोंमें जहाँ कहीं इसका जो कुछ वर्णन दृष्टिगोचर होता है, उसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि जब तक यह पूजा-प्रतिष्ठारूप यज्ञ किया जा रहा है, तब तक उसकी पूर्त्तिके लिए मैं इस संकलपसूत्रको धारण करता हूँ। 'यज्ञोपवीत' इस समस्यित पदमें ही यह अर्थ अन्तर्निहित है।

दक्षिण प्रान्तमें ब्राह्मणोंके द्वारा जैनोंपर अत्यधिक अत्याचार हुए हैं और उनसे अपनी रक्षा करनेके लिए उन ब्राह्मणी क्रियाओंको उन्होंने अपना लिया जिनके कि करनेपर न सम्यक्त्व-की हानि होती थी और न व्रतोंमें ही कोई दूषण लगता था।[2]

१. भाग ३ पृ० २३२ श्लोक २४४।

२. सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्॥४४६॥ [यशस्तिलक] (श्रावकाचार सं० भाग १ पृ० १७३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर भारतमें जैनियोंको वैसी विकट परिस्थितिका सामना नहीं करना पड़ा और इसी कारणसे इधरके जैनियोंमें यज्ञोपवीतके धारण करनेका रिवाज प्रचलित नहीं हुआ।

३५. अचित्त या प्रासुक भक्ष्य वस्तु-विचार

जिसमें चेतना हो ऐसी हरितकाय वनस्पतिको सचित्त कहते हैं। भोगोपभोगपरिमाण व्रतधारीको सचित्त फल, पत्र, शाक आदिका खाना अतिचार माना गया है। पाँचवीं सचित्तत्याग-प्रतिमाका धारक श्रावक तो सचित्त वस्तुके खानेका यावज्जीवनके लिए त्याग कर देता है। किन्तु वह अचित्त या प्रासुक बनाकर खा सकता है। सचित्त वस्तु अचित्त या प्रासुक कैसे होती है, इस विषयकी प्रतिपादक एक प्राचीन गाथा प्रसिद्ध है। जो इस प्रकार है—

सुक्कं पक्कं तत्तं अंबिललवणेण मिस्सियं दव्वं।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं॥

अर्थात् जो फलादि वस्तु सूर्यके तापसे सूख गई हो, पक गई हो, अग्निसे पका ली गई हो, किसी आम्ल (खट्टे) रससे और नमक मिश्रित कर दी गई हो, जिसे चाकू आदि शस्त्रसे छिन्न-भिन्न कर दिया गया हो और कोल्हू आदि यंत्रोंसे पेल या पीस दिया गया हो, वह सभी द्रव्य प्रासुक कहा गया है।

उक्त गाथाके अनुसार यद्यपि सूर्यके तापसे सूखी या पकी हुई वस्तु प्रासुक हो जाती है, पर यदि उसके भीतर गुठली या बीज आदि हों तो उनको सचित्त माना गया है, अतः उनके निकाल देनेपर ही उस फलादिको अचित्त या प्रासुक जानना चाहिए। इसी प्रकार चाकू आदिसे काटी हुई ककड़ी आदिको भी सर्वथा अचित्त नहीं समझना चाहिए, क्योंकि जिस स्थानपर वह चाकूसे काटी गई है, वह अंश या स्थान तो अचित्त हो जाता है; किन्तु उसके सिवाय शेष अंश तो सचित्त ही बना रहता है। इसी प्रकार जितने अंशमें नमक आदि मिल गया है, उतना अंश अचित्त और शेष अंश सचित्त ही बना रहता है। इसलिए अग्निसे भलीभाँति पकायी हुई वस्तुको ही अचित्त या प्रासुक मानना चाहिए।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि वृक्षादिसे तोड़ा गया या स्वयं गिरा हुआ फलादि अचित्त है। परन्तु उनका यह मानना भ्रमपूर्ण है। जिस वनस्पतिसे फलादि भिन्न हुआ है, उसमें यद्यपि उस वनस्पतिका मूलजीव नहीं रहा है, तथापि उसके बीज, आदिके आश्रित अनेक जीव तो अभी उसमें विद्यमान ही हैं, क्योंकि खजूर आदि कुछ अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति रूप वृक्षोंके सिवाय शेष वृक्ष, लता आदि सप्रतिष्ठित प्रत्येक ही होते हैं और उनके पत्र, पुष्प, फल, बीज आदिके आश्रित असंख्य निगोदिया वनस्पतिकायिक जीव रहते हैं। अतः आम, केला, सेव, अंगूरादि फल, तोरई, सेम आदि फलवाले शाक और मैथी पालक आदि पत्रवाले शाक उक्त प्रकारसे अचित्त किये विना खाना दोषाधायक ही है।

३६. जल-गालन एवं प्रासुक जलपान विचार

नदी-कूपादिका जल जलकायिक होनेसे सचित्त तो है ही, किन्तु गाढ़े-दोहरे वस्त्रसे अगालित जलमें त्रसजीव भी रहते हैं, यह बात आज सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे प्रमाणित है। वस्त्र-गालित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जलमें भी एक मुहूर्तके पश्चात् सम्मूर्च्छन त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसा प्राचीन आचार्योंका कथन है। यथा—

गालितं तोयमप्युच्चैः सम्मूर्च्छति मुहूर्त्ततः।

(श्रावका० भाग २ पृ० ४८१, श्लोक, ९०)

कपूर, इलायची, लवंग, फिटकरी आदिसे तथा आंवला, हरड आदिके चूर्णसे मिश्रित वस्त्र-गालित जल दो पहर अर्थात् छह घंटेतक प्रासुक रहता है और अच्छी तरहसे अग्निसे उबाला गया जल आठ पहर अर्थात् २४ घंटे तक प्रासुक रहता है, इसके पश्चात् उसमें सम्मूर्च्छन त्रसजीव उत्पन्न हो जाते हैं। (विशेषके लिए देखें—श्रावकाचार सं० भाग २ पृष्ठ ४८१ श्लोक ९०-९१। तथा भाग ३ पृष्ठ ४१५ श्लोक ६१)।

पं० आशाधरजीने वस्त्र-गालित जलको दो मुहूर्त तक पीनेके योग्य कहा है। (देखो—भाग २, पृष्ठ २४, श्लोक १६) पं० मेधावीने इसी जलको अर्ध पहरके पश्चात् पीनेके अयोग्य कहा है। (देखो भाग २, पृष्ठ १२५, श्लोक ३६)।

वस्त्र-गालित जल-पान करना सर्वसाधारण जैनोंका कर्त्तव्य माना गया है। स्मृतिकारों तकने वस्त्र-गालित जल पीनेका विधान किया है, जिसे कुछ श्रावकाचार-कर्ताओंने भी उद्धृत किया है। वह श्लोक इस प्रकार है—
स्मृति वाक्यं च—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं **पटपूतं जलं पिबेत्।**
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत्॥

अर्थात्—आँखोंसे देखकर पैर रखे, **वस्त्रसे गालित जल पीवे,** सत्यसे पवित्र वचन बोले और मनसे पवित्र आचरण करे। (भाग २, पृष्ठ ४८२, श्लोक १५)।

अगालित जलमें ऐसे कितने ही विषैले जीव-जन्तु रहते हैं कि उनके पेटमें चले जानेपर 'नेहरुआ' आदि भयंकर रोग हो जाते हैं, जिनसे घोर वेदना सहन करनी पड़ती है। अतः स्वास्थ्य की दृष्टिसे भी जलको वस्त्रसे छानकर पीना ही श्रेयस्कर है।

शुद्धतासे तैयार किये गये घी-तेल आदि द्रव पदार्थोंको खानेके लिए जब भी बर्तनमेंसे निकाला जाय, तब भी उसे वस्त्रसे छानकर ही काममें लेना चाहिए। लाटी संहितामें इसका स्पष्ट विधान किया गया है। (देखो भाग ३, पृ० ३, श्लोक २३)।

३७. अभक्ष्य-विचार

जो वस्तु भक्षण करनेके योग्य नहीं हो, उसे अभक्ष्य कहते हैं। जो त्रस जीवोंके घातसे उत्पन्न होते हैं, ऐसे मांस और मधु अभक्ष्य हैं। जिसमें त्रस जीव पाये जायें, ऐसे फलादि तथा जिनमें अनन्त स्थावर जीवोंका घात हो ऐसे आलू, मूली आदि जमीकन्द भी अभक्ष्य कहे गये हैं। जो काम विकार, प्रमाद आदि वर्धक मदिरा, भांग, चरस आदि हैं, उन्हें भी अभक्ष्य कहा गया है। जो शरीरमें रोगादिवर्धक पदार्थ हैं, उन्हें भी अभक्ष्य माना गया है और जो उत्तम पुरुषोंके सेवन करनेके योग्य नहीं, ऐसे गोमूत्र आदिको भी अभक्ष्य माना गया है।[1]

---

१. देखो—रत्नकरण्डक, भा० १, पृ० १०, श्लो० ८४-८६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि उक्त पाँच प्रकारके अभक्ष्य पदार्थोंमें सभी भक्षण नहीं करनेके योग्य पदार्थ सम्मिलित हो जाते हैं, फिर भी जैन परम्परामें बाईस अभक्ष्योंका उल्लेख मिलता है। दिगम्बर परम्परा के हिन्दी क्रिया कोषोंमें बाईस अभक्ष्योंका वर्णन किया गया है;[1] परन्तु प्रस्तुत संकलनमें संगृहीत किसी भी श्रावकाचारमें बाईस अभक्ष्योंका उल्लेख या उनके नामोंका निर्देश देखनेमें नहीं आया। हाँ, श्वेताम्बरीय ग्रन्थोंमें २२ अभक्ष्योंके नामवाली दो गाथाएँ अवश्य उपलब्ध हैं जो कि इस प्रकार हैं—

पंचुंबरि चउ विगई हिम विस करगे य सव्वमट्टी अ।
राईभोयणगं चिय वहुबीअ अणंत संधाणा ॥ १ ॥
घोलबड़ा वायंगण अमुणिअनामाइं पुप्फ-फलाइं।
तुच्छफलं चलिअ-रसं वज्जे वज्जाणि वावीसं ॥ २ ॥[2]

अर्थात्—बड़, पीपल आदि पाँच उदुम्बर फल, मद्य, मांस, मधु और मक्खन ये चार महाविकृति, हिम (बर्फ), विष, करग (ओला), सर्व प्रकारकी मिट्टी, रात्रि भोजन, बहुबीजी फल, अनन्तकाय. सन्धान (अथाना), घोलबड़ा, बैंगन, अजान पुष्प और फल, तुच्छ फल, और चलितरस ये बाईस प्रकारके अभक्ष्य पदार्थ त्याग करना चाहिए ॥ १-२ ॥

दि० परम्परामें पाँच उदुम्बर और तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) के त्यागरूप आठ मूल गुण श्रावकके कहे गये हैं। मक्खन भी मर्यादाके बाहिर होनेपर मांस या मधुके सदृश हो जाता है। इसी प्रकार घोलबड़ा आदि द्विदल पदार्थ, अथाना और चलितरस भी तीन मकारोंमें आ जाते हैं। तुच्छ फल अनन्तकायमें परिगणित होते हैं। विष, मिट्टी और अजान फल प्राण-घातक हैं। बैंगनको भी बहुबीजीमें जानना चाहिए। रात्रिभोजनका तो स्वतंत्र रूपसे निषेध किया गया है। इस प्रकार

---

१. देखो—किशनसिंहकृत क्रियाकोष भा० ५ पृ० ११६। दौलतराम कृत क्रियाकोष भा० ५ पृ० १२४।

२. उक्त गाथाओंका हिन्दी पद्यानुवाद पढ़ते समय गुरु-मुखसे इस प्रकार सुना था—

ओका[1], घोरबड़ा[2], निशि[3]भोजन, बहुबीजा[4], बैंगन[5], सन्धान[6],
बड़[7], पीपल[8], ऊमर[9], [10]कठऊमर, [11]पाकर, फल जो होय[12] अजान।
कन्दमूल,[13], [14]माटी, विष[15], आमिष[16], मधु[17], [18]माखन, अरु मदिरापान[19],
फल[20] अतितुच्छ, [21]तुषार, चलितरस[22], जिनमत ये बाईस अखान ॥

१. ओला—आकाशसे गिरनेवाला जमा पानी, २. घोरबड़ा—मूंग उड़द आदिके घी तेलमें पके दही-छांछमें फूले हुए बड़े, ३. रात्रि भोजन, ४. वहुत बीजवाले पपीता आदि, ५. बैंगन, ६. सन्धान (अथाना, अचार, मुरब्बा) ७. बड़, ८. पीपल, ९. ऊमर, १०. कठूमर और, ११. पाकर इन पाँचों वृक्षोंके फल, १२. अजान फल, १३. कन्दमूल अनन्त स्थावर जीवोंके पिंड, १४. खेतकी गीली मिट्टी (असंख्य स्थावर जीवोंका पिंड) १५. विष (स्व-प्राणघातक) १६. मांस, १७. मधु, १८. मक्खन, १९. मदिरा-पान, २०. अतितुच्छफल (जिसमें बीज पूर्ण रूपसे विकसित नहीं हुए ऐसे छोटे फल, सप्रतिष्ठित वनस्पति, २१. तुषार (जमी हुई ओस बिन्दु, तथा धुनी हुई रुई के समान गिरनेवाला वर्फ) और, २२. चलित रस (जिन वस्तुओंका स्वाद बिगड़ जाय ऐसे घी, तेल, मिष्ठान्न पक्वान्न आदि) ये वाईस प्रकारके पदार्थ जैनमतमें अभक्ष्य कहे गये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२ अभक्ष्य पदार्थोंका पृथक् निर्देश नहीं होनेपर भी उनका समावेश रत्नकरण्डकमें प्रतिपादित पाँच प्रकारके अभक्ष्योंमें हो जाता है।

३८. भक्ष्य पदार्थोंकी काल-मर्यादा

भक्षण करनेके योग्य भी वस्तु एक निश्चित काल-सीमाके बाद अभक्ष्य हो जाती हैं, क्योंकि उनमें त्रस-स्थावर जीव उत्पन्न हो जाते हैं। दिव्य ज्ञानियोंने अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे इसका निर्णय कर शास्त्रोंमें इसका विशद विवेचन किया है। हिन्दी भाषामें रचे गये क्रियाकोषोंमें भक्ष्य-मर्यादाका वर्णन पाया जाता है, पर संस्कृतमें रचित श्रावकाचारोंमें इसका वर्णन दृष्टिगोचर न होनेसे लोग उसे प्रमाण नहीं मानते हैं। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि पं० दौलतरामजीने अपने क्रियाकोषके अन्तमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि आज लोग सुर-भाषा (संस्कृत) को विरले पुरुष ही समझते हैं, अतः मैंने इसे नर-भाषा (हिन्दी) में सुर-भाषावाले क्रियाकोषके अनुसार ही रचा हैं। (देखो श्रा० भा० ५ पृ० ३८९ छन्द १४-१५)

इसके अतिरिक्त श्रीकिशनसिंहजीने अपने क्रियाकोषमें 'हेमन्ते तीस दिणा' आदि जो तीन प्राचीन गाथाएँ (भा० ५ पृ० ११६, ११८ और ११९ में) उद्धृत की हैं, उनसे भी सिद्ध होता है कि पूर्वकालमें अक्ष्याभक्ष्य-मर्यादा-प्रदर्शक कोई ग्रन्थ अवश्य रहा है, जिसकी कि अनेक गाथाएँ दि० और श्वे० शास्त्रोंमें यत्र-तत्र पाई जाती हैं।[1] इसलिए भक्ष्याभक्ष्यकी मर्यादाको अप्रमाण माननेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता है।

क्रियाकोषोंके वर्णनके अनुसार भक्ष्य-अभक्ष्य पदार्थोंकी काल-मर्यादा इस प्रकार है—

नाम भक्ष्य पदार्थ	काल-मर्यादा		
	शीतकाल,	ग्रीष्मकाल	वर्षाकाल
१. गेहूँ, चना आदिका आटा-चून	७ दिन,	५ दिन,	३ दिन
२. हल्दी धना, मिर्च आदि कुटा मसाला	,,	,,	,,
३. बिना पानीके बेसन-लड्डू आदि	,,	,,	,,
४. बूरा, बतासा, मिश्री	१ मास,	१५ दिन,	७ दिन
५. पिसा नमक	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त,	अन्तर्मुहूर्त्त
६. नमक मिला कच्चा भोजन	३ पहर,	२ पहर,	दो पहर
७. नमक मिला पक्का भोजन पूड़ी, पपड़िया, कचौरी आदि	८ पहर,	८ पहर,	आठ पहर
८. दाल, भात, कड़ी आदि	२ पहर,	२ पहर	२ पहर
९. वसन-गालित्त दूध, जल	अन्तर्मुहूर्त,	अन्तर्मुहूर्त,	अन्तर्मुहूर्त
१०. भात-उबाला जल, दूध	८ पहर,	८ पहर,	८ पहर
११. भजिया, पूरी, सीरा आदि	४ पहर,	४ पहर,	४ पहर
१२. अथाना लौंजी आदि	८ पहर,	८ पहर,	८ पहर

---

१. मेरे संग्रहमें ऐसी अनेक गाथाएँ संगृहीत हैं।—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिपूर्वक गाय-भैंसको दुहकर तत्काल उष्णकर-आगपर उफान देकर, निर्दोष जामन देकर, जमाये गये दहीको आठ पहरके भीतर ही मथकर निकाले हुए मक्खनको तत्काल आगपर रखकर ताये हुए घीकी मर्यादा सामान्यरूपसे एक वर्ष बतलायी गयी है। फिर भी यदि किसी कारणवश उसका वर्ण रस जब विकृत हो जाय, तभीसे वह अभक्ष्य हो जाता है।

इसी प्रकार तिल-सरसों आदिका तेल घानीको साफ करके अपने सामने निकाला गया हो और उसमें जलका अंश भी न रहे, उस तेलकी मर्यादा भी एक वर्षकी कही गयी है, फिर भी यदि किसी कारणवश उसका वर्ण-रस जब बिगड़ जाय, तभीसे वह अभक्ष्य हो जाता है। वर्ण-रस बिगड़नेका अर्थ है चलित रस हो जाना। चलित रसवाले घी-तेलमें उसी वर्णके सम्मूर्च्छिम त्रस-जीव उत्पन्न हो जाते हैं, अतः चलित रस घी-तेल और चलित रसवाले मिष्ठान-पक्वान्न भी अभक्ष्य जानना चाहिए।

मर्यादाके बाहिर तो सभी भक्ष्य पदार्थ अभक्ष्य हैं। किन्तु मर्यादाके भीतर भी किसी कारण-से चलित रस हुए भक्ष्य पदार्थ भी अभक्ष्य हो जाते हैं।

बड़ी-पापड़ आदि जिस दिन बनाये जावें, उसी दिन भक्ष्य हैं। बड़ीको सुखाकर उसी दिन घी-तेलमें सेंक लेनेपर उसके खानेकी मर्यादा अन्नके समान जानना चाहिए। यही बात पापड़को घी-तेलमें तल लेनेपर लागू होती है।

औषधिके रूपमें काममें आनेवाले सभी प्रकारके द्राक्षासव आदि आसव मदिराके समान ही अभक्ष्य हैं। इसी प्रकार जिनमें मद्यकी या मधुकी पुट दी गई है, ऐसी सभी प्रकारकी देशी या विदेशी औषधियाँ अभक्ष्य हैं।

वर्तमानमें प्रचलित कितनी ही अंग्रेजी दवाएँ पशुओंके जिगर, कलेजा आदिसे बनाई जाती हैं, वे तो अभक्ष्य हैं ही, किन्तु ऐसे इंजेक्शन भी लगवानेके योग्य नहीं हैं जो कि पशुओंके विभिन्न रस-रक्तादिसे बनाये जाते हैं।

३९. द्विदलान्नकी अभक्ष्यताका स्पष्टीकरण

कच्चे दूधमें, कच्चे दूधसे जमे दहीमें और उसके तक्र (ताक छांछ) में दो दानेवाले अन्न (चना, मूंग, उड़द, मसूर आदि) के चून, आटे आदिके मेलसे बननेवाले कढ़ी, रायता, दही बड़े आदि पदार्थोंको द्विदल या द्विदलान्न कहते हैं। ऐसे द्विदलान्नके मुखमें जानेपर जीभ-लारके संयोगसे सम्मूर्च्छिम त्रसजीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, इसलिए द्विदलान्नको अभक्ष्य माना गया है।

आजसे ५० वर्ष पूर्वकी बात है, मैं ग्रीष्मावकाशमें ललितपुर ठहरा हुआ था और प्रतिदिन प्रातः स्नानार्थ नदी पर जाया करता था। एक मुसलमानको पींजरेमें तीतर और हाथमें कटोरा लिए प्रतिदिन देखा करता था। वह कटोरेमें रखे छाँछ और बेसन (चनेकी दालका चून) को अंगुलीसे घोलकर, उसमें थूककर और सूर्यकी किरणोंकी ओर कुछ देर दिखाकर उसे कबूतरके आगे पिंजरेमें रख देता था। जब एक दिन मैंने उसके ऐसा करनेका कारण पूछा तो उसने बताया कि छांछमें घुले उस बेसनमें थूंककर सूर्यकी किरणोंके योगसे कीड़े पड़ जाते हैं, जिन्हें यह तीतर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चुग लेता है। मुझे यह सुनते ही 'आमगोरससंम्पृक्तं द्विदलं' वाक्य याद आया और जाना कि शास्त्रका यह वाक्य यथार्थ है और द्विदलान्न अभक्ष्य है। मैंने इस घटनाको तभी एक लेख-द्वारा जैन मित्रमें प्रकाशित भी किया था।

'आमगोरससम्पृक्तं' का अर्थ पं० आशाधरजीने कच्चे दूध, दही छांछसे मिश्रित द्विदल-अन्न ही किया है और अपने इसी अर्थके पोषणमें ज्ञानदीपिका पंजिकामें योगशास्त्रका निम्न श्लोक भी उद्धृत किया है—

आमगोरससम्पृक्तद्विदलादिषु जन्तवः।
दृष्टाः केवलिभिः सूक्ष्मास्तस्मात्तानि विवर्जयेत्।—(योगशास्त्र ३।७१)

इस श्लोकमें तो केवलि-दृष्ट सूक्ष्म जीवोंकी उत्पत्ति बतलाई गई है, परन्तु ऊपर दी गई घटना तो ऐसे स्थूल त्रसजीवोंकी उत्पत्ति प्रकट करती है, जिसे कि कबूतर अपनी चोंचसे चुग सकता है।

'आमगोरससम्पृक्त द्विदल अन्न अभक्ष्य है, इसके आधार पर लोग उष्ण करके जमाये गये दूध, दही और उसके छांछसे सम्पृक्त द्विदलान्नको अभक्ष्य नहीं मानते हैं। कुछ यह भी कहते हैं कि उष्ण दूधसे जमे दही और बने छांछको भी उष्ण करके द्विदल अन्नको मिलाना चाहिए। कितने ही प्रान्तोंमें कच्चा दूध जमाया जाता है। इसलिए सभी बातोंका विचार विवेकी जनोंको करना चाहिए।

किन्तु एक ऐसा भी प्रमाण उपलब्ध हुआ है, जिसके अनुसार पक्व भी गोरसमें मूंग, चना आदि द्विदलवाली वस्तुओंके मिलानेपर भी सम्मूर्च्छिम त्रसजीव उत्पन्न हो जाते हैं और वैसे द्विदलान्नके खाने पर उनका विनाश हो जाता है—

यथा—आमेन पक्वेन च गोरसेन मुद्गादियुक्तं द्विदलं तु काष्ठम्।
जिह्वाद्युतिं स्यात् त्रसजीवराशिः सम्मूर्च्छिमा नश्यति नात्र चित्रम्॥
(विवरणाचार, अध्याय ६)

अतः कच्चे या पकाये हुए गोरसके साथ सभी प्रकारके द्विदल अन्नोंके भक्षणका त्याग ही श्रेयस्कर है।

४०. सूतक-पातक विचार

प्रस्तुत श्रावकाचार-संग्रहके प्रथम भागमें संकलित किसी भी श्रावकाचारमें सूतक-पातकका कोई विधान नहीं है। दूसरे भागमें संकलित सागार धर्मामृतमें भी इसका कोई उल्लेख नहीं है। पं० मेधावीके धर्म संग्रह श्रावकाचारके छठे अधिकारमें सर्वप्रथम सूतक-पातकका विचार दृष्टि गोचर होता है। वहाँ बताया गया है—

मरण तथा प्रसूतिमें दश दिनतक सूतक पालना चाहिए। इसके बाद ग्यारहवें दिन घर, वस्त्र तथा शरीरादि शुद्ध करके और मिट्टीके पुराने बर्तनोंको बाहिर करके, तथा शुद्ध भोजनादि सामग्री बनाकर सर्वप्रथम जिन भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए। शास्त्रोंकी तथा मुनियोंके चरणोंकी विधि पूर्वक पूजा करके तथा व्रतका उद्यापन करके शुद्ध होकर फिर गृह-कार्यमें लगना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए। सूतकमें दान, अध्ययन तथा जिन-पूजनादि शुभकर्म नहीं करना चाहिए, क्योंकि सूतकके दिनोंमें दान-पूजनादि करनेसे नीचगोत्रका बन्ध होता है। गोत्रके लोगोंको पांच दिन तक उक्त कार्य नहीं करना चाहिए। अन्य मतके अनुसार क्षत्रियोंको पांच दिन, ब्राह्मणोंको दश दिन, वैश्योंको बारह दिन और शूद्र लोगोंको पन्द्रह दिन तक सूतक पालन करना कहा है।

(देखो भाग २ पृ० १७४-१७५, श्लो० २५७-२६१)

उक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि पं० मेधावीके समय सूतक-पातकका प्रचार था और उसमें भी दिनोंके विषयमें मान्यता-भेद था।

पं० मेधावीके बाद रचे गये ३ श्रावकाचारोंमें भी सूतक-पातकका कहीं कोई विधान दृष्टिगोचर नहीं होता है। किन्तु त्रिवर्णाचारमें तथा किशन सिंह क्रिया कोषमें (भा० ५ पृ० १९५ पर, मूलाचार भाषाका उल्लेख कर इसका अवश्य विधान किया गया है। वह भी पाठकोंको द्रष्टव्य है।

जन्मका सूतक		मरणका सूतक	
१ तीन पीढ़ी तक	१० दिन	तीन पीढ़ी तक	१२ दिन
२ चौथी पीढ़ी	५ दिन	चौथी पीढ़ी	६ दिन
३ शेष पीढ़ियोंको	एक एक दिन कम	शेष पीढ़ियोंको	एकएक दिन कम
४ विवाहिता पुत्रीके अपने घरमें प्रसूतिमें	३ दिन	विवाहिता पुत्रीकी सन्तानके अपने घर मरने पर	३ दिन
५ पशुकी प्रसूतिमें	१ दिन	पशुके मरने पर	१ दिन

संहिताओंमें यह भी लिखा है कि जहाँ जैसी प्रवृत्ति प्रचलित हो तदनुसार आचरण करना चाहिए।

लाटी संहिताकारने एषणा शुद्धिके लिए सूतक-पातक पालनेका अवश्य निर्देश किया है। यथा—

सूतकं पातकं चापि यथोक्तं जैनशासने।
एषणाशुद्धिसिद्धयर्थं वर्जयेच्छ्रावकाग्रणीः॥—(भा० ३ पृ० १०७ श्लो० २५१)

भावार्थ—उत्तम श्रावक भोजनकी शुद्धिके लिए सूतक-पातक वाले घरके भोजन-पानका त्याग करे।

४१. स्त्रीके मासिक धर्मका विचार

यद्यपि प्राचीन श्रावकाचारोंमें रजस्वला स्त्रीके विषयमें कोई चर्चा नहीं है, क्योंकि उसका श्रावकके व्रतोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी अर्वाचीन श्रावकाचारोंमें उसकी चर्चा की गई है। सर्वप्रथम रजस्वलाकी चर्चा पं० मेधावीने अपने धर्म-संग्रह श्रावकाचारमें की है और उसके कर्तव्योंका विस्तृत वर्णन करते हुए बताया है कि रजोदर्शनसे लेकर चतुर्थ दिनके स्नान करने तक वह मौनसे एकान्त स्थानमें रहे, उस स्थानकी वस्तुओंका स्पर्श न करे, नीरस भोजन करे, मिट्टीके बर्तनमें या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केले आदिके पत्ते पर रखकर भोजन करे, उसके द्वारा स्पर्श की हुई वस्तु गृहस्थको अपने काममें नहीं लेना चाहिए। रजस्वला स्त्रीके स्पर्शसे नेत्र-रोगी अन्धा हो जाता है, पकवान आदि भोज्य वस्तुओंका स्वाद बिगड़ जाता है इत्यादि (भाग २ पृष्ठ १७५ श्लोक २६२-२७२)।

उसके शब्द सुननेसे पापड़ों तकका स्वाद बिगड़ जाता है, ऐसा प्रायः सभीका अनुभव है। श्री अभ्रदेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावकाचारके प्रारम्भमें ही रजस्वला स्त्रीके घरकी वस्तुओंके स्पर्श करनेका निषेध किया है और उसके देव-पूजनादि करनेपर उसके बन्ध्या होने, आगामी भवमें नपुंसक और दुर्भागी होने आदिका वर्णन किया है। (भाग ३ पृष्ठ २०७ श्लोक १२ आदि)

दक्षिण भारतमें आज भी उच्च वर्णवाले लोगोंमें रजस्वला स्त्री घरका कोई काम-काज नहीं करती है और एकान्तमें रहकर नीरस भोजन केले या ढाकके पत्तोंपर रखकर खाती है। परन्तु उत्तर भारतमें इसका कोई विचार नहीं रहा है, भोजन बनानेके सिवाय वह प्रायः घरके सब काम करती है और सारे घरमें आती-जाती है। विवेकी स्त्री-पुरुषोंको इसका अवश्य विचार करना चाहिए।

४३. उपसंहार

स्वामी समन्तभद्रने अपने रत्नकरण्डकमें श्रावक धर्मका जो सूत्र-रूपसे सयुक्तिक वर्णन किया है, वह परवर्ती श्रावकाचारोंके लिए आधारभूत और आदर्श रहा है। उत्तरकालवर्ती श्रावकाचार-कर्ताओंने अपने-अपने समयमें होनेवाले दुष्कृत्योंका निषेध और आवश्यक कर्त्तव्योंका विधान करके उसे इतना अधिक पल्लवित, विकसित और विस्तृत कर दिया है कि तदनुसार आचरण आजके सामान्य गृहस्थके लिए दूभर या दुर्वल हो गया है।

स्वामी समन्तभद्रने प्रारम्भमें ही सम्यग्दर्शनका सांगोपांग वर्णन कर जो उसकी महिमा बतायी है, और उसे मोक्षमार्गका कर्णधार कहा है, उस पर आज विचार-शील मनुष्योंका ध्यान जाना चाहिए और उसे मूढ़ताओं और मदादि दोषोंसे रहित पालन करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

सम्यक्त्वको धारण करनेके पश्चात् पाँच अणुव्रतोंको धारण करनेमें भी आज किसीको कोई कठिनाई नहीं है। हाँ, कालाबाजारी करने और जिस किसी भी अवैध मार्गसे धन-संग्रह करनेवालोंको अवश्य ही कठिनाई हो सकती है।

मद्य, मांस और मधुका सेवन जैन घरोंमें कुल-परम्परासे नहीं होता रहा है, परन्तु आज उन्हींके घरोंमें उन्हींकी सन्तान मदिरा-पान करने और होटलोंमें जाकर नाना प्रकारके व्यंजनोंमें बने मांसका भक्षण करने लगी है। फिर मधु-सेवनकी तो बात ही क्या है। यदि आजके जैन मांस-भक्षण और मदिरा-पानका ही त्याग करें तो वही जैनत्वकी प्राप्तिका प्रथम श्रेयस्कर कदम होगा।

आचार्योंने धर्माचरण करनेके लिए सर्व प्रथम अशुभ कार्योंके त्यागका उपदेश दिया है। तत्पश्चात् शुभ कार्योंके करनेका विधान किया है। आजका मनुष्य अशुभ कार्योंका त्याग न करके जैनी या श्रावक कहलानेका हास्यास्पद उपक्रम करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो विचार-शील जैन श्रावकधर्म धारण करनेका विचार भी करते हैं, वे परवर्ती ग्रन्थकारोंके द्वारा प्रतिपादित बोझिल श्रावक-धर्मको देखकर ही डर जाते हैं और उसे मूलरूपसे भी धारण करनेका साहस नहीं कर पाते हैं। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि मिट्टी-लकड़ीसे बना घर भी घर कहलाता है, ईंट-चूनेसे बना भी घर घर है और सीमेन्ट-लोहेसे बना या वातानुकूलित घर भी घर कहलाता है। जिस मनुष्यकी जैसी आर्थिक स्थिति होती है, वह उसीके अनुसार अपने घरको बनाता है। इसी प्रकार जिस व्यक्तिकी जैसी कौटुम्बिक परिस्थिति, आर्थिक स्थिति और आत्मिक शक्ति हो, उसे उसी प्रकारका स्वयोग्य श्रावकधर्म धारण करना चाहिए।

संयमासंयम या देश चारित्र लब्धिके जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तक असंख्यात स्थान होते हैं, उनमेंसे जो जितने अंशका पालन कर सके, उतना ही अच्छा है। ज्यों-ज्यों विषय-कषायोंकी मन्दता होगी, त्यों-त्यों वह संयमासंयम लब्धिके ऊपरी स्थानों पर चढ़ता जायगा और अन्तमें संयम लब्धिको भी प्राप्त कर लेगा।

सबसे ध्यान देनेकी बात यह है कि सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंके ऊपर श्रावक और मुनि धर्मका भव्य प्रासाद खड़ा होता है। यदि कोई श्रावक या मुनि धर्मका पालन करते हुए भी सम्यक्त्वके आठों अंगोंका पालन नहीं करता है तो उसका वह धर्म-प्रासाद बिना नींवके मकानके समान ढह जावेगा। आज लोगोंकी इस मूलमें ही भूल हो रही है। जो लोग अपनेको तत्त्वज्ञ मानते हैं और स्वयंको सम्यग्दृष्टि कहते हैं, उनमें भी उपगूहन, स्थितिकरण और वात्सल्य जैसे अंगोंका अभाव देखा जाता है और जो अपनेको व्रती मानते हैं, उनमें भी निःकांक्षित, अमूढ़दृष्टि आदि अंगोंका अभाव देखा जाता है और दोनोंमें एक दूसरेकी निन्दाका प्रचार पाया जाता है।

प्रायः सभी श्रावकाचारोंमें सम्यक्त्वके एक-एक अंगमें और श्रावकके एक-एक अणुव्रतमें प्रसिद्ध पुरुषोंकी कथाओंका वर्णन किया गया है। जिससे ज्ञात होता है कि एक ही अंग या व्रतके पालन करनेवाले व्यक्तिका भी बेड़ा पार हुआ है और वह लोकमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार व्यसनोंमें सबसे बड़ा व्यसन जुआ खेलना है, क्योंकि वह सभी अनर्थों और व्यसनोंका मूल कारण है, उसी प्रकार सम्यक्त्वके सभी अंगोंमें निःशंकित और सभी व्रतोंमें अहिंसाव्रत प्रधान है। यदि मनुष्य इस प्रथम अंग और प्रथम व्रतको भी धारण करनेका प्रयत्न करे तो शेष अंगोंका पालन और शेष व्रतोंका धारण भी सहजमें ही क्रमशः उसके स्वयमेव हो जायगा।

आचार्य जिनसेनने श्रावकके लिए जिन पक्ष, चर्या और साधनका विधान किया है और परवर्ती आचार्योंने उनके पालन करनेवालोंके क्रमशः पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक नाम दिया है। इनमेंसे आजके जैनोंको कमसे कम पाक्षिक श्रावकके कर्त्तव्योंका तो पालन करना ही चाहिए। वे कर्तव्य इस प्रकार हैं—

१. वीतराग जिनदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसामयी धर्मपर दृढ़ श्रद्धा रखना।

२. मद्य, मांस, मधुके सेवनका त्याग, रात्रि-भोजनका त्याग, अगालित जलपान, और वाजीरू कोकाकोला आदि पेय-पदार्थोंके पीनेका त्याग।

३. सातों व्यसनोंका त्याग, स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्री-सेवनका त्याग।

४. काला बाजारीका त्यागकर न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. प्रतिदिन देव-दर्शन और यथा संभव जिन-पूजन करना तथा शास्त्र-स्वाध्याय नियम-से करना ।

६. मुनि, श्रावक एवं साधर्मी भाइयोंको आहारादि कराना ।

७. गुरुजनोंको सेवा करना और यथा शक्ति दान देना ।

ग्यारह प्रतिमाओं के धारकोंको नैष्ठिक कहते हैं और जीवनके अन्तमें समाधिमरण कर आत्मार्थके साधन करनेवालोंको साधक कहते हैं। अतः नैष्ठिक श्रावक बनने और समाधिमरण करनेकी प्रतिदिन भावना करनी चाहिए ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुन्दकुन्द-श्रावकाचारकी विषय-सूची

प्रथम उल्लास १-२१

मंगलाचरण और सर्व शास्त्रोंका सार निकाल कर श्रावकाचारके कथनकी प्रतिज्ञा १

इष्टदेवका ध्यान कर रात्रिके अष्टम भाग शेष रहनेपर सो कर उठनेका विधान २

रात्रिमें उत्तम स्वप्न देखकर नहीं सोनेका और दुःस्वप्न देखकर पुनः सोनेका विधान २

नौ प्रकारके स्वप्नोंमेंसे अन्तिम तीन प्रकारके स्वप्न सत्य और फलप्रद होते हैं २

अशुभ स्वप्न देखनेपर शान्तिका विधान २

दक्षिण या वाम नासिका स्वरके अनुसार दक्षिण या वाम पाद भूमिपर रखकर शय्यासे उठनेका विधान २

पृथ्वी, जल तत्त्व आदिमें निद्रा विच्छेदके होनेपर सुख-दुःखादि देनेका वर्णन ३

पृथ्वी आदि तत्त्वोंके परिवर्तन और प्रमाणका वर्णन ३

पृथ्वी आदि तत्त्वोंके चिन्होंका निरूपण ४

दन्तधावन कर वज्रीकरण और उषा जल-पान का वर्णन ५

प्रातःकाल नदी तीर आदिको छोड़कर एकान्त स्वच्छ स्थानमें मल-मूत्र करनेका निरूपण ५

शौच शुद्धि करके व्यायाम करनेका विधान ६

चतुर्वर्णके मनुष्योंके लिए दातुनकी लम्बाईका प्रमाण और विभिन्न प्रकारके वृक्षोंकी दातुनोंके गुणोंका वर्णन ७

सूर्यग्रहण एवं अष्टमी आदि विशिष्ट तिथियोंमें काष्ठकी दातुन करनेका निषेध ८

खाँसी-श्वांस आदिके रोग वाले मनुष्यको काष्ठ दातुन करनेका निषेध ८

नासिकासे जल-पानके गुणोंका वर्णन ८

दन्तधावन करके पूज्य एवं वृद्ध जनोंको नमस्कार करनेका विधान और उसके फलका वर्णन ८

जलसे स्नान कर और मंत्रोंके द्वारा आत्माको पवित्र कर शुद्ध वस्त्र धारण करके घरमें स्थित देव पूजन करनेका विधान ९

एकान्तमें मौन पूर्वक एवं जन-संकुल होनेपर शब्दोच्चारण पूर्वक जाप करनेका विधान ९

पूजनके अनन्तर आगन्तुक मनुष्यके द्वारा किसी प्रकारका प्रश्न पूछने पर उसके फलाफल जानने और कहनेका विधान १०

आचार्य, कवि, विद्वान्, और कलाकारोंको सदा प्रसन्न रखनेका विधान ११

तत्पश्चात् सार्वजनिक धर्मस्थानमें जाकर देव पूजनादि करनेका विधान ११

जिनमन्दिरमें पद्मासन और खड्गासन प्रतिमाके मान-प्रमाण आदिका विस्तृत वर्णन १२

सौ वर्षसे अधिक प्राचीन वङ्गित भी प्रतिमाकी पूज्यताका विधान १४

विभिन्न आकार वाली एवं हीनाधिक आकार वाली प्रतिमाओंके पूजनके फलका निरूपण १४

जिन मन्दिरके प्रमाणके अनुसार प्रतिमाके निर्माणका निरूपण १५

जिनमन्दिरके गर्भालयके पाँच भाग कर उनमें क्रमशः यक्ष, देवी आदिके स्थापनका निरूपण १६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनमन्दिरके लिए भूमिकी परीक्षा कर उसके फलाफलका वर्णन १६
जिनमन्दिरके लिए ग्रहण की गई भूमिके नौ भाग कर और उनमें अकारादि अक्षर लिखकर भूमिमें स्थित अस्थि-शल्य जाननेका वर्णन १७
जिनमन्दिरकी लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाईके प्रमाणका निरूपण १८
मन्दिर निर्माणके पश्चात् उसे एक दिन भी ध्वजा हीन न रखनेका विधान १९
मन्दिरमें स्तम्भ, पट्टी आदिको शिल्प-शास्त्रके अनुसार लगानेका विधान १९
प्रतिमाके योग्य काष्ठ और पाषाणकी परीक्षा १९
प्रतिमामें दिखनेवाली डयोरेके फलाफलका विचार २०
देव-पूजनके पश्चात् गुरूपासना और शास्त्र-श्रवणका विधान २०

द्वितीय उल्लास २२-३२

विभिन्न तिथियोंमें स्नान करनेके फलाफलका निरूपण २२
अज्ञात दुष्प्रवेश एवं मलिन जलाशयमें स्नान करनेका निषेध २२
शीतकालमें तैलमर्दनके पश्चात् उष्ण जलसे स्नान करनेका विधान २२
रोगी पुरुषको स्नान करनेके अयोग्य नक्षत्र और दिनोंका वर्णन २३
विभिन्न नक्षत्रों, दिनों और तिथियोंमें क्षौरकर्मका निषेध २३
अपनी स्थिति और आयके अनुसार वेश-भूषा धारण करनेका विधान २३
नवीन वस्त्र धारण करनेके योग्य दिन और नक्षत्र आदिका विधान २३
विवाह आदि अवसरोंपर नवीन वस्त्र धारण करनेगें तिथि, वार और नक्षत्र आदिका विचार आवश्यक नहीं २४
नवीन वस्त्रके नौ भाग कर उनमें देवतादिके भागोंका और उनके मूषक आदिके द्वारा काटे जाने या अग्निसे जल जानेपर फलका निरूपण २४
कत्था, चूना और सुपारी आदिसे युक्त ताम्बूल भक्षणके गुणोंका वर्णन २५
न्याय-नीतिके अनुसार धनोपार्जन करनेका विधान २५
धन ही सर्व पुरुषार्थोंका कारण है अतः उत्तम उपायोंसे उसे उपार्जन कर कुटुम्ब पालन और दानादिमें लगानेका विधान २६
हाथकी अंगुलियोंके संकेत द्वारा क्रय-विक्रयके योग्य वस्तुओंके मूल्योंका निरूपण २७
ब्राह्मण, सैनिक, नट, जुआरी और वैश्यादिकोंको धनादिक उधार देनेका निषेध २७
कूट नाप-तौल आदिसे उपार्जित धन अग्नि तप्त तवे पर गिरी जल-बिन्दुके समान शीघ्र नष्ट हो जाता है २८
असत्य शपथ करनेका निषेध २८
देव, गुरु और जीव-रक्षादिके लिए असत्य भी शपथ करनेमें पाप नहीं है २८
जुआ आदि खेलकर धन कमाना काली कूचीसे भवनको धवल करनेकी इच्छाके समान है २८
अन्यायी पुरुषोंके धनसे और निर्माल्य आदिके द्रव्यसे धन-वृद्धिकी इच्छा विष खाकर जीवित रहनेके समान है २८
अपनी और अपने धनकी रक्षाके लिए सेवा करनेका विधान २८
योग्य राजा या स्वामीके गुणोंका वर्णन २९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य सेवकके कर्त्तव्यों और गुणोंका वर्णन २९
सेवक स्वामीके पास किस प्रकार और कहाँपर बैठे ३०
सेवकका वेष स्वामीके वेषके समान या अधिक न हो ३०
सेवकके सभामें नहीं करने योग्य कार्योंका विधान ३०
स्वामीकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता जाननेके चिन्होंका वर्णन ३१
उपार्जित धनके चार भाग कर उनका धर्म कार्य, पोष्य वर्गके पोषण, भोग-उपभोगमें व्यय करने और एक भागको भंडारमें रखनेका विधान ३१
पुण्योपार्जनके लिए व्यापारीको उत्तम पुरुषार्थ करना प्रतिदिन आवश्यक है ३२

तृतीय उल्लास ३३-४१

गृहस्थको बाहरसे घर आनेपर वस्त्र-परिवर्तन और शारीरिक-शुद्धि करना आवश्यक है ३३
गृहस्थ चक्की चूल्हे आदि पाँच कार्योंके द्वारा निरन्तर त्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसा करता है अतः उसे उसकी शुद्धिके लिए धर्मका आचरण आवश्यक है ३३
दया, दान, देव-पूजा, गुरु-भक्ति, सत्य, क्षमा, आदि धर्मोंका गृहस्थको पालन करना चाहिए ३३
माध्याह्निक पूजा करके अतिथि, याचक और आश्रित जनोंको भोजन कराकर गृहस्थको स्वयं भोजन करना चाहिए ३३
भोजनके समय आये हुए व्यक्तिसे जाति, गोत्र और पठित विद्या आदिको नहीं पूछना चाहिए ३४
जिस घरसे अतिथि बिना भोजनके वापिस जाता है उसके महान् पुण्यकी हानि होती है ३४
देव, गुरु, नगर-स्वामी और कुटुम्बी जनोंके आपद् ग्रस्त होनेपर भोजन करनेका निषेध ३४
भोजन करनेके पूर्व अपने आश्रित जनों और पशुओंके खान-पानका विचार कर ही भोजन करनेका विधान ३४
अजीर्ण होनेपर किया गया भोजन अनेक रोग उत्पन्न करता है ३५
अजीर्णके चार भेदोंका और उनके शमन करनेके उपायोंका वर्णन ३५
भोजन किस प्रकारसे करे और किस प्रकार से न करे इसका विस्तृत निरूपण ३५
जो पुरुष सुपात्रको दान देकर और परमेष्ठीका स्मरण कर भोजन करते हैं वे धन्य हैं ३६
खाने योग्य वस्तुओंके खानेके क्रमका वर्णन ३७
नहीं खाने योग्य भोजनका वर्णन ३७
समान जाति और शील वाले तथा अपनेसे अधिक आचार-विचार वाले पुरुषोंके घर भोजन करनेका और हीनाचारी नीच जनोंके घर भोजन नहीं करनेका विधान ३८
भोजनके पश्चात् दो सौ कदम घूमने या दो घड़ी विश्राम करनेका निरूपण ३८
घड़ीके प्रमाण जाननेका वर्णन ३८
विष-मिश्रित अन्नके जाननेकी पहिचान ३९
विष-युक्त भोज्य वस्तुओंके विकृत वर्णका निरूपण ४०
विष-मिश्रित अन्न खानेपर सिर-पीड़ा आदि शारीरिक विकारोंका वर्णन ४१
विष-युक्त अन्नके देखनेपर चकोर, कोयल और मार्जार, वानर आदि पशु-पक्षियोंके अङ्ग-विकारका वर्णन ४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ उल्लास

भोजनके पश्चात् विश्राम कर अपने सलाहकारोंके साथ गृहस्थको आय-व्ययका विचार करना चाहिए ४२
दो घड़ी दिन शेष रहनेपर ऋतुके अनुसार परिमित भोजन करना चाहिए ४२
रात्रि-भोजनका निषेध-सूर्यास्तके समय शरीरिक शुद्धि कर कुल-क्रमागत धर्म एवं कार्य करनेका विधान ४२
सन्ध्याके समय नहीं करने योग्य कार्योंका वर्णन ४२
सन्ध्या-कालका निरूपण ४२
४२

पंचम उल्लास

४३-६५
सायंकालके समय जलाये गये दीपककी शिखाके द्वारा इष्ट अनिष्ट फलका वर्णन ४३
रात्रिमें देव पूजन, स्नान, दान और खान-पानका निषेध ४३
जीव-व्याप्त, छोटी और टूटी खाट पर सोनेका निषेध ४३
वाँबी वृक्षतल आदिमें सोनेका निषेध ४३
शरीर, शील, कुल, वय, विद्या और धनादिसे सम्पन्न व्यक्तिको अपनी पुत्रीको देनेका विधान ४३
मूर्ख, निर्धन, और दूरदेशस्थ पुरुष आदि को कन्या दनेका निषेध ४३
उत्तम पुरुषके तीन स्थान गंभीर, चार स्थान ह्रस्व, पाँच स्थान सूक्ष्म, और पांच स्थान दीर्घ होते हैं ४४
स्वर्ग-नरक आदि चारों गतियोंसे आनेवाले और मरकर उनमें उत्पन्न होने वाले मनुष्योंके बाह्य चिह्न ४४
तिल, मसक आदि चिह्न पुरुषके दक्षिण भागमें और स्त्रीके वाम भागमें उत्तम होते हैं ४५
पुरुषका कर्कश और स्त्रीका कोसल हाथ प्रशंसनीय होता है। ४५
हस्ततलके विभिन्न वर्णोंसे मनुष्यकी उच्चता और नीचताका विचार ४६
हस्ततल और अंगुलियोंकी विभिन्न आकृतियोंसे फलाफलका विचार ४६
हस्ततलकी रेखाओंसे शुभाशुभका विचार ४७
ऊर्ध्वरेखा और आयु-रेखा आदिसे उनके सामुद्रिक फलका विचार ४८
मत्स्य शंख पद्म आदि चिह्नोंसे उनके उत्तम फलका निरूपण ४९
धर्म-रेखा और पितृ-रेखा आदिके फलका वर्णन ४९
काक पदके आकारवाली रेखासे जीवनके अन्त भागमें आनेवाली विपत्तिका वर्णन ५०
विभिन्न अंगुलियोंके मध्यवर्ती छिद्रोंके फलका निरूपण ५०
विभिन्न वर्ण वाले नखोंके शुभाशुभ फलका वर्णन ५०
विवाह-योग्य कन्याके शारीरिक अंगोंके शुभ-अशुभ फलका विस्तृत वर्णन ५१
विषकन्याकी पहिचान बताकर उसके त्यागनेका विधान ५३
सदोष और बहुरोम वाली हीनाचारिणी स्त्रियोंके सम्पर्क त्यागनेका उपदेश ५४
पद्मिनी आदि चार प्रकारकी स्त्रियोंका वर्णन ५५
विरक्त स्त्रीकी पहिचान ५६
कुलीन स्त्रियोंके कर्तव्योंका निरूपण ५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुलीन स्त्रियोंके नहीं करने योग्य कार्योंका वर्णन ५८
पतिके प्रवासमें रहने पर स्त्रियोंके नहीं करने योग्य कार्योंका निरूपण ५८
रजस्वला स्त्रीके नहीं करने योग्य कार्योंका निरूपण ५८
ऋतु-स्नात स्त्रीके कार्योंका निरूपण ५९
गर्भाधानमें त्यागने योग्य नक्षत्र आदिका वर्णन ६०
बलवर्धक खान-पानका वर्णन ६१
स्त्रियोंके दोहलोंसे गर्भस्थ जीवके पुत्र-पुत्री आदि होनेकी पहिचान ६१
गर्भस्थ जीवके शारीरिक वृद्धिके क्रमका वर्णन ६१
मनुष्यके शरीरगत नाड़ियोंकी संख्या आदिका निरूपण ६१
गर्भस्थ जीवके मां के सोने पर सोने और जगनेपर जागने आदिका वर्णन ६२
जन्म-कालमें होने वाले विभिन्न योग व लग्नोंके शुभाशुभ फलका वर्णन ६३
दांत-युक्त शिशुका जन्म कुलका क्षयकारक होता है ६३
मनुष्योंकी दन्त-संख्यापर और उनके विभिन्न वर्णोंपर शुभाशुभ फलोंका वर्णन ६३
इष्टदेवको नमस्कार कर और चित्तको स्वच्छ कर खान-पानसे रहित होकर वाम पार्श्वसे मनुष्यके निद्रा लेनेका विधान ६३
रात्रि-जागरण करनेसे और दिनमें सोनेसे शरीरमें रूक्षता उत्पन्न होती है ६४
बाल वृद्ध और दुर्बल पुरुष आदिका दिनमें सोना लाभकारक है ६५
ग्रीष्म ऋतुमें दिनका सोना सुखकारक है किन्तु अन्य ऋतुओंमें दिवा-स्वाप, कफ और पित्त वर्धक होता है ६५

षष्ठ उल्लास ६६-६८
वसन्त ऋतुमें ग्रहण करने योग्य आहार विहार आदिका वर्णन ६६
ग्रीष्म ऋतुमें ग्रहण करने योग्य, आहार विहार आदिका वर्णन ६६
वर्षा ऋतुमें ग्रहण करने योग्य आहार-विहार आदि का वर्णन ६७
शरद ऋतुमें ग्रहण करने योग्य आहार, विहार आदि का वर्णन ६७
हेमन्त और शिशिर ऋतुमें ग्रहण करने योग्य आहार-विहार आदिका वर्णन ६८

सप्तम उल्लास ६९
दुर्लभ मनुष्य-भव पाकर मनुष्यको दिनका एक भी मुहूर्त व्यर्थ नहीं खोना चाहिए ६९
मनुष्यको आठ मास धनोपार्जन करके वर्षाकालमें एक स्थानमें सुखसे रहना चाहिए ६९
मनुष्यको ऐसा कोई उत्तम कार्य करना चाहिए जिससे दूसरा जन्म भी उत्तम प्राप्त हो ६९
प्रतिवर्ष साधर्मी-वात्सल्य कुटुम्बीजनोंका सन्मान और तीर्थ यात्रा करनी चाहिए ६९
अपने व्रतोंकी शुद्धिके लिए प्रतिवर्ष गुरुसे प्रायश्चित्त लेना चाहिए ६९
जो व्यक्ति अपने मृत्यु कालको जानता है वह महापुरुष है ६९

अष्टम उल्लास ७०-११५
मनुष्यके निवास करने योग्य देशका वर्णन ७०
मनुष्यके निवास नहीं करने योग्य स्थानका विस्तृत वर्णन ७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभिन्न निमित्तों एवं प्राकृतिक उत्पातोंके द्वारा देश, राष्ट्रका विनाश और दुर्भिक्ष आदि होनेके चिह्नोंका निरूपण ७०

अकालमें फूलने फलने वाले वृक्षादिके द्वारा दुष्फलों का वर्णन ७१

दुर्निमित्तोंसे सूचित दुष्फलोंकी निवृत्तिके लिए शान्ति-कर्म करनेका विधान ७२

नक्षत्रोंके आग्नेय, वायव्य, वारुण और माहेन्द्र मण्डलका निरूपण ७२

उल्कापात आदिके और आग्नेय मण्डल आदिके फलोंका निरूपण ७२

कौन-सा मण्डल किस दिशाको पीड़ित करता है और पूर्णिमा तिथिकी हीनाधिकता किस प्रकार वस्तुओंकी तेजी मन्दी लाती है इसका निरूपण ७३

सूर्य, चन्द्रके अपनी राशिमें स्थित होने पर स्वस्थता आदिका विचार ७३

ग्रहोंके मुसलयोग आदिका ज्योतिष शास्त्रके अनुसार शुभ-अशुभ फलका निरूपण ७४

चार प्रकारके मेघोंका वर्णन ७४

विभिन्न ग्रहोंका विभिन्न वारोंके योगमें वर्षाका विचार ७४

तुलासंकान्ति आदिके योगमें दुर्भिक्ष आदिका विचार ७५

वास्तुशुद्धि और विभिन्न मास, राशि और नक्षत्रके योगोंमें गृह-निर्माणका विधान ७५

कुमास, कुनक्षत्र आदिके योगमें गृह-निर्माणका निषेध ७५

गृह-भूमिके क्षेत्रफलको आठसे भाजित कर शेष रहे अंगोंसे निवास करने वाले आयका निरूपण ७६

गृह-निर्माणमें व्यय सूचक योगका और गुणोंका विचार ७७

सोलह प्रकारके गृहोंका और उनके फलका निरूपण ७८

निर्मित गृहकी अमुक दिशामें भंडार रसोई शस्त्र आदिके रखनेके स्थान निरूपण ७९

गृह और गृह-स्वामीकी राशियोंमें षडाष्टक योग आदिके दुष्फलका निरूपण ७९

भवन-निर्माणमें तुला, वेध आदिका निरूपण ७९

वृक्ष, कूप आदिसे अवरुद्ध द्वार शुभ नहीं होता ८०

अर्हन्त देव आदिकी ओर पीठ आदि करनेका निषेध ८१

घरकी वृद्धिके क्रमका निरूपण ८१

चन्दन, शंख आदि वस्तुएँ घरकी शोभावर्धक हैं ८१

घरमें खजूर अनार बेरी और विजौरा आदिका उत्पन्न होना गृह-विनाशक है ८२

भवनके समीप पीपल, वट, आदिके वृक्षोंके होनेसे दुष्फलोंका वर्णन ८२

विद्याध्ययन प्रारम्भ करनेमें बुध गुरु और सोमवार श्रेष्ठ हैं, मंगल और शनिवार अनिष्ट कारक होते हैं, शुक्र और रविवार मध्यम हैं ८२

विद्यारम्भके योग्य उत्तम नक्षत्रोंका निरूपण ८२

पढ़ाने वाले आचार्यका स्वरूप निरूपण ८२

आचार्य शिष्यको किस प्रकार शिक्षण और ताड़न आदि करे ८३

शिष्यका स्वरूप और उसके कर्त्तव्योंका निरूपण ८३

अध्ययनके अयोग्य तिथि आदिका निरूपण ८३

उल्कापात एवं बन्धुजनोंके मरणकाल आदिमें पढ़नेका निषेध ८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्याध्ययनके पाँच अंतरंग और पाँच बाह्य कारणोंका निरूपण ८४
संस्कृत प्राकृत आदि अनेक भाषाओंके व्याकरण तथा साहित्य तर्क, गणित, धर्म-शास्त्र, ज्योतिष और वैद्यक शास्त्रके भी पढ़नेका विधान ८४
वैद्यकके आठों अङ्गोंका निरूपण ८५
वात्स्यायन शास्त्र और नाट्य शास्त्रके भी सीखनेका विधान ८५
क्रूर मंत्रोंको छोड़कर उत्तम मंत्रोंके साधनेका विधान ८५
जङ्गम विषके विषयमें काल-अकालका विचार ८५
कुपित, उन्मत्त, क्षुभित और पूर्व बैरी सर्प प्राणियोंको डँसते हैं जो उनकी रक्षा करते हैं वे पुरुष धन्य हैं ८५
सर्प-दष्ट पुरुषके बचाने वाले वैद्यको वार तिथि और नक्षत्र आदिका विचार करना आवश्यक है ८६
पंचमी अष्टमी और चतुर्दशी आदि तिथियों में तथा मीन कुम्भ, वृष आदि राशियों में सर्प-दष्ट पुरुषके जीवनमें संशयका वर्णन ८६
मूल आश्लेषा आदि नक्षत्रोंमें और नैॠत्य आग्नेय तथा दक्षिण दिशाको छोड़कर अन्य दिशाओंसे आये हुए सर्प-दष्ट जीवके जीनेमें संशय रहता है ८६
सर्प-दष्ट स्थान काकपद आकारवाला श्यामवर्ण और शुष्क हो तो वह प्राण-संहारक होता है ८६
सर्प-दष्ट पुरुषके समाचार लाने वाले दूत की शुभ-अशुभ आकृतियोंसे सर्पदष्ट व्यक्तिके जीवन मरणका विचार ८७
दूतके अपने अंगके स्पर्शसे सर्प दष्ट व्यक्तिके अङ्गका परिज्ञान ८७
दूतके आनेपर नासिकाके स्वरसे, दूत द्वारा कहे गये वर्णोंकी संख्यासे और उसके मुख विकार आदिसे सर्प दष्ट व्यक्तिके जीवन-मरणका परिज्ञान ८८
कण्ठ, वक्षस्थल आदि मर्म स्थानों में सांपके द्वारा काटने पर मरणका निश्चय ८८
सिरके केश टूटने आदि बाह्य चिह्नोंसे सांपके द्वारा डसनेका निर्णय ८८
शरीर छेदन करने पर भी रक्तके नहीं निकलने आदि चिह्नोंसे सर्प दंशका निश्चय ८९
सर्पोंकी आठ जातियोंका वर्णन ९०
किस जातिका सर्प किस दिन और किस समय डसता है और किस सर्पका विष साध्य, असाध्य और कष्ट साध्य होता है इसका विस्तृत निरूपण ९०
किस दिन किस नक्षत्र और विधिके योगमें सर्प-विष कितने समय तक प्रभावी रहता है इसका विस्तृत निरूपण ९१
विभिन्न जातिके सर्पों द्वारा काटे जाने पर व्यक्तिकी विभिन्न चेष्टाओंका निरूपण ९२
रस, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओंके ऊपर सर्प विषके प्रभावका वर्णन ९३
तीन प्रकारके विषोंके लक्षण ९३
व्यक्तिके अमृत-स्थान और विष-स्थानपर सर्प दंशके प्रभावका वर्णन ९३
आत्म-साधना रूप अंतरंग उपाय और जीभ तालुके संयोगसे झरने वाले रसके द्वारा विषके दूर करनेके उपाय ९४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विष दूर करनेके बाह्य उपायोंका वर्णन
जैन मीमांसक आदि षट् दर्शनोंका विचार ९४
जैन दर्शनका वर्णन ९६
मीमांसक मतका निरूपण ९६
बौद्ध मतका वर्णन ९७
सांख्य मतका निरूपण ९८
शैव मतका वर्णन ९९
वैशेशिक-मत संमत द्रव्य गुण आदि पदार्थोंका निरूपण १००
नास्तिक मतका निरूपण १०१
विवेक-पूर्वक वचन उच्चारणका विधान १०२
अपनी और परायी गुप्त बात न कहनेका उपदेश १०३
स्व-पर और धर्म-साधक हित मित प्रिय वचन बोलनेका उपदेश १०४
रे, अरे आदि सम्बोधन-वचन बोलनेका निषेध १०४
बिना पूछे किसीको शिक्षा देनेका निषेध १०४
स्वजन-परिजनोंके साथ वचन-कलह नहीं करने वाला जगत्को जीतता है १०४
अपूर्व तीर्थ और नवीन वस्तुओंको देखनेका विधान १०५
सूर्य चन्द्र ग्रहण आदि देखनेका निषेध १०५
तेल, जल, अस्त्र और मूत्र आदिमें अपने मुखको देखनेका निषेध १०५
प्रसन्न, क्रोधी और षीतरागी पुरुषकी दृष्टिका वर्णन १०५
कामी, उन्मत्त, चोर और निद्रालु व्यक्तिकी दृष्टिका वर्णन १०५
विभिन्न वर्ण वाले नेत्रोंसे व्यक्तिकी विशेषताओंका विस्तृत निरूपण १०५
ईर्या समितिसे गमनका विधान १०६
गर्दभ और ऊँट आदिकी चालसे चलनेका निषेध १०७
रोगी वृद्ध और अंधे मनुष्य आदिको मार्ग देकर गमन करनेका विधान १०७
रात्रिमें वृक्षके मूलमें सोनेका निषेध १०७
सूतक-शुद्धिके नहीं होने तक वाहिर जानेका निषेध १०७
बिना मार्ग-भोजन लिए गमनका और अपरिचित मनुष्यके विश्वास करनेका निषेध १०७
हाथी और सींग वाले जानवरोंसे दूर रहकर चलनेका उपदेश १०८
जीर्ण शीर्ण नावके द्वारा नदी पार करनेका, दुर्गम जल स्थलमें प्रवेश करनेका, क्रूर स्वभावी चुगलखोर और खोटे मित्रों आदिके साथ गोष्ठी करनेका निषेध १०८
द्यूत-स्थान, अन्य पुरुषके भंडार और रनवासमें जानेका निषेध १०८
खुले मैदान आदि स्थानोंमें गुप्त मंत्रणाका निषेध १०८
विजयेच्छुक पुरुषको अपनी सामर्थ्य और अभिप्रायके प्रकट करनेका निषेध १०९
पाखण्डी, क्रूर, धूर्त और असत्य-भाषी आदि मनुष्योंके विश्वास करनेका निषेध १०९
अपने कुल, विद्या, बल, वचन, शक्ति, शरीर सामर्थ्य और आय-व्ययका मनुष्यको सदा विचार करना चाहिए ११०
११०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसके समीप सदा उठते बैठते हैं उसके गुण दोषोंका विचारना आवश्यक है ११०

जो कार्य जिस समय करना आवश्यक है उसे उसी समय करनेका विधान १११

अकुलीन भी पुरुष शौर्य, तप, विद्या और धनके द्वारा कुलीन बन जाता है १११

बहुत जनोंके साथ वैर करनेका, स्वीकृत व्रतके त्यागका और विनष्ट वस्तुके शोक आदिका निषेध १११

स्वजातिके कष्टकी कभी उपेक्षा न करे, किन्तु आदर पूर्वक सामाजिक एकताका कार्य करे १११

अपनी जाति वालोंके साथ कलह आदिका, कुलके अनुचित कार्य करनेका, अपने अङ्गोंको बजानेका और व्यर्थके अनर्थ दण्डोंको करनेका निषेध ११२

उन्मार्ग गमनसे अपनी और परायी रक्षाका उपदेश ११२

सन्मान-सहित दान, उचित वचन और नीति पूर्वक आचरण त्रिजगतको वश करता है, धन-हीन व्यक्तिका ऊँचा वेश धारण करना, धनी पुरुषका हीन वेश धारण करना और असमर्थका समर्थ पुरुषोंके साथ बैर करना हास्यजनक होता है ११२

चोरी आदिसे धन प्राप्तिकी आशा करना, धनोपार्जनके उपायोंमें संशय करना, शक्ति होनेपर भी उद्योग नहीं करना, फल-प्राप्तिके समय आलस्य करना, निष्फल कार्यमें उद्यम करना, शत्रुपर भी शंका न करना और मूर्ख आदिके वचनोंपर विश्वास करना, विनाशका कारण है ११२

ईर्ष्यालु होकर कुलटाकी कामना करना, निर्धन होकर वेश्याको चाहना और वृद्ध होकर विवाहकी इच्छा करना हास्यास्पद है ११२

तीन प्रकारके मूर्खोंका निरूपण ११३

तीन प्रकारके अधम और दुर्बुद्धि जनोंका निरूपण ११३

तीन प्रकारके मरणेच्छुक और मन्द बुद्धियोंका निरूपण ११३

तीन प्रकारके मूर्ख-शिरोमणि और अनर्थके पात्रोंका निरूपण ११३

अपयशके पात्रोंका निरूपण ११४

गुणोंका अभ्यास नहीं करनेवाला, दोषोंका रसिक और बहुत धन-हानि करके अल्प धनकी रक्षा करनेवाला सम्पदाओंका स्वामी नहीं होता ११४

दुर्जन-वल्लभ पुरुषोंका और बालकोंके द्वारा भी हास्यके पात्रोंका निरूपण ११४

सभामें शोभा न पाने वाले, दुर्गतिके अतिथि और अपने मुखसे अपनेको विद्वान् कहनेवाले पुरुष आदि सज्जनोंके द्वारा प्रशंसा नहीं पाते हैं ११४

खुशामदी पुरुषोंके वचनोंसे अपनेको बड़ा माननेवाला, स्वयं निर्गुण होते हुए भी गुणी जनोंकी निन्दा करनेवाला, पठन-पाठन प्रारम्भ करते ही अपनेको बड़ा विद्वान् मानने वाला, दान नहीं देनेवालेकी प्रशंसा करनेवाला, और नव रसोंसे अनभिज्ञ होनेपर भी अपनेको सर्व रसोंका ज्ञाता मानने वाला व्यक्ति केवाचकी फलीके समान जानना चाहिए ११४

तीन प्रकारके उद्वेगी पुरुषोंका निरूपण ११५

ज्ञानियोंके दोष देखने वाला, दुर्जनों और गुणी जनोंका निन्दक और महापुरुषोंका अवर्णवाद करनेवाला पुरुष अनर्थ-कारक होता है ११५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने घरके दुश्चरित्रको, मंत्र और धन आदि आठ बातोंको सदा गुप्त रखनेका निर्देश ११५

नवम उल्लास ११६-११७

आश्चर्य हैं कि लोग पापके फलको प्रत्यक्ष देखकर भी पाप कार्यसे विरक्त नहीं होते ११६

जीव-घात, मद्य-पान, असत्य-भाषण, चोरी, पर-वंचन, परदारा-संगम, आरंभ परिग्रह, अभक्ष्य-भक्षण, विकथा-आलाप और कु मार्ग-उपदेश आदिके द्वारा पापोंका उपार्जन होता है अतः उनके त्यागनेका उपदेश ११६

कृष्ण, नील और कापोत लेश्या रूप चिन्तवनसे, आर्त और रौद्र ध्यानसे तथा स्वपर-घातक क्रोध करनेसे दुर्गतिकी प्राप्ति होती है अतः उनके त्यागका उपदेश ११६

आठ प्रकारके मद करनेसे प्राणी नीच कुलादिको प्राप्त होता है, मायाचारसे दुर्गतियोंमें जाना पड़ता है, लोभसे उत्तम गुण भी दुर्गुण रूप हो जाते हैं इसलिए उक्त कषायोंका त्याग आवश्यक है ११६

यदि इन्द्रियोंके विषयोंका निग्रह है तो ध्यान अध्ययन आदि सब सफल हैं ११६

पापके उदयसे जीव पंगु, कोढ़ी, ऋणी, मूक, निर्धन और नपुंसक आदि होता है ११६

पापके उदयसे ही जीव, नारकी तिर्यंच हीनकुली मनुष्य और रोगी आदि होता है, संसारमें जो कुछ भी बुरा दिखायी देता हैं वह सब पापका माहात्म्य है ऐसा जानकर मनुष्योंको पापोंसे बचना चाहिए ११७

दशम उल्लास ११८-१२२

पुण्य और पापका प्रत्यक्ष फल देखकर ज्ञानीको सदा धर्म ही करना चाहिए ११८

धर्माचरणके विना मनुष्य जन्म निरर्थक है ११८

धर्मकी महिमाका निरूपण ११८

अहंकार या प्रत्युपकारकी भावनासे दिया गया दान धर्मका साधक नहीं, किन्तु परोपकार और दया बुद्धिसे दिया गया दान ही कल्याणका साधक है ११९

स्त्री लोह-शृंखलाके समान मनुष्यको घरमें बांधकर रखती है। अतः मनुष्यको धर्माचरणके लिए घरका त्याग आवश्यक है। ११९

बहिरंग और अंतरंग तपोंका वर्णन १२०

ख्याति लाभ पूजादिके लिए तपश्चरण करना शरीरको कष्टदायक एवं निरर्थक है १२०

संसारकी वस्तुओंकी अनित्यताका विचार १२०

जीवकी अशरणताका विचार १२०

संसार-परिभ्रमणताका विचार १२०

जीवके अकेले सुख दुःख भोगनेका चिन्तन १२१

शरीरसे जीवकी भिन्नताका विचार १२१

शरीरकी अशुद्धताका विचार १२१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आस्रव, संवर, कर्म-निर्जरा, लोक-संस्थान, मनुष्य-जन्मकी दुर्लभता और उत्तम धर्मका वर्णन १२१
भावनाओंका चिन्तवन ही संसारका नाश करता है १२१

एकादश उल्लास ११३-१३२

आत्म-चिन्तनके बिना शास्त्र-रचना आदि व्यर्थ है १२३
बहिरात्माके विचार १२३
ज्ञानीके सच्चे कुटुम्बका वर्णन १२३
साम्य भावके साधक स्वस्थ व्यक्तिका निरूपण १२३
मनकी सविकल्प और निर्विकल्प दशाका वर्णन १२४
ध्यानी पुरुष ही अमृतपायी और अगम स्थानका प्रापक है १२५
सच्चे ब्रह्मचारीका स्वरूप १२५
मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यथ्य भावनाका स्वरूप १२५
अन्तरात्मा और परमात्माका स्वरूप १२५
कर्म-मलीमस आत्मा ही आत्म-चिंतनसे परमात्मा बनता है १२६
पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानका वर्णन १२६
जब तक मन विषयोंमें संलग्न रहता है तब तक यथार्थ तत्त्वका दर्शन नहीं होता १२७
संकल्प-विकल्पोंके अभाव होने पर ही आत्म-ज्योति प्रकाशित होती है १२७
ज्योति पूर्ण आत्म-संस्थान में ही रूपांतीत आत्म-स्वरूपका दर्शन होता है १२७
आत्म द्रव्यके समीपस्थ होनेपर भी जो परद्रव्योंके सम्मुख दौड़ता है उससे बड़ा मूर्ख कोई नहीं १२८
यह आत्मा ही कर्म-रहित होनेपर लोकालोकका ज्ञाता सर्वज्ञ और सिद्ध कहलाता है १२८
आत्म-चिन्तनसे सभी अन्तरंग और बहिरंग विकारोंका विनाश होता है १२८
मुमुक्षु जनोंको अपने मन, वचन, कायका व्यापार छोड़कर और अंतरंगमें साम्य भावको धारण कर, मुक्ति-प्राप्तिके लिए तत्पर होना चाहिए १२९
सभी वेद, शास्त्र, तप, तीर्थ और संयम साम्यभावकी समता नहीं कर सकते १२९
नास्तिक-मती आत्म-तत्त्वको नहीं मानता है उसे समझानेके लिए विभिन्न तर्कोंके द्वारा आत्म-सिद्धिका विस्तृत वर्णन १२९
जिस प्रकार तिलोंमें तेल, काष्ठमें अग्नि, दुग्धमें घृत और पुष्पमें सुगन्धका निवास होता है उसी प्रकार इस शरीरमें भी आत्माका निवास जानता चाहिए १३१
शिशुमें दुग्ध-पान, लजवन्तीमें भय, अशोकमें मैथुन, और वेल वृक्षमें अर्थ-ग्रहण देखकर जीवमें आहारादि नंज्ञाओंका अस्तित्व अनादि कालसे सिद्ध है १३१
उक्त संज्ञाओं और कर्मोंके अभाव होनेपर ही जीव त्रिकाल-गोचर केवलज्ञानको प्राप्त करता है १३१
आत्मध्यान करनेवाले पुरुषकी आधि-व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं और सिद्धि सन्मुख उपस्थित होती है, अतः मनुष्यको सदा आत्म-चिन्तन करना चाहिए १३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वादश उल्लास १३३-१३९

दुःस्वप्न और दुर्निमित्तादिमें मृत्युको समीप आयी हुई जानकर विवेकी पुरुष देव-गुरुका स्मरण कर संन्यास धारण करनेकी इच्छा करते हैं १३३

जीवन भर पठित शास्त्रोंका, किये हुए तपका और पाले हुए व्रतका फल समाधिसे मरना ही है १३३

अल्प धन होने पर भी देनेकी इच्छाका होना, कष्ट आने पर भी सहन करना और मृत्युकाल आनेपर भी धैर्य धारण करना महापुरुषका स्वभाव है १३३

आयु बढ़ानेका संसारमें कोई उपाय नहीं, अतः समाधि-पूर्वक शरीर-त्याग करना ही कल्याण-कारक है, समाधि-पूर्वक शरीर-त्याग करनेवाला पुरुष ही सच्चा गुणी, सुभट और योगी है १३४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुन्दकुन्द श्रावकाचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री कुन्दकुन्द श्रावकाचार

शाश्वतानन्दरूपाय नमस्तेऽद्य कलावते । सर्वज्ञाय नमस्तस्मै कस्मैचित्परमात्मने ।।१
सोऽहं स्वायम्भुवं बुद्धं नरकान्तकरं गुरुम् । भास्वन्तं शङ्करं श्रीदं प्रणौमि प्रणतो जिनम् ।।२
जीवन्ती प्रतिमा यस्य वचो मधुरिमाञ्चितम् । देहं गेहं श्रियस्तं स्वं वन्दे जिनविधुं गुरुम् ।।३
ईप्सितार्थप्रदः सर्वव्यापत्तापघनाघनः । अर्हं जागर्तु विश्वस्य हृदि श्रीधरणक्षमः ।।४
चञ्चलत्वं कलङ्कं ये श्रियो ददति दुर्धियः । ते मुग्धा स्वं न जानन्ति निर्विषं कर्म पुण्यकम् ।।५
लक्ष्मी कल्पलताया ये वक्ष्यमाणोक्ति-दोहदम् । इच्छन्ति सुधियोऽवश्यं तेषामिष्टा फले ग्रहिः ।।६
कार्यः सद्भिस्ततोऽवश्यमाश्वैतां दातुमुद्यमः । यद्दाने जायते दातुर्भुक्तिर्मुक्तिश्च निश्चिता ।।७
कुर्वीयं सर्वशास्त्रेभ्यः सारमुद्धृत्य किञ्चन । पुण्यप्रसवकृत्स्वर्गापवर्गफलपेशलम् ।।८
स्वस्यान्यस्यापि पुण्याय कुप्रवृत्ति-निवृत्तये । श्रावकाचारविन्यासग्रन्थः प्रारभ्यते मितः ।।९
प्रवृत्तावत्र यो यत्नः क्वचित्कैश्चित्प्रदर्शितः । विवेकेनादृतः सोऽपि निर्वृतौ पर्यवस्यति ।।१०
अगदः पावनः श्रीदो जगच्चक्षुः सनातनः । एतैरन्वर्थतां यातु ग्रन्थोऽयं पाठकैः सह ।।११

जो सदा आनन्दरूप है, सर्वदा ही पूर्ण कलावान् हैं, सर्व तत्त्वोंके ज्ञाता है, ऐसे उस किसी अनिर्वचनीय परमात्माके लिए नमस्कार हो ।।१।। जो सदा उदितस्वरूप हैं, स्वयम्भू है; बुद्ध हैं, नरकके दुःखोंका अन्त करनेवाले हैं, गुरु हैं, ज्ञानसे भासुरायमान हैं, शंकर अर्थात् सुखके करने-वाले हैं और अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीके दाता हैं, ऐसे श्री जिनदेवको मैं नम्रीभूत होकर नमस्कार करता हूं ।।२।। जो जीवन्त प्रतिमास्वरूप है, जिसके वचन माधुर्यसे परिपूरित हैं, जिनका देह लक्ष्मीका घर है ऐसे अपने उन गुरु श्रीजिनचन्द्रको मै वन्दन करता हूं ।।३।। वे गुरुदेव अभीष्ट अर्थके देने वाले हैं, विश्वमें सर्वत्र व्याप्त सन्तापको दूर करनेके लिए मेघोंके समान हैं, तथा समस्त संसारके हृदयमें लक्ष्मी धरनेमें समर्थ हैं, वे मेरी बुद्धिको जागृत करें ।।४।। जो दुर्बुद्धिजन लक्ष्मी को चंचलताका कलंक प्रदान करते हैं, वे मुग्धजन विष-रहित अपने पुण्य कर्मको नहीं जानते हैं ।।५।। जो बुद्धिमान् लक्ष्मीरूप कल्पलताके वक्ष्यमाण वचनरूप दोहन (मनोवांछित अभिलाषा की पूर्ति) को चाहते हैं, उनकी अवश्य ही अभीष्ट फलके ग्रहणकी पूर्ति होती है ।।६।। इसलिए अवश्य ही सज्जनोंको इस लक्ष्मोके दान करनेके लिए उद्यम करना चाहिए। जिस लक्ष्मीके दान करनेपर दाताको स्वर्गीय भोगों की प्राप्ति और मुक्ति निश्चितरूपसे होती है ।।७।। सर्व शास्त्रोंसे कुछ सारको निकालकर मैं पुण्यको उत्पन्न करनेवाले और स्वर्ग तथा मोक्षरूप सुन्दर फलको देनेवाले इस श्रावकाचार की रचना करता हूं ।।८।। अपने और दूसरोंके पुण्य-सम्पादनार्थ, तथा खोटी प्रवृत्तियोंकी निवृत्तिके लिए यह परिमित श्रावकाचारके वर्णनरूप ग्रन्थ प्रारम्भ किया जाता है ।।९।। इस श्रावकाचारके प्रवर्तनमें जो कुछ भी प्रयत्न कहीं पर भी किन्हीं महापुरुषोंने किया है और उसे विवेकपूर्वक जिन पुरुषोंने समादृत किया है, वह प्रयत्न उन्हें मुक्तिमें पहुँचा करके विश्राम लेगा ।।१०।। रोग-संहारक, पवित्र, लक्ष्मी-प्रदाता, जगज्जनोंके नेत्र-स्वरूप, सदासे चला आया यह श्रावकाचाररूप ग्रन्थ इसे पढ़नेवाले पाठकोंके साथ सार्थकताको प्राप्त होवे ।।११।। सूर्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आलोक इव सूर्यस्य सुजनस्योपकारकृत् । ग्रन्थोऽयं सर्वसामान्यो मान्यो भवतु धीमताम् ॥१२
धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धयै ध्यात्वेष्टदेवताम् । भागेऽष्टमे त्रियामाया उत्तिष्ठेदुद्यतः पुमान् ॥१३
सुस्वप्नं प्रेक्ष्य न स्वप्यं कथ्यमह्नि च सद्-गुरो । दुःस्वप्नं पुनरालोक्य कार्यः प्रोक्त-विपर्ययः ॥१४
समधातोः प्रशान्तस्य धार्मिकस्यातिनीरुजः । स्यातां पुंसो जिताक्षस्य स्वप्नौ सत्यौ शुभाशुभौ ॥१५
अनुभूतः श्रुतो दृष्टः प्रकृतेश्च विकारजः । स्वभावतः समुद्‌भूतश्चिन्तासन्ततिसम्भवः ॥१६
देवताद्युपदेशोत्थो धर्म-कर्म-प्रभावजः । पापोद्रेकसमुत्थश्च स्वप्नः स्यान्नवधा नृणाम् ॥१७
प्रकारैरादिमैः षड्‌भिरशुभश्च शुभोऽपि च । दृष्टो निरर्थकः स्वप्नः सत्यस्तु त्रिभिरुत्तरैः ॥१८
रात्रेश्चतुर्षु यामेषु दृष्टः स्वप्नः फलप्रदः । मासैर्द्वादशभिः षड्‌भिस्त्रिभिरेकेन च क्रमात् ॥१९
निशान्ते घटिकायुग्मे दशाहात्फलति ध्रुवम् । दृष्टः सूर्योदये स्वप्नः सद्यः फलति निश्चितम् ॥२०
मालास्वप्नो हि दृष्टश्च तथाधिव्याधिसम्भवः । मल-मूत्रादिपीडोत्थः स्वप्नः सर्वो निरर्थकः ॥२१
अशुभः प्राक् शुभः पश्चात् शुभो वा प्रागथवाऽशुभः । पश्चात्फलप्रदः स्वप्नो दुःस्वप्ने शान्तिरिष्यते ॥२२
प्रविशत्यवनौ पूर्णनासिकापक्षसाश्रितम् । पादंशय्योत्थितो दद्यात् प्रथमं पृथिवीतले ॥२३॥

के प्रकाशके समान सज्जनोंका उपकार करनेवाला यह ग्रन्थ सर्वसाधारणजनोंको और बुद्धिमन्तों को मान्य होवे ॥१२॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको सिद्धिके लिए इष्ट देवताका ध्यान करके प्रत्येक उद्यमशील पुरुषको रात्रिके अष्टम भागके शेष रहनेपर शयन छोड़ करके उठना चाहिए ॥१३॥

सोते समय शुभ स्वप्नको देख करके पुनः नहीं सोना चाहिए और दिनमें सद्-गुरुके आगे कहना चाहिए। अशुभ स्वप्नको देख करके उपरि-कथितसे विपरीत करना चाहिए। अर्थात् अशुभ स्वप्न देखनेके पश्चात् पुनः सो जाना चाहिए ॥१४॥ जिसके वात-पित्त आदि धातु सम है, जो प्रशान्त चित्त है, धार्मिक है, अत्यन्त नीरोग है, अर्थात् सर्वप्रकारके रोगोंसे रहित है और इन्द्रिय-जयी है, ऐसे पुरुषके द्वारा देखे गये शुभ और अशुभ स्वप्न सत्य होते हैं ॥१५॥ अनुभूत, श्रुत, दृष्ट, प्रकृतिके विकारजनित, स्वभावतः समुत्पन्न, चिन्ताओंकी परम्परासे उत्पन्न, देवता आदिके उपदेशसे उत्पन्न, धर्म-कर्मके प्रभाव-जनित, और पापके तीव्र उदयसे दिखनेवाले, इस प्रकार मनुष्योंके स्वप्न नव प्रकारके होते हैं ॥१६-१७॥ इनमेंसे आदिके छह प्रकारोंसे दिखनेवाले शुभ या अशुभ स्वप्न निरर्थक होते हैं। अन्तिम तीन प्रकारोंसे दिखनेवाले स्वप्न सत्य होते हैं ॥१८॥ रात्रिके चारों ही पहरोंमें देखे गये स्वप्न फलको देनेवाले होते हैं। वह क्रमसे प्रथम प्रहरमें देखा गया स्वप्न बारह मासमें, दूसरे पहरमें देखा गया स्वप्न छह मासमें, तीसरे पहरमें देखा गया स्वप्न तीन मासमें तथा चौथे पहरमें देखा गया स्वप्न एक मासमें फलको देता है ॥१९॥ रात्रि की अन्तिम दो घड़ीमें देखा गया स्वप्न दश दिन में निश्चयसे फलता है सूर्योदय-कालमें देखा गया स्वप्न सद्यः फल देता है ॥२०॥ माला-स्वप्न अर्थात् एकके बाद एक-एक करके देखे गये अनेक स्वप्न, तथा आधि (मानसिक चिन्ता) व्याधि (शारीरिक पीड़ा) से उत्पन्न होनेवाले एवं मल-मूत्रादिकी पीड़ा-जनित सभी स्वप्न निरर्थक होते हैं ॥२१॥ पहले अशुभ स्वप्न दिखे, पीछे शुभ स्वप्न दिखे, अथवा पहले शुभ स्वप्न दिखे और पीछे अशुभ स्वप्न दिखे, तो पीछे दिखने-वाला स्वप्न फलप्रद होता है। दुःस्वप्नके देखने पर शान्ति करना आवश्यक है। अर्थात् दुःस्वप्न देख कर उसकी शान्ति करनी चाहिए है ॥२२॥

पृथ्वीमें प्रवेश करते समय अर्थात् शय्यासे भूमिपर पैर रखते हुए सर्वप्रथम पूर्ण नासिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अम्भोभूतत्त्वयोर्निद्राविच्छेदः शुभहेतवे। व्योमवाय्वग्नितत्त्वेषु स पुनर्दुःखदायकः ॥२४
शुक्लप्रतिपदो वायुश्चन्द्रेऽथार्के त्र्यहं त्र्यहम्। वहन् शस्तोऽनया रीत्या विपर्यासे तु दुःखदः ॥२५
सार्धघटिद्वयं नाडीरेकैकार्कोदयाद्वहेत्। अरहट्टघटी-भ्रान्तिर्वायोर्नाड्याः पुनः पुनः ॥२६

शतानि तत्र जायन्ते निश्वासोच्छ्वासयोर्नव।
ख-ख-षडेक कर (२१६००) संख्याऽहोरात्रे सकले पुनः ॥१७

षट्त्रिंशद्गुरुवर्णानां या वेला भरणे भवेत्। सा वेला परतो नाड्यां-नाड्यां सञ्चरतो लगेत् ॥२८
प्रत्येकं पञ्च तत्त्वानि नाड्याश्च वहमानयोः। वहन्त्यहर्निशं तानि ज्ञात यानि पलात्मकम् ॥२९
ऊर्ध्वं वह्निरधस्तोयं तिरश्चीनं समीरणः। भूमिमध्यपुटे व्योम सर्वगं वहते पुनः ॥३०

वायोर्वह्नेरपां पृथ्व्या व्योम्नस्तत्त्वं वहेत् क्रमात्।
वहन्त्योरुभयोर्नाड्यो ज्ञातव्योऽयं क्रमः सदा ॥३२

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाशच्चत्वारिंशत्तथाम्भसः। अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ॥३२
प्रवाहकाले संख्येयं हेतुर्बह्वल्पयोरथ। पृथ्वी पञ्चगुणा तोयं चतुर्गुणमथानलः ॥३३

पक्षका आश्रय ले, अर्थात् नाकके चलनेवाले स्वरका विचार कर तदनुसार शय्यासे उठते हुए पहले पृथ्वी तलपर उसी पैरको रखे ॥२३॥ भावार्थ—यदि दाहिना स्वर चलता हो तो भूमिपर पहिले दाहिने पैरको रखे और यदि वाम स्वर चल रहा हो तो पहिले वायां पैर भूमिपर रखे। जलतत्त्व और भूमित्त्वमें निद्राका विच्छेद हो, तो वह शुभ होता है। किन्तु आकाशतत्त्व, वायु-तत्त्व और अग्नितत्त्वमें निद्राका विच्छेद दुःख-दायक होता है ॥२४॥ प्रत्येक मास की शुक्ला प्रतिपदासे चन्द्रस्वरमें तीन दिन तक वायु वहे, पुनः तीन दिन तक सूर्यस्वरमें वहे, इस क्रमसे मासके अन्त-पर्यन्त वहनेवाली वायु प्रशस्त मानी गई है। इससे विपरीत क्रममें अर्थात् सूर्यस्वरमें तीन-तीन दिन तक, पुनः चन्द्रस्वरमें वहनेवाली वायु दुःखदायक कही गयी है ॥२५॥ सूर्योदयसे एक-एक नाड़ी अढ़ाई-अढ़ाई घड़ी तक बहती है। इस प्रकार अरहटकी घड़ीके समान वायुकी नाड़ीका पुनः पुनः परिभ्रमण होता रहता है ॥२६॥

एक नाड़ीके कालमें नव सौ (९००) श्वासोच्छ्वास होते हैं और सम्पूर्ण दिन-रातमें श्वासोच्छ्वासोंकी संख्या शून्य-शून्य, छह, एक और कर अर्थात् दो, इस प्रकार (२१६००) इक्कीस हजार छह सौ होती है ॥२७॥ छत्तीस गुरु वर्णोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतना एक नाड़ीका समय होता है। अतः परवर्ती (आगे बहनेवाली) प्रत्येक नाड़ीके संचारमें उतना-उतना समय लगता है ॥२८॥ भावार्थ—नाड़ीरूप बहनेवाले पाँचों तत्त्वोंमेंसे प्रत्येक तत्त्वका समय पलात्मक होकर दिन-रात चलता है। प्रत्येक नाड़ीके प्रवहमान श्वासोच्छ्वासोंमें पाँचों तत्त्व दिन-रात बहते रहते हैं। उन तत्त्वोंको पलात्मक अर्थात् पलके काल-प्रमाणसे जानना चाहिए ॥२९॥ इन पाँचों तत्त्वोंके जाननेका क्रम इस प्रकार है—अग्नितत्त्व ऊपर की ओर वहता है, जलतत्त्व नीचेकी ओर वहता है, वायुतत्त्व तिरछा बहता है, भूमितत्त्व मध्य पुटमें वहता है और आकाशतत्त्व सर्व ओर बहता है ॥३०॥ इस प्रकार ये पाँचों तत्त्व क्रमसे बहते हैं—वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और आकाश सूर्य और चन्द्र इन दोनों ही नाड़ियोंके वहनेमें सदा यह क्रम जानना चाहिए ॥३१॥ पृथ्वीतत्त्वका काल पचास पल है, जलतत्त्वका काल चालीस पल है, अग्नितत्त्वका काल तीस पल है, वायुतत्त्वका काल बीस पल है और आकाशतत्त्वका काल दश पल है ॥३२॥ तत्त्वोंके सामान्य रूपसे प्रवाह-कालमें पलोंकी उक्त संख्या कही गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिगुणो द्विगुणो वायुर्वियदेकगुणं भवेत् । गुणं प्रति दश पलान्युर्व्याः पञ्चाशदित्यपि ॥३४
एकैकहानिस्तोयादेस्तेऽथ पञ्चगुणा क्षितेः । गन्धो रसश्च रूपं च स्पर्शः शब्दः क्रमादमी ॥३५

तत्राभ्यां भूजलाभ्यां स्यात् शान्तेः कार्ये फलोन्नतिः ।
दीप्ताच्छिरादिके कृत्ये तेजो वाय्वम्बरैः शुभम् ॥३६

पृथ्व्यप्तेजोमरुद्व्योमतत्त्वानां चिह्नमुच्यते । आद्यैः स्थैर्यं स्वचित्तस्य शैत्यकामोद्भवा परे ॥३७
तृतीये कोपसन्तापौ तुर्ये च चलितात्मनः । पञ्चमे शून्यतैव स्यादथवा धर्मवासना ॥३८
श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्याङ्गुल्यौ नासापुटद्वये । सृक्विण्योः प्रान्तकोपान्त्याङ्गुलीशाखे दृगन्तयोः ॥३९
न्यस्यान्तन्तभ्रु पृथिव्यादितत्त्वज्ञानं भवेत् क्रमात् । पीतश्वेतारुणैः श्यामैर्बिन्दुभिर्निरुपाधिखम् ॥४०
पीतः कार्यस्य संसिद्धिः बिन्दुः श्वेतः सुखं पुनः । भयं सन्ध्यारुणोद्भूतो हानिर्भृङ्गसमद्युतिः ॥४१
जीवितव्ये जये लाभे शस्योत्पत्तौ च वर्षणे । पुत्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ॥४२

किन्तु किसी हेतुसे इनके पलोंकी संख्या अधिक या अल्प भी हो सकती है। पृथ्वीतत्त्वके पलोंकी संख्या पंचगुणी है, जलतत्त्वके पलोंकी संख्या चतुर्गुणी है, अग्नितत्त्वके पलोंकी संख्या तिगुनी है, वायुतत्त्वके पलोंकी संख्या दुगुनी है और आकाशतत्त्वके पलोंकी संख्या एक गुणी होती है। इस प्रकार गुणनके प्रति दश पलोंको जानना चाहिये। तदनुसार पृथ्वीतत्त्वके पल पचास होते हैं ॥३३-३४॥

इन जलादि तत्त्वोंमें एक-एककी हानि होती है। पृथ्वी तत्त्वकी पलसंख्या पंचगुणी है। पृथ्वीका लक्षण गन्ध है, जलका लक्षण रस है, अग्निका लक्षण उसका भासुरायमान स्वरूप है, वायुका लक्षण स्पर्श है और आकाशका लक्षण शब्द है। इस क्रमसे तत्त्वोंके ये गुण कहे गये हैं ॥३५॥ इन उक्त तत्त्वोंमेंसे पृथ्वी और जल तत्त्वके द्वारा शान्तिक-पौष्टिक कर्मोंमें फलकी उन्नति होती है। तेज तत्त्वमें उग्र और तीक्ष्ण कार्य सम्पन्न होते हैं, अर्थात् अभिचार, घात, परस्पर भेदोत्पादन और पशुओंके दमन आदि कार्य होते हैं। वायु और आकाश तत्त्वके द्वारा शुभ कार्योंकी प्रेरणा और पूर्ति होती है ॥३६॥

अब पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन तत्त्वोंके चिह्न बतलाते हैं—आद्य पृथ्वी तत्त्वका चिह्न अपने चित्तकी स्थिरता है, जलतत्त्वका चिह्न शैत्य और काम-जनित अन्य भाव है, अग्नितत्त्वका चिह्न कोप और सन्ताप है, चौथे वायुतत्त्वका चिह्न आत्माकी चंचलता है, पाँचवें आकाश तत्त्वका चिह्न शून्यता अथवा धर्म-चिन्तनरूप वासना है ॥३७-३८॥ दोनों हाथोंके अंगूठोंको दोनों कानोंमें, दोनों तर्जनियोंको दोनों नेत्रोंके कोनोंमें, दोनों मध्यमा अंगुलियोंको नाकके दोनों छिद्रोंमें, दोनों अनामिकाओंको मुखके दोनों किनारोंपर रखकर स्वर-साधन करे ॥३९॥

उक्त प्रकारसे वायुका दोनों भृकुटियोंके मध्यमें विन्यास करनेपर पृथ्वी आदि तत्त्वोंका परिज्ञान इस क्रमसे होता है—पृथ्वीका पीतवर्ण, जलका श्वेतवर्ण, अग्निका अरुण वर्ण और वायुका श्यामवर्ण वाली बिन्दुओसे परिज्ञान होता है। तथा आकाशका उपाधिरहित शून्य रूपसे ज्ञान होता है ॥४०॥ पीतवर्णकी बिन्दु कार्यकी सम्यक् प्रकारसे सिद्धि करती है, श्वेतवर्णकी बिन्दु सुख-कारक है, सन्ध्याका अरुणतावाली बिन्दु भय उत्पन्न करती है, और भौंरेके समान कृष्णवर्णकी बिन्दु हानि-कारक है ॥४१॥ जीवितव्यमें, जयमें, लाभमें, धान्यकी उत्पत्तिमें, वर्षामें, पुत्रके प्रयोजनमें, अर्थात् सन्तान आदिके विषयमें, युद्धमें, तथा गमनागमनके प्रश्नमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथ्व्यप्तत्त्वे शुभे स्यातां वह्निवातौ च नो शुभौ ।
अर्थसिद्धिः स्थिरोर्व्यां तु शीघ्रमम्भसि निर्दिशेत् ॥४३
निष्ठीवनेन दन्तादेस्तथा कुर्यान्निघर्षणम् । अङ्गदार्ढ्याय पाणिभ्यां वज्रीकरणमादिशेत् ॥४४
वज्रनामकमाकण्ठः पातव्यमथवाऽनयः । पाथः प्रसृतयोऽष्टौ वाप्योग्रा केचिद्वदन्त्यकः ॥४५
न स्वपेदन्योऽन्यमायासं कुर्यात्पीत्वा जलं सुधीः ।
आसीनः सपदि शास्त्रार्थान् दिनकृत्यानि च स्मरेत् ॥४६
प्रातः प्रथमेवाथ स्वपाणिं दक्षिणं पुमान् । पश्येद्वामं च वामाक्षी निजपुण्यप्रकाशकम् ॥४७
मौनी वस्त्रावृतः कुर्याद्दिने सन्ध्याद्वयेऽपि च । उदङ्मुखः शकृन्मूत्रेराशौ पास्या (?) नमः पुमान् ॥४८
नक्षत्रेषु नभस्थेषु भ्रष्ट तेजस्सु भास्वतः । यावद्दिवोदयस्तावत्प्रातः सन्ध्याभिधीयते ॥४९
भस्म-गोमय-गोस्थानवल्मीक-शकृदादिमत् । उत्तमद्रुमसप्तार्चिमार्गनीराश्रयादि च ॥५०
स्थानं चित्तादिविकृतं तथा कूलङ्कषातटम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन वेगाभावेऽन्यथा न तु ॥५१

पृथ्वी और जलतत्त्व शुभ होते हैं। उक्त कार्यों में अग्नि और वायुतत्त्व शुभ नहीं होते हैं। पृथ्वी तत्त्वमें स्थिर अर्थ को सिद्धि होती है। जलतत्त्वमें कार्यकी सिद्धि शीघ्र होती है, ऐसा कहना चाहिए ॥४२-४३॥

(उठकर) जलसे कुरला करनेके साथ दाँतों आदिका घर्षण करे। तथा शरीर की दृढ़ताके लिए दोनों हाथोंसे वज्रीकरणका निर्देश करे, अर्थात् दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर आजू-बाजू और पीछे पीठकी ओर ले जाना चाहिए ॥४४॥

अथवा कितने ही विद्वान् वज्रीकरण का यह भी अर्थ कहते है कि कण्ठ पर्यन्त वायुका पान करना चाहिए, या तीन प्रसृति (चुल्लु) या आठ प्रसृति प्रमाण जल-पान करके उसे गले में अंगुलियाँ डालकर वापिस निकालना चाहिए ॥४५॥

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिए कि वह जल पीकरके न सोवे और परिश्रमका कोई कार्य ही करे। प्रातःकाल उठकर एकान्तमें जहाँ पर किसीका पैर न पड़ा हो बैठकर शास्त्रके अर्थोका और दिनमें करने-योग्य कार्यो का विचार करना चाहिए ॥४६॥ प्रातः काल उठते समय सर्व प्रथम मनुष्य अपने पुण्य-प्रकाशक दाहिने हाथको देखे। तथा स्त्री अपने वाम हाथको देखे ॥४७॥

मनुष्यको चाहिए कि वह दोनों सन्ध्याओंमें, तथा दिनमें मौन रखता हुआ, वस्त्रोंसे आवृत होकर उत्तर दिशाकी ओर मुख करके मल-मूत्रका विमोचन करे। तत्पश्चात् शौच-शुद्धि कर (?) उपास्य जनोंको नमस्कार करे ॥४८॥

प्रातः काल जब आकाश-स्थित नक्षत्र तेज-भ्रष्ट हो जावें और जब तक सूर्यका उदय न होवे, तब तक का वह समय प्रातः कालीन सन्ध्याके नामसे कहा कहा जाता है ॥४९॥

भस्म (राख) गोबर, गायका स्थान, बल्मीक (साँपकी बाँबी) तथा विष्टावाला स्थान, पीपल-बड़ आदि उत्तम वृक्ष, अग्नि, मार्ग और जलके आशयभूत तालाब, वावड़ी आदि, तथा चित्तमें विकार करने वाला स्थान, एवं नदीका किनारा इत्यादि स्थानोंको मल-मूत्रके वेगके अभावमें प्रयत्न पूर्वक छोड़ना चाहिए, अर्थात् उक्त स्थानोंपर मल-मूत्र-विमोचन न करे। अन्यथा अर्थात् यदि मल-मूत्रका वेग प्रबल हो तो मनोनुकूल स्थानपर (जब जैसा अवसर हो) तब उक्त स्थानोंमेंसे कहीं किसी एक स्थानपर मल-मूत्रका विमोचन कर सकता है ॥५०-५१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तं च—

वेगान्न धारयेद्वात-विण्मूत्रक्षुततृट्क्षुधा । निद्राकाशश्रमश्वास-जृम्भाऽश्रुच्छर्दिरेतसाम् ॥५२
गन्धवाह-प्रवाहस्य निजं पृष्ठमनर्पयेत् । स्त्री-पूज्यागोचरे लोष्ठद्वये न्यस्तपदः सुधीः ॥५३
मन्दं-मन्दं ततः कृत्वा निरोधस्य विमोचनम् । निशाख्याद्दुष्टमृत्पिण्डेनोन्मृज्याच्च गुदान्तरम् ॥५४
शुक्रक्षुतशकृन्मूत्रं जायते युगपद्यदि । तत्र मासे दिने वत्सरान्ते तस्य मृतिर्भवेत् ॥५५
विमुच्यान्याः क्रियाः सर्वा जलशौचपरायणः । गुदां लिङ्गं च पाणी च पूतया शोधयेन्मृदा ॥५६
श्लेष्माधिक्येन कर्तव्यो व्यायामस्तद्विनाशकः । ज्वलिते जठराग्नौ च न कार्यो हितमिच्छता ॥५७
गतिशक्त्यर्थमेवासौ क्रियमाणः सुखावहः । गात्रस्य वृद्धिकार्यार्थं सोऽश्वानामिव स्वोचितः ॥५८
गजाद्यैर्वाहनैर्युक्तं व्यायामो दिवसोदये । अमृतोपम एवासौ भवेयुस्ते च शिक्षिताः ॥५९
दन्तदार्ढ्याय तर्जन्या घर्षयेद्दन्तपीठिकाम् : आदावत : परं कुर्याद्दन्तधावनमादरात् ॥६०
यदाद्यवारि-गण्डूषाद् बिन्दुरेकः प्रधावति । कण्ठे तदा नरं ज्ञेयं शीघ्रमञ्जनमुत्तमम् ॥६१

कहा भी है—वायुके वेगको, विष्टा, मूत्र, छींक, प्यास, क्रोध, निद्रा, खांसी, परिश्रम, श्वास, जंभाई, अश्रु-पात, वमन और वीर्य-पात इनके वेगको नहीं धारण करे। अर्थात् जब इनका वेग प्रबल हो तब तुरन्त ही उनका यथायोग्य स्थानपर विमोचन कर देना चाहिए। (अन्यथा अनेक प्रकारके रोगोंके उत्पन्न होनेका भय रहता है) ॥५२॥

मल-मूत्रके विमोचन करनेवाले मनुष्यको चाहिए कि वह पवनके प्रवाहको अपनी पीठ न देवे, अर्थात् जिस ओरसे वायु बह रही हो, उस ओर मुख करके मल-मूत्रका विमोचन करे। स्त्रीजनोंके और पूज्य पुरुषोंके अगोचर ऐसे स्थानपर दो लोष्ठोंपर पग रख करके बुद्धिमान् मनुष्यको धीरे-धीरे मल-विमोचन करना चाहिए। तत्पश्चात् तीक्ष्णता-रहित मृदु पीत मृत्पिण्डसे गुदाके मध्यभागका प्रमार्जन करे ॥५३-५४॥ यदि मल-मूत्र विमोचन करते समय वीर्य, छींक, मल और मूत्र ये चारों एक साथ हों तो उसका मरण उस दिन, एक मासमें, या वर्षके अन्तमें होगा, ऐसा जानना चाहिए ॥५५॥ मल-विमोचनके पश्चात् अन्य सर्व क्रियाएँ छोड़कर जलसे शौच शुद्धि करनेमें तत्पर पुरुषको पवित्र मिट्टीसे गुदा, लिंग और अपने हाथोंकी शुद्धि करनी चाहिए ॥५६॥

कफकी अधिकतावाले मनुष्यको कफ-विनाशक व्यायाम करना चाहिए। यदि जठराग्नि प्रज्वलित हो, अर्थात् भूख जोरसे लग रही हो तो आत्म-हितेच्छु पुरुष व्यायाम न करे ॥५७॥ गमन शक्तिके लिए अर्थात् शरीरमें रक्त संचारके लिए किया गया वह व्यायाम सुख-कारक होता है। वह व्यायाम जिस प्रकार घोड़ोंके दौड़ाने आदिसे उनकी शरीर वृद्धिके लिए होता है, उसी प्रकार मनुष्यके द्वारा किया गया व्यायाम शरीर-वृद्धिके लिए होता है ॥५८॥

सूर्योदयके समय हाथी-घोड़े आदिके द्वारा किया गया व्यायाम अमृतके समान शरीरको सुख-कारक होता है। परन्तु जिन हाथी-घोड़ों आदि पर बैठकर दौड़ाने आदिके रूपमें व्यायाम किया जावे, वे शिक्षित होने चाहिए ॥५९॥

दांतोंकी दृढ़ताके लिए पहले तर्जनी अँगुलीसे दाँतोंकी पीठिकाको अर्थात् मसूड़ोंका घर्षण करे। तत्पश्चात् आदरसे सावधानी-पूर्वक दन्त-धावन करे ॥६०॥ जब प्रथम बार जलके कुल्लेसे एक बिन्दु कंठमें शीघ्र दौड़े, अर्थात् कंठके भीतर चला जावे, तब मनुष्यको 'उत्तम दन्त-मार्जन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवक्राग्रन्थिसत्कूर्चं सूक्ष्मं द्वादश चाङ्गुलम् । कनिष्ठाग्रसमस्थौल्यं ज्ञातवृक्षं सुभूमिजम् ॥६२
सूर्ये वीर्यं वटे दीप्ति करञ्जे विजयो रणे । प्लक्षे चार्थसम्पत्तिर्बदर्यां मधुरस्वरम् ॥६३
खदिरे मुखसौगन्ध्यं चिञ्चायां विपुलं धनम् । उदुम्बरे च वाक्-सिद्धिराम्रेणारोग्यमेव च ॥६४
अपामार्गे च धीर्विद्या प्रजाशक्तिर्वपुःद्युतिः । दाडिमे सिन्दुवारेण ककुभः कण्टकैस्तथा ॥६५
जातीतगरमन्दारैं दुःस्वप्नं चैव नाशयेत् । अन्येषां वृक्षजातीनां न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥६६
अर्धशुष्कं त्वचा हीनं यत्नेन परिवर्जयेत् । इष्टका-लोष्ठ-पाषाणैर्नखराङ्गुलिभिः सृणैः ॥६७
मृत्स्ना चानामिकाङ्गुष्ठैर्न कुर्याद्दन्तधावनम् । अलाभे दन्तकाष्ठे च निषिद्धदिवसे तथा ॥६८
यत्नेः संघर्षणं कुर्याद् गण्डूषैः पञ्चशस्त्रिभिः । द्वादशाङ्गुलं, विप्राणां क्षत्रियाणां दशाङ्गुलम् ॥६९
नवाङ्गुलं तु वैश्यानां शूद्राणामष्टमेव च । कनिष्ठकानामिकयोरन्तरे दन्तधावनम् ॥७०
आदाय दक्षिणां दंष्ट्रां वामां वा संस्पृशेत्तले । तल्लीनमानस स्वस्थो दन्तमांसव्यथां त्यजेत् ॥७१
उत्तराभिमुखः प्राचीमुखो वा निश्चलासनः । दन्तान्मौनपरस्तेन घर्षयेद् वर्जयेत्पुनः ॥७२

दुर्गन्धं सुषिरं शुष्कं स्वाद्वाम्लं लवणं यतः । (सार्धत्रयकलापकम्)

हुआ' ऐसा जानना चाहिए ॥६१॥ जिस दातुनसे मुख-शुद्धिकी जावे, वह वक्र और गाँठवाली न हो, जिसकी कूची अच्छी बन जावे, पतली हो, बारह अंगुल लम्बी हो, और कनिष्ठाके अग्रभागके समान मोटी हो, तथा उत्तम भूमिमें उत्पन्न हुए ज्ञात वृक्षकी हो ॥६२॥ अर्क (आकड़े) की दातुन वीर्यको बढ़ाती है, बड़की दातुन कान्तिको बढ़ाती है, करंजकी दातुन युद्धमें विजय कराती है, पिलखनकी दातुन धन-सम्पत्तिको बढ़ाती है, बेरीकी दातुन स्वरको मधुर करती है, खैरकी दातुन मुखमें सुगन्ध पैदा करती है, इमलीकी दातुन प्रभूत धनको देती है, ऊमरकी दातुन वाणीकी सिद्धि करती है, आमकी दातुन आरोग्य देती है, अपामार्गकी दातुन बुद्धि, विद्या, प्रजनन-शक्ति, एवं शरीरकी शोभा बढ़ाती है। अनार तथा सिन्दुवार कुकुभ (अर्जुन कवावृक्ष) तथा कंटक वाले वबूल, रेंजा आदिकी दातुन भी उत्तम होती है ॥६३-६५॥

जाति (चमेली) तगर और मन्दारकी दातुन द्वारा दुःस्वप्नका नाश करना चाहिए। इनके सिवाय अन्य जो वृक्ष जातियाँ हैं, उनकी दातुन नहीं करना चाहिए ॥६६॥ अर्धशुष्क और छाल-रहित दातुनका यत्नपूर्वक परित्याग करे। ईंट, लोष्ठ, पाषाणसे, तथा लम्बे नखवाली नोकदार अंगुलियोंसे मिट्टीसे, अनामिका और अंगुष्ठसे दन्तधावन न करे। काष्ठकी दातुनके न मिलनेपर तथा निषिद्ध दिनोंमें यत्नपूर्वक तीन बार पाँच-पाँच (१५) कुल्लोंके द्वारा दांतोंका प्रमार्जन करे। ब्राह्मणोंके लिए बारह अंगुलकी, क्षत्रियोंके लिए दश अंगुलकी, वैश्योंके लिए नव अंगुलकी और शूद्रोंके लिए आठ अंगुलकी दातुन कही गई है। कनिष्ठका और अनामिकाके मध्यमें दातुनको पकड़कर पहले दाहिनी दाढ़के पीछे वायीं दाढ़के तल भागका घर्षण करना चाहिए। दातुन करते समय स्वस्थ मनुष्यको तन्मय चित्त होकर दाँत और मसूड़ोंकी पीड़ा दूर करनी चाहिए ॥६७-७१॥ दातुन करते समय उत्तर दिशाकी ओर मुख करके, अथवा पूर्वदिशाकी ओर मुख करके निश्चल आसनसे बैठकर मौन-पूर्वक दातुनसे दांतोंको घिसना चाहिए। पुनः उसको छोड़ देना चाहिए ॥७२॥ दुर्गन्ध-पूर्ण, सुषिर (पोली) एवं सूखी और खट्टे तथा नमकीन स्वादवाली दातुनका त्याग करे। व्यतिपात योगमें, रविवारके दिन, संक्रान्तिके दिन, सूर्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यतीपाते रवेर्वारे सङ्क्रान्तौ ग्रहणेषु च। दन्तकाष्ठं नषाष्टम्यां भूतपक्षान्तषट्तिथौ ॥७३
अभावे दन्तकाष्ठस्य मुखशुद्धिविधिः पुनः। कार्यो वा दशगण्डूषैर्जिह्वोल्लेखस्तु सर्वदा ॥७४
विलिख्य रदनां जिह्वां विलेखिन्या शनैः शनैः। शुचिप्रदेशे प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं पुनरस्त्यजेत् ॥७५
सम्मुखं पतितं स्वस्य ज्ञानाय विदिशां त्यजेत्। ऊर्ध्वस्थं च सुखाय स्यादन्यथा दुःखहेतवे ॥७६
ऊर्ध्वं स्थित्वा क्षणं पश्चात् पतत्येतद्यदा पुनः। मिष्टाहारं तदादेश्येत्तद्दिने शास्त्रकोविदैः ॥७७
कासश्वासज्वराजीर्णशोकतृष्णाऽऽस्यपाकयुक्। तन्न कुर्याच्छिरोनेत्रहृत्कर्णामयवानपि ॥७८
प्रातः शनैः शनैर्नस्यो रोगहृत् शुद्धवारिणः। गृह्णन्तो नासिकातोयं गजागर्जन्ति नीरुजः ॥७९

उक्तं च—

सुगन्धपवनाः स्निग्धनिःश्वना विमलेन्द्रियाः। निर्बली-पलितव्यङ्गा भवेयुर्नस्यशीलिनः ॥८०
आस्यशोषाधरस्फोटस्वरभङ्गनिवृत्तये। पारुष्यदन्तरुक्छित्यै स्नेहगण्डूषमुद्वहेत् ॥८१
केशप्रसाधनं नित्यं कारयेदथ निश्चलम्। कराभ्यां युगपत्कुर्यात्स्वोत्तमाङ्गं च तत्पुनः ॥८२
तिलकं द्रष्टुमादर्शो मङ्गलाय च वीक्ष्यते। दृष्टे देहे शिरोहीने मृत्युः पञ्चदशे दिने ॥८३
मातृ-प्रभृतिवृद्धेभ्यो नमस्कारं करोति यः। तीर्थयात्राफलं तस्य तत्कार्योऽसौ दिने दिने ॥८४

चन्द्र ग्रहणके समय दोनों षष्ठी और अष्टमी कृष्णा चतुर्दशी और अमावस्या इन छह तिथियोंमें काष्ठकी दातुन न करे ॥७३॥ काष्ठकी दातुनके अभावमें मुखकी शुद्धि दश कुल्लोंसे करे और जीभके मैल की सफाई तो सदा ही करनी चाहिए ॥७४॥ विलेखिनी (दातुन) से दांतोंको और जीभको धीरे-धीरे साफ करके उसे जलसे धोकर स्वच्छ स्थानमें डाल देना चाहिए ॥७५॥

सम्मुख गिरी हुई दातुन अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिए होती है, वक्र दिशामें दातुन न फेंके। ऊपरी स्थानपर गिरी हुई दातुन सुखके लिए होती है, इसके अतिरिक्त अन्यत्र गिरी हुई दातुन दुःखके लिए होती ॥७६॥ फेंकी हुई दातुन एक क्षण ऊपर ठहरकर पुनः नीचे गिरे तो उस दिन मिष्ट आहार मिलेगा, ऐसा शास्त्र-वेत्ताओंको कहना चाहिए ॥७७॥ खांसी, सांस, ज्वर, अजीर्ण, शोक, तृष्णा (प्यास) और मुख-पाकसे युक्त मनुष्यको दातुन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार शिर, नेत्र, हृदय और कानोंकी पीड़ावाला मनुष्य भी दातुन न करे ॥७८॥

प्रातः काल शुद्ध जलको धीरे-धीरे नाकके द्वारा ग्रहण करनेसे सर्व रोग दूर होते हैं। नाकसे जलको ग्रहण करनेवाले मनुष्य नीरोग रहते हैं और गजके समान गर्जना करते हैं ॥७९॥ कहा भी है—नासिकासे जल ग्रहण करनेवाले मनुष्य सुगन्धित पवन (दुर्गन्ध-रहित अपानवायु) वाले, स्निग्ध निःश्वासवाले, निर्मल इन्द्रियोंवाले, बलि (झुरिया) पलित (श्वेतकेश) और अंग-भंगसे रहित होते हैं ॥८०॥ मुख-शोष, अधर-स्फोट और स्वर-भंगकी निवृत्तिके लिए, तथा परुषता और दन्त-रोगोंके दूर करनेके लिए तैलके कुल्ले करना चाहिए ॥८१॥ दन्तधावन करनेके पश्चात् केशोंका प्रसाधन नित्य निश्चलरूपसे करावे। अथवा अपने दोनों हाथोंसे एक साथ अपने मस्तकमें तैल-मर्दन करे ॥८२॥ मस्तकपर तिलक लगानेके लिए और मंगलके लिए दर्पणमें मुख देखना चाहिए। दर्पणमें यदि शिर-विहीन शरीर दिखे तो पन्द्रहवें दिन मृत्यु होती है ॥८३॥ जो पुरुष प्रातःकाल माता, पिता आदि वृद्ध जनोंको नमस्कार करता है, उसे तीर्थयात्रका फल प्राप्त होता है। इसलिए प्रतिदिन मनुष्यको चाहिए कि वह वृद्धजनोंको नमस्कार करे ॥८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तं च—

मातृ-पित्रो रतोरस्कक्रियामुद्दिश्य याचकः। मृतशय्या प्रतिग्राही न पुनः पुरुषो भवेत् ॥८५

तथा—

वृद्धौ च माता-पितरौ साध्वी भार्या प्रियः सुतः। अपकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥८६

अन्यच्च—

अनुपासितवृद्धानामसेवितमहीभुजाम्। आचारमुक्तसुहृदां दूरे धर्मार्थतुष्टयः ॥८७
ततः स्नात्वा शिरस्कण्ठावयवेषु यथोचितम्। पवित्रयितुमात्मानं जलैर्मन्त्रक्रमेण वा ॥८८
वस्त्रशुद्धिं मनःशुद्धिं कृत्वा त्यक्त्वाऽथ दूरतः। नास्तिकादीनप्यक्षिप्त्वा पुण्यपूजागृहान्तरे ॥८९
आश्रयन् दक्षिणां शाखामर्चयन्नथ देहलीम्। तामस्पृशन् प्रविश्येत दक्षिणेनाङ्घ्रिणा पुनः ॥९०
सुगन्धैर्मधुरैर्द्रव्यैः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः। वामनाड्यां प्रवृत्तायां मौनवान् देवमर्चयेत् ॥९१
सङ्कुलाद्विजने भव्यः सुशब्दान्मौनवान् शुभः। मौनिना मानसः श्रेष्ठो जप्यः श्लाघ्यपरः परः ॥९२
पूजाद्रव्यार्जनोद्वाहे दुर्गादिसरिदाक्रमे। गमागमे जीविते च गृहक्षेत्रादिसङ्ग्रहे ॥९३

कहा भी है—माता-पिताके औरस पुत्रोचित श्राद्ध आदि क्रियाके उद्देश्यसे याचना करनेवाला और मृतशय्याको ग्रहण करनेवाला व्यक्ति पुनः (जन्मान्तरमें) पुरुष नहीं होता है ॥८५॥ भावार्थ—वैदिकों एवं स्मृतिकारोंके मतानुमार पितरोंका श्राद्ध करना आवश्यक है और मृत व्यक्तिके सूतक दूर होनेके दिन वस्त्रादि युक्त शय्याका दान करना भी आवश्यक है उसे दक्षिणामें लेनेवाला पुरुष नीच या निन्द्य माना जाता है। फिर भी यदि कोई निर्धन या याचक पुरुष उस मृतशय्याको ग्रहण करके अपने पितादिका श्राद्ध करता है तो कह स्वर्गका देव होता है।

तथा—वृद्ध माता-पिता, सती साध्वी नारी और शिष्ट पुत्र इनका भरण पोषण सैकड़ों अपकार्य करके भी करना चाहिए, ऐसा मनुने कहा है ॥८६॥ और भी कहा है—वृद्ध जनोंकी उपासनासे रहित, राजाओंकी सेवासे विहीन एवं आचारहीन मित्रोंके धर्म, धन और सन्तोषकी प्राप्ति दूर ही रहती हैं ॥८७॥

तत्पश्चात् शिर, कण्ठ आदि अंगोंका जलसे यथायोग्य स्नान करके शरीर-शुद्धि करे और आत्माको पवित्र करनेके लिए शास्त्रोक्त मंत्रोंके क्रमसे स्नान करे। पुनः वस्त्र-शुद्धि और मनः शुद्धि करके नास्तिक आदि जनोंको दूरसे छोड़कर उन्हें स्पर्श नहीं करता हुआ पुण्य (पवित्र) पूजा-गृहके भीतर जाता हुआ दक्षिण शाखाका आश्रय लेकर और पूजा-गृहकी देहलीकी अर्चा करता हुआ, उसे स्पर्श नहीं करके दाहिने पगसे उसमें प्रवेश करे ॥८८-९०॥ वहाँ पर पूर्व दिशाकी ओर अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुख करके सुगन्धित मधुर द्रव्योंसे वाम नाडीके चलनेपर मौन रखता हुआ देवकी पूजन करे ॥९१॥ यदि देव-गृह जन-संकुल हो तो सुन्दर शब्दोंको उच्चारण करता हुआ भव्य पुरुष पूजन करे। यदि देव-गृह जन-रहित (एकान्त) हो तो मौन रखना ही शुभ है। मौन रखनेसे चित्त स्वच्छ एवं निर्मल होता है। तत्पश्चात् मौन-पूर्वक श्रेष्ठ जपका जाप करना श्रेष्ठसे श्रेष्ठ है ॥९२॥

पूजन करते समय, द्रव्यके उपार्जन करनेमें, विवाहमें, दुर्ग आदिके और नदीके पार करते समय, गमन और आगमनमें जीवित रहनेमें; गृह और क्षेत्र आदिके संग्रह करनेमें, वस्तुओंके क्रय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रय-विक्रयणे वृष्टौ सेवाकृषिद्विषज्जये । विद्यापट्टाभिषेकादौ शुभेऽर्थे च शुभे शशी ॥९४
अग्रस्थो वामगो वापि ज्ञेयः सोमदिशि स्थितः । पृष्ठस्थो दक्षिणस्थश्च विज्ञेयः सूर्यभागभाक् ॥९५
प्रश्ने प्रारम्भणे वापि कार्या नो वामनसिका । पूर्णा वायोः प्रवेशश्च तदा सिद्धिरसंशयम् ॥९६
योद्धा समाक्षराह्वश्चेद् दूतो वामे व्यवस्थितः । तदा जयो विपर्यासे ह्यजयं मतिमान् वदेत् ॥९७
प्रवाहो यदि वार्केन्दोः कथञ्चिद्युगपद् भवेत् । विजयादीनि कार्याणि समानि च तदाऽऽदिशेत् ॥९८
मुद्गलाद्यैर्गृहीतस्य विषार्त्तस्याथ रोगिणः । प्रश्ने समाक्षराह्वश्चेदित्यादि प्राग्वदादिशेत् ॥९९
नामग्रहं द्वये प्रश्ने जयाजयविधौ वदेत् । पूर्वोक्तस्य जयं पूर्णे पक्षे रिक्ते परस्य तु ॥१००
रोगिप्रश्ने च गृह्णीयात्पूर्वं ज्ञात्यमिधा यदि । पश्चाद् व्याधिमतो नाम तज्जीवति नान्यथा ॥१०१
योद्धृणां रोगितानां च प्रभृष्टानां निजात्पदात् । प्रश्ने युद्धविधौ वैरि-सङ्गमे सहसा भवेत् ॥१०२
स्नाने पानेऽशने नष्टान्वेषे पुत्रार्थमैथुने । विवादे दारुणेऽर्थे च सूर्यनाडी प्रशस्यते ॥१०३
नासायां दक्षिणस्थां तु पूर्णायामपि वायुना । प्रश्नाः शुभस्य कार्यस्य निष्फलाः सकला अपि ॥१०४
यथाशक्ति ततश्चिन्त्यं तयोर्नित्यं तदग्रतः । यस्य प्रभावतः सर्वाः सम्भवन्ति विभूतयः ॥१०५

और विक्रय में,वर्षाके समयमें, सेवा, कृषि और शत्रुको जीतनेके समय, विद्यारम्भमें तथा पट्टाभिषेक आदि शुभ कार्यमें चन्द्रनाड़ी शुभ है ॥९३-९४॥

किसी बातको पूछनेके लिए आया हुआ मनुष्य यदि आगे आकर बैठे, या बांई ओर बैठे तो उसे चन्द्र दिशामें स्थित जानना चाहिए। यदि वह पीठकी ओर या दाहिनी ओर आकर बैठे तो सूर्य दिशा वाला जानना चाहिए ॥९५॥ प्रश्न करते समय अथवा किसी कार्यके आरम्भमें वाम-नासिका वाली नाड़ी नहीं होना चाहिए। दोनों नाड़ियोंका स्वर पूर्ण हो, और वायुका प्रवेश और निर्गमन हो रहा हो तो निःसन्देह कार्यकी सिद्धि होगी ॥९६॥ युद्ध करने वाले का दूत यदि समान अक्षर बोले और वाम दिशामें आकर बैठा हो प्रश्नकर्त्ता तथा उत्तरदाताका वाम स्वर हो तो उसकी जीत होगी। इससे विपरीत यदि वह विषय अक्षरोंको बोले और दक्षिण दिशामें आकर बैठे तो मतिवान् पुरुष पराजयको कहे ॥९७॥ यदि कदाचित् सूर्य और चन्द्रनाड़ीका प्रवाह एक साथ हो रहा हो तो विजय आदि कार्योंका समान निर्देश करना चाहिए, अर्थात् दोनों की परस्पर सन्धि हो जायगी ॥९८॥

मुद्गर, लाठी आदि लेकर आया हुआ, विषसे पीड़ित और रोगी पुरुषका दूत यदि समान अक्षरोंको बोले तो उसका शुभ फल कहे। और यदि वह विषम अक्षर बोले तो पूर्वके समान ही अशुभ फल कहे ॥९९॥ यदि विषार्त्त और रोगीके नाम सम-विषमाक्षरके हों तो उनके नामके अक्षरोंको ग्रहणकर जय और पराजय कहे। अथवा पूर्वोक्त पूर्ण स्वरमें समान अक्षर वालेकी जीत और रिक्त पक्षमें (खाली स्वरमें) दूसरेका पराजय कहे ॥१००॥ रोगीके प्रश्नमें पहले जातिका नाम आवे और पीछे व्याधिवालेका नाम बोला जावे तो वह जीवित रहता है, अन्यथा—इसके विपरीत दशामें वह जीता नहीं है ॥१०१॥

योद्धाओंके, रोगियोंके और अपने पदसे परिभ्रष्ट हुए लोगोंके प्रश्नमें, युद्ध-विधिमें और वैरीके समागममें सहसा मृत्यु, पराजय या पद भ्रष्टता होती है ॥१०२॥ स्नान करनेमें, खान-पानमें विनष्ट वस्तुके अन्वेषण करनेमें, पुत्रोत्पादनके लिए मैथुन-सेवन करनेमें, वाद-विवादमें, और दारुण कार्य करनेमें सूर्यनाड़ी प्रशस्त मानी गई है ॥१०३॥ दक्षिण नासिकाके वायुसे पूर्ण होनेपर भी शुभ कार्यके लिए किये गये सभी प्रश्न निष्फल होते हैं ॥१०४॥ जिसके प्रभावसे सभी प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मशोकभयाहार-निद्राकामकलिक्रुधः । यावन्मात्रा विधीयन्ते तावन्मात्रा भवन्त्यमी ॥१०६
आपद्व्यापादने स्वामिसेवायां पोष्यपोषणे । धर्मकृत्ये च नो कर्तुं बुध्यन्ते प्रतिहस्तकाः ॥१०७
संवृताङ्गः सभ्‍ज्यायां प्रायः पूर्वोत्तराननः । स्थिरासनसमासीनः संवृत्य चतुरो बलात् ॥१०८
अधमर्णाचिरारात्यविग्रहोत्पादनेऽपि च । शून्यागर्स्यपि कर्तव्या सुखलाभजयार्थिभिः ॥१०९
स्वजनस्वामिगुर्वाद्या ये चान्ये हितचिन्तकाः । जीवाङ्गे ते ध्रुवं कार्यो वाञ्छितार्थविधिः शुभ ॥११०
आचार्याणां कवीनां च पण्डितानां कलाभृताम् । समुत्पाद्यः सदानन्दः कुलीनेन कुलं यथा ॥१११
विशेषज्ञानविधिना कलिकालवशाद् गतम् । नित्यमेव ततश्चिन्त्यं बुधैश्चन्द्रबलादिकम् ॥११२
न निमित्तद्विषां क्षेमो नायुर्वेदद्विषामपि । न श्रीर्नातिद्विषामेकमपि धर्मद्विषां न तु ॥११३
निरन्नैर्मैथुनं निद्रावारिणामर्कसेवनम् । एतानि विषतुल्यानि वर्जनीयानि यत्नतः ॥११४
सुकृताय न तृप्यन्ति सन्तः सन्ततमप्यहो । विस्मर्तव्यो न धर्मेऽपि समुपास्तिस्ततः क्वचित् ॥११५
धर्मस्थाने ततो गत्वा श्रीमद्भिः कृतभूषणैः । प्राग्पुण्यं दृश्यतेऽन्येषां स्वयमप्यह्न्युपार्ज्यते ॥११६

की विभूतियाँ प्राप्त होती है, उस परमात्माके आगे इन दोनों स्वरोंका यथाशक्ति नित्य ही विचार करना चाहिए ॥१०५॥

धर्म, शोक, भय, आहार, निद्रा, काम, कलह और क्रोध, ये कार्य जितनी मात्रामें किये जाते हैं, उतनी ही मात्रामें ये पुनः उत्पन्न होते हैं। (इसलिए शोक आदि पाप कार्योंको कमसे कम और धार्मिक कार्योंको अधिकसे अधिक करना चाहिए) ॥१०६॥ आपत्तिके दूर करनेमें, स्वामी की सेवामें, पोष्य वर्गके पोषण करनेमें और धर्म-कार्य में दूसरेके द्वारा हस्तक्षेपका विचार नहीं किया जाता है ॥१०७॥ वस्त्र आदिसे जिसने अपने शरीरको भले प्रकारसे आवृत किया है, ऐसा चतुर पुरुष अपने शरीरके अंगोंका संवरण करके प्रायः पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके स्थिर आसनसे सावधान होकर सभामें बैठे ॥१०८॥ अधमर्ण (कर्जदार) के साथ, नवीन शत्रुके साथ अविग्रह (सन्धि) करनेमें, निरपराध पुरुष पर, सुख-शान्ति, अर्थलाभ और अपनी जीतिके इच्छुक पुरुषोंको अच्छा व्यवहार करना चाहिए ॥१०९॥ जो स्वजन है, अपना स्वामी है और जो गुरुजन आदि है, एवं अन्य जो अपने शरीर और आत्माके हित-चिन्तक व्यक्ति है, उनके साथ सद्-व्यवहार करना चाहिए ॥११०॥

जैसे कुलीन पुरुष अपने कुलके पुरुषोंको सदा आनन्दित रखता है, उसी प्रकार उसे आचार्योंको, कवियोंको, पंडितोंको और कलाकारोंको सदा आनन्दित करते रहना चाहिए ॥१११॥ कलिकालके वशसे विनष्ट हुए चन्द्र-बलादिके परिज्ञानको विशेष ज्ञानोपार्जन की विधिसे नित्य ही विद्वानोंके साथ चिन्तन करना चाहिए ॥११२॥ निमित्त शास्त्रसे द्वेष करने वालोंका कल्याण नहीं, आयुर्वेदसे द्वेष करने वालोंका भी कल्याण नहीं, हर किसीसे द्वेष करने वालोंका कल्याण नहीं, और धर्मसे द्वेष करने वालोंका कल्याण नहीं होता है। इन द्वेष करने वालोंमेंसे किसीको भी लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती है ॥११३॥ भूखे पुरुषोंको मैथुन सेवन करना, निद्रा लेना, और निद्रा नहीं लेने वालोंको सूर्यकी धूपका सेवन करना, ये कार्य विष-तुल्य है, इनका प्रयत्न-पूर्वक परित्याग करना चाहिए ॥११४॥

अहो सन्तजन सुकृत कार्य करते हुए कभी तृप्त नहीं होते हैं। इसलिए धर्ममें भी उसकी उपासना करना कभी कहीं पर भी विस्मरण नहीं करना चाहिए ॥११५॥ इस प्रकार घरमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित्यं देवगुरुस्थाने गन्तव्यं पूर्णपाणिभिः । विधेयस्तत्र चापूर्वज्ञानाभ्यासो विवेकिभिः ॥११७
आजन्म गुरुदेवानामर्चने पूज्यतां सताम् । रोगादिभिः पुनर्न स्याद्यदि तन्नैव दोषकृत् ॥११८
कुप्रवृत्ति त्रिधा त्यक्त्वा दत्वा तिस्रः प्रदक्षिणाः । देवस्यार्चा त्रिधा कृत्वा तं ध्यायेत्सिद्धिदं सुधीः॥११९
अर्वाग्दृष्टिभिरग्राह्यो विश्वातिशयभासुरः । निःसंसारविकारश्च यो देवः सततं मतः ॥१२०
उपविष्टस्य देवस्योर्ध्वस्य वा प्रतिमा भवेत् । द्विधा अपि युवावस्था पर्यङ्कासनमादिमा ॥१२१
वामो दक्षिणजङ्घोर्वोरुपर्यङ्घ्रि करोऽपि च । दक्षिणो वामजङ्घोर्वोस्तत्पर्यङ्कासनं मतम् ॥१२२
देवस्योर्ध्वस्य चर्चा स्याज्जानुलम्बि भुजद्वयम् । श्रीवत्सोष्णीषसंयुक्ते द्वे छत्रपरिवारिते ॥१२३
[1]छत्रत्रयं च नासोत्तारि सर्वोत्तमं भवेत् । नासा भालं तयोर्मध्यं कपोले वेधकृत् भवेत् ॥१२४
रक्षितव्यः परीवारे दृषदा वर्णसङ्करे । [2]न समाङ्गुलिसंख्येष्टा प्रतिमामानकर्मणि ॥१२५

देवार्चन करके श्रीमान् पुरुषोंको आभरणादिसे भूषित होकर तदनन्तर धर्म-स्थानमें जाकर अन्य जनोंके पूर्व पुण्यका जैसा अवलोकन हो, वैसा ही दिनमें स्वयं भी नवीन पुण्यका उपार्जन करना चाहिए ॥११६॥ देव-स्थानमें और गुरुके स्थानमें नित्य ही फलादिसे परिपूर्ण हाथोंके साथ विवेकी जनोंको जाना चाहिए, और वहाँ पर नवीन ज्ञानका अभ्यास करना चाहिए ॥११७॥ जन्म-पर्यन्त गुरुजनोंकी और इष्ट देवोंकी पूजन करनेपर सज्जनोंको पूज्यता प्राप्त होती है। यदि कदाचित् रोगादिके कारण देव या गुरुकी सेवा न की जा सके तो कोई दोष-कारक बात नहीं है। (किन्तु मनमें भावना तो सदा ही उनके उपासनाकी रखनी चाहिए।) ॥११८॥

खोटी प्रवृत्तिको मन वचन कायसे त्याग करके, तीन प्रदक्षिणा देकरके, और देव की त्रियोगसे पूजा करके बुद्धिमान् पुरुषको सिद्धि देने वाले उनका ध्यान करना चाहिए ॥११९॥ जो विश्वको चमत्कृत करने वाला है, अतिशयोंसे भासुरायमान और अल्पज्ञ दृष्टि वाले जनोके द्वारा जाननेमें नहीं आने वाला, तथा जो संसारके समस्त विकारोंसे रहित है, वही सच्चादेव माना गया है ॥१२०॥ पद्मासनसे बैठे हुए और खड्गासनसे खड़े हुये देवकी प्रतिमा होती है। दोनों ही प्रकारकी प्रतिमा युवावस्थावाली होती है। इनमेंसे बैठी हुई पहली प्रतिमा पर्यङ्कासन होती है ॥१२१॥ वाम पादको दक्षिण जांघपर रखकर पुनः दक्षिण पादको वाम जांघपर रखकर उन दोनोंके मध्यमें वाम हस्तके ऊपर दक्षिण हस्तको रखकर बैठनेको पर्यङ्कासन माना गया है ॥१२२॥ खड्गासनसे खड़े हुए देवकी प्रतिमा जानु-पर्यन्त लम्बित दोनों भुजावाली होती है। दोनों ही प्रकारकी प्रतिमाएँ वक्षःस्थलमें श्रीवत्ससे मस्तकपर उष्णीषसे और शिरपर छत्रसे संयुक्त होती हैं ॥१२३॥ शिर पर सर्वोत्तम तीन छत्र हों, जो नासाके अग्रभागमें उतारवाले न हों, अर्थात् नासिकाके समान ऊपरसे नीचेकी ओर वृद्धिगत हों, उनका विस्तार नासिका, ललाट, उनका मध्य भाग, और दोनों कपोलके विस्तारके अनुरूप होना चाहिए ॥१२४॥ भावार्थ—जिनमूर्त्तिके मस्तक, कपाल, कान और नाकके ऊपर बाहिर की ओर निकले हुए तीन छत्र होना चाहिए।

मूर्त्तिका जो यक्ष-यक्षिणीका परिवार है उसके निर्माणमें वर्णसंकर अर्थात् भिन्न वर्णवाला पाषाण रखना चाहिए। प्रतिमाके निर्माण-कार्यमें पाषाणकी सम अंगुलि-संख्या इष्ट नहीं है,

---

१. छत्तत्तय उत्तारं भालकपोलाओ सवणनासाओ ।
सुहयं जिणचरणग्गे नवग्गहा अक्ख-जक्खिणिया ॥ (वास्तुसार प्रकरण २ गाथा २)

२. सम-अंगुलप्पमाणं न सुंदरं हवइ कइयावि । (वास्तु० प्र० २, गा० ३ उत्तरार्ध)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]अन्योन्य जानुस्कन्धान्तस्तिर्यक्सूत्रनिपातनात् । केशान्ताञ्चलान्ताच्च सूत्रैक्याच्चतुरस्रता ॥१२६
सूत्रे जानुद्वये (?) तिर्यग्दज्ञान्नाभौ च कण्ठिकाम् । प्रतिमायाः प्रतिसरो भवेदष्टादशाङ्गुलः ॥१२७
[2]नवतालं भवेद् रूपं तालश्च द्वादशाङ्गुलः । अङ्गुला नान्यचर्चायाः किन्तु रूपस्य तस्य हि ॥१२८
अर्ध्वं तु प्रतिमामानमष्टोत्तरशतांशतः । आसीनप्रतिमामानं षट्पञ्चाशद्विभागतः ॥१२९
[3]भालनासाहनुग्रीवहृन्नाभिगुह्यमूरुके । जानुजङ्घाङ्घ्रिचेत्येकादशाङ्कस्थानकानि तु ॥१३०
[4]चतुःपञ्चचतुर्वह्निसूर्यार्कार्कजिनाब्धयः । जिनाब्धयश्च मानाङ्कः ऊर्ध्वादूर्ध्वस्थरूपकः ॥१३१

अर्थात् मूर्ति बनानेके लिए जो पाषाण लिया जावे वह विषम अंगुलि-संख्यावाला होना चाहिए ॥१२५॥ प्रतिमा समचतुरस्र संस्थानवाली होनी चाहिए। वह समचतुरस्रता इस प्रकार जाने— पद्मासनसे बैठी प्रतिमामें परस्पर जानुके सिरेसे स्कन्ध-पर्यन्त तिरछा सूत्र डालकर नापे, अर्थात् वाम जानुसे दाहिने कंधेतक सूत्रसे नापे, जो नाप हो, वही नाप दक्षिण जानुसे वाम कंधे तक होना चाहिए। पादपीठसे केशोंके अन्ततक तथा दोनों जानुओं के मध्यभागवर्ती अन्तरालका एकसूत्र इस प्रकार चारों सूत्रोंका एकमाप हो, इसे ही समचतुरस्रता कहते हैं ॥१२६॥ दोनों जानुओंका तिरछा अन्तर छत्तीस अंगुल हो, तथा नाभिसे लगाकर कण्ठ-पर्यन्त प्रतिमाका प्रतिसर (ऊँचाई) अठारह अंगुल होना चाहिए ॥१२७॥ मूर्त्तिका रूप नौ ताल होना चाहिए। ताल बारह अंगुल-प्रमाण होता है। अंगुल अन्य प्रतिमाके शरीरके नहीं, किन्तु उसी प्रतिमारूपके अंगुल लेना चाहिए ॥१२८॥

खड्गासन प्रतिमाका प्रमाण एक सौ आठ (१०८) अंगुल और पद्मासनसे बैठी प्रतिमाका प्रमाण शरीरके विभागसे छप्पन (५६) अंगुल कहा गया है ॥१२९॥ भाल (मस्तक) नासिका, हनु (ठोड़ी-दाढ़ी) ग्रीवा, हृदय, नाभि, गुह्यभाग, उरु, जानु, जंघा, और चरण ये एकादश स्थान खड्गासन प्रतिमामें होते हैं। इनका प्रमाण क्रमसे चार, पांच, चार, तीन, बारह, बारह, बारह, चौबीस, चार, चौबीस और चार अंगुल प्रमाण होता है। इस प्रकार ऊर्ध्वस्थ (खड्गासनसे खड़ी) मूर्तिका प्रमाण एक सौ आठ अंगुल होता है ॥१३०-१३१॥ पद्मासनसे बैठी प्रतिमाके भाल, नासिका, हनु, ग्रीवा, हृदय, नाभि, गुह्यभाग और जानु ये आठ अंक स्थान होते हैं और इनका प्रमाण खड्गासनके समान ही जानना चाहिए ॥१३२॥

समचतुरस्र का स्वरूप पद्मासन मूर्त्ति में—
१. अन्नुन्न जाणु कंधे तिरिए केसंत-अंचलंते यं । सुत्तेगं चउरंसं पज्जंकासणसुहं बिंबं ॥४॥

प्रतिमा की ऊँचाईका प्रमाण—
२. नवताल हवइ रूवं रूवस्स य वारसंगुलो तालो । अंगुल अट्ठहियसयं उड्ढं वासीण छप्पन्नं ॥५॥

खड़ी प्रतिमा के अंग विभाग—
३. भालं नासा वयणं गीव हियय नाहि गुज्झ जंघाइं । जाणु य पिंडि य चरणा इक्कारस ठाण णायव्वा ॥६॥

पाठान्तर—
भालं नासा वयणं थणसुत्तं नाहि गुज्झ ऊरू य । जाणु य जंघा चरणा इय दह ठाणाणि जाणिज्जा ॥

४. चउ पंच वेय रामा रवि दिणयर सूर तह य जिण वेया । जिण वेय भायसंखा कमेण इम उड्ढरूवेणं ॥७॥

पाठान्तर—
चउ पंच वेय तेरस चउदस दिणणाहं तह य जिण वेया । जिण वेय भायसंख्या कमेण इअ उड्ढरूवे णं ॥
(वास्तुसार, द्वि० प्रक०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]भालं नासा हनुग्रीवाहृन्नाभि-गुह्य-जानु च।
अष्टौ वासीनबिम्बस्याङ्गानां स्थानानि पूर्ववत् ॥१३२

[2]अतीताब्दशतं यत्स्याद्यच्च स्थापितमुत्तमैः। व्यङ्गमपि पूज्यं स्याद्बिम्बं तन्निष्फलं न खलु ॥१३३
[3]धातुलेप्यादिजं बिम्बं व्यङ्गं संस्कारमर्हति। काष्ठ-पाषाणनिष्पन्नं संस्कारार्हं पुनर्नहि ॥१३४
[4]नखाङ्गुलि-बाहुनासाङ्घ्रीणां भङ्गेष्वनुक्रमात्। शत्रुभिर्देशभङ्गश्च बन्धुकुलधनक्षयः ॥१३५
[5]पीठयानपरीवारध्वंसे सति यथाक्रमम्। जन-वाहन-भृत्यानां नाशो भवति निश्चितम् ॥१३६
[6]आरभ्यैकाङ्गुलाद्बिम्बाद्यावदेकादशाङ्गुलम्। गृहेषु पूजयेद् बिम्बमूर्ध्वं प्रासादगं पुनः ॥१३७
प्रतिमा काष्ठलेपाश्मभित्तिचित्रायसी गृहे। मानाधिकपरीवाररहिता नैव पूज्यते ॥१३८
[7]रौद्री निहन्ति कर्तारमधिकाङ्गा तु शिल्पिनाम्। कृशा द्रव्यविनाशाय दुर्भिक्षाय कृशोदरी ॥१३९

जो प्रतिमा विगत सौ वर्षसे पूजित चली आ रही हो और जिसे उत्तम पुरुषोंने स्थापित किया हो, तो वह व्यंगित (अंग-भंग) होनेपर भी पूज्य है। वह मूर्त्ति निष्फल नहीं है ॥१३३॥ धातु, लेप आदिसे बनाई गई मूर्त्ति यदि अंगहीन हो जावे तो वह संस्कार करनेके योग्य है। किन्तु काष्ठ या पाषाणसे निर्मित मूर्त्ति अंग-भंग होनेपर संस्कारके योग्य नहीं है ॥१३४॥ नखाङ्गुली, बाहु, नासिका और चरण इनके भंग होनेपर अनुक्रमसे शत्रुओंके द्वारा देशभंग, बन्धुजनोंका क्षय, कुलका क्षय और धनका विनाश होता है ॥१३५॥ मूर्त्तिके बैठनेका पीठयान और यक्षादि परिवारके विध्वंस होनेपर यथाक्रमसे जन-वाहनों और भृत्यजनोंका विनाश निश्चित है ॥१३६॥ एक अंगुलसे लेकर ग्यारह अंगुल तकके प्रमाणवाली मूर्तिको अपने घरोंमें स्थापित करके पूजे। इससे अधिक प्रमाणवाली मूर्तिको मन्दिरमें विराजमान करके पूजना चाहिए ॥१३७॥ घरमें काष्ठ, लेप, पाषाणकी भित्तिपर चित्रित प्रतिमा पूजनीय है। किन्तु प्रमाण से अधिक और परिवारसे रहित प्रतिमा पूजनीय नहीं है ॥१३८॥

रौद्र आकारवाली प्रतिमा निर्माण-कर्त्ताका विनाश करती है, अधिक अंगवाली प्रतिमा मूर्त्ति बनानेवाले शिल्पीका विनाश करती है, कृश (क्षीण) शरीरवाली प्रतिमा प्रतिष्ठाकारकके

---

१. भालं नासा वयणं गीव हियय गोव नाहिं गुज्झ जण्णू या।
आसीण बिंबमानं पुव्वविही अंक संखाई ॥८॥

२. वरिससयाओ उड्ढं जं बिंबं जंगमेहिं संठविवं। विअलंगु वि पूइज्जइ तं बिंबं निप्फलं न जओ ॥३९॥
मुह-नक्क-नयण-नाही-कडिभंगे मूलनायगं चयह।
आहरण-वत्थ-परिगर-चिण्हायुहभंगि पूइज्जा ॥४०॥

३. धाउलेवाइबिम्बं विअलंगं पुणवि कीरए सज्जं। कट्ठ-रयण-सेलमयं न पुणो सज्जं च कइयापि ॥४१॥

४. नह-अंगुली अ बाहा-नासा-पय-भंगिणुक्कमेण फलं। सत्तुभयं देसभंगं बंधण-कुलनास-दव्वक्खयं ॥४४॥

५. पयपीढचिण्हपरिगर-भंगे जनजाणमिच्चहाणिकमे।
छत्त-सिखिच्छ-सवणे लच्छी-सुह-बंधवाण खयं ॥४५॥

६. इक्कंकुलाइ पडिया इक्कारस जाव गेहि पूइज्जा। उड्ढं पासाइ पुणो इय भणियं पुव्वसूरीहिं ॥४३॥

७. पडिमा रउद्द जा सा करावयं हंति सिप्पि अहियंगा।
दुब्बल दव्वविणासा किसोअरा कुणइ दुब्भिक्खं ॥५०॥ (वास्तुसार, द्वि० प्रकरण)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]वक्रनासातिदुःखाय ह्रस्वाङ्गा क्षयकारिणी। अनेत्रा नेत्रनाशाय स्वल्पा स्याद् भोगवर्जिता ॥१४०
[2]जायते प्रतिमा हीनकोटिराचार्यघातिनी। जङ्घाहीना भवेद् भ्रातृ-पुत्रपौत्र-विनाशिनी ॥१४१
[3]पाणि-पादविहीना तु धनक्षयविधायिनी। चिरपर्युषिता सा तु नाहृतव्या यतस्ततः ॥१४२
[4]यच्चार्हत्प्रतिमोत्ताना चिन्ताहेतुरधोमुखी। आधिप्रदा तिरश्चीना नीचोच्चस्था विदेशदा ॥१४३
[5]अयायद्रव्य-निष्पन्ना पर-वास्तुदलोद्भवा। हीनाधिकाङ्गी प्रतिमा स्व-परोन्नतिनाशिनी ॥१४४
प्रासादतुर्यभागेन समाना प्रतिमा मता। उत्तमायक्ृते सा तु कार्यैकोनाधिकाङ्गुला ॥१४५
अथवा स्वदशांशेन हीनस्याप्यधिकस्य च। कार्या प्रासादपादस्य शिल्पिभिः प्रतिमा मता ॥१४६
सर्वेषामपि धातूनां रत्न-स्फटिकयोरपि। प्रबालस्य च बिम्बेषु चैत्यमानं यथेच्छया ॥१४७

द्रव्यका विनाश करती है, कृश उदरवाली प्रतिमा दुर्भिक्ष करती है, वक्र नासिकावाली प्रतिमा अतिदुःख देती है, ह्रस्व अंगवाली प्रतिमा क्षय-कारक है, नेत्र-रहित प्रतिमा नेत्रका विनाश करती है, उचित मुख-प्रमाणसे कम मुख-प्रमाणवाली प्रतिमा भोगोंका विनाश करती है, हीन कोटिकी प्रतिमा प्रतिष्ठाचार्यका विनाश करती है, जंघा-हीन प्रतिमा भाई, पुत्र और पौत्रका विनाश करती है, हाथ और पादसे हीन प्रतिमा धनका क्षय करती है❀। जो प्रतिमा चिरकाल तक अप्रतिष्ठित पड़ी रहे, उसका आदर नहीं करना चाहिए ॥१३९-१४२॥ जो अर्हत्प्रतिमा उत्तान होकर अधोमुखी हो, वह चिन्ताका कारण होती है। तिरछे मुखवाली प्रतिमा मानसिक चिन्ता पैदा करती है, अत्यन्त नीचे या ऊँचे स्थानपर स्थित प्रतिमा निर्माताको विदेश-प्रवास कराती है ॥१४३॥ जो प्रतिमा अन्यायके द्रव्यसे निर्माण कराई गई हो, दूसरेके वास्तुदल (क्षेत्र-भाग—) से उत्पन्न हुई हो, हीन या अधिक अंगवाली हो, वह अपनी एवं दूसरेकी उन्नतिका विनाश करती है ॥१४४॥

मन्दिरके चतुर्थ भागके समान प्रमाणवाली प्रतिमा उत्तम लाभकारक होती है। वह प्रतिमा एक अंगुल हीन या अधिक कराना चाहिए ॥१४५॥ अथवा मन्दिरके चतुर्थ भागके दशम अंशसे हीन प्रतिमा-निर्माण करावे। अर्थात् चतुर्थभागके दशभाग करना, उनमेंसे एकभाग चौथे भागमेंसे कमकर या बढ़ाकरके तत्प्रमाणवाली प्रतिमा शिल्पियोंके द्वारा बनवानी चाहिए ॥१४६॥ सभी धातुओंकी, रत्नोंकी और स्फटिक, तथा मूँगाकी प्रतिमा अपनी इच्छानुसार प्रमाणवाली बनवानी चाहिए ॥१४७॥

---

१. वहुदुक्ख वक्कनासा हस्संगा खयंकरी य नायव्वा। नयणनासा कुनयणा अप्पमुहा भोगहाणिकरा ॥४६॥
२. उड्ढमुही धणणासा अप्पूया तिरियदिट्ठि विन्नेया।
अइघट्टदिट्ठि असुहा हवइ अहोदिट्ठि विग्घकरा ॥५१॥
३. कडिहीणायरियहया सुयवंधवं हणइ हीणजंघा य।
हीणासण रिद्धिहया धणक्खया हीणकर-चरणा ॥४७॥
४. उत्ताणा अत्थहरा वंकग्गीवा सदेस भंगकरा। अहोमुहा य सचिंता विदेसगा हवइ नीचुच्चा ॥४८॥
५. विषमासण वाहिकरा रोरकरण्णायदव्वणिप्पण्णा। हीणाहियंगपडिमा सपक्ख-परपक्खकट्ठकरा ॥४९॥
(वास्तुसार द्वि० प्रकरण)

❀ वस्तुतः उक्त हीनादि आकारवाली प्रतिमाएँ किसीका कुछ भी बुरा नहीं करती हैं, किन्तु उनके निर्माण कराने वालेके अशुभ भविष्य की सूचक होती हैं, यह भाव लेना चाहिए।—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]प्रासादे गर्भ-गेहार्धे भित्तितः पञ्चधाकृते ।
यक्षाद्याः प्रथमे भागे देव्यः सर्वा द्वितीयके ॥१४८
जिनार्कस्कन्दकृष्णानां प्रतिमाः स्युस्तृतीयके ।
ब्रह्मा तुर्यंभागे स्याल्लिङ्गमीशस्य पञ्चमे ॥१४९
ऊर्ध्वदृग् द्रव्यनाशाय तिर्यग्दृक् भोगहानये ।
दुःखदा स्तब्धदृष्टिश्चाधोमुखी कुलनाशिनी ॥१५०
द्वारशाखाष्टभिर्भागैरधः पक्षा द्वितीयके ।
मुक्त्वाऽष्टमं विभागं तु यो भागः सप्तमः पुनः ॥१५१
तस्यापि सप्तमे भागे गजाशा यत्र संभवेत् ।
प्रासाद-प्रतिमादृष्टिर्नियोज्या तत्र शिल्पिभिः ॥१५२

अथ भूमिपरीक्षार्थं किञ्चित्प्रासादस्वरूपम्—

[2]अवृत्ता भूरदिग्मूढा चतुरस्रा शुभाकृतिः ।
अर्हंबीजोद्गमा धन्या पूर्वेशानोत्तरास्तु वा ॥१५३
[3]व्याधिं वल्मीकिनी वैश्यं मुखरा स्फुटिता मृतिम् ।
दत्ते भूशल्ययुक् दुःखं शल्यज्ञानमथोच्यते ॥१५४

जिन मन्दिरके गर्भालयके अर्धभागमें भित्तीसे पाँच विभाग करके यक्ष आदि देवताओंको प्रथम भागमें, सभी देवियोंको दूसरे भागमें, जिन सूर्य, स्कन्द और कृष्ण (विष्णु) की प्रतिमाको तीसरे भागमें, ब्रह्माको चौथे भागमें और महादेवके लिंगको पाँचवें भागमें स्थापित करे❀। ये सभी मूर्तियाँ यदि ऊर्ध्व दृष्टिवाली हों तो द्रव्यके विनाशके लिए और तिर्यग्-दृष्टिवाली हों तो भोगोंकी हानिके लिए होती हैं। स्तब्ध दृष्टिवाली दुःखोंको देती है और अधोमुखवाली कुलका नाश करती है ॥१४८-१५०॥

अब भूमिकी परीक्षाके लिए प्रासाद (मन्दिर) का कुछ स्वरूप करते हैं—मन्दिरकी भूमि वृत्त (गोल) आकारवाली न हो, दिग्-मूढ़ न हो, अर्थात् जहाँ खड़े होनेपर सभी दिशाओंका बोध सम्यक् प्रकारसे होता हो, चौकोर हो, शुभ आकारवाली हो, 'अर्हं' बीजकी उद्गमवालीं हो, भाग्यशाली हो, पूर्व, ईशान या उत्तर दिशामें स्थितमें हो ॥१५३॥ साँपोंकी वल्मीकवाली भूमि मन्दिर बनानेवालेको व्याधि करती है, मुखर (अनेक छिद्रवाली) भूमी ऐश्वर्य-विनाशकारक होती है, स्फुटित (दरारवाली) भूमि मरणको करती है और शल्य-(अस्थि, लोह आदि) युक्त भूमि दुःखको देती है। इसलिए भूमिके शल्य-जाननेका उपाय कहते हैं ॥१५४॥

---

१. गब्भगिहड्ढ-पणंसा जक्खा पढमंसि देवया वीए । जिण किण्ह रवी तइए वंभु चउत्थे सिवं पणगे ॥४५॥
न हु गब्भे ठाविज्जइ लिंगं गब्भे चइज्ज तो कहवि । तिलअद्धं तिलमित्तं ईसाणे किं पि आसरिओ ॥४६॥
२. दिणतिग वीयप्पसवा चउरंसाऽवम्मिणीं अफुट्टाय । अक्कुल्लर भू सुहया पुव्वेसाणुत्तरंबुवहा ॥९॥
३. वम्मइणी वाहिकरी ऊसर भूमीइ हवइ रोरकरी । अइफुट्टा मिच्चुकरीं दुक्खकरी तह य ससल्ला ॥१०॥
(वास्तुसार द्वि० प्रकरण)

❀ ऐसा कथन अन्यत्र जैन प्रतिष्ठापाठ आदिमें दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]अ-क-च-ट-त-प-ह्-य शान् क्रमाद् वर्णानिमानि च ।
नवकोष्ठीकृते भूमिभागे प्राच्यादि दिशतो लिखेत् ॥१५५
[2]प्रश्ने अः स्याद्यदि प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् ।
सार्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुष्यमृत्यवे ॥१५६
अग्नेर्दिशि तु कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वयम् ।
राजदण्डो भवेत्तस्मिन् भयं नैव निवर्तते ॥१५७

प	अ	क
श	य	च
ह	त	ट

याम्यायां[3] दिशि चः प्रश्ने नरशल्यमधो भवेत् । तद्-गृहस्वामिनो मृत्युं करोत्याकटिसंस्थितम् ॥१५८
नैऋत्यां दिशि तः प्रश्ने सार्धहस्तादधस्तले । शुनोऽस्थिर्जायते तत्र डिम्भानां जनयेन्मृतिम् ॥१५९
तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिवा-शल्यं प्रजायते । सार्धहस्ते प्रवासाय सदनस्वामिनः पुनः ॥१६० ❀
[4]वायव्यां दिशि हः प्रश्ने नराणां वा चतुःकरे । करोति मित्रनाशं ते दुःस्वप्नेऽस्य प्रदर्शनात् ॥१६१

जिस भूमिपर मन्दिर बनाना हो, उसपर नौ कोठे बना करके पूर्व दिशा आदिके क्रमसे अ, क, च, ट, त, ह, श, प और मध्य कोठेमें य इन अक्षरों को लिखे। (कोष्ठ-चित्र मूलमें दिया है।) विशेषार्थ—'ओं ह्रीं श्रीं ऐं नमो वाग्वादिनि मम प्रश्ने अवतर अवतर' इस मंत्रसे खड़िया मिट्टीको मंत्रित करके किसी कन्याके हाथमें देकर कोष्ठगत किसी एक अक्षरको लिखावे। वह जिस भाग वाले कोष्ठगत अक्षरको लिखे, उस भागमें शल्य है अर्थात् भूमिके उस भागमें किसी पशु-मनुष्य आदि की हड्डी आदि है, ऐसा जानना चाहिए* ॥१५५॥

यदि पूछने वालेके प्रश्नके प्रारम्भमें 'अ' अक्षर हो तो उस भूमिकी पूर्व दिशामें डेढ़ हाथके नीचे नर-शल्य अर्थात् (मनुष्यकी हड्डी) होगी और वह मनुष्यकी मृत्युके लिए होगी ॥१५६॥ यदि प्रश्नके प्रारम्भमें 'क' अक्षर हो ता आग्नेय दिशामें खर-शल्य है अर्थात् गधेकी हड्डी दो हाथके नीचे होगी और उसमें राज-दण्ड होगा, तथा भय निवृत नहीं होगा, अर्थात् सदा भय बना रहेगा ॥१५७॥ यदि प्रश्नके प्रारम्भमें 'च' अक्षर हो तो दक्षिण दिशामें कटि (कमर) प्रमाण भूमिके नीचे नर-शल्य होगा और वह गृहस्वामीकी मृत्युको करेगा ॥१५८॥ यदि प्रश्नके प्रारम्भमें 'ट' अक्षर हो तो नैऋत्य दिशामें डेढ़ हाथ नीचे भूमितलमें कुत्तेकी हड्डी होगी और वह बालकोंकी मृत्यु करेगी ॥१५९॥ यदि प्रश्नके प्रारम्भमें 'त' अक्षर हो पश्चिम दिशामें डेढ़ हाथके नीचे भूमिमें शिवा (सियालनी) की हड्डी होगी और वह भवनके स्वामीके प्रवासका कारण होगी ॥१६०॥ यदि प्रश्नके प्रारम्भमें 'ह' अक्षर हो तो भूमिकी वायव्य दिशामें चार हाथके नीचे मनुष्यों की हड्डियां होंगी ओर वे मित्रोंका नाश करेंगी और रात्रिमें दुःस्वप्न दिखाई देंगे ॥१६१॥ यदि

---

१. अकचटएहसपज्जा इअ नव वण्णा कमेण लिहियव्वा । पुव्वाइदिसासु तहा भूमिं काऊण वनिभाए ॥११॥
२. अप्पण्हे नरसल्लं सड्ढकरे मिच्चुकारगं पुव्वे । कप्पण्हे खरसल्लं अग्गीए दुकरि निवदंडं ॥१३॥
३. जामे चप्पण्हेण नरसल्लं कडितलम्मि मिच्चुकरं । टप्पण्हे निरईए सड्ढकरे साणुसल्लु सिसुहाणी ॥१४॥
४. पच्छिम दिसि तयण्हे सिसुसल्लं करदुगम्मि परएसं । वायवि हपण्हि चउकरि अंगारा मित्तनासयरा ॥१५

❀ श्लोक १५५ से १६४ तक के १० श्लोक विश्वकर्मप्रकाश में ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। देखो विश्वकर्म प्रकाश अध्याय १२, श्लोक १२-२१ तक। सम्पादक

* अहिमंतिऊणखडियं विहिपुव्वं कन्ना करे दाओ । आणाविज्जइ पण्हा इम अक्खरे सल्लं ॥१२॥

३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]उदीच्यां दिशि शः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः। तच्छीघ्रं निधनं स्वीयं प्रायोऽधनदमप्यदः ॥१६२
ईशान्यां दिशि यः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः। ततो गोधननाशाय जायते गृहमेधिनः ॥१६३
[2]मध्यकोष्ठे च यः प्रश्ने वक्षो मात्रादधस्तदा। केशा कपालं मर्त्यास्थि भस्म लोहं च मृत्यवे ॥१६४
शुभ्रस्थितामृते पात्रे कृते दीपचतुष्टये। यदि दीप्राश्चिरं दीप्राः स्यात्तद्वर्त्यस्य भूः शुभा ॥१६५
सूत्रच्छेदे च मृत्युः स्यात्कीले वाऽवाङ्मुखे रुजः। स्मृतिर्नश्यति कुम्भस्य पुनः पातः स्वधोगतः ॥१६६
प्रासादगर्त्तपूरोऽम्बुग्रावकर्करकान्तगः। विधिना तत्र सौवर्णवास्तुमूर्तिर्नियोजयेत् ॥१६७
उदयस्त्रिगुणः प्रोक्तः प्रासादस्य स्वमानतः। प्रासादोच्छ्रयविस्तारा जगती तस्य चोत्तमा ॥१६८
मूलकोष्ठे चतुःकोणे बहिर्यः कुम्भकः स्थिरः। प्रासादहस्तसङ्ख्यानं, तस्य कोणद्वयात् पुनः ॥१६९
यः कोणो मूलरेखाया विस्तरः स पृथक् पृथक्। कलशे विस्तराद्दैर्घ्यं निगदः द्विगुणं पुनः ॥१७०
प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम्। सर्वं हि लुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥१७१

प्रश्नके प्रारम्भमें 'श' अक्षर हो तो कटि-प्रमाण भूमिके नीचे उत्तर दिशामें ब्राह्मणकी हड्डी होगी और वह निर्माणकर्त्ताके स्वयं मरणके लिए होगी और प्रायः वह निर्धनता करेगी ॥१६२॥ यदि प्रश्नके प्रारम्भमें 'प' अक्षर हो तो भूमिकी ईशान दिशामें डेढ़ हाथके नीचे गायकी हड्डी होगी और वह गृह-स्वामीके गौ और धनके नाशका कारण होगी ॥१६३॥ यदि प्रश्नके प्रारम्भमें 'य' अक्षर हो तो भूमिके मध्यमें वक्षःस्थल-प्रमाण नीचे मनुष्यकी हड्डी, केश, कपाल, भस्म और लोहा होगा और वे मृत्युके कारण होंगे ॥१६४॥ भावार्थ—जिस भूमिपर मन्दिर बनाना हो वह उक्त दोषोंसे रहित होना चाहिए।

मन्दिरके लिए निर्णीत भूमिपर चारों कोणोंपर कीले (खूंटी) गाड़े और शुभ्र स्थिर अमृत (ताम्र) पात्रमें चारों दिशाओंमें चार दीपक जला करके रखे। यदि दीपक बहुत समय तक प्रदीप्त (प्रकाश युक्त) बने रहें तो उसके मध्यवर्ती भूमि शुभ जानना चाहिए ॥१६५॥ यदि कीलोंसे बँधे हुए सूत्र (लच्छी धागे) में छेद हो जाय, अर्थात् टूट जाय तो निर्माण करानेवालेकी मृत्यु होगी। यदि कीले नीचेकी ओर झुक जावें, तो—निर्माताके रोग होगा। यदि वहाँ स्थापन किये हुए कलशका पतन हो जाय, या उल्टा मुख हो जाय तो निर्माताकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जायगी ॥१६६॥ मन्दिर की नींवके लिए खोदे गये गड्ढेको पूरनेके लिए जल, पाषाण-खंड-पत्थरकी गिट्टी और बालू डाले। पुनः विधि-पूर्वक सोनेके द्वारा बनायी गयी वास्तु-मूर्त्ति उस गड्ढेमें स्थापित करे ॥१६७॥

मन्दिरके विस्तारके प्रमाणसे उसकी ऊँचाई तिगुणी कही गई है। उस मन्दिर की ऊँचाई, विस्तार और जगती (कुर्सी) उत्तम होना चाहिए ॥१६७॥ मन्दिरका जो मूल कोष्ठ चतुष्कोण हो, उसके बाहिर स्थिर कलश स्थापन करे। पुनः उस कोष्ठके दोनों कोणोंसे मन्दिरके विस्तार आदिके हाथों की गणना करनी चाहिए ॥१६९॥ कोष्ठका जो कोण है और मूल रेखाका जो विस्तार है, वह पृथक्-पृथक् लेना चाहिए। पुनः विस्तारसे कलशमें ऊँचाई दुगुणी कही गई है ॥१७०॥ यतः ध्वजासे रहित मन्दिरमें पूजन, होम, जप आदिका करना सर्वथा व्यर्थ होता है,

---

१. उत्तरदिसि सप्पण्हे दियवरसल्लं कडिम्मि रोरकरं। पप्पण्हे गोसल्लं सड्ढकरे धणविणा समीसाणे ॥१६॥
२. जप्पण्हे मज्झगिहे अइच्छार-कवाल-केस बहुसल्ला। वच्छच्छलपामाणा पाएण य हुंति मिच्चुकरा ॥१७॥
(वास्तुसार, गृहप्रकरण पृ० ५–७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकाहमपि निष्पन्नं ध्वजहीनं न धारयेत् । दण्डः प्रकाश्यः प्रासादे प्रासादकरसङ्ख्यया[1] ॥१७२
सान्धकारे पुनः कार्यो मध्यप्रासादमानतः । समाना शुकनासस्य घटिकागूढमण्डपे ॥१७३
एतन्मानैव रङ्गाख्ये मण्डपेऽथ बलानके । गृहे देवगृहे वापि जीर्णं चोद्धर्तुमीप्सिते ॥१७४
प्राग्वद्द्वारप्रमाणं च वास्तूपायेन युज्यते । .... ॥१७५
स्तम्भपट्टादिवद्वस्तु यः प्रोक्तो गृहशालके । प्रासादेष्वपि स ज्ञेयः सम्प्रदायाच्च शिल्पिनाम् ॥१७६

अथ प्रतिमा-काष्ठ-पाषाण परीक्षा—

*निर्मलेनानारलेन पिष्टया श्रीफलत्वचा । विलिप्तेऽश्मनि काष्ठे वा प्रकटं मण्डलं भवेत् ॥१७७
मधु-भस्म-गुड व्योम-कपोतसदृशप्रभैः । मञ्जिष्ठारुणकैः पीतैः कपिलैः श्यामलैरपि ॥१७८

अतः मन्दिर पर ध्वजाको फहराना चाहिए ॥१७१॥ मन्दिरको एक दिन भी ध्वजासे विहीन नहीं रखना चाहिए। मन्दिरपर ध्वजाका दण्ड मन्दिरकी ऊँचाईके हाथों की संख्यासे निश्चित करना चाहिए ॥१७२॥

मन्दिरके तलभागको अन्धकारवाले अधोभागमें प्रासाद (मन्दिर) के प्रमाणके अनुसार बनवाना चाहिए। शुकनासकी रचना गूढ (मध्यवर्ती) सभामण्डपमें चारों ओर समान होना चाहिए ॥१७३॥ विशेषार्थ—शिखरकी चारों दिशाओंमें जिस पाषाणपर सिंहकी मूर्त्तियां स्थापित की जाती हैं, उसे शुकनास कहते हैं। समराङ्गण सूत्रधारमें कहा है—'शुकनासोच्छ्रितेरूर्ध्वं न कार्या मण्डपोच्छ्रितिः'। तथा 'शुकनाससमा घण्टा न्यूना श्रेष्ठा न चाधिका'। अर्थात् शुकनासकी ऊँचाईसे ऊपर मण्डपकी ऊँचाई न करे और घण्टा शुकनासके बराबर रखे या कम रखे, परन्तु अधिक न करे।

मन्दिरके प्रमाणसे ही रंग-मंडप और बलानक (बालकनी) निज-गृह और देव-गृहपर भी ध्वजारोहण करना चाहिए। तथा जीर्ण मन्दिरादिका उद्धार भी करना चाहिए ॥१७४॥ मन्दिर के द्वारका प्रमाण भी पूर्वके समान वास्तु-शास्त्रके उपायसे रखना योग्य है............ ....॥१७५॥ गृहशालाके निर्माणमें स्तम्भ, पट्ट आदि वस्तुओंका जो प्रमाण कहा गया है, वही प्रमाण मन्दिरोंके विषयमें ज्ञातव्य है और इसका विशेष विधान शिल्पी जनोंके सम्प्रदायसे जानना चाहिए ॥१७६॥

अब प्रतिमाके लिए काष्ठ और पाषाणकी परीक्षाका वर्णन करते हैं—

जिस पाषाण या काष्ठसे मूर्त्तिका निर्माण करना हो, उसे निर्मल कांजीके साथ पीठीसे और श्रीफल (बेलवृक्ष) की छालसे पीसकर विलेपन करनेपर मंडल (गोल आकार) प्रकट होगा ॥१७७॥ वह मंडल मधु, भस्म, गुड़, व्योम और कपोतके सदृश प्रभावाला हो, अथवा मंजीठके सदृश अरुण वर्णका हो, या पीत, कपिल और श्यामल वर्णका हो, अथवा चित्र-विचित्र वर्णवाला

---

१. इगहत्थे पासाए दंडं पउणंगुलं भवे। अद्धंगुल बुड्ढिकमें जा कर पन्नास कन्तुदए ॥३४॥ (वास्तु० प्र० २)
अर्थात् एक हाथके विस्तार वाले प्रासादमें ध्वजादंड पौन अंगुलका मोटा होना चाहिए। पुनः प्रत्येक हाथ पर आधे-आधे अंगुलके क्रमसे ध्वजा दंडकी मोटाई बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार पचास हाथके विस्तार-वाले प्रासादमें सवा पच्चीस अंगुलका मोटा ध्वजादंड करना चाहिए। तथा कानके बराबर ऊंचाईवाला (लम्बा) ध्वजादंड होना चाहिए।

* श्लोकाङ्क १७७ से श्लो० १८३ तक के ये सर्व श्लोक विवेक विलासमें शब्दशः समान हैं।—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्रैश्च मण्डलैरेभिरन्तर्ज्ञेया यथाक्रमम् । खद्योतो वालुकारक्तभेकोऽम्बुगृहगोधिका ॥१७९
दर्दुरः कृकलासश्च गोधाखू सर्पवृश्चिकौ । सन्तान-विभव-प्राणराज्योच्छेदश्च तत्फलम् ॥१८०
कीलिकाछिद्रसुषिरत्रासजालकसन्धयः । मण्डलानि च गारश्च महद्दूषणहेतवे ॥१८१
प्रतिमायां दवरका भवेयुश्चेत्कथञ्चन । सदृग्वर्णा न दुष्यन्ति वर्णान्यत्वे च दूषिताः ॥१८२
कृतदेवादिकृत्यः सन्नुपदेशं गुरोः शुभम् । श्रोतुकामो गुरोः पार्श्वे गच्छेदत्यादरात् पुमान् ॥१८३
कदाचित् कार्यतः स्वस्य पार्श्वमेति यदा गुरुः । पर्युपास्तिं तदा कुर्यादेव शिष्यस्य युज्यते ॥१८४
अभ्युत्तिष्ठेद् गुरौ दृष्टेऽभिगच्छेत्तं तदागमे । उत्तमाङ्गे जलं न्यस्य ढौकयेत्स्वयमासनम् ॥१८५
नमस्कुर्यात्ततो भक्त्या पर्युपासीत चादरात् । तद्याते त्वनुयायाच्च क्रमोऽयं गुरुसेवने ॥१८६

मंडल हो और उसके भीतर यथा क्रमसे खद्योत, उलूक, लालवर्णका भेक (मेंढक) जल, गृहगोधिका (छिपकली) दर्दुर, (बड़ा मेंढक) कृकलास (गिरगिट) गोधा (गोह) मूषक, सांप और विच्छू इनमेंसे कोई आकार दिखाई दे तो उसका फल सन्तान, वैभव, प्राण, और राज्यका उच्छेद जानना चाहिए ॥१७७-१८०॥ जिस पाषाण या काष्ठमें मूर्त्ति उत्कीर्णको जाना है उसमें कीलिका, छिद्र, पोल, रेखा, मकड़ीका जाल, सन्धि और चक्राकार मंडल दिखाई देवें, अथवा गार (गीलापन) हो तो वह महान् दूषणका कारण है ॥१८१॥ भावार्थ—जिस पत्थर या काष्ठकी प्रतिमा बनाना हो उसपर पूर्वोक्त लेप करनेसे यदि मधुके वर्ण जैसा मंडल दिखाई दे तो भीतर खद्योत (जुगुनू) जाने। भस्म-सदृश मंडल दिखे तो बालू रेत, गुड़-सदृश मंडल दिखे तो भीतर लालमेंढक, आकाशवर्णका मंडल दिखे तो भीतर जल, कपोतवर्ण-सदृश मंडल दिखे तो भीतर छिपकली, मंजीठ-सदृश मंडल दिखे तो मेंढक, रक्तवर्ण मंडल दिखे तो भीतर गिरगिट, पीतवर्णका मंडल दिखे तो भीतर गोह, कपिल वर्णका मंडल दिखे तो भीतर उन्दुर (मूषक) काले वर्णका मंडल दिखे तो भीतर सर्प और चित्र (अनेक) वर्णका मंडल दिखे तो भीतर बिच्छू है, ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकारके दागवाले पत्थर या लकड़ीके होनेपर, सन्तान, लक्ष्मी, प्राण और राज्यका विनाश होता है। अतएव उक्त प्रकारके पाषाण या काष्ठमें मूर्त्ति उत्कीर्ण नहीं करनी चाहिए ॥१७८-१८१॥

प्रतिमामें यदि कदाचित् डोरे या धागे दिखाई दें और वे मूर्तिके समान ही वर्णवाले हों तो कोई दोष-कारक नहीं हैं। यदि उनका वर्ण मूर्तिके वर्णसे अन्य हो तो वे दोष-कारक हैं ॥१८२॥ इस प्रकार मन्दिरमें जाकर देव-पूजनादि आवश्यक कार्य करके गुरुके शुभ उपदेशको सुननेकी कामनासे गुरुके समीप उस पुरुषको अति आदरसे जाना चाहिए ॥१८३॥ यदि कदाचित् गुरु ही किसी कार्यसे अपने पास आवें तो शिष्यको उनकी भलीभाँतिसे पर्युपासना करना ही चाहिए ॥१८४॥ गुरुको आता हुआ देखकर अपने आसनसे उठ खड़ा हो, उनके आगमनपर सामने जावे, और मस्तकपर जल धारण करके उनको बैठनेके लिए स्वयं आसन प्रस्तुत करना चाहिए ॥१८५॥ तत्पश्चात् उन्हें भक्तिसे नमस्कार करे और आदर-पूर्वक उनकी उपासना करे। पुनः उनके जानेपर उनके पीछे कुछ दूरतक जावे। गुरुकी सेवा-उपासना करनेमें यही क्रम है ॥१८६॥

---

१. बिंवपरिवारमज्झे सेलस्स य वण्णसंकरं न सुहं। सम अंगुलप्पमाणं न सुंदरं हवइ कइया वि ॥
(वास्तुसार, प्र० २, गा० ३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धप्ररूपको ज्ञानी क्रियावानुपकारकः । धर्मविच्छेदरक्षी यो गुरुर्गौरवमर्हति ॥१८७
विचारावसरे मौनी लिप्सुर्धिप्सुश्च केवलम् । सर्वत्र चाटुवादी च गुरुभक्तिपरो मतः ॥१८८

इत्थं महाब्रह्ममुहूर्तमादौ कृत्वाऽभ्यधायि प्रहरस्य कृत्यम् ।
यस्य प्रकेशे तरणेरिवोच्चैर्भवेदवश्यं कमलावबोधः ॥१८९

इति श्रीजिनचन्द्राचार्यशिष्य-श्रीकुन्दकुन्दस्वामिविरचिते
श्रावकाचारे दिनचर्यायां प्रथमोल्लासः ॥१॥

■

गुरु कैसा हो ? जो शुद्ध धर्मका निरूपक हो, ज्ञानी हो, क्रियावान् हो, दूसरोंका उपकारक हो, धर्मके विच्छेदकी रक्षा करनेवाला हो, ऐसा जो गुरु है, वही गौरवके योग्य है ॥१८७॥ शिष्य कैसा हो ? जो तत्त्वके विचार करनेके समय मौन धारण करे, एकमात्र ज्ञानोपार्जनका इच्छुक हो, गुरुको प्रसन्न रखनेवाला हो, और सर्वत्र गुरुके मनको अनुरंजन-कारक वचनोंका बोलनेवाला हो तथा गुरु भक्तिमें तत्पर हो । यही सच्ची गुरु भक्ति है ॥१८८॥ इस प्रकार महान् ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर और आदिमें ही जो कार्य करनेके योग्य हैं, उन्हें करना चाहिए, तथा प्रथम पहरके जो कर्त्तव्य हैं उनको मैंने कहा । जिसके शिर पर गुरुजनोंका वरद हस्त है, वह अवश्य ही कमलोंको विकसित करनेवाले सूर्यके समान प्रकाशमान होगा ॥१८९॥

इस प्रकार श्री जिनचन्द्राचार्यके शिष्य श्री कुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें
दिनचर्यांका वर्णन करनेमें यह प्रथम उल्लास समाप्त हुआ ।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ द्वितीयोल्लासः

द्वितीया वर्जिता स्नाने दशमी चाष्टमी तथा । त्रयोदशी चतुर्दशी षष्ठी पञ्चदशी कुहूः ॥१
आदित्यादिषु वारेषु तापं कान्ति मृतिं धनम् । दारिद्यं दुर्भगत्वं च कामाप्तिः स्नानतः क्रमात् ॥२
नाग्नार्तः प्रोषितो यातः सचेलो भुक्तभुक्षितः । नैव स्नायादनुव्रज्य बन्धून् कृत्वा च मङ्गलम् ॥३
न पर्वे न च तीर्थेषु सङ्क्रान्तौ न च वैधृतौ । न विष्टयां न व्यतीपाते तैलाभ्यङ्गो न सम्मतः ॥४
स्नानं शुद्धाम्बुना यत्र न कदापि च विद्यते । तिथिवारादिकं यच्च तैलाभ्यङ्गे तदुच्यते ॥५
गर्भाशयाद् ऋतुमतीं गत्वा स्नायाद्दिने परे । अनृतुस्त्रीगमे शौचं मूत्रोत्सर्गवदाचरेत् ॥६

रात्रौ स्नानं न शास्त्रीयं केचिदिच्छन्ति पर्वणि ।
तीर्थे स्नात्वाऽन्यतीर्थानां कुर्यान्निन्दास्तुती न च ॥७

अज्ञाते दुष्प्रवेशे च मलिनैर्दूषितेऽथवा । तरूच्छन्ने सशैवाले न स्नानं युज्यते जले ॥८
स्नानं कृत्वा जलैः शीतैः भोक्तुं गन्तुं न युज्यते । जलैरुष्णैस्तथा शीते तैलाभ्यङ्गश्च सर्वदा ॥९
स्नातस्य विकृता छाया दन्तघर्षः परस्परम् । देहे च शवगन्धश्चेन्मृत्युस्तद्दिवसत्रये ॥१०
स्नानमात्रस्य यच्छोषो वक्षस्यङ्घ्रिद्वयेऽपि च । षष्ठे दिने तथा ज्ञेयं पञ्चत्वं नात्र संशयः ॥११

स्नान करनेमें द्वितीया, षष्ठी, अष्टमी, दशमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पंचदशी पूर्णिमा और अमावस्या तिथि वर्जित कही गई है ॥१॥ आदित्य (रवि) आदि वारोंमें स्नान करनेवाला मनुष्य क्रमसे सन्ताप, कान्ति, मरण-तुल्य कष्ट, धन, दरिद्रता, दुर्भाग्य और वांछित वस्तुको प्राप्त करता है ॥२॥ नग्न, पीड़ित, प्रवासमें रहते हुए, सचेल (वस्त्र पहिने हुए) भोजन करके, अति भूखा, बन्धुजनोंके पीछे गमन करनेवाला और मंगल कार्य करनेके पश्चात् स्नान नहीं करे ॥३॥ पर्वके दिन, तीर्थ स्थानोंपर, सक्रान्तिके समय और वैधृति योगमें तैल-मर्दन नहीं करे। इसी प्रकार विष्टि (भद्रा) में और व्यतीपातयोगमें तैल-मर्दन आचार्य-सम्मत नहीं है ॥४॥ जहाँपर जिस दिन शुद्ध जलसे स्नान करना कदापि सम्भव न हो, वहाँपर वे तिथि, वार आदिक तैल-मर्दन करनेके योग्य कहे गये हैं ॥५॥ गर्भ-धारण करनेके अभिप्रायसे ऋतुधर्मवाली स्त्रीके साथ समागम करके अगले दिन स्नान करे। जो स्त्री ऋतुधर्मसे युक्त नहीं है उसके साथ समागम करनेपर मूत्र-उत्सर्गके समान शौच आचरण करे ॥६॥ रात्रिमें स्नान करना शास्त्र-सम्मत नहीं है। किन्तु कितने ही आचार्य पर्वके दिन रात्रिमें स्नानको स्वीकार करते हैं। किसी तीर्थस्थानपर स्नान करके अन्य तीर्थस्थानोंकी निन्दा या प्रशंसा नहीं करनी चाहिए ॥७॥ अज्ञात जलस्थानमें, दुष्प्रवेशवाले जलमें, मलिन वस्तुओंसे दूषित जलमें, वृक्षोंसे ढँके हुए जलमें और शैवाल (शिवार) से युक्त जलमें स्नान न करे ॥८॥ शीतल जलसे स्नान करके भोजन करना, या गमन करना योग्य नहीं है। शीतकालमें सदा तैल-मर्दन करके उष्णजलसे स्नान करना चाहिए ॥९॥

स्नान करनेके बाद यदि शरीरकी छाया विकृत दिखाई देवे, परस्पर दांतोंका संघर्ष हो, और यदि शरीरमें शव (मृतदेह) के समान गन्ध आवे तो तीन दिनमें उसकी मृत्यु होगी ॥१०॥ स्नान करते ही यदि वक्षःस्थलपर और दोनों पैरोंपर सूखापन दिखे तो छठे दिन उसका मरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न शुक्रसोमयोः कार्यं स्नानं रोगविमुक्तये । पौष्याश्लेषाध्रुवस्वातिपुनर्वसुमघासु च ॥१२
रिक्ता तिथिः कुजार्कौ च क्षीणेन्दुर्लग्नमस्थिरम् । द्विषष्ठैकादशाः क्रूरा नैरुज्यस्नानशुद्धिदा ॥१३
रेतोवान्ते चिताभूमिस्पर्शे दुःस्वप्नदर्शने । क्षौरकर्मणि च स्नायाद् गालितैः शुद्धवारिभिः ॥१४
चतुर्थी नवमी षष्ठी चतुर्दश्यष्टमी तथा । अमावस्या च दैवज्ञैः क्षुरकर्मणि नेष्यते ॥१५
दिवाकीर्त्तिः प्रयोगेऽत्र वाराः प्रोक्ता मनीषिभिः । सौम्येज्य-शुक्रसोमानां क्षेमारोग्यसुखप्रदा ॥१६
क्षौरं प्रोक्तं विपश्चिद्भिर्मृगे पुष्ये चरेषु च । ज्येष्ठाऽश्विनीकर-द्वन्द्वरेवतीषु च शोभनम् ॥१७
क्षौरे राजाज्ञया जाते नक्षत्रं नावलोक्यते । कैश्चित्तीर्थे च शोके च क्षौरमुक्तं सुखार्थिभिः ॥१८
रात्रौ सन्ध्यासु विद्योते क्षौरं नोक्तं तथोत्सवे । भूषाभ्यङ्गासनस्थानपर्वयात्रारणेष्वपि ॥१९
कल्पयेदेकशः पक्षे रोमश्मश्रुकचान्नखान् । न चात्मदशनाग्रेण स्वपाणिभ्यां न चोत्तमः ॥२०
आत्मवित्तानुसारेण कलौचित्ये न सर्वदा । कार्यो वा नातिशृङ्गारो वयसश्चानुसारतः ॥२१
वारा नवीनवस्त्रस्य परिधाने मताः शुभाः । सौम्यार्क-शुक्र-गुरवो रक्ते वस्त्रे कुजोऽपि च ॥२२

जानना चाहिए, इस विषयमें कोई संशय नहीं है ॥११॥ रोगसे मुक्ति पानेके बाद शुक्रवार और सोमवारको स्नान नहीं करना चाहिए । तथा पुष्य, आश्लेषा, ध्रुव संज्ञकमें (तीनों उत्तरा, रोहिणी और रविवार) स्वाति, पुनर्वसु और मघा इन नक्षत्रोंमें भी रोग-मुक्तिके बाद स्नान नहीं करना चाहिए ॥१२॥ रिक्तातिथिमें अर्थात् चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीको, मंगलवार और रविवारको, अमावस्याको और अस्थिर लग्नमें भी रोग-मुक्तिके बाद स्नान नहीं करना चाहिए । दूसरे, छठे, ग्यारहवें भावमें गये हुए क्रूरग्रहमें रोग-विमुक्त हुए पुरुषको स्नान शुभ कारक है ॥१३॥

वीर्य-स्खलन होने पर, वमन करने पर, चिताभूमि (स्मशान) के स्पर्श करने पर, दुःस्वप्न के देखने पर, और क्षौर कर्म करने (बाल बनवाने) पर वस्त्रसे गाले गये (छने) शुद्ध जलसे स्नान करना चाहिए ॥१४॥ क्षौर कर्ममें चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या इन तिथियोंको दैवज्ञ (ज्योतिषी) शुभ नहीं कहते हैं ॥१५॥ दिवाकीर्त्ति प्रयोग (दिनके विचार) में मनीषी ज्ञानी जनोंने सौम्य (बुध) ईज्य (गुरु) शुक्र और सोम ये वार क्षेम, आरोग्य और सुख-प्रद कहे हैं ॥१६॥ इसी प्रकार मृगशिर, पुष्य, चर नक्षत्र (स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शत-भिषा, सोमवार) ज्येष्ठा, अश्विनी, करद्वन्द्व, (हस्त और चित्रा) तथा रेवती इन नक्षत्रोंमें विद्वानों ने क्षौर कर्म उत्तम कहा है ॥१७॥ क्षौर कर्म करानेके लिए राजा की आज्ञा होने पर नक्षत्रादिका विचार नहीं देखा जाता है । कितने ही सुखके इच्छुक जनोंने तीर्थ स्थानमें जाने पर और गुरुजनों के मरणरूप शोक होने पर क्षौर कर्म करना कहा है अर्थात् इनमें नक्षत्रादिका विचार नहीं किया जाता है । रात्रिमें, सन्ध्याकालोंमें और प्रकाश-रहित स्थानमें भी क्षौर कर्म करना नहीं कहा है । तथा उत्सवके समय, वेष-भूषाके समय, तैल-मर्दनके समय, अपने आसन पर बैठे हुए, पर्वके दिन, यात्रामें और रण-संग्राममें भी क्षौर कर्मका निषेध किया गया है ॥१९॥ पक्षमें एक बार शिर और दाढ़ीके केशोंको तथा नखोंको बनवाना चाहिए । अपने दांतोंके अग्रभागसे और अपने दोनों हाथोंसे नख-केशादिका काटना उत्तम् नहीं है ॥२०॥

अपने धनके अनुसार वेष-भूषादिरूप कला उचित हैं, किन्तु सर्वदा वैसा ही वेष बनाये रखना उचित नहीं है । अधिक शृंगार नहीं करना चाहिए । किन्तु अवस्थाके अनुसार ही करना चाहिए ॥२१॥ नवीन वस्त्र धारण करनेके लिए सौम्य, (बुध) रवि, शुक्र और गुरुवार शुभ माने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनिष्ठा-ध्रुव-रेवत्यश्विनी-हस्तादिपञ्चकम् । पुष्यपुनर्वसू चैव शुभानि श्वेतवाससि ॥२३
पुष्यं पुनर्वसू चैव रोहिणी चोत्तरात्रयम् । कौसुम्भे वर्जयेद्वस्त्रे भर्तृघातो भवेद्यतः ॥२४
रक्तवस्त्रप्रवालानां धारणं स्वर्ण-शङ्खयोः । धनिष्ठायां तथाऽश्विन्यां रेवत्यां करपञ्चके ॥२५
द्विजादेशे विवाहे च स्वामिदत्ते च वाससि । तिथि-वारार्क्ष शीतांशुविष्टयादीन्न विलोकयेत् ॥२६
न धार्यमुत्तमैर्जीर्णं वस्त्रं न च मलीमसम् । विना रक्तोत्पलं रक्तपुष्पं च न कदाचन ॥२७
आकाङ्क्षन्नात्मनो लक्ष्मीं वस्त्राणि कुसुमानि च । पादत्राणानि चान्येन विधृतानि न धारयेत् ॥२८
नवभागीकृते वस्त्रे चत्वारस्तत्र कोणकाः । कर्णावर्त्तिद्वये द्वौ चाञ्चलौ मध्यं तथैककम् ॥२९
चत्वारो देवता-भागा द्वौ भागौ दैत्यनायकौ । उभौ तौ मानुषौ भागौ एक भागश्च राक्षसः ॥३०
पङ्काञ्जनादिभिर्लिप्तं त्रुटितं मूषकादिभिः । तुन्नितस्फाटिकं दग्धं दृष्ट्वा वस्त्रं विचारयेत् ॥३१
उत्तमो दैवते लाभो दानवे रोगसम्भवः । मध्यमो मानुषे लाभो राक्षसे मरणं पुनः ॥३२

छत्रध्वजस्वस्तिकवर्धमान-श्रीवत्सकुम्भाम्बुजतोरणाद्यैः ।
छेदाकृतिर्नं नैऋतभागगापि पुंसां विधत्ते न चिरेण लक्ष्मीः[1] ॥३३

गये हैं । लाल वस्त्र धारण करनेमें मंगलवार भी शुभ है । श्वेत वस्त्रको धारण करनेमें धनिष्ठा, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र रेवती, अश्विनी हस्तादि पाँच नक्षत्र (हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा) पुष्य, और पुनर्वसु ये नक्षत्र शुभ हैं ॥२२-२३॥ कौसुम्भवर्ण रंग (हलका ताम्रवर्ण) का वस्त्र धारण करनेमें पुष्य पुनर्वसु, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्र इनका त्याग करे, क्योंकि इन नक्षत्रोंमें कुसुमल रंगका वस्त्र पहरने पर पतिका घात होता है ॥२४॥ रक्त वस्त्र, प्रवाल (मूँगा) स्वर्ण और शंखको धनिष्ठा, अश्विनी रेवती और हस्तादि पाँच नक्षत्रोंमें धारण करना चाहिए ॥२५॥ ब्राह्मणके कहनेपर, विवाहके समय और स्वामीके द्वारा दिये गये वस्त्रके धारण करनेमें तिथि, वार, नक्षत्र, चन्द्र शुद्धि और विष्टि (भद्रा) आदिका विचार नहीं करना चाहिए ॥२६॥

उत्तम पुरुषोंको जीर्ण और मलिन वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए । तथा लालकमलके बिना शेष लालपुष्प भी कभी नहीं धारण करना चाहिए ॥२७॥ यदि मनुष्य अपने लिए लक्ष्मीकी आकांक्षा करे तो दूसरोंके द्वारा धारण किये हुए वस्त्रोंको, पुष्पोंको और पादत्राणों (जूतों) को नहीं धारण करे ॥२८॥

नवीन वस्त्रके नौ भाग करे, उसमें चार भाग तो चारों कोणोंके होते हैं, कोनोंके समीपवाले दो भाग हैं, अंचलवाले दो भाग हैं और एक भाग मध्यवर्ती होता है ॥२९॥ इनमेंसे कोणोंवाले चार भाग देवताके भाग हैं, कोनोंके समीपवाले दो भाग दैत्योंके नायकोंके हैं, अंचलवाले दो भाग मनुष्यके हैं और मध्यभाग राक्षसका माना जाता है ॥३०॥

कीचड़, अंजन आदिसे लिप्त वस्त्र, मूषक आदिसे काटा गया वस्त्र, बुननेके स्थानसे फाड़ा गया वस्त्र और जले हुए वस्त्रको देखकर उसके फलका विचार करना चाहिए ॥३१॥ उपरिवर्णित भागोंमेंसे देवता-सम्बन्धी भाग उत्तम लाभ-कारक है, दैत्य-दानववाला भाग रोग-जनक है, मनुष्य भाग मध्यम लाभ-कारक है और राक्षस भागमें तो मरण होता है ॥३२॥

छत्र, ध्वजा, स्वस्तिक, वर्धमानक (नन्द्यावर्त) श्रीवत्स, कलश, कमल, और तोरण आदिके

---

१. भद्रबाहु संहिता, परि० श्लोक १९४, (पृ० ३९५) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कङ्कलवोलूक-कपोतकाक-क्रव्यादगोमायु-खरोष्ट्रसर्पैः ।
छेदाकृतिर्दैवतभागगापि पुंसा भयं मृत्युसमं करोति[1] ॥३४

नागवल्ली-दलास्वादो युज्यते क्रमुकैः समम् । एलालवङ्गकङ्कोलकर्पूराद्यन्वितैरपि ॥३५
चूर्ण-पूगदलाधिक्ये साम्ये चात्र सितक्रमात् । दुर्गन्धागन्धसौगन्ध्य-बहुरङ्गान् विदुर्बुधाः ॥३६
पित्तशोणितघातार्त-रूक्षक्षीणाक्षिरोगिणाम् । स चापथ्यं विषार्त्तस्य क्षीवशोषवतोऽपि च ॥३७
कामदं षड्-रसाधारमुष्णं श्लेष्मापहं तथा । कान्तिदं कृमिदुर्गन्धवातानां च विनाशकम् ॥३८
यःस्वादयति ताम्बूलं वक्त्रभूषाकरं नरः । तस्य दामोदरस्येव न श्रीस्त्यजति मन्दिरम् ॥३९
स्वापान्ते वमने स्नाने भोजनान्ते सदस्यपि । तत्पुनर्ग्राह्यमल्पीयः सुखदं मुखशुद्धिकृत् ॥४०
सुधीरर्थार्जने यत्नं कुर्यान्न्यायपरायणः । न्याय एवानपायो यः सूपायः सम्पदां यतः ॥४१

आकारका छिद्र यदि राक्षसवाले भागमें हो जावे तो मनुष्योंको लक्ष्मीकी प्राप्ति अचिर कालसे अर्थात् शीघ्र होती है ॥३३॥ कंकपक्षी, लवापक्षी, उल्लू, कबूतर, काक, मांस-भक्षी पशु, गीदड़, गर्दभ, ऊँट और सांप इनके आकारके छेद यदि देववाले भागमें हो जाये तो पुरुषोंको मृत्युके समान भयको करता है ॥३४॥

विशेष ज्ञातव्य यह है कि भद्रबाहु संहिताके परिशिष्ट अध्यायमें चौतीसवां श्लोक पहिले और तेतीसवां श्लोक पीछे दिया हुआ है । (देखो पृ० ३९५)

नागवेलके पत्र अर्थात् ताम्बूलका आस्वादन सुपारीके साथ और इलायची, लोंग, कंकोल, कपूर आदि सुगन्धित वस्तुओंके साथ करना योग्य है ॥३५॥ ताम्बूल भक्षणमें चूना, सुपारी और पान इनकी अधिकतामें और समानतामें चूनाके क्रमसे दुर्गन्ध, निर्गन्ध, सौगन्ध और बहुरंगको विद्वज्जन कहते हैं। भावार्थ—पानके लगानेमें यदि चूनाकी अधिकता हो तो मुखमें दुर्गन्ध उत्पन्न होगी, यदि सुपारीकी अधिकता हो तो मुख निर्गन्ध रहेगा, यदि पानका भाग अधिक होगा तो मुख सुगन्धित रहेगा। तथा तीनों समान परिमाणमें होंगे तो मुखका रंग सुन्दर होगा और अच्छा स्वाद आयगा ॥३६॥ पित्त रोगी, रक्त-क्षयवाला, पीड़ित, रुक्ष शरीरी, क्षीण देही, और आँखके रोगी पुरुषोंके लिए ताम्बूल-भक्षण करना अपथ्य है। तथा विषसे पीड़ित, क्षीव (मद-मत्त नशैलची) और शोषवाले दुर्बल पुरुषको भी वह अपथ्य है ॥३७॥ ताम्बूलका भक्षण काम-वर्धक, छहों रसोंका आधार, उष्ण, कफनाशक, कान्ति-दायक, और कृमि, दुर्गन्ध और वातरोग का विनाशक है ॥३८॥ जो मनुष्य मुखको भूषित करनेवाले ताम्बूलका आस्वादन करता है, उसके घरको लक्ष्मी उस प्रकारसे नहीं छोड़ती है, जिस प्रकारसे कि लक्ष्मी विष्णुका साथ नहीं छोड़ती है। अर्थात् ताम्बूल खानेवाले पुरुषके घर सदा लक्ष्मीका निवास रहता है ॥३९॥ सोनेके अन्तमें, वमन होने पर, स्नान करने पर, भोजनके अन्तमें, सभामें सुखद और मुखकी शुद्धि करनेवाला ताम्बूल अल्प परिमाणमें ही ग्रहण करना चाहिए ॥४०॥

बुद्धिमान् मनुष्यको न्याय-परायण होकर धनके उपार्जनमें प्रयत्न करना चाहिए। न्याय-पूर्वक उपार्जन किया हुआ धन ही अपाय (विनाश-) रहित होता है, क्योंकि वह नवीन अर्थो-

१. भद्रबाहु परि० संहिता, श्लोक १९३ (पृष्ठ ३९५)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दत्तः स्वल्पोऽपि भद्राय स्यादर्थो न्यायसञ्चितः । अन्यायात्तः पुनर्दत्तः पुष्कलोऽपि फलोज्झितः ॥४२
धर्मकर्माविरोधेन सकलोऽपि कुलोचितः । निस्तन्द्रेण विधेयोऽत्र व्यवसायः सुमेधसाम् ॥४३
प्रसूनमिव निर्गन्धं तडागमिव निर्जलम् । कलेवरमिवाजीवं को निःसेवेत निर्धनम् ॥४४
अर्थ एवं ध्रुवं सर्वपुरुषार्थ-निबन्धनम् । तत्रायानादृता ये ते जीवन्तोऽपि शवोपमाः ॥४५
कृष्यादिभिः सदोपायैः सूरिभिः समुपार्ज्यते । दयादानादिभिः सम्यग्धन्यैर्धर्म इव ध्रुवम् ॥४६
आरम्भोऽयं महानेव पृथ्वी-कर्षणकर्मणि । सुतीर्थविनियोगेन विना पापाय केवलम् ॥४७
वापकालं विजानाति भूमिभावं च कर्षकः । कृषि-साध्यं पथि क्षेत्रं यथेप्सति स वर्धते ॥४८
पशुपाल्यं श्रियो वृद्धयै कुर्वन्नोज्झेद्दयालुताम् । तत्कृत्येषु स्वयं जाग्रच्छविच्छेदान् विवर्जयेत् ॥४९
श्रेयान् धर्मः पुमर्थेषु स्वोपार्ज्यस्तदनन्तरम् । तन्नित्यं तौ च सङ्ग्राह्यौ कथं दद्यादसङ्ग्रही ॥५०
सङ्ग्रहेऽर्थेऽपि जायेत प्रस्तावे तस्य विक्रयात् । उद्धारेऽनुचितः सोऽपि वैर-विग्रह कारिणि ॥५१
सर्वदा सर्वभाण्डेषु नाणकेषु च शिक्षितः । जानीयात् सर्वभाषाविद् वस्तुसञ्ज्ञां वणिग्वरः ॥५२
एकद्वित्रिचतुःसञ्ज्ञां तर्जन्याद्यङ्गुलिग्रहे । साङ्गुष्ठानां पुनस्तासां सङ्ग्रहे पञ्च सञ्ज्ञिताः ॥५३

पार्जनका सुन्दर उपाय है ॥४१॥ न्यायसे संचय किया गया धन यदि अल्प परिमाणमें भी दान किया जाय, तो भी वह कल्याणके लिए होता है। किन्तु अन्यायसे प्राप्त धन यदि विपुल परिमाणमें भी दान किया जावे तो भी फलसे रहित होता है ॥४२॥ इसलिए बुद्धिमानोंको प्रमाद-रहित हो करके धर्म-कर्मके अविरोधसे अपने कुलके उचित सभी व्यवसाय करना चाहिए ॥४३॥

गन्ध-रहित पुष्पके समान, जल-रहित तालाबके समान, और जीव-रहित शरीरके समान धन-रहित पुरुषकी कौन सेवा करेगा ? कोई भी नहीं ॥४४॥ सभी पुरुषार्थोंका कारण निश्चयसे धन ही है। जो पुरुष धनोपार्जन करनेमें आदरशील नहीं होते हैं वे जीते हुए भी मृतकके समान हैं ॥४५॥ इसलिए बुद्धिमान् लोग सदा ही कृषि आदि न्यायोचित उपायोंके द्वारा धनका उपार्जन करते हैं। जैसे कि धन्य पुरुष दया-दान आदिके द्वारा निश्चयसे धर्मका उपार्जन करते हैं ॥४६॥ यद्यपि पृथ्वीके कर्षण-कर्ममें अर्थात् खेती करनेमें महा आरम्भ हो है अर्थात् यह महा हिंसाका कार्य है। कृषिसे उपार्जित धन उत्तम तीर्थ-पात्र आदिमें दान देनेके विना वह केवल पापके लिए ही है ॥४७॥ कृषि करनेवाला मनुष्य वीज-वपनको और भूमिके भावको जानता है, इसलिए खेतीके मार्गमें कृषि-साध्य खेतको वह जैसा चाहता है, वैसा उसे बढ़ा लेता है ॥४८॥

लक्ष्मीकी वृद्धिके लिए गाय आदि पशुओंका पालन करना चाहिए। किन्तु पशु-पालनमें दयाका परित्याग न करे। पशुपालनके कार्यमें स्वयं जागृत (सावधान) रहे और पशुओंके अंगका छेदन-भेदन आदि कार्योंका त्याग करे ॥४९॥ मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंमें धर्म-पुरुषार्थ सबसे श्रेष्ठ है और उसके अनन्तर धनका उपार्जन करना भी उत्तम है। इसलिए धर्म और अर्थ इन दो पुरुषार्थोंका सदा संग्रह करना चाहिए, क्योंकि धनका संग्रह नहीं करनेवाला पुरुष दूसरेको दान कैसे दे सकेगा ? अर्थात् नहीं दे सकेगा ॥५०॥ धन-धान्यादिके संग्रह करने और अवसर आनेपर उसके विक्रयसे भी धनका उपार्जन होता है। किन्तु वैर और विग्रह करनेवाले उधार देनेके धन्धेमें धनका उपार्जन करना अनुचित है ॥५१॥

सर्व प्रकारके भांडों और वस्त्रोंके व्यापारमें शिक्षित हुए उत्तम वैश्यको सभी भाषाओं और वस्तुओंकी संज्ञाओं (संकेतों) को भी जानना चाहिए ॥५२॥ तर्जनीको आदि लेकर अंगुलियोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कनिष्ठादि-तलस्पर्शे षट्सप्ताष्टौ नव क्रमात् । तर्जन्या दश विज्ञेयास्तदादीनां नखाहतैः ॥५४
एकद्वित्रिचतुर्युक्ता दशा ज्ञेया यथाक्रमम् । हस्तस्य तलसंस्पर्शे पुनः पञ्चदश स्मृताः ॥५५
तले च कनिष्ठानां तु षट्सप्ताष्टनवाधिकाः । क्रमशो दश विज्ञेया हस्तसञ्ज्ञा-विशारदैः ॥५६
तर्जन्यादौ द्वित्रिचतुःपञ्चग्राहे यथाक्रमम् । विंशत्त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्परिकल्पना ॥५७
कनिष्ठाद्यङ्गुलितलैः षष्टिसप्तत्यशीतयः । नवतिश्च क्रमाज्ज्ञेया तर्जन्यर्धग्रहे शतम् ॥५८
सहस्रमयुतं लक्षं पूर्वयुक्तं च विश्रुतम् । मणिबन्धे पुनः कोटी हस्तसञ्ज्ञाविदो विदुः ॥५९
क्रयाणकेष्वदृष्टेषु न सत्यङ्कारमर्पयेत् । दद्याच्चेद्बहुभिः सार्धमिच्छेल्लक्ष्मीं वणिग्यदि ॥६०
कुर्यात्तत्रार्थसम्बन्धमिच्छेद्यत्र न सौहृदम् । यदृच्छया न तिष्ठेच्च प्रतिष्ठाभङ्गभीरुकः ॥६१
व्यापारिभिश्च विप्रैश्च सायुधैश्च वणिग्वरः । श्रियमिच्छन् न कुर्वीत व्यवहारं कदाचन ॥६२
नटे पण्याङ्गनायां च द्यूतकारे विटे तथा । दद्यादुद्धारकं नैव धनरक्षापरायणः ॥६३
धर्मबाधाकरं यच्च यच्च तस्कराद्धृतम् । भूरिलाभकरं ग्राह्यं पुण्यं पुण्यार्थिभिर्न तत् ॥६४

ग्रहण करने पर क्रमशः एक, दो, तीन और चारका संकेत जानना चाहिए। तथा अंगूठेके साथ उन सभी अंगुलियोंके पकड़नेपर पाँचका संकेत जानना चाहिए ॥५३॥ पुनः कनिष्ठा आदिके तलभागके स्पर्श करनेपर दशका संकेत जानना चाहिए। पुनः तर्जनीको आदि लेकर शेष अंगुलियोंको नखसे दबानेपर यथाक्रमसे एक, दो, तीन और चारसे युक्त दश अर्थात् क्रमसे ग्यारह, बारह, तेरह और चौदहका संकेत जानना चाहिए। हाथके तलभागका स्पर्श करनेपर पन्द्रहका संकेत माना जाता है ॥५४-५५॥ कनिष्ठा आदि अंगुलियोंके तलभागके स्पर्श करनेपर क्रमसे छह, सात, आठ और नौसे अधिक दशका संकेत हस्तसंज्ञाके विशारद पुरुषोंको जानना चाहिए ॥५६॥ पुनः तर्जनी आदिके आदि भागको लेकर यथाक्रमसे दो, तीन, चार और पाँचके ग्रहण करनेपर क्रमशः बीस, तीस, चालीस और पचासकी कल्पना करनी चाहिए ॥५७॥ पुनः कनिष्ठा आदि अंगुलियोंके तलभागके ग्रहण करनेपर यथाक्रमसे साठ, सत्तर, अस्सी और नव्वे तथा तर्जनीके अर्धभागके ग्रहण करनेपर सौका संकेत जानना चाहिए ॥५८॥ पुनः अनामिकाके मध्य-भागके ग्रहण करनेपर हजारका, मध्यमाके मध्यभागके ग्रहण करनेपर दश हजारका, तर्जनीके मध्यभागके ग्रहण करनेपर लाखका और अंगूठेके मध्यभागके ग्रहण करनेपर दश लाखका संकेत प्रसिद्ध है। हाथके मणिबन्ध (पहुँचा) पकड़नेपर करोड़का संकेत हस्तसंज्ञाके विज्ञजन जानते हैं॥५९॥

किरानाकी वस्तुओंके नहीं देखनेपर सत्यकार (लेना पक्का करनेके लिए अग्रिम मूल्य) नहीं देवे। यदि देवे भी, तो यदि व्यापारी लक्ष्मीको चाहता है तो बहुत जनोंके साथ उनकी साक्षीसे देवे ॥६०॥ जहाँ मित्रता न चाहे, वहींपर व्यापारीको धनका सम्बन्ध करना चाहिए। तथा अपनी प्रतिष्ठाके भंगसे डरनेवाले व्यापारीको बिना किसी प्रयोजनके जहाँ कहीं नहीं ठहरना चाहिए ॥६१॥

लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठ वैश्यको चाहिए कि वह व्यापारियोंके साथ, ब्राह्मणोंके साथ और शस्त्रधारी पुरुषोंके साथ लेन-देनका व्यवहार न करे ॥६२॥ धनकी रक्षा करनेमें तत्पर वैश्यको चाहिए कि वह नटको, बाजारू स्त्री वेश्याको, जुआरीको तथा विट (भांड) नट आदि कुत्सित पुरुषोंको धन उधार न देवे ॥६३॥ जो धर्ममें बाधा करनेवाला हो, तथा जो चोरी करके लाया हुआ हो, ऐसा बहुत भी लाभकारी धन पवित्र पुण्यके इच्छुक जनोंको नहीं ग्रहण करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनं यच्चार्ज्यते किञ्चित्कूटमानतुलादिभिः । नश्येत्तन्नैव दृश्येत तप्तपात्रेषु बिन्दुवत् ॥६५
धनी न्यासापहारं च वणिक्पुत्रः परित्यजेत् । अङ्गीकुर्यात्क्षमामेकां भूपतो दुर्गतोऽपि च ॥६६
स्वच्छस्वभावविश्वस्ता गुरुनायककालकाः । देवा वृद्धाश्च न प्राज्ञैर्वञ्चनीया कदाचन ॥६७
भाव्यं प्रतिभुवोऽन्नेव दक्षिणेन न साक्षिणा । कोशपानादिकं चैव न कर्त्तव्यं यतस्ततः ॥६८
साध्वर्थे जीवरक्षायै गुरुदेवगृहादिषु । मिथ्याकृतैरपि नृणा शपथैर्नास्ति पातकम् ॥६९
असम्पत्त्या स्वमात्मानं नैवावगणयेद् बुधः । किन्तु कुर्याद् यथाशक्ति व्यवसायमुपायवित् ॥७०
वृष्टिशीतातपक्षोभकाममोहक्षुधादयः । न घ्नन्ति यस्य कार्याणि सो गुणी व्यवसायिनाम् ॥७१
यो द्यूत-धातुवादादिसम्बन्धाद् धनमीहते । स मषीकूर्चकैर्धाम धवलीकर्त्तुमीहते ॥७२
अन्यायिदेवपाखण्डितद्धनानां धनेन यः । वृद्धिमिच्छति मुग्धोऽसौ विषमत्ति जिजीविषुः ॥७३
गोदेवकरणारक्षतलावर्त्तकपट्टकाः । ग्रामोत्ताराश्च न प्रायाः सुखा व्यक्तं भवन्त्यमी ॥७४
अभिगम्यो नृभिर्योगक्षेमसिद्धचर्थमात्मनः । राजादिर्नायकः कश्चिदिन्दुनेव दिवाकरः ॥७५
निन्दन्तु मानिनः सेवां राजादीनां सुखैषिणः । सवज्जना (?) स्वजनोद्धार-संहारौ न विना तथा ॥७६

चाहिए ॥६४॥ हीनाधिक नाप-तौल आदिके छल-प्रपंचसे जो कुछ भी धन उपार्जन किया जाता है, वह इस प्रकारसे नष्ट हो जाता है, जैसे कि अग्निसे सन्तप्त लोह पात्र (तवा) पर गिरा हुआ जल-बिन्दु दिखाई नहीं देता है ॥६५॥

धनी वणिक्-पुत्रको न्यास (धरोहर) के अपहरणका परित्याग करना चाहिए। राजासे दुर्गतिको प्राप्त हुए भी वणिक्को एकमात्र क्षमा ही अंगीकार करनी चाहिए ॥६६॥ बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिए कि वे निर्मल स्वभाववाले विश्वस्त पुरुषोंको, गुरुजनोंको, स्वामियोंको, अधिकारियोंको, देवोंको और वृद्ध मनुष्योंको कदाचित् भी नहीं ठगें ॥६७॥ भूमि-पतिके अन्नके समान मनुष्यको देनेमें कुशल होना चाहिए। साक्षी नहीं होना चाहिए। तथा इसीलिए शपथ-सौगन्ध आदि भी नहीं करनी चाहिए ॥६८॥ साधुके लिए, जीव-रक्षाके लिए, गुरुजनोंके लिए तथा देवालय आदिके विषयमें मिथ्या की गई शपथोंसे भी मनुष्योंको कोई पाप नहीं लगता है ॥६९॥ सम्पत्ति न होनेसे बुद्धिमान् पुरुष अपनी आत्माको नीचा न गिने। किन्तु अर्थोपार्जनके उपायोंको जानकर यथाशक्ति योग्य व्यवसायको करे ॥७०॥

वर्षा, शीत, आतप (गर्मी) क्षोभ, काम, मोह और भूख-प्यास आदिके कष्ट जिस पुरुषके कार्योंको नष्ट नहीं कर पाते हैं. वह व्यवसाय करनेवालोंमें गुणी है ॥७१॥ जो मनुष्य जुआ, धातुवाद आदिके सम्बन्धसे धनको उपार्जन करनेकी इच्छा करता है, वह काली स्याहीकी कूँचीसे भवनको धवल करनेकी इच्छा करता है ॥७२॥ जो अन्यायी पुरुषोंके धनसे, देव-धन (निर्माल्य-द्रव्य) से और पाखण्डी जनोंके धनसे अपने धनको वृद्धि चाहता है, वह मूढ़ जीनेकी इच्छा करता हुआ विषको खाता है ॥७३॥ गौ, देव और करण (अदायक) आरक्षक (कोटवाल) तलावर्तक (गुप्तचर) पट्टक (पट्टबन्ध, पटेल आदि) और गाँवका धन खानेवाले, ये सभी पुरुष प्रायः प्रकटरूपसे सुखी नहीं होते हैं ॥७४॥

अपने योग (धनोपार्जन) और क्षेम (उपार्जित धनके संरक्षण) की सिद्धिके लिए मनुष्योंको राजा, नायक आदि किसी श्रेष्ठ पुरुषके साथ समागम करना चाहिए। जैसे कि चन्द्र सूर्यके साथ समागम करता है ॥७५॥ सुखके इच्छुक स्वाभिमानी पुरुष राजा आदिकी सेवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अकर्णदुर्बलः सूरः कृतज्ञः सात्त्विको गुणी । वदान्यो गुणराशिश्च प्रभुः पुण्यैरवाप्यते ॥७७
स्वतन्त्रः स्वपवित्रात्मा सेवकाऽऽगमनस्पृही । उचितपथि (?) क्षमी दक्षः सलज्जो दुर्लभः प्रभुः ॥७८
विद्वानपि परित्याज्यो नेता मूर्खजनावृतः । मूर्खोऽपि सेव्य एवासौ बहुश्रुतपरिच्छदः ॥७९
स्वामिसम्भावितैश्वर्यः सेव्यः सेव्यगुणान्वितः । सत्क्षेत्रबीजवत्कालान्तरेऽपि स्यान्न निष्फलः ॥८०
स्वामिभक्तो महोत्साहः कृतज्ञो धार्मिकः शुचिः । अकर्कशः कुलीनश्च स्मृतिज्ञः सत्यभाषकः ॥८१
विनीतः स्थूललक्षश्चाव्यसनो वृद्धसेवकः । अक्षुद्रः सत्त्वसम्पन्नः प्राज्ञः शूरोऽचिरक्रियः ॥८२
राज्ञा परीक्षितः सर्वोपधासु निजदेशजः । राजार्थस्वार्थलोकार्थकारको निष्पृहः शसी ॥८३
अमोघवचनः कल्यः पालिताशेषदर्शनः । पुत्रौचित्येन सर्वत्र नियोजितपदक्रमः ॥८४

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिकृतः समः ।
क्रमागमो वणिक्पुत्रैः सेव्यो मन्त्री न चापरः ॥८५॥ (कुलकम्)

अभ्यासी वाहने शास्त्रे, शस्त्रे च विजये रणे । स्वामिभक्तो जितापासः, सेव्यः सेनापतिः श्रिये ॥८६
अवञ्चकः स्थिरः प्राज्ञः, प्रियवाग्विक्रमः शुचिः । अलुब्धः सोद्यमो भक्तः सेवकः सद्भिरिष्यते ॥८७

करनेकी भले ही निन्दा करें, किन्तु उनकी सेवाके बिना स्वजनोंका उद्धार और दुर्जनोंका संहार होना सम्भव नहीं है ॥७६॥ जो कानोंका दुर्बल न हो, सूर हो, कृतज्ञ हो, सात्त्विक स्वभावी हो, गुणी हो, उदार हो और गुणोंका भण्डार हो, ऐसा स्वामी पुण्यसे ही प्राप्त होता है ॥७७॥ स्वतंत्र, स्वयं पवित्रात्मा, सेवक जनोंके आगमनका इच्छुक, उचित मार्गपर चलनेवाला, क्षमाशील, चतुर और लज्जावान् स्वामी मिलना दुर्लभ है ॥७८॥

मूर्खजनोंसे घिरा रहनेवाला विद्वान् भी नेता परित्याज्य है और उत्तम शास्त्रज्ञ पुरुषोंके परिवारवाला मूर्ख भी नेता सेवा करनेके योग्य है ॥७९॥ जिसमें स्वामीके योग्य ऐश्वर्य की संभावना हो और जो सेवन करनेके योग्य गुणोंसे युक्त हो, ऐसा स्वामी सेवा करनेके योग्य है। क्योंकि वह उत्तम खेतमें बोये गये बीजके समान कालान्तरमें भी फलको देगा, किन्तु निष्फल नहीं रहेगा ॥८०॥

अब राजाका मन्त्री कैसा हो ? यह बतलाते हैं—जो स्वामीका भक्त हो, महान् उत्साहवाला हो, कृतज्ञ हो, धार्मिक हो, पवित्र हृदयवाला हो, कर्कश स्वभावी न हो, कुलीन हो, स्मृति-शास्त्रका वेत्ता हो, सत्यभाषी हो, विनीत हो, विशाल लक्ष्यवाला हो, व्यसन-रहित हो, वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला हो, क्षुद्रता-रहित हो, सत्त्वसे सम्पन्न हो, बुद्धिमान् हो, शूरवीर हो, शीघ्र कार्य करनेवाला हो, राजाके द्वारा सभी विषयोंमें परीक्षित हो, जिसका अपने ही देशका जन्म हो, राजाके अर्थका, अपने प्रयोजनका और लोगोंके स्वार्थका करनेवाला हो, लोभ-लालचसे रहित हो, शासन करनेवाला हो, व्यर्थके वचन न बोलता हो, सुन्दर हो, सभी दार्शनिकोंके सिद्धान्तोंका पालक हो, सर्व लोगोंपर पुत्रोचित व्यवहारको करता हो, आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता और दण्ड नीतिसे कार्य करनेवाला हो, समभावी हो, और कुल-परम्परागत क्रमका ज्ञाता हो, ऐसा मन्त्री ही वणिक्-पुत्रोंके द्वारा सेवा करनेके योग्य है, अन्य नहीं ॥८१-८५॥

अब सेनापति कैसा हो ? यह निरूपण करते हैं—जो घोड़े आदिकी सवारी करनेमें अभ्यासवाला हो, शास्त्रोंमें और शस्त्र-संचालनमें कुशल हो, रणमें विजय प्राप्त करनेवाला हो, स्वामीका भक्त हो, और दुर्व्यसनोंका जीतनेवाला हो, ऐसा सेनापति अपने कल्याणके लिए सेवनीय है ॥८६॥ सेवक कैसा हो ? यह बतलाते हैं—जो वंचक न हो, स्थिर स्वभावी हो, बुद्धिमान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेवकः स पुनो नम्रः स्वाम्याकूते विशेत्सदा । स्वमार्गेणोचिते स्थाने गत्वा चासीत संवृतः ॥८८

आसीत स्वामिनः पार्श्वे तन्मुखेक्षी कृताञ्जलिः ।
स्वभावं चास्य विज्ञाय दक्षः कार्याणि साधयेत् ॥८९

नात्यासन्नो न दूरस्थो न समोच्चासनस्थितः । न पुरस्थो न पृष्ठस्थस्तिष्ठेत्सदसि तु प्रभोः ॥९०
आसन्ने स्यात् प्रभोर्बाधा दूरस्थेऽप्यप्रगल्भताम् । पुरः स्थितेऽप्यन्यकोपस्तस्मिन् पश्चाददर्शनः ॥९१
प्रभु-प्रिये प्रियत्वं च प्रभुवैरिणि वैरिता । तस्यैवाव्यभिचारेण नित्यं वर्तेत सेवकः ॥९२
प्रसादात्स्वामिना दत्तं वस्त्रालङ्करणादिकम् । प्रीत्याधार्यं स्वयं देयं न चान्यस्मै तदग्रतः ॥९३
स्वामिनो ह्यधिको वेषः समानो वा न युज्यते । श्रस्तं वस्त्रं क्षुतं जृम्भां नेक्षेतास्य स्त्रियं तथा ॥९४
विक्षम्भणकृतोद्गारहास्यादीन् पिहिताननः । कुर्यात्सभासु नो नासाशोधनं हस्तमोटनम् ॥९५
कुर्यात्पर्यस्तिकां नैव नैव पादप्रसारिकाम् । न निद्रां विकथां नापि सभायां कुक्रियां न च ॥९६
श्रोतव्या सावधानेन स्वामिवागनुजीविना । भाषितः स्वामिना जल्पेन्न चैकवचनादिभिः ॥९७
आज्ञा-लाभादयः सर्वे यस्मिन् लोकोत्तरा गुणाः । स्वामिनं नावजानीयात्सेवकस्तं कदाचन ॥९८
एकान्ते मधुरैर्वाक्यैः शान्तयेन्नहि तत्प्रभुम् । वारयेदन्यथा हि स्यादेष स्वयमुपेक्षितः ॥९९

हो, प्रियवादी हो, पराक्रमी हो, पवित्र हो, लोभ-रहित हो, उद्यमशील हो और स्वामीका भक्त हो, ऐसा व्यक्ति ही सज्जनोंके द्वारा सेवक कहा गया है ॥८७॥ वह सेवक नम्र हो, स्वामीके अभिप्रायमें सदा प्रवेश करनेवाला हो और अपने मार्गसे जाकर उचित स्थानमें शरीरका संवरण करके बैठे ॥८८॥ स्वामीके समीप उनके मुखको देखता हुआ अंजली बाँधकर बैठे और स्वामीके स्वभाव (अभिप्राय) को जानकर वह दक्ष सेवक कार्योंको सिद्ध करे ॥८९॥ सेवकको चाहिए कि वह सभामें स्वामीके न अतिसमीप बैठे, न अति दूर बैठे, न समान आसन पर बैठे, न बिलकुल सामने बैठे और न बिलकुल पीछे बैठे। (किन्तु यथोचित स्थान पर बांई ओर बैठे) ॥९०॥ स्वामी के अति समीप बैठनेपर स्वामीके कार्यमें बाधा आती है, अति दूर बैठने पर मूर्खता प्रकट होती है, सामने बैठनेपर अन्य पुरुषका उसपर कोप होता है और पीछे बैठनेपर स्वामीको उसका दर्शन नहीं होता है ॥९१॥ स्वामीके प्रिय पुरुषपर प्रेमभाव रखे, और स्वामीके वैरीपर वैरभाव रखे। स्वामीकी इच्छाके अनुसार ही सेवकको नित्य कार्यमें प्रवर्तन करना चाहिए ॥९२॥ स्वामीके द्वारा प्रसन्नतासे दिये गये वस्त्र और अलंकरण आदिको प्रीति-पूर्वक स्वयं धारण करना चाहिए। तथा स्वामीके आगे उन्हें अन्य पुरुषको नहीं देना चाहिए ॥९३॥ स्वामीसे अधिक या समान वेषधारण करना सेवकको योग्य नहीं है। स्वामीके सामने ढीला वस्त्र पहिरना, छींकना और जंभाई लेना उचित नहीं है। तथा स्वामीकी स्त्रीको भी नहीं देखे ॥९४॥ उवासी, डकार, हँसी आदिको मुख ढँककर करे। तथा सभामें नासा-मलका शोधना और हाथोंका मोड़ना भी उचित नहीं है ॥९५॥ सभामें पालथो मार करके भी न बैठे, न पैरोंको पसारे, न निद्रा लेवे, न विकथा करे और न कोई खोटी क्रियाको ही करे ॥९६॥ सेवकको सावधानीसे स्वामीके वचन सुनना चाहिए। स्वामीके द्वारा कोई कार्य करनेके लिए कहा जावे तो उसके उत्तरमें एक वचन आदि से न बोले। किन्तु आदर-सूचक बहुवचनका प्रयोग करे ॥९७॥ जिसमें आज्ञा, लाभ आदि सभी लोकोत्तर गुण हैं, ऐसे स्वामीका सेवकको कभी अपमान या अवहेलना नहीं करनी चाहिए ॥९८॥ यदि कदाचित् स्वामी कोई अनुचित या रोषभरी बात कहे, तो एकान्तमें मधुर वाक्योंसे स्वामीको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मौनं कुर्याद्यदि स्वामी युक्तमप्यवमन्यते । प्रभोरग्रे न कुर्याच्च वैरिणो गुणकीर्त्तनम् ॥१००
प्रभोः प्रसादेऽप्राप्तेऽपि प्रकृतिर्नैव कोपयेत् । व्यापारितश्च कार्येषु याचेताध्यक्ष पौरुषम् ॥१०१॰
कोपप्रसादकैश्चिह्नै रुक्तिभिः सञ्ज्ञयाऽथवा । अनुरक्तं विरक्तं च विजानीयात्प्रभोर्मनः ॥१०२
हर्षो दृष्टे धृतिः पार्श्वे स्थिते वासनदापनम् । स्निग्धोक्तिरुक्तकारित्वं प्रसन्नप्रभुलक्षणम् ॥१०३
आपद्युक्तो हि नालोकेन्मानहानिरदर्शनम् । दोषोक्तिरप्रदानं च विरक्तप्रभुलक्षणम् ॥१०४
दोषैकेण न तत्त्याज्यः सेवकः सगुणोऽधिपैः । धूमदोषभयाद्वह्निः किमु केनाप्यपास्यते ॥१०५
चलादपि चलः श्लाघ्यो धनात्पुरुषसङ्ग्रहः । असदप्यर्ज्यते वित्तं पुरुषैश्च व्यवसायिभिः ॥१०६
अनल्पैः किमहो जल्पैर्व्यवसायः श्रियो मुखम् । अर्ज्या श्रीः सदयाकृत्यै दान-भोगकरी च या ॥१०७
व्यवसाये निधौ धर्म-भोगयोः पोष्य-पोषणे । चतुरश्चतुरो भागानर्थस्यैवं नियोजयेत् ॥१०८
न लालयति यो लक्ष्मीं शास्त्रीयविधिनामुना । सर्वथैव स निःशेषपुरुषार्थबहिःकृतः ॥१०९
सा च सञ्जायते लक्ष्मी रक्षण-व्यवसायतः । प्रावृषेण्यपयो वाहादिव काननकाम्यता ॥११०
व्यवसायोऽप्यसौ पुण्यनैपुण्यसचिवो भवेत् । सफलः सर्वदा पुंसां वारिसेकादिव द्रुमः ॥१११

शान्त करे, किन्तु तत्काल ही उसके कथनकी अवहेलना न करे । अन्यथा वह सेवक स्वयं उपेक्षित हो जायगा ॥९९॥ यदि स्वामी योग्य भी कही गई बातकी अवमानना या उपेक्षा करे, तो सेवकको मौन-धारण करना चाहिए । तथा स्वामीके आगे उनके वैरीका कभी गुणगान नहीं करना चाहिए ॥१००॥ स्वामीकी प्रसन्नता नहीं पानेपर भी सेवकको अपनी प्रकृति कुपित नहीं करनी चाहिए । स्वामीके द्वारा कार्योंमें लगाये जानेपर और भी अधिक पुरुषार्थवाले कार्यकी याचना करनी चाहिए ॥१०१॥

क्रोध या प्रसादके चिह्नोंसे, वचनोंसे अथवा चेष्टासे स्वामीके मनको अपने विषयमें अनुरक्त या विरक्त जानना चाहिए ॥१०२॥ दिखाई देनेपर हर्ष प्रकट करे, समीप पहुँचनेपर धैर्य प्रदर्शित हो, खड़े होनेपर आसन देवे, स्नेहभरे वचन कहे और जो सेवक कहे उसे करे तो ये सब स्वामीके प्रसन्न होनेके लक्षण हैं ॥१०३॥ आपत्तिसे युक्त होनेपर भी नहीं देखे, मानहानि करे, दर्शन न दे, दोषोंको कहे और आसन प्रदान न करे, तो ये सब स्वामीकी विरक्तताके लक्षण हैं ॥१०४॥ अनेक गुणोंसे युक्त सेवक किसी एक दोषके कारण स्वामीजनोंको नहीं छोड़ना चाहिए। धुँआके दोषके भयसे क्या अग्नि किसीके द्वारा त्यागी जाती है ? नहीं त्यागी जाती ॥ १०५ ॥

चंचलसे भी चंचल धन प्रशंसाके योग्य है । इसलिए पुरुषको धनका संग्रह करना चाहिए । व्यवसायी पुरुष असत् भी धनका उपार्जन करते हैं ॥१०६॥ अहो, अधिक कहनेसे क्या लाभ है, व्यवसाय करना लक्ष्मीका मुख है । अतएव दयाके कार्य करनेके लिए उस लक्ष्मीका उपार्जन करना ही चाहिए, जो कि दान और भोगोंको करनेवाली है ॥१०७॥ व्यापारमें उपार्जित धनके इस प्रकारसे चार भाग करना चाहिए—एक भाग भण्डारमें रखे, एक भाग धर्मकार्यमें लगावे, एक भाग अपने भोग-उपभोगमें खर्च करे और एक भाग अपने अधीन पोष्यवर्गके पोषणमें लगावे ॥१०८॥ जो पुरुष इस शास्त्रीय विधिसे लक्ष्मीका लालन-पालन नहीं करता है, वह सर्वथा ही सम्पूर्ण पुरुषार्थोंसे बहिष्कृत रहता है ॥१०९॥ वह लक्ष्मी संरक्षण और व्यवसायसे पैदा होती है । जैसे कि वर्षाके जल-प्रवाहसे वन-उद्यानके हरे-भरे रहनेकी कामना की जाती है ॥११०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुण्यमेव मुहुः केऽपि प्रमाणीकुर्वतेऽलसाः । निरीक्ष्य तद्वतां द्वारि ताम्यतो व्यवसायिनः ॥११२
तदयुक्तं यतः पुण्यमपि निर्व्यवसायकम् । सर्वथा फलयन्नात्र कदाचिदवलोक्यते ॥११३
द्वौ तथेतौ ततो लक्ष्म्या हेतू न तु पृथक्-पृथक् । तेन कार्यो न गृहस्थेन व्यवसायोऽनुवासरे ॥११४
कालेन सूचितं वस्त्रममलं सदनं निजम् । अर्थोप्यर्थार्थिकाश्चैतद्व्यवसायतरोः फलम् ॥११५
इत्थं किल द्वितीय-तृतीय-प्रहरार्धमखिलमपि । हट्टे कुर्वन्तः सन्तः कृत्यविधौ नात्र मुह्यन्ति ॥११६

इति श्री कुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे दिनचर्यायां द्वितीयोल्लासः ।

मनुष्योंका वह व्यवसाय भी पुण्यकी निपुणताकी सहायतासे सफल होता है। जैसे कि जलके सिंचनसे वृक्ष फलीभूत होता है ॥१११॥

पुण्यवालोंके द्वारपर व्यवसायी लोगोंको तमतमाते हुए खड़े देखकर कितने ही आलसी पुरुष बार-बार पुण्यको ही प्रमाण मानते हैं ॥११२॥ किन्तु उनका यह मानना अयुक्त है, क्योंकि पुण्य भी व्यवसायके विना सर्व प्रकारसे फलता हुआ कभी भी यहाँ दिखाई नहीं देता है ॥११३॥ इसलिए पुण्य और व्यवसाय ये दोनों ही लक्ष्मीकी प्राप्तिके कारण है। ये पृथक्-पृथक् लक्ष्मीकी प्राप्तिके कारण नहीं हैं। इसलिए गृहस्थको प्रतिदिन केवल व्यवसाय ही नहीं करना चाहिए। (अपि तु पुण्यका भी उपार्जन करना चाहिए) ॥११४॥ समयके अनुसार निर्मल उत्तम उचित वस्तु मिलना, अपना सुन्दर भवन होना, धन और धन-प्राप्तिके उपायोंका संयोग होना, ये सब व्यवसायरूपी वृक्षके फल हैं ॥११५॥

इस प्रकार व्यवसायी पुरुष दूसरे और तीसरे पहरके अर्ध भागतक या तीसरे तक भी हाट-बाजारमें व्यवसाय करते हैं। क्योंकि सज्जन पुरुष इस लोकमें अपने कर्तव्यको करनेमें विमोहित नहीं होते हैं। किन्तु उल्लास-पूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करते हैं ॥११६॥

इस प्रकार श्रीकुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें दिनचर्याके वर्णन करनेमें दूसरा उल्लास पूर्ण हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ तृतीयोल्लासः

बहिस्तोऽप्यागतो गेहमुपविश्य क्षणं सुधीः । कुर्याद् वस्त्रपरावर्तं देहशौचादि कर्म च ॥१
स्थूलसूक्ष्मविभागेन जीवाः संसारिणो द्विधा । मनोवाक्काययोगैस्तान् गृही हन्ति निरन्तरम् ॥२
पीषणी खण्डनी चुल्ही गर्गरी वर्धनी तथा । अमी पापकराः पञ्च गृहिणो धर्मबाधकाः ॥३
गदितोऽस्ति गृहस्थस्य तत्पातकविघातकः । धर्मः सविस्तरो वृद्धैरश्रीकस्तं समाचरेत् ॥४
दया दानं दमो देवपूजा भक्तिर्गुरौ क्षमा । सत्यं शौचस्तपोऽस्तेयं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥५
अनन्यजन्यं सौजन्यं निर्माय (?) मधुरा गिरः । सारः परोपकारश्च धर्म-कर्मविदामिदम् ॥६
दीनोद्धरणमद्रोहो विनयेन्द्रियसंयमौ । न्यायवृत्तिर्मृदुत्वं च धर्मोऽयं पापसंछिदे ॥७
कृत्वा माध्याह्निकीं पूजां निवेश्यान्नादि भाजने । नरः स्वगृहदेवेभ्योऽन्यदेवेभ्यश्च ढौकते ॥८
अतिथीनर्थिनो दुःस्थान् भक्ति-शक्त्यनुकम्पनैः । कृत्वा कृतार्थिनौचित्याद् भोक्तुं युक्तं महात्मना ॥९
अनाहूतमविज्ञातं दानकाले समागतम् । जानीयादतिथिं प्राज्ञ एतस्माद् व्यत्यये परम् ॥१०

आर्त्तस्तृषाक्षुधाभ्यां योऽपि त्रस्तो वा स्वमन्दिरम् ।
आगतः सोऽतिथिः पूज्यो विशेषेण मनीषिणा ॥११

बाहिरसे घर आये हुए बुद्धिमान् पुरुषको कुछ क्षण बैठकर वस्त्रोंका परिवर्तन और शारीरिक शौच आदि कार्य करना चाहिए ॥१॥ स्थूल (त्रस) और सूक्ष्म (स्थावर) के विभागसे संसारी जीव दो प्रकारके कहे गये हैं। गृहस्थ मनुष्य गृह-कार्योंको करते हुए मन वच कायके योगसे उन जीवोंको निरन्तर मारता है ॥२॥ चक्की, उखली, चूल्हा, जलकुम्भी और बुहारीके ये पाप-कारक पाँच कार्य गृहस्थके धर्म-सेवनमें बाधक हैं ॥३॥ इन पाँचों पापोंका विनाश करनेवाला गृहस्थके धर्मका विस्तार वृद्ध पुरुषोंने कहा है। इसलिए धर्मरूपी लक्ष्मीसे रहित गृहस्थको उसका सदा आचरण करना चाहिए ॥४॥ दया, दान, इन्द्रिय-दमन, देव-पूजन, गुरु-भक्ति, क्षमा, सत्य, शौच, तपका आचरण और चोरीका परित्याग यह गृहस्थोंका धर्म कहा गया है ॥५॥ अन्य पुरुषोंमें नहीं पायी जानेवाली सज्जनताको धारण करके मधुर वाणी बोलना, और परका उपकार करना, यह धर्मके जानकारोंका सारभूत कर्तव्य है ॥६॥ दीन-हीन जनोंका उद्धार करना, किसीसे द्रोह नहीं करना, विनय भाव रखना, इन्द्रियोंका संयम पालना, न्यायपूर्वक जीविकोपार्जन करना और मृदुतासे व्यवहार करना, यह व्यवहारिक धर्म गृहस्थके पापोंका विच्छेद करनेके लिए आवश्यक है ॥७॥

गृहस्थ मनुष्य मध्याह्न कालकी पूजाको करके अन्नादिको पात्रमें रखकर अपने घरके देवोंके लिए और अन्य देवोंके लिए समर्पण करता है ॥८॥ अतिथि जनोंको, याचकोंको और दुखित-भुखितोंको भक्ति और शक्तिके अनुसार दयापूर्वक भोजन कराके कृतार्थी महापुरुषको अपने औचित्यके साथ भोजन कराना योग्य है ॥९॥ विना बुलाये, अज्ञात और दानके समय आये हुए पुरुषको बुद्धिमान् मनुष्य अतिथि जाने। इससे विपरीत पुरुषको अभ्यागत आदि जानना चाहिए ॥१०॥ जो भूख-प्यासासे पीड़ित है, अथवा अन्य प्रकारसे दुःखी है, ऐसा जो मनुष्य अपने

५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोविदोऽथवा मूर्खो मित्रं वा यदि वा रिपुः। निदानं स्वर्गभोगानामशनावसरेऽतिथिः ॥१२
न प्रष्टो जन्मनः कार्यो न गोत्राचारयोरपि। श्रुति-सांख्यादिमूर्द्धानां सर्वधर्ममयोऽतिथिः ॥१३
तिथिपर्वहर्षशोकास्त्यक्ता येन महात्मना। धीमद्भिः सोऽतिथिर्मान्यः परः प्राघूर्णिको मतः ॥१४
मन्दिराद्विगुणो यस्य गच्छत्यतिथिपुङ्गवः। जायते महती तस्य पुण्यहानिर्मनस्विनः ॥१५

उक्तं च—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहादतिनिवर्तते। स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥१६
क्षुधाक्रान्तस्य जीवस्य पञ्च नश्यन्त्यसंशयम्। सुवासनेन्द्रियबलं धर्मकृतिरती स्मृतिः ॥१७
एकतः कुरुते वाञ्छां वासवः कीटकोऽन्यतः। आहारस्य ततो दक्षैर्दानं देयं शुभार्थिभिः ॥१८
देवसाधुपुरस्वामिस्वजने व्यसने सति। ग्रहणे न च भोक्तव्यं सत्यां शक्तौ विवेकिना ॥१९
पितुर्मातुः शिशूनां च गर्भिणीवृद्धरोगिणाम्। प्रथमं भोजनं दत्त्वा स्वयं भोक्तव्यमुत्तमैः ॥२०
चतुष्पदानां सर्वेषां धृतानां च तथा नृणाम्। चिन्तां विधाय धर्मज्ञः स्वयं भुञ्जीत नान्यथा ॥२१
जलपानं पिपासायां बुभुक्षायां च भोजनम्। आयुर्बलं च धर्मं च संवर्धयति देहिनाम् ॥२२

घर पर आया हो तो वह अतिथि विशेष रूपसे मनीषी पुरुषके द्वारा पूजनेके योग्य है ॥११॥ भोजनके समय पर घर आया हुआ अतिथि चाहे विद्वान् हो, अथवा मूर्ख हो, मित्र हो, यदि वा शत्रु हो, किन्तु वह गृहस्थके लिए स्वर्गके भोगोंका कारण है ॥१२॥ भोजनके समय घरपर आये हुए अतिथिसे न जन्मका प्रश्न करना चाहिए कि तुम्हारा किस कुलमें जन्म हुआ है ? और न गोत्र और आचारको भी पूछना चाहिए। तुमने क्या पढ़ा है, ऐसा शास्त्र-विषयक एवं सांख्यादि वेष-सम्बन्धी भी प्रश्न नहीं पूछना चाहिए, क्योंकि अतिथि सर्वदेव स्वरूप माना गया है ॥१३॥ जिस महात्माने तिथि, पर्व, हर्ष और शोकका त्याग कर दिया है, बुद्धिमानोंके द्वारा वह अतिथि मान्य है। इससे भिन्न पुरुष प्राघूर्णिक (पाहुना) माना जाता है ॥१४॥

जिस गृहस्थके घरसे श्रेष्ठ अतिथि आहारके बिना जाता है, उस मनस्वीके पुण्यकी भारी हानि होती है ॥१५॥ कहा भी है—जिसके घरसे अतिथि निराश होकर वापिस लौटता है, वह उस गृहस्थके लिए दुष्कृत (पाप) देकर और पुण्य लेकर जाता है ॥१६॥ भूखसे पीड़ित पुरुषके सुवासना (उत्तम भावना) इन्द्रिय-बल, धर्म-कार्य, धर्मानुराग और स्मरण शक्ति ये पाँच कार्य निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं ॥१७॥ एक ओर देव-पुरुष आहार देनेकी इच्छा करता है और दूसरी ओर कीटक (क्षुद्र प्राणी) लेनेकी इच्छा करता है। इसलिए कल्याणके इच्छुक दक्ष जनोंको आहार-का दान अवश्य ही देना चाहिए ॥१८॥

देव, साधु, नगरका स्वामी और स्वजन इनके कष्टमें पड़नेपर तथा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण होने पर विवेकी पुरुषको शक्तिके होते हुए भोजन नहीं करना चाहिए ॥१९॥ पिताको, माताको, बालकोंको गर्भिणी स्त्रीको, वृद्ध जनोंको और रोगियोंको पहिले भोजन देकर पीछे उत्तम पुरुषोंको स्वयं भोजन करना चाहिए ॥२०॥ घरपर रखे हुए गाय, भैंस आदि चौपायोंकी, तथा अपने आश्रित मनुष्योंकी भोजन-सम्बन्धी चिन्ता करके धर्मज्ञ पुरुषको पीछे स्वयं भोजन करना चाहिए, अन्यथा नहीं ॥२१॥

प्यास लगनेपर जलपान करना और खानेकी इच्छा होनेपर भोजन करना प्राणियोंके आयु,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अजीर्णे पुनराहारो गृह्यमाणः प्रकोपयेत् । वातं पित्तं तथा श्लेष्मदोषमाशु शरीरिणाम् ॥२३
रोगोत्पत्तिः किलाजीर्णाच्चतुर्धा तत्पुनः स्मृतः । रसशेषाम-विष्टब्ध-विपक्वादिविभेदतः ॥२४
रसशेषे भवेज्जृम्भा समुद्गारस्तथामिके । अङ्गभङ्गश्च विष्टब्धे धूमोद्गारः विपक्वतः ॥२५
निद्रानुवमन-स्वेद-जलपानादिकर्मभिः । सदा पथ्या विवादान्ता शान्तिमायात्यनुक्रमात् ॥२६
स्वस्थानस्थेषु दोषेषु जीर्णेऽभ्यवहृते पुनः । ख्यातौ स्पष्टौ शकृन्मूत्रवेगौ वातानुलोम्यतः ॥२७
स्रोतोमुखहृदुद्गारा विशुद्धाः स्युः क्षणात्तथा । स्पष्टत्वलब्धये (?) स्यातां तथेन्द्रियशरीरयोः ॥२८

अतिप्रातश्च सन्ध्यायां रात्रौ कुर्वन् पथि व्रजन् ।
सव्याङ्घ्रौ दत्तपाणिश्च नाद्यात्पाणिस्थितं तथा ॥२९

संकाशे सातपे सान्धकारे द्रुमतले तथा । कदाचिदपि नाश्नीयादूर्ध्वीकृत्य च तर्जनीम् ॥३०
अधौतमुखहस्ताङ्घ्रिर्नग्नश्च मलिनांशुकः । सव्यहस्तेन नाश्नीयात्पात्रे भुञ्जीत न क्वचित् ॥३१
एकवस्त्रान्वितश्चार्द्रवासोवेष्टितमस्तकः । अपवित्रोऽतिगाद्धर्यश्च न भुञ्जीत विचक्षणः ॥३२

बल और धर्मको बढ़ाता है ॥२२॥ अन्नका अजीर्ण होनेपर ग्रहण किया जानेवाला आहार शरीरधारियोंके वात, पित्त और कफके दोषको शीघ्र प्रकुपित करता है ॥२३॥ अजीर्णसे जिन रोगोंकी उत्पत्ति होती है, वे रस-शेष, आम-विकार, विष्टब्धता और विपक्वता आदिके भेदसे चार प्रकारके माने गये हैं ॥२४॥ रस-शेष होनेपर जंभाई आती है, आम-विकार होनेपर डकारें आती हैं, विष्टब्धता होनेपर अंग-भंग होता है और विपक्वतासे धूमोद्गार (खट्टी डकारोंका आना) होता है ॥२५॥ इन चारों दोषोंसे आक्रान्त जो मनुष्य अपने दोषोंका अन्त करना चाहते हैं उन्हें अनुक्रमसे निद्रा लेना, वमन करना, प्रस्वेद (पसीना) लेना और जलपान आदि करना चाहिए। भावार्थ—रसशेष अजीर्णके होनेपर निद्रा लेवे, आम-विकारके होनेपर वमन करे, विष्टब्धताके होनेपर पसीना लेवे और विपक्वताके होनेपर जलको खूब पीवे। इन उपायोंसे शान्ति प्राप्त होती है तथा पथ्या (हरड) तो चारों प्रकारोंके अजीर्णोंमें सदा निर्विवाद गुणकारी है ॥२६॥ चारों प्रकारके अजीर्ण दोषोंके स्वस्थानस्थ हो जानेपर अर्थात् शान्त हो जानेपर और वात, पित्त, कफके साम्य होनेपर, तथा पुनः खाये गये भोजनके जीर्ण अर्थात् भलीभाँतिसे परिपाक होनेपर वातकी अनुलोमतासे मल और मूत्रका वेग स्पष्ट स्वाभाविकरूपसे होने लगता है, यह प्रख्यात ही है ॥२७॥ उपर्युक्त चारों प्रतीकारोंसे शरीरके मल-प्रवाही स्रोत, मुख, हृदय और उद्गार (डकार) क्षणमात्रमें विशुद्ध (निर्मल) हो जाते हैं, तथा शरीर और इन्द्रियोंमें स्पष्टता और स्फूर्त्तिकी प्राप्ति होती है ॥२८॥

अति प्रातःकालमें, सायंकालमें, रात्रिमें, मार्गमें गमन करते हुए और वाम पैरपर हाथ रखकर हाथमें रखी वस्तु कभी नहीं खाना चाहिए ॥२९॥ सूर्यके आतापवाले स्थानपर, संकाश (तत्सदृश उष्णस्थान) स्थानपर, अन्धकारयुक्त मकानमें और वृक्षके नीचे बैठकर तथा तर्जनीको ऊँची करके कदाचित् भी नहीं खाना चाहिए ॥३०॥ बिना मुख, हाथ और पैरोंको धोये, नंगे शरीर और मलिन वस्त्र पहने हुए तथा वाम हाथसे कभी नहीं खावे। तथा कहींपर किसीके पात्रमें अथवा जिस पात्रमें भोजन बना हो उसी पात्रमें भी भोजन नहीं करना चाहिए ॥३१॥ एक वस्त्र पहिनकर और गीले वस्त्रसे मस्तकको ढककर, अपवित्रता और अतिगृद्धतासे बुद्धिमान् पुरुषको कभी नहीं खाना चाहिए ॥३२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपानत्सहितो व्यग्रचित्तश्च भूमिसंस्थितः । पर्यङ्कस्थो विदिग्याम्याननो नाद्यात्कदाचन ॥३३
आसनस्थोऽपदो नाद्यात् श्वचाण्डालैर्निरीक्षितः । पतितैश्च तथा स्फुटिते भाजने मलिने तथा ॥३४
अमेध्यसम्भवं नाद्याद् दृष्टो भ्रूणादिघातकैः । रजस्वलापरिप्लुष्टमघ्राताङ्गः श्वपक्षिभिः ॥३५
अज्ञातगममज्ञातं पुनरुष्णीकृतं सदा । युक्तं वचवचाशब्दैर्नाद्याद्वक्त्रविकारकृत् ॥३६
आह्वानोत्पादितप्रीतिः कृतदेवाभिधास्मृतिः । समपृथ्व्यनत्युच्चैर्निविष्टे विष्टरे स्थिरे ॥३७
मातृश्वस्त्रम्बिकामामिभार्याद्यैः पक्वमादरात् । शुचिभिर्युक्तिवद्भिश्च दत्तं चाद्यात्स्वजनैः स्वकैः ॥३८

कुक्षम्भरिर्न कोऽप्यत्र बह्वाधारः पुमांश्च यः ।
ततस्तत्कालमायातान् भोजयेद् बान्धवादिकान् ॥३९

दत्वा दानं सुपात्राय स्मृत्वा च परमेष्ठिनम् । येऽश्नन्ति ते नरा धन्या किमन्यैश्च नराधमैः ॥४०
ज्ञानयुक्तः क्रियाधारः सुपात्रमभिधीयते । दत्तं बहुफलं तत्र धेनुक्षेत्रनिदर्शनात् ॥४१
कृतमौनमचक्राङ्गं वहद्दक्षिणनासिकम् । प्रतिभक्षसमाघ्राणहतदृग्दोषविक्रियम् ॥४२

जूतोंको पहिने हुए, व्यग्रचित्त होकर भूमिमें बैठकर, पलंग-खाटपर बैठकर, दक्षिण दिशा और विदिशाओंकी ओर मुख करके भी कभी नहीं खावे ॥३३॥ गादी आदि आसनपर बैठकर, अयोग्य स्थानपर बैठकर, कुत्तों और चाण्डालोंके द्वारा देखे जाते हुए, तथा जाति और धर्मसे पतित पुरुषोंके साथ, फूटे और मैले भाजनमें भी रखे हुए भोजनको नहीं खावे ॥३४॥ अपवित्र वस्तु जनित भोजन नहीं खावे। तथा भ्रूण आदिकी हत्या करनेवालोंके द्वारा देखा गया, रज-स्वलाके द्वारा बनाया गया, परोसा गया या छुआ भोजन भी नहीं खावे। श्वान (कुत्ता) और पक्षी आदिके द्वारा जिसका शरीर सूंघ लिया गया हो, उस पुरुषको भी तत्काल भोजन नहीं करना चाहिए। (किन्तु शुद्ध होनेके बाद ही खाना चाहिए) ॥३५॥ अज्ञात स्थानसे आये हुए भोजनको, अज्ञात वस्तुको, तथा पुनः उष्ण किये गये भोजनको भी नहीं खावे। मुखसे वच-वच या चप-चप शब्द करते और मुखको विकृत करते हुए भी नहीं खाना चाहिए ॥३६॥ भोजनके लिए बुलानेसे जिसके प्रीति उत्पन्न हुई है और जिसने अपने इष्टदेवके नामका स्मरण किया है, ऐसा गृहस्थ मनुष्य समान पृथ्वीपर रखे हुए न अति ऊँचे और न अति नीचे ऐसे स्थिर आसनपर बैठकर माता, सासु, अम्बिका, मामी और भार्या आदिके द्वारा पकाये गये तथा पवित्रतायुक्त और युक्तिवाले व्यक्तियोंके द्वारा आदरपूर्वक परोसे गये आहारको अपने आत्मीय जनोंके साथ भोजन करे ॥३७-३८॥

इस लोकमें कोई केवल अपनी कुक्षिको भरने वाला न हो। किन्तु जो पुरुष बहुत पुरुषोंके जीवनका आधार है, उसे चाहिए कि वह भोजनके समय आये हुए व्यक्तियोंको और बन्धु-बान्धव जनोंको भोजन करावे ॥३९॥ जो पुरुष सुपात्रके लिए दानको देकर और पंच परमेष्ठियोंका स्मरण करके भोजन करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं, । अन्य पुरुष जो ऐसा नहीं करते हैं उन अधम मनुष्योंसे क्या लाभ है ॥४०॥

जो पुरुष ज्ञानसे युक्त है और क्रिया-चारित्रका आधार है वह सुपात्र कहा जाता है उसे दिया गया दान बहुत फलको फलता है, जिस प्रकारसे कि गायको खिलाया गया भोजन बहुत मिष्ट दुग्धको देता है, तथा उत्तम क्षेत्रमें बोया गया बीज भारी सुफलको देता है ॥४१॥ जब नासिकाका दक्षिण स्वर प्रवाहमान हो, तब मौन-पूर्वक अंगको सीधा करके प्रत्येक भक्ष्य वस्तुकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नातिक्षारं न चात्यम्लं नात्युष्णं नातिशीतलम् । नातिशाकं नातिगोल्यं मुखरोचकमुच्चकैः ॥४३
सुस्वादु विगतास्वादं विकथापरिवर्जितम् । शास्त्रवर्जितनिःशेषाहारत्यागमनोहरम् ॥४४
मक्षिकालूतनिर्मुक्तं नात्याहारमनल्पकम् । प्रतिवस्तुप्रधानत्वं सङ्कल्पस्वादुसुन्दरम् ॥४५
विपन्नसृतपानीयमर्धंभुक्ते महाभृतिः । भुञ्जीत वर्जयन्नन्ते छन्नाह्वं (?) पुष्कलं जलम् ॥४६
सुस्निग्धं मधुरं पूर्वमश्नीयावन्विते रसैः । कषायाम्लौ च मध्ये च पर्यन्ते कटुतिक्तकम् ॥४७
नामिश्रं लवणं ग्राह्यं तन्नाद्याच्च पिपासितः । रसानपि न वैरस्यहेतून् संयोजयेन्मिथः ॥४८
त्यजेत् क्षीरप्रभूतान्नमन्नं दध्नाधिकं त्यजेत् । कदस्थिप्रमुखैर्युक्तमुच्छिष्टं वाऽखिलं त्यजेत् ॥४९
धेन्वा नवप्रसूताया दशाहान्तर्भवं पयः । आरण्यकाविकोष्ट्रुश्च तथा चैकशफं त्यजेत् ॥५०
निःस्वादमन्नं कटु वाऽहृद्यमाथश्रयो यदि । तत्स्वस्यान्यस्य वा कष्टं मृत्युः स्वस्यारुचौ पुनः ॥५१
भोजनानन्तरं सर्वंरसलिप्तेन पाणिना । एकः प्रतिदिने पेयो जलस्य चुलुकोऽङ्गिना ॥५२
न पिबेत्पशुवत्सोऽयं पीतशेषं तु वर्जयेत् । यथानाञ्जलिना पेयं पयः पथ्यं मितं यतः ॥५३
करेण सलिलार्द्रेण न गण्डौ नापरं करम् । न स्पृशेत् किञ्चित्स्पृष्टव्ये.........जानुनिश्रिये ॥५४

गन्धको लेता हुआ और अपनी दृष्टिके दोषविकारको दूर करता हुआ अर्थात् भोज्य पदार्थोंको आँखोंसे भली-भाँति देखता हुआ भोजन करे ॥४२॥ भोजन न अतिखारा हो, न अधिक खट्टा हो, न अति उष्ण हो और न अति शीतल हो, न अधिक शाक वाला हो, और न अति गुड़-शक्कर वाला हो। किन्तु अच्छी तरहसे मुखको रुचिकर हो, सुस्वादु हो, अस्वादु न हो, ऐसे भोजनको विकथाएँ न करते हुए खावे। वह भोजन शास्त्र-निषिद्ध, समस्त प्रकारके अभक्ष्य आहारसे रहित और मनको हरण करने वाला हो ॥४३-४४॥ भोजन मक्खियों और मकड़ी-जालादिसे विमुक्त हो, न बहुत अधिक हो और न बिलकुल कम हो, प्रत्येक भोज्य वस्तु श्रेष्ठ हो, मनमें संकल्पित स्वादसे सुन्दर हो ॥४५॥ पीनेका जल शुद्ध, वस्त्र-निःसृत (गालित) या प्रासुक हो, उसे आधे भोजन करनेपर अर्थात् मध्यमें पीवे। अधिक जल न पीवे। अन्तमें अधिक जल-पानका परिहार करते हुए भोजन करे ॥४६॥ भोजन करते हुए सबसे पहिले मिष्ट रसोंसे युक्त स्निग्ध मधुर पदार्थ खावे, मध्यमें कसैले और खट्टे पदार्थोंको खावे और सबसे अन्तमें कटु और तिक्त रसवाले नमकीन-पापड़ आदिको खावे ॥४७॥ अन्य वस्तुओंसे नहीं मिले हुए कोरे नमकको नहीं ग्रहण करना चाहिए। जब प्यास अधिक लगी हो, तब भोजन न करे (किन्तु पानी पीवे)। विरसताके कारणभूत विरोधी रसोंको भी परस्पर न मिलावे ॥४८॥ दूधकी अधिकतावाले अन्नका त्याग करे, दहीकी बहुलतावाले अन्नको भी छोड़े। कड़ी और खोटी गुठलीकी अधिकतावाले शाक-फलादिसे युक्त तथा उच्छिष्ट सभी प्रकारके आहारका परित्याग करे ॥४९॥ नवप्रसूता गायका दूध दश दिन तक ग्रहण न करे। जंगली भेड़-बकरी, ऊँटनी और एक खुर-टाप वाले पशुओंके दूधका भी त्याग करे ॥५०॥ जो भोजन स्वाद-रहित हो, कटुक हो, हृदयको प्रिय न हो, अथवा जीव-जन्तुओंका आश्रयभूत हो, जो अपनेको या अन्य प्राणीको कष्ट या मृत्यु-कारक हो, उसे ग्रहण न करे। जो भोजन अपने लिए अरुचिकर हो, उसका भी परित्याग करे ॥५१॥

भोजनके अनन्तर सभी रसोंसे लिप्त हाथसे एक चुल्लुभर जल मनुष्यको प्रतिदिन पीना चाहिए ॥५२॥ मनुष्य जलको पशुके समान न पीवे और पीनेसे शेष रहे जलका परित्याग करे। क्योंकि अंजलीके द्वारा पिया गया परिमित जल पथ्य है ॥५३॥ जलसे गीले हाथके द्वारा न दोनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तं च—

मा करेण करं पार्थ मा गण्डौ मा च चक्षुषी । जानुनी स्पृश राजेन्द्र भर्तव्या बहवो यदि ॥५५

समानजातिशीलाभ्यां स्वसाम्याधिक्यसंस्पृशाम् ।
भोजनाय गृहे गच्छेन्न गच्छेद्दोषवतां गृहे ॥५६

मुमूर्षुवध्यचौराणां कुटिलालिङ्गिवैरिणाम् । बहुवैरियुतां कल्पपालोच्छिष्टान्नभोजिनाम् ॥५७
कुकर्मजीविनामुग्रपतितासवपायिनाम् । रङ्गोपजीविविकृतिस्वाम्यविकृतयोषिताम् ॥५८
धर्मविक्रयिणां राज-महाराजविरोधिनाम् । स्वयं हनिष्यमानानां गृहे भोज्यं न जातुचित् ॥५९
अङ्गमर्दन-नीहारभारोत्क्षेपोपवेशिनाम् । स्नानाद्यं च कियत्कालं भुक्त्वा कुर्यान्न बुद्धिमान् ॥६०
भोजनान्तरं वामकटिस्थो घटिकाद्वयम् । शयीत निद्रया हीनं यद्वा पादशतद्वयम् ॥६१
दशताम्रपलावर्त्तपात्रे वृत्तीकृते सति । घटिकायां समुत्सेधो विधातव्यः षडङ्गुले ॥६२
विष्कम्भं तत्र कुर्वीत प्रमाणो द्वादशाङ्गुलम् । षष्ट्याम्भःपलपूरेण घटिका सद्भिरिष्यते ॥६३

गंडस्थलोंका स्पर्श करे, न दूसरे हाथका स्पर्श करे और न जानु-जंघाओंका ही स्पर्श करे ॥५४॥

कहा भी है—हे पार्थ (अर्जुन)। हाथसे हाथका स्पर्श न करो, न गंडस्थलोंका, न आँखों का और न दोनों जानुओंका ही स्पर्श करो। राजेन्द्र, यदि तुम्हारे आश्रित अनेक व्यक्ति भरण-पोषणके योग्य उपस्थित (तो उनको विना भोजन कराये स्वयं भोजन न करो) हैं ॥५५॥

जो व्यक्ति तुम्हारी जाति और शीलसे समान हैं, अथवा जो अपनी समानतासे अधिकता वाले हैं और स्पर्श करनेके योग्य हैं उनके घर पर भोजनके लिए जावे। किन्तु दोष-युक्त पुरुषोंके घर भोजनके लिए न जावे ॥५६॥ जो व्यक्ति मरनेके इच्छुक हैं, वध करनेके योग्य हैं, चोर हैं, कुटिल है, कुलिंगी हैं, वैरी हैं, जिनके अनेक लोग शत्रु हैं, कल्पपाल (मद्य-विक्रेता) हैं, उच्छिष्ट (जूँठे) अन्नके खानेवाले हैं, खोटे कर्मोंसे आजीविका करने वाले हैं, उग्र हैं, पतित हैं, मद्य-पान करने वाले हैं, वस्त्रादि रंग करके जीवन-यापन करते हैं, विकार-युक्त है, जिनकी स्त्रियां भी विकार-युक्त हैं, धर्मको बेचने वाले हैं, राजा-महाराजाओंके विरोधी हैं, और जो स्वयं मारे जाने वाले हैं ऐसे लोगोंके घरपर कदाचित् भी भोजन नहीं करना चाहिए ॥५७-५९॥ इसी प्रकार जो शरीर-मर्दन करने वाले हैं, मल-मूत्रादिका भार क्षेपण करते हैं और जो उनके समीप निवास करते हैं उनके घर भी भोजन नहीं करना चाहिए। तथा बुद्धिमान् पुरुषको भोजन करके कुछ काल तक स्नानादि भी नहीं करना चाहिए ॥६०॥

भोजनके पश्चात् वाम कटिस्थ होकर दो घटिका (घड़ी) तक निद्रा न लेकर विश्राम करे। अथवा दो सौ पद- (कदम-) प्रमाण परिभ्रमण करे ॥६१॥

घटिकाका प्रमाण निकालनेकी विधि यह है—तांबेके दश पल (माप विशेष) प्रमाण छह अंगुल ऊँचा पात्र बनावे, उसका विष्कम्भ। (विस्तार) बारह अंगुलका हो और उसके भीतर साठ चिह्न बनावे। उन सभी चिह्नोंके जलसे पूरित प्रमाण कालको सज्जन लोग एक घटी कहते हैं ॥६२-६३॥

विशेषार्थ—घटिकाका प्रमाण निकालनेकी विधि—तांबेके दशपल (मापविशेष) प्रमाण छह अंगुल ऊँचाईके गोल आकारवाले पात्रको बनावे, जिसकी चौड़ाई बारह अंगुल हो। उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्युक्तचत्वारिंशत्त्रिंशत्तदर्धविंशती । पञ्चदर्शात्रिंशदपि चत्त्वारिंशच्चतुर्युतः ॥६४
षष्टिमद्द्वादशी षष्टीरशीतिश्च द्विसप्ततिः । षष्टिश्च चैत्रमासादौ ध्रुवाङ्काः शतसंयुताः ॥६५
रविदक्षिणतः कृत्वा ज्ञेया छाया पदानि च । तथाब्दे सप्तसंयुक्तैर्भागं कृत्वा ध्रुवाङ्कतः ॥६६
लब्धाङ्केन घटीसंख्यां विजानीयाद् बुधः सदा । पूर्वाह्णे गतकालस्य शेषस्थं त्वपराह्णिके ॥६७
[1]मित्रादाशी न विषम सये त्र म् छ ग त्रये (?) । भवत्यभ्यवहार्येषु विषाश्लेषो हि कर्हिचित् ॥६८
धामं स स्वहिता (?) सम्यगमीभिर्लक्षणैः स्फुटैः । प्रयुक्तमरिभिर्युष्टं विषं जानन्ति तद्यथा ॥६९
अविक्लेद्यं भवेदन्नं पच्यमानं विषान्वितम् । चिराच्च पच्यते सद्यः पक्वः पर्युषितोपमम् ॥७०
स्तब्धं सूष्मैर्विनिमुक्तं पिच्छिलं चन्द्रिकाञ्चितम् । वर्णगन्धरसान्यत्वदूषितं च प्रजायते ॥७१

गोल वृत्ताकार पात्रमें भीतर एक अंगुलमें दश चिह्न बनावे। इस प्रकार पूरे छह अंगुलमें साठ चिह्न बनावे। इस प्रकार यह घटिका यन्त्र बननेपर उसके नीचे तलभागके केन्द्रमें सूईके दशवें भाग-प्रमाण छेद बनाकर उसे किसी अन्य जल-परिपूरित पात्रमें डाल देवे। उस घटिका यन्त्ररूप ताम्रपात्रमें जितने चिह्नप्रमाण जल भरता जावे, उतने ही पल-प्रमाण काल जानना चाहिए। इस प्रकारसे पूरे छह अंगुल या साठ चिह्न प्रमाण जल भरनेपर एक घटीका प्रमाण होता है।

चैत्र आदि मासोंमें सौसे संयुत चवालीस (१४४) सौ से संयुत तीस (१३०) सौसे संयुत तीसके आधे अर्थात् पन्द्रह (११५) सौसे संयुत बीस (१२०) सौसे संयुत पन्द्रह (११५) सौसे संयुत तीस (१३०) सौसे संयुत चवालीस (१४४) सौसे संयुत साठ (१६०) सौसे संयुत साठयुक्त बारह (१७२) सौसे संयुत साठ (१६०) सौसे संयुत अस्सी (१८०) सौसे संयुत बहत्तर (१७२) और सौसे संयुत साठ (१६०) ये ध्रुवाङ्क होते हैं। सूर्यको अपने दक्षिण भागकी ओर करके छाया जाननी चाहिए। उस छायाको पैरोंसे नाप लेनेपर जो संख्या आवे वह संख्या वर्तमान संवत्सरकी संख्यामें सातयुक्त जोड़कर जो राशि होगी उस राशिमें उस मासके ध्रुवाङ्कसे भाग देनेपर जो लब्धाङ्क आवेगा, उतनी घटी-संख्या विद्वान् पुरुष जानें। यदि पूर्वाह्णमें छाया नापी गई है तो उतनी घटी-प्रमाण काल बीता है। एवं मध्याह्नोत्तर नापी गई छायाके लब्धाङ्क-प्रमाण कालको दिन-शेषका प्रमाण जाने ॥६४-६७॥

मित्रके द्वारा खिलाया गया अन्न मूर्च्छा आदि तीन लक्षणोंसे (मूर्च्छा, वमन और विरेचनसे) प्रमाणित होनेपर वह अन्न विष-मिश्रित है, ऐसा जानना चाहिए। क्योंकि कभी-कभी भोज्य पदार्थोंमें विष-मिश्रणका प्रयोग होता है ॥६८॥

खानेमें आनेवाली वस्तुओंमें कदाचित् किसीके द्वारा विषका मिश्रण भी हो सकता है ॥६८॥ शत्रुओंके द्वारा प्रयुक्त विषको बुद्धिमान् पुरुष इन आगे कहे जानेवाले लक्षणोंसे आत्म-हितार्थ स्पष्टरूपसे जानते हैं। वे लक्षण इस प्रकार हैं—॥६९॥ विषसे संयुक्त पकाया जानेवाला अन्न भलीभाँतिसे पकेगा नहीं, अथवा बहुत देरसे पकेगा। तथा पका हुआ अन्न शीघ्र ही वासे अन्नके समान हो जायगा ॥७०॥ स्थिर ऊष्मासे विमुक्त हो जायगा, कीचड़ जैसा दिखेगा, चन्द्रकी चन्द्रिकासे युक्त अर्थात् शीघ्र शीतल हो जायगा। तथा विष-मिश्रित अन्न स्वाभाविक वर्ण, गन्ध और इससे भिन्न अन्य प्रकारके रससे दूषित हो जाता है ॥७१॥ विषयुक्त व्यञ्जन

---

१. मूल श्लोकका अर्थ वैद्यक-सम्मत दिया गया है। मूल पाठ प्रयत्न करने पर भी शुद्ध नहीं किया जा सका। —सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सविषाणि क्षणादेव शुष्यन्ति व्यञ्जनान्यपि । क्वाथे तु घ्यामता फेने समन्ताद् बुब्दुदास्तथा ॥७२
जायन्ते राजयो नीला रसे क्षीरे च लोहिताः । स्थुर्मद्यतोययोः कृष्णा दध्नि श्यामास्तु राजयः ॥७३
तक्रे च नील-पीता स्यात्कापोताभा तु मस्तुनि । कृष्णा सौवीरके राजिर्घृते तु जलसन्निभा ॥७४
द्रवौषधे तु कपिला क्षौद्रे सा कपिला भवेत् । तैलेऽरुणा वसागन्धः पाके आमे फलं क्षणात् ॥७५
सपाकानां फलानां च प्रकोपः सहसा तथा । जायते ग्लानिरार्द्राणां सङ्कोचश्च विषादिह ॥७६
शुष्काणां श्यामतोपेतं वैवर्ण्यं मृदुमा पुनः । कर्कशानां मृदूनां च काठिन्यं जायते क्षणात् ॥७७

मालानां म्लानता स्वल्पो विकाशो गन्धहीनता ।
स्याद् धाममण्डलत्वं च संव्यानास्तरणेर्विषात् ॥७८

मणि-लोहमयानां च पात्राणां मलदिग्धता । वर्णरागप्रभास्पर्शे गौरव-स्नेहसंक्षयः ॥७९
तन्तूनां सततं रोमपक्ष्मणां च भवेद् विषाद् । सन्देहे तु परीक्षेत तान्यग्न्यादिषु तद्यथा ॥८०
अन्नं हालाहलाकीर्णं क्षिप्तं वैश्वानरे भृशम् । एकावर्तस्तथा रूक्षो मुहुश्चटचटायते ॥८१
इन्द्रायुधमिवानेकवर्णमालां दधाति च । स्फुरत्कुणपगन्धश्च मन्दतेजाश्च जायते ॥८२

(शाक आदि) भी क्षणभरमें ही सूख जाते हैं। विष-मिश्रित (काढ़ा) यदि पक रहा हो तो सर्व ओर फेनमें बबूले उठने लगते हैं ॥७२॥ ईख आदिके रसमें नीले रंगकी रेखाएँ हो जाती हैं और विष-मिश्रित दुग्धमें लाल रँगकी रेखाएँ हो जाती हैं मदिरा और पानीमें कृष्णवर्णकी रेखाएँ हो जाती हैं और दहीमें श्याम रेखाएँ दिखने लगती हैं ॥७३॥ तक्र (छांछ) में नीले और पीले रंगके समान रेखाएँ हो जाती हैं। मस्तु (मक्खन) में कपोत वर्णके समान रेखाएँ हो जाती हैं। सौवीरक (सिरका, कांजी) में काली रेखाएँ हो जाती हैं और घृतमें जल-सदृश रेखाएँ ही जाती है ॥७४॥

द्रव (तरल) औषधिमें विष-मिश्रणसे कपिलवर्णकी रेखाएँ हो जाती हैं और मधुमें भी कपिलवर्णकी रेखाएँ हो जाती हैं। तेलमें अरुणवर्णकी रेखाएँ हो जाती हैं और वसा (चर्वी) जैसी गन्ध आने लगती है। कच्ची वस्तु क्षणभरमें पक जाती है, अथवा कच्चा फल क्षणभरमें पक जाता है ॥७५॥ विषके योगसे पाकयुक्त फलोंमें सहसा प्रकोप दिखने लगता है तथा उनके खानेपर ग्लानि होने लगती है। इसी प्रकार विषके प्रभावसे गीले फलोंका संकोच होने लगता है ॥७६॥ विषके संयोगसे सूखे और कर्कश फलोंके वर्ण-विपरीतता और मृदुता हो जाती हैं, तथा कोमल-मृदु फलोंके क्षणभरमें काठिन्य आ जाता है ॥७७॥ पुष्प-मालाओंके म्लानता आ जाती है अर्थात् खिले हुए फूल क्षणभरमें मुरझा जाते है। खिलनेवाले पुष्पोंमें अतिअल्प विकास होता है और वे गन्धहीन हो जाते हैं। विषके योगसे सूर्यका विस्तीर्ण किरण-मण्डल संकीर्ण-सा दिखने लगता है ॥७८॥ मणि-निर्मित तथा लोहमयी पात्रोंके मल-व्याप्तता हो जाती है। पदार्थोंके स्वाभाविक वर्ण-राग और प्रभाके स्पर्श करनेपर गौरव और स्नेह (चिक्कणता) का सर्वथा क्षय हो जाता है ॥७९॥ इसी प्रकार विषके प्रभावसे तन्तुओं (धागों और रेशों) का तथा रोमवाले पक्षियोंके रोमोंका क्षय हो जाता है। किसी वस्तुमें विषके मिश्रणका सन्देह होनेपर उसे अग्नि आदिमें डालकर वक्ष्यमाण प्रकारोंसे इस प्रकार परीक्षा करनी चाहिए ॥८०॥ हालाहल विषसे व्याप्त अग्निमें डाला गया अन्न एक भंवरके रूपमें हो जाता है, रूखा पड़ जाता हैं, तथा बार-बार अत्यन्त चट-चट शब्द करता है ॥८१॥ इसी प्रकार वह अग्निमें डाला गया अन्न इन्द्र-धनुषके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिरोर्त्तिः पीनसः श्लेष्मा लाला नयनयोस्तथा । आकुलत्वं क्षणाद् रोमहर्षं धूमसेवनात् ॥८३
विषदुष्टाशनास्वादात्काकः क्षामस्वरो भवेत् । लीयते मक्षिका नात्र विलीना वा विपद्यते ॥८४
अन्नं सविषमाघ्राय भृङ्गस्त्यजति चाधिकम् । सारिका सविषान्ने तु विक्रोशयति यथा शुकः ॥८५
विषान्नदर्शनान्नेत्रे चकोरस्य विरज्यतः । म्रियते कोकिलोन्मत्ता क्रौञ्चो माद्यति तत्क्षणात् ॥८६
नकुलो हृष्टरोमा स्यान्मयूरस्तु प्रमोदते । अस्य चालोकमात्रेण विषं मन्दायते क्षणात् ॥८७
उद्वेगं याति मार्जारः पुरीषं कुरुते कपिः । गतिः स्खलति हंसस्य ताम्रचूडो विरौति च ॥८८
साविषं देहिभिः सर्वं भक्षमाणं करोत्यलम् । तुष्टेमि विमामाप्स्ये दाहं लाला जलप्लवम् ॥८९
हनुस्तम्भं रसज्ञायां कुरुते शूलगौरवे । तथा क्षाररसाज्ञानं दाता चास्याकुलो भ्रमेत् ॥९०
स्फाटिकष्टङ्कणक्षारो धार्यः पुंसां मुखान्तरे । वेत्ति न क्षारतां यावदित्युक्तं स्थावरे विषे ॥९१

इत्थं चतुर्थप्रहरार्धकृत्यं सूर्योदयादत्र मया बभाषे ।
यत्कुर्वतां देहभृतां नितान्तं आविर्भवत्येव न रोगयोगः ॥९२॥

समान अनेक वर्णोंकी माला जैसे रूपोंको धारण करता है। अग्नि फैलती हुई सड़ी वस्तुकी गन्ध-वाली और मन्द तेजवाली हो जाती है ॥८२॥ विष-मिश्रित अन्नवाली अग्निके सेवनसे शिरमें पीड़ा हो जाती है, नाकमें पीनस रोग हो जाता है, कंठमें कफकी वृद्धि हो जाती है, मुखसे लार बहने लगती है, तथा नेत्रोंसे आँसू बहने लगते हैं, शरीरमें आकुलता हो जाती है और रोम खड़े हो जाते हैं ॥८३॥ विष-मिश्रित अन्नके खानेसे काकका स्वर क्षीण हो जाता है। विष-मिश्रित अन्नपर प्रथम तो मक्खियाँ बैठती नहीं है और कदाचित् बैठ भी जाय, तो शीघ्र मर जाती हैं ॥८४॥ विषयुक्त अन्नको सूंघकर भौंरा और अधिक शब्द करने लगता है। तथा स-विष अन्नके देखने-सूंघनेपर सारिका (मैना) शुक (तोता) के समान शब्दोंको बोलने लगती है ॥८५॥ विषयुक्त अन्नके देखनेसे चकोर पक्षीके नेत्र विवर्ण हो जाते हैं, उन्मत्त कोयला मरणको प्राप्त हो जाती है और क्रौंच पक्षी तत्क्षण मूर्च्छित हो जाता है ॥८६॥ नकुल (नेवला) के रोम, हर्षित हो उठते हैं, मयूर प्रमोदको प्राप्त होता है और उसके अवलोकन मात्रसे विष क्षणभरमें मन्द पड़ जाता है ॥८७॥ विषयुक्त अन्नके देखनेसे मार्जार (विलाव) उद्वेगको प्राप्त हो जाता है, बन्दर मल-मोचन करने लगता है। हंसकी चाल स्खलित होने लगती है और ताम्रचूड (मुर्गा) जोर-जोरसे शब्द करने लगता है ॥८८॥ प्राणियोंके द्वारा खाया गया विष या विष-मिश्रित अन्न सारे शरीर-को विषयुक्त कर देता है, मुखमें दाह होने लगता है, लाला जल-प्लावित हो जाती है, अर्थात् मुखसे बार-बार प्रचुर लार गिरने लगती है ॥८९॥ हनु (ठोड़ी) स्तब्ध हो जाती है अर्थात् अकड़ जाती है, रसोंका स्वाद जाननेवाली रसना (जीभ) के शूल जैसी पीड़ा और भारीपनका अनुभव होने लगता है तथा विष खानेवालेके खारे रसका ज्ञान नहीं होता। और विषका दाता आकुल-व्याकुल होकर परिभ्रमण करने लगता है ॥९०॥ विषको खाये हुए पुरुषोंके मुखके भीतर रखे गये स्फटिक और टंकण (सुहागा) के क्षारको वह तबतक नहीं जानता है जबतक कि स्थावर (पार्थिव) विष उसके शरीरमें प्रभाव-युक्त रहता है ॥९१॥

इस प्रकार इस उल्लासमें मैंने सूर्योदयसे लेकर भोजन करके विश्राम करने तक चतुर्थ पहरके अर्धभाग तकके कर्त्तव्योंको कहा। इन कर्तव्योंका परिपालन करनेवाले मनुष्योंके कभी भी रोगका संयोग सर्वथा आविर्भूत नहीं होता है ॥९२॥

इस प्रकार श्रीकुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें दिनचर्याके वर्णन करनेमें तीसरा उल्लास पूर्ण हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ चतुर्थोल्लासः

उत्थाय शयनोत्सङ्गाद् वपुःशौचमथाचरेत् । विचिन्त्यायव्ययौ सम्यग्मन्त्रयेदथ मन्त्रिभिः ॥१

ततो वैकालिकं कार्यमिताहारमनुत्सुकम् । घटिकाद्वयशेषेऽह्नि कालौचित्याशनेन तु ॥२

.... ॥३

भानोः करैरसंस्पृष्टमुच्छिष्टं प्रेतसञ्चरात् । सूक्ष्मजीवाकुलं चापि निशिभोज्यं न युज्यते ॥४

शौचमाचर्य मार्तण्डबिम्बार्धस्तमिते सुधीः । धर्मकृत्यैः कुलायातैर्निजात्मानं पवित्रयेत् ॥५

न शोधयेन्न कण्डूयेन्न क्रमेदङ्घ्रिमङ्घ्रिणा । न च प्रक्षालयेत् कांस्ये न कुर्यात्स्वामिसम्मुखम् ॥६

सन्ध्यायां श्रीद्रुहं निद्रां मैथुनं दुष्टगर्भकृत् । पाठं वैकल्यदं रोगप्रदां भुक्तिं च नाचरेत् ॥७

अर्केऽर्धास्तमिते यावन्नक्षत्राणि नभस्तले । द्वित्राणि नैव वीक्ष्यन्ते तावत्सायं विदुर्बुधाः ॥८

सूर्योदयात्तिथेस्तथ्यमतिसायं विचक्षणैः । शयनस्थानपानीयप्रमुखैः कार्यमाचरेत् ॥९

आद्गोऽनीते (?) यामयुग्मे विधेयं यामार्धेषु प्रोक्तमित्थं चतुर्षु ।
अन्तश्चित्तं चिन्त्यमेतच्च सम्यक् स्थेयः काङ्क्षयेत्क्षुन्नदीभिः ॥१०

इति श्री कुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे दिनचर्यायां चतुर्थोल्लासः ।

मध्याह्नमें तीसरे पहर विश्रामके पश्चात् शय्याके मध्यसे उठकर शौच आदि शारीरिक शुद्धिको करे। तदनन्तर अपने सलाहकार लोगोंके साथ आय और व्ययका विचार करके भले प्रकारसे परामर्श करे ॥१॥ तत्पश्चात् वैकालिक अर्थात् चौथे पहरमें करने योग्य कार्य करे। जब दो घड़ी दिन शेष रह जावे, तब उत्सुकता-रहित ऋतुके अनुसार उचित अशन-पानसे परिमित आहार करे ॥२॥ .... ॥३॥ सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे रहित, भूत-प्रेतोंके संचारसे उच्छिष्ट और सूक्ष्म जीवोंसे व्याप्त ऐसा रात्रि-भोजन करना योग्य नहीं है ॥४॥ सायंकाल शौचशुद्धि करके सूर्यके अर्ध अस्तंगत होनेके समय बुद्धिमान् श्रावक कुल-क्रमागत धार्मिक कृत्योंके द्वारा अपनी आत्माको पवित्र करे ॥५॥

एक पाद (पैर) से दूसरे पादको न शोधे, न खुजलावे और न संचालन करे। कांसेके पात्रमें पादोंको धोवे भी नहीं और न स्वामीका सामना ही करे ॥६॥ सन्ध्याके समय श्रीद्रोहका कार्य न करे, निद्रा न लेवे, दुष्ट गर्भका कारणभूत मैथुन सेवन न करे, विकलता करनेवाले शास्त्रका पठन-पाठन भी न करे। तथा रोग बढ़ानेवाला भोजन भी न करे ॥७॥ सूर्यके अर्ध अस्तंगत होनेपर जबतक नभस्तलमें दो-तीन नक्षत्र दिखाई नहीं देते हैं, तब तकके समयको ज्ञानी लोग सायंकाल कहते हैं ॥८॥ सूर्योदयसे लेकर तिथिके तथ्य(पन्द्रहवें मुहूर्त्त)तकके समयको विचक्षण पुरुष 'अतिसायं-काल' कहते हैं। उस समय शयन, स्थान और पीने योग्य प्रमुख द्रव्योंसे कार्य करना चाहिए ॥९॥

सूर्योदयसे लेकर पहलेके दो पहरोंमें करने योग्य कार्योंको, तत्पश्चात् आधे पहरमें करने योग्य कार्यको, पुनः अन्तिम पहरमें करने योग्य कार्योंको कहा। इस प्रकार चारों ही पहरोंमें अपने करने योग्य कार्योंका विचार करना चाहिए। तथा आत्म-हितके इच्छुक पुरुष उक्त प्रकारसे अपनी दिनचर्याको सन्तुलित कर आत्म-चिन्तन करें, जैसे कि छोटी-छोटी नदियाँ समुद्रमें मिल कर स्थायित्वका अनुभव करती हैं ॥१०॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे
दिनचर्यायां चतुर्थोल्लासः ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ पंचमोल्लासः

दीपो दक्षिणदिग्वर्ती निःप्रकम्पोऽतिभासुरः। आयनोदितमूर्त्तिश्च निःशब्दो रुचिरस्तथा ॥१
चञ्चत्काञ्चनसङ्काशप्रभामण्डलमण्डितः। गृहालोकाय माङ्गल्यः कर्तव्यो रजनीमुखे ॥२
प्रस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्श्च वामावर्त्तस्तनुप्रभः। वायूत्कटाद्यभावेऽपि विध्यायेत्तैलवर्जितम् ॥३
विकीर्णार्चिः सशब्दश्च प्रदीपो मन्दिरे स्थितः। पुरुषाणामनिष्टानि प्रकाशयति निश्चितम् ॥४
रात्रौ न देवतापूजां स्नानदानाशनानि च। न वा खदिरताम्बूलं कुर्यान्मन्त्रं च नो सुधीः ॥५
खट्वां जीवाकुलां ह्रस्वां भग्नकाष्ठां मलीमसाम्। प्रतिपादान्वितां वह्निदारुजातां च सन्त्यजेत् ॥६
शयनासनयोः काष्ठमाचतुर्योगतः शुभम्। पञ्चादिकाष्ठयोगे तु नाशः स्वस्य कुलस्य च ॥७
पूज्योर्ध्वस्थो न नार्द्राङ्घ्रिर्नग्नोत्तरापरा शिरः। नानुवंशं न पादान्तं नागदन्तः स्वपेत्पुमान् ॥८
देवानां धाम्नि वल्मीके भूरुहाणां तलेऽपि च। तथा प्रेतवने चैव सुप्यान्नापि विदिक्-शिरः ॥९
वपुः शीलं कुलं वित्तं वयो विद्याऽऽसनं तथा। एतानि यस्य विद्यन्ते तस्मै देया निजा सुता ॥१०
मूर्ख-निर्धन-दूरस्थ-शूर-मोक्षाभिलाषिणाम्। त्रिगुणाधिकवर्षाणां चापि देया न कन्यका ॥११

रात्रिके समय जलाया जानेवाला दीपक दक्षिण-दिग्वर्ती हो, प्रकम्प-रहित हो और प्रकाशवान् हो, प्रातःकाल उदित होते हुए सूर्यके समान मूर्त्तिवाला हो, शब्द-रहित और कान्तिवाला हो, तथा चमकते हुए सुवर्णके सदृश प्रभा-मंडलसे युक्त हो। ऐसा मांगलिक दीपक रात्रि-प्रारम्भ होनेके समय गृहके प्रकाशके लिए जलाना चाहिए ॥१॥ जिसमेंसे स्फुलिंग निकल रहे हों, अल्प मूर्त्तिवाला हो, वाम आवर्त्त-युक्त हो, अल्प प्रभावाला हो, वायुकी उत्कटता आदिके अभावमें भी बुझ जाता हो, तेलसे रहित हो, जिसकी ज्योति बिखर रही हो, और चट-चट आदि शब्दको कर रहा हो, ऐसा भवनमें स्थित दीपक निश्चयरूपसे पुरुषोंके अनिष्टोंको प्रकट करता है ॥३-४॥

बुद्धिमान् पुरुष रात्रिमें न देवताओंकी पूजा करे, न स्नान, दान और भोजन ही करे, न कत्था-ताम्बूलका भक्षण करे और न मंत्रको ही सिद्ध करे ॥५॥ जो खटमल आदि जीवोंसे व्याप्त हो, छोटी हो, जिसके काठ टूटे हुए हों, मलिनता युक्त हो, जिसका प्रत्येक पाया हलन-चलनसे युक्त हो, और जो जली हुई लकड़ीसे बनाई गई हो, ऐसी खाटका परित्याग करे ॥६॥ शय्या और आसनका काष्ठ चारके संयोगसे बना हुआ शुभ हैं। पाँच आदि काष्ठोंके संयोग से बना हुआ होनेपर वह अपना और कुलका नाश करता है ॥७॥ पूज्य पुरुषोंसे ऊँचे पलंग आदिपर न सोवे, गीले पैरोंसे भी नहीं सोवे, नंगा न सोवे, उत्तर और पश्चिम दिशाकी ओर शिर करके न न सोवे, ? वांसकी बनी खाट पर नहीं सोवे, किसी व्यक्ति व्यक्तिके पैरोंके अन्तमें नहीं सोवे और न पान आदिको दाँतोंमें दबाकर पुरुषको सोना चाहिए ॥८॥ देवोंके मन्दिरमें नहीं सोवे, बल्मीक (बांभी) के ऊपर, वृक्षोंके तल-भागमें और श्मशान भूमिमें भी नहीं सोवे, तथा विदिशाओंमें शिर करके भी नहीं सोना चाहिए ॥९॥

शरीर, शील, कुल, सम्पत्ति, अवस्था, विद्या तथा आसन ये जिसके विद्यमान हों, उस व्यक्तिके लिए अपनी कन्या देना चाहिए ॥१०॥ मूर्ख, निर्धन, दूरदेशवर्ती, शूरवीर, मुक्ति प्राप्तिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वक्षो वक्त्रं ललाटं च विस्तीर्णं शस्यते त्रयम् । गम्भीरं त्रितयं शस्यं नाभिः सत्त्वं सरस्तथा ॥१२
कण्ठं पृष्ठं च लिङ्गं च जङ्घयोर्युगलं तथा । चत्वारि यस्य ह्रस्वाणि पूजामाप्नोति सोऽन्वहम् ॥१३
स्वाङ्गुलीपर्वभिः केशैर्नखैर्दन्तैस्त्वचापि च । सूक्ष्मकैः पञ्चभिर्मर्त्यो भवन्ति चिरजीविनः ॥१४
स्तनयोर्नेत्रयोर्मध्यं दोर्द्वयं नासिका हनू । पञ्च दीर्घाणि यस्य स्युः स धन्यः पुरुषोत्तमः ॥१५
नासा ग्रीवा नखाः कक्षा हृदयं च स्कन्धः सदा । षड्भिरभ्युन्नतैर्मर्त्यः सदैवोन्नतिभाजनः ॥१६
नेत्रान्तरसृजा तालु नखरा चाधरोऽपि च । पाणिपादतले चापि सप्त रक्ताणि सिद्धये ॥१७
देहे प्रशस्यते वर्णस्ततस्नेहस्ततः स्वरः । अतस्तेज इतः सत्त्वमिदं द्वात्रिंशतोऽधिकम् ॥१८
सात्त्विकः सुकृती दानी राजसो विषयी भ्रमी । तामसः पातकी लोभी सात्त्विको मानुषोत्तमः ॥१९
सद्धर्मः सुभगो नीरुग् सुस्वप्नः सनयः कविः । सूचयत्यात्मनः श्रीमान्नरः स्वर्गगमागमौ ॥२०
निर्दम्भः सदयो दानी दान्तो दन्तः सदा ऋजुः । मर्त्ययोनेः समुद्भूतो भावी चात्र नरः पुनः ॥२१
मायालोभक्षुधाऽऽलस्यबह्वारम्भादिचेष्टितैः । तिर्यग्योनिसमुत्पत्तिं ख्यापयत्यात्मनः पुमान् ॥२२
सरोगः स्वजनद्वेषी कटुवाग्मूर्खसङ्गकः । शास्ति स्वस्य गतायातं नरो नरकवर्त्मनि ॥२३

इच्छुक और तिगुनी अधिक वर्षोंकी आयुवाले पुरुषोंको अपनी कन्या नहीं देना चाहिए ॥११॥ वक्षस्थल, मुख और ललाट ये तीनों विस्तीर्ण (चौड़े) हों तो प्रशस्त माने जाते हैं। नाभि, सत्त्व और सरोवर ये तीनों गम्भीर हों तो प्रशंसनीय होते हैं ॥१२॥ कण्ठ, पृष्ठ (पीठ) लिंग और जंघा-युगल ये चारों जिसके ह्रस्व होते हैं, वह व्यक्ति प्रतिदिन पूजाको प्राप्त होता है ॥१३॥

अपनी अंगुलियोंके पर्व (पोर भाग) केश, नख, दन्त और त्वक् (चमड़ा) ये पाँच यदि सूक्ष्म हों तो मनुष्य चिरजीवी होते हैं ॥१४॥ दोनों स्तनोंका मध्य भाग, दोनों नेत्रोंका मध्य भाग, दोनों भुजाएँ, नासिका और हनू (ठोढ़ी ठुड्डी) ये पाँचों जिसके दीर्घ होते हैं, वह पुरुषोत्तम और धन्य है ॥१५॥ नासिका, ग्रीवा, नख, कक्षा (कांख) हृदय और कन्धा ये छह अंग यदि उन्नत होते हैं तो वह मनुष्य सदैव उन्नतिका पात्र होता है ॥१६॥ नेत्रोंका प्रान्त (कोण) भाग, जिह्वा तालु, नख, अधर ओष्ठ, हस्ततल और चरणतल ये सातों रक्त वर्ण हों तो वे अभीष्ट सिद्धिके कारण होते हैं ॥१७॥ शरीरमें वर्ण (रंग-रूप) प्रशंसनीय होता है, वर्णसे भी स्नेह (चिक्कणपना) उत्तम होता है। स्नेहसे स्वर श्रेष्ठ होता है, स्वरसे तेज श्रेष्ठ होता है और तेजसे सत्त्व उत्तम होता है। यह सत्त्व पूर्वोक्त बत्तीस लक्षणोंसे अधिक उत्तम माना जाता है ॥१८॥

सात्त्विक प्रकृतिवाला मनुष्य सुकृत करने वाला और दानी होता है, राजस प्रकृतिवाला मनुष्य विषयी और भ्रमस्वभावी होता है और तामस प्रकृतिवाला व्यक्ति पापी और लोभी होता है। इनमें सात्त्विक प्रकृतिवाला व्यक्ति पुरुषोंमें उत्तम माना जाता है ॥१९॥

उत्तम धर्मका पालने वाला, सौभाग्यवान्, नीरोग, शुभ स्वप्नदर्शी, सुनीतिवाला, कवि और श्रीमान् मनुष्य अपने स्वर्गसे आगमन और गमनको सूचित करता है ॥२०॥ दम्भ-रहित, दया-युक्त, दानी, इन्द्रिय-जयी, उदार और सदा सरल स्वभावी व्यक्ति मनुष्ययोनिसे उत्पन्न हुआ है और आगामी भवमें भी वह पुनः मनुष्ययोनिमें ही उत्पन्न होनेवाला है ॥२१॥ मायाचार, लोभ-भूख-प्यास, आलस्य और बहुत आरम्भ आदि चेष्टाओंसे मनुष्य अपनी तिर्यग्योनिकी उत्पत्ति-को प्रकट करता है ॥२२॥ सदा रोगी रहनेवाला, स्वजनोंसे द्वेष करनेवाला, कटुक वचन बोलने वाला, मूर्ख और मूर्खोंकी संगति करनेवाला मनुष्य अपना गमन-आगमन नरकके मार्गमें सूचित करता है ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नासिका-नेत्र-दन्तौष्ठ-नखकर्णाङ्घ्रिका नराः । समा समेन विज्ञेया विषमा विषमेन तु ॥२४
गतिस्वरास्थित्वग्मांसनेत्रस्रोतोऽङ्गकैर्नृणाम् । यानमाज्ञा धनं भोगः सुखं योषित् क्रमाद् भवेत् ॥२५
आवर्तो दक्षिणे भागे दक्षिणे शुभकृन्नृणाम् । वामो वामेन निन्द्यश्च दिगन्यत्वे तु मध्यमः ॥२६
[1]उत्पातः पटिको लक्ष्म तिलको मसको व्रणः । स्पर्शनं स्फुरणं पुंसः शुभायाङ्गे प्रदक्षिणे ॥२७
[2]वामभावं पुनर्वामे त्रिंशकस्य नरस्य च । घातोऽपि दक्षिणे कैश्चिन्नस्याङ्गेऽशुभो मतः ॥२८
पृष्ठं पादौ च देहस्य लक्षणं चाप्यलक्षणम् । इतराद् बाध्यते तेन बलवत्फलदं भवेत् ॥२९
मणिबन्धात्परः पाणिस्तस्य लक्षणमुच्यते । तत्र चाङ्गुष्ठ एकः स्याच्चतस्रोऽङ्गुलयः पुनः ॥३०
नामान्यासां यथार्थानि ज्ञेयान्यङ्गुष्ठतः क्रमात् । तर्जनी मध्यमानामा कनिष्ठा च चतुर्थिका ॥३१
अकर्मकठिनः पाणिर्दक्षिणो वीक्ष्यते नृणाम् । वामभ्रुवां पुनर्वामः स प्रशस्योऽतिकोमलः ॥३२

[3]श्लाघ्य उष्णारुणोऽस्वेदोऽछिद्रः स्निग्धश्च मांसलः ।
श्लक्ष्णस्ताम्रनखो दीर्घाङ्गुलीको विपुलः करः ॥३३

नासिका, नेत्र, दन्त, ओष्ठ, नख, कान और पाद ये अंग जिनके समान हों, उन मनुष्योंको समस्वभावी जानना चाहिए। यदि ये अंग विषम हों तो उन्हें विषमस्वभावी जानना चाहिए ॥२४॥ गति, स्वर, अस्थि, त्वक् (ऊपरी चमड़ी) मांस और नेत्रोंके स्रोत इन अंगोंके द्वारा क्रमसे मनुष्योंके यान-वाहन, आज्ञा, धन, भोग, सुख और स्त्री इनकी प्राप्ति होती है ॥२५॥ शरीरके दक्षिण भागमें यदि रोम-राजि-दक्षिण-आवर्त वाली हो, तो वे मनुष्योंके कल्याण-कारक होते हैं और यदि वह वाम-आवर्त्त हो, तो वह निन्दनीय होता है यदि वह अन्य दिशाकी ओर हो, तो मध्यम जानना चाहिए ॥२६॥

पुरुषके दक्षिण अंगमें यदि उत्पात (चोटका निशान) पटिक (फोड़ा आदिका चिह्न) लक्षण, तिल, मस्सा, व्रण (शस्त्रघात) स्पर्शन (छिपकली आदिका स्पर्श) और अंग-स्फुरण हो तो वह शुभ-सूचक है ॥२७॥ यदि ये सब वाम अंगमें हों तो वे अशुभ-सूचक होते हैं। तीस वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके उक्त फल जानना चाहिए। कित्तने ही आचार्य पुरुषके दक्षिण अंगमें घातको भी अशुभ मानते हैं ॥२८॥ पीठ और दोनों पाद इनमेंसे यदि कोई शुभ लक्षण और कोई अशुभ लक्षणवाला हो तो वे परस्पर में एक दूसरेसे बाधित होते हैं। इनमें जो बलवान् होता है वह फल-दायक होता है ॥२९॥

अब मणिबन्ध (हाथ मूल) से परवर्त्ती जो हस्ततल है, उसके लक्षण कहते हैं। उस हाथ में एक अंगूठा और चार अंगुलियाँ होती हैं ॥३०॥ अंगूठेसे लेकर कमसे इनके जैसे नाम हैं, वैसे ही इनके अर्थ भी जानना चाहिए। उनमेंसे पहिली अंगुलीका नाम तर्जनी है, दूसरीका मध्यमा, तीसरीका अनामा या अनामिका और चौथीका नाम कनिष्ठा है ॥३१॥ मनुष्योंका दाहिना हाथ विना कठोर कर्म किये ही कठिन देखा जाता है और वाम भृकुटीवाली स्त्रियोंका हाथ अतिकोमल और प्रशंसनीय होता है ॥३२॥ जिसकी अंगुलियोंवाला हस्ततल अरुणवर्ण (गुलाबी) हो, स्निग्ध हो, छिद्र-रहित हो, मांसल हो, चिकना हो, ताम्रवर्णके नख हों, अंगुलियाँ लम्बी हों, और विशाल

---

१. हस्तसं० पृ० ७७ श्लोक ७। २. हस्तसं० पृ० ७७ श्लोक ८। ३. हस्तसं० पृ० ७७ श्लोक १०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]पाणेस्तलेन शोणेन धनी नीलेन मद्यपः। पीतेनागम्यनारीगः कल्माषेण धनोज्झितः ॥३४
[2]दातोन्नततले पाणौ निम्नो पितृधनोज्झितः। धनी संवृत्तनिम्ने स्याद्विषमे निर्धनः पुनः ॥३५
अरेखं बहुरेखं वा यस्य पाणितलं भवेत्। ते स्युरल्पायुषो निस्वा दुःखिता नात्र संशयः ॥३६
[3]करपृष्ठं सुविस्तीर्णं पीनं स्निग्धं समुन्नतम्। श्लाघ्यो गूढशिरो नृणां फणभृत्फणसन्निभः ॥३७
[4]विवर्णं परुषं रूक्षं रोमसं मांसवर्जितम्। मणिबन्धसमं निम्नं न श्रेष्ठं करपृष्ठकम् ॥३८
[5]पाणिमूलं दृढं गूढं श्लाघ्यं सुश्लिष्टसन्धिकम्। श्लथं सशब्दं हीनं च निर्धनत्वादिदुःखदम् ॥३९
[6]दीर्घनिर्मांसपर्वाणः सूक्ष्मा दीर्घाः सुकोमलाः। सुघनाः सरला वृत्ताः स्त्रीणामङ्गुलयः श्रिये ॥४०

[7]यच्छन्ति विरलाः शुष्काः स्थूला वक्रा दरिद्रताम्।
शस्त्राघातं बहिर्निम्नाश्चेटित्वं चिपटाश्च ताः ॥४१

अनामिकस्य रेखाया कनिष्ठा स्याद्यदाधिका। धनवृद्धिस्तदा पुंसां मातृपक्षो बहुस्तदा ॥४२
मध्यमा-प्रान्तरेखाया अधिका यदि तर्जनी। प्रचुरस्तत्पितुः पक्षः श्रीश्च व्यत्ययतोऽन्यथा ॥४३

हस्ततल हो, वह पुरुष प्रशंसनीय होता है ॥३३॥ हाथका तल-भाग लाल होनेसे मनुष्य धनिक होता है, नीला होनेसे मद्यपायी होता है, पीला होनेसे अगम्य नारी गमन करने वाला होता है, अर्थात् गुरु-पत्नी आदि पूज्य और ज्येष्ठ स्त्रियोंका सेवन करता है। तथा कालावर्ण होनेसे मनुष्य धनसे रहित होता है ॥३४॥ यदि हस्ततल गोल और गहरा हो तो मनुष्य धनी होता है, और यदि वह विषम हो तो मनुष्य धनसे रहित होता है। उन्नत हस्ततल होनेपर दान देनेवाला होता है और निम्न हस्ततल होनेपर पिताके धनसे रहित होता है ॥३५॥ जिसका हस्ततल रेखाओंसे रहित हो, या बहुत रेखाओं वाला हो तो वे मनुष्य अल्पायु, निर्धन और दुःख भोगनेवाले होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥३६॥ जिसके हाथका पृष्ठभाग सुविस्तीर्ण हो, पुष्ट हो, स्निग्ध हो, उन्नत हो, गूढ नसोंवाला हो और सांपके फण-सदृश हो, वह मनुष्य प्रशंसनीय होता है ॥३७॥ जिसके हाथका पृष्ठभाग, विवर्ण, परुष, रूक्ष, रोमवाला और मांससे रहित हो, तथा मणिबन्धके समान निम्न हो वह उत्तम नहीं है ॥३८॥ जिसके हाथका मूलभाग दृढ़ और परस्पर मिली हुई सन्धि-वाला हो, वह प्रशंसनीय होता और जिसका शिथिल, शब्दयुक्त और हीन होता है, वह निर्धनता आदि दुःखोंको देनेवाला होता है ॥३९॥

स्त्रियोंकी अंगुलियाँ मांस-सहित लम्बी, पोरवाली, पतली, दीर्घ, सुकोमल, सुघन, सरल और गोल हों तो वे लक्ष्मी प्राप्त करानेवाली होती हैं ॥४०॥ विरल (दूर-दूर) शुष्क, स्थूल और वक्र अंगुलियाँ दरिद्रताको देती है यदि अँगुलियाँ बाहिरकी ओर निम्न हों तो शस्त्र-घात करानेवाली होती हैं और यदि चिपटी होती हैं तो चेटी या दासीपनेको प्रकट करती हैं ॥४१॥ अनामिका अंगुलीकी रेखासे यदि कनिष्ठा अंगुली अधिक बड़ी हो तो पुरुषोंके धनकी वृद्धि होती है और उसका मातृ-पक्ष बहुत बड़ा होता है ॥४२॥ मध्यमा अंगुलीकी समीपवर्ती रेखासे यदि तर्जनी अधिक बड़ी होती है तो पितृ-पक्ष बहुत बड़ा होता है और उसके लक्ष्मी भी होती हैं। यदि मध्यमा अंगुलीकी समीपवर्ती रेखासे तर्जनी छोटी होती हैं तो पितृ-पक्ष छोटा होता है और

---

१. हस्तसं० पृ० ७८ श्लोक १२। २. हस्तसं० पृ० ७८. श्लोक १३। ३. हस्तसं० पृ० ७८ श्लोक १४। ४. हस्तसं० श्लोक ७८ पृ० १५। ५. हस्तसं० पृ० ७८ श्लो० ११। ६. हस्तसं० पृ० ७९ श्लोक २। ७. हस्त सं० पृ० ८० श्लोक ३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्गुष्ठस्याङ्गुलीनां च यद्यूनाधिकता भवेत्। धनैर्धान्यैस्तदा हीनो नरः स्यादायुषापि च ॥४४
मणिबन्धे यवश्रेण्यस्तिस्रश्चेत् स नृपो भवेत्। यदि ता पाणिपृष्ठेऽपि ततोऽधिकतरं फलम् ॥४५
द्वाभ्यां तु यवमालाभ्यां राजमन्त्री धनी बुधः। एकया यवपङ्क्त्या तु श्रेष्ठो बहुधनोचितः ॥४६

[1]सूक्ष्माः स्निग्धाश्च गम्भीरा रक्ता वा मधुपिङ्गलाः।
अव्यावृत्ता गतच्छेदाः कररेखाः शुभा नृणाम् ॥४७

[2]त्यागाय शोणगम्भीराः सुखाय मधुपिङ्गलाः। सूक्ष्माः श्रिये भवेयुस्ते सौभाग्याय च मूलकाः ॥४८

[3]छिन्ना सपल्लवा रूक्षा विषमाः स्थानकच्युताः।
विवर्णाः स्फुटिताः कृष्णा नीलीस्तन्व्यश्च नोत्तमाः ॥४९

[4]क्लेशं सपल्लवा रेखा क्लिन्ना जीवितसंशयम्। कदन्नं परुषाद् द्रव्यविनाशं विषमार्पयेत् ॥५०
मणिबन्धात्पितुर्लेखा करभाद्विभवायुषोः। लेखे द्वे यान्ति तिस्रोऽपि तर्जन्यङ्गुष्ठकान्तरे ॥५१
एषा रेखा इमास्तिस्रः सम्पूर्णा दोषवर्जिताः तेषां गोत्रधनायूंषि सम्पूर्णान्यन्यथा न तु ॥५२

वह व्यक्ति लक्ष्मीसे हीन भी रहता है ॥४३॥ यदि अँगूठेकी अँगुलियोंकी निम्न भागवाली पोरसे अधिकता हो, अर्थात् लम्बाई अधिक हो तो वह मनुष्य धन और धान्यसे हीन होता है और आयुसे भी हीन होता है ॥४४॥

मणिबन्धमें यदि तीन यव-श्रेणी (जौके आकारवाली तीन श्रेणियाँ) हों तो वह व्यक्ति राजा होता है। और यदि वे ही जौके आकारवाली तीन श्रेणियो हाथके पृष्ठभागमें भी हों तो उसका उससे भी अधिक फल होता है, अर्थात् वह महाराज या माण्डलिक राजा होता है ॥४५॥ मणि-बन्धमें दो जौके आकारवाली श्रेणियोंसे मनुष्य राज-मंत्री, धनी और विद्वान् होता है। एक यव-पंक्तिसे मनुष्य बहुत धनसे पूजित और श्रेष्ठ होता है ॥४६॥ मनुष्योंके हस्त-रेखाएँ यदि सूक्ष्म, स्निग्ध, गम्भीर, रक्त वर्णवाली या मधुके समान पिंगल वर्णवाली, परस्पर मिलीं और गतच्छेद अर्थात् एकसे दूसरी कटी हुई न हों तो वे शुभ होती हैं ॥४७॥ रक्तस्वर्णवाली और गंभीर हस्त-रेखाएँ त्याग (दान) के लिए, मधुके समान पिंगल वर्णवाली रेखाएँ सुखके लिए, सूक्ष्म रेखाएँ लक्ष्मीके लिए और मूलभागसे (जिस रेखाका जो उद्गम स्थान है, वहाँसे) उत्पन्न हुई रेखाएँ सौभाग्यकी सूचक होती है ॥४८॥ यदि रेखाएँ कटी हुई हों, पल्लव-सहित हों, रूक्ष हों, विषम हों, स्थानसे च्युत हों, विवर्ण हों, स्फुटित हों, काली या नीली हों, छोटी या पतीली हों तो वे उत्तम नहीं होती है ॥४९॥ पल्लव-सहित रेखाएँ क्लेश करती हैं, क्लिन्न (छिन्न) रेखाएँ संशय-युक्त जीवनको सूचित करती है, परुष रेखाएँ खोटे अन्नका भोजन करना बतलाती हैं और विषम—रेखाएँ द्रव्यके विनाशको सूचित करती हैं, ऐसा जाना चाहिए ॥५०॥

मणिबन्धसे पितृ-रेखा और करभ अंगुलीके मूलसे वैभव एवं आयुकी रेखा प्रारम्भ होती है। ये दोनों तथा तीनों ही तर्जनी और अंगूठेके मध्य तक जाती हैं ॥५१॥ जिनके हाथमें यह पितृ-रेखा और वैभव एवं आयुकी रेखा ये तीनों ही रेखाएँ पूर्ण तथा दोष-रहित हैं, उनके गोत्र (कुटुम्ब-परिवार) धन और आयु सम्पूर्ण (भर-पूर) होते हैं। यदि उक्त रेखाओंमें दोष होता है,

---

१. हस्तसं० पृ० ८५ श्लो० १०। २. हस्तसं० पृ० ८५ श्लो० ११। ३. हस्तसं० पृ० ८५ श्लोक १२। ४. हस्तसं० पृ० श्लोक १३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लङ्घ्यते च यावन्त्योऽङ्गुल्यो जीवितरेखया । पञ्चविंशतयो ज्ञेयास्तावन्तः शरदां बुधैः ॥५३
मणिबन्धोन्मुखा आयुर्लेखायां यत्र पल्लवाः । सम्पदस्ते बहिर्भावा विपदोऽङ्गुलिसम्मुखाः ॥५४
ऊर्ध्वरेखा मणेर्बन्धादूर्ध्वगा सा तु पञ्चधा । अङ्गुष्ठाश्रयणी सौख्या राज्यलाभाय जायते ॥५५
राजा राजसदृक्षो वा तर्जनीयतपानया । मध्यमागतयाचार्यः ख्यातो लोकेऽथ सैन्यपः ॥५६
अनामिकां प्रयान्त्यां तु सार्थवाहो महाधनः । कनिष्ठां गतया श्रेष्ठः सप्रतिष्ठो भवेद् ध्रुवम् ॥५७
आयुर्लेखावसानाभिर्लेखाभिर्मणिबन्धतः । स्पृष्टाभिर्भ्रातरोऽस्पष्टाश्चाभिरामयः पुनः ॥५८
आयुर्लेखा कनिष्ठान्ता लेखाः स्युर्गृहिणीप्रदा । समाभिः शुभशीलास्ताः विषमाभिः कुशीलता ॥५९
अस्पष्टाभिरदीर्घाभिर्भ्रातृजाद्याश्च सूचिकाः । यवैरङ्गुलमूलोत्थैस्तत्सङ्ख्याः सूनवो नृणाम् ॥६०
यवैरङ्गुष्ठमध्यस्थैर्विद्याख्यातिर्विभूतयः । शुक्ले पक्षे तथा जन्म दक्षिणाङ्गुष्ठतैश्च तैः ॥६१
कृष्णपक्षे नृणां जन्म वामाङ्गुष्ठगतैर्यवैः । बहूनामथ चैकस्य यवस्य स्यात्फलं समम् ॥६२

एकोऽप्यभिमुखः स्वस्य मत्स्यः श्रीवृद्धिकारणम् ।
सम्पूर्णं किं पुनः सोऽपि पाणिमूले स्थितो नृणाम् ॥६३

तो उक्त तीनों भर-पूर नहीं होते हैं ॥५२॥ जीवनकी रेखाके द्वारा जितनी अंगुलियाँ उल्लंघन की जाती हैं बुद्धिमानोंको उसकी आयु उतने ही पच्चीस शरदृऋतु-प्रमाण जानना चाहिए ॥५३॥ जिस आयु-रेखामें पल्लव मणिबन्धके सम्मुख होते हैं, वे सम्पत्तिके बहिर्भावके सूचक हैं और यदि वे अंगुलियोंके सम्मुख होते हैं तो वे विपत्तिके सूचक हैं ॥५४॥ ऊर्ध्व रेखा पाँच प्रकार की होती है वह यदि मणिबन्धसे ऊर्ध्व-गामिनी हो तो और पांचों अंगुलियोंके आश्रयसे पांच प्रकारके फलकी सूचक होती है। यदि वह ऊर्ध्व रेखा अंगूठेका आश्रय लेती हैं, तो वह सुखकारक एवं राज्य-लाभके लिए होती है ॥५५॥ यदि वह ऊर्ध्व रेखा तर्जनीका आश्रय लेती है तो वह व्यक्ति राजा अथवा राजाके सदृश महापुरुष होता है। यदि वह ऊर्ध्व रेखा मध्यमा अंगुलीका आश्रय लेती है तो वह व्यक्ति प्रसिद्ध आचार्य अथवा सेनापति होता है ॥५६॥ यदि वह ऊर्ध्वरेखा अनामिका अंगुलीका आश्रय लेती है, तो वह व्यक्ति महाधनी सार्थवाह (व्यापारी) होता है। यदि वह ऊर्ध्व रेखा कनिष्ठा अंगुलीको प्राप्त होती है तो वह व्यक्ति निश्चयसे प्रतिष्ठा-युक्त श्रेष्ठ पुरुष होता है ॥५७॥

मणिबन्धसे लेकर आयु-रेखा तक जितनी रेखाएँ स्पर्श करती हैं, वे उतने भाइयोंकी सूचक होती हैं। यदि वे स्पष्ट न हों, तो वे रोगादि व्याधियोंकी सूचक होती है ॥५८॥ आयु-रेखा कनिष्ठा अंगुली तक हो और अन्य रेखाएँ भी हों तो वे गृहिणी-प्रदान करती हैं। यदि वे रेखाएँ सम हों तो उत्तम शीलवाली स्त्रियोंको देती हैं और यदि वे विषम हों तो कुशील स्त्रियोंको देती हैं ॥५९॥ अस्पष्ट और छोटी रेखाएँ भाई-भतीजे आदिकी सूचक हैं। अंगुलिके मूलभागसे उठे हुए यवोंसे तत्संख्या-प्रमाण मनुष्योंके पुत्रोंकी संख्या जानना चाहिए ॥६०॥ अंगूठेके मध्यमें स्थित यवोंसे मनुष्योंकी विद्या, ख्याति और विभूति सूचित होती है। तथा दाहिने हाथके अंगूठेमेंके यवोंसे मनुष्योंका जन्म शुक्ल पक्षमें हुआ जानना चाहिए ॥६१॥ यदि वे यव वाम अंगूठेमें उत्पन्न हुए हों तो मनुष्योंका जन्म कृष्णपक्षमें हुआ जानना चाहिए। अंगुष्ठ-गत बहुतसे यवोंका और एक यवका फल समान हीं होता है ॥६२॥ हस्त-तलमें एक भी अभिमुख मत्स्य-चिह्न अपने लिए लक्ष्मीकी वृद्धिका कारण है और यदि वह मत्स्य-चिह्न पूर्णरूपसे हाथके मूलभागमें स्थित हो तो फिर मनुष्योंकी लक्ष्मीका कहना ही क्या है ? अर्थात् वह अपार सम्पत्तिका स्वामी होता है ॥६३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शफरो मकरः शङ्खः पद्मं पाणौ स्वसम्मुखः । फलदः सर्वदैवान्त्यकाले पुनरसम्मुखः ॥६४
शतं सहस्रं लक्षं च कोटिनः स्युर्यथाक्रमम् । मीनादयः करे स्पष्टाश्छिन्नभिन्नादयोऽल्पदाः ॥६५
सिंहासन-दिनेशाभ्यां नन्द्यावर्तेन्दुतोरणैः । पाणिरेखास्थितैर्मर्त्याः सार्वभौमा न संशयः ॥६६
आतपत्रं करे यस्य दण्डेन सहितं पुनः । चामरद्वितयं चापि चक्रवर्ती स जायते ॥६७
श्रीवत्सेन सुखी चक्रेणोर्वीशः पविना धनी । भवेदेव कुलाकार-रेखाभिर्धार्मिकः पुनः ॥६८
यूपयानरथाश्वेभवृषरेखाङ्किताः कराः । येषां ते परसैन्यानां हठग्रहण-कर्मठाः ॥६९
एकमप्यायुधं पाणौ षट्त्रिंशन्मध्यतो यदि । तदा परैरयोध्यः स्याद्वीरो भूमिपतिर्जयी ॥७०
उडुपो मङ्गिनी पोतो यस्य पूर्णः कराङ्कुरे । स्वरूप-स्वर्णरत्नानां पात्रं सांयात्रिकः परः ॥७१
त्रिकोणरेखया सीर-मूशलोदूखलादिना । वस्तुना हस्तजातेन पुरुषः स्यात् कृषीबलः ॥७२

गोमन्तः स्युर्नराः शौचैर्दामभिः पाणिसंस्थितैः ।
कमण्डलुध्वजौ कुम्भस्वस्तिकौ श्रीप्रदौ नृणाम् ॥७३

अनामिकान्तपर्वस्था प्रतिरेखा प्रभुत्वकृत् । ऊर्ध्वा पुनस्तले तस्य धर्मरेखेयमुच्यते ॥७४
रेखाभ्यां मध्यमस्थाभ्यामाभ्यां प्रोक्तविपर्ययः । तर्जनी गृहबन्धान्तर्लेखा स्यात्सुखमृत्युदा ॥७५
अङ्गुष्ठा पितृरेखान्तस्तिर्यग्-रेखाफलप्रदा । अपत्यरेखाः सर्वाः स्युर्मत्स्याङ्गुष्ठतलान्तरे ॥७६

हस्ततलमें मत्स्य, मकर, शंख और कमलके चिह्न यदि स्व-सम्मुख हो तो वह सर्वदा ही फलप्रद होते हैं। यदि वे सम्मुख न हों तो अन्तिम समयमें फलप्रद होते हैं ॥६४॥ जिसके हस्ततलमें मीन आदि चिह्न स्पष्ट होते हैं तो वे यथाक्रमसे शत, सहस्र, लक्ष और कोटि-प्रमाण धन-सम्पदाके देनेवाले होते हैं। यदि वे स्पष्ट न हों, या छिन्न-भिन्न आदिके रूपमें हों तो वे अल्प फल-प्रद होते हैं ॥६५॥ यदि हाथकी रेखाओंमें सिंहासन, सूर्य, नन्द्यावर्त्त, चन्द्र और तोरणके चिह्न अवस्थित हों तो मनुष्य सार्वभौम चक्रवर्ती होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥६६॥ जिसके हाथमें दंड-सहित छत्र हो और चामर-युगल भी हो तो वह मनुष्य चक्रवर्ती होता है ॥६७॥ हाथमें अवस्थित श्रीवत्ससे मनुष्य सुखी, चक्रसे भूपति, वज्रसे धनी और कुलाकार (वंशानुरूप) रेखाओंसे धार्मिक होता है ॥६८॥ यूप (यज्ञकाष्ठ) यान (नाव, जहाज) रथ, अश्व, गज और वृषभ (बैल) की रेखाओंसे अंकित जिनके हाथ होते हैं, वे शत्रुकी सेनाओंको हठ-पूर्वक ग्रहण करनेमें कर्मठ होते हैं ॥६९॥ जिसके हाथमें छत्तीस आयुधोंके मध्यमेंसे यदि एक भी आयुधका चिह्न होता है तो वह पुरुष दूसरोंके द्वारा अजेय, वीर, भूमिपति और विजयी होता है ॥७०॥ जिसके हाथमें उड़प (डोंगी या छोटी नौका) मंगिनी (बड़ी नौका) और पोत (जहाज) पूर्णरूपसे विद्यमान हो, वह व्यक्ति सुन्दर स्वरूप, सुवर्ण और रत्नोंका पात्र उत्कृष्ट ऐसा समुद्र-व्यापारी होता है ॥७१॥ हथेलीमें उत्पन्न हुई त्रिकोण रेखा, हल, मूशल, उखली आदि चिह्नोंसे मनुष्य उत्तम खेती करनेवाला किसान होता है ॥७२॥ हाथमें अवस्थित स्पष्ट पवित्र मालाओंसे मनुष्य गोधनवाले होते हैं। कमण्डलु, ध्वजा कुम्भ और स्वस्तिक चिह्न मनुष्योंको लक्ष्मीप्रद होते हैं ॥७३॥ अनामिका अंगुली-पर्यन्त पर्वमें स्थित प्रति-रेखा प्रभुता-कारक होती है। और यदि वह हस्ततलमें ऊपरकी ओर जा रही हो तो वह धर्म-रेखा कही जाती है ॥७४॥ मध्यमा अंगुलीपर अवस्थित इन दोनों रेखाओंके द्वारा उपर्युक्त फलसे विपरीत फल जानना चाहिए। तर्जनीसे गृहबन्ध तक जानेवाली अन्तर्लेखा सुखपूर्वक मृत्युको देती है ॥७५॥ अंगूठे और पितृ-रेखाके मध्यवर्ती तिर्यग्-रेखा उत्तम फलप्रद होती है। मत्स्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्गुष्ठस्य तले यस्य रेखा काकपदाकृतिः। तस्य स्यात्पश्चिमे भागे विपत्तिः शूलरोगतः ॥७७
श्लिष्टान्यङ्गुलिमध्यानि द्रव्यसंग्रहहेतवे। तानि चेच्छिद्रयुक्तानि त्यागशीलस्ततो नरः ॥७८
तर्जनी-मध्यमारन्ध्रं मध्यमानामिकान्तरे। अनामिका-कनिष्ठान्तच्छिद्रे सति यथाक्रमम् ॥७९
जन्मनः प्रथमे भागे द्वितीयेऽथ तृतीयके। भोजनावसरे दुःखं केऽप्याहुः श्रीमतामपि ॥८०
आवर्ता दक्षिणाः शस्ताः साङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वसु।
ताम्रस्निग्धोच्छिखोत्तुङ्गपर्वार्धोत्था नखाः शुभाः ॥८१
श्वेतैर्यतित्वमस्थाद्यैर्नैस्वं पीतैः सरोगता। पुष्पितैर्दुष्टशीलत्वं क्रौर्यं व्याघ्रोपमैर्नखैः ॥८२
शुक्त्याभैः श्यामलैः स्थूलैः स्फुटिताग्रैश्च पीतकैः। अद्योतरूक्षवक्रैश्च नखैः पातकिनोऽधमाः ॥८३
नखेषु बिन्दवः श्वेताः पाण्योश्चरणयोरपि। आगन्तवः प्रशस्ताः स्युरिति भोजनृपोऽवदत् ॥८४
तर्जन्यादिनखैर्भग्नैर्जातमात्रस्य तु क्रमात्। अर्धं त्रिंशच्चतुर्थांशाष्टांशाः स्युः सहजायुषः ॥८५
अङ्गुष्ठस्य नखे भग्ने धर्मतीर्थरतो नरः। कूर्मोन्नताङ्गुष्ठनखे नरः स्याद् भोगवर्जितः ॥८६

अथ वधूलक्षणम्—

वधूलक्षणलावण्यकुलजात्याद्यलङ्कृताम्। कन्यकां वृणुयाद् रूपवतीमव्यङ्गविग्रहाम् ॥८७

और अंगुष्ठ-तलके मध्यमें अवस्थित सभी रेखाएँ पुत्र-सूचक जानना चाहिए ॥७६॥

अंगूठेके तलभागमें जिसकी रेखा काक-पदके आकारवाली होती है उसके जीवनके अन्तिम भागमें शूलरोगसे विपत्ति आती है ॥७७॥ पुरुषकी अंगुलियोंके मध्यभाग परस्पर मिले हुए हों तो वे धन-संग्रहके कारण होते हैं। और यदि वे छिद्रयुक्त हों तो वह मनुष्य त्याग-मनोवृत्तिवाला होता है ॥७८॥ तर्जनी और मध्यमाका मध्यवर्ती छिद्र, मध्यमा और अनामिका मध्यवर्ती छिद्र, अनामिका और कनिष्ठाका मध्यवर्ती छिद्र यथाक्रमसे जोवनके प्रथम भागमें, द्वितीय भागमें और तृतीय भागमें श्रीमन्त पुरुषोंको भी भोजनके समय दुःख-दायक होते हैं, ऐसा कितने ही विद्वान् कहते हैं ॥७९-८०॥

अंगूठे और अंगुलियोंके पर्वोंमें दक्षिण आवर्त प्रशस्त माने जाते हैं। ताम्रवर्णके स्निग्ध और ऊपरकी ओर शिखावाले उत्तुंग पर्वके अर्धभागमें उठे हुए नख शुभ होते हैं ॥८१॥ श्वेत वर्णवाले नख यतिपनाके, अस्वेत (कृष्ण) वर्णवाले नख निर्धनताके, पीतवर्णवाले नख सरोगिता के, पुष्पित नख दुष्ट शीलताके और व्याघ्रके समान नख क्रूरताके सूचक होते हैं ॥८२॥ सीपके समान आभावाले, श्याम वर्ण वाले, स्थूल, पीत वर्ण वाले, फटे हुए अग्रभाग वाले, प्रभा-रहित, रूक्ष और वक्र नखोंसे मनुष्य पापी और अधम होते हैं ॥८३॥ यदि हाथ और पैरोंके नखोंमें श्वेत बिन्दु होते हैं तो वे आगामी कालमें उत्तम फलके सूचक हैं, ऐसा भोजराजाने कहा है ॥८४॥ तर्जनीको आदि लेकर कनिष्ठा-पर्यन्त भग्न नखोंके द्वारा उत्पन्न होने वाले व्यक्ति मात्रके क्रमसे स्वाभाविक आयुका अर्ध भाग, तीसवर्ष-प्रमाण वाला तृतीय भाग, चतुर्थ भाग और अष्टम भाग होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥८५॥ अंगूठेका नख भग्न होनेपर मनुष्य धर्म-सेवन और तीर्थ-यात्रामें निरत होता है। यदि अंगूठेका नख कच्छपके समान उन्नत हो तो मनुष्य भोगोंसे रहित होता है ॥८६॥

अब वधू (स्त्री) के लक्षण कहते हैं—

जो कन्या वधूके उत्तम लक्षणोंसे, सौन्दर्यसे उत्तम कुल और जाति आदिसे अलंकृत हो,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमाद् वर्षतो यावद् वर्षमेकादशं भवेत्। तावत्कुमारिका लोके न्याय्यमुद्वाहमर्हति ॥८८
पादाङ्गुल्यौ सुजङ्घे च जानुनी मेढ्रमुष्ककौ। नाभिकट्यौ च जठरं हृदयं तु स्तनान्वितम् ॥८९
हस्त-स्कन्धौ तथैवोष्ठ-कन्धरे दृग्भ्रुवौ तथा। भालमौली दश क्षेत्राण्येतान्याबालतोऽङ्गके ॥९०
एकैकक्षेत्रसम्भूतलक्षणं चाप्यलक्षणम्। दशभिर्दशभिर्वर्षैः स्त्रीभ्यो दत्ते निजं फलम् ॥९१
यत्पदाङ्गुलयः क्षोणीं कनिष्ठाद्याः स्पृशन्ति न। एकद्वित्रिचतुःसङ्ख्यान् क्रमान्मारयते पतीन् ॥९२
यत्पदाङ्गुलिरेकापि भवेद्धीना कथञ्चन। येन केनापि सार्धं सा प्रायः कलहकारिणी ॥९३
अल्पवृत्तेन वक्रेण शुष्केण लघुनापि च। चिपिटेनापि रक्तेन पादाङ्गुष्ठेन दूषिता ॥९४

कृपणा स्यान्महापार्ष्णिर्दीर्घा पार्ष्णिस्तु कोपना।
दुःशीला समपार्ष्णिश्च निन्द्या विषमपार्ष्णिका ॥९५

उच्छलद्धूलिचरणा सर्वस्थूलमहाङ्गुलिः। बहिर्विनिष्पतत्पादा दीर्घपादप्रदेशिनी ॥९६
विरलाङ्गुलिकौ स्थलौ पृथू पादौ च बिभ्रती। सशब्दगमना स्थूलगुण्या स्वेदयुताङ्घ्रिका ॥९७
उद्बद्धपिण्डिका स्थूलजङ्घा वायसजङ्घिका। निर्मांसघटबुध्नाभविश्लिष्टकृशजानुका ॥९८
बहुधारा प्रस्रविका शुष्कसङ्कटकट्यपि। चतुर्विंशतितो हीनाधिकाङ्गुलिकटी तथा ॥९९
मृदङ्गयवकूष्माण्डोदरिका उच्चनाभिका। दधती बलिभं रोमावर्त्तिनं कुक्षिमुन्नतम् ॥१००

रूपवती हो और जिसके शरीरका कोई भी अंग वंगित न हो, ऐसी कन्याको वरण करना चाहिए ॥८७॥ आठ वर्षसे लेकर ग्यारह वर्ष तककी कन्या लोकमें कुमारी कहलाती है, वह न्याय-पूर्वक विवाहके योग्य होती है ॥८८॥ पैरोंकी अंगुलियाँ, दोनों उत्तम जंघाएँ, दोनों घुटने और अण्डकोषयुक्त गृह्यस्थान नाभि-कटिभाग, उदर, स्तन-युक्त हृदय (वक्षः स्थल) हाथ, कन्धे, तथा ओठ और कन्धरा (पीठ भाग) नेत्र-भ्रुकुटी, भाल और मस्तक ये दश क्षेत्र लड़कीके अंगमें बाल्यकालसे होते हैं ॥८९-९०॥ उक्त एक-एक क्षेत्रमें उत्पन्न शुभ लक्षण और कुलक्षण दश-दश वर्षोंके द्वारा स्त्रियोंके लिए अपना-अपना फल देते हैं ॥९१॥ कनिष्ठाको आदि लेकर जिसके अंगुलियाँ पृथ्वीका स्पर्श नहीं करती है, वह क्रमसे एक, दो, तीन और चार पतियोंको मारती है ॥९२॥ जिस कन्याके पैरकी एक भी अंगुली यदि किसी प्रकारसे हीन होती है तो वह प्रायः जिस किसी भी पुरुषके साथ कलह करने वाली होती है ॥९३॥ जिसके पैरका अंगूठा अल्प गोलाई वाला हो, वक्र हो, शुष्क हो, लघु हो, चिपटा हो और रक्त वर्ण वाला हो वह कन्या दोष युक्त होती है ॥९४॥ मोटी एड़ीवाली कन्या कृपण होती है। ऊँची एड़ोवाली क्रोधी स्वभावकी होती है, समान एड़ीवाली कुशीलिनी होती है और विषम एड़ीवाली निन्दनीय होती है ॥९५॥

चलते समय जिसके पैरोंसे धूलि उछलती हो, जिसकी अंगुलियां स्थूल और बड़ी हों, चलते हुए जिसका पैर बाहिरकी ओर पड़ता हो, जिसके पैरकी प्रदेशिनी (अंगूठेके पासवाली अंगुली) लम्बी हो, अंगुलियां दूर-दूर हों स्थूल और मोटे पैरोंको धारण करती हो, गमन करते समय जिसके पैरोंसे आवाज आती हो, स्थूल गुण्या (एड़ी) हो, प्रस्वेद-युक्त पैर वाली हो, जिसकी पिण्डिका उद्बद्ध (ऊपर उठी) हो, जंघाएँ स्थूल हों, काकके समान जंघाएँ हो, जिसकी जांघें मांस-रहित, घड़ेके समान उतार-चढ़ाववाली, परस्पर श्लेष-रहित और कृश जानुएँ हों, जिसके मूत्र की अनेक धाराएँ निकलती हों, जिसकी कटि सूखी और संकीर्ण हो, तथा चौवीस अंगुलसे हीन या अधिक कमरवाली हो, मृदंग, यव, और कूष्माण्डके समान उदर वाली हो, ऊँची नाभिवाली हो, जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टादशाङ्गुलिन्यूनाधिकवक्षोरुहान्तरा। तिलकं लक्ष्म वा श्यामं बिभ्राणा वामकस्तने ॥१०१
कुचे वराङ्गपार्श्वे च वामे चोच्चैर्मनाक्तितः। नारी-प्रसूतिनी नारी दक्षिणे तु नरप्रसूः ॥१०२
सङ्कीर्णपृथुलप्रोच्चनिर्मांसांसयुतापि वा। स्थूलोच्चकुटिलस्कन्धान्यमूनिमांसकुक्षिका ॥१०३
मेषवल्लघुग्रीवा च दीर्घग्रीवा च कोटवत्। व्याघ्रास्या श्यामचिबुका हास्ये कूपकपोलिका ॥१०४
श्यामश्वेतस्थूलजिह्वातिहासा काकतालुका। जम्बूतरुफलच्छाया दशनावलिपिच्छिका ॥१०५
आकेकराक्षिमार्जारनेत्रा पारावतेक्षणा। वृष्णाक्षी चञ्चलालोकातिमौना बहुभाषिणी ॥१०६
स्थूलाधरशिरावक्त्रनासिका सूर्पकर्णिका। हीनाधरी प्रलम्बोष्ठी मिलद्भ्रूयुग्मिका तथा ॥१०७
अतिसङ्कीर्णविषमा दीर्घा रोमसवालिका। अङ्गुलीत्रितयादूनाधिकभालस्थलापि वा ॥१०८
भालेनाखण्डरेखेण रेखा हीनातिनिन्दिता। रूक्षस्थूलस्फुटिताग्रकटचुल्लङ्किकचयोच्चयम् ॥१०९
एकस्मिन् कूपके स्थूलबहुरोमसमन्विता। सुपुष्पनखरा श्वेतनखा सूर्पनखी तथा ॥११०
उत्कटस्नायुदुर्दर्शकपिलद्युतिधारिणी। अतिश्यामातिगौरी चातिस्थूला चातितन्विका ॥१११
अतिह्रस्वातिदीर्घा च विषमाङ्गाधिकाङ्गिका। हीनाङ्गा शौचविकला रूक्षकर्कशकाङ्गिका ॥११२
सञ्चरिष्णुरुगाघ्राता धर्मविद्वेषिणी तथा। धर्मान्तररता चापि नीचकर्मरतापि च ॥ ११३

बलिभंगवाली, रोमावर्त्तयुक्त उन्नत कुक्षिको धारण करती हो, जिसके स्तनोंके मध्यभागका अन्तर अठारह अंगुलियोंसे कम या अधिक हो, वाम स्तनपर काला तिल या लक्षण (चिह्न) धारण करती हो, दोनों स्तन और वरांग (योनि) के पार्श्वभाग वाम हों उच्च और कुछ विरल हों, ऐसी स्त्री कन्याओंको जन्म देनेवाली होती है, यदि दोनों स्तन और वरांगके पार्श्व भाग दक्षिणकी ओर झुके हुए हों तो वह पुत्रोंको जन्म देनेवाली होती है। जिस कन्याके कन्धे संकीर्ण हों, मोटे, ऊँचे और मांस-रहित हों, अथवा स्थूल, उच्च और कुटिल कन्धे हों, कुक्षि मांस-रहित शुष्क हो, मेंढेके समान लघु ग्रीवा हों अथवा कोट (ऊँट) के समान दीर्घग्रीवा हो, व्याघ्रके समान मुख हो, श्यामवर्णकी चिबुक (ठोड़ी) हो, हंसते समय जिसके कपोलों (गालों) पर कूप जैसे गड्ढे पड़ जाते हों, जिसकी जीभ काली, या श्वेतवर्णकी और मोटी हो, जो अधिक हँसती हो, जिसका तालुभाग काकके समान हो, जम्बु-वृक्षके फल जामुनके सदृश, जिसकी दन्त-पंक्तिका ऊपरी भाग (मसूड़े) हो जिसके नेत्र केकर (कैरे) मार्जार, पारावत (कपोत और मेढ़े) के सदृश हों, नेत्रोंसे तृष्णा झलकती हो, चंचल हो, अधिक मौन रहती हो, अथवा अधिक बोलनेवाली हो, जिसके अधर (नीचेके ओठ) मोटे हों, नसाजाल, मुख और नासिका स्थूल हों, सूपेके समान कानवाली हो, हीन अधरवाली हो, या लम्बे ओठोंवाली हो, जिसकी दोनों भोंहें परस्पर मिल रही हों, अथवा भोंहें अतिसंकीर्ण, विषम और दीर्घ हों, शरीरपर रोमोंकी प्रचुरता हो, जिसका भालस्थल (ललाट) तीन अँगुलसे कम या अधिक हो, अखंड रेखावाले ललाटसे जिसकी रेखाहीन और अतिनिन्दित हों, जिसके शिरके केश रूक्ष, स्थूल हों, जिनके अग्रभाग स्फुटित हों और कटि-भाग-का भी एक-एक रोम-कूप बहुतसे रोमोंसे युक्त हो, जिसके नख सुपुष्पके समान हों, अथवा श्वेत नखवाली हो, या सूपेके समान नख हों, जिसकी स्नायु उत्कट हों, दुर्दर्शनीय कपिलवर्णकी कान्तिको धारण करनेवाली हो, अत्यधिक श्याम वर्णवाली हो, या अधिक गोरी हो, अधिक मोटी हो, या अधिक पतली हो, अति ठिगनी हो, या अतिलम्बो हो, विषम अंगवाली हो, या अधिक अंगवाली हो, या हीन अंगवाली हो, शौच-पवित्रतासे रहित हो, रूक्ष और कर्कश अंग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अजीवप्रसवस्तोकप्रसवस्वसृमातृका । रसवत्यादिविज्ञानरहितेदृक्कुमारिका ॥११४
दुःशीला दुर्भगा बन्ध्या दरिद्रा दुःखिताधमा । अल्पायुर्विधवा कन्या स्यादेभिर्दुष्टलक्षणैः ॥११५

(विंशत्या कुलकम्)

उपाङ्गमथवाङ्गं स्याद्यदीयं बहुरोमकम् । वर्जयेत्तां प्रयत्नेन विषकन्यां महोदरीम् ॥११६
कटिकृकाटिका शीर्षोदरभालेषु मध्यगः । नासान्तेऽशुभः स्यादावर्तः सृष्टिगोऽपि सन् ॥११७
आवर्ता वामभागेऽपि स्त्रीणां संहारवृत्तये । न शुभा शुभभाले च दक्षिणाङ्गे ससृष्टितः ॥११८
देवोरगनदीशैलवृक्षनक्षत्रपक्षिणाम् । श्वपाक-प्रेष्यभीष्माणोसञ्ज्ञापावनितां त्यजेत् ॥११९
धराधान्यलतागुल्मसिंहव्याघ्रफलाभिधाम् । त्यजेन्नारीं भवेद्दोषा स्वैराचारप्रिया यतः ॥१२०
नापरीक्ष्य स्पृशेत्कन्यामविज्ञातां कदाचन । निघ्नन्ति येन योगैस्ताः कदाचिद्विषनिर्मितैः ॥१२१
महौषधप्रयोगेण कन्या विषमयी किल । जातेति श्रूयते ज्ञेया तैरेतैः सापि लक्षणैः ॥१२२
यस्याः केशांशुकस्पर्शान्म्लायन्ति कुसुमस्रजा । स्नानाम्भसि विपद्यन्ते बहवः क्षुद्रजन्तवः ॥१२३

वाली हो, कुल-परम्परागत रोगोंसे व्याप्त हो, धर्मसे विद्वेष करनेवाली हो, अथवा पतिके धर्मसे भिन्न अन्य धर्ममें संलग्न रहनेवाली हो, तथा नीच कर्म करनेमें संलग्न रहती हो, निर्जीव सन्तानको प्रसव करनेवाली हो, या अल्पप्रसववाली या बहिनोंको प्रसव करनेवाली जिसकी माता हो, और जो रसोई बनाने आदि स्त्रियोंचित कलाओंके विज्ञानसे रहित हो, ऐसी कुमारी कन्याका वरण नहीं करना चाहिए। क्योंकि इन उपर्युक्त खोटे लक्षणोंसे वह कन्या दुःशील, दुर्भागिनी, वन्ध्या, दरिद्र, दुःख भोगनेवाली अधम, अल्पायु और विधवा होती है ॥९६-११५॥

जिसका अंग अथवा उपांग यदि बहुत रोमोंवाला हो और बड़ा उदर हो, ऐसी विषकन्या-को प्रयत्न-पूर्वक छोड़े, अर्थात् उसके साथ विवाह-सम्बन्ध न करे ॥११६॥ जिसकी कटि कृकाटिका (गल-घंटिका) के समान हो, शिर, उदर और ललाटमें मध्यवर्ती और नासिकाके अन्तमें जन्मसे उत्पन्न आवर्त्त (दक्षिणावर्त्त रोमावली) अशुभ माना गया है ॥११७॥ स्त्रियोंके वामभागमें होनेपर भी आवर्त्त संहारवृत्तिके सूचक होते हैं। उत्तम ललाटमें भी आवर्त शुभ-सूचक नहीं होते हैं। तथा दाहिने अंगमें तो जन्मजात आवर्त स्त्रियोंके अशुभ ही होते हैं ॥११८॥

देव, सर्प, नदी, पर्वत, वृक्ष, नक्षत्र, पक्षी, श्वपाक (चाण्डाल) दास, एवं भीष्म (भयकारी) संज्ञावाले नामोंकी धारक स्त्रीका भी परित्याग करे ॥११९॥ धरा (पृथिवी) धान्य, लता, गुल्म, सिंह, व्याघ्र और फलोंके नामवाली स्त्रीका भी परित्याग करे, क्योंकि उक्त प्रकारके नामोंको धारण करनेवाली स्त्री दोपयुक्त और स्वच्छन्द आचरण-प्रिय (व्यभिचारिणी) और स्वेच्छाचारिणी होती है ॥१२०॥ अविज्ञात कन्याकी परीक्षा किये बिना कदाचित् भी स्पर्श न करे। क्योंकि ऐसी अज्ञात या अपरिचित कन्याएँ कभी-कभी विष-निर्मित योगोंके द्वारा स्पर्श करनेवाले पुरुषोंको मार डालती हैं ॥१२१॥ महाऔषधियोंके प्रयोगसे कन्या विषमयी बना दी जाती है, ऐसा वात्स्यायन शास्त्र आदिमें सुना जाता है और उसे निम्नोक्त विष-प्रदर्शक लक्षणोंसे जान लेना चाहिए ॥१२२॥

अब उन लक्षणोंको कहते हैं—जिसके शिरके केशोंके ऊपर ओढ़े हुए वस्त्रके स्पर्शसे फूल-मालाएँ मुरझा जाती हैं, जिसके स्नानके जलमें बहुतसे छोटे-छोटे जन्तु मर जाते हैं, जिसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म्रियन्ते मत्कुणास्तल्पे तथा यूकास्तु वाससि। वातश्लेष्मव्यथामुक्ता या च पित्तोदयान्विता ॥१२४
भौमार्कशनिवाराणां वारः कोऽपि भवेद्यदि। तथाश्लेषाशतभिषक्कृत्तिकानां च भं यदि ॥१२५
द्वादशी वा द्वितीया वा सप्तमी वा तिथिर्यदि। ततस्तत्र सुता जाता कीर्त्यते विषकन्यका ॥१२६
गुरुशिष्यसुहृत्स्वामिस्वजनाङ्गनया सह। मातृजामि (?) सुतात्वेन व्यवहर्त्तव्यमुत्तमैः ॥१२७
सम्बन्धिनी कुमारी च लिङ्गिनी शरणागता। वर्णाधिका च पूज्यत्वसङ्कल्पेन विलोक्यते ॥१२८
सदोषां बहुलोमां च बहुग्रामान्तरप्रियाम्। अनीप्सितसमाचारां चञ्चलां च रजस्वलाम् ॥१२९
अशौचां हीनवर्णां चातिवृद्धां कौतुकप्रियाम्। अनिष्टां स्वजनद्विष्टां सगर्भां नाश्रयेत् स्त्रियम् ॥१३०
परस्त्री विधवा भर्त्रा त्यक्ता त्यक्तव्रतापि च। राजकुलप्रतिबद्धा संत्याज्या यत्नतो बुधैः ॥१३१
दुर्गा-दुर्गतिदूतीषु वैरचित्रकभित्तिषु। साधुवादद्रुशस्त्रीषु परस्त्रीषु रमेत कः ॥१३२
जगत्समक्षं स्त्रीपुंसे विवाहे दक्षिणं करम्। अन्योन्यव्यभिचाराय दत्तं किल परस्परम् ॥१३३
ततो व्यभिचरतौ तौ निजपुण्यं विलुम्पतः। अन्योन्यघातकौ स्यातां परस्त्रीपुङ्गवावपि ॥१३४
बाला लेखनकैः कालैर्दत्तैर्दयफलाशनैः। मोदते यौवनस्था तु वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥१३५

शय्यापर मत्कुण (खटमल) मर जाते हैं, तथा जिसके वस्त्र पर यूक (जूं) मर जाते हैं, जो वात और कफ-जनित व्याधियोंसे मुक्त रहती है, और जो पित्तके उदयसे संयुक्त रहती है. मंगल, रवि और शनिवारमेंसे यदि कोई दिन हो, तथा आश्लेषा, शतभिषा और कृतिका नक्षत्र उसदिन हो, तथा द्वादशी, द्वितीय या सप्तमी तिथि हो, ऐसे बार, नक्षत्र और तिथिके योगमें जो उत्पन्न हुई हो तो वह विष कन्या कहीं जाती है, ऐसा जानना चाहिए ॥१२३-१२६॥

गुरु, शिष्य, मित्र, स्वामी और स्वकुटुम्बी जनोंकी स्त्रियोंके साथ यथा सम्भव माता, बहिन और पुत्रीके रूपमें उत्तम जनोंको व्यवहार करना चाहिए ॥१२७॥ अपने रिश्तेदारीसे सम्बन्ध रखने वाली स्त्रीको, कुमारी कन्याको, तापस वेष धारिणीको, शरणमें आई हुई को और अपने वर्णसे ऊँचे वर्ण वाली स्त्रीको पूज्यपनेके भावसे देखना चाहिए ॥१२८॥ सदोष स्त्रीका, बहुत लोम-वाली स्त्रीका, अन्य अनेक ग्रामवालोंको प्रिय स्त्रीका, अनिच्छित आचरण करने वाली, चंचल स्वभाववाली, रजस्वला, अशौचवती, हीनवर्णवाली, अतिवृद्धा, कौतुक प्रिय स्त्रीका, अनिष्ट करने वाली एवं स्वजनोंसे द्वेष करने वाली स्त्रीका तथा गर्भिणी स्त्रीका कभी आश्रय नहीं लेना चाहिए ॥१२९-१३०॥ परायी स्त्री, विधवा, पतिद्वारा छोड़ी हुई, व्रतोंका परित्याग करने वाली और राजकुलसे संबद्ध स्त्रोका ज्ञानी जनोंको प्रयत्न पूर्वक परित्याग करना चाहिए ॥१३१॥ जो दुष्ट स्वभाववाली है, दुर्गतिमें ले जानेके लिए दूतीका काम करती है, ऐसी स्त्रियोंमें, तथा बैर रखनेवालोंकी स्त्रियोंमें चित्र-लिखित एवं भित्तियोंमें उत्कीर्ण या चित्रित स्त्री-चित्रोंमें, साधुवाद अर्थात् प्रशंसाके योग्य कार्यसे द्रोह करनेवाली और शस्त्र-धारण करनेवाले पुरुषोंकी स्त्रियोंमें तथा पर-स्त्रियोंमें कौन बुद्धिमान् रमण करेगा ? कोई भी नहीं ॥१३२॥ विवाहके अवसरपर लोगों-के समक्ष जिस स्त्री-पुरुषका दाहिना हाथ परस्पर एक दूसरेके साथ काम-सेवनके लिए दिया गया है, वे दोनों यदि परस्त्री या पर पुरुषके साथ व्यभिचार करते हैं तो वे अपने पुण्यका ही विलोप करते हैं, वे दोनों परस्पर एक दूसरेके घातक हैं और उन्हें परस्त्री और परपुरुषके सेवनमें शिरोमणि जानना चाहिए ॥१३३-१३४॥

बाला स्त्री समयपर दी गई लिखने-पढ़ने और खेलनेकी वस्तुओंसे, तथा दिये गये फलोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृष्यन्मध्यवया प्रौढरतिक्रीडासु कौशलैः । वृद्धा तु मधुरालापैर्गौरवेण च रज्यते ॥१३६
षोडशाब्दा भवेद् बाला त्रिंशताद्भुतयौवना । पञ्च-पञ्चाशता मध्या वृद्धा स्त्री तदनन्तरम् ॥१३७
पद्मिनी चित्रिणी चैव शङ्खिनी हस्तिनी तथा । तत्तदिष्टविधानेनानुकूला स्त्री विचक्षणैः ॥१३८
आसने चाथ शय्यायां जीवांशे विनियोजिता । जायन्ते नियतं वश्याः कामिभ्यो नात्र संशयः ॥१३९
न ज्वरवती तृप्यत्यश्लथाङ्गी पथि विक्लवा । मासैकप्रसवा नारी काम्या षण्मासगर्भिणी ॥१४०
वृक्षाद् वृक्षान्तरं गच्छन् प्राज्ञैश्चिन्त्योऽत्र वानरः । मनो यत्र स्मरस्तत्र ज्ञानं वश्यङ्करं ह्यदा ॥१४१
कम्पननर्तनहास्याश्रुमोक्षप्रोच्चैः स्वरादिकम् । प्रमदा सुरतोन्मत्ता कुरुते तत्र निःस्पृहा ॥१४२
रतान्ते श्रूयतेऽकस्माद् घण्टानादस्तु नुच्छिदः । येन तस्यैव पञ्चत्वं पञ्चमासान्तरे भवेत् ॥१४३
पक्षान्निदाघे हेमन्ते नित्यमन्यर्तुषु त्र्यहात् । स्त्रियं कामयमानस्य जायते न बलक्षयः ॥१४४

भक्षणसे प्रसन्न होती है, युवावस्थावाली स्त्री वस्त्र और आभूषण आदिसे प्रमुदित होती है। मध्य अवस्था वाली स्त्री प्रौढ़ रति-क्रियाओंमें कौशलोंसे आनन्दित होती है और वृद्धा स्त्री मधुर वचनालापोंसे तथा गौरव-प्रदान करनेसे अनुरंजित होती है ॥१३५-१३६॥ सोलह वर्ष तककी स्त्री बाला कहलाती है, तीस वर्ष तककी स्त्री अद्भुत यौवन वाली युवती कहलाती है, पचवन वर्ष तककी आयुवाली स्त्री मध्य-अवस्थावाली कहलाती है और उसके अनन्तर आयुवाली स्त्री वृद्धा कही जाती है ॥१३७॥

स्त्रियाँ चार प्रकारकी होती हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी। विचक्षण पुरुष उक्त प्रकारकी स्त्रीकी उस उसके योग्य इष्ट विधानसे अपनेमें अनुरक्त करते हैं। विशेषार्थ—पद्मिनी स्त्रीके केश सघन, स्तन गोल एवं दन्त छोटे और शोभायुक्त होते हैं। चित्रिणी स्त्रीके केश कुटिल वक्र, स्तन सम, और दन्त भी सम होते हैं। शंखिनी स्त्रीके केश दीर्घ, स्तन दीर्घ (लम्बे) और दन्त भी दीर्घ होते हैं। हस्तिनी स्त्रीके केश अल्प (विरल) स्तन विकट और दन्त उन्नत होते हैं। पद्मिनीके शब्द हंसके समान, हस्तिनीके हाथीके समान, शंखिनीके रूक्ष और चित्रिणी के काक-समान होते हैं। पद्मिनीकी शारीरिक गन्ध कमलके समान हस्तिनीकी हाथीके समान, शंखिनीकी क्षार-समान और चित्रिणी की गन्ध शून्य होती है ॥१३८॥

आसन और शय्यापर काम-कुतूहलोंके द्वारा मैथुन-सेवनमें विनियोजित स्त्रियाँ नियत रूपसे अपने अधीन होती हैं, इनमें संशय नहीं है ॥१३९॥ ज्वरवाली स्त्री, शिथिल अंगवाली, मार्गमें थकानसे विकल चित्तवाली, एक मासकी प्रसूतिवाली और छह मासके गर्भवाली स्त्री कामना की जाने पर भी तृप्त नहीं होती हैं, अतएव उनके साथ काम-सेवन नहीं करना चाहिए ॥१४०॥

जैसे एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर जाता हुआ वानर चंचल होता है उसी प्रकार कामासक्त मन भी अति चंचल होता है। उसे वशमें करनेवाला एकमात्र ज्ञान ही है ॥१४१॥ काम-सेवनमें निःस्पृह भी प्रमदा स्त्री शरीर-कम्पन, नर्तन, हास्य, अश्रु-पात और उच्च स्वरादिकसे सुरत-सेवन के लिए उन्मत्त कर दी जाती हैं ॥१४२॥ यदि स्त्री-रमणके अन्तमें अकस्माद् घण्टाका शब्द सुनाई देता है, तो उससे उसी व्यक्तिका मरण पाँच मासके भीतर होगा, ऐसा जानना चाहिए ॥१४३॥

ग्रीष्म ऋतुमें एक पक्षसे, हेमन्त ऋतुमें नित्य, तथा अन्य ऋतुओंमें तीन दिनसे स्त्रीकी कामना करनेवाले पुरुषका बल क्षीण नहीं होता है ॥१४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतीदं वात्स्यायनोक्तम् । वाग्भट्टस्त्वित्थमाह—

त्र्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षानिदाघयोः । सेवेत कामतः कामं हेमन्ते शिशिरे बली ॥१४५

अतीर्ष्यातिप्रसङ्गो निदानमत्यागमस्तथा ।
चत्वारोपि न कर्त्तव्या कामिभिः कामिनीजने ॥१४६

अतीर्ष्यातो हि रोषः स्यादुद्वेगोऽतिप्रसङ्गतः । लोभो निदानतः स्त्रीणामत्यागमादलज्जताम् ॥१४७
वितन्वती क्षुतं जृम्भां स्नान-पानाशनानि च । मूत्रकर्म च कुर्वाणां कुर्वेषां च रजस्वलाम् ॥१४८
तथान्यनरसंयुक्तां पश्येत्कामी न कामिनीम् । एवं हि मानसं तस्यां विरज्येतास्य निश्चितम् ॥१४९
अत्यालोकादनालोकात्तथाऽनलपनादपि । प्रवासमतिमानाच्च त्रुटचति प्रेम योषिताम् ॥१५०
न प्रीतिवचनं वत्ते नालोकयति सुन्दरम् । उक्ता धत्ते क्रुधं द्वेषन्मित्रद्वेषं करोत्यलम् ॥१५१
विरहे हृष्यति व्याजादीर्ष्यामपि करोति च । योगे सीदति सा बाधवदनं मोटचत्यथ ॥१५२
शेते शय्यागता शीघ्रं स्पर्शादुद्विज्यते तराम् । कृतं किमपि न स्तौति विरक्तं लक्षणं स्त्रियः ॥१५३
विश्रम्भोक्ति पुमालम्भमाङ्गिकं वैकृतं तथा । रतक्रीडां च कामिन्यां नापरां तु प्रकाशयेत् ॥१५४
कामिन्या वीक्ष्यमाणाया जुगुप्साजनकं बुधः । श्लेष्मक्षेपादि नो कुर्याद् विरज्येत तथा हि सा ॥१५५

यह वात्स्यायनने कहा है । किन्तु वाग्भट्टने तो इस प्रकारसे कहा है—

वसन्त और शरद् ऋतुमें तीन दिनसे, वर्षा और ग्रीष्म ऋतुमें एक पक्षसे, काम-सेवन करे । किन्तु बलवान् पुरुष हेमन्त और शिशिर ऋतुमें अपनी कामेच्छाके अनुसार स्त्रीका सेवन करे ॥१४५॥

अति ईर्ष्या, अति प्रसंग, निदान और अति समागम ये चार कार्य कामिनी स्त्रीजनमें कामी पुरुषोंको नहीं करना चाहिए ॥१४६॥ क्योंकि अति ईर्ष्यासे स्त्रियोंमें रोष प्रकट होता है, अति प्रसंगसे उद्वेग पैदा होता है, निदानसे लोभ जागता है और अति समागमसे निर्लज्जता आती है ॥१४७॥ छींकती हुई जम्भाई लेती हुई, स्नान करती हुई, खान-पान करती हुई, मूत्र-विमोचन करती हुई स्त्रीको, रजस्वलाको तथा अन्य पुरुषसे संयुक्त कामिनी स्त्रीको पुरुष कभी नहीं देखे । क्योंकि ऐसी दशाओंमें कामी पुरुषके देखने पर उसका मन उस स्त्रीमें विरक्त हो जायगा, यह निश्चित है ॥ ४८-१४९॥ स्त्रियोंको अधिक देखनेसे, अथवा सर्वथा नहीं देखनेसे, वार्तालाप नहीं करनेसे, प्रवास करनेसे और अतिमानसे स्त्रियोंका प्रेम टूट जाता है ॥१५०॥

विरक्त स्त्रियोंके ये लक्षण जानना चाहिए—बोलनेपर भी प्रेमयुक्त वचन नहीं बोलती है, हर्ष-पूर्वक अच्छी तरहसे नहीं देखती है, कुछ कहनेपर क्रोधको धारण करती है, अपनेसे द्वेष करती हुई अपने मित्रोंके साथ भी बहुत अधिक द्वेष करती है, अपने विरह-कालमें हर्षित होती है और छलसे ईर्ष्या भी करती है, अपना संयोग होनेपर अवसादको प्राप्त होती हुई अपने मुखको मोड़ लेती है, अपनी शय्यापर आते ही शीघ्र सो जाती है, स्पर्श करनेसे अत्यधिक उद्वेगको प्राप्त होती है और अपने द्वारा किये गये उत्तम कार्यकी कुछ भी प्रशंसा नहीं करती हैं । ये सब विरक्त स्त्रीके लक्षण हैं ॥१५१-१५३॥ स्त्रियोंकी विश्वास-पूर्वक कही हुई बातको, पुरुषोंके साथ किये गये उपालम्भको, शारीरिक विकृतिको और रति-क्रीड़ाको अन्य स्त्रीके सामने प्रकाशित नहीं करना चाहिए ॥१५४॥ अपनी ओर देखती हुई कामिनीके सम्मुख ग्लानि-जनक कफ-क्षेपणादि कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ कुलस्त्रीणां धर्मः—

दत्ता या कन्यका यस्मै माता भ्राता पिताथवा। देवतेव तया पूज्यो गतसर्वगुणोऽपि सः ॥१५६

पितृभर्तृसुतैर्नार्यो बाल्ययौवनवार्धके। रक्षणीया प्रयत्नेन कलङ्कः स्यात्कुलोऽन्यथा ॥१५७

दक्षा तुष्टा प्रियालापा पतिचित्तानुगामिनी।
कालौचित्याद् व्ययकरी सा स्त्री लक्ष्मीरिवापरा ॥१५८

स्वपयेद्दयिते शेते तस्मात्पूर्वं विबुध्यते। भुक्ते भुक्तवति ज्ञाते सक्रुद्या स्त्रीमतल्लिका ॥१५९

न कुत्सयेद्वरं बाला श्वसुरप्रमुखांश्च या। ताम्बूलमपि नादत्ते दत्तमन्येन सोत्तमा ॥१६०

न गन्तव्यमुत्सवे···· चत्वरे पश्चि···· ····। देवयात्राकथास्थाने न तथा रङ्गजागरे ॥१६१

या दृष्ट्वा पतिमायान्तमभ्युत्तिष्ठति सम्भ्रमात्।
तत्पादन्यस्तदृष्टिश्च दत्ते तस्य मनः स्वयम् ॥१६२

भाषिता तेन सव्रीडं नम्रीभवति तत्क्षणात्। स्वयं सविनयं तस्य परिचर्या करोति च ॥१६३

निर्व्याजहृदया पत्युः श्वश्रूषु व्यक्तिभक्तिभाक्। सदा नम्रानना नृणां बद्धस्नेहा च बन्धुषु ॥१६४

सपत्नीष्वपि सम्प्रीतिः परिचितेष्वतिवत्सला। सनर्मपेशलालापा कामितुर्मित्रमण्डले ॥१६५

या च ते द्वेषिषु द्वेषा सक्लेशकलुषाशया।
गृहश्रीरिव सा साक्षाद् गृहिणी गृहमेधिनः ॥१६६॥ कुलकम्।

नहीं करना चाहिए। क्योंकि वैसा करनेपर वह विरक्त हो जाती है ॥१५५॥

अब कुल-बधुओंका धर्म कहते हैं—जिस पुरुषके लिए माता, पिता अथवा भाईने कन्याको दिया है, अर्थात् विवाह किया है, उसे वह पुरुष देवताके समान पूजना चाहिए, भले ही वह पतिके योग्य सर्वगुणोंसे रहित ही हो ॥१५६॥ बाल्यकालमें स्त्रियोंकी रक्षा पिताओंको, यौवनकालमें भाइयोंको और वृद्धावस्थामें पुत्रोंको प्रयत्न-पूर्वक करनी चाहिए, अन्यथा कुल कलंकित हो जाता है ॥१५७॥ वह स्त्री साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान है जो चतुर हो, सन्तुष्ट रहती हो, प्रिय वचन बोलती हो, पतिके चित्तके अनुसार कार्य करती हो और योग्य समयका ध्यान रखकर धन-व्यय करती हो ॥१५८॥ जो पतिके सो जानेपर पीछे सोती है और पतिसे पहिले जाग जाती है तथा पतिने भोजनकर लिया हैं, यह ज्ञात होनेपर पीछे स्वयं भोजन करती है, वह स्त्री सर्व स्त्रियोंमें शिरोमणि है ॥१५९॥ जो स्त्री पतिसे घृणा नहीं करती है और श्वसुर आदि गृहके प्रमुखजनोंके साथ भी ग्लानि नहीं करती है, तथा अन्य पुरुषके द्वारा दिये गये ताम्बूलको भी ग्रहण नहीं करती है, वह उत्तम स्त्री कहलाती है ॥१६०॥ कुलवधूको अकेले किसी उत्सव, मेला आदिमें नहीं जाना चाहिए, चौराहोंपर भी नहीं जावे, देवयात्रा, कथा-स्थानक तथा रात्रिके रंगोत्सवके जागरणमें भी अकेले नहीं जाना चाहिए ॥१६१॥ जो पतिको आता हुआ देखकर हर्षसे उठ खड़ी होती है। उसके आनेपर उसके चरणोंपर अपनी दृष्टि रखती है, उसके मनकी वस्तु स्वयं देती है, पतिके द्वारा बोली जानेपर सलज्जित होकर तत्काल विनम्र हो जाती है और स्वयं ही विनय-पूर्वक उसकी यथोचित परिचर्या करती है, छल-कपटसे रहित हृदयसे पतिकी माता आदि वृद्धाजनोंकी व्यक्तरूपसे भक्ति करती है, मनुष्योंके आगे सदा विनम्र मुख रहती है, अपने कुटुम्बी बन्धुजनोंपर गाढ़ स्नेह रखती है, अपनी सौतोंपर भी उत्तम प्रीति रखती है परिचित जनोंपर अतिवात्सल्यभाव धारण करती है, पतिके मित्र-मण्डलपर लज्जाके साथ कोमल मधुर वार्तालाप करती है और जो पतिके द्वेषी जनोंपर क्लेश-युक्त कलुषित चित्त होकर

८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निषिद्धं हि कुलस्त्रीणां गृहाद् द्वार-निषेवणम् । वीक्षणं नाटकादीनां गवाक्षावस्थिति स्तथा ॥१६७
अङ्गप्रकटनं क्रीडां कौतुकं जल्पनं परैः । कर्मणा शीघ्रयातं च कुलस्त्रीणां न युज्यते ॥१६८
अङ्गप्रक्षालनाभ्यङ्गमर्दनाद्वर्तनोदिकम् । कदाचित्पुरुषैर्नैव कारयेयुः कुलस्त्रियः ॥१६९

लिङ्गिन्या वेश्यया दास्या स्वैरिण्या कारकस्त्रिया ।
युज्यते नैव सम्पर्कः कदाचित् कुलयोषिताम् ॥१७०
मङ्गलाय कियांस्तन्व्याऽलङ्कारो धार्य एव हि ।
प्रवासे प्रेयसि स्थानं युक्तं श्वश्र्वादिसन्निधौ ॥१७१

कोपोऽन्यवेश्मसंस्थानं सम्पर्को लिङ्गिभिस्तथा । उद्यानगमनं पत्युः प्रवासे दूषणं स्त्रियः ॥१७२
अञ्जनं भूषणं गानं नृत्यदर्शनमार्जनम् । धर्मक्षेपं च सारादिक्रीडां चित्रादिदर्शनम् ॥१७३

अङ्गरागं च ताम्बूलं मधुरं-द्रव्य-भोजनम् ।
प्रोषिते प्रेयसि प्रीतिप्रदमन्यच्च सन्त्यजेत् ॥१७४॥ (युग्मम्)

सदैव वस्तुनः स्पर्शं रजन्यां तु विशेषतः । सन्ध्याटनमुडुप्रेक्षा धातुपात्रे च भोजनम् ॥१७५

माल्याञ्जने दिनस्वापं दन्तकाष्ठं विलेपनम् ।
स्नानं पुष्टाशनादर्शालोकं मुञ्चेद् रजस्वला ॥१७६॥ युग्मम् ।

द्वेषभाव रखती है, वह गृहिणी गृहस्थ पुरुषकी साक्षात् दूसरी गृह-लक्ष्मीके समान है ॥१६२-१६६॥

कुलीन स्त्रियोंका घरसे बाहिरके द्वारपर बैठना निषिद्ध है, नाटक आदिका देखना, तथा खिड़की आदिमें बैठकर बाहिरकी ओर झांकना, दूसरोंके सामने अपने अंगोंका प्रकट करना, क्रीड़ा करना, कौतुक-हास करना, दूसरोंके साथ बोलना और कार्यसे शीघ्र जाना भी कुलीन स्त्रियोंके योग्य नहीं है ॥१६७-१६८॥ कुलीन स्त्रियोंको पर-पुरुषोंके द्वारा अपने अंगका प्रक्षालन उवटन-तैल-मर्दन, मालिश आदि कदाचित् भी नहीं कराना चाहिए ॥१६९॥ वेष-धारिणी स्त्रीके साथ, वेश्या, दासी, व्यभिचारिणी और व्यभिचार करानेवाली स्त्रीके साथ कुलीन स्त्रियोंका सम्पर्क करना कभी भी योग्य नहीं है ॥१७०॥ विवाहिता कुलवधूको मंगलके लिए कितना ही अलंकार धारण ही करना चाहिए। तथा पतिके प्रवासमें जानेपर सासु आदिके समीप अवस्थान करना चाहिए ॥१७१॥

पतिके प्रवासकालमें कोप करना, अन्यके घरमें रहना, वेष-धारिणी स्त्रियोंके साथ सम्पर्क रखना और उद्यान आदिमें जाना ये सब स्त्रीके दूषण हैं ॥१७२॥ पतिके परदेशमें रहते समय आँखोंमें अंजन लगाना, आभूषण पहिरना, गान करना, नृत्य देखना, शरीरका रगड़-रगड़करके प्रमार्जन करना, धर्म-कार्यमें हस्तक्षेप करना, शतरंज-गोट आदि खेलना, चित्र आदिका देखना, शरीरका चन्दनादिसे विलेपन करना, पान खाना, मधुर मिष्ट भोज्य द्रव्योंका भोजन करना एवं इसी प्रकारके अन्य प्रीत्ति-प्रदान करनेवाले कार्य कुलीन स्त्रीको सर्वथा छोड़ना चाहिए ॥१७३-१७४॥

दिनके समय सदा ही सभी वस्तुओंका स्पर्श करना, और रात्रिके समय तो विशेषरूपसे स्पर्श करना, सन्ध्याके समय इधर-उधर घूमना, नक्षत्रोंका देखना, धातुके पात्रमें भोजन करना, माला धारण करना, नेत्रोंमें अंजन लगाना, दिनमें सोना, लकड़ीकी दातुन करना, विलेपन करना, स्नान करना, पौष्टिक भोजन करना और दर्पणमें मुखको देखना, ये सर्व कार्य रजस्वला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मृत्तिकाकाष्ठपाषाणपात्रेऽश्नीयाद् रजस्वला। देवस्थाने सकृद्-गोष्ठरजःषु न रजः क्षिपेत् ॥१७७
स्नात्वैकान्ते चतुर्थेऽह्नि वर्जयेदन्यदर्शनम्। सुभृङ्गारा स्वभर्तारं सेवेत कृतमङ्गला ॥१७८

निशा षोडश नारीणामृतुः स्यात्तासु चादिमाः।
तिस्रः सर्वैरपि त्याज्याः प्रोक्ता तुर्यापि केनचित् ॥१७९

उक्तं च—

चतुर्थ्यां जायते पुत्रः स्वल्पायुर्गुणवर्जितः। विद्याचारपरिभ्रष्टो दरिद्रः क्लेशभाजनः ॥१८०
समायां निशि पुत्रः स्याद् विषमायां तु पुत्रिका। स्त्रीणामृतुरते कार्यं न च दन्तनखक्षतम् ॥१८१
दिवा कार्यो न सम्भोगः सुधिया पुत्रमिच्छता। दिवासम्भोगतः पुत्रो जायते ह्यबलांशकः ॥१८२
पुत्रार्थमेव सम्भोगः शिष्टाचारवतां मतः। ऋतुस्नाता पवित्राङ्गी गम्या नारी नरोत्तमैः ॥१८३
अन्यो व्यसनिनां कामः स च धर्मार्थबाधकः। सद्भिः पुनः स्त्रियः सेव्याः परस्परमबाधया ॥१८४
ऋतावेव ध्रुवं सेव्या नारी स्यान्मैथुनोचिता। सेव्या पुत्रार्थमापञ्चपञ्चाशद्वत्सरं पुनः १८५
बलक्षयो भवेदूर्ध्वं वर्षेभ्यः पञ्चसप्ततेः। स्त्री-पुम्सयोर्न च युक्तं तन्मैथुनं तदनन्तरम् ॥१८६
स्त्रियां षोडशवर्षायां पञ्चविंशतिहायनः। बुद्धिमानुद्यमं कुर्याद् विशिष्टसुतकाम्यया ॥१८७

स्त्रीको छोड़ना चाहिए ॥१७५-१७६॥ रजस्वला स्त्रीको मिट्टी, काष्ठ या पाषाणके पात्रमें भोजन करना चाहिए, देवस्थानमें, मल-मूत्र विसर्जनके स्थानपर, गायोंके बैठनेके स्थानपर और धूलिपर अपना रज-रक्त नहीं फेंकना चाहिए। चौथे दिन एकान्तमें स्नान करके अन्य पुरुषका दर्शन न करे किन्तु उत्तम शृङ्गार करके मांगलिक कार्यकर अपने पतिका सेवन करे ॥१७५-१७८॥ स्त्रियोंके रजःस्रावसे लगाकर सोलह रात्रियाँ ऋतुकाल कहलाता है। उनमें आदिकी तीन रात्रियाँ तो सभी जनोंके त्याज्य हैं। कोई-कोई विद्वान्‌ने चौथी रात्रि भी त्यागनेके योग्य कही है ॥१७९॥

कहा भी है—ऋतुमती स्त्रीके साथ चौथी रात्रिमें समागम करनेसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र अत्यल्प आयुका धारक, गुणोंसे रहित, विद्या एवं आचारसे भ्रष्ट दरिद्र और दुखोंको भोगने वाला होता है ॥१८०॥

ऋतु धर्म होनेके पश्चात् चौथी, छठी आदि सम संख्यावाली रात्रिमें समागम करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है और पाँचवीं, सातवीं आदि विषम सख्यावाली रात्रिमें समागम करनेसे पुत्री उत्पन्न होती है। स्त्रियोंके ऋतुकालमें दन्तक्षत और नखक्षत नहीं करना चाहिए ॥१८१॥ पुत्रके उत्पन्न करनेकी इच्छावाले बुद्धिमान् पुरुषको दिनमें स्त्री-संभोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि दिन में संभोग करनेसे निर्बल वीर्यका धारक पुत्र पैदा होता है ॥१८२॥ शिष्ट आचारवाले मनुष्योंका स्त्री-संभोग पुत्रके लिए ही माना गया है। उत्तम पुरुषोंको ऋतुकालमें स्नान की हुई पवित्र शरीरवाली नारी ही गमन करनेके योग्य होती है ॥१८३॥

व्यसनी पुरुषोंका अन्यकालमें काम-सेवन धर्म और अर्थका बाधक होता है। इसलिए सत्पुरुषोंको परस्परकी बाधा-रहित स्त्रियोंका सेवन करना चाहिए ॥१८४॥ मैथुन-सेवनके उचित नारी ऋतुकालमें ही निश्चयसे सेवन करनेके योग्य होती है। पचवन वर्ष तक की आयुवाली स्त्री पुत्रोत्पत्तिके लिए सेवन करनेके योग्य है ॥१८५॥ इससे आगे पचहत्तर वर्ष तक की आयु-वाली स्त्रीका सेवन करनेसे पुरुषके बलका क्षय होता है। इसलिए पचवन वर्षके अनन्तर स्त्री और पुरुषका मैथुन-सेवन करना युक्त नहीं है ॥१८६॥ सोलह वर्षकी स्त्रीमें पच्चीस वर्षका बुद्धि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा हि प्राप्तवीर्यौ तौ सुतं जनयतः परम् । आयुर्बलसमायुक्तं सर्वेन्द्रियसमन्वितम् ॥१८८
न्यूनषोडशवर्षायां न्यूनाब्दपञ्चविंशतेः । पुमान् यं जनवेद् गर्भं स गर्भः स्वल्पजीवितः १८९
अल्पायुर्बलहीनो वा दरिद्रोऽपद्रुतोऽथवा । कुष्टादिरोगी यदि वा भवेद्वा विकलेन्द्रियः ॥१९०
प्रशस्तचित्त एकान्ते भजेन्नारीं नरो यदि । यादृग्मनः पिता धत्ते पुत्रस्तत्सहजो भवेत् ॥१९१
भजेन्नारीं शुचिः प्रीतः श्रीखण्डादिभिरुन्मदः । अश्राद्धभोजी तृष्णादिबाधया परिवर्जितः ॥१९२
सविभ्रमवचोभिश्च पूर्वमुल्लास्य वल्लभाम् । समकाले पतेन्मूलकमले क्रोडरेतसम् ॥१९३
पुत्रार्थं रमयेद् धीमान् वहेद्दक्षिणनासिकः । प्रवहद्वामनाडीस्तु कामयेतान्यदा पुनः ॥१९४॥ (युग्मम्)
गर्भाधाने मघा वर्ज्या रेवत्यपि यतोऽनयोः । पुत्रजन्मदिने मूलाश्लेषयुते च दुःखदः ॥१९५
रत्नानीव प्रसन्नेऽह्नि जाताः स्युः सूनवः शुभाः । अतो मूलमपि त्याज्यं गर्भाधाने शुभार्थिभिः ॥१९६
आधानाद्दशमे जन्म दशमे कर्म नामभाक् । कर्म भात्पञ्चमे मृत्युं कुर्यादेषु न किञ्चन ॥१९७
पापषट्त्र्यापगा सौम्यास्तनुत्रिकोणकेन्द्रगाः । स्त्रीसेवासमये सौम्ययुक्ता दुःपुत्रजन्मदाः ॥१९८

मान् पुरुष विशिष्ट गुणयुक्त पुत्र उत्पन्न करने की कामनासे उद्यम करे ॥१८७॥ इस प्रकारसे परिपक्व वीर्यको प्राप्त स्त्री और पुरुष आयुर्बलसे संयुक्त और सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे सम्पन्न उत्तम पुत्रको उत्पन्न करते हैं ॥१८८॥ सोलह वर्षसे कम आयुवाली स्त्रीमें पच्चीस-वर्षसे हीन आयुवाला पुरुष जिस गर्भको उत्पन्न करता है, वह गर्भ अल्प जीवनवाला होता है ॥१८९॥ अपरिपक्व रज-वीर्यवाले स्त्री पुरुष जिस पुत्रको उत्पन्न करते हैं, वह अल्पायु, बलहीन, दरिद्र, और रोगोंसे पीड़ित रहता है। अथवा कोढ़ आदि रोगवाला या विकल इन्द्रियोंका धारक होता है ॥१९०॥

प्रसन्न एवं उत्तम चित्तवाला पुरुष यदि एकान्तमें स्त्रीका सेवन करे तो पिता जैसा मन रखता है, वैसे ही मनवाला पुत्र सहज ही उत्पन्न होगा ॥१९१॥ पवित्र शरीर और प्रीतियुक्त पुरुष श्रीखण्ड आदिके सेवनसे मदमस्त होकर स्त्रीका सेवन करे। स्त्री-समागमके दिन उसे श्राद्ध भोजन नहीं करना चाहिए और तृष्णा आदिकी बाधासे परिवर्जित होना चाहिए ॥१९२॥ हास-विलासयुक्त वचनोंके द्वारा प्राण-वल्लभाको पहिले उल्लासयुक्त करके एक साथ समान कालमें स्त्रोके मूलकमलमें वीर्यपात करना चाहिए ॥१९३॥ नासिकाका दक्षिण स्वर चलते हुए बुद्धिमान् पुरुष पुत्रके लिए स्त्रीका रमण करे। अन्यथा अन्य समय वाम स्वरके चलते हुए स्त्रीका सेवन करे ॥१९४॥

गर्भाधानके समय मघा ओर रेवती नक्षत्रका वर्जन करे, क्योंकि इन दोनों नक्षत्रोंमें, तथा मूल और आश्लेषायुक्त दिनमें पुत्रका जन्म दुःखदायी होता है ॥१९५॥ प्रसन्न दिनमें अर्थात् नक्षत्रादि-दोषसे रहित दिनमें उत्पन्न हुए पुत्र रत्नोंके समान शुभ लक्षणवाले और कल्याणकारक होते हैं। इसलिए अपना शुभ चाहनेवाले पुरुषोंको गर्भाधानमें मूलनक्षत्र भी त्यागनेके योग्य है ॥१९६॥

गर्भाधानके दशवें मासमें सन्तानका जन्म होता है। तदनुसार दशवें दिन नाम-संस्कार करना चाहिए। जन्म दिनसे पाँच दिनके भीतर नाम-संस्कार करनेसे मृत्यु हो जाती है, इसलिए इन दिनोंमें संस्कारका कोई कार्य नहीं करना चाहिए ॥१९७॥ स्त्रीके गर्भाधानके समय लग्नसे तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें पाप-ग्रह गये हों और लग्न त्रिकोण, पंचम, नवम केन्द्रगत (१, ४, ७, १०) स्थानोंमें शुभ ग्रह गये हों तो ऐसे समयमें गर्भाधानसे खोटे पुत्रोंका जन्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराणे रजनीर्क्षाणि न वाक्-शुक्रसंक्षये। स्त्रीणां गर्भाशये जीवः स्वकर्मवशगो भवेत् ॥१९९
नारी रक्ताधिके शुक्रे नरः साम्यान्नपुंसकः। अतो वीर्याभिवृद्ध्यर्थं वृष्ययोगं पुमान् श्रयेत् ॥२००

वृष्यलक्षणमुक्तम्—

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं बृंहणं बलवर्धनम्। हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद् वृष्यमुच्यते ॥२०१
पितुः शुक्रं जनन्याश्च शोणितं कर्मयोगतः। आसाद्य कुरुते जीवः सद्यो वपुरुपक्रमम् ॥२०२
भवेदेतदहोरात्रैः सप्तभिः सप्तभिः क्रमात्। कलिलं चार्बुदश्चैव ततः पेशी ततो घनम् ॥२०३
प्रथमे मासि तत्तावत्कर्षान्नूनं तरलं भवेत्। द्वितीये ऽप्यधिकं किञ्चित्पूर्वस्मादथ जायते ॥२०४
जनन्या कुरुते गर्भस्तृतीये मासि दौहृदम्। गर्भानुभावतश्चैतदुत्पद्येत शुभाशुभम् ॥२०५

पुन्नाम्नि दौहृदे जाते पुमान् स्त्रीसञ्ज्ञके पुनः।
स्त्री क्लीवाह्वे पुनः क्लीवं स्वप्नेऽप्येवं विनिर्दिशेत् ॥२०६

अपूर्णदौहृदाद्वायुःकुपितोऽन्तःकलेवरम्। सद्यो विनाशयेद् गर्भं विरूपं कुरुतेऽथवा ॥२०७
मातुरङ्गानि तुर्ये तु मासे मांसलयेत्फलम्। पाणिपादशिरोऽङ्कूरा जायन्ते पञ्च पञ्चमे ॥२०८

होता है ॥१९८॥ पुराण अर्थात् गर्भाधान-काल बीतने पर गर्भाधानके नक्षत्रादि गुरु-शुक्रास्त आदि-का दोष नहीं माना जाता है, क्योंकि स्त्रियोंके गर्भाशयमें जीव अपने कर्मके वशवर्ती होकर उत्पन्न होता है ॥१९९॥ स्त्रीका रज (रक्त) अधिक होनेपर पुत्री उत्पन्न होती है, पुरुषका वीर्य अधिक होनेपर पुत्र पैदा होता है और दोनोंके रज और वीर्यकी समानतासे सन्तान नपुंसक होती है, अतः अपने वीर्यकी अभिवृद्धिके लिए पुरुष वृष्य (पौष्टिक वीर्य-वर्धक) योगोंका आश्रय लेवे। अर्थात् बाजीकरण औषधियोंका सेवन करे ॥२००॥

वृष्य पदार्थोंका लक्षण इस प्रकारसे कहा गया है—जो कोई वस्तु मधुर, स्निग्ध वीर्य-वर्धक एवं बलको बढ़ानेवाली है और जिसके सेवनसे मनको हर्ष उत्पन्न हो, वह सर्व वस्तु-योग्य वृष्य कहा जाता है ॥२०१॥ कर्मयोगसे पिताके वीर्यको और माताके रक्तको प्राप्त कर गर्भस्थ जीव शीघ्र ही अपने शरीरका उपक्रम करता है ॥२०२॥ यहाँ शरीरका उपक्रम सात-सात अहो-रात्रियोंके द्वारा क्रमसे पहिले कललरूप, पुनः अर्बुदरूप, पुनः पेशीरूप और पुनः घनरूप होता है ॥२०३॥ प्रथम मासमें वह शरीर-उपक्रम एक कर्ष (माप विशेष) से कुछ कम और तरल रहता है। द्वितीय मासमें पूर्वसे कुछ अधिक परिमाणवाला होता है ॥२०४॥ तीसरे मासमें गर्भ माताके दोहला उत्पन्न करता है। गर्भके प्रभावके अनुसार यह दोहला शुभ और अशुभ दोनों प्रकारका उत्पन्न होता है ॥२०५॥ भावार्थ—यदि सन्तान उत्तम उत्पन्न होनेवाली हो तो शुभ दोहला उत्पन्न होता है और यदि वह खोटी उत्पन्न होनेवाली हो, तो अशुभ दोहला उत्पन्न होता है। पुरुष-नामवाला दोहला होने पर पुत्र होता है, स्त्री-संज्ञक दोहला होने पर पुत्री उत्पन्न होती है और नपुंसक जातीय दोहला होने पर सन्तान नपुंसक उत्पन्न होती है। यही नियम गर्भाधानके समय आने-वाले स्वप्नके विषयमें भी कहना चाहिए ॥२०६॥

यदि माताके उत्पन्न हुए दोहलेको पूरा न किया जावे तो कुपित हुई वायु गर्भस्थ कलेवर का शीघ्र विनाश कर देती है, अथवा गर्भको विकृतरूप कर देती है ॥२०७॥ दोहलेके परिपूर्ण होने पर चौथे मासमें माताके अंग मांसलता (परिपुष्टता) रूप फलको प्राप्त होते हैं। पांचवें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठे रूपं चिनोत्युच्चैरात्मनः पित्तशोणिते । सप्तमे पूर्वमानात्तु पेशी पञ्चशती गुणाः ॥२०९
करोति नाडीप्रभवां नाडीसप्तशती तथा । नवसंख्यां पुनस्तत्र धमनी रचयत्यसौ ॥२१०
नाडी सप्तशतानि स्युर्विंशत्यूनानि योषिताम् । भवेयुः खण्डदेहे तु त्रिंशद्यूनानि तान्यपि ॥२११
नव श्रोतांसि पुंसां स्युरेकादश तु योषिताम् । दन्तस्थानानि कस्यापि द्वात्रिंशत्पुण्यशालिनः ॥२१२
सन्धीन् पृष्ठकरण्डस्य कुरुतेऽष्टादश स्फुटम् । प्रत्येकमन्त्रयुग्मं च व्यानपञ्चकमानकम् ॥२१३
करोति द्वादशाङ्गं च पांशुलीनां करण्डकाः । तथा पांशुलिकाषट्कं मध्यस्थः मूत्रधारवत् ॥२१४
लक्षाणां रोमकूपानां कुरुते कोटिमत्र च । अर्धं तुर्या रोमकोटीतिस्रस्तु श्मश्रुमूर्धजा ॥२१५
अष्टमे मासि निष्पन्नः प्रायः स्यात्सकलोऽप्यसौ । तथौजो रूपमाहारं गृह्णात्येष विशेषतः ॥२१६
गर्भे जीवो वसत्येवं वासराणां शतद्वयम् । अधिकं सप्तसप्तत्याबिवसाद्यैर्नतु ध्रुवम् ॥२१७
गर्भे त्वधोमुखो दुःखी जननीपृष्ठसम्मुखम् । यद्वीजलिर्ल्ललाटे च पच्यते जठराग्निना ॥२१८

असौ जागर्त्ति जागर्त्यां स्वपित्यां स्वपिति स्फुटम् ।
सुखिन्यां सुखवान् दुःखी दुःखवत्यां च मातरि ॥२१९

पुरुषो दक्षिणे कुक्षौ वामे स्त्री यमले द्वयोः । ज्ञेयमुदरमध्यस्थं नपुंसकमसंशयम् ॥२२०

मासमें दोनों हाथ, दोनों पाद और शिरके ये पांच अंकुर प्रकट होते हैं ॥२०८॥ छठे मासमें गर्भस्थ जीव अपने पित्त और रक्तके अनुसार रूपका संचय करता है। सातवें मासमें प्रथम मासके पूर्व प्रमाण मांस-पेशी पांच सौ गुणी हो जाती हैं ॥२०९॥ तथा इसी मासमें पूर्व नाड़ीसे उत्पन्न हुई नाड़ियाँ सात सौ गुणीकर देता है। पुनः वह उन्हींमें नौ संख्यावाली धमनियोंको रचता है ॥२१०॥ स्त्रियोंकी नाड़िया बीस कम सात सौ अर्थात् छह सौ अस्सो होती है। किसी स्त्रीके खण्डदेहमें वे तीस कम सात सौ अर्थात् छह सौ सत्तर भी होती हैं ॥२११॥

पुरुषोंके शरीरमें मल-प्रवाहक नौ स्रोत (द्वार) होते हैं और स्त्रियोंके शरीरमें दो स्तन-स्रोतोंके योगसे ग्यारह स्रोत होते हैं। तथा किसी ही पुण्यशाली पुरुषके बत्तीस दन्तस्थान अर्थात् दाँत होते हैं ॥२१२॥ पृष्ठ-करण्डकी स्पष्ट अठारह अस्थि सन्धियोंको गर्भस्थ जीव कर्मयोगसे रचता है। प्रत्येक अस्थि-सन्धि और दो आँतोंको पांच व्यान (वायुविशेष) प्रमाण करता है ॥२१३॥ तथा शरीरमें बारह पांशुलियों (पशुलियों) के (करण्डक) करता है और मध्यमें स्थित छह पांशुलिकाओंको मूत्रधारके समान निर्माण करता है ॥२१४॥ निर्माण नामकर्म इस शरीरमें लाखों रोमकूपोंकी कोटिको रचता है। सर्व रोम साढ़े तीन कोटि होते हैं। दाढ़ी, मूँछ और शिर इन तीनं स्थानों पर केश उत्पन्न होते हैं ॥२१५॥ आठवें मासमें यह शरीर प्रायः सम्पूर्ण सम्पन्न हो जाता है। इस मासमें यह जीव विशेष रूपसे ओज रूप आहारको ग्रहण करता है ॥२१६॥ इस प्रकार यह जीव गर्भसे सतहत्तर अधिक दोसौ दिन (२७७) निवास करता है। ध्रुव रूपसे यह नियम नहीं है, क्योंकि कोई-कोई जीव इससे कम दिन भी गर्भमें रहता है ॥२१७॥

गर्भमें यह जोव अधोमुख होकर माताकी पीठकी ओर मुख करके दुःखी रहता है। और ....ललाटमें जठराग्निसे पचता है ॥२१८॥ माताके जागने पर वह जागता है और माताके सोने पर वह भलीभाँतिसे सोता है। माताके सुखी रहने पर वह सुखी और दुःखी होने पर वह दुःखी होता है ॥२१९॥ स्त्रीकी दक्षिण कुक्षिमें पुत्र, वाम कुक्षिमें पुत्री और दोनों कुक्षियों में गर्भके प्रतीत होने पर युगल सन्तान उत्पन्न होती है। यदि गर्भस्थ जीव उदरमें स्थित प्रतीत हो तो निःसन्देह नपुंसक जानना चाहिए ॥२२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गण्डान्तमूलमश्लेषा ऋक्षस्थानगमा ग्रहाः । कुदिनं मातृदुःखं च न स्युर्भाग्यवतां जनौ ॥२२१
पितुर्मातुर्धनस्य स्यान्नाशो यां त्रितयं क्रमात् । शुभो मूलतुर्येऽङ्घ्रिरश्लेषाया व्यतिक्रमात् ॥२२२
आद्यः षष्ठस्त्रयोविंशो द्वितीयो नवमोऽष्टमः । अष्टाविंशस्य शूलस्य मुहूर्तो दुःखदो जनौ ॥२२३
भौमार्कशुक्रवाराश्चेदसम्पूर्णं च भं तथा । भद्रातिथेस्तु संयोगे परजातः पुमान् भवेत् ॥२२४
गुरुनं प्रेक्षते लग्नं सोऽर्केन्दुं च तथा बुधः । सुक्रूरेन्दुयुतोऽर्कश्चेच्चतुर्थे च परात्मजः ॥२२५
यदिदं तैः समं जन्म यदि वा दशना शिशोः । स्युर्मध्ये सप्तमासानां कुलनाशस्तथा ध्रुवम् ॥२२६
शान्तिकं तत्र कर्तव्यं दुर्निमित्तविनाशनम् । जन्मप्रभृति नो दन्ताः पूर्णाः स्युर्वत्सरे द्वये ॥२२७
सप्तमाद्दशवर्षान्तं निपत्योद्यन्ति ते पुनः । राजा द्वात्रिंशता दन्तैर्भोगी स्यादेकहीनतः ॥२२८
त्रिंशता तनुपुष्टोऽष्टाविंशत्या सुखितः पुमान् । एकोनत्रिंशता निःस्वो हीनैर्दन्तैरतोऽधमाः ॥२२९
कुन्दपुष्पोपमाः सूक्ष्माः स्निग्धारुणपीठिकाः । तीक्ष्णदंष्ट्रा घना दन्ता धनभोगसुखप्रदाः ॥२३०

गण्डान्त मूल आश्लेखा तथा रेवती, आश्विनी, मघा इन नक्षत्रोंके स्थान-गत ग्रह एवं कुदिन अर्थात् भद्रा तिथि, वैधृति और व्यतिपात योग और गण्डान्त लग्न भाग्यवान्के जन्म-समय नहीं होते हैं और न उन्हें माताके वियोगका दुःख होता है। मूल-गत गण्डान्त भागके प्रथम चरण में बालकक जन्म होने पर पिताका नाश, द्वितीय चरणमें जन्म होने पर माताका नाश, और तृतीय चरणमें जन्म होने पर धनका नाश होता है। इसी प्रकार आश्लेषा नक्षत्रके गण्डान्तके चतुर्थ चरणमें जन्म होने पर पिताका, तृतीय चरणमें जन्म होने पर माताका और द्वितीय चरण में जन्म होने पर धनका नाश होता है। किन्तु मूल गण्डान्तके चतुर्थ चरणमें और आश्लेषा गण्डान्तके प्रथम चरणमें जन्म शुभकारक होता है ॥२२१-२२२॥

जन्म-कालमें दिनका प्रथम, द्वितीय, षष्ठ, अष्टम, नवम, तेवीसवां और अट्ठाईसवां मुहूर्त शूलके दुःखको देता है ॥२२३॥ मंगल, रवि, और शुक्रवार हो, तथा उस दिन नक्षत्र असम्पूर्ण हो और भद्रा तिथिका संयोग हो तो पुरुष पर-जात (जारज) होगा ॥२२४॥ यदि जन्म लग्नको सूर्य, चन्द्र, बुध और गुरु न देखते हों, तथा सूर्य और चन्द्र क्रूर ग्रहसे युक्त चतुर्थ स्थानमें हों तो जातक जारज होगा ॥२२५॥

यदि शिशुका जन्म सदन्त होता हैं तो सात मासके भीतर अपना अथवा कुलका निश्चयसे नाश करता हैं ॥२२६॥ दुर्निमित्तकी शान्तिके लिए शान्ति कराना आवश्यक है। क्योंकि जन्म कालसे उत्पन्न होनेवाले दांत अशुभ होते हैं और वे दांत दो वर्षमें पूर्ण होते हैं ॥२२७॥

यदि उपर्युक्त अशुभ योगोंमें जन्म हो तो उन दुर्निमित्तोंका विनाशक शान्तिकर्म करना चाहिए। उत्पन्न हुई सन्तानके जन्मकालसे लेकर दो वर्ष तक दाँत पूरे प्रगट होते हैं ॥२२७॥ सात वर्षसे लेकर दशवर्षकी अवस्था तक जन्मजात दाँत गिरकर पुनः उत्पन्न होते हैं। बत्तीस दाँतवाला पुरुष राजा होता है। एककम अर्थात् इकतीस दाँतवाला पुरुष भोगी होता है ॥२२८॥ तीस दाँतवाला पुरुष शरीरसे पुष्ट होता है और अट्ठाईस दाँतवाला पुरुष सुखी होता है। उनतीस दाँतवाला मनुष्य निर्धन होता है। इससे कम दाँतोंसे मनुष्य अधम होते हैं ॥२२९॥ कुन्द पुष्पके समान उज्ज्वलवर्णवाले, सूक्ष्म (छोटे) स्निग्ध और अरुण पीठिकावाले, सघन दाँत और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खरद्विपरदा धन्याः पापाश्चाखुरदास्तथा । द्विपङ्क्तिलक्षिता श्यामा करालसमदन्तकाः ॥२३१

अथ निद्रा—

निरोधनं समाधाय परिज्ञाय तदास्पदम् । विमृश्य जलमासन्नं कृत्वा द्वारनियन्त्रणम् ॥२३२
इष्टदेवनमस्कारं कृत्वापमृतिभिः शुचिः । रक्षणीयपवित्रायां शय्यायां पृथुतायुषि ॥२३३
सुसंवृत्तपराधानसर्वाहारविवर्जितः । वामपार्श्वेन कुर्वीत निद्रां सौख्याभिलाषुकः ॥२३४

(त्रिभिर्विशेषकम्)

अनादिप्रभवा जीवा तमोहेतुस्तमोमयी । प्राचुर्यात्तमसः प्रायो निद्रा प्रादुर्भवेन्निशि ॥२३५
श्लेष्मावृतानि श्रोतांसि श्रमादुपरतानि च । यदाक्षाणि स्वकर्मभ्यस्तदा निद्रा शरीरिणाम् ॥२३६
निवृत्तानि यदाक्षाणि विषयेभ्यो मनः पुनः । विनिवर्तेत पश्यन्ति तदा स्वप्नान् शरीरिणः ॥२३७
अत्याशक्त्याऽनवसरे निद्रा नैव प्रशस्यते । एषा सौख्यायुषी कालरात्रिवत्प्रणिहन्ति यत् ॥२३८
संवर्धयति सैवेह युक्ता निद्रा सुखायुषी । अनवच्छिन्नसन्ताना सूक्ष्मा कुल्येव वीरुधः ॥२३९
रजन्यां जागरो रूक्षः स्निग्धस्वाऽश्च वासहे । रूक्षस्निग्धमहोरात्रमासीनप्रचलायितम् ॥२४०

तीक्ष्ण दाढ़ें, धन, भोग और सुखको देते हैं ॥२३०॥ खर (गर्दभ) और द्विप (गज) जैसे दाँतवाले धन्य पुरुष होते हैं, तथा आखु (मूषक) जैसे दाँतवाले पुरुष पापी होते हैं। दो पंक्तियोंमें दिखनेवाले, श्यामवर्ण और कराल (वक्र) दांतवाले पुरुष भी पापी होते हैं ॥२३१॥

अब निद्राका वर्णन किया जाता है—दैनिक कार्योंका निरोध करके, निद्रा-योग्य स्थानको जानकर, विचार-पूर्वक जलको समीप रखकर, शयनागारके द्वारको बन्दकर, इष्टदेवको नमस्कार कर, अपमृत्यु-सूचक निमित्तोंसे पवित्र और सावधान होकर अपनी दीर्घ आयुकी कामना करते हुए सुरक्षित पवित्र शय्यापर, अपने अंगोंको भलीभाँति संवृत (ढंक) कर, पराधीनता और सर्व प्रकारके आहार-पानसे रहित होकर सुखका अभिलाषी मनुष्य वाम पार्श्वसे निद्राको लेवे ॥२३२-२३४॥

जीव अनादि-कालिक हैं और उनके निद्रा भी अनादिकालसे उत्पन्न हुई चली आ रही है, यह निद्रा तमोहेतुक है और तमोमयी है अर्थात् तामसभाव और अन्धकारका कारण है और स्वयं तामसभावरूप और अन्धकाररूप है। तामस भावकी प्रचुरतासे प्रायः निद्रा रात्रिमें प्रकट होती है ॥२३५॥ जब शरीरके स्रोत्त (द्वार) कफसे आवृत हो जाते हैं, अंग परिश्रम करनेसे थक जाते हैं और इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्योंसे निवृत्त हो जाती हैं, तब प्राणियोंको निद्रा आती है ॥२३६॥ इसी प्रकार जब इन्द्रियाँ अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाती हैं और मन भी विषयोंसे निवृत्त होता है, तब जीव स्वप्नोंको देखते हैं ॥२३७॥ अतिआसक्तिसे अनवसरमें नींद लेना प्रशंसनीय नहीं है। यह निद्रा अवसरपर ली जाय तो सुख और आयु-वर्धक है। किन्तु यदि वही अनवसरमें ली जाय तो कालरात्रिके समान प्राणोका विनाश करती है ॥२३८॥ यह निद्रा यदि थकान होनेपर योग्य समयपर ली जाती है तो सुख और आयुको बढ़ाती है, जैसे कि अनवच्छिन्न (लगातार) प्रवाहवाली कुल्या (पानीकी नहर) छोटी-छोटी लताओंको बढ़ाती है ॥२३९॥

रात्रिमें जागरण करना शरीरमें रूक्षता उत्पन्न करता है, दिनमें स्निग्ध स्वाप अर्थात् गहरी नींद लेना भी रूक्षता उत्पन्न करता है। तथा दिन और रात बैठे-बैठे प्रचला निद्रा लेना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रोधभीशोकमांद्यस्त्रीभारयाताध्वकर्मभिः । परिक्लान्तरतीसारश्वासहिक्कादिकादिभिः ॥२४१
वृद्धबालबलक्षीणैस्तृट्शूलक्षयविह्वलैः । अजीर्णप्रमुखैः कार्यो दिवास्वापोऽपि कर्हिचित् ॥२४२

उक्तं च—

धातुसाम्यं वपुःपुष्टिस्तेषां निद्रागमो भवेत् । रसस्निग्धो घनश्लेष्ममेदास्त्वह्निशयी ननु ॥२४३
वातोपचयरूक्षाभ्यां रजन्याश्चाल्पभावतः । दिवास्वापः सुखी ग्रीष्मे सोऽन्यदा श्लेष्मपित्तकृत् ॥२४४

उक्तं च—

दिवास्वापो निरन्नानामपि पाषाणपाचकः । रात्रिजागरकालार्धं भुक्तानामप्यसौ हितः ॥२४५

यातेऽस्ताचलचूलिकान्तरभुवं देवे रवौ यामिनी-
यामार्धेषु विधेयमित्यभिदधे सम्यग्मया सप्तसु ।
यस्मिन्नाचरिते चिराय दधते मैत्रीमिवाकृत्रिमां
जायन्तेऽत्र सुसंवदाः सुविधिना धर्मार्थकामाः स्फुटम् ॥२४६

इति श्री कुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे दिनचर्यायां पञ्चमोल्लासः ।

रूक्ष-स्निग्धतका कारण है ॥२४०॥ क्रोध, भय, शोक, अग्निमन्दता, मादकता, स्त्री-सेवन, भार-वहन, मार्ग-गमन तथा थकान, अतीसार (पेचिस) श्वास, हिचकी आदि कारणोंसे वृद्धजनों, बालकों, क्षीणबली पुरुषोंको एवं प्यास, शूल, क्षय रोगी, विह्वल तथा पुरुषोंको अजीर्ण आदि रोगोंसे ग्रस्त व्यक्तियोंको कभी कदाचित् दिनमें शयन भी करना चाहिए ॥२४१-२४२॥

कहा भी है—जिनके शरीरमें धातुओंकी समानता होती है और शारीरिक पुष्टता रहती है, उनके निद्राका आगमन होता है। किन्तु दिनमें सोनेवाला पुरुष तो स्निग्ध रस, सघन कफ और मेदावाला होता है ॥२४३॥

वायुके संचयसे, शारीरिक रूक्षतासे और रात्रिके छोटी होनेसे ग्रीष्म ऋतुमें दिनको सोना सुख-कारक है। इसके सिवाय अन्य ऋतुमें दिनका सोना कफ और पित्तको करता है ॥२४४॥

कहा भी है—दिनका सोना अन्न न्हीं खानेवाले अर्थात् भूखे पुरुषोंको भी पाषाण-पाचक है। तथा रात्रि-जागरणके आधे काल दिनमें सोना भोजन करनेवाले पुरुषोंको भी हित-कारक है ॥२४५॥

सूर्य देवके अस्ताचलकी चूलिकाके मध्यवर्ती भूमिको प्राप्त होने पर, और रात्रिके आधे पहरोंके बीतने पर निद्रा लेना चाहिए, यह बात मैंने सम्यक् प्रकारसे सात स्थानों पर कही है। जिसके आचरण करने पर मनुष्य अकृत्रिम (स्वाभाविक) मैत्रीके समान चिरकालके लिए निद्राको धारण करता है, अर्थात् रात्रिभर गहरी सुखकी नींद सोता है। इस प्रकारसे इस उल्लासमें वर्णित कार्योंके करनेमें जो सुधी पुरुष विधिपूर्वक समुद्यत रहते हैं, उनके धर्म, अर्थ और काम ये तीनों पुरुषार्थ भलीभाँतिसे सिद्ध होते हैं ॥२४६॥

इस प्रकार श्री कुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारके अन्तर्गत
दिनचर्याके वर्णनमें पंचम उल्लास समाप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ षष्ठोल्लासः

कालमाहात्म्यमस्त्येव सर्वत्र बलवत्तराम् । ऋत्वौचित्यमाहार-विहारादि-समाचरेत् ॥१
वसन्तेऽभ्यधिकं क्रुद्धं श्लेष्माग्निं हन्ति जाठरम् । तस्मादत्र दिवास्वापः कफकृद्वस्तुवत्त्यजेत् ॥२
व्यायामधूम्रकवलग्रहणोद्वर्तनाञ्जनम् । वमनं चात्र कर्तव्यं कफोद्रेकनिवृत्तये ॥३
भोज्यं शाल्यादि च स्निग्धं तिक्तोष्णकटुकादिकम् । अतिस्निग्धं गुरु शीतं पिच्छलामद्रवं न तु ॥४
श्लेष्मघ्नान्युपभुञ्जीत मात्रया पानकानि च । स्वं कृष्णागुरुकाश्मीरचन्दनैश्च विलेपयेत् ॥५
पवनो दक्षिणश्चूतमञ्जरीमल्लिकास्रजः ।
ध्वनिर्भृङ्गपिकानां च मधुः कस्योत्सवाय न ॥६॥ (वसन्तः)
ग्रीष्मे भुञ्जीत सुस्वादु शीतं स्निग्धं द्रवं लघु । यदत्र रसमुष्णांशुः कर्षयत्पवनैरपि ॥७
पयःशाल्यादिकं सर्पिरथमस्तु सशर्करम् । यत्राश्नीयाद् रसालां च पानकानि हिमानि च ॥८
पिबेज्ज्योत्स्नाहतं तोयं पाटलागन्धबन्धुरम् । मध्याह्नं कायमाने वा नयेद् धारागृहेऽपि वा ॥९
वल्लभा मालतीस्पर्शा तापञ्चात्र प्रशामयेत् । व्यजनं सलिलार्द्रं च हर्षोत्कर्षाय जायते ॥१०॥
सौधोत्सङ्गे स्फुरद्वायौ मृगाङ्कद्युतिमण्डिते । चन्दनद्रवलिप्ताङ्गो गमयेत् यामिनीं पुनः ॥११

कालका माहात्म्य सर्वत्र अत्यन्त बलवान् है, इसलिए विज्ञ पुरुषोंको ऋतुके योग्य आहार-विहार आदिका आचरण करना चाहिए ॥१॥ वसन्त ऋतुमें अधिक कुपित हुआ कफ उदरकी श्लेष्माग्निको नष्टकर देता है। इसलिए इस ऋतुमें दिनको सोना कफ-कारक वस्तुओंके समान छोड़ना चाहिए ॥२॥ इस वसन्त ऋतुमें कफकी अधिकता दूर करनेके लिए व्यायाम, अजवाइन आदिका धूम्र-पान सेवन, उद्वर्तन अंजन और वमन करना चाहिए ॥३॥ इस ऋतुमें उत्तम शालि-धान्यवाले चावल आदि अन्न, स्निग्ध भोज्य पदार्थ, तिक्त, उष्ण और कटुक द्रव्य खाना चाहिए। किन्तु अधिक स्निग्ध पदार्थ, पचनेमें भारी पक्वान्न, ठण्डे पदार्थ, घी, दूध आदिसे व्याप्त पदार्थ, खट्टे और तरल पदार्थ नहीं खाना चाहिए ॥४॥ जो पदार्थ कफके विनाशक हैं, उन्हें खाना चाहिए और उचित मात्रासे पीने योग्य पानकोंको पीना चाहिए। तथा अपने शरीरको कृष्ण अगुरु एवं केशर-चन्दनसे विलेपन करना चाहिए ॥५॥ इस ऋतुमें दक्षिण दिशाका पवन, आम्र-मंजरी, मल्लिका पुष्पोंकी मालाएँ और भौंरो तथा कोयलोंकी ध्वनि किसके उत्सवके लिए नहीं होती है। अर्थात् सभी जीवोंके लिए आनन्द देनेवाली होती हैं ॥६॥

ग्रीष्म ऋतुमें सुस्वादु, शीतल, स्निग्ध, तरल और हलका भोजन करना चाहिए। क्योंकि इस ऋतुमें सूर्य तीक्ष्ण किरणोंसे और पवनके द्वारा शरीरके रसको खींचता है ॥७॥ इस ऋतुमें दूध, शालि चावल आदि अन्न, घी और शक्कर-युक्त रसवाली वस्तुएँ खानी चाहिए, तथा शीतल पेय पदार्थ पीना चाहिए ॥८॥ चन्द्रिकासे शीतल हुआ, तथा गुलाब-केवड़ाकी सुगन्धसे सुवासित जल पीवे। ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नकालमें, अथवा जब गर्मी प्रतीत हो, तब जलधारा-गृहमें अर्थात् फुव्वारावाले घरमें समय बितावे ॥९॥ मालती-पुष्पके समान शीतल स्पर्शवाली प्राण-वल्लभाके साथ इस ऋतुका सूर्य-ताप शान्त करना चाहिए। जलसे गीला बीजना (पंखा) इस ऋतुमें हर्षकी वृद्धिके लिए होता है ॥१०॥ वायुके चलनेपर चन्द्रकी चन्द्रिकासे मण्डित चूनेसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्बलाङ्गस्तथा चाम्लकटूष्णलवणान् रसान् । नाद्याद् व्यायाममुद्दामव्यवायं च सुधीस्त्यजेत् ॥१२

मृद्वीका-हृद्यपानानि सितांशुकविलेपनैः ।
धारागृहाणि च ग्रीष्मे मदयन्ति मुनीनपि ॥१३॥ (ग्रीष्मः)

प्रावृषि प्राणिनो दोषाः क्षुभ्यन्ति पवनाग्नयः । मेघपातधरावाष्पजलसङ्करयोगतः ॥१४
एते ग्रीष्मेऽतिपानाद्धि क्षीणाङ्गानां भवन्त्यलम् । धातुसाम्यप्रदस्तस्माद्विधिः प्रावृषि युज्यते ॥१५
कूपवाप्योः पयः पेयं न सरः-सरितां पुनः । नावश्यायातपः ग्रामयानाम्भःक्रीडनं पुनः ॥१६
वसेद् वेश्मनि निर्वाते जलोपद्रववर्जिते । स्फुरच्छकटिकाङ्गारे कुङ्कुमोद्वर्तनान्वितः ॥१७
केशप्रसाधनाशक्तो रक्तधूपितवस्त्रभृत् । सुस्मिताननो यस्मै स्पृहयन्ति स्वयं श्रियः ॥१८ (वर्षा ऋतुः)
प्रावृट्-काले स्फुरत्तेजः पुञ्जस्यार्कस्य रश्मिभिः । तप्तानां कुप्यति प्रायः प्राणिनां पित्तमुल्वणम् ॥१९
पानमन्नं च तत्तस्मिन् मधुरं लघु शीतलम् । सतिक्तकं च संसेव्यं क्षुधितेनाशु मात्रया ॥२०
रक्तमोक्षविरेकौ च श्वेतमाल्य-विलेपने । सरोवारि च रात्रौ च ज्योत्स्नामत्र समाश्रयेत् ॥२१
पूर्वानिलमवश्यायं दधि व्यायाममातपम् । क्षारं तैलं च यत्नेन त्यजेदत्र जितेन्द्रियः ॥२२

निर्मित भवनकी ऊपरी छतपर चन्दनके रससे लिप्त अंगवाला भाग्यशाली पुरुष रात्रिको बितावे ॥११॥ तथा इस ऋतुमें दुर्बल शरीरवाला मनुष्य खट्टे, कुछ गर्म और लवण रसोंको नहीं खावे। बुद्धिमान् पुरुषको व्यायाम और अधिक काम-सेवनका भी परित्याग करना चाहिए ॥१२॥ द्राक्षा-रससे मनोहर पेय पदार्थ, श्वेत वस्त्र, चन्दन आदिका विलेपन और जलधारावाले गृह ये सब पदार्थ मुनिजनोंको भी मदयुक्त कर देते हैं ॥१३॥

वर्षा ऋतुमें (श्रावण-भाद्रपद मासमें) मेघोंके जल बरसनेसे, उठी हुई भूमिकी भापसे, तथा पुराने जलमें नवीन जलके मिलनेके योगसे प्राणियोंके वात आदि दोष क्षुब्ध हो जाते हैं ॥१४॥ क्षीण अंगवाले पुरुषोंको ग्रीष्म ऋतुमें अधिक शीतल जलादिके पीनेसे ये वात-प्रकोप आदिके दोष वर्षा ऋतुमें प्रचुरतासे हो जाते हैं, इसलिए धातुओंको समता प्रदान करनेवाली विधि वर्षा कालमें करना योग्य है ॥१५॥ इस ऋतुमें कुआं और बावड़ीका जल ही पीना चाहिए, किन्तु सरोवर और नदियोंका पानी नहीं पीना चाहिए। सर्दी-जुकामसे बचनेके लिए सूर्य-ताप, ग्रामोंका गमन और जल-क्रीड़ा करना भी उचित नहीं है ॥१६॥ इस ऋतुमें निर्वात और जलके उपद्रवसे रहित, तथा प्रज्वलित सिगड़ीके अंगार-युक्त भवनमें कुंकुमके उवटनसे संयुक्त पुरुषको निवास करना चाहिए ॥१७॥ वर्षा ऋतुमें जो मनुष्य शिरके केशोंके प्रसाधनमें आसक्त रहता है, धूप-सुवासित लाल वर्णके वस्त्रोंको धारण करता है और मुस्कराते हुए मुख रहता है, उसके लिए स्त्रियाँ स्वयं इच्छा करती हैं ॥१८॥

प्रावृट्-कालमें (आश्विन-कार्तिक मासमें) स्फुरायमान तेज-पुंजवाले सूर्यकी प्रखर किरणोंसे सन्तप्त प्राणियोंका उग्र पित्त प्रायः कुपित हो जाता है, इसलिए इस ऋतुमें मधुर, लघु, शीतल, और तिक्त रससे युक्त अन्न-पान भूखके अनुसार यथोचित मात्रासे सेवन करना चाहिए ॥१९-२०॥ इस समय रक्त-विमोचन और मल-विरेचन करे, तथा श्वेत पुष्पोंकी मालाका धारण और चन्दनादिका विलेपन करे, सरोवरका निर्मल जल पीवे और (रात्रिमें चन्द्रकी) चाँदनीका आश्रय लेवे ॥२१॥ इस ऋतुमें पूर्वी पवन और ओसका सेवन, दहीका भक्षण, व्यायाम, सूर्यकी धूप, क्षार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौरभ्योद्गारसाराणि पुष्पाण्यामलकानि च।
क्षीरमिक्षुविकारांश्च शरद्यङ्गस्य पुष्टये ॥२३ (शरदः)

हेमन्ते शीतबाहुल्याद् रजनीदीर्घतस्तथा। वह्निः स्यादधिकस्तस्माद् युक्तं पूर्वाह्णभोजनम् ॥२४
अम्लस्वादूष्णसुस्निग्धमन्नं क्षीरं च युज्यते। नैवोचितं पुनः किञ्चिद् वस्तु जाड्यविधायकम् ॥२५
कुर्यादभ्यङ्गमङ्गस्य तैलेनातिसुगन्धिना। कुङ्कुमोद्वर्तनं चात्र व्यायामो वसीति (?)च ॥२६
सेवनीयं च निर्वातं कर्पूरागुरुधूपितम्। मन्दिरं भासुराङ्गारशकटीसुन्दरं नरैः ॥२७
युवती साङ्गरागात्र पीनोन्नतपयोधरा। शीतं हरति शय्या च मृदूष्णस्पर्शशालिनी ॥२८

उत्तराशानिलाद् रूक्षं शीतमत्र प्रवर्तते।
शिशिरेऽप्यखिलं ज्ञेयं कृत्यं हेमन्तवद्बुधैः ॥२९॥ (हेमन्त-शिशिरौ)

ऋतुगतमिति सर्वं कृत्यमेतन्मयोक्तं निखिलजनशरीरक्षेमसिद्धयर्थमुच्चैः।
निपुणमतिरिदं यः सेवते तस्य न स्याद् वपुषि गदसमूहः सर्वदा वर्ण्यवर्तो ॥३०

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे ऋतुचर्यावर्णनो नाम षष्ठोल्लासः।

■

रस और तेलका जितेन्द्रिय पुरुष यत्नसे परित्याग करे ॥२२॥ सुगन्धके उद्गार सारवाले पुष्प, आँवला, दूध, और इक्षुका रस आदि शरद् ऋतुमें शरीरकी पुष्टिके लिए होते हैं।

हेमन्त ऋतुमें (मार्गशीर्ष-पौषमें) शीतकी अधिकतासे, तथा रात्रियोंकी दीर्घतासे उदरकी अग्नि अधिक प्रज्वलित हो जाती है, इसलिए इस ऋतुमें पूर्वाह्ण भोजन करना योग्य है ॥२४॥ तथा आम्ल रसवाले, स्वादिष्ट, उत्तम स्निग्धरस-युक्त अन्नका भोजन और दुग्धपान करना योग्य है। किन्तु शरीरमें जड़ता उत्पन्न करनेवाली किसी भी वस्तुका सेवन उचित नहीं है ॥२५॥ इस ऋतुमें अति सुगन्धित तेलसे शरीरका मर्दन करना चाहिए। कुंकुमका उवटन और व्यायामका करना भी हितकारक है ॥२६॥ रात्रिके समय निर्वात, कपूर अगुरुसे धूपित और धधकते हुए अंगारोंवाली सिगड़ीसे सुन्दर मन्दिरका भाग्यशाली पुरुषोंको सेवन करना चाहिए ॥२७॥

इस ऋतुमें अंगरागसे युक्त, पुष्ट और उन्नत स्तनोंको धारण करनेवाली युवती तथा कोमल, उष्ण स्पर्शशालिनी शय्या मनुष्योंके शीतको दूर करती है ॥२८॥ इस समय उत्तर दिशाके पवनसे रूक्ष शीत प्रवर्तता है, इसलिए उससे अपनी रक्षा करनी चाहिए। शिशिर ऋतुमें (माघ-फाल्गुन मासमें) भी सभी करनेके योग्य कार्य बुद्धिमानोंको हेमन्त ऋतुके समान जानना चाहिए ॥२९॥

इस प्रकार मैंने सर्वजनोंके शारीरिक कल्याणकी सिद्धिके लिए विस्तारके साथ छहों ऋतु-सम्बन्धी सर्व करने योग्य कार्योंको कहा। जो निपुण बुद्धिवाला पुरुष इन कर्तव्योंका सर्वदा पालन करता है उसके शरीरमें कभी भी शारीरिक रोगोंका समूह नहीं होता है ॥३०॥

इस प्रकार कुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें ऋतुचर्याका
वर्णन करनेवाला छठा उल्लास समाप्त हुआ।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ सप्तमोल्लासः

दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यं कार्यं तत्किञ्चिदुत्तमैः । मुहूर्तमेकमेकस्य नैव याति वृथा तथा ॥१
दिवा यामचतुष्केण कार्यं किमपि तन्नरैः । निश्चिन्तहृदयैर्येन यामिन्यां सुप्यते सुखम् ॥२
तत्किञ्चिदष्टभिर्मासैः कार्यं कर्म विवेकिना । एकत्र स्थीयते येन वर्षाकाले यथा सुखम् ॥३
यौवनं प्राप्य सर्वार्थसारसिद्धिनिबन्धनम् । तत्कुर्यान्मतिमान् येन वार्धिको सुखमश्नुते ॥४
अर्जनीयं कलावद्भिस्तत्किञ्चिज्जन्मनामुना । ध्रुवमासाद्यते येन शुद्धं जन्मान्तरं पुनः ॥५
प्रतिवर्षं सहस्रेण निजवित्तानुमानतः । पूजनीया सधर्माणो धर्माचार्यश्च धीमता ॥६
गोत्रवृद्धास्तथा शक्त्या सन्मान्या बहुमानतः । विधेया तीर्थयात्रा च प्रतिवर्षं विवेकिभिः ॥७
प्रतिसंवत्सरं ग्राह्यं प्रायश्चित्तं गुरोः पुरः । शोध्यमानो भवेदात्मा येनादर्श इवोज्ज्वल : ॥८
जातस्य नियतं मृत्युरिति ज्ञापयितुं जनौ । पित्रादिदिवसः कार्यः प्रतिवर्षं महात्मभिः ॥९
इति स्फुटं वर्षविधेयमेतल्लोकोपकाराय मयाऽभ्यधायि ।
जायेत लोकद्वितयेऽप्यवश्यं यत्कुर्वतां निर्मलता जनानाम् ॥१०

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे वर्षाचार्यो नाम सप्तमोल्लासः ।

यह अतिदुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकरके उत्तम जनोंको एक दिनमें एक मुहूर्त्त भी कुछ वह श्रेष्ठ कार्य करना चाहिए, जिससे कि मनुष्यभवका पाना वृथा नहीं जावे है ॥१॥ दिनके चार पहरों द्वारा पुरुषोंको कोई भी कार्य करना चाहिए, जिससे कि वे रात्रिमें निश्चिन्त हृदय होकर सुख-पूर्वक सो सकें ॥२॥ आठ मासोंके द्वारा विवेकी पुरुषको वह व्यापार-सम्बन्धी कार्य करना चाहिए, जिससे कि वर्षाकालमें वह एक स्थानपर सुखपूर्वक निवासकर सके ॥३॥ सर्व पुरुषार्थोंका सारभूत और आत्म-सिद्धिका कारण-स्वरूप यौवन पाकरके बुद्धिमान् मनुष्यको वह कार्य करना चाहिए, जिससे कि वृद्धावस्थामें वह सुख प्राप्त कर सके ॥४॥ कलावान् पुरुषोंको इस जन्म-द्वारा कुछ ऐसा धर्म-पुण्य उपार्जन करना चाहिए जिससे कि पुनः दूसरा जन्म निश्चित रूपसे शुद्ध उत्तम प्राप्त हो सके ॥५॥

बुद्धिमान् गृहस्थ पुरुषको प्रतिवर्ष अपने वित्तके अनुमानसे सहस्रोंकी संख्यामें साधर्मी बन्धुजनोंको और धर्माचार्यको पूजना चाहिए ॥६॥ अपने कुल और गोत्रमें जो वृद्धजन हों, उनका अपनी शक्तिके अनुसार बहुत आदरके साथ सन्मान करना चाहिए। इसी प्रकार विवेकी जनोंको प्रतिवर्ष तीर्थयात्रा भी करना चाहिए ॥७॥ गृहस्थको प्रतिवर्ष गुरुके आगे किये गये पापोंका प्रायश्चित्त भी ग्रहण करना चाहिए, जिससे कि विशुद्ध किया गया आत्मा दर्पणके समान उज्ज्वल होवे ॥८॥ संसारमें जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है, यह बात संसारमें बतलानेके लिए महापुरुषोंको प्रतिवर्ष पिता आदिका श्राद्ध दिवस भी करना चाहिए ॥९॥

इस प्रकार लोकोपकारके लिए मेरे द्वारा कहे गये वर्षके भीतर करनेयोग्य कार्य भले प्रकारसे श्रावकको करना चाहिए, जिनके करनेवाले मनुष्योंकी दोनों लोकोंमें अवश्य ही निर्मलता होवे, अर्थात् दोनों भव सफल होवें ॥१०॥

इस प्रकार कुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें वर्षके भीतर आचरण करने योग्य कार्योंका वर्णन करनेवाला सप्तम उल्लास समाप्त हुआ ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथाष्टमोल्लासः

सद्धर्म-दुर्ग-सुस्वामि-व्यवसाय-जलेन्धने । स्वजातिलोकरम्ये च देशे प्रायः सदा वसेत् ॥१
गुणिनः सूनृतं शौचं प्रतिष्ठा गुणगौरवम् । अपूर्वज्ञानलाभश्च यत्र तत्र वसेत्सुधीः ॥२
सम्यग्देशस्य सीमादिस्वरूपस्वामिनस्तथा । जातिमित्रविपक्षाद्यमवबुध्य वसेन्नरः ॥३
बालराज्यं भवेद्यत्र द्विराज्यं यत्र वा भवेत् । स्त्रीराज्यं मूर्खराज्यं वा यत्र स्यात्तत्र नो वसेत् ॥४
स्ववासदेशक्षेमाय निमित्तान्यवलोकयेत् । तस्योत्पातादिकं वीक्ष्य त्यजति पुनरुद्यमान् ॥५
[1]प्रकृतस्यान्यथाभाव उत्पातः स त्वनेकधा । स यत्र तत्र दुर्भिक्षं देश-राष्ट्र-प्रजाक्षयः ॥६
[2]देवानां वैकृतं भङ्गश्चित्रेष्वायतनेषु च । ध्वजश्चोर्ध्वमुखो यत्र तत्र राष्ट्राद्युपप्लवः ॥७
[3]जलस्थलपुरारण्ये जीवान्यस्थानदर्शनम् । शिवा-काकादिकाक्रन्दः पुरमध्ये पुरच्छिदे ॥८
[4]छत्रप्राकारसेनादिदाहाद्यैर्नृपतीन् पुनः । शस्त्राणां च ज्वलनं कोशान्निर्गमः पराजये ॥९

गृहस्थ पुरुषको उस देशमें बसना चाहिए, जहां पर सद्धर्मका प्रचार हो, उत्तम दुर्ग (गढ़-किला) हो, न्यायवान स्वामी हो, अच्छा व्यापार हो, जल और इन्धन सुलभ हो, तथा जो अपनी जातिके लोगोंसे रमणीय हो ॥१॥ जिस देशमें गुणीजन रहते हों, सत्य, शौच, प्रतिष्ठा, गुण-गौरव और अपूर्व ज्ञानका लाभ हो, उस देशमें निवास करना चाहिए ॥२॥ उस देशकी सीमा आदिका स्वरूप, स्वामीका परिचय तथा जाति, मित्र और शत्रु आदिको सम्यक् प्रकारसे जानकर मनुष्यको बसना चाहिए ॥३॥ जिस देशमें बालक राजाका राज्य हो, अथवा जहां पर दो-तीन राजाओंका राज्य हो, या स्त्रीका राज्य हो, अथवा मूर्ख पुरुषका राज्य हो, उस देशमें नहीं बसना चाहिए ॥४॥ अपने निवासयोग्य देशके क्षेम-कल्याणके लिए शास्त्रोक्त निमित्तोंका अवलोकन करना चाहिए। उस देशके उत्पात आदिको देखकर उद्यमी पुरुष उसे छोड़ देते हैं ॥५॥

वस्तु या देश आदिके स्वाभाविक स्वरूपका अन्यथा होना उत्पात कहलाता है। वह उत्पात अनेक प्रकारका होता है। वह उत्पात जहांपर होता है, वहांपर दुर्भिक्ष, देशका विनाश, राष्ट्र और प्रजाका क्षय होता है ॥६॥ जहांपर देवोंका आकार विकृत हो जाय, चित्रोंमें और धर्मस्थानोंमें देव-मूर्त्तियां भंगको प्राप्त होवें, और जहांपर फहरती हुई ध्वजा ऊर्ध्वमुखी होकर उड़ने लगे, वहाँपर राष्ट्र आदिका विप्लव होता है ॥७॥ जलभाग, स्थलभाग, नगर और वनमें अन्य स्थानके जीवोंका दर्शन हो, तथा शृगालिनी, काकादि आक्रन्दन नगरके मध्यमें हो, तो वे पुर-नगरके विच्छेदके सूचक उत्पात हैं ॥८॥ राज-छत्र, नगर-प्राकार (परकोटा) और सेना आदिका दाह हो, तथा शस्त्रोंका जलना और म्यानसे खड्गका स्वयं निर्गमन हो, अन्याय और दुराचारका प्रचार हो, लोगोंमें पाखण्डकी अधिकता हो और सभी वस्तुएँ

---

१. प्रकृतेर्यो विपर्यासः स चोत्पातः प्रकीर्त्तितः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमश्च व्यासमेषां निबोधन ॥ (भद्रबा० १४, २) वर्ष प्रबोध १, १।

२. वर्षप्रबोध १, २। ३. वर्षप्रबोघ १, ३। ४. वर्षप्रबोघ १, ४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]अन्यायश्च दुराचारः पाखण्डाधिकता जने । सार्वमाकस्मिकं जातं वैकृतं देशनाशनम् ॥१०
सम्प्राप्येन्द्रधनुर्दुष्टं वह्निः सूर्यस्य सम्मुखम् । रात्रौ दुष्टं सदा दोषकाले वर्णव्यवस्थया ॥११
[2]सितं रक्तं पीतकृष्णं सुरेन्द्रस्य शरासनम् । भवेद् विप्रादिवर्णानां चतुर्णां नाशनं क्रमात् ॥१२
[3]अकाले पुष्पिता वृक्षाः फलिताश्चान्यभूभुजः । अन्योन्यं महती प्राज्यं दुर्निमित्तफलं वदेत् ॥१३
[4]अश्वत्थोदुम्बरवटप्लक्षाः पुनरकालतः । विप्रक्षत्रियविट्शूद्रवर्णानां क्रमतो भयम् ॥१४
[5]वृक्षे पत्रे फले पुष्पे वृक्षं पत्रं फलं दलम् । जायते चेत्तदालोके दुर्भिक्षादिमहा भयम् ॥१५
[6]गोध्वनिर्निशि सर्वत्र कलिर्वा दर्दुराः शिखी । श्वेतकाकश्च गृद्धादिभ्रमणं देशनाशनम् ॥१६
अपूज्यपूजाः पूज्यानामपूजा करणीमदः । शृगालोऽह्निरुवन्नाशे तित्तिरश्च जगद्भये ॥१७
खरस्य रसतश्चापि समकालं यदा रसेत् । अन्यो वा नखरी जीवो दुर्भिक्षादि तदा भवेत् ॥१८
अन्यजातेरन्यजातेर्भाषणं प्रसवे शिशुः । मैथुनं च खरीसूतिदर्शनं चापि भीतिदम् ॥१९

अकस्मात् विकृत हो जावें, वहाँपर देशका नाश होता है ॥९-१०॥ इन्द्र-धनुष दोष-युक्त दिखे, अग्नि सूर्यके सम्मुख हो, रात्रिमें और प्रदोष कालमें सदा दुष्ट संचार हो तो वर्ण-व्यवस्थासे उपद्रव होता है ॥११॥ यदि सुरेन्द्रका शरासन अर्थात् इन्द्र-धनुष श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णका दिखे तो क्रमसे ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका नाश होता है। अर्थात् इन्द्रधनुष श्वेत वर्ण का दिखे तो ब्राह्मणोंका, रक्तवर्णका दिखे तो क्षत्रियोंका, पीतवर्णका दिखे तो वैश्योंका और कृष्ण वर्णका दिखे तो शूद्रोंका विनाश होता है ॥१२॥ यदि वृक्ष अकालमें फूलें और फलें तो अन्य राजाके साथ महान् युद्ध होता है, ऐसा उक्त दुर्निमित्तका फल कहना चाहिए ॥१३॥ पीपल, उदुम्बर, वट और प्लक्ष (पिलखन) वृक्ष यदि अकालमें फूलें और फलें तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णके लोगोंके भय होता है ॥१४॥ यदि वृक्षमें, पत्रमें, फलमें और पुष्पमें क्रमसे अन्य वृक्ष, अन्य पत्र, अन्य फल और अन्य पुष्प उत्पन्न हो, तो लोकमें दुर्भिक्ष आदिका महाभय होता है ॥१५॥ यदि रात्रिमें गाय-बैलोंका रंभाना चिल्लाना हो, अथवा परस्पर कलह हो, तथा प्रचुरतासे मेंढक, मयूर, श्वेत कांक, और गीध आदि पक्षियोंका परिभ्रमण हो तो देशका विनाश होता है ॥१६॥

यदि अपूज्य लोगोंकी पूजा होने लगे और पूज्य पुरुषोंकी पूजा न हो, हथिनीके गण्डस्थलोंसे मद झरने लगे, दिनमें शृगाल रोवें-चिल्लावें और तीतरोंका विनाश हों तो जगत्में भय उत्पन्न होता है ॥१७॥ गर्दभके रेंकनेके समकालमें ही; अन्य गर्दभ रेंकने लगे, अथवा अन्य नाखूनी पंजेवाले जीव चिल्लाने लगे, तब दुर्भिक्ष आदि होता है ॥१८॥ अन्य जातिके पशु-पक्षीका अन्य जातिके पशु-पक्षीके साथ बोलना, अन्य जातिसे प्रसवमें शिशु होना, अन्य जातिके पशु-पक्षीके साथ अन्य जातिके पशु-पक्षीका मैथुन करना और गर्दभकी प्रसूतिका देखना भी भय-प्रद होता है ॥१९॥

---

१. वर्षप्रबोध १, ५। २. वर्षप्रबोध १, ७। ३. वर्षप्रबोध १, ८।

४. क्षत्रियाः पुष्पितेऽश्वत्थे ब्राह्मणाश्चाप्युदुम्बरे ।
वैश्याः प्लक्षेऽथ पीडयन्ते न्यग्रोधे शूद्रदस्यवः ॥ (भद्र बा० १४, ५७) वर्ष प्रबोध १, ९।

५. वर्षप्रबोध १, १०। ६. वर्षप्रबोध १, ११।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मांसाशनं स्वजातेश्च विनौतून् भुजगांस्तिमान् । काकादेरपि भक्ष्यस्य गोपनं शस्यहानये ॥२०
अन्तःपुर-पुरानीक-कोषामत्यपुरोधसाम् । राजपुत्र प्रकृत्यादेरप्यरिष्टफलं वदेत् ॥२१
पक्षमासर्तुषण्मासवर्षमध्येऽह्नि चेत्फलम् । नष्टं तद्-व्यर्थमेव स्यादुत्पन्ने शान्तिरिष्यते ॥२२
दौस्थैर्भावनिदेशस्य निमित्तं शकुनाः स्वराः । दिव्यो ज्योतिषमानादिः सर्वं व्यभिचरेच्छुभम् ॥२३
प्रवासयन्ति प्रथमं स्वदेवान् परदेवताः । दर्शयन्ति निमित्तानि भङ्गे भाविनि चान्यथा ॥२४
[1]विशाखा-भरणी-पुष्याः पूर्वफा-पूर्वभा-मघाः । कृत्तिका-सप्तभिर्धिष्ण्यैराग्नेयं मण्डलं मतम् ॥२५
[2]चित्रा हस्ताश्विनी-स्वातिर्मार्गशीर्षं पुनर्वसू । उत्तराफाल्गुनीत्येतद् भवेद्वायव्यमण्डलम् ॥२६
[3]पूर्वाषाढोत्तराषाढाश्लेषाऽऽर्द्रामूलरेवती । शतभिषक् चेति नक्षत्रैर्वारुणं मण्डलं भवेत् ॥२७
[4]अनुराधाभिजिज्ज्येष्ठोत्तराषाढा धनिष्ठिका । रोहिणी श्रवणोऽप्येभिर्ऋक्षैर्माहेन्द्रमण्डलम् ॥२८
एषूत्पातोदये लोकाः सर्वे मुदितमानसाः । सन्धिं कुर्वन्ति भूमीशाः सुभिक्षं मङ्गलोदयः ॥२९
उल्कापातादयः सर्वेऽमीषु स्व-स्वफलप्रदाः । वर्षाकालं विना ज्ञेया वर्षाकाले तु वृष्टिदाः ॥३०
माहेन्द्रं सप्तरात्रेण सद्यो वारुणमण्डलम् । आग्नेयमर्धमासेन फलं मासेन वायवम् ॥३१
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं राज्ञां सन्धिः परस्परम् । अन्त्यमण्डलयोर्ज्ञेयं तद्विपर्ययमाद्ययोः ॥३२

स्वजातिवाले पशु-पक्षीका स्वजातिवाले पशु-पक्षियों द्वारा मांसका खाना, बिल्लीके सिवाय अन्यके द्वारा साँपोंका खाया जाना, और काक आदिके द्वारा भक्षण करने योग्य पदार्थका गुप्त रखना, धान्यकी हानिके लिए होता है ॥२०॥ अन्तःपुर, नगर-सैन्य, कोष-रक्षक, मंत्री और पुरोहितोंकी प्रकृति विकार आदिके अरिष्ट-सूचक उत्पातोंके फलको ज्योतिषी कहे ॥२१॥ जिस अरिष्ट या उत्पातका फल एक पक्ष, मास, दो मास, छह मास, या वर्षके मध्यवर्ती दिनमें होना संभव हो, वह नष्ट या व्यर्थ ही होता है। फिर भी उस उत्पातके होनेपर शान्ति करना कहा गया है ॥२२॥ दुस्थित अर्थात् प्रकृतिसे विपरीत—को बतानेवाले निमित्त, शकुन, स्वर और दिव्य (अन्तरिक्ष) ज्योतिष-मान आदि सर्वशुभ कार्य व्यभिचारको प्राप्त होते हैं ॥२३॥ अन्य देवता पहिले अपने कुलक्रमागत देवोंको प्रवासित करते हैं, पुनः भविष्य-सूचक निमित्तोंको दिखाते है। तथा आगामी कालमें होनेवाले शुभ कार्यके भंगमें अन्यथा भी निमित्त दिखलाते हैं ॥२४॥

विशाखा, भरणी, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और कृत्तिका इन सात नक्षत्रोंके द्वारा विद्वज्जनोंने आग्नेय मण्डल माना है ॥२५॥ चित्रा, हस्त, अश्विनी, स्वाति, मृगशिरा, पुनर्वसू और उत्तराफाल्गुनी इन सात नक्षत्रोंका वायव्यमण्डल होता है ॥२६॥ पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, आश्लेषा, आर्द्रा, मूल, रेवती और शतभिषा इन सात नक्षत्रोंसे वारुण मण्डल होता है ॥२७॥ अनुराधा, अभिजित्, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, धनिष्ठा रोहिणी और श्रवण इन सात नक्षत्रोंसे माहेन्द्रमण्डल होता है ॥२८॥

इन उपर्युक्त मण्डलोंमें उत्पात होनेपर सब लोग आनन्दसे रहते हैं, राजा लोग परस्परमें सन्धि करते हैं, देशमें सुभिक्ष और आनन्द मंगल होता है ॥२९॥ उल्कापातादिक भी इनमें अपने-अपने फलको वर्षाकालके बिना देते हैं और वर्षाकालमें तो वृष्टि करते ही हैं ॥३०॥ माहेन्द्र-मण्डलका फल सात दिनमें, वारुणमण्डलका फल शीघ्र ही, अग्निमण्डलका फल अर्धमासमें और वायुमण्डलका फल एक मासमें होता है ॥३१॥ सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य और राजाओंकी परस्पर

---

१. वर्षप्रबोध १, ३३। २, वर्षप्रबोध १, ४२। ३. वर्षप्रबोध १, ४६। ४, वर्षप्रबोध १, ५०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिमासिकं तु आग्नेयं वायव्यं च द्विमासिकम् । मासमेकं च वारुण्यं माहेन्द्रं सप्तरात्रिकम्‌॥ ।।३३
[1]मण्डलेऽग्नेरष्टभिर्मासैर्द्वाम्यां वायव्यके शुभः । पुनरित्युक्तेनास्मिन् सर्वं शुभदं वदेत् ।।३४
आग्नेये पीड्यते याम्यां वायव्ये पुनरुत्तराम् । वारुणे पश्चिमां तत्र पूर्वां माहेन्द्रमण्डलम् ।।३५
[2]मासर्क्षंपूर्णिमा हीना समाना यदि वाऽधिका । समर्घं समार्घं च महार्घं च क्रमाद् भवेत् ।।३६
एकमासे रवेर्वाराः स्युः पञ्च न शुभप्रदाः । आमावास्यार्कवारेण महार्घस्य विधायिनी ।।३७
वारेष्वर्कार्किभौमानां सङ्क्रान्तिर्मृगकर्कयोः । यदा तदा महर्घं स्यादभियुद्धादिकं तथा ।।३८
मृगकर्काजगोमीनेष्वर्को वामाङ्घ्रिणा निशि । अह्नि सप्तसु शेषेषु प्रचलेद्दक्षिणाङ्घ्रिणा ।।३९
स्वे स्वे राशौ स्थिते सौस्थ्यं भवेद्दौस्थ्यं व्यतिक्रमे । चिन्तनीयस्ततो यत्नाद्रात्र्यह्नं प्रोक्तसङ्क्रमः ।।४०
आर्द्रान्त्यर्धे तथा स्वातौ सति राहौ यदा शशी । रोहिणीशकटस्यान्तर्याति दुर्भिक्षकृत्तदा ।।४१

सन्धि यह अन्तिम दो मण्डलोंमें जाने । इससे विपरीत आदिके दो मण्डलोंमें फलको जानना चाहिए ।।३२।। उक्त आग्नेयादि मण्डलोंमें होनेवाले लक्षण आठ मास या दो मासके द्वारा शुभप्रद होते हैं किन्तु ऐसा कहना सर्वथा उचित नहीं है, क्योंकि आग्नेयमण्डल यमदिशाको पीड़ित करता है, वायव्यमण्डल उत्तर दिशाको, वारुणमण्डल पश्चिम दिशाको और माहेन्द्रमण्डल पूर्व दिशाको पीड़ित करता है ।।३४-३५।। मासके नक्षत्रसे यदि पूर्णमासी हीन, समान या अधिक हो तो क्रमशः वस्तुओंके मूल्य समर्घ (सस्ते) समार्घ (सम) और महार्घ (तेज) होते हैं ।।३६।। भावार्थ—यदि विवक्षित मासकी पूर्णमासी उस नक्षत्रसे हीन है, अर्थात् उस मासके नामवाला नक्षत्र पूर्णमासीके दिन नहीं है, तो वस्तुओंके मूल्य तेज होंगे । यदि पूर्णमासीके दिन माससंज्ञिक नक्षत्र है तो वस्तुओंके मूल्य सम (स्थिर) रहेंगे । यदि माससंज्ञिक नक्षत्रकी वृद्धि हो तो वस्तुओंके मूल्य मन्दे होंगे ।

यदि एक मासमें रविवार पाँच हों तो शुभप्रद नहीं हैं । रविवारके साथ यदि अमावस्या होती है तो वह वस्तुओंके मूल्यको बढ़ानेवाली होती है ।।३७।। जब रविवार, शनिवार और भौमवारके दिनमें मृग (मकर) और कर्ककी संक्रान्ति होती हैं, तब वस्तुओंके मूल्य बढ़ते हैं, तथा सामनेवाले व्यक्तिके साथ युद्ध आदिक होते हैं ।।३८।। मकर, कर्क, वृष, मिथुन, मीन इन राशियोंके सूर्य होनेपर रात्रिमें वामपाद आगे करके गमन करे । शेष सात राशियोंमें सूर्य होनेपर दिनमें दक्षिणपादको आगे करके चले ।।३९।। सूर्य और चन्द्रके अपनी अपनी राशिमें स्थित होनेपर गमन करनेमें स्वस्थता रहती है और व्यतिक्रम होनेपर दुःस्थिता रहती है । इसलिए प्रयत्नपूर्वक रात और दिनमें उपरि-कथित गमन करनेका विचार चिन्तनीय है ।।४०।। आर्द्राके अन्त्यार्धसे

॥ यहाँ आदर्श प्रतिमें श्लोकाङ्क २९ से ३३ तकके श्लोक नहीं थे, उन्हें वर्ष-प्रबोधसे लेकर स्थान-पूर्ति की गई है ।—सम्पादक ।

१. वर्षप्रबोध १,५७ ।

२. मासाभिधाननक्षत्रं राकायां क्षीयते यदि । महार्घत्वं तदा नूनं वृद्धौ ज्ञेया समर्घता ।
मासनामकनक्षत्रं राकायां न भवेद् यदा । महर्घं च तदावश्यं तत्तद्योगनिमित्ततः ।।
ऋक्षवृद्धौ रसाधिक्यं कणाधिक्यं च निश्चितम् । योगाधिक्ये रसच्छेदो दिनार्धप्रत्यहं स्फुटः ।।
(वर्षप्र० ८, श्लोक ४६-४८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भौमस्याधो गुरुश्चेत्स्याद् गुर्वधोऽपि शनैश्चरः। ग्रहाणां मुशलं ज्ञेयमिदं जगदरिष्टकृत् ॥४२
शनिर्मीने गुरुः कर्के तुलायामपि मङ्गलम्। यावच्चरति लोकस्य तावत्कष्टपरम्परा ॥४३
गुरोः सप्तान्तपञ्चद्विस्थानगा वीक्षगा अपि। शनिराहुकुजादित्याः प्रत्येकं देशभङ्गकाः ॥४४
शुक्रार्किभौमजीवानामेकोऽपीन्दुं भिनत्ति चेत्। पतत्सुभटकोटीभिः सप्त प्रेता तदाजिभूः ॥४५
कुम्भी-मीनान्तरेऽष्टम्यां नवम्यां दशमी दिने। रोहिणी चेत्तदा वृष्टिरल्पा मध्याह्निका क्रमात् ॥४६
शाकस्त्रिघ्नो युतो द्वाभ्यां चतुर्भक्तावशेषतः। समशेषे स्वल्पका वृष्टिर्विषमे प्रचुरा पुनः ॥४७
मेघाश्चतुर्विधास्तेषां द्रोणाह्वः प्रथमो मतः। आवर्तः पुष्करावर्तः तुर्यः संवर्तकस्तथा ॥४८
आषाढे दशमी कृष्णा सुभिक्षाय सरोहिणी। एकादशी तु मध्यस्था द्वादशी कालभञ्जनी ॥४९
रविराशेः पुरो भौमो वृष्टिसृष्टि-निरोधकः। भौमाद्या याम्यगाश्चन्द्रश्चोत्तरो वृष्टिनाशनः ॥५०
चित्रास्वातिविशाखासु यस्मिन् मासे प्रवर्षणम्। तन्मासे निर्जला मेघा इति गाङ्गमुनेर्वचः ॥५१
रेवती रोहिणीपुष्यमघोत्तरपुनर्वसू। इत्येते चेन्महीसूनुरूनं तज्जगदम्बुदैः ॥५२
.... ॥५३

स्वाति-पर्यन्त रोहिणी शकट कहलाता है। चन्द्र और राहु यदि एक साथ हों तो यह योग दुर्भिक्ष-कारक होता है ॥४१॥

यदि मंगलके नीचे गुरु हो और गुरुके भी नीचे शनैश्चर हो तो यह ग्रहोंका मुशल योग जानना चाहिए और यह योग जगत्में अरिष्ट-कारक होता है ॥४२॥ जबतक शनि मीन-राशिमें, गुरु कर्क-राशिमें और मंगल तुला-राशिमें चलता है, तब तक कष्टोंकी परम्परा बनी रहती है ॥४३॥ गुरुसे सप्तम, द्वादश, पंचम और द्वितीय स्थानमें गये हुए अथवा उन स्थानोंको देखनेपर भी शनि, राहु, मंगल और सूर्य ये प्रत्येक ग्रह देशका भंग करनेवाले होते है ॥४४॥ यदि शुक्र, शनि, मंगल और गुरु इनमेंसे कोई एक ग्रह चन्द्रभुक्त नक्षत्रको भोगता है, तो रणभूमि धराशायी होते हुए सुभट कोटियोंसे भूत-प्रेतोंवाली होती हैं। अर्थात् युद्धमें करोड़ों योद्धाओंका विनाश होता है ॥४५॥ कुम्भ और मीन राशिके अन्तरालमें अष्टमी, नवमी और दशमीके दिन रोहिणी नक्षत्र हो तो क्रमसे वर्षा अल्प, मध्यम और अधिक होती है ॥४६॥ शकसंवत्सरको तीनसे गुणा करके दो जोड़नेपर जो राशि आवे उसमें चारसे भाग देनेपर यदि समराशि शेष रहे तो स्वल्पवृष्टि और विषम शेष रहनेपर प्रभूत वृष्टि होगी ॥४७॥ मेघ चार प्रकारके होते हैं—उनमें प्रथम द्रोण नामका मेघ है, दूसरा आवर्त, तीसरा पुष्करावर्त और चौथा संवर्तक मेघ है ॥४८॥ आषाढ़ मासमें कृष्णा दशमी रोहिणी नक्षत्रके साथ हो तो वह सुभिक्षके लिए होती है। यदि कृष्णा एकादशी रोहिणी नक्षत्रके साथ हो तो वह मध्यस्थ होती है और यदि कृष्णा द्वादशी रोहिणी नक्षत्रके साथ हो तो वह काल-भंजनी होती है ॥४९॥ रविराशिके आगे मंगल हो तो वह वृष्टिकी सृष्टिका निरोधक है। यदि मंगल आदि ग्रह (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) दक्षिण दिग्वर्ती हों और चन्द्र उत्तर दिग्वर्ती हो तो भी यह योग वृष्टिका नाशक है ॥५०॥ जिस मासमें चित्रा, स्वाति और विशाखा नक्षत्रमें वर्षा हो तो उस मासमें मेघ निर्जल रहते हैं, ऐसा गाङ्गमुनिका वचन है ॥५१॥ यदि रेवती रोहिणी, पुष्य, मघा, तीनों उत्तरा और पुनर्वसु ये नक्षत्र मंगलग्रहके साथ हों तो संसार मेघोंसे हीन रहता है, अर्थात् वर्षा नहीं होती है ॥५२॥ ....
.... ॥५३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलासङ्क्रान्तिषट्कं चेत्स्वस्मात्तु तिथेश्चलेत् । तदा दुस्थं जगत्सर्वं दुर्भिक्षडमरादिभिः ॥५४
दीपोत्सवदिने भौमवारो वह्निभयावहः । सङ्क्रान्तीनां च नैकटयं शुभमर्घादकं न हि ॥५५
अन्तः स्थानं रवेर्ज्येष्ठामावस्यां वीक्ष्य चिह्निताम् । तदुत्तरे स्याच्चेदिन्दोरस्तं तच्छुभदं भवेत् ॥५६
यावती भुक्तिराषाढे शुक्लप्रतिपदादिने । पुनर्वसोश्चतुर्मास्यां वृष्टिः स्यात्तावती स्फुटम् ॥५७

अथवास्तु-शुद्धिगृहक्रमः—

[1]वैशाखे श्रावणे मार्गे फाल्गुने क्रियते गृहम् । शेषमासे पुनः पुण्यं पौषे वाराहसम्मतः ॥५८
मृगसिंहकर्ककुम्भे प्राक्प्रत्यग्मुखं गृहम् । वृषाजालितुलास्थे तु दिग्दक्षिणमुखं शुभम् ॥५९
कन्यायां मिथुने मीने धनुस्थे च रवौ सति । नैव कार्यं गृहं कैश्चिदिदमप्यभिधीयते ॥६०
स्वयोन्यर्क्षं स्वतारांशं स्थिरांशमधिकायकम् । अब्धिद्वादशकं त्रित्रिकोण-षट्काष्टकं शुभम् ॥६१
समाधिकव्ययं कर्त्तुः समानाय यथांशकम् । कुमासधिष्ण्यतारांश्च गृहं वर्ज्यं प्रयत्नतः ॥६२

यदि तुला-संक्रान्तिषट्क (तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन) अपनी तिथिसे (?) चलते हैं अर्थात् जिस तिथिको तुला संक्रान्ति हो, उससे अग्रिम तिथिमें क्रमसे उक्त संक्रान्तियां होनेसे सारा जगत् दुर्भिक्ष, डमर ईति-भीति आदिसे दुःस्थित रहता है ॥५४॥ यदि दीपोत्सव (दीपावली) के दिन मंगलवार हो तो वह अग्निका भय-करता है। संक्रान्तियोंकी निकटतासे वस्तुओंकी मन्दी अच्छी नहीं होती ॥५५॥ ज्येष्ठ मासकी अमावस्याके दिन सायंकालके समय रविमण्डलमें चिह्न (परिवेश) दिखाई दे और उत्तरकालमें यदि चन्द्र अस्त हो तो यह योग शुभप्रद हैं ॥५६॥

विशेषार्थ—श्लोक-प्रतिपादित ऐसा योग तब आता है जबकि उस दिन अमावस्या उदयकालमें १-२ घड़ी ही हो और दूसरे दिन द्वितीयाका क्षय हो तो अमावस्याकी रात्रिमें कुछ क्षण को चन्द्र-दर्शन और चन्द्रास्त होना संभव है।

आषाढ़ मासमें शुक्ला प्रतिपदाके दिन पुनर्वसु नक्षत्रकी जितनी भुक्ति रहती है, उतनी ही वर्षा स्पष्टरूपसे होती है ॥५७॥

अब वास्तु-शुद्धि और गृह-निर्माणका क्रम कहते हैं—वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष और फाल्गुनमें गृह-निर्माण शुभ होता है। किन्तु शेष मासोंमेंसे पौष मासमें भी गृह-निर्माण वाराह-संहिता-सम्मत है ॥५८॥ मृग, सिंह, कर्क और कुम्भमें पूर्व दिशा या पश्चिम दिशाकी ओर गृहका मुख (द्वार) शुभ है। वृष, अजा, अलि और तुला राशिमें गृहका मुख दक्षिण दिशाकी ओर शुभ है ॥५९॥ कन्या, मिथुन, मीन और धनु राशिमें स्थित सूर्यके होनेपर गृह-निर्माण नहीं करना चाहिए, ऐसा कितने ही विद्वान् कहते हैं ॥६०॥

अपनी योनिका नक्षत्र, अपना तारांश स्थिरांश, अधिक आयवाला चतुर्थ-द्वादश (?) तीनों त्रिकोण अर्थात् प्रथम, नवम तथा षडाष्टक (छठा-आठवाँ) योग शुभ होता है ॥६१॥ गृह-कर्ताका (गृहपिण्ड क्षेत्रफलसे साधित) व्यय समान हो, अथवा अधिक हो, दोनोंकी आय समान हो तथा दोनोंका एक ही अंश एवं कुत्सित मास, नक्षत्र तथा तारा गृहमें प्रयत्नपूर्वक त्याज्य है ॥६२॥

---

१. वर्षप्रबोध० ९, ३१ ।
वइसाहे मग्गसिरे सावणि फग्गुणि मयंतरे पोसे ।
सियपक्खे सुहदिवसे कए गिहे हवइ सुहरिद्धी ॥२४॥ (वास्तुसार गृहप्रकरण)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विस्तरेण हतं दैर्ध्यं विभजेदष्टभिस्तथा । यच्छेषं स भवेदायः सो ध्वजाद्याख्ययाष्टधा ॥६३
[1]ध्वजो धूमो हरिः श्वा गौः खरेभौ वायसोऽष्टमः । पूर्वादिदिक्षु चाष्टायो ध्वजादीनामवस्थितिः ॥६४
स्वे स्वे स्थाने ध्वजः श्रेष्ठो गजः सिंहस्तथैव च । [1]ध्वजः सर्वगतो देयो वृषं नान्यत्र दापयेत् ॥६५
[2]वृषं सिंहं गजं चैव खेटकर्वटकोटयोः । द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापीकूपसरस्सु च ॥६६
[3]मृगेन्द्रमासने दद्याच्छयनेषु गजं पुनः । वृषं भोजनपात्रेषु छत्रादिषु पुनर्ध्वजम् ॥६७
अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहे वह्न्युपजीविनाम् । धूमं च योजयेत् किञ्च श्वानं म्लेच्छादिजातिषु ॥६८

गृह-भूमिके दैर्घ्यं (लम्बाई) को विस्तार (चौड़ाई) से गुणा करनेपर जो क्षेत्रफल हो उसे आठसे भाजित करे, जो शेष रहे वह आय होता है। वह आय ध्वज आदिके भेदसे आठ प्रकारका है ॥६३॥ वे आठ आय ये हैं—ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृषभ, खर, हस्ती, और अष्टम वायस (काक) इन आठों प्रकारके आयोंकी अवस्थिति पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमसे जानना चाहिए ॥६४॥

आयोंकी अवस्थिति और फलकी द्योतक संदृष्टि इस प्रकार है—

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८
आय	ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	वृषभ	खर	गज	वायस
दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
फल	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ

अपने-अपने स्थानमें उक्त ध्वज श्रेष्ठ हैं; इसी प्रकार गज और सिंह भी श्रेष्ठ हैं। ध्वज आय सर्वत्र श्रेष्ठ हैं। वृषभको अपने स्थानके सिवाय अन्यत्र नहीं देना चाहिए ॥६५॥ वृषभ, सिंह और गज चिह्नको खेट और कर्वट वसतियोंके कोटोंपर करना चाहिए। तथा गज, आय कूप, (वापी) और सरोवरपर प्रयुक्त करना चाहिए ॥६६॥

बैठनेके आसनपर सिंह आय देवे और सोनेकी शय्यापर गज आय देवे। भोजनके पात्रोंपर और छत्र आदिपर ध्वज आय देना चाहिए ॥६७॥ सभी अग्निगृहों (रसोई घरों) पर, तथा

१. धय-धूम-सीह-साणा विस-खर-गय-धंख-अट्ठ आय इमें । विश्वकर्म प्रकाश २, श्लोक ५२-५८
पुव्वाइ धयाइ ठिई फलं च नामाणुसारेण ॥ (वास्तुसार १, ५२,)

२. धय गय सीहं दिज्जा संते ठाणे धओ अ सव्वत्थ ।

३. गय-पंचाणण-वसहा खेडय तह कव्वडाईसु ॥५४॥
वावीकूवतडागे सयणेय गओय आसणे सीहो ।
वसहो भोअणपत्ते छत्तालंबे धओ सिट्ठो ॥५५॥
विस-कुंजर-सीहाया नयरे पासाय-सव्वगेहेसु ।
साणं मिच्छाईसुं धंखं कारु अगिहाईसु ॥५६॥
धूमं रसोइठाणे तहेव गेहेसु वण्हिजीवाणं । रासहु वसाणगिहे धय-गय-सीहाउ रायगिहे ॥५७॥
(वास्तुसार १, ५४-५७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खरो वेश्यागृहे शस्तो ध्वाङ्क्षः शेषकुटीषु तु। वृषः सिंहो गजश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु ॥६९
[1]आयामे विस्तरहते योऽङ्कः सञ्जायते किल। स मूलराशिर्विज्ञेयो गृहस्य गणकैः सदा ॥७०
अष्टभिर्गुणिते मूलराशावस्मिन् विशारदैः। सप्तविंशतिभक्तेऽथ शेषं तद्-गृहभं भवेत् ॥७१

[2]नक्षत्राङ्केऽष्टभिर्भक्ते योऽङ्कः स स्याद् गृहे व्ययः।
पैशाचो राक्षसो यक्षः स त्रिधा स्मर्यते व्ययम् ॥७२

पैशाचस्तु समाऽऽयः स्याद् राक्षसश्चाधिके व्यये। आयान्न्यूनतरो यक्षो व्ययस्यैषा विचारणा ॥७३
[2]मूलराशौ व्यये क्षिप्ते गृहनामाक्षरेषु च। ततो हरेन्त्रिभिर्भागं यच्छेषं सोंऽशको भवेत् ॥७४
इन्द्रो यमश्च राजा च गृहांशाश्च त्रयस्त्विमे। [3]गृहभस्वामिभैक्यस्य भक्तस्य नवभिः पुनः ७५
यच्छेषं सा भवेत्तारा तारानामान्यमूनि च। जन्म-सम्पद्-विपद्-क्षेमाः प्रत्यरिः साधनीति च ॥७६

अग्निसे आजीविका करनेवाले सुनार-लोहार आदिके गृहोंपर धूम आय योजित करे। म्लेच्छ आदि जातियोंके घरोंपर श्वान आय देना चाहिए ॥६८॥ वेश्याके घरपर खर आय उत्तम है और शेष जातिकी कुटियोंपर ध्वांक्ष (काक) आय देना चाहिए। राजप्रासादोंपर एवं नगरोंके उत्तम भवनोंपर वृषभ, सिंह और गज आय श्रेष्ठ है ॥६९॥

गृहकी लम्बाईको विस्तारके प्रमाणसे गुणित करनेपर जो अंक प्राप्त होता है, वह गणना करनेवाले ज्योतिषियोंको सदा गृहकी मूलराशि जानना चाहिए ॥७०॥ इस मूलराशिमें विद्वानोंके द्वारा आठसे गुणा करनेपर और सत्ताईससे भाग देनेपर जो शेष रहे वह गृहका नक्षत्र होता है ॥७१॥ नक्षत्रके अंकमें आठसे भाग देनेपर जो अंक प्राप्त हो वह गृह-निर्माणमें व्यय-सूचक होता है। यह व्यय तीन प्रकारका कहा गया है—पैशाच, राक्षस और यक्ष व्यय ॥७२॥ इनमें पैशाच व्यय समान आयका सूचक है, राक्षस अधिक व्ययका सूचक है और यक्ष आयसे अतिहीन व्ययका सूचक है। व्ययके विषयमें यह ज्योतिष विचारणा है ॥७३॥

मूलराशिमें व्ययके क्षेपण करनेपर और गृहके नामवाले अक्षरोंके क्षेपण करनेपर तीनसे भाग देवे, जो शेष रहे, वह अंशक (क्षेत्रफल) होता है ॥७४॥ इन्द्र, यम और राजा ये तीन प्रकारके अंश होते हैं, गृहका नक्षत्र और गृहस्वामीका नक्षत्र इन दोनोंके जोड़नेपर जो राशि आवे, उसमें नौसे भाग देनेपर जो शेष बचे, उसे 'तारा' कहते हैं। (वे नौ होती हैं—) १. जन्म, २. सम्पद्, ३. विपद्, ४. क्षेम, ५. प्रत्यरि, ६. साधक, ७. नैधनी, ८. मैत्रिका और ९. परममैत्रिका। चार, छह और नौ संख्यावाली ताराएँ श्रेष्ठ हैं, सात, पाँच और तीन

---

१. दीहं वित्थर गुणियं ज जायइ मूलरासितं नेयं। अट्ठगुणं उडुमत्तं गिहनक्खत्तं हवइ सेसं ॥५८॥
गिहरिक्खं चउगुणियं नवमत्तं लद्धु मुत्तरासीओ। गिहरासि सामिरासी सडट्ठ दु दुबालसं असुहं ॥५९॥
वसुभत्त रिक्खसेसं वयं तिहा जक्ख-रक्खस-पिसाया। आउ अंकाउ कमसो हीणाहियसयं मुणेयव्वं ॥६०॥
जक्खवओ विद्धिकरो धणणासं कुणइ रक्खसवओ य।
मज्झिमवओ पिसाओ तहय जमंसं च वज्जिज्जा ॥६१॥

२. मूलरासिस्स अंकं गिहनामक्खर वयंकसंजुत्तं। तिविहुसु सेस अंसा इंदंस-जमंस-रायंसा ॥६२॥
गेहसामियपिंडं नवभत्तं सेस छ-चउ-नव सुहया। मज्झिम दुग इग अट्ठा ति पंच सचइमा तारा ॥६३॥
(वास्तुसार, गृह प्रकरण)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नैधनी मैत्रिका चैव तथा परममैत्रिकाः । चतुःषन्नव च श्रेष्ठा सप्त पञ्च त्रयोऽधमाः ॥७७
राक्षसामरमर्त्योक्तगणनक्षत्रकादिकम् । ज्ञेयं ज्योतिष्मतः ख्यातमिदमित्यत्र नोदितम् ॥७८
[1]ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम् । सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं स्वपक्षं धनदं क्षयम् ॥७९
आक्रन्दं विपुलं चैव विजयं चेत्यमूर्भिदा । गृहस्य स्वस्य नाम्नापि सदृशं च भवेत्फलम् ॥८०
[2]यो गुरूणां चतुर्णां स्यात्प्रस्तारश्छन्दसा कृतः । षोडशान्त इमे भेदाः स्युस्तन्नामान्यलिन्दकैः ॥८१

संख्यावाली ताराएँ अधम हैं। शेष तीन अर्थात् एक, दो और आठ संख्यावाली ताराएँ सम हैं ॥७५-७७॥

गण तीन प्रकारके होते हैं—राक्षस, देव और मनुष्य। इनका अर्थ ज्योतिष शास्त्रमें प्रसिद्ध है, इसलिये उसका प्रतिपादन नहीं किया ॥७८॥ गृह सोलह प्रकारके होते हे, उनके नाम इस प्रकार हैं—१. ध्रुव, २. धान्य, ३. जय, ४. नन्द, ५. खर, ६. कान्त, ७. मनोरम, ८. सुमुख, ९. दुर्मुख, १०. क्रूर, ११. स्वपक्ष, १२. धनद, १३. क्षय, १४. आक्रन्द, १५. विपुल और १६. विजय। गृहके अपने नामके अनुसार इनका फल होता है ॥७९-८०॥

विशेषार्थ—उक्त दो श्लोकोंमें सोलह प्रकारके गृहों (घरों) के जिस फलकी सूचनाकी गई, उसका खुलासा इस प्रकार है—ध्रुवगृहमें जय प्राप्त होती है, धान्यमें धान्यका आगमन होता है, जयमें शत्रुओंको जीतता है, नन्दमें सर्वप्रकारकी समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं, खर कष्टप्रद होता है, कान्तमें लक्ष्मी प्राप्त होती है तथा आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और धन-सम्पदा भी मिलती है, मनोरम गृहमें गृहस्वामीका मन सन्तुष्ट रहता हैं, सुमुखमें राज-सन्मान मिलता है, दुर्मुखगृहमें सदा कलह होता रहता। क्रूर गृहमें व्याधियोंका भय बना रहता है, स्वपक्षमें वंशकी वृद्धि होती हैं, धनदगृहमें स्वर्ण-रत्नादिकी वृद्धि होती है और गायोंकी भी प्राप्ति होती है, क्षयगृहमें सर्व विनाश होता है। आक्रान्द गृहमें जाति एवं कुटुम्बवालोंकी मृत्यु होती है, विपुलघरमें निरोगता प्राप्त होती है और विजयगृहमें सर्व सम्पत्तियाँ बनी रहती हैं *।

चार गुरु मात्राओंके संयोगसे छन्दशास्त्रके अनुसार जो प्रस्तार बनते हैं उसके अनुसार उक्त

---

१. धुव-धन्न-जया नंद-खर-कंत-मणोरमा सुमुह-दुमुहा ।
कूर-सुपक्ख-धणद-खय-आक्कंद-विउल-विजया गिहा ॥७२॥
२. चत्तारि गुरुठविउं लहुओ गुरुहिंठि सेस उवरिसमा । ऊणेहिं गुरु एवं पुणो पुणो जाव सव्वलइ ॥७३॥
तं धुव धन्नाइणं पुव्वाइ-लहूहिं साल नायव्वा । गुरुवाणि मित्ती नामसमं हवइ फलमेसिद्धि ॥७४॥
(वास्तुसार)

* ध्रुवे जयमाप्नोति धन्ये धान्यागमो भवेत् । जये सपत्नाज्जयति नन्दे सर्वाः समृद्धयः ॥१॥
खरमायासदं वेश्म कान्ते च लभते श्रियम् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं तथा वित्तस्य सम्पदः ॥२॥
मनोरमे मनस्तुष्टिर्गृहभर्तुः प्रकीर्तिता । सुमुखे राजसन्मानं दुर्मुखे कलहः सदा ॥४॥
क्रूर-व्याधि-भयं क्रूरे स्वपक्षं गोत्रवृद्धिकृत् । धनदे हेमरत्नादि गाश्चैव लभते पुमान् ॥५॥
क्षयं सर्वक्षयं गेहमाक्रन्दं ज्ञातिमृत्युदम् । आरोग्यं विपुले ख्यातिर्विजये सर्वसम्पदः ॥६॥
(समरांगणसे उद्धृत, वास्तुसार पृ० ३९-४०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]पूर्वस्यां श्रीगृहं कार्यमाग्नेयायां तु महानसम्। शयनं दक्षिणस्यां तु नैऋत्यामायुधादिकम् ॥८२
भुञ्जिक्रिया पश्चिमायां वायव्यां धान्यसङ्ग्रहः। उत्तरस्यां जलस्थानमैशान्यां देवतागृहम् ॥८३
पूर्वादिदिग्विदिग्दशे गृहद्वारव्यपेक्षया। भास्करोदयदिक्पूर्वा विज्ञेया च यथाकृते ॥८४
गृहेषु हस्तसङ्ख्यानं मध्यकोणो विधीयते। समाः स्तम्भाः समाऽऽयाय विषमाश्च ऋणाः पुनः ॥८५
आये नष्टे सुखं न स्यान्मृत्युः षष्ठाष्टके पुनः। द्विर्द्वादशे च दारिद्र्यं त्रिकोणकेऽङ्गजक्षयः ॥८६
यमांशे गृहि-मृत्युः स्यान्मृतिः सप्तमतारके। निस्तेजः पञ्चमे तारे विपत्तारे तृतीयके ॥८७
न्यूनाधिके च पट्टीनां तुलावेध उपर्यधः। एकक्षणे च पट्टीनां न भवेत्तालुवेधता ॥८८
भूवैषम्ये तलो वेधो द्वारभेदश्च घोटके। एकस्मिन् सम्मुखे द्वाभ्यां पुनर्नैव कदाचन ॥८९
वास्तोर्वक्षसि शीर्षे च नाभौ च स्तनयोर्द्वयोः। गृहस्येमानि मर्माणि नैषु स्तम्भादि सूत्रयेद् ॥९०

सोलह भेद होते हैं, ऐसी गणितज्ञोंकी मान्यता है ॥८१॥ गृहकी पूर्व दिशामें श्रीगृह (कोष-भाण्डार) करना चाहिए। आग्नेय दिशामें रसोई घर, दक्षिण दिशामें शयनकक्ष और नैऋत्य दिशामें आयुध (शस्त्रास्त्र) आदि रखनेका स्थान नियत करना चहिए ॥८२॥ भोजन करनेका स्थान पश्चिम दिशामें, धान्यसंग्रह वायव्य दिशामें, जलस्थान उत्तर दिशामें और देवता-गृह ईशान दिशामें नियत करना चाहिए ॥८३॥

घरके द्वारकी अपेक्षा पूर्व आदि दिशा और विदिशा मानी जाती है। अथवा यथारीतिसे निर्मित भवनमें सूर्यके उदयवाली पूर्व दिशा (और तदनुसार अन्य दिशाएँ) जानना चाहिए ॥८४॥ घरोंमें हाथोंकी गणनासे मध्यमवर्ती कोण (केन्द्र) का विधान किया जाता हे। गृह-निर्माणमें यदि सम-संख्यावाले स्तम्भ लगे हों, तो वे समान आय (आमदनी) के सूचक हैं और यदि विषम संख्याके स्तम्भ लगे हों तो वे ऋण (कर्ज) के सूचक हैं ॥८५॥ आयके नष्ट होने पर सुख नहीं होता है। गृह और गृह-स्वामी की राशियोंमें यदि षडाष्टक योग हो, तो वह मृत्यु-कारक है। दूसरी और बारहवीं राशि होने पर दारिद्र्य होता है। और त्रिकोण (नवम-पंचम) होने पर पुत्र-का क्षय होता है ॥८६॥ यदि गृह यमांशमें है, तो गृह-स्वामीकी मृत्यु होती है। सातवें तारामें मृत्यु, पंचम तारामें तेजो-हीनता और तृतीय तारामें विपत्ति, होती है ॥८७॥

भवनके नीचे या ऊँचे खंडके पाटनमें पटियोंकी न्यूनाधिकताको 'तुलावेध' कहते हैं। एक ही खंडमें पटिया यदि नीचे-ऊँचे हों तो उसे 'तालुवेध' कहते हैं ॥८८॥ भवनकी भूमिके विषम (नीची ऊँची होनेको) 'तलवेध' कहते हैं। द्वारभेद तथा घोटक (घुड़साल) आदिमेंसे एक भी दोषके सामने होनेपर भवन-निर्माण नहीं करना चाहिए। यदि दो दोष हों तो कभी भी भवन न बनावे ॥८९॥

वास्तु क्षेत्ररूप पुरुषके वक्षःस्थल शिर नाभि और दोनों स्तन ये पाँच मर्म-स्थान होते हैं। इन पर स्तम्भ आदिको खड़ा नहीं करना चाहिए ॥९०॥

---

१. पुव्वे सिरिहर-दारं अग्गीइ रसोइ दाहिणे सयणं। नेरइ नीहार ठिइ भोयण ठिइ पच्छिमे भणियं ॥१०७॥
वायव्वे सव्वायुह कोसुत्तर धम्मठाणु ईसाणे। पुव्वाइ विणिद्देसो मूलगिहदार-विक्खाए ॥१०८॥
(वास्तुसार, पृ० ५६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तम्भकूपतरुकोणाध्वविद्धं द्वारं शुभं न हि । गृहोच्चद्विगुणं भूमिं त्यक्त्वा ते स्युर्न दोषदाः ॥९१
[1]प्रक्रमान्त्ययामवर्ज्यं द्वित्रिप्रहरसम्भवा । छाया वृषभध्वजादीनां सदा दुःखप्रदायिनी ॥९२

स्तम्भ, कूप, वृक्ष, कोण और मार्गसे यदि भवनका द्वार विद्ध है, तो वह शुभ नहीं है। परन्तु घरकी ऊँचाईको दूना करके जो प्रमाण आवे, उतनी यदि भूमि छोड़ दी जावे तो उक्त वेधादि दोष नहीं होते हैं ॥९१॥

विशेषार्थ—भवनके निर्माण करते समय सर्व प्रकारके भूमि दोषोंको शुद्ध करके द्वार स्थापन करे। उसमें वेधका विचार होता है। वेध सात प्रकारके होते हैं—१ तलवेध, २ कोणभेद, ३ तालुवेध, ४ कपालवेध, ५ स्तम्भभेद, ६ तुलाभेद और ७ द्वारभेद। घरकी भूमि कहीं सम और कहीं विषम हो, द्वारके सामने कुंभी (तेल निकालनेकी घानी, ईख पेलनेकी कोल्हू) हो, कुँआ हो या दूसरेके घरका रास्ता हो तो तलवेध जानना चाहिए। यदि घरके कोने बराबर न हों तो कोणवेध समझना चाहिए। भवनके एक ही खंडमें पीढे नीचे ऊँचे होनेको तालुवेध कहते हैं। द्वारके ऊपर पटियेपर गर्भ (मध्य) भागमें पोढा आवे तो उसे शिरवेध (कपालवेध) कहते हैं। घरके मध्यभागमें एक खंभा हो, अथवा अग्नि या जलका स्थान हो तो उसे उरःशल्य (स्तम्भवेध) जानना चाहिए। घरके नीचे या ऊपरके खंडमें पीढे (पटिये, पट्टी) न्यूनाधिक हों, तो उसे तुलावेध कहते हैं। जिस घरके द्वारके सामने या बीचमें वृक्ष, कुआँ, खम्भा, कोना या कीला (खूँटा) हो तो उसे द्वारवेध कहते हैं। किन्तु घरकी ऊँचाईसे दुगुनी भूमि छोड़नेके बाद यदि वृक्षादि हों तो कोई दोष नहीं है। उक्त वेधोंका फल वास्तुसारमें इस प्रकार बतलाया गया है—तलवेधसे कुष्टरोग कोणवेधसे उच्चाटन, तालुवेधसे भय, स्तम्भवेधसे कुलका क्षय, कपाल (शिर) वेध और तुलावेधसे धनका विनाश होता है और क्लेश, लड़ाई-झगड़ा बना रहता है। इसलिए वेधोंका ऐसा फल जानकर घरको उक्त वेध दोषोंसे रहित शुद्ध बनाना चाहिए। प्रकृतमें ग्रन्थकारने इनमेंसे चार वेधोंका निरूपण ८८ और ८९वें श्लोकमें किया है। शेष भेदोंको सूचना ९०वें श्लोकमेंकी गई है। ॐ

प्रारम्भके और अन्तके प्रहरको छोड़ कर दूसरे और तीसरे प्रहरमें होनेवाली वृषभध्वज

---

१. पढमंत जाम वज्जिय धयाइ-दु-तिपहर-संभवा छाया । दुहहेऊ नायव्वा तओ पयत्तेण वज्जिज्जा ॥१४३॥
(वास्तुसार, गृहप्रकरण)

ॐ मूलाओ आरंभो कीरइ पच्छा कमे कमें कुज्जा । सव्वं गणियविसुद्धं वेहो सव्वत्थ वज्जिज्जा ॥११५॥
तलवेह कोणवेहं तालुयवेहं कवालवेहं च । तह थंभ तुलावेहं दुवारवेहं च सत्तमयं ॥११६॥
सम-विसमभूमि कुंभि य जलपूरं परगिहस्स तलवेहो । कूणसमं जइ कूणं न हवइ ता कूणवेहो य ॥११७॥
इक्कखणे नीचुच्चं पीढं तं मुणह तालुयावेहं । वारस्सुवरिमपट्टे गब्भे पीढं च सिरवेहं ॥११८॥
गेहस्स मज्झि भाए थंभेगं तं मुणेह उरसल्लं । अह अनलो विनलाइं हविज्ज जा थंभवेहो सो ॥११९॥
हिट्ठिय-उवरि खणाणं हीणाहिय पीढ तं तुलावेहं । पीढा समसंखाओ हवंति जइ तह न हु दोसो ॥१२०॥
दुम-कूव-थंभ-कोणय-किलाविद्धे दुवारवेहो य । गेहुच्च विउणभूमो तं न विरुद्धं बुहा विंति ॥१२१
वेधफलम्—
तलवेहि कुट्ठरोया हवंति उच्चे य कोणवेहम्मि । तालुय-वेहेण भयं कुलक्खयं थंभवेहेणं ॥१२२॥
कावाल, तुलवेहे धणणासो हवइ रोरभावो य । इअ वेहफलं नाउं सुद्धं गेहं करेअव्वं ॥१२३॥
(वास्तुसार, गृहप्रकरण)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[1]वर्जयेदर्हतः पृष्ठिं दृष्टिं चण्डीश-सूर्ययोः। वामाङ्गं वासुदेवस्य दक्षिणं ब्रह्मणः पुनः ॥९३

अथ गृहवृद्धिक्रमः—

न दोषो यत्र वेधादि न च यत्राखिलं दलम्। बहुद्वाराणि नो यत्र यत्र च नास्य संशयः ॥९४
पूज्यते देवता यत्र यत्राभ्युक्षणमादरात्। रक्ता यवनिका यत्र यत्र सन्मार्जनादिकम् ॥९५
यत्र ज्येष्ठकनिष्ठादिव्यवस्था सुप्रतिष्ठिता। भानवीया विशन्त्यन्तर्भानवो नैव यत्र तु ॥९६
दीपको दीप्यते यत्र पालनं यत्र रोगिणाम्। श्रान्तसंवाहना यत्र तत्र स्यात्कमला गृहे ॥९७

(चतुर्भिः कलापकम्)

चन्दनादर्शहेमोक्षव्यजनासनवाजिनः। शङ्खाद्युदधिपत्राणि चैतानि गृहवृद्धये ॥९८
दद्यात्सौख्यामृतं वाचमभ्युक्षणमथासनम्। शक्त्या भोजनताम्बूले शत्रावपि गृहागते ॥९९
मूर्खधार्मिकपाखण्डिपतितस्तेनरोगिणाम्। क्रोधनान्त्यजदृप्तानां गुरुतुल्यकवैरिणाम् ॥१००
स्वामिवञ्चकलुब्धानां ऋषिस्त्रीबालघातिनाम्। इच्छन्नात्महितं धीमान् प्रकृतां सङ्गतिं त्यजेत् ॥१०१

आदिकी छाया सदा ही दुःखको देनेवाली होती है ॥९२॥ अरहन्तदेवकी ओर पीठको, महेश और सूर्यकी ओर दृष्टिको, वासुदेवकी ओर वाम अंगको और ब्रह्माकी ओर दक्षिण अंगको नहीं करना चाहिए ॥९३॥

अब घरकी वृद्धिका क्रम कहते हैं—जिस घरमें वेध (ऊँचाई आदि) का कोई दोष नहीं है, और जहाँ पर समस्त प्रकारके कोई दल नहीं हैं, जिस घरमें बहुत द्वार नहीं है और न जहाँ पर शत्रुके आने आदिका कोई संशय है, जहाँपर देवता पूजे जाते हैं, जहाँ पर आदरसे अभ्युक्षण (अतिथि-स्वागत) होता है जहाँ पर लाल वर्णका पड़दा लगा हुआ है, जहाँपर भलीभाँतिसे प्रमार्जन आदि होता है, जहाँ पर बड़े और छोटे भाई आदिकी व्यवस्था भले प्रकारसे प्रतिष्ठित है, जहाँ पर सूर्यकी किरणें भीतर प्रवेश नहीं करती है, जहाँ पर दीपक सदा प्रदीप्त रहता है, जहाँ पर रोगी पुरुषोंका पालन-पोषण होता है, और जहाँ पर थके हुए मनुष्योंकी संवाहना (पगचम्पी आदि वैयावृत्त्य) होती है, उस घरमें कमला (लक्ष्मी) निवास करती है ॥९४-९७॥

चन्दन, दर्पण, हेम, उक्ष (वृषभ) व्यंजन (पंखा) आसन वाजी (अश्व), शंख और समुद्रोत्पन्न मूँगा आदि ये सब वस्तुएँ घरकी वृद्धिके लिए होती हैं ॥९८॥ शत्रुके भी घरमें आनेपर सुखकारक अमृतमयी वाणी बोले, उसके स्वागतार्थ उठे और योग्य आसन प्रदान करे। तथा अपनी शक्तिके अनुसार भोजन करावे और ताम्बूल-प्रदान करे ॥९९॥ मूर्ख अधार्मिक, पाखण्डी, पतित, चोर, रोगी पुरुष, क्रोधी, अन्त्यज (चाण्डाल) मदोन्मत्त, गुरु-तुल्य श्रेष्ठ पुरुषोंके वैरी, स्वामि-वंचक, लुब्धक, तथा ऋषि, स्त्री और बालकोंके घातक पुरुषोंकी संगतिको आत्म-हित चाहनेवाला बुद्धिमान् पुरुष छोड़े ॥१००-१०१॥

---

१. वज्जिज्जई जिणपिट्ठी रवि-ईसरदिट्ठि विण्हुवामभुआ।
सव्वत्थ असुह चंडी बंभाणं चउदिसिं चयह ॥१४१॥
अरिहंतदिट्ठि दाहिण हरपुट्ठी वामएसु कल्लाणं।
विवरीए बहुदुक्खं परं न मग्गंतरे दोसो ॥४३॥ (वास्तुसार, गृहप्रकरण)

११.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःखं देवकुलासन्ने गृहे हानिश्चतुःपथे। धूर्तमत्तगृहाभ्यासे स्यातां सुतधनक्षयौ ॥१०२
खर्जूरी-दाडिमी-रम्भा-कर्कन्धू-बीजपूरकाः। उत्पद्यन्ते गृहे यत्र तन्निकृत्तन्ति मूलतः ॥१०३
प्लक्षाद् रोगोदयं विद्यादश्वत्थात्तु सदा भयम्। नृपपीडा वटाद् गेहे नेत्रव्याधिर्मुदुम्बरात् ॥१०४
लक्ष्मीनाशकरः क्षीरी कण्टकी शत्रुभयप्रदा। अपत्यघ्नः फली तस्मादेषां काष्ठमपि त्यजेत् ॥१०५
कश्चिदूचे पुरोभागे वटः श्लाघ्य उदुम्बरः। दक्षिणे पश्चिमेऽश्वत्थो वामे प्लक्षस्तथोत्तरे ॥१०६

अथ शिष्यावबोधक्रमः—

गुरुः सोमश्च सौम्यश्च श्रेष्ठोऽनिष्टौ कुजासितौ।
विद्यारम्भे बुधः प्रोक्तो मध्यमौ भृगुभास्करौ ॥१०७

पूर्वात्रयं श्रुतिद्वन्द्वं विद्यादौ मूलमश्विनी। हस्तः शतभिषक् स्वातिश्चित्रा च मृगपञ्चकम् ॥१०८

अक्रुद्धः शास्त्रमर्मज्ञो ह्यनालस्यो मदोज्झितः।
हस्तसिद्धस्तथा वाग्मी कलाचार्यो मतः सताम् ॥१०९

पितृभ्यामीदृशस्यैव कलाचार्यस्य बालकः। वत्सरात्पञ्चमादूर्ध्वमर्पणीयः कृतोत्सवम् ॥११०
इष्टानामप्यपत्यानां वरं भवतु मूर्खता। नास्तिकाद् दुष्टचेष्टाश्च न च विद्यागुरोर्न तु ॥१११

देव-कुलके समीप घरके होने पर दुःख होता है, चतुष्पथों (चौराहों) में घरके होने पर अर्थ-हानि होती है, धूर्त्त और मदिरासे उन्मत्त रहनेवाले पुरुषोंके घरके समीप घर होने पर पुत्र और धनका क्षय होता है ॥१०२॥ जिस घरमें खजूर, अनार, केला, वेरी, और विजोरे उत्पन्न होते हैं, वे वृक्ष घरका मूलसे विनाश कर देते हैं ॥१०३॥ घरमें प्लक्ष (पिलखन) के वृक्षसे रोगोंकी उत्पत्ति होती हैं, पीपलके वृक्षसे सदा भय रहता है, वट वृक्षसे राजा-जनित पीड़ा होती है और ऊमरके वृक्षसे नेत्र-व्याधि होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥१०४॥ घरमें क्षीरी (दूधवाले) वृक्ष लक्ष्मीका नाश करते हैं, कंटकवाला वृक्ष शत्रुका भय प्रदान करते हैं और फली (प्रियंगु) वृक्ष पुत्र-घातक होता है, इसलिए इन वृक्षोंके काष्ठ तकको भी छोड़ देना चाहिए ॥१०५॥ कोई-कोई विद्वान् कहते हैं कि वट बृक्ष घरके पूर्व भागमें दक्षिण-भागमें उदुम्बर वृक्ष, पश्चिम भागमें पीपल और उत्तर भागमें प्लक्ष वृक्ष प्रशंसनीय होता है ॥१०६॥

अब शिष्योंको ज्ञान-प्रदान करनेका क्रम कहते हैं—शिष्योंको विद्या पढ़ानेके प्रारम्भमें गुरु और सोमवार सौम्य और श्रेष्ठ हैं, मंगल और शनिवार अनिष्टकारक हैं, शुक्र और रविवार मध्यम हैं। विद्वानोंने विद्याके आरम्भमें बुधवार उत्तम कहा है ॥१०७॥ विद्यारम्भमें तीनों पूर्वाएँ, श्रुतिद्वन्द्व (श्रवण-धनिष्ठा) मूल, अश्विनी, हस्त, शतभिषा, स्वाति, चित्रा और मृगपंचक (मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा) ये नक्षत्र उत्तम होते है ॥१०८॥

अब पढ़ानेवाले आचार्यका स्वरूप कहते हैं—जो क्रोधी न हो, शास्त्रोंके मर्मका ज्ञाता हो, आलस्य-रहित हो, मद-अहंकारसे विमुक्त हो, हस्तसिद्ध हो और उत्तम वाणीवाला हो, ऐसा कलाचार्य सज्जनों द्वारा श्रेष्ठ माना गया है ॥१०९॥ माता-पिता पाँच वर्षसे ऊपर होनेपर उत्सव करके अपना बालक उपर्युक्त प्रकारके कलाचार्यको विद्या पढ़ानेके लिए समर्पण करें ॥११०॥ अपने इष्ट भी पुत्रोंका मूर्ख रहना उत्तम है, किन्तु नास्तिक और दुष्ट चेष्टावाले विद्यागुरुसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्ययार्पितया किन्तया नास्तिक्यादिदूषिता । स्वर्णेनापि हि किं तेन कर्णच्छेदं करोति यत् ॥११२
आचार्यो मधुरैर्वाक्यैः साभिप्रायावलोकनैः । शिष्यं शिक्षणनिर्लज्जं कुर्याद् बन्धनताड़नैः ॥११३
मस्तके हृदये वापि प्राज्ञश्छात्रं न ताडयेत् । अधोभागे शरीरस्य पुनः किञ्चिच्च शिक्षयेत् ॥११४

कृतज्ञाः शुचयः प्राज्ञकल्पा द्रोहविवर्जिताः ।
गुरुभिस्त्यक्तशाठ्याश्च पाठ्याः शिष्या विवेकिनः ॥११५

मधुराहारिणा प्रायो ब्रह्मव्रतविधायिना । दयादानादिशीलेन कौतुकालोकवर्जिना ॥११६
कपर्दप्रमुख-क्रीडा-विनोदपरिहारिणा । विनीतेन च शिष्येण सुपठितव्यमन्वहम् ॥११७॥ युग्मम् ।
गुरुष्वविनयो धर्मे विद्वेषः स्वगुणैर्मदः । गुणिषु द्वेष इत्येताः कालकूटच्छटाः स्फुटाः ॥११८
कलाचार्यस्य वाऽजस्रं पाठको हितमाचरेत् । निःशेषमपि चामुष्मै लब्धं चैव निवेदयेत् ॥११९
गुरोः सनगरग्रामां ददाति यदि मेदिनीम् । तदापि न भवत्येव कथञ्चिदनृणः पुमान् ॥१२०
उपाध्यायमुपासीत तदनुद्धतवेषभृत् । विना पूज्यपदं पूज्यं नाम नैव सुधीर्वदेत् ॥१२१
आत्मनश्च गुरोश्चैव भार्यायाः कृपणस्य च । क्षीयते वित्तमायुश्च मूलनामानुकीर्तनात् ॥१२२
चतुर्दशी-कूहूराकाऽष्टमीषु न पठेन्नरः । सूतकेऽपि तथा राहु-ग्रहणे चन्द्र-सूर्ययोः ॥१२३

पढ़ाना अच्छा नहीं है ॥१११॥ उस पढ़ाई गई विद्यासे क्या लाभ है जो कि नास्तिकता आदि दोषोंसे दूषित हो । उस सुवर्णके पहिरनेसे क्या लाभ है जो कानको छिन्न-भिन्न करता है ॥११२॥

आचार्य मधुर वाक्योंके द्वारा उत्तम अभिप्राययुक्त अवलोकनोंसे तथा समयोचित्त बन्धन और ताड़नसे शिष्यको शिक्षा ग्रहण करनेमें लज्जा और झिझकसे रहित करे ॥११३॥ बुद्धिमान् आचार्य मस्तक पर और हृदयपर छात्रको नहीं मारे। किन्तु शरीरके अधोभागमें (आवश्यक होनेपर कभी) कुछ ताड़ना देवे ॥११४॥

अब शिष्योंका स्वरूप कहते हैं—जो गुरु-कृत उपकारके माननेवाले हों, शौचधर्मयुक्त हों, पंडित-सदृश बुद्धिमान हों, द्रोहसे रहित हों, शठतासे विमुक्त हों और विवेकी हों, ऐसे शिष्य गुरुजनोंको पढ़ाना चाहिए ॥११५॥ मधुर आहारी, प्रायः ब्रह्मचर्यव्रतका धारक, दया, दान आदि करनेके स्वभाववाला, नाटक कौतुक देखनेका त्यागी, कौंडी आदिसे क्रीड़ा-विनोदका परिहारी और विनीत शिष्यको प्रतिदिन पढ़ना चाहिए ॥११६–११७॥ गुरुजनोंमें विनयभाव नहीं रखना, धर्ममें विद्वेषभाव रखना, अपने गुणोंका मद करना और गुणीजनोंपर द्वेष करना, ये सब कार्य विद्या पढ़नेके इच्छुक शिष्यके लिए स्पष्ट रूपसे कालकूट विषकी छटाके समान दुःखदायक हैं ॥११८॥ पढ़नेवाले शिष्यको कलाचार्यके प्रति सदा ही हितकारक आचरण करना चाहिए। तथा विद्याभ्यासके समय जो कुछ भी उसे प्राप्त हो, वह सम्पूर्ण ही गुरुके लिए समर्पण कर देना चाहिए ॥११९॥ यदि कोई सभी नगरों और ग्रामोंके साथ सारी पृथ्वीको भी देता है, तो भी वह पुरुष किसी भी प्रकारसे गुरुके ऋणसे रहित नहीं होता है ॥१२०॥

उद्धतता-रहित वेषका धारक शिष्य अपने उपाध्यायकी भली प्रकारसे उपासना करे। बुद्धिमान् शिष्यको पूज्यपद लगाये बिना पूज्य गुरुका नाम नहीं बोलना चाहिए ॥१२१॥ अपना, गुरुका, पत्नीका और कृपण पुरुषका मूल नाम उच्चारण करनेसे धन और आयु क्षीण होती है ॥१२२॥ चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णमासी और अष्टमीके दिन मनुष्यको नहीं पढ़ना चाहिए। तथा सूतकके समय और राहुके द्वारा चन्द्र-सूर्यके ग्रहण होनेके कालमें भी नहीं पढ़ना चाहिए ॥१२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथोल्कापात-निर्घातभूमिकम्पेषु गर्जिते। पञ्चत्वं च प्रयातानां बन्धूनां प्रेतकर्मणि ॥१२४

अकालविद्युति भ्रष्टमलिनामेध्यसन्निधौ।
श्मशाने वासमान्धे च नाधीतात्मनि चाशुचौ ॥१२५॥ युग्मम्।

नात्युच्चैर्नातिनीचैश्च तदेकाग्रमना सदा। नाविच्छिन्नपदं चैव नास्पष्टं पाठकं पठेत् ॥१२६
शास्त्रानुरक्तिरारोग्यं विनयोद्यमबुद्धयः। आन्तराः पञ्च विज्ञेया धन्यानां पाठहेतवे ॥१२७
सहाया भोजनं वास आचार्यः पुस्तकास्तथा। अमी बाह्या अपि ज्ञेया पञ्च पाण्डित्यहेतवः ॥१२८
संस्कृते प्राकृते चैव सौरसेने च मागधे। पैशाचिकेऽपभ्रंशे च लक्षं लक्षणमादरात् ॥१२९
कवित्वहेतुः साहित्यं तर्को विज्ञत्वकारणम्। बुद्धिवृद्धिकरी नोतिस्तस्मादभ्यस्यते बुधैः ॥१३०
पाटीगोलकचक्राणां तथैव गृहबीजयोः। गणितं सर्वशास्त्रौघव्यापकं पठ्यतां सदा ॥१३१
धर्मशास्त्रश्रुतौ शश्वल्लालसं यस्य मानसम्। परमार्थं स एवेह सम्यग् जानाति नापरः ॥१३२
ज्योतिःशास्त्रं समीक्षेत त्रिस्कन्धं विहितादरः। गणितं संहिताहोरैते तत्स्कन्धत्रयं पुनः ॥१३३
प्रवृत्तिभेषजं व्याधिं सात्म्यदेहं बलं वयः। कालं देशं तथा वह्निं विभवं प्रतिचारकम् ॥१३४

विजानन् सर्वदा सम्यक् फलदं लोकयोर्द्वयोः।
अभ्यसेद् वैद्यकं धीमान् यशोधर्मार्थसिद्धये ॥१३५॥ युग्मम्।

काय-बाल-ग्रहोर्ध्वाङ्ग-शल्य-दंष्ट्रा-जरा-वृषैः। एतैरष्टभिरङ्गैश्च वैद्यकं ख्यातमष्टधा ॥१३६

इसी प्रकार उल्कापात, वज्रपात, भूमि-कम्प और मेघ-गर्जन होने पर, मरणको प्राप्त हुए बन्धुजनोंके प्रेतकर्म करने पर, अकालमें बिजली चमकने पर, भ्रष्ट और मलिन पुरुषके तथा अपवित्र वस्तुके सान्निध्यमें, श्मशानमें, दिनमें रात्रिके समान अन्धकार होने पर और अपनी शारीरिक अशुचि-दशामें भी नहीं पढ़ना चाहिए ॥१२४-१२५॥

न अति उच्च स्वरसे पढ़े, न अति मन्द स्वरसे पढ़े, किन्तु यथोचित मध्यम स्वरसे अध्ययनमें एकाग्र मन होकर ही सदा पढ़ना चाहिए। विच्छिन्न पद-युक्त भी नहीं पढ़े और पाठको अस्पष्ट भी नहीं पढ़ना चाहिए ॥१२६॥ शास्त्र-पठनमें अनुरक्ति, निरोगता, विनय, उद्यम और बुद्धि ये पाँच आन्तरिक कारण धन्य पुरुषोंके पाठके हेतु हैं ॥१२७॥ सहायक पुरुष, भोजन, आवास, आचार्य और पुस्तक ये पाँच पाण्डित्यके बाह्य हेतु जानना चाहिए ॥१२८॥

संस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश भाषाके लक्षण (व्याकरण) शास्त्रको आदरसे पढ़नेका लक्ष रखना चाहिए ॥१२९॥ साहित्य कवित्वका हेतु है, तर्क शास्त्र विज्ञता प्राप्त करनेका कारण है और नीति बुद्धिकी वृद्धि करती हैं, इसलिए बुधजन इन तीनों विद्याओंका अभ्यास करते हैं ॥१३०॥ पाटी, गोलक और चक्रका, तथैव गृह और बीजका अध्ययन करे। तथा सर्वशास्त्र-समुदायमें व्यापक गणितको सदा ही पढ़ना चाहिए ॥१३१॥ जिस मनुष्यका चित्त सदा धर्म शास्त्रके सुननेमें लालसायुक्त रहता है, वह पुरुष ही इस लोकमें परमार्थको जानता है, अन्य पुरुष परमार्थको नहीं जानते हैं ॥१३२॥

आदर-पूर्वक तीन स्कन्धवाले ज्योतिष शास्त्रको सम्यक् प्रकारसे पढ़े। पुनः उन तीनों स्कन्धोंका गणित संहिता और होराके साथ अध्ययन करे ॥१३३॥ इसी प्रकार बुद्धिमान् धर्म और अर्थकी सिद्धिके लिए दोनों लोकोंमें सम्यक् फल देनेवाले वैद्यक शास्त्रका प्रवृत्तिभेषज, व्याधि, वातादिकी समतावाला शरीर, बल, वय, (आयु) काल, देश, जठराग्नि, वैभव और प्रतिचारकको जानता हुआ अभ्यास करे ॥१३४-१३५॥ काय, बाल, ग्रह, ऊर्ध्वाङ्ग, शल्य, दंष्ट्रा, जरा और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जठरस्यानलं कायो बालो बालचिकित्सितम् । गृहो भूतादिवित्रास ऊर्ध्वाङ्गमूर्ध्वशोधनम् ॥१३७
शल्यं लोहादि दंष्ट्राहिर्जरापि च रसायनम् । वृषः पोषः शरीरस्य व्याख्याष्टाङ्गस्य लेशतः ॥१३८
चित्राक्षर-कलाभ्यासो लक्षणं च गजाश्वयोः । गवादीनां च विज्ञेयं विद्वद्-गोष्ठं चिकीर्षुणा ॥१३९
सामुद्रिकस्य रत्नस्य स्वप्नस्य शकुनस्य च । मेघमालोपदेशस्य सर्वाङ्गस्फुरणस्य च ॥१४०

तथैव चाङ्गविद्यायाः शास्त्राणि निखिलान्यपि ।
ज्ञातव्यानि बुधैः सम्यक् वाञ्छद्भिर्हितमात्मनः ॥१४१॥ युग्मम् ।

शास्त्रं वात्सायनं ज्ञेयं न प्रकाश्यं यतस्ततः । ज्ञेयं भरतशास्त्रं च नाचार्यं धीमता पुनः ॥१४२
गुरोरतिशयं ज्ञात्वा पिण्डसिद्धि तथात्मनः । क्रूरमन्त्रान् परित्यज्य ग्राह्यो मन्त्रक्रमो हितः ॥१४३
सत्यामपि विषाक्षायां न भक्ष्यं स्थावरं विषम् । पाणिभ्यां पन्नगादींश्च स्पृशेन्नैव जिजीविषुः ॥१४४

अथ जङ्गमविषविषये कालाकालविचारे क्रमः—.

जाङ्गुल्याः कुरुकुल्लायास्तोतलाया गरुत्मतः : विषार्त्तस्य जनस्यास्य कः परस्त्राणकरः परः ॥१४५
आदिष्टाः कोपिता मत्ता क्षुधिताः पूर्ववैरिणः । दन्दशूका दशन्त्यन्यान् प्राणिनस्त्राणवर्जितान् ॥१४६

वृष इन आठ अंगोंसे वैद्यकशास्त्र आठ प्रकारका प्रसिद्ध है ॥१३६॥ उदरकी अग्नि 'काय' कहलाती है, बालकोंकी चिकित्साको 'बाल' कहते हैं, भूत-प्रेतादिके द्वारा दिये जानेवाले कष्टको 'ग्रह' कहते हैं, ऊर्ध्वभागका शोधन 'ऊर्ध्वाङ्ग' कहलाता है, लोह आदिकी शलाकाओंसे चीर-फाड़ करना 'शल्य' कहलाता है, साँपके द्वारा काटनेको 'दंष्ट्रा' कहते हैं, रसायनको 'जरा' कहते हैं और शरीरका पोषण वृष कहलाता है। यह वैद्यक शास्त्रके आठों अंगोंकी संक्षेपसे व्याख्या है ॥१३७-१३८॥

विद्वानोंके साथ गोष्ठी करनेके इच्छुक पुरुषको चित्रमयी अक्षर लिखनेकी कलाका अभ्यास करना चाहिए, हस्ती और अश्वके, तथा गाय-बैल आदिके लक्षण भी जानना चाहिए ॥१३९॥ इसी प्रकार अपने सम्यक् हितको चाहनेवाले बुधजनोंको सामुद्रिकके, रत्नोंके, स्वप्नके, शकुनके, मेघमालाके उपदेशके, शरीरके सभी अंगोंके स्फुरणके, और अंगविद्याके सभी शास्त्रोंको भलीभाँतिसे जानना चाहिए ॥१४०-१४१॥ काम-विषयक वात्सायनशास्त्र भी जानना चाहिए, किन्तु उसे दूसरोंके आगे प्रकाशित नहीं करना चाहिए। पुनः श्रीमान् पुरुषको संगीत-नाट्य-सम्बन्धी भरतशास्त्र भी जानना चाहिए, किन्तु उसे दूसरोंके सम्मुख आचरण नहीं करना चाहिए ॥१४२॥

गुरुके अतिशयको जानकर अपने शरीरकी सिद्धि अर्थात् उदरशुद्धि आदि वस्तिकर्मको भी जानना चाहिए, तथा उच्चाटन-मारण आदि करनेवाले क्रूर मंत्रोंको छोड़कर स्व-पर-हितकारी उत्तम मंत्रोंका क्रम ग्रहण करना चाहिए ॥१४३॥ विषको दूर करनेवाली विद्याको जाननेपर भी स्वयं स्थावर (शंखिया आदि पार्थिव) विष नहीं खाना चाहिए। तथा जीनेके इच्छुक वैद्यको सर्प आदि विषैले जन्तुओंको हाथोंसे स्पर्श नहीं करना चाहिए ॥१४४॥

अब जंगम (त्रस-प्राणिज) विषके विषयमें काल और अकालके विचारका क्रम कहा जाता है—जांगुलीके, कुरुकुल्लाके, तोतलाके और गारुड़ीके सिवाय अन्य कौन दूसरा पुरुष विषसे पीड़ित जीवकी रक्षा करनेवाला है? कोई भी नहीं ॥१४५॥ दूसरेके द्वारा आदेश दिये गये, क्रोधको प्राप्त, उन्मत्त, भूखसे पीड़ित और पूर्वभवके वैरी सर्प अपनी रक्षा करनेसे रहित अन्य प्राणियोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते देवा देवतास्तास्ते गुणज्ञा मन्त्रपाठकाः। अङ्गवा अपि ते धन्या यैस्त्राणं प्राणिनां विषात् ॥१४७
विषार्त्तस्याङ्गिनः पूर्वं विमृश्यं काललक्षणम्। अपरं तज्जीवितव्यस्य चिह्नं तदनु मन्त्रिणा ॥१४८
वारस्तिथि-भ-दिग्दंशा दूतो मर्माणि दृष्टकः ॥स्थानं हं (?) प्रवाराद्याः कालाकालनिवेदकाः ॥१४९
भौमभास्करमन्दानां दिने सन्ध्याद्वये तथा। सङ्क्रान्तिकाले दष्टे हि क्रीडन्ति तु सुरस्त्रियः ॥१५०
पञ्चमी षष्ठिकाष्टम्यौ नवमी च चतुर्दशी। अमावास्याप्यवश्या स्याद् दष्टानां मृतिहेतवः ॥१५१
मीनचापद्वये कुम्भवृषयोः कर्कटाजयोः। कन्यामिथुनयोः सिंहालिनो मृततुलाख्ययोः ॥१५२

एकान्तरा द्वितीयाद्या दग्धाः स्युस्तिथयः क्रमात्।
सति चन्द्रेऽमीषु दष्टानां भवेज्जीवितसंशयः ॥१५३

मूलाश्लेषा मघा पूर्वात्रयं भरणिकाश्विनी। कृतिकार्द्रा विशाखा च रोहिणी दष्टमृत्युदा ॥१५४

नैऋत्याग्नेयिका याम्या दिशस्तिस्त्रो विवर्जयन्।
अन्यदिग्भ्यः समायातो दष्टो जीवस्य संशयः ॥१५५

स्वपयः-शोणितादश्चत्वारो युगपद्यदि। एको वा शोफवत्सूक्ष्मो दश आवर्तसन्निभः ॥१५६
दंशः काकपदाकारो रक्तवाही सगर्तकः। रेखः श्यामलः शुष्कः प्राणसंहारकारकः ॥१५७

डसते (काटते) हैं ॥१४६॥ किन्तु वे देव, वे देवता, वे गुणीजन, वे मंत्रके पाठी पुरुष और वे अंगके ज्ञाता मनुष्य धन्य हैं जो कि विषसे पीड़ित प्राणियोंकी रक्षा करते हैं ॥१४७॥

सर्व प्रथम सर्प-विषके दूर करनेवाले मंत्रज्ञ पुरुषको विषसे पीड़ित पुरुषके मृत्यु-कालके लक्षणोंका विचार करना चाहिए। तत्पश्चात् उसके जीवितव्यके अन्य चिह्नोंका विचार करना चाहिए ॥१४८॥ पुनः मंत्रज्ञ पुरुषको सर्प के द्वारा काटे गये दिनका, तिथिका, नक्षत्रका, दिशाका, दंशका, दूतका और मर्मस्थानका विचार करना चाहिए। क्योंकि ये तिथि वार आदिक काल और अकालके निवेदक (सूचक) होते हैं ॥१४९॥ मंगल, रवि और शनिवारके दिनमें, प्रातः और सायंकाल इन दोनों सन्ध्याओंमें, तथा संक्रान्ति-कालमें साँपके डसनेपर देवाङ्गनाएँ क्रीड़ा करती हैं, अर्थात् उक्त समयोंमें काटे हुए पुरुषको कोई भी नहीं बचा सकता है ॥१५०॥ पंचमी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी और अमावस्या ये तिथियाँ अवश्य हैं, अर्थात् इन तिथियोंमें काटे गये पुरुषको बचाना मंत्रज्ञ पुरुषके वशमें नहीं है। ये तिथियाँ सर्प-दष्ट जीवोंके मृत्युकी कारण होती है ॥१५१॥

चापद्वय (मीन और धन) कुम्भ, वृष, कर्कट, अज, कन्या-मिथुन, सिंह-अलि (वृश्चिक) और तुलानामवाली राशियोंमें एकान्तरित द्वितीया आदि तिथियाँ क्रमसे दग्ध (नेष्ट-अशुभ) होती हैं। इन तिथियोंमें चन्द्रके होनेपर डंसे गये जीवोंके जीनेमें संशय रहता है ॥१५२-१५३॥

मूल, आश्लेषा, मघा, तीनों पूर्वाएँ, भरणी, अश्विनी, कृतिका, आर्द्रा, विशाखा क्षौर रोहिणी ये नक्षत्र डंसे गये प्राणीको मौतके देनेवाले होते हैं ॥१५४॥ नैऋत्य, आग्नेय और दक्षिण इन तीन दिशाओंको छोड़कर अन्य दिशाओंसे आये हुए सर्प-दष्ट जीवके जीवनका संशय है ॥१५५॥ अपने दूध और रक्तसे चार विन्दु यदि एक साथ निकलते हैं, अथवा एक भी बिन्दु सूजनके साथ सूक्ष्मरूपसे निकलता है तो वह दश आवर्तके सदृश हैं ॥१५६॥

काटने का स्थान काक-पदके आकारवाला हो, रक्त-प्रवाहक हो, गर्त-सहित हो, रेखा काली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सञ्चरत्कीटिकास्पृष्ट इषुवेधीव दाहकृत्। कण्डूमान् सविषो ज्ञेयो दंशोऽन्यो निर्विषः पुनः ॥१५८
तैलाक्तो मुक्तकेशश्च सशस्त्रः प्रस्खलद्वचाः। ऊर्ध्वीकृतकरद्वन्द्वो रोगग्रस्तो विहस्ततः ॥१५९
रासभं करभं मत्तमहिषं चाधिरूढवान्। अपद्वारसमायातः कन्दिशीकश्चलेक्षणः ॥१६०
एकवस्त्रो विवस्त्रश्च वृत्तस्थो जीर्णचीवरः। वाहनीविकृतः क्रुद्धो दूतो नूतनजन्मने ॥१६१
स्थिरो मधुरवाक् पुष्पोऽक्षतपाणिर्दिशि स्थितः। एक जातिव्रतो दूतो दूतो दूरविषव्यथः ॥१६२
विषमः शस्यते दूतः स्त्री स्त्रीणां तु नरो नृणाम्। एवं सर्वेषु कार्येषु वर्जनीयो विपर्ययः ॥१६३
दष्टस्य नाम प्रथमं गृह्णंस्तदनु मन्त्रिणः। वक्ति दूतो यमाहूते दष्टोऽयमुच्यतामिति ॥१६४

दूतस्य यदि पादः स्याद्दक्षिणोऽग्रे स्थिरस्तदा।
पुमान् दष्टोऽथ वामे तु स्त्री दष्टेत्यपि निश्चयः ॥१६५
ज्ञानिनोऽग्रस्थितो दूतो यदङ्गं किमपि स्पृशेत्।
तस्मिन्नङ्गेऽस्ति दंशोऽपि ज्ञानिना ज्ञेयमित्यपि ॥१६६

और शुष्क हो, तो ये चिह्न प्राण-संहारक होते है ॥१५७॥ जहाँपर काटा गया है वह स्थान चलती हुई कीड़ियोंके स्पर्शके समान प्रतीत हो, अथवा बाण-वेधके समान दाह करनेवाला हो और खुजलाता हो तो उस दंशको विषयुक्त जानना चाहिए। इससे भिन्न दंशको निर्विष जानना चाहिए ॥१५८॥

सर्प-दष्ट पुरुषका दूत (समाचार लानेवाला पुरुष) तेलसे लिप्त शरीर हो, बिखरे केशवाला हो, शस्त्र-युक्त हो, स्खलित वचन बोलनेवाला हो, दोनों हाथोंको ऊपर किये हुए हो, रोग-ग्रस्त हो, हाथमें दण्ड आदि लिए हो, गर्दभ, ऊँट या मद-मत्त भैंसे पर चढ़ा हुआ और घरके पिछले द्वारसे आया हो, कन्दिशीक (सर्व दिशाओंको देख रहा) हो, चंचल नेत्र हो, एक वस्त्रधारी हो अथवा वस्त्र-रहित हो, वृत्तस्थ (व्यापार-चर्चामें संलग्न) हो, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहिने हो, वाहनी-विकृत हो, (विकृत टूटी-फूटी गाड़ीपर बैठकर आया हो, अथवा जिसके शरीरकी वाहिनी (शिराएँ) उभरी हुई हों) और क्रोध युक्त हो, तो ऐसा दूत सर्प-दष्ट पुरुषके नवीन जन्मके लिए सूचक है अर्थात् वह सर्प-दष्ट पुरुष मर जायगा ॥१५९-१६१॥

यदि सर्प-दष्ट पुरुषका दूत स्थिर चित्त हो, मधुर वचन बोलनेवाला हो, पुष्प या अक्षत हाथमें लिये हुए हो, दिशामें अवस्थित हो, एक जातिके व्रतवाला हो, (वर्णके या वैद्यके समान व्यवसायी हो) तो वह दूत सर्प-दष्ट पुरुषकी व्यथाको दूर करनेका सूचक है ॥१६२॥ विषम दूत प्रशंसनीय होता है अर्थात् सर्प-दष्ट पुरुषोंका दूत स्त्री और स्त्रियोंका दूत मनुष्य अच्छा माना जाता है। इसी प्रकार सर्व कार्योंमें विपर्यय वर्जनीय है ॥१६३॥

सर्प-दष्ट पुरुषका नाम पहिले और मंत्रज्ञ पुरुषका नाम उसके पीछे लेता हुआ दूत यदि बोलता है तो 'यमराजके द्वारा बुलाये जाने पर यह अमुक व्यक्ति डसा गया है' ऐसा कहना चाहिए ॥ दूतका यदि दक्षिण पाद आगे और स्थिर हो तो 'पुरुष डसा गया है' ऐसा निश्चय करना चाहिये'। यदि दूतका वाम पाद आगे और अस्थिर हो तो स्त्री डसी गई है, ऐसा भी निश्चय करना चाहिए ॥१६५॥ मंत्र-ज्ञाता पुरुषके आगे स्थित दूत जिस अंगका कुछ भी स्पर्श करे तो 'उस अंगमें डसा है' ऐसा भी ज्ञानी पुरुषको जानना चाहिए ॥१६६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्रस्थे यदा दूते वामा वहति नासिका। मुखाशिका तदा देश्या दष्टस्य गदहारिणा ॥१६७
वामायामपि नासायां यदि वायोः प्रवेशने। दूतः समागतः यस्य तदा नैवान्यथा पुनः ॥१६८
दूतोक्तवर्णसङ्ख्याङ्को द्विगुणो भाजयेत् त्रिका। यद्येकः शेषतां याति तच्छुभं नान्यथा पुनः ॥१६९
दूते दिगाश्रिते जीवत्यहिदष्टो विदिक्षु न। प्रश्नेऽप्यन्तर्वहद्वायौ सति दूते न तत्कृतः ॥१७०
प्रश्नं कृत्वा मुखं दूतो धत्ते स्वं मलिनं यदि। तदा दष्टादरो युक्तो विपर्यासे मृतस्तु सः ॥१७१
दूतस्य वदनं रात्रौ यदि सम्यग् न दृश्यते। तदा स्वस्मिन् मुखं ज्ञेयं मन्त्रिणा मलिनादिकम् ॥१७२
कण्ठे वक्षस्थले लिङ्गे मस्तके (नाभिके) गुदे। नासापुटे भ्रुवोष्ठे (च योनौ च) स्तनद्वये ॥१७३
पाणिपादतले सन्धौ स्कन्धे कर्णेऽलिके दृशोः। केशान्ते कक्षयोर्दष्टो दृष्टोऽन्तकपुरीजनैः ॥१७४
त्रुटयन्ति मूर्धजा येषां दष्टमध्येऽथ वा लवः। कण्ठग्रहो वपुःशीतं हिक्काक्षमकपोलता ॥१७५
भ्रमिर्मोहोऽङ्गसादश्च शशि-रव्योरवीक्षणम्। गात्राणां कम्पनं भङ्गो दृशो रक्ते सनिद्रता ॥१७६
लाला विरूक्षता पाण्डुरक्तं वाक्सानुनासिका। विपरीताथ वीक्षा च जृम्भा छायासुरञ्जिता ॥१७७

जब दूत आकर मंत्रज्ञाता पुरुषके आगे बैठे, उस समय यदि मंत्रज्ञकी वाम नासिका बहती हो, तब रोगका प्रतीकार करनेवाले पुरुषको सर्प-दष्ट पुरुषकी मुखाशिका (सर्प-दष्ट पुरुष जी जायगा, ऐसा आशा-भरा वचन कहना चाहिए ॥१६७॥ यदि वाम भी नासिकामें वायुके प्रवेश करनेके समय जिसका दूत आया हो, तब भी अन्यथा नहीं होगा, अर्थात् बच जायेगा ऐसा जान लेना चाहिए ॥१६८॥

दूतके द्वारा कहे गये वर्णोंकी संख्याके अंकोंको दूना कर तीनसे भाग देनेपर यदि एक शेष रहता है, तो शुभ है, अर्थात् सर्प-दष्ट पुरुष जी जायेगा। अन्यथा नहीं ॥१६९॥ दूतके आकर दिशाके आश्रयसे बैठने पर सर्प-दष्ट पुरुष जीवित रहता है, किन्तु विदिशाओंमें बैठने पर जीवित नहीं रहता है। दूतके प्रश्न करने पर और भीतरकी ओर वायुके बहने पर भी जीवित नहीं रहता है ॥१७०॥ प्रश्न करके यदि दूत अपने मुखको मलिन रखता है, तब सर्प-दष्ट पुरुष आदर योग्य है। इससे विपरीत दशामें वह सर्प-दष्ट पुरुष मर गया, या मर जायगा, ऐसा जानना चाहिए ॥१७१॥

यदि रात्रिमें दूतका मुख अच्छी तरहसे नहीं दिखता हो तो मंत्रज्ञाता पुरुषको अपने शरीरमें मुखकी मलिनता आदिको जानना चाहिए ॥१७२॥ यदि सर्पने कण्ठमें, वक्षःस्थलमें, लिंगमें, मस्तकपर,(नाभिमें) गुदामें, नासा-पुटमें, भौंहपर, ओठपर, (योनिमें) दोनों स्तनोंपर, हस्त और पादके तलभागमें, सन्धिमें, कन्धेपर, कानमें, दोनों आँखोंकी पलकपर, केशान्तमें (मस्तकमें) और दोनों आँखोंमें काटा है तो वह व्यक्ति यमपुरीके जनों-द्वारा देखा गया है, अर्थात् मर जायगा, ऐसा जानना चाहिए ॥१७३-१७४॥

साँपके काटनेपर जिनके शिरके केश टूटने लगते हैं, अथवा डसे स्थानके बाल टूटते हैं, कण्ठग्रह हो अर्थात् बोलना बन्द हो जाय, शरीर ठंडा हो जाय, हिचकी लेनेमें अक्षम हो जाये, या हिचकी लेनेमें कपोलमें गह्वर हो जावें, चक्कर आने लग जावें, मूर्च्छा आ जावे, अंग-शैथिल्य हो, रात्रिमें चन्द्र और दिनमें सूर्य न दिखे, शरीरमें कम्पन होने लगे, या अंगोंका भंग होने लगे, नेत्र लाल हो जावें, निद्रा आने लगे, लाला (मुख-लार) में रूखापन आ जाये, मुख पांडु या रक्त वर्णका हो जावे, बचनोंका बोलना नासिकाके स्वरके अनुसार होने लगे, देखना विपरीत होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छेदे श्रावो न रक्तस्य न रेखा यष्टिताडने । नाधस्तात्कुचयोः स्पन्दोऽदर्शनं दर्शनेऽपि च ॥१७८
दशनाकारधारित्वं सुव्यक्तं वर्णास्पष्टता । निःश्वासस्य च शीतत्वं कन्धराऽप्यतिभङ्गुरा ॥१७९
शोणिते पयसि न्यस्ते विस्तारस्तैलबिन्दुवत् । ओष्ठसम्पुटयोर्मुद्राभेदो मेलितयोरपि ॥१८०
जिह्वाविलोकनं नैव न नासाग्रनिरीक्षणम् । आत्मीयो विषयः कश्चिदिन्द्रियाणां न गोचरः ॥१८१
मुखे श्वासो न नासाया विकासो नेत्रवक्षसोः । चन्द्रे सूर्यभ्रमः सूर्ये चन्द्रोऽयमिति च भ्रमः ॥१८२
कक्षायां रसनायां च श्रवणद्वितयेऽपि च । ध्वाङ्क्षपादोपमं नीलं यदि वोत्पद्यते स्फुटम् ॥१८३
दर्पणे सलिले वापि स्वमुखस्यानिरीक्षणम् । न दृशोः पुत्रिका स्पष्टा पुरस्थैरवलोक्यते ॥१८४
शोफः कुक्षोर्नखानां च मालिन्यं सहसा तथा । स्वेदः शूलं गले भक्ष्यप्रवेश्यो न मनागपि ॥१८५
न कम्पः पुलको दन्तघर्षश्चाधरपीडनम् । सीत्कारस्तापजडता कूजनं च मुहुर्मुहुः ॥१८६
नेत्रयोः शुक्लयोरह्नि रक्तयोः सायमेव हि । नीलयोर्निशि मृत्युः स्यात्तस्य दष्टस्य निश्चितम् ॥१८७
दष्टस्य देहे शीताम्बुधारासिक्ते भवेद्यदि । रोमाञ्चः कम्पनाद्यं वा तदा दष्टोऽनुगृह्यते ॥१८८
यो हस्तनखनिर्मुक्तैः पयोबिन्दुभिराहतैः । निमीलयति नेत्रे स्वे यमस्तस्मिंश्च सोद्यमः ॥१८९
यस्य पाणिनखासक्तमांसेऽन्यनखपीडिते । जायते वेदना तस्य नान्तको भजतेऽन्तके ॥१९०
इष्टिका-चितिवल्मीकाद्विभक्ते च सरित्तटे । वृक्षकुञ्जे श्मशाने च जीर्णे शालागृहान्तरे ॥१९१

लगे, जँभाई आने लगे, छाया प्राणोंका अंग बन गई हो, शरीरके छेदनेपर रक्त-स्राव न हो, लकड़ीसे मारनेपर रेखा न पड़े, स्तनोंके नीचे स्पन्दन न हो, देखनेपर भी स्पष्ट न दिखे, साँपके दाँतोंका आकार स्पष्ट दिखने लगे, निःश्वासमें शीतलता आने लगे, कन्धरा भी अधिक भंगुर (टेढ़ी) हो जावे, रक्तके पानीमें डालनेपर तेलकी बूँदके समान वह फैलने लगे, ओष्ठ-सम्पुटके मिलानेपर भी मुद्रा-भेद हो अर्थात् वे खुल जावें, जीभको न देख सके, नासिकाका अग्रभाग भी न दिखे; इन्द्रियोंका अपना कोई भी विषय गोचर (प्रतीत) न हो, मुखमें श्वास प्रतीत हो, किन्तु नासिकाकी प्रतीत न हो, नेत्रोंका और वक्षः स्थलका विकास हो, चन्द्रमें सूर्यका भ्रम हो और सूर्यमें यह चन्द्र है, ऐसा भ्रम होने लगे, कांखमें, जीभमें और दोनोंमें भी काकके पाद-समान नीलापन यदि स्पष्टरूपसे उत्पन्न हो जाये, दर्पणमें अथवा पानीमें देखनेपर भी अपना मुख न दिखे, नेत्रोंकी पुतलियां सामने बैठे हुए पुरुषोंको स्पष्ट न दिखे, कुक्षिमें शोफ (सूजन), आजावे, नखोंमें सहसा मलिनता आजावे, प्रस्वेद-शूल हो जावे, गलेमें खानेयोग्य वस्तुका जरा-सा भी प्रवेश न हो सके, शरीरमें न कम्पन हो, न रोमांच हो, न दन्तघर्षण हो, न अधर-पीड़न हो, सीत्कार, ताप-जड़ता, वार-वार कूजन होने लगे, शुक्ल नेत्रोंमें दिनके समय रक्तपना, सायंकालमें और रात्रिमें नीलपना आजावे, तो उस सर्प-दष्ट पुरुषकी मृत्यु होगी, ऐसा निश्चित है ॥ १७५-१८७ ॥

सर्प-दष्ट पुरुषके देहमें शीतल जलकी धाराके सिंचन करनेपर यदि रोमांच या कम्पनादि हो तो उस दष्ट पुरुषका अनुग्रह किया जा सकता है ॥१८८॥ जो सर्प-दष्ट पुरुष हाथके नखोंसे छोड़े गये जल-बिन्दुओंसे आघात किये जानेपर अपने नेत्रोंको बन्द कर लेता है, उसपर यमराज उद्यम-शील है, अर्थात् वह बचाया नहीं जा सकता ॥१८९॥ जिस सर्प-दष्ट व्यक्तिके हाथके नखसे संलग्न मांसमें अन्य नखसे पीड़ित करनेपर यदि वेदना होती है तो यमराज उसके समीप नहीं आसकता है ॥१९०॥ ईंटोंके ढेरमें चैत्यस्थानमें और बांभीसे विभक्त नदी-तटपर, वृक्ष-कुञ्जमें, श्मशानमें, जीर्णशालामें, जीर्णघरके भीतर, पत्थरोंके संचयवाले स्थानपर, दिव्य देवताके आयतन मठ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाषाणसञ्चये दिव्यदेवतायतनादिके । स्थानेष्वेतेषु यो दष्टो यमस्तस्मिन् दृढोद्यमः ॥१९२
विषभेदावबुद्ध्यर्थं ज्ञेयो नागोदयः पुरा । अज्ञातविषभेदः सन्निर्विषीकुरुते कथम् ॥१९३
रविवारे द्विजोऽनन्तो नागः पद्मसिरा सितः । वायवीयविषो यामार्धमात्रमुदयी भवेत् ॥१९४
वासुकी सोमवारे तु क्षत्रियः शुभविग्रहः । नीलोत्पलाङ्क आग्नेयगरलोऽभ्युदयं व्रजेत् ॥१९५
भवत्यभ्युदयी भौमे तक्षको विश्वरक्षकः । आस्ते पार्थिवविषो वैश्यः (स च) स्वस्तिकलाञ्छनः ॥१९६
बुधे लब्धोदयः शूद्रः कर्कटो जनसन्निभः । स वारुणविषो रेखात्रितयाञ्चितमूर्त्तिमान् ॥१९७
गुरुवारोदयी पद्मः स्वर्णवर्णसमद्युतिः । शूद्रो महेन्द्रगरलः पञ्चचन्द्रः सबिन्दुकः ॥९८१
शुक्रवारोदितो वैश्यो महापद्मो घनच्छविः । लक्षिताङ्गस्त्रिशूलेन दधानो वारुणं विषम् ॥१९९
धत्ते शङ्खः शनौ शक्तिमुदेतुमरुणारुणः । क्षत्रियो गरमाग्नेयं बिभ्रद्रेखां सितां गले ॥२००
राहुः स्यात्कुलिका श्वेतो वायवीयविषो द्विजः । सर्ववारेषु यामार्धं सन्धिस्वस्योदयो मतः ॥२०१
अहर्निशमियं वेला ख्याता विषवती किल । तदादौ विषमज्ञेयं माहेन्द्रं मध्यमं पुनः ॥२०२
वारुणं पश्चिमे भागे तदाद्यमतिदुःखदम् । कष्टसाध्यं परं साध्यं भवेत्परतरं पुनः ॥२०३
विषं साध्यमिति ज्ञातमिति चेन्नैव नश्यति । तदा परोऽस्तो विज्ञेयस्तस्य स्थितिर्भीतिनिश्चयम् ॥२०४

मन्दिरादिकमें, इतने स्थानोंमें सर्पके द्वारा जो पुरुष डसा गया है, यमराज उसपर दृढ़तासे उद्यमशील है, ऐसा जानना चाहिए ॥१९१-१९२॥

विषोंके भेद जाननेके लिए पहिले नागोंका उदय जानना चाहिए। क्योंकि विषोंके भेदों को नहीं जानने वाला गारुड़ी सर्प-दष्ट पुरुषको विष-रहित कैसे कर सकता है ? अर्थात् नहीं कर सकता ॥१९३॥ रविवारके दिन द्विज-वर्णी शिरपर कमल चिह्नवाला श्वेत अनन्त नाग वायवीय विषवाला होता है, वह डसनेके अर्धप्रहरमात्रमें उदयको प्राप्त हो जाता है ॥१९४॥ सोमवारके दिन क्षत्रिय-वर्णवाला, शुभ शरीरी नीलकमल जैसे अंगका धारक और आग्नेय विषका धारक वासुकी सर्प अभ्युदयको प्राप्त होता है, अर्थात् डसनेके लिए उद्यत होता है ॥१९५॥ मंगलवारके दिन विश्व-रक्षक, पार्थिव विषवाला, वैश्यवर्णी, स्वस्तिक चिह्नका धारक तक्षक सर्प डसनेके लिए अभ्युदयशील होता हैं ॥१९६॥ बुधवारके दिन शूद्रवर्णवाला, सामान्य जनके सदृश वारुण विषका धारक, तीन रेखाओंसे चिह्नित मूर्त्तिका धारक कर्कटसर्प उदयको प्राप्त होता है ॥१९७॥ गुरुवार के दिन उदयको प्राप्त होनेवाला सुवर्ण वर्णके समान कान्तिका धारक, शूद्रवर्णी, माहेन्द्र विषवाला, बिन्दु-सहित पांच चन्द्र-धारक पद्म सर्प डसनेको उद्यत होता है ॥१९८॥ शुक्रवारके दिन उदित विषवाला, वैश्यवर्णी, मेघ जैसी छविका धारक, त्रिशूल चिह्नसे लक्षित शरीरवाला और अरुण विषका धारण करने वाला महापद्म सर्प डसनेको उद्यत होता है ॥१९९॥ शनिवारके दिन अरुण वर्ण वाला, क्षत्रियवर्णी, गलेमें श्वेत रेखाका धारक आग्नेय विषवाला शंख सर्प काटनेकी शक्तिके उदयको धारण करता है ॥२००॥ कुलिक जातीय श्वेत वर्णवाला, वायवीय विषका धारक, द्विजवर्णी राहु सर्प सभी दिनोंमें अर्ध प्रहरमें और दिन-रातकी सन्धिके समय काटनेके लिए विषके उदयवाला माना गया है ॥२०१॥ निश्चयसे दिन-रातकी यह वेला विषवाली प्रसिद्ध है। उसके आदिमें विष अज्ञेय है। किन्तु माहेन्द्र विष मध्यम होता है ॥२०२॥ वारुण विष दिनके अन्तिम भागमें उदयशील होता है, उसका आद्य समय अति दुःखदायी है, उससे परवर्ती भाग कष्ट साध्य है और उससे भी परवर्तीभाग साध्य है ॥२०३॥ यह विष साध्य है, ऐसा ज्ञात हो जावे, फिर भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रविरोहिण्यमावास्याश्चेद् द्वौ यामौ तदा विषम् । चन्द्रेऽश्लेषाष्टमीयोगे चतुर्यामावधौ विषः ॥२०५
भौमे यमश्च नवमी यामान् षट् सततं विषम् ।•बुधे चतुर्थी राधायां विद्याद्यामाष्टकं विषम् ॥२०६
गुरौ च प्रतिपज्ज्येष्ठा षोडशप्रहरान् विषम् । कैश्चिदित्यपरात्तोऽयं तिथिवारर्क्षतो मतः ॥२०७
शनिवार्द्राचतुर्दश्योः स्वदिनान्तं महाविषम् । कैश्चिदत्यिपरात्तोऽयं तिथिवारर्क्षतो मतः ॥२०८

प्रकारान्तरमाह—

यमार्धमाद्यमन्तं च दुर्वारस्याह्नि निश्यपि । तत्तत्षष्ठशेषं स्यान्निशि तत्पञ्चमस्य तु ॥२०९
सूर्यादौ वर्तयित्वा षट् शुक्रसोमगुरोर्दिने । विवर्ते पञ्चम आवृत्यं शुभं शत्रौ तु रात्रके ॥२१०
एकाक्षरेण वारनाम । वारैर्यथासङ्ख्यं नागप्रहरकाः ।
नागर्द्धयामकाश्चैते तेषु काले भवेच्छनौ । अपरात्तो भवेज्जीवे ज्ञेयं युक्त्याऽनयात्तयम् ॥२११

यदि वह विष नष्ट नहीं होता है, तब उससे आगे उस विषकी स्थिति भीतिप्रद ऐसा निश्चित जानना चाहिए ॥२०४॥

यदि रविवारके दिन रोहिणी नक्षत्र और अमावस्या तिथि हो, तब विष दो प्रहर तक रहता हैं। सोमवारके दिन आश्लेषानक्षत्र और अष्टमीके योगमें विष चार प्रहरकी सीमामें रहता है ॥२०५॥ मंगलवारके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र और नवमी तिथिके योगमें लगातार छह प्रहर तक विष रहता है। बुधवारके दिन चतुर्थी और अनुराधा नक्षत्रमें विष आठ प्रहर तक जानना चाहिए ॥२०६॥ गुरुवारके दिन प्रतिपदा और ज्येष्ठा नक्षत्रके योगमें विष सोलह पहर तक रहता है। कितने ही विद्वानोंने तिथि, वार और नक्षत्रसे भिन्न अन्यके अधीन यह योग माना है ॥२०७॥ शनिवारके दिन आर्द्रा नक्षत्र और चतुर्दशीके योगमें महाविष अपने दिनके अन्त तक रहता है। कितने ही विद्वानोंने तिथि, वार और नक्षत्रसे भिन्न अन्यके अधीन यह योग माना है ॥२०८॥

भावार्थ—कुछ आचार्योका मत है कि तिथि, वार, नक्षत्रके योगमें सर्प-दंशका फल सामान्य होता है, क्योंकि मुहूर्त चिन्तामणिके नक्षत्र प्रकरणमें 'पित्रे समित्रे फणिदंशने मृतिः' अर्थात् यहाँ-पर केवल नक्षत्रमें ही सर्पदंशका फल कहा है। किन्तु कतिपय नक्षत्रोंमें सर्पदंश होनेपर तिथि-वारका योग नहीं होनेपर भी मृत्यु हो हो जाती है।

पहरके अर्ध आद्य और अन्तिम प्रहर तथा दुर्वार (मंगल, शनि, रवि) के दिन उनका छठा अंश रहे तब, तथा रात्रिमें जब पंचम अंश शेष रहे तब तक महाविषका प्रभाव रहता है ॥२०९॥ रविवारके दिन प्रारम्भसे पहिले शुक्र, रवि, सोम, शनि, गुरु, मंगल इस क्रमसे दिनका पर्याय होता हैं और रात्रिमें पंचम अर्थात् प्रथम प्रहर आनेपर सूर्य, बृहस्पति, चन्द्र, शुक्र, मंगल, शनि और बुधका पर्याय होता है अर्थात इस क्रमसे दिन और रात्रिमें सर्प-दष्ट पुरुषपर विषका प्रभाव रहता हैं ॥२१०॥

यहाँ एकाक्षरसे वार-नाम लेना चाहिए। तथा वारोंसे यथासंख्य नागोंके पहर होते हैं। जिस समय जिस नागका अर्ध प्रहर होगा; उसी कालमें वह उसके लिए उद्यत होगा। ये उपर्युक्त नागोंके अर्ध प्रहर है, उन पहरोंके कालमें शनिवार हो और यदि सर्प-दष्ट पुरुष अन्य किसीके द्वारा आत्त या गृहीत न हो, तो जीवमें जीवन जानना चाहिए। इसी युक्तिसे आत्त-अनात्तको भी जानना चाहिए ॥२११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालदष्टोऽपि सूर्यस्य दिनेऽष्टाविंशतिर्घटी । जीवत्यतो मृतो नो चेद्दलितं कालमर्मवित् ॥२१२
दिने कस्यापरात्तोऽपि स्वास्थ्याकृद् विंशती घटी । पश्चादष्टादशघटीर्मोहो भवति निश्चितः ॥२१३
सोमादीनां दिनेष्वेवं यद्यः काले परात्तयोः । कालस्य प्रथमा पश्चादपरात्तस्य च क्रमात् ॥२१४

सोमस्य दिवसे कालावधौ घट्यो जिनैः समाः ।
स्वास्थ्याय षोडश ततो मोहायाष्टादशः स्फुटः ॥२१५

भौमस्य दिवसे कालघटिका विंशतिर्भवेत् । घटिका द्वादश स्वास्थ्ये षट्त्रिंशा मोहनाडिकाः ॥२१६
बुधस्य दिवसे ज्ञेया घट्यः कालस्य षोडश । स्वास्थ्यस्य घटिकाश्चाष्टौ मोहे सार्द्धदिनं ततः ॥२१७
वृहस्पतिदिने कालघटिका द्वादश स्मृताः । चतस्रो घटिकाः स्वास्थ्येष्वह मोहोऽथ षट् घटी ॥२१८

शुक्रस्य दिवसे कालघटिका अष्ट निश्चितम् ।
घट्योऽष्टाविंशतिः स्वास्थ्ये मोहो दिनचतुष्टयम् ॥२१९

शनैश्चरदिने कालघटिकानां चतुष्टयम् । घट्यो जिनैः समा स्वास्थ्ये मोहे षट्सार्धका दिनाः ॥२२०
कालोऽत्याद्ये शनेरन्त्या घटी जीवे परान्तकः । काल एवं भवेन्नित्यं सर्वप्रहरकान्तरे ॥२२१
नाभिदेशतलस्पष्टो निर्दग्धस्येव वह्निना । दष्टस्य जायते स्फोटो ज्ञेयो नेतापरोऽन्तकः ॥२२२
पद्मः कण्ठं तदस्पर्शी महापद्मः स्वसित्यलम् । शङ्खो हसतिभूप्रादी पुलको वामचेष्टितः ॥२२३

सूर्यके कालमें (रविवारको) डंसा हुआ व्यक्ति अट्ठाईस घड़ी जीवित रहता है। इसलिए यदि वह तब तक मरा न हो तो वह जी जाता है, ऐसा कालके जाननेवालोंका कहना है ॥२१२॥ सोम आदि किसी भी दिन डसनेपर भी बीस घड़ी अस्वस्थता करनेवाली होती है, पश्चात् अठारह घड़ी तक नियमसे मूर्च्छा रहती है ॥२१३॥ सोम आदि वारोंमें जिस-जिस नागके डसनेका जो काल बताया गया है, उस-उस कालमें पहिले और पीछे उक्त क्रम जानना चाहिए ॥२१४॥ सोमवारके दिन अपने कालके भीतर तीर्थंकर जिनोंके समान अर्थात् चौबीस घड़ी अस्वस्थता रहती है, पुनः सोलह घड़ी स्वस्थताके लिए कही गई है। तथा मूर्च्छाके लिए अठारह घड़ी काल होता है ॥२१५॥ मंगलवारके दिन बीस घड़ी काल निश्चित है। तत्पश्चात् बारह घड़ी स्वस्थताके लिए तथा छत्तीस घड़ी मूर्च्छाके लिए कही गई हैं ॥२१६॥ बुधके दिन सोलह घड़ी कालकी निश्चित हैं। स्वस्थताके लिए आठ घड़ी और मूर्च्छाके लिए आधा दिन सहित एक अर्थात् डेढ़ दिन कहा गया है ॥२१७॥ गुरुवारके दिन बारह घड़ी काल कहा है। इसमेंसे चार घड़ी स्वस्थताके लिए, पुनः छह घड़ी मोहके लिए कही गई हैं ॥२१८॥ शुक्रवारके दिन आठ घड़ी कालकी निश्चित हैं। अट्ठाईस घड़ी स्वस्थताके लिए निश्चित है और चार दिन मूर्च्छाके होते हैं ॥२१९॥ शनिवारके दिन चार घड़ी कालका प्रमाण है और स्वस्थताके लिए चौबीस घड़ी तथा मोहके साढ़े छह दिन कहे गये हैं ॥२२०॥ शनिके दिन डसनेके तत्काल बादका समय जीवके लिए काल स्वरूप है, किन्तु शनिवारकी अन्तिम घड़ी जीवनमें सहायक है, इसके पश्चात् यमराज उद्यत हैं। सभी दिनोंके सर्व प्रहारोंके अन्तरालमें काल ही सदा बलवान् होता है ॥२२१॥ सर्पके काटनेके बाद नाभिदेशके तलभागमें अग्निसे जले हुएके समान स्फोट (फफोला) होता है। इसमें अन्तक (यमराज) ही परम नेता है ॥२२२॥ पद्मसर्पके द्वारा काटे जानेपर कण्ठमें स्फोट होता है। महापद्मके द्वारा डसे जानेपर व्यक्ति बार-बार दीर्घ श्वास लेता है। शंखके द्वारा काटे जानेपर व्यक्ति हँसता है, पुलकित होता है, भूमिपर लोटता है और विपरीत चेष्टा करता है ॥२२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषं दंशे द्विपञ्चाशन्मातृ-दंष्ट्रे ततोऽलिके । नेत्रयोर्वदने नाडीष्वथ धातुषु सप्तसु ॥२२४
रसस्थं कुरुते कण्डू रक्तस्थं बाह्यतापकृत् । मांसस्थं जनयेच्छर्दी मेदस्थं हन्ति लोचने ॥२२५
अस्थिस्थं मर्मपीडां च मज्जस्थं दाहमान्तरम् । शुक्रस्थमानयेन्मृत्युं विषं धातुक्रमादहो ॥२२६
निराकर्तुं विषं शक्यं पूर्वस्थाने चतुष्टये । अतः परमसाध्यं तु कष्टं कष्टतरं मृतिः ॥२२७
आग्नेये स्याद् विषे तापो जडता वारुणाधिके । प्रलापो वायवीये तु त्रिविधं विषलक्षणम् ॥२२८
निक्षेपे मारिचे चूर्णे दृशो यदि पयः क्षरेत् । तदा जीवति दष्टः सन्नन्यथा तु न जीवति ॥२२९
पादाङ्गुष्ठपतत्पृष्ठे गुल्फे जानुनि लिङ्गके । नाभौ हृदि कुचे कण्ठे नासा-दृग्-श्रुतिषु भ्रुवोः ॥२३०
शङ्खे मूर्ध्नि क्रमात्तिष्ठेत्पीयूषस्य कलान्वहम् । शुक्ले प्रतिपदःपूर्वं कृष्णे पक्षे विपर्ययः ॥२३१
सुधाकलास्मरो जीवस्त्रयाणामेकवासिता । पुंसो दक्षिणभागे स्याद्वामे भागे तु योषितः ॥२३२
सुधा-स्थानाद्विषस्थानं सप्ताहं ज्ञेयमन्वहम् । सुधा-विषस्थानमर्दो विषघ्नो विषवृद्धिकृत् ॥२३३

स्त्रियोऽप्यवश्यं वश्याः स्युः सुधास्थानविमर्दनात् ।
स्पृष्टा विशेषाद्वश्याय गुह्यप्राप्ता सुधाकला ॥२३४

जिसके शवसे विच्छू पैदा होते हैं ऐसी नागिनके काटनेपर विष दोनों नेत्रोंमें, मुखपर नाड़ियोंपर और सातों ही धातुओंपर बावन घड़ी तक रहता है ॥२२४॥ रसमें स्थित विष शरीरमें खुजली करता है, रक्तमें स्थित विष शरीरके बाहिरी भागपर ताप करता है, मांसमें स्थित विष वमन कराता है, मेदमें स्थित विष नेत्रोंका विनाश करता है ॥२२५॥ हड्डोपर स्थित विष मर्मस्थानपर पीड़ा करता है, मज्जामें स्थित विष अन्तर्दाह करता है और शुक्र (वीर्य) में स्थित विष मृत्युको लाता है। इस प्रकारसे अहो पाठको, शरीरकी सातों धातुओंपर विषका क्रम जानना चाहिए ॥२२६॥

उक्त सात धातुरूप स्थानोंमेंसे प्रारम्भके चार स्थानोंपर व्याप्त विषका निराकरण करना शक्य है। किन्तु अन्तिम तीन धातु-स्थानों पर व्याप्त विष कष्ट-साध्य, कष्टतर-साध्य और असाध्य है अर्थात् शुक्र-व्याप्त विषको दूर नहीं किया जा सकता। उसमें तो मरण निश्चित है ॥२२७॥ आग्नेय विषमें शरीरके भीतर ताप होता है, वारुण विषकी अधिकता होनेपर शरीरमें जड़ता या शून्यता आती है और वायवीय विषमें सर्प-दष्ट व्यक्ति प्रलाप करता है ॥२२८॥ सर्प-दष्ट पुरुषकी आँखोंमें मिर्चोंका चूर्ण डालने पर यदि पानी (आँसू) बहे, तो वह जी जाता है और यदि पानी न निकले तो वह नहीं जीता है ॥२२९॥

पीछे मुड़ते पैरके अंगूठेमें, गुल्फ, जानु, लिंग, नाभि, हृदय, कुच, कण्ठ, नासा, नेत्र, कर्ण, भौंह, शंख और मस्तक पर शुक्ल पक्षमें प्रतिपदासे लेकर तिथि क्रमसे प्रतिदिन अमृतकी कला रहती है। कृष्ण पक्षमें इससे विपरीत अमृत कलाका निवास जानना चाहिए ॥२३०-२३१॥ सुधा-(अमृत) कला, स्मर (कामदेव) और जीव इन तीनोंका एक स्थान पर निवास होता है। इनका निवास पुरुषके दक्षिण भागमें और स्त्रीके वाम भागमें रहता है ॥२३२॥ सुधा स्थानसे विषस्थान सात दिन (?) तक प्रतिदिन जानना चाहिए। सुधास्थानका मर्दन करने पर विषका विनाश होता है और विषस्थानका मर्दन करने पर विष की और अधिक वृद्धि होती है ॥२३३॥ उक्त अमृत स्थानोंके मर्दनसे स्त्रियाँ भी अवश्य ही अपने वशमें हो जाती हैं। किन्तु गुह्यस्थानको प्राप्त अमृत-कला यदि स्पर्श की जाती है तो स्त्रियाँ विशेष रूपसे अपने वशमें होती हैं ॥२३४॥ इन सुधा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुधास्थानेषु नैव स्यात्कालदंशोऽपि मृत्यवे । विषस्थानेषु दंशस्तु प्रशस्तोऽप्याशु मृत्यवे ॥२३५

सुधाकालस्थितान् प्राणान् ध्यायन्नात्मनि चात्मना ।
निर्विषत्वं वयस्तम्भं कीर्ति चाप्नोति दष्टकः ॥२३६

जिह्वायास्तालुनो योगादमृतस्रवणे तु यत् । विलिप्तस्तेन दंशः स्यान्निर्विषं क्षणमात्रतः ॥२३७
पुनर्नवायाः श्वेताया गृहीत्वा मूलमम्बुभिः । पिष्टपानं प्रदातव्यं विषार्त्तस्यार्त्तिनाशनम् ॥२३८
कन्दः सुदर्शनायाश्च जलैः पिष्ट्वा निपीयते । अथवा तुलसीमूलं निर्विषत्वविधित्सया ॥२३९
जले घृष्टैरगस्त्यस्य पत्रैर्नस्ये कृते सति । राक्षसादिकदोषेण विषेण च प्रमुच्यते ॥२४०

स्थानों पर काल-दंश (भयंकर काले साँपका काटना) भी मृत्युके लिए नहीं होता है। किन्तु विष-स्थानों (मर्मस्थलों) पर प्रशस्त भी दंश (भद्र सर्पका काटना) शीघ्र मृत्युके लिए होता है ॥२३५॥

अमृत काल-स्थित प्राणोंको अपनी आत्मामें अपनी आत्माके द्वारा ध्यान करता हुआ सर्प-दष्ट व्यक्ति निर्विषताको वय (जीवन) की स्थिरताको, और कीर्तिको प्राप्त करता हैं ॥२३६॥ जिह्वाका तालुके साथ संयोग होने पर उससे जो अमृत झरता हैं, यदि उससे दंश स्थान विलिप्त हो जावे, तो व्यक्ति क्षणमात्रमें निर्विष हो जाता है ॥२३७॥

भावार्थ—इन दोनों श्लोकोंमेंसे प्रथम श्लोकके द्वारा आत्म-साधनाकी महत्तासे विषके दूर होनेका उपाय बताया गया है और दूसरे श्लोकसे द्वारा जिह्वा-तालु संयोगसे झरनेवाले रसके द्वारा विष दूर होनेका उपाय बताया गया है।

अब विष दूर करनेके बाह्य उपचारको बतलाते हैं—

श्वेत पुनर्नवाके मूलभाग (जड़) को लेकर जलके साथ पीसकर पिलाना चाहिए। यह औषधि सर्प-विषसे पीड़ित व्यक्तिकी पीड़ाका नाश करती है ॥२३८॥ सुदर्शनाका कन्द जलके साथ पीसकर पीना चाहिए। अथवा विष दूर करनेकी इच्छासे तुलसीकी जड़को भी जलमें पीसकर पीना या पिलाना चाहिए ॥२३९॥ अगस्त्य वृक्षके पत्तोंको जलमें घिसकर या पीसकर नाकसे सूँघनेपर या सुँघानेपर विष-पीड़ित व्यक्ति विषसे विमुक्त हो जाता है और यदि कोई राक्षस-प्रेतादिके दोषसे पीड़ित हो तो उससे भी विमुक्त हो जाता है ॥२४०॥

विशेषार्थ—प्रस्तुत सर्प-विषके प्रसंगमें ग्रन्थकारने जिन आठ प्रकारके सर्पोका उल्लेख किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—१ अनन्त, २. वासुकी, ३. तक्षक, ४. कर्कट, ५. पद्म, ६. महापद्म, ७. शंख और ८. कुलिक या राहु। सुश्रुतसंहिता और अष्टाङ्गहृदय जैसे आयुर्वेदके महान् ग्रन्थोंमें नागोंके तीन भेद ही बतलाये गये हैं—१. दर्वीकर, २. मण्डली और ३. राजीमान्[1]। इनका संक्षेपमें स्वरूप बताकर कहा गया है कि इन भूमिज सर्पो के अनेक भेद होते है। अग्नि-पुराणमें[2] सर्पोके सात भेद बताये गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार है—१. शेष, २. वासुकि, ३. तक्षक, ४. कर्कट, ५. अब्ज, ६. महाब्ज, ७. शंख और ८. कुलिक।

---

१. दर्वीकरा मण्डलिनो राजीवन्तश्च पन्नगाः। त्रिधा समासतो भौमा भिद्यन्ते ते त्वनेकधा ॥१॥
(अष्टाङ्गहृदय अ० ३६)

२. शेष व्रासुकि-तक्षाख्याः कर्कटोऽब्जो महाम्वुजः। शंखपालश्च कुलिक इत्यष्टौ नागवर्यकाः ॥२॥
दशाष्ट पञ्च त्रिगुणशत मूर्द्धान्वितौ क्रमात्। विप्रौ नृपौ विशौ शूद्रौ द्वौ-द्वौ नागेषु कीर्त्ति तौ ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत ग्रन्थोक्त नामोंके साथ इन नामोंमें ७ नाम तौ ज्योंके त्यों एक ही है। शेषके स्थान पर प्रस्तुत ग्रन्थमें अनन्त नाम है। किन्तु दोनोंके जो स्वरूप आदिका वर्णन अग्नि पुराणमें किया गया है। वह संक्षेपसे केवल ३६ श्लोकोंमें है, जिन्हें तुलनाके लिए यहाँ पाद-टिप्पणमें दिया है। पर प्रस्तुत ग्रन्थकारने जांगुलि प्रकरणका वर्णनका ९६ श्लोकोंमें और वहुत ही स्पष्ट रूपके किया गया है। तुलनात्मक दृष्टिसे देखनेपर यह बात हृदय पर सहजमें अंकित हो जाती है कि ग्रन्थकारके सामने उक्त तीनों ग्रन्थोंके अतिरिक्त सर्प-चिकित्सा-विषयक और भी कोई विस्तृत ग्रन्थ रहा है और वे इस विषयके विशिष्ट अभ्यासी रहे है। यही कारण है कि उन्होंने सप्ताहके सातों वारोंमेंसे किस दिन किस समय और कितनी देर तक किस जातिके सर्पका विष दष्ट व्यक्ति पर प्रभावी रहता है, कितने समय तक सर्प-दष्ट व्यक्ति मूर्च्छित रहता है और कितना समय उसे स्वास्थ्य-लाभ करनेमें लगता है, इसका विगतवार वहुत स्पष्ट वर्णन अति सरलरूपसे किया है। आयुर्वेदके उक्त दोनों ग्रन्थोंमें किस नक्षत्र, तिथि और वारमें काटनेपर कितने समय तक विषका

तदन्वयाः पञ्चशतं तेभ्यो जाता असंख्यकाः। फणिभण्डलिराजील-वातपित्तकफात्मकाः ॥४॥
व्यन्तरा दोषमिश्रास्ते सर्पा दर्वीकराः स्मृताः। .... ॥५॥
रथाङ्ग-लाङ्गलश्छत्र-स्वस्तिकाङ्कुशधारिणः। गोनसा मन्दगा दीर्घा मण्डलैर्विविधैश्चिरता ॥६॥
षण्मासान् मुच्यते कृत्ति जीवेत्षष्टिसमाद्वयम्। नागाः सूर्यादिवारेशाः सप्ता उक्ता दिवा निशि ॥१३॥
स्वेषां षट् प्रतिवारेषु कुलिकः सर्वसन्धिषु। शंखेण वा महाब्जेन सह तस्योदयोऽथवा ॥१४॥
द्वयोर्वा नाडिका मंत्र-मंत्रकं कुलिकोदयः। द्रुष्टः स कालः सर्वत्र सर्वदेशे विशेषतः ॥१५॥
कृत्तिका भरणी स्वाती मूलं पूर्वात्रियाश्विनी। विशाखार्द्रा मघाश्लेषाचित्राश्रवणरोहिणी ॥१६॥
हस्ता मन्दकुजौ वारी पञ्चमी चाष्टमी तिथिः। षष्ठी रिक्ता शिशा निन्द्या पञ्चमी च चतुर्दशी ॥१७
सन्ध्याचतुष्टयं दुष्टं दग्धयोगाश्च राशयः। एकद्विवहवो दंशा दष्टविद्धञ्च खण्डितम् ॥१८॥
अदंशमवगुप्तं स्याद् दंशमेव चतुर्विधम्। त्रयो द्वयेकक्षता दंशा वेदना रुधिरोल्वणः ॥१९॥
नक्तन्त्वेकाङ्घ्रिकूर्माभाः दंशाश्च मभचोदिताः। दीहीपिपीलिकास्पर्शी कण्ठशोथरुजान्विता ॥२०॥
सत्तोदो ग्रन्थितो दंशः सविषो न्यस्तनिर्विषः। देवालये शून्यगृहे वल्मीकोद्यान कोटरे ॥२१॥
रथ्यासन्धौ श्मशाने च नद्याञ्च सिन्धुसङ्गमे। द्वीपे चतुष्पथे सौधे गृहऽब्जे पर्वताग्रतः ॥२२॥
बिलद्वारे जीर्णकूपे जीर्णवेश्मनि कुडचके शिग्रुश्लेष्मातकाक्षेषु जम्बूडुम्बरणेषु च ॥२३॥
वटे च जीर्णप्राकारे खास्यहृत्कक्षजत्रुणि। तालौ शंखे गले मूर्घ्नि चिबुके नाभिपादयोः ॥२४॥
दंशोऽशुभः शुभो दूतः पुष्पहस्तः सुवाक् सुधीः। लिङ्गवर्णसमानश्च शुक्लवस्त्रोऽमलः शुचिः ॥२५॥
अनपरद्वारगतः शस्त्री प्रमादी भूगतेक्षणः। विवर्णषासा पाशादिहस्तः गद्गदवर्णभाक् ॥२६॥
शुष्ककाष्ठाश्रितः खिन्नस्तिलाक्तककरांशुकः। आर्द्रवासाः कुष्णरक्तपुष्पयुक्तशिरोरुहः ॥२७॥
कुचमर्दी नखच्छेदी गुदस्पृक् पादलेखकः। केशमुञ्ची तृणच्छेदी दुष्टा दूता तथैकशः ॥२८॥
इडान्या वा वहेद द्वेधा यदि दूतस्य चात्मनः। आभ्यां द्वाभ्यां पुष्टयास्मान् विद्यास्त्रीपुन्नपुंसकान् ॥२९॥
दूतः स्पृशति यद्गात्रं तस्मिन् दंशमुदाहरेत्। दूताङ्घ्रिचलनं दुष्टमुत्थितिर्निश्चिलाशुभा ॥३०॥
जीवपार्श्वे शुभो दूतो दुष्टोऽन्यत्र समागतः। जीवो गतागतैर्दुष्टः शुभो दूतनिवेदने ॥३१॥
दूतस्य वाक्प्रदुष्टा सा पूर्वा मजार्धनिन्दिता। विभक्तैस्तस्य वाक्यानौर्विष-निर्विषकालता ॥३२॥

(अग्निपुराण अध्याय २९४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ षड्दर्शनविचार क्रमः—

जैनं मीमांसकं बौद्धं साङ्ख्यं शैवं च नास्तिकम् । स्व-स्वतर्कविभेदेन जानीयाद्दर्शनानि षट् ॥२४१

अथ जैनम्—

बल-भोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः । नान्तरायस्तथा निद्रा भीरज्ञानं जुगुप्सनम् ॥२४२
हासो रत्यरती रागद्वेषाविरतिः स्मरः । शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादश दोषा न यस्य सः ॥२४३
जिनो देवो गुरुः सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशकः । ज्ञानदर्शनचारित्राण्यपवर्गस्य वर्त्तनी ॥२४४
स्याद्वादस्य प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च । नित्यानित्यं जगत्सर्वं नव तत्त्वानि सर्वथा ॥२४५
जीवाजीवौ पुण्यपापे आस्रवः संवराणि च । बन्धो निर्जरणं मुक्तिरेषां व्याख्याऽधुनोच्यते ॥२४६
चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः । सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययात् ॥२४७
आस्रवः कर्मसम्बन्धः कर्मरोधस्तु संवरः । कर्मणां बन्धनाद् बन्धो निर्जरा तद्वियोजनम् ॥२४८

प्रभाव रहता है, इसका कुछ भी वर्णन नहीं किया है। पर सर्प-विषके दूर करनेकी औषधियोंका विस्तारसे वर्णन किया है। किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थमें सर्वत्र सहजमें सुलभ पुनर्नवा, सुदर्शना, तुलसीकी जड़को जलमें पीसकर पीनेका और अगस्त्यके पत्रोंको पीसकर सूंघनेका ही उल्लेख किया है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने एक और आध्यात्मिक प्रयोग विष दूर करनेका उपाय ऊपर २३७ वें श्लोकमें बताया है कि शरीरके जिस अमृत स्थानपर सर्पने काटा हो उसपर चित्त एकाग्र-कर आत्म चिन्तन करनेसे सर्पविष दूर हो जाता है। इसी प्रकार एक शारीरिक प्रयोग भी बताया है कि जिह्वाके अग्रभागको तालुके साथ संयोग करनेपर उससे जो रस झरे, उससे सर्प दष्ट अंग को वार-बार लेप करनेसे भी सर्प विष दूर हो जाता है। सर्प-चिकित्सामें ये दोनों ही उनके अनुभूत प्रयोग ज्ञात होते हैं।

अब षड् दर्शनोंके विचारका क्रम प्रस्तुत किया जाता है—

जैन, मीमांसक, बौद्ध, सांख्य, शैव और नास्तिक इन छह दर्शनोंको अपने-अपने तर्कके भेदसे भिन्न-भिन्न जानना चाहिए ॥२४१॥

उनमेंसे सर्वप्रथम क्रम-प्राप्त जैन-दर्शनका वर्णन करते हैं—

जिस महापुरुषके बल (वीर्य) भोग, उपभोगका और दान, लाभ इन दोनोंका अन्तराय न हो, अर्थात् पाँचों अन्तरायकर्मोंका जिसने क्षय कर दिया है, तथा निद्रा, भय, अज्ञान, जुगुप्सा, हास्य, रति, अरतिः राग, द्वेष, अविरति (बुभुक्षा , काम विकार, शोक, और मिथ्यात्व ये अठारह दोष न हों, ऐसा जिनेन्द्र जिस मतका देव है, तथा सम्यक् प्रकारसे तत्त्वोंका उपदेश करनेवाला और ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप मोक्षका बतानेवाला, जिस मतमें गुरु माना गया है, और स्याद्वाद-मय धर्मका प्ररूपक जिसका शास्त्र है, ऐसे जैन दर्शनमें प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण माने गये हैं। जैनदर्शनमें सर्व जगत्को कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य माना गया है। इस मतमें नौ तत्त्व कहे गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, वन्ध, निर्जरा और मोक्ष। अब इनकी व्याख्या की जाती है ॥२४२–२४६॥

ज्ञान-दर्शनरूप चेतना लक्षण वाला जीव है। इससे भिन्न अर्थात् चेतना-रहित अजीव है। सत्कर्मरूप पुद्गल पुण्य है और इस विपरीत असत्कर्मरूप पुद्गल पाप है ॥२४७॥ कर्म-सम्बन्धको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टकर्मक्षयान्मोक्षोऽन्तर्भाव एषु कैश्चन । पुण्यस्य संवरे पापस्यास्रवे क्रियते पुनः ॥२४९
लब्धानन्तचतुष्कस्य लोकाग्रस्थस्य चात्मनः । क्षीणाष्टकर्मणो मुक्तिर्निव्यावृत्तिर्जिनोदिता ॥२५०
लुञ्चिताः पिच्छिकाहस्ता पाणिपात्रा दिगम्बराः । ऊर्ध्वाशिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः ॥२५१
भुङ्क्ते न केवली न स्त्री मोक्षगेति दिगम्बराः । प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः समम् ॥२५२

इति जैनम् ।

अथ मीमांसकमतम्—

मीमांसको द्विधा कर्म-ब्रह्ममीमांसकत्वतः । वेदान्ती मन्यते ब्रह्म कर्म भट्ट-प्रभाकरौ ॥२५३
नवतत्त्वदेशको देवो देवस्तत्त्वोपदेशकः । पूज्यो वह्निः प्रमाणानां प्रमाणमधुनोच्यते ॥२५४
प्रत्यक्षमनुमानं च वेदश्चोपमया सह । अर्थापत्तिरभावश्च भट्टानां षट् प्रमाण्यसौ ॥२५५
प्रभाकरमते पञ्चैतान्येवाभाववर्जनात् । अद्वैतवादवेदान्ती प्रमाणं तु यथा तथा ॥२५६
सर्वमेतदिदं ब्रह्म वेदान्तेऽद्वैतवादिनाम् । आत्मन्येव लयो मुक्तिर्वेदान्तिकमते मता ॥२५७

आस्रव कहते हैं, और कर्मों के निरोधको संवर कहते हैं। कर्मोंके आत्माके साथ बँधने को बन्ध कहते है, कर्म-बन्धके वियोजनको निर्जरा कहते हैं, और आठों कर्मोंके क्षयको मोक्ष कहते हैं। कितने ही आचार्य पुण्यका सँवरमें (?) और पापका आस्रव तत्त्वमें अन्तर्भाव करते हैं, अतः वे सात तत्त्वोंको मानते हैं ॥२४८-२४९॥

जिसने अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य इस अनन्तचतुष्कको प्राप्त कर लिया है, जो लोकके अग्रभागमें विराजमान है और जिसके आठों कर्मोंका क्षय हो गया है। ऐसे निवृत्त आत्माके जिनदेवने मुक्ति कही है ॥२५०॥

जो केश-लोंच करते हैं, पिच्छिकाको हाथमें धारण करते हैं, पाणिपात्रमें भोजन करते हैं, दिशा ही जिनके वस्त्र हैं अर्थात् नग्न रहते हैं, दातारके घरपर खड़े-खड़े ही भोजन करते हैं ऐसे जैन-ऋषि जिस मतमें दूसरे गुरु माने गये हैं ॥२५१॥ केवली भगवान् भोजन नहीं करते हैं, और स्त्री मोक्ष नहीं जाती है ऐसा दिगम्बर कहते हैं और यही उनका श्वेताम्बरोंके साथ महान् भेद है ॥२५२॥

अब मीमांसक मतका निरूपण करते हैं—

कर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसाके भेदसे मीमांसक दो प्रकारके हैं, इनमेंसे वेदान्ती लोग ब्रह्मको मानते हैं, और भट्ट प्रभाकर कर्मको मानते हैं ॥२५३॥ भट्ट लोग तो तत्त्वके उपदेशक देवको अपना देव मानते हैं, अग्निको पूज्य मानते हैं और छह प्रमाण मानते हैं। अब प्रमाणको कहते हैं ॥२५४॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, वेद (आगम) उपमान, अर्थापत्ति और अभाव। भट्ट लोगोंने ये छह प्रमाण माने हैं ॥२५५॥ प्रभाकरके मतमें उक्त छह प्रमाणोंमेंसे अभाव प्रमाणको छोड़कर शेष पाँच प्रमाण माने गये हैं। किन्तु अद्वैतवादी वेदान्ती जिस किसी प्रकारके ब्रह्मके साधन करनेवाले प्रमाणोंको मानता है ॥२५६॥ अद्वैत वादियोंके वेदान्त मतमें यह सर्व दृश्यमान सारा संसार परब्रह्मरूप ही है। (उसके सिवाय और कुछ भी वास्तविक पदार्थ नहीं है।) तथा वेदान्तियोंके मतमें आत्मामें लय-होनेको ही मुक्ति मानी गई है ॥२५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकुकर्मं स षट्कर्मो शूद्रान्नादिविवर्जकः । ब्रह्मसूत्री द्विजो भट्टो गृहस्थाश्रमसंस्थितः ॥२५८
भगवन्नामधेयास्तु द्विजा वेदान्तदर्शने । विप्रगेहभुंजिशक्तो यथैते ब्रह्मवादिनः ॥२५९
चत्वारो भगवद्भेदाः कुटीचर-बहूदकौ । हंसः परमहंसश्चाधिकोऽमीषु परः परः ॥२६०

इति मीमांसकमतम् ।

अथ बौद्धमतम्—

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभङ्गुरम् । आर्यसत्याख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात् ॥२६१
दु:खमायतनं चैव ततः समुदयो मतः । मार्गं चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥२६२
दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः । विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥२६३

अथायतनानि—

पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्याः विषयाः पञ्च मानसम् । धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु ॥२६४

अथ समुदयः—

रागादीनां गणो यस्मात्समुदेति गणो हृदि । आत्मात्मीयस्वभावाख्यो यस्मात्समुदयः पुनः ॥२६५

अथ मार्गः—

क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति वा वासना स्थिरा । स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥२६६

कर्ममीमांसा माननेवाले मीमांसक (यज्ञादि) आकुकर्मको मानते है। वह कर्म छह प्रकारका है। इस मतके साधु शूद्रोंके अन्न आदिके परित्यागी होते हैं, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को धारण करते हैं और भट्टलोग गृहस्थाश्रममें रहते हैं ॥२५८॥ वेदान्त दर्शनमें द्विज अपना 'भगवन्' नाम धारण करते हैं, अर्थात् परस्परके व्यवहारमें वे एक दूसरेको 'भगवन्' कहकर सम्बोधित करते हैं। ये लोग ब्राह्मणके घरमें ही भोजन करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मवादी भी जानना चाहिए ॥२५९॥ इतके मतमें चार भगवत्-प्ररूपित वेद ही आगम-प्रमाणके रूपमें माने गये हैं। ये लोग कुटियोंमें रहते हैं और शरीर-शुद्धिके लिए अधिक जलका उपयोग करते हैं। कितने ही वेदान्ती तो जलमें ही खड़े रहते हैं। इनमें हंसवेषके धारक साधु श्रेष्ठ और उनसे भी परमहंस वेषके धारक साधु और भी अधिक श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥२६०॥

अब बौद्धमतका वर्णन करते हैं—बौद्धोंका देव सुगत (बुद्ध) है, उनके मतानुसार यह समस्त विश्व क्षण-भंगुर है। उनके मतमें आर्यसत्य नामसे प्रसिद्ध चार तत्त्व माने गये हैं, जो क्रमसे इस प्रकार है—दुःख, दुःखका आयतन, समुदय और मार्ग। अब चारों आर्य सत्योंकी व्याख्या क्रमसे आगे सुनिये ॥२६१-२६२॥ संसारी स्कन्ध दुःख कहलाते हैं। वे स्कन्ध पाँच कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप ॥६३॥ अब आयतनोंका निरूपण करते हैं—पाँच इन्द्रियाँ, उनके शब्द आदि पाँच विषय, मानस और धर्मायतन, ये बारह आयतन बौद्धमतमें कहे गये हैं ॥२६४॥

अब समुदयका वर्णन करते हैं—

जिससे राग आदि विकारी भावोंका गण (समुदाय) हृदयमें उदयको प्राप्त होता है, वह आत्मा और आत्मीय स्वभाव नामक गण समुदाय कहा जाता है ॥२६५॥

अब मार्गका वर्णन करते हैं—'सभी संस्कार क्षणिक हैं' इस प्रकारकी जो वासना स्थिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणं द्वितयं तथा । चतुः प्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥२६७
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते । सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥२६८
आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य सम्मता । केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥२६९
रागादिज्ञानसन्तानवासनोच्छेदसम्भवा । चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्त्तिता ॥२७०
कृत्तिकमण्डलुमौड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम् । सङ्घो रक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः ॥२७१

इति बौद्धमतम् ।

अथ साङ्ख्यमतम्—

साङ्ख्यैर्देवः शिवः कैश्चिन्मतो नारायणोऽपरैः । उभयोः सर्वमप्यन्यत्तत्त्वप्रभृतिकं समम् ॥२७२
साङ्ख्यानां स्युर्गुणाः सत्त्वं रजस्तम इति त्रयः । साम्यावस्था भवत्येषां त्रयाणां प्रकृतिः पुनः ॥२७३
प्रकृतेः स्यान्महांस्तावदहङ्कारस्ततोऽपि च । पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि स्युश्चक्षुरादीनि पञ्च च ॥२७४
कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिचरणोपस्थपायवः । मनश्च पञ्च तन्मात्राः शब्दो रूपं रसस्तथा ॥२७५
स्पर्शो गन्धोऽपि तेभ्यः स्यात् पृथ्व्याद्यं भूतपञ्चकम् । भवेत्प्रकृतिरेतस्याः परस्तु पुरुषो मतः ॥२७६
पञ्चविंशतितत्त्वानि नित्यं सांख्यमते जगत् । प्रमाणं त्रितयं चात्र प्रत्यक्षमनुमागमः ॥२७७

होती है, वह मार्ग है, ऐसा जानना चाहिए । यह मार्ग ही मोक्ष कहा जाता है ॥२६६॥ बौद्धमतमें प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण माने गये हैं। वैभाषिक आदि चार प्रकारके बौद्ध प्रसिद्ध हैं ॥२६७॥ इनमें वैभाषिक लोग ज्ञानसे युक्त पदार्थको मानते हैं। सौत्रान्तिक लोग प्रत्यक्षसे ग्रहण किया जानेवाला पदार्थ मानते हैं, किन्तु उसकी बाह्य सत्ता नहीं मानते हैं ॥२६८॥ योगाचारके मतमें पदार्थके आकार-सहित बुद्धिको माना गया है। किन्तु माध्यमिक बौद्ध तो केवल अपनेमें अवस्थित संविद् (ज्ञान) को मानते हैं ॥२६९॥ राग आदिके ज्ञान-सन्तानरूप वासनाके उच्छेदसे होनेवाली अवस्थाको ही चारों प्रकारके बौद्ध 'मुक्ति' मानते हैं ॥२७०॥

बौद्ध भिक्षुओंने कृत्ति (चर्म) कमण्डलु, मौड्य (मौजी) चीर (वस्त्र) पूर्वाह्णकालमें भोजन करना, संघमें रहना और रक्त वस्त्रको धारण करना इस वेषका आश्रय लिया है ॥२७१॥

अब सांख्यमतका निरूपण करते हैं—

कितने ही सांख्योंने शिवको देव माना है और कितने ही दूसरे सांख्योंने नारायणको देव माना है। शेष अन्य सर्व तत्त्व आदिकी मान्यता दोनोंकी समान हैं ॥२७१॥ सांख्योंके मतमें सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण माने गये हैं। इन तीनों गुणोंकी साम्य अवस्थाको प्रकृति माना गया है ॥२७२॥ सांख्योंके मतानुसार प्रकृतिसे महान् उत्पन्न होता है, उससे अहंकार उत्पन्न होता है. अहंकारसे चक्षु आदिक पाँच बुद्धि या ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं, तथा वचन, पाणि, चरण, उपस्थ (मूत्र-द्वार) और पायु (मलद्वार) ये पांच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न होती हैं, तथा मन भी उत्पन्न होता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके शब्द, रूप आदि विषय हैं, इन्हें ही तन्मात्रा कहते हैं। इनसे पृथ्वी आदि पाँच भूततत्त्व उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार एक प्रकृतिसे उपर्युक्त चौवीस तत्त्व उत्पन्न होते हैं। ये सभी तत्त्व अचेतन हैं। इनमें भिन्न पच्चीसवाँ पुरुष तत्त्व है, जो कि चेतन है। इस प्रकार सांख्यमतमें पच्चीस तत्त्व माने गये हैं। सांख्यमतमें यह सम्पूर्ण जगत् नित्य है। इस मतमें तीन प्रमाण माने गये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ॥२७३-२७७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदैव जायते भेदः प्रकृतेः पुरुषस्य च । मुक्तिरुक्ता तदा साङ्ख्यैः ख्यातिः सैव च भण्यते ॥२७८

साङ्ख्यः शिखी जटी मुण्डी कषायाद्यम्बरधरोऽपि च ।
वेषो नास्त्येव साङ्ख्यस्य पुनस्तत्त्वे महाग्रहः ॥२७९

इति सांख्यमतम् ।

अथ शैवमतम्—

शैवस्य दर्शने तर्कावुभौ न्याय-विशेषकौ । न्याये षोडशतत्त्वी स्यात् षट्तत्त्वी च विशेषके ॥२८०

अन्योन्यतत्त्वान्तर्भावाद् द्वयोर्भेदोऽपि नास्ति कः ।
द्वयोरपि शिवो देवो नित्यः सृष्टयादिकारकः ॥२८१

अथ तत्त्वानि—

प्रमाणं च प्रमेयं च संशयश्च प्रयोजनम् । दृष्टान्तोऽथ सिद्धान्तावयवौ तर्क-निर्णयौ ॥२८२
वादो जल्पो वितण्डा च हेत्वाभासाश्छलानि च । जातिनिग्रहस्थानानीति तत्त्वानि षोडश ॥२८३
नैयायिकानां चत्वारि प्रमाणानि भवन्ति च । प्रत्यक्षमागमोऽन्यच्चानुमानमुपमापि च ॥२८४

अथ वैशेषिकमतम्—

वैशेषिकमते तावत्प्रमाणं त्रितयं भवेत् । प्रत्यक्षमनुमानं च तार्तीयकस्तथाऽऽगमः ॥२८५
द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम् । समवायश्च षट्तत्त्वी तत्त्वाख्यानमथोच्यते ॥२८६

जब जीवको प्रकृति और पुरुषका भेद ज्ञात होता है, तभी उसे सांख्योंने मुक्ति कहा है और उसे ही 'ख्याति' भी कहते हैं ॥२७८॥ सांख्य लोग शिखा, जटा भी रखते हैं और कोई-कोई मुण्डित मस्तक भी रहता है। ये लोग कषाय रंगके वस्त्रोंको धारण करते हैं। सांख्योंका कोई वेष स्थिर नहीं हैं, किन्तु तत्त्वके विषयमें ये सब महाग्रही है, अर्थात् पच्चीस ही तत्त्वोंको मानते हैं ॥२७९॥

अब शैवमतका निरूपण करते हैं—

शैवके दर्शनमें दो जातिके तर्कवादी हैं—एक न्यायवादी नैयायिक, और दूसरा विशेषवादी वैशेषिक। इनमें नैयायिक सोलह तत्त्वोंको मानता है और वैशेषिक छह तत्त्वोंको मानता है ॥२८०॥ उक्त दोनों ही तर्क-वादियोंके तत्त्वोंका परस्पर अन्तर्भाव हो जानेसे कोई खास भेद नहीं है। दोनोंके मतोंमें शिवको देव माना गया है, जो कि नित्य है और सृष्टि आदिका कर्त्ता है ॥२८१॥

नैयायिक मतमें माने गये सोलह तत्त्व इस प्रकार है—१. प्रमाण, २. प्रमेय, ३. संशय, ४. प्रयोजन, ५. दृष्टान्त, ६. सिद्धान्त, ७. अवयव, ८. तर्क, ९. निर्णय, १०. वाद, ११. जल्प, १२. वितण्डा, १३. हेत्वाभास, १४. छल, १५. जाति और १६. निग्रहस्थान ॥२८२–२८३॥ नैयायिकोंके मतमें चार प्रमाण माने गये हैं—प्रत्यक्ष, आगम, अनुमान और उपमान ॥२८४॥

अब वैशेषिक मतका वर्णन करते हैं—वैशेषिक मतमें तीन प्रमाण माने गये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और तीसरा आगम ॥२८५॥ इनके मतमें छह तत्त्व माने गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यं नवविधं प्रोक्तं पृथिवीजलवह्नयः। पवनो गगनं कालो दिगात्मा मन इत्यपि ॥२८७
नित्यानित्यानि चत्वारि कार्यंकारणभावतः।

अथ गुणाः—

स्पर्शं रूपं रसो गन्धः सङ्ख्या च परिमाणकम्। पृथक्त्वमथ संयोगं वियोगं च परत्वकम् ॥२८८
अपरत्वं बुद्धि-सौख्ये दुःखेच्छे द्वेषयत्नकौ। धर्माधर्मौ च संस्कारो इत्यपि गुरुत्वं द्रव ॥२८९
स्नेहशब्दौ गुणा एवं विंशतिश्चतुरन्विता। अथ कर्माणि वक्ष्यामि प्रत्येकमभिधानतः ॥२९०
उत्क्षेपणावक्षेपणाकुञ्चनं च प्रसारणम्। गमनानीति कर्माणि पञ्चोक्तानि तदागमे ॥२९१
सामान्यं भवति द्वेधा परं चैवापरं तथा। परमाणुषु वर्तन्ते विशेषा नित्यवृत्तयः ॥२९२

इति सामान्य-विशेषौ।

भवेदयुतसिद्धानामाधाराधेयवर्तिनाम्। सम्बन्धः समवायाख्य इहप्रत्ययहेतुकः ॥२९३
विषयेन्द्रियबुद्धीनां वपुषः सुख-दुःखयोः। अभावादात्मसंस्थानं मुक्तिर्नैयायिकी मता ॥२९४
चतुर्विंशतिवैशेषिकगुणान्त्यगुणा नव। बुद्ध्यादयस्तदुच्छेदो मुक्तिर्वैशेषिकी तु सा ॥२९५
आधारभस्मकौपीनजटायज्ञोपवीतिनः। मन्त्राचारादिभेदेन चतुर्धाः स्युस्तपस्विनः ॥२९६

हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। अब इन तत्त्वोंके भेद कहे जाते हैं ॥२८६॥ द्रव्य नामक तत्त्व नौ प्रकारका कहा गया है—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ॥२८७॥ इनमेंसे प्रारम्भके चार तत्त्व कार्य और कारण भावकी अपेक्षा नित्य भी है और अनित्य भी है। अर्थात् परमाणुरूप पृथिवी आदि नित्य है और घटादिरूप कार्य अनित्य हैं।

अब गुणोंका वर्णन करते हैं—१. स्पर्श, २. रूप, ३. रस, ४. गन्ध, ५. संख्या, ६. परिमाण, ७ पृथक्त्व, ८. संयोग, ९. वियोग (विभाग), १०. परत्व, ११. अपरत्व, १२. बुद्धि, १३. सुख, १४. दुःख, १५. इच्छा, १६. द्वेष, १७. प्रयत्न, १८. धर्म, १९. अधर्म, २०. संस्कार, २१. द्रवत्व, २२. वेग, २३. स्नेह और २४. शब्द। इस प्रकारसे ये २४ गुण माने गये हैं। अब प्रत्येकके नामपूर्वक कर्मोंको कहते हैं—१. उत्क्षेपण, २. अवक्षेपण, ३. आकुञ्चन, ४. प्रसारण और ५. गमन। ये पाँच प्रकारके कर्म उनके आगममें कहे गये हैं ॥२८८-२९१॥ सामान्य तत्त्व दो प्रकारका है—परसामान्य और अपरसामान्य। विशेष तत्त्व नित्य रूपसे परमाणुओंमें रहते हैं ॥२९२॥ इस प्रकार सामान्य और विशेष तत्त्वका वर्णन किया।

अब समवायतत्त्वका स्वरूप कहते हैं—अयुतसिद्ध (अभिन्न सम्बन्ध) वाले और आधार-आधेय रूपसे रहनेवाले ऐसे गुण-गुणी, अवयव-अवयी आदिमें 'इह इदम्' इस प्रकारके प्रत्ययका कारणभूत जो सम्बन्ध है, वह समवाय नामका तत्त्व कहलाता है ॥२९३॥

विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीरके सुख और दुःख इनके अभावसे आत्माका अपने स्वरूपमें जो अवस्थान होता है, वही नैयायिक मतमें मुक्ति मानी गई है ॥२९४॥ वैशेषिक मतमें जो चौबीस गुण माने गये हैं उनमेंके अन्तिम बुद्धि आदि नौ गुणोंके अत्यन्त उच्छेद होनेको वैशेषिक मतमें मुक्ति माना गया है ॥२९५॥

शैव मतके मानने वाले तपस्वो कहलाते हैं। उनके शरीरका आधार भस्म, कोपीन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शैवाः पाशुपताश्चैव महाव्रतधरास्तथा । तुर्याः कालमुखा मुख्या भेदाश्चैते तपस्विनः ॥२९७

इति शैवमतम् ।

अथ नास्तिकमतम्—

पञ्चभूतात्मकं वस्तु प्रत्यक्षं च प्रमाणकम् । नास्तिकस्य मते नान्यदात्मा मन्त्रं शुभाशुभम् ॥२९८
प्रत्यक्षमविसंवादिज्ञानमिन्द्रियगोचरम् । लिङ्गतोऽनुमितिर्धूमादिव वह्नेरवस्थितिः ॥२९९
अनुमानं त्रिधा पूर्वशेषं सामान्यतो यथा । वृष्टेः शस्यं नदीपूराद् वृष्टिरस्ताद् रवेर्गतिः ॥३००

ख्यातं सामान्यतः साध्यसाधनं चोपमा यथा ।
स्याद् गोवद्-गवयः सास्नादिमत्त्वाच्चोभयोरपि ॥३०१

आगमश्चाप्तवचनं स च कस्यापि कोऽपि च । वाचा प्रतीतौ तत्सिद्धौ प्रोक्तार्थापत्तिरुत्तमैः ॥३०२
वटुः पीनोऽह्नि नाश्नाति रात्रावित्यर्थतो यथा । पञ्चप्रमाणासामर्थ्ये वस्तुसिद्धिरभावतः ॥३०३
स्थापितं वादिभिः स्वं स्वं मतं तत्त्वप्रमाणतः । तत्त्वं सपरमार्थेन प्रमाणं तच्च साधकम् ॥३०४

जटा और यज्ञोपवीत धारण करना है। वे मंत्र और आचार आदिके भेदसे चार प्रकारके होते हैं ॥२९६॥ उन तपस्वियोंके वे चार मुख्य भेद इस प्रकार हैं—शैव, पाशुपत, महाव्रत-धारक और कालमुख ॥२९७॥

अब नास्तिक मतका वर्णन करते हैं—नास्तिकके मतमें पृथिवी, जलादि पंचभूतात्मक वस्तु ही तत्त्व है। एक प्रत्यक्षमात्र प्रमाण है। आत्मा नामका कोई भिन्न पदार्थ नहीं है और न शुभ-अशुभरूप कोई मंत्र है ॥२६८॥

इन्द्रिय-गोचर अविसंवादी ज्ञानको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। लिंग (साधन) से लिंगी (साध्य) के ज्ञानको अनुमान कहते हैं। जैसे कि धूमसे अग्निका ज्ञान होता है। शैवमतमें अनुमान तीन प्रकारका माना गया है—पूर्ववत्-अनुमान, शेषवत्-अनुमान और सामान्यतो दृष्ट-अनुमान। इनके उदाहरण क्रमसे इस प्रकार हैं—वर्षा होनेसे धान्यकी उत्पत्तिका ज्ञान होना पूर्ववत्-अनुमान है। नदीमें आये हुए जल-पूरके देखनेसे ऊपरी भागमें वर्षा होनेका ज्ञान होना शेषवत्-अनुमान है। तथा सूर्यके अस्त होनेसे उसकी गतिका ज्ञान होना सामान्यतो दृष्ट अनुमान है। इस प्रकार किसी लिंग विशेषसे साध्यके साधनको अनुमान कहा गया है। गोके सदृश गवय होता है, क्योंकि दोनोंके सास्ना (गल-कम्बल) आदि सदृश पाई जाती है, इस प्रकार सादृश्य-विषयक ज्ञानको उपमान प्रमाण कहते हैं। आप्त पुरुषके वचनको आगम प्रमाण कहते हैं। वह आप्त पुरुष कोई भी व्यक्ति हो सकता है, जिसके कि वचनसे यथार्थ अर्थका बोध होवे। वचनके द्वारा तत्सिद्ध अर्थकी प्रतीति होनेको उत्तम पुरुषोंने अर्थापत्ति नामका प्रमाण कहा है। जैसे कि 'यह पीन (मोटा) वटु दिनमें नहीं खाता है' ऐसा कहने पर यह बात अर्थात् सिद्ध होती हैं कि वह रात्रिमें खाता है जिस बातके सिद्ध करनेमें प्रत्यक्ष आदि पाँचों प्रमाणोंकी सामर्थ्य नहीं होती है, वहाँ पर अभाव प्रमाणसे वस्तुकी सिद्धि होती है ॥२९९-३०३॥

इस प्रकार विभिन्न मत-वादियोंने तत्त्वोंकी प्रमाणतासे अपने-अपने मतको स्थापित किया है। जो वस्तु प्रमाण-सिद्ध वास्तविक है, वह तत्त्व कहलाता है। उस तत्त्वका साधक प्रमाण कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्तु शास्त्राणि सर्वाणि सरहस्यानि दूरतः । एकमप्यक्षरं सम्यक् शिक्षितं नैव निष्फलम् ॥३०५

इति षड्दर्शन-विचार-क्रमः ।

अथ सविवेक-वचनक्रमः—

विमर्शपूर्वकं स्वास्थ्यं स्थापकं हेतुसंयुतम् । स्तोकं कार्यकरं स्वादु निगर्वं निपुणं वदेत् ॥३०६
उक्तः सप्रतिभो ब्रूयात्सभायां सूनृतं वचः । अनुल्लङ्घ्यमदैन्यं च सार्थकं हृदयङ्गमम् ॥३०७
उदारं विकथोन्मुक्तं गम्भीरमुचितं स्थिरम् । अपशब्दोज्झितं लोकमर्मस्पर्शि सदा वदेत् ॥३०८
सम्बद्धशुद्धसंस्कारं सत्यानृतमनाहतम् । स्पष्टार्थमार्द्रवोपेतमहसंश्च वदेद् वचः ॥३०९
प्रस्तावेऽपि कुलीनानां हसनं स्फुरदोष्ठकम् । अट्टहासोऽतिहासश्च सर्वथाऽनुचितं पुनः ॥३१०

कस्यापि चाग्रतो नैव प्रकाश्याः स्वगुणाः स्वयम् ।
अतुच्छत्वेन तुच्छोऽपि वाच्यः परगुणः पुनः ॥३११

न गर्वः सर्वदा कार्यो भट्टादीनां प्रशंसया । व्युत्पन्नश्लाघ्यया कार्यः स्वगुणानां तु निश्चयः ॥३१२
अवधार्या विशेषोक्तिः पर-वाक्येषु कोविदैः । नोचेन स्वं प्रति प्रोक्तं यत्तु नानुवदेत्सुधीः ॥३१३

जाता है ॥३०४॥ सर्व ही शास्त्र दूरसे रहस्य युक्त भले ही प्रतीत हों। किन्तु सम्यक् प्रकारसे सीखा गया एक भी अक्षर निष्फल नहीं होता है ॥३०५॥

इस प्रकार छहों दर्शनोंका विचार किया।

अब विवेकके साथ वचन बोलनेके क्रमको कहते हैं—

विचार-पूर्वक स्वस्थता-युक्त, वस्तु तत्त्वके स्थापक, हेतु-संयुक्त, कार्यको सिद्ध करनेवाले परिमित, मधुर और गर्व-रहित निपुण (चातुर्ययुक्त) वचन बोलना चाहिए ॥३०६॥ किसीके द्वारा कहे या पूछे जाने पर सभामें सत्य वचन प्रतिभाशाली पुरुषको बोलना चाहिए। जो वचन बोले जावें, वे किसीके द्वारा उल्लंघन न किये जा सकें, अर्थात् अकाट्य हों, दीनता-रहित हों, सार्थक हों और हृदयको स्पर्श करनेवाले हों ॥३०७॥ बुद्धिमान् पुरुषको उदार, विकथासे रहित, गंभीर, योग्य, स्थिर, अपशब्दोंसे रहित और लोगोंके मर्मका स्पर्श करनेवाले वचन सदा बोलना चाहिए ॥३०८॥ पूर्वापर सम्बन्धसे युक्त, शुद्ध संस्कारवाले, सत्य, असत्यतासे रहित, दूसरेको आघात नहीं पहुँचानेवाले, स्पष्ट रूपसे अर्थको व्यक्त करनेवाले, मृदुता-युक्त और निर्दोष वचन विना हँसते हुए बोलना चाहिए ॥३०९॥ प्रस्ताव (अवसर) के समय भी कुलीन पुरुषोंके आगे हँसना, होठोंको फड़काते हुए अट्टहास करना और दूसरोंका उपहास करना सर्वथा अनुचित है ॥३१०॥ किसी भी पुरुषके आगे अपने गुण स्वयं नहीं प्रकाशित करना चाहिए। किन्तु तुच्छ भी पुरुषको तुच्छतासे रहित होकर दूसरोंके गुण कहना चाहिए ॥३११॥

भट्ट (भाट-चारण) आदि पुरुषोंकी प्रशंसासे गर्व कभी भी नहीं करना चाहिए। किन्तु व्युत्पन्न (विज्ञ) पुरुषोंके द्वारा की गई प्रशंसासे अपने गुणोंका निश्चय करना चाहिए ॥३१२॥ विद्वज्जनोंको दूसरोंके वाक्योंमें विशेष रूपसे कही गई बातको हृदयमें धारण करना चाहिए। नीच पुरुषके द्वारा अपने प्रति जो बात कही गई हो, उसे बुद्धिमान् पुरुष उसी शब्दोंमें उत्तर न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुवादादरासूयाल्पोक्तिसम्भ्रमहेतुषु । विस्मयस्तुतिवीप्सासु पौनरुक्त्यं स्मृतौ च न ॥३१४
न च प्रकाशयेद् गुह्यं दक्षः स्वस्यापरस्य च। चेत्कर्तुं शक्यते मौनमिहामुत्र च तच्छुभम् ॥३१५
सदा मूकत्वमासेव्यं चर्व्यमानेऽन्यमर्मणि । श्रुत्वा तथा स्वमर्माणि बाधिर्यं कार्यमुत्तमैः ॥३१६
कालत्रयेऽपि यत्किञ्चिदात्मप्रत्ययवर्जितम् । एवमेतदिति स्पष्टं न वाच्यं चतुरेण तत् ॥३१७
परार्थस्वार्थराजार्थकारकं धर्मसाधकम् । वाक्यं प्रियं हितं वाच्यं देश-कालानुगं बुधैः ॥३१८
स्वामिनश्च गुरूणांश्च नाधिक्षेप्यं वचो बुधैः । कदाचिदपि चैतेषां जल्पतामन्तरे बदेत् ॥३१९
आरभ्यते नरैर्यच्च कार्यं कारयितुं परैः । दृष्टान्तान्योक्तिभिर्वाच्यं तदग्रे पूर्वमेव तत् ॥३२०
यदि वान्येन केनापि तत्तुल्यं जल्पितं भवेत् । प्रमाणमेव तत्कार्यं स्वप्रयोजनसिद्धये ॥३२१
यस्य कार्यमशक्यं स्यात्तस्य प्रागेव कथ्यते । नैहि रे याहि रे कार्यो वचोभिर्वितत: परः ॥३२२
वैभाष्यं नैव कस्यापि वक्तव्यं द्विषतां च यत् । उच्यते तदपि प्राज्ञैरन्योक्तिच्छलाङ्गिभिः ॥३२३
शिक्षा तस्मै प्रदातव्या यो भवेत्तत्र यत्नवान् । गुरु साहसमेतद्धि कथ्यते यदपृच्छतः ॥३२४
मातृपित्रातुराचार्यातिथिभ्रातृतपोधनैः । वृद्धबालाबलावैद्यापत्यदायादकिङ्करैः ॥३२५

देवें ॥३१३॥ अनुवाद, आदर, असूया, अल्प-भाषण, सम्भ्रम हेतु, विस्मय, स्तुति और वीप्सा (दुहराना) में तथा स्मरण रखनेमें पुनरुक्ति दोष नहीं माना जाता है ॥३१४॥ कुशल पुरुष अपनी और दूसरोंकी गुप्त बात प्रकाशित न करे। गुप्त बात कहनेका अवसर आने पर यदि मौन धारण करना शक्य हो तो वह इस लोक और परलोकमें शुभ-कारक है ॥३१५॥ दूसरोंके मर्मकी बात कहनेमें सदा ही मूकपना सेवन करना चाहिए, अर्थात् मौन रहना ही अच्छा है। तथा अपने मर्म की बातोंको सुन करके उत्तम पुरुषोंको बधिरपना धारण करना चाहिए ॥३१६॥ जो कोई बात तीन कालमें भी आत्म-प्रतीतिसे रहित हो, उसे 'यह ऐसा ही हैं' इस प्रकार स्पष्ट रूपसे वह चतुर पुरुषको कभी नहीं कहना चाहिए ॥३१७॥

जो वचन परोपकार करनेवाले हों, अपना प्रयोजन-साधक हो, राजाके अर्थको सिद्ध करने वाले हों और धर्म-साधक हो, ऐसे प्रिय और हित-कारक वचन देश और कालके अनुसार बुधजनों को बोलना चाहिए ॥३१८॥ स्वामीके और गुरुजनोंके वचनोंका बुद्धिमानोंको कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए। तथा स्वामी या गुरुजनोंके बोलते समय बीचमें कभी भी नहीं बोलना चाहिए ॥३१९॥ मनुष्य जिस कार्यको दूसरोंसे कराना प्रारम्भ करें तो उसे उनके आगे पहिले ही दृष्टान्त और अन्योक्तिसे कह देना चाहिए। (जिससे कि उस कार्यके अन्यथा करनेपर पीछे झुंझलाना न पड़े।) ॥३२०॥ अथवा अपने मनके तुल्य उस कार्यको यदि अन्य किसी पुरुषने कह दिया हो तो उसे अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिए प्रमाण ही स्वीकार करना चाहिए ॥३२१॥

जिस पुरुषका कार्य अपने द्वारा करना अशक्य हो, उसे पहिले ही स्पष्ट कह देना चाहिए कि भाई यह कार्य मेरे द्वारा किया जाना संभव नहीं है, हे भाई, आप जाइये, पुनः मत कष्ट उठाइये, इस प्रकारके वचनोंसे दूसरे व्यक्तिको अंधरेमें न रखकर सचेत कर देना चाहिए ॥३२२॥ द्वेष करने वाले पुरुषोंका जो भी वक्तव्य हो वह किसी भी अन्य पुरुषके आगे नहीं कहना चाहिए। यदि कदाचित् उसे कहना ही पड़े तो अन्योक्ति या अन्य किसी बहानेसे ज्ञानी जनोंको कहना चाहिए ॥३२३॥

शिक्षा उस व्यक्तिको देनी चाहिए जो उसे करनेमें प्रयत्नशील हो। विना पूछे जो बात कही जाती है, वह तो उसका भारी गुरु साहस है ॥३२४॥ माता, पिता, आतुर (रोगी) आचार्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वसृसंश्रितसम्बन्धिवयस्यैः सार्धमन्वहम् । वाग्विग्रहमकुर्वाणो विजयेत जगत्त्रयम् ॥३२६

अथालोक्यानालोक्यप्रक्रमः—

पश्येदपूर्वतीर्थानि देशान् वस्त्वन्तराणि च । लोकोत्तरां सुधीश्छायां पुरुषं शकुनं तथा ॥३२७
न पश्येत्सर्वदाऽऽदित्यं ग्रहणं चार्क-सोमयोः । नेक्षेताम्भो महाकूपे सन्ध्यायां गगनं तथा ॥३२८
मैथुनं पापां नग्नां स्त्रियं प्रकटयौवनाम् पशुक्रीडां च कन्यायाः पयोजान्नावलोकयेत् ॥३२९
न तैले न जले नास्त्रे न मूत्रे रुधिरे तथा । नेक्षेतवदनं विद्वान्निजायुषस्त्रुटिर्भवेत् ॥३३०

अथ निरीक्षणप्रकारक्रमः—

ऋज्वशुष्कं प्रसन्नस्य रौद्रं तिर्यक् च कोपिनः । सविकाशं सुपुण्यस्याधो खं वा पापिनः पुनः ॥३३१
क्षुद्रं व्यग्रमनस्कस्य वलितं वानुरागिणः । मध्यस्थं वीतरागस्य सरलं सज्जनस्य च ॥३३२
असम्मुखं विलक्षस्य सविकारं तु कामिनः । भ्रूभङ्गवक्त्रमीर्ष्यालोर्भूतमत्तस्य सर्वतः ॥३३३
जलाविलं च दीनस्य चञ्चलं तस्करस्य च । अलक्षितार्थं निद्रालोर्वित्रस्तं भीरुकस्य च ॥३३४

अतिथि, भाई बन्धु, तपस्वी जन, वृद्ध, बालक, अबला (नारी) वैद्य, पुत्र, दायाद (हिस्सेदार) और नौकर-चाकरोंके साथ, तथा बहिन, अपने आश्रित जन, सम्बन्धी जन और मित्र गणोंके साथ प्रतिदिन वचन-विग्रह (वाद-विवाद) को नहीं करनेवाला पुरुष तीनों जगत्को जीतता है। अर्थात् जो पुरुष पूर्वोक्त पुरुषोंके साथ किसी भी प्रकारका कभी भी खोटे वचन नहीं बोलता है, वह जगज्जेता होता है ॥३२५–३२६ ॥

अब दर्शनीय और अदर्शनीय कार्योंका वर्णन किया जाता है—

बुद्धिमान् पुरुष अपूर्व तीर्थोंको, नवीन देशोंको और नई-नई अन्य वस्तुओंको देखे। तथा लोकोत्तर छायाको, लोकोत्तम पुरुषको और शकुनको भी देखना चाहिए ॥३२७॥ सर्वकाल सूर्य नहीं देखे, सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहणको भी नहीं देखे। महाकूपमें जलको, तथा सन्ध्याकालमें आकाशको भी नहीं देखना चाहिए ॥३२८॥ स्त्री-पुरुषके मैथुनको, पापिनी, नग्न और प्रकट यौवनवाली स्त्रीको, पशु-क्रीड़ाको और कन्याके पयोजों (स्तनों) को भी नहीं देखना चाहिए ॥३२९॥ विद्वान् पुरुष अपने मुखको न तेलमें देखे, न जलमें देखे, न अस्त्र-शस्त्रको धारमें देखे, न मूत्रमें देखे और न रक्तमें देखे। क्योंकि इनमें मुख देखनेसे आयुकी हानि होती है ॥३३०॥

अब दृष्टि निरीक्षण करनेके प्रकारका वर्णन करते हैं—

प्रसन्न पुरुषका निरीक्षण सरल और स्निग्ध होता है, क्रोधीका अवलोकन रौद्र एवं तिरछा होता है, पुण्यशालीका निरीक्षण विकास-युक्त होता है ॥३३१॥ व्यग्र मनवालेका निरीक्षण क्षुद्रता (तुच्छता) युक्त होता है, अनुरागी व्यक्तिका अवलोकन कटाक्ष-युक्त होता है। वीतरागीका अवलोकन मध्यस्थ भावसे युक्त होता है और सज्जन पुरुषका निरीक्षण सरल होता है ॥३३२॥ चकित पुरुषका निरीक्षण सामनेकी ओर नहीं होता है, कामी पुरुषका अवलोकन विकार-युक्त होता है, ईर्ष्यालु पुरुषका अवलोकन भ्रूभंगयुक्त मुखवाला होता है और भूताविष्ट पुरुषका निरीक्षण सर्व ओर होता है ॥३३३॥ दीन पुरुषका अवलोकन अश्रु जलसे युक्त होता है, चोरका अवलोकन चंचल होता है, निद्रालु व्यक्तिका निरीक्षण अलक्षित प्रयोजनरूप होता है, और भय-भीत पुरुष

१४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहवो वीक्षणस्यैवं कति भेदाः क्षणस्य च। तादृक् स्वरूपमतो वक्ष्ये स्वभावोपाधिसम्भवम् ॥३३५
स्तुत्यं धवलत्वं च श्यामत्वमतिनिर्मलम् । पर्यन्तपार्श्वतारा सुदृशोः शस्यं यथाक्रमम् ॥३३६
हरितालनिभैश्चक्री नेत्रैर्नीलैरहङ्कृतः । विस्तीर्णाक्षो महाभोगी कामी पारावतेक्षणः ॥३३७
नकुलाक्षो मयूराक्षो मध्यमः पुरुषः पुनः । काकाक्षो धूसराक्षश्च मण्डूकाक्षश्च तेऽधमाः ॥३३८
दुष्टो दारुणदृष्टिः स्यात्कुक्कुटाक्षः कलिप्रियः । दृष्टिरागी भुजङ्गाक्षी मार्जाराक्षश्च पातकी ॥३३९
श्यामदृक् सुभगः स्निग्धलोचनो भोगभाजनम् । स्थूलदृग् विधनो दीनदृष्टिः स्यादधनो नरः ॥३४०
भृतार्त्तश्च परः प्रायः स्तोकोन्नयनः (?) पुमान् । वृत्तयोर्नेत्रयोरल्पतरमायुस्तनूभृताम् ॥३४१
विवर्णैः पिङ्गलैर्वातैश्चञ्चलै रतिपूर्णकैः । अधमाः स्युः कृतो रूक्षैः सजलैर्निर्जलः पुनः ॥३४२
अचक्षुरेकचक्षुश्च तथा केङ्करनेत्रकः । अथ कातरनेत्रः स्यादेषां क्रूरपरम्पराः ॥३४३
भूताविष्टस्य दृष्टिः स्यात् प्रायेणोर्ध्वविलोकिनी । मिलिता मुद्गताक्षस्य देवता तस्य दुःसहा ॥३४४
शाकिनीभिर्गृहीतस्याधोमुखी च भयानका । वातार्तस्य च भीरुः स्याद् वन्याधिकतरं चला ॥३४५
अरुणा श्यामला वापि जायते धर्मरोगिणः । पित्तदोषवतः पीता नीला चक्षुः कपित्थवत् ॥३४६

का अवलोकन त्रास-युक्त होता है ॥३३४॥ इस प्रकार निरीक्षणके बहुतसे भेद होते हैं, इसी प्रकार क्षण (देखनेके अवसर) के भी कितने ही भेद होते है । अतएव निरीक्षणका स्वरूप और स्वभाव या बाह्य उपाधि-जनित निरीक्षणके भेदोंको कहूँगा ॥३३५॥

उत्तम नेत्रोंकी धवलता स्तुत्य है, श्यामता, अति निर्मलता और पर्यन्त तक तारा यथाक्रमसे प्रशंसाके योग्य होती है ॥३३६॥ हरितालके सदृश वर्णवाले नेत्रोंसे मनुष्य चक्रवर्ती होता है । नीले वर्णवाले नेत्रोंसे व्यक्ति अहंकारी होता है, विस्तीर्ण नेत्रवाला पुरुष महाभोगशाली होता है और कपोतके समान नेत्रवाला पुरुष कामी होता है ॥३३७॥ नेवलेके समान नेत्रवाला और मोरके सदृश नेत्रवाला पुरुष मध्यम श्रेणीका होता है । काक जैसे नेत्रवाला, धूसर नेत्रवाला और मण्डूक (मेंढक) के सदृश नेत्रवाला पुरुष ये सब अधम होते हैं ॥३३८॥ दारुण दृष्टिवाला पुरुष दुष्ट होता है, कुक्कुटके समान नेत्रवाला पुरुष कलह-प्रिय होता है, भुजंगके समान नेत्रवाला दृष्टिरागी होता है तथा मार्जार नेत्रवाला व्यक्ति पापी होता है ॥३३९॥ श्याम नेत्रवाला पुरुष सुभग होता है, स्निग्ध नेत्रवाला पुरुष भोगोंका भोक्ता होता है । स्थूल नेत्रवाला पुरुष विशिष्ट धनी होता है और दीन दृष्टिवाला पुरुष निर्धन होता है ॥३४०॥ भूत-पीड़ित और नम्र नेत्रवाला पुरुष पराश्रित होता है, इसी प्रकार कुछ उन्नत नेत्रवाला भी पराश्रित होता है । गोल नेत्र-धारियोंकी आयु अत्यल्प होती है ॥३४१॥

विवर्ण, पिंगल वर्ण, वात-युक्त, चंचल और रति (विलास) पूर्ण नेत्रोंसे मनुष्य कर्तव्य-कार्य करनेमें अधम होते हैं । रूक्ष और निर्जल नेत्रोंसे पुरुष निर्लज्ज होता है ॥३४२॥ नेत्र-रहित, एक नेत्रवाला और कॆंकर नेत्रवाला तथा कातर नेत्रवाला पुरुष इन सबकी क्रूर-परम्परा होती हैं ॥३४३॥ भूताविष्ट पुरुषकी दृष्टि प्रायः ऊपरकी ओर देखनेवाली होती हैं, मुद्गत (प्रमोदको या अप्रमोदको प्राप्त) व्यक्तिकी दृष्टि मिली हुई रहती है और उसको प्रेरणा करनेवाला देवता दुःसह होता है ॥३४४॥ शाकिनियोंसे गृहीत व्यक्तिकी दृष्टि अधोमुख और भयानक होती है । बेतालसे पीड़ित पुरुषकी दृष्टि भीरु होती है, तथा वातरोगसे पीड़ित पुरुषकी दृष्टि अधिकतर चलायमान रहती है ॥३४५॥ धर्म (धूप) से पीड़ित पुरुषकी दृष्टि अरुण अथवा श्यामल होती है, पित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्लेष्मार्त्तस्य तथा पाण्डुर्मिश्रश्चदोषस्य मिश्रिता । दृष्टेः प्रतिजनं भेदा भवन्त्येवमनेकधा ।।३४७

अथ चङ्क्रमणक्रमः—

उद्यमे सप्तमीं प्राज्ञो न व्रजेन्निःफलं क्वचित् । भुक्तानां चूतमेकं च भक्ष्यमद्यान्न गच्छता ।।३४८
युगमात्रान्तरन्यस्तदृष्टिः पश्यन् पदं पदम् । रक्षार्थं स्वशरीरस्य जन्तूनां च सदा व्रजेत् ।।३४९

शालूर-रासभोष्ट्राणां वर्जनीया सदा गतिः ।
राजहंसवृषाणां तु सा प्रकामं प्रशस्यते ।।३५०

कार्याय चलितः स्थानाद् वहन्नाडिपदं पुरः । कुर्वन् वाञ्छितसिद्धीनां भाजनं जायते नरः ।।३५१
एकाकिना न गन्तव्यं कस्याप्येकाकिनो गृहे । नैवोपरि पथेनापि विशेत् कस्यापि वेश्मनि ।।३५२
रोगिवृद्धद्विजान्धानां धेनुपूज्यक्षमाभुजाम् । गर्भिणीभारभुग्नानां दत्वा मार्गं व्रजेदथ ।।३५३

धान्यं पक्वमपक्वं वा पूजार्थं मन्त्रमण्डलम् ।
न त्यक्त्वोद्वर्तनं लङ्घ्यं स्नानाम्भोऽसृक्शवानि च ।।३५४

निष्ठयूतश्लेष्मविण्मूत्रज्वलद्वह्निभुजङ्गमम् । मनुष्यमबुधं धीमान् कदाप्युल्लङ्घयेन्न च ।।३५५

दोषवालेकी दृष्टि पीतवर्णवाली नीली और कपित्थ (कवीट) के समान होती है ।।३४६।। श्लेष्मा (कफ) से पीड़ित पुरुषकी दृष्टि पाण्डुवर्णकी होती है, पित्त, वात आदि दोषोंसे मिश्रित व्यक्ति की दृष्टि मिश्रित वर्णवाली होती है । इस प्रकार प्रत्येक जनकी अपेक्षासे दृष्टिके अनेक प्रकारके भेद होते हैं ।।३४७।।

अब बाहिर गमन करनेका विचार करते हैं—

बुद्धिमान् पुरुष सप्तमीको कहींपर भी निष्फल न जावे । तथा जाते हुए भुक्त (भोजन किये हुए) पुरुषोंको एक आमको छोड़कर अन्य कुछ नहीं खाना चाहिए ।।३४८।। युग-मात्र (चार हाथ-प्रमाण) सामनेको भूमिपर दृष्टि रखते हुए और अपने शरीरकी रक्षाके लिए तथा अन्य जन्तुओंकी रक्षाके लिए पद-पद-प्रमाण भूमिको देखते हुए सदा गमन करना चाहिए ।।३४९।। चलते समय शालूर (मेंढक) रासभ और ऊँटकी चालसे गमन सदा वर्जन करना चाहिए । किन्तु राजहंस और वृषभ (बैल) की गति सदा उत्तम प्रशंसनीय होती है ।।३५०।।

किसी कार्य-विशेषके लिए चलता हुआ पुरुष जो नाड़ी (नासिका-स्वर) चल रही हो उसी पैरको आगे करके गमन करता हुआ अभीष्ट सिद्धियोंका पात्र होता है ।।३५१।। किसी भी अकेले पुरुषके घरमें कभी भी अकेले नहीं जाना चाहिए । इसी प्रकार किसी भी पुरुषके घरमें अकेले ऊपरी मार्गसे भी प्रवेश नहीं करना चाहिए ।।३५२।। रोगी पुरुष, वृद्धजन, ब्राह्मण, अन्धे पुरुष, गाय, पूज्य पुरुष, भूमिपति, गर्भिणी स्त्री, और भार (बोझा) को धारण करनेवाले लोगोंको मार्ग देकर पुनः गमन करना चाहिए ।।३५३।। पकी या अधपकी धान्यको, पूजनकी सामग्रीको, मंत्र-मण्डलको, छोड़कर गमन करे । तथा उद्वर्तनका द्रव्य, स्नानका जल, पुष्प-माला और मृत शरीरोंको भी लांघ करके गमन नहीं करना चाहिए ।।३५४।। इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष, थूके गये कफको, मल-मूत्रको, जलती हुई अग्निको, सर्पको, और अज्ञानी मनुष्यको कभी भी उल्लंघन करके गमन न करे ।।३५५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेमार्थी वृक्षमूलं न निशीथिन्यां समाश्रयेत् । नासमाप्ते नरो दूरं गच्छेदुत्सवसूतके ॥३५६

क्षीरं भुक्त्वा रतिं कृत्वा स्नात्वा ह्यन्यगृहाङ्गनाम् ।
लात्वा निष्ठीव्य सक्रोशं श्रुत्वा च प्रविशेन्नहि ॥३५७

कारयित्वा नरः क्षौरमश्रामोक्षं विधाय न । गच्छेद् ग्रामान्तरं नैव शकुनापाटवेन च ॥३५८
नद्याः परतटाद् गोष्ठात् क्षीरद्रोः सलिलाशयात् । नातिमध्यंदिने नार्धरात्रौ मार्गं बुधो व्रजेत् ॥३५९
नासम्बलश्चलेन्मार्गे भृशं सुप्यान्न वासके । सहायानां च विश्वासं विदधीत न धीनिधिः ॥३६०
महिषाणां खराणां च न्यक्करणं कदाचन । खेदस्पृशापि नो कार्यमिच्छता श्रियमात्मनः ॥३६१
गजात्करसहस्रेण शकटात्पञ्चभिः करैः । शृङ्गिणोऽश्वाच्च गन्तव्यं दूरेण दशभिः करैः ॥३६२
न जीर्णां नावमारोहेन्नद्यामेको विशेन्न च । न वा तुच्छमतिर्गच्छेत् सोदर्येण समं पथि ॥३६३
न जलस्थलदुर्गाणि विकटामटवीं न च । न चागाधानि तोयानि विनोपायं विलङ्घयेत् ॥३६४
क्रूरे राक्षसकैः कर्णेजपैः कारुजनैस्तथा । कुमित्रैश्च समं गोष्ठीं चर्यां वा कालकीं त्यजेत् ॥३६५
धूर्तावासे वने वेश्यामन्दिरे धर्मसद्मनि । सदा गोष्ठी न कर्तव्या प्राज्ञैरापानकेऽपि च ॥३६६
बद्धबध्याश्रये द्यूतस्थापने परिभवास्पदे । भाण्डागारे न गन्तव्यं परस्यान्तःपुरे न च ॥३६७

अपनी क्षेम-कुशलता चाहनेवाला पुरुष रात्रिमें वृक्षके मूलभागका कभी आश्रय नहीं लेवे। इसी प्रकार उत्सव (मांगलिक कार्य) और सूतक-पातकके समाप्त नहीं होनेतक दूरवर्ती स्थानको नहीं जावे ॥३५६॥ क्षीर (खीर या दूध) खा-पीकर स्त्रीके साथ रमणकर, अन्य घरकी स्त्रीको लाकर, निष्ठीवन करके और आक्रोश-युक्त वचन सुन करके अन्य पुरुषके घरमें प्रवेश नहीं करे ॥३५७॥ क्षौरकर्म (हजामत) कराके, लगे बालोंको साफ न करके अर्थात् स्नान किये बिना तथा शकुनकी अकुशलतासे अर्थात् अपशकुन होनेपर दूसरे ग्रामको कभी नहीं जाना चाहिए ॥३५८॥ बुद्धिमान् पुरुष नदीके दूसरे किनारेसे, गोष्ठ (गायोंके ठहरनेके स्थान) से, क्षीरीवृक्षसे, जलाशयसे, न अति मध्याह्नमें और न अर्धरात्रिमें मार्ग-गमन नहीं करे ॥३५९॥

बुद्धिमान् पुरुष बिना संबल (खान-पानका द्रव्य) लिए मार्गमें नहीं चले, किसी सराय-धर्मशाला आदि निवासके स्थानपर अधिक गहरी नींदसे नहीं सोवे, तथा मार्गमें गमन करते समय सहायकों या साथियोंका विश्वास भी नहीं करे ॥३६०॥ भैंसे पाड़ोंका और गर्दभोंका तिरस्कार कभी भी खेद-खिन्न होनेपर भी अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको नहीं करना चाहिए ॥३६१॥ गमन करते समय हाथीसे एक हजार हाथ दूर, गाड़ीसे पांच हाथ दूर तथा सींगवाले जानवरोंसे और घोड़ोंसे दश हाथ दूर रहकर चलना चाहिए ॥३६२॥

नदी आदि जल स्थानको पार करनेके लिए जीर्ण-शीर्ण नाव पर नहीं आरोहण करे, नदी में अकेले प्रवेश नहीं करे, तथ अतुच्छ (विशाल) बुद्धिवाले पुरुषको मार्गमें अपने सगे भाईके साथ भी गमन नहीं करना चाहिए ॥३६३॥ जल-मार्ग, स्थल मार्ग, दुर्ग (किला) विकट अटवी (सघन-वन-प्रदेश) और अगाध जलको विना सहायक उपायके उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥३६४॥

क्रूर स्वभावी पुरुषों, राक्षसजनों, कर्णेजपों (चुगलखोरों) कारु (शूद्र जातीय शिल्पिजनों) तथा खोटे मित्रोंके साथ गोष्ठी और अकालकी चर्या (गमनागमन) का परित्याग करे ॥३६५॥ बुद्धिमानोंको धूर्तोंके घरोंमें, वनमें, वेश्याके भवनमें, धर्म-स्थानमें और मदिरा पानके स्थानोंमें भी कभी गोष्ठी नहीं करना चाहिए ॥३६६॥ पाप-कार्यमें बाँधे गये बध्य पुरुषके आश्रयमें, जुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अमनोज्ञे श्मशाने च शून्यस्थाने चतुष्पथे । तुषशुष्कतृणाकीर्णे विषमे वा खरस्वरे ॥३६८
वृक्षाग्रे पर्वताग्रे च नदी-कूपतटे स्थितिम् । न कुर्याद् भस्मकेशेषु कपालाङ्गारकेषु च ॥३६९

अथ विशेषोपदेशक्रमः—

मन्त्रस्थानमनाकाशमेकद्वारमसङ्कटम् । निःश्वासादि च कुर्वीत दूरसंस्थश्च यामिकः ॥३७०
मन्त्रस्थाने बहुस्तम्भे कदाचिल्लीयते परः । वृक्षाग्र-प्रतिध्वानश्रुतिसम्प्रक्तभित्तिके ॥३७१

शून्याधोभूमिके स्थाने गत्वा वा काननान्तरे ।
मन्त्रयेत्सम्मुखः सार्धं मन्त्रिभिः पञ्चभिस्त्रिभिः ॥३७२

सालस्यैर्लिङ्गिभिर्दीर्घसूत्रिभिः स्वल्पबुद्धिभिः । समं न मन्त्रयेन्नैव मन्त्रं कृत्वा विलम्ब्यतं ॥३७३
भूयान्सः कोपना यत्र भूयान्सो मुखलिप्सवः । भूयान्सः कृपणाश्चैव सार्थः स स्वार्थनाशनः ॥३७४
सर्वकार्येषु सामर्थ्यमाकारस्य तु गोपनम् । धृष्टत्वं च सदभ्यस्तं कर्त्तव्यं विजिगीषुणा ॥३७५
भवेत्परिभवस्थानं पुमान प्रायो निराकृतिः । विशेषाण्डम्बरस्तेन न मोच्यः सुधिया क्वचित् ॥३७६

खेलनेके स्थानकमें, पराभव होनेके स्थान पर, किसीके भाण्डागार (कोष-खजाने) में और दूसरोंके अन्तःपुरमें नहीं जाना चाहिए ॥३६७॥ अमनोज्ञ (असुन्दर) स्थानमें, मरघटमें, शून्य स्थानमें, चौराहे पर, भूखा और सूखे तृष्णोंसे व्याप्त स्थानमें अथवा विषम एवं खर स्वरवाले स्थानमें, वृक्षके अग्रभाग पर, पर्वतके अग्र शिखर पर, नदीके किनारे, कूपके तट पर, भस्म (राख) पर, केशों पर, कपालों पर और अंगारों पर कभी अवस्थान नहीं करना चाहिए ॥३६८॥

अब विशेष उपदेश कहते हैं—

विचारशील यामिक (संयमी) पुरुष जिस स्थान पर किसी गुप्त बातकी मंत्रणा करे वह मंत्रस्थान अनाकाश हो अर्थात् खुले मैदानमें न करे, जिस भवनमें करे, वह एक द्वारवाला हो, जहाँ पर किसी प्रकारके संकटकी सम्भावना न हो और मंत्रणा करनेवाले पुरुष दूरवर्ती स्थान पर निःश्वास आदि करें ॥३७०॥ यदि मंत्रस्थान अनेक स्तम्भोंवाला हो, तो वहाँ पर दूसरा मंत्रभेदी पुरुष छिप सकता है । वृक्षकी शाखा जिससे लगी हो, ऐसे स्थान पर और जहाँ प्रतिध्वनि सुनाई दे, ऐसी भीतिसे संलग्न स्थान पर मंत्रणा न करे ॥३७१॥ अतएव गुप्त मंत्रणा करनेवाले पुरुषको शून्य स्थान, अधोभूमिवाले स्थान (भूमिगृह) अथवा वनके मध्यमें जा करके तीन या पांच मंत्रियों (सलाहकारों) के साथ सम्मुख बैठकर मंत्रणा करनी चाहिए ॥३७२॥ जो आलस्य-युक्त हैं, विभिन्न लिंगोंके धारक हैं, दीर्घसूत्री (बहुत विलम्बसे विचार करनेवाले) हैं और अल्प बुद्धिवाले है, ऐसे पुरुषोंके साथ कभी मंत्रणा नहीं करनी चाहिए । तथा मंत्रणा करके उसे करनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिए ॥३७३॥

जिस स्थानपर बहुतसे क्रोधी पुरुष रहते हों, जहाँपर बहुतजन प्रमुखताके इच्छुक हों और जहाँपर बहुतसे कृपण पुरुष (कंजूस) रहते हों, वहाँ सार्थवाह (व्यापारी पुरुष) अपने स्वार्थका नाश करता है ॥३७४॥ विजय प्राप्त करनेके इच्छुक पुरुषको सभी कार्योंमें अपने सामर्थ्यका विचार करना चाहिए, अपने मुख आदिके आकार (अभिप्राय) को गुप्त रखना चाहिए और धृष्टता तथा सत्कार्यका सदा अभ्यास करना चाहिए ॥३७५॥ प्रायः अपने अभिप्रायको नहीं छिपानेवाला पुरुष परिभवका स्थान होता है, इसलिए कहीं पर भी बुद्धिमान् पुरुषको बाहिरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वासो नैव कस्यापि कार्यो येषां विशेषतः। ज्ञानिप्ररूपिताशेषधर्मविच्छेदमिच्छताम् ॥३७७
स्वमातुरुदरोत्पन्नरौद्रार्त्तध्यानधारिणाम्। पाखण्डिनां तथा क्रूरासत्यप्रत्यन्तवासिनाम् ॥३७८
धूर्तानां प्रागरुद्धानां बालानां योषितांस्तथा। स्वर्णकार-जलाग्नीनां प्रभूणां कूटभाषिणाम् ॥३७९
नीचानामलसानां च पराक्रमवतां तथा। कृतघ्नानां च चौराणां नास्तिकानां तु जातुचित् ॥३८०
(चतुर्भिः कलापकम्)

किं कुलं किंश्रुतं किं वा कर्म कौ च व्ययागमौ।
का वाक्-शक्तिः किमयं क्लेशः किं च बुद्धिविजृम्भितम् ॥३८१

का शक्तिः के द्विषः कोऽनुबन्धश्च संसदि। कोऽभ्युपायः सहायाः के कियन्मात्रफलं तथा ॥३८२
कौ कालदेशौ का दैवसम्पत् प्रतिहते परैः। वाक्ये ममोत्तरं सद्यः किं च स्यादिति चिन्तयेत् ॥३८३
(त्रिभिर्विशेषकम्)

यत्पार्श्वं स्थीयते नित्यं गम्यते वा प्रयोजनात्। गुणाः स्थैर्यादयस्तस्य व्यसनानि विचिन्तयेत् ॥३८४
उत्तमैका सदारोप्य प्रसिद्धिः काचिदात्मनि। अज्ञातानां पुरे वासो युज्यते न कलावताम् ॥३८५

दिखाऊ विशेष आडम्बर नहीं छोड़ना चाहिए ॥३७६॥ स्वकार्य-साधक पुरुषको जिस किसी भी मनुष्यका विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। विशेष करके जो पुरुष ज्ञानी जनोंके द्वारा प्ररूपित समस्त धर्म-कार्योंके विच्छेदकी इच्छा करते हैं, उनका तो कभी भी विश्वास नहीं करे। जो अपनी माताके द्वारा उदरसे उत्पन्न रौद्र और आर्त्तध्यानके धारक हैं, पाखण्डी हैं तथा जो क्रूरस्वभावी हैं, असत्यवादक पुरुषोंके समीप निवास करते हैं, पहिलेसे जिनका कोई परिचय नहीं है, बालक हैं, स्त्रियाँ हैं, तथा जो स्वर्णकार हैं, जल और अग्निके प्रभू (स्वामी) हैं, कूट-भाषी हैं, नीच जातिके हैं, आलसी हैं तथा विशेष पराक्रमवाले हैं, कृतघ्न हैं, चोर हैं, और नास्तिक हैं, ऐसे पुरुषोंका तो कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥३७७-३८०॥

मनुष्यको सदा ही इन बातोंका विचार करना चाहिए कि हमार कौनसा कुल है, हमारा कितना शास्त्रज्ञान हैं, हमारा क्या कर्तव्य है, हमारी क्या आय है और क्या व्यय है, हमारी क्या वचन-शक्ति है, यह क्लेश हमें क्यों प्राप्त हुआ है, हमारी बुद्धिका क्या विस्तार है, हमारी क्या शक्ति है, हमारे कौन शत्रु या विद्वेषी है, मैं कौन हूँ, सभामें मेरा क्या अनुबन्ध (स्वीकृत-सम्बन्ध) है, मेरे कार्यका क्या उपाय है, मेरे कौन सहायक हैं, तथा मेरे इस कार्यका कितना फल प्राप्त होगा तथा वर्तमानमें कौनसा काल और देश है, मेरी क्या दैवी सम्पत्ति है तथा दूसरोंके द्वारा वाक्यके प्रतिघात किये जानेपर मेरा शीघ्र क्या उत्तर होगा? इन सभी बातोंका सदा ही विचार करते रहनेसे मनुष्य सदा लाभ, यश एवं सम्मानको प्राप्त होता है और कभी उसे पराभवको प्राप्त नहीं होना पड़ता है ॥३८१-३८३॥

मनुष्य जिसके समीप नित्य उठता-बैठता है, अथवा प्रयोजनसे जिसके पास जाता है, उस व्यक्तिमें स्थैर्य आदि कौनसे विशेष गुण है, अथवा अस्थिरता-ओछापन आदि कौन-कौनसे दुर्व्यसन हैं, इसका सदा ही विचार करना चाहिए ॥३८४॥ जिस उत्तम सभामें बैठकर जिससे अपने आपमें कोई प्रसिद्धि प्राप्त हो, उसका सदा आश्रय लेना चाहिए। किन्तु अजानकार लोगोंके नगरमें कलावान् पुरुषोंको कभी निवास नहीं करना चाहिए ॥३८५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालकृत्यं न मोक्तव्यमतिखिन्नैरपि ध्रुवम् । नाप्नोति पुरुषार्त्तानां फलं क्लेशजितः पुमान् ॥३८६
उच्चैर्मनोरथाः कार्याः सर्वदैव मनस्विना । विधिस्तदनुमानेन सम्पदे यतते यतः ॥३८७
कुर्यान्न कर्कशं कर्म क्षमाशालिनि सज्जने । प्रादुर्भवति सप्तार्चिर्मथिताच्चन्दनादपि ॥३८८
दृष्ट्वा चन्दनतां यातान् शाखोटादीनपि द्रुमान् । मलयाद्रौ ततः कार्या महद्भिः सह सङ्गतिः ॥३८९
शुभोपदेशतारुचयो वृद्धा वा बहुश्रुताः । कुशला यः स्वयं हन्ति त्रायते स कथं परम् ॥३९०
शौर्येण वा तपोभिर्वा विद्यया वा धनेन वा । अत्यन्तमकुलीनोऽपि कुलीनो भवति क्षणात् ॥३९१
कुर्याच्च नात्मनोमृत्युमायासेन गरीयसा । ततश्चेदवपातः स्याद् दुःखाय महते तदा ॥३९२
दैविकैर्मानुषैर्दोषैः प्रायः कार्यं न सिद्ध्यति । दैविकं वारयेच्छान्त्या मानुषं सुधिया पुनः ॥३९३
प्रतिपन्नस्य न त्यागः शोकश्च गतकस्य न । निद्राच्छेदश्च कस्यापि न विधेयः कदाचन ॥३९४
अकुर्वन् बहुभिर्वैरं दद्याद्बहुमते मतम् । गतस्वादानि कृत्यानि कुर्याच्च बहुभिः समम् ॥३९५
शुभक्रियासु सर्वासु मुख्यैर्भाव्यं मनीषिभिः । नराणां कपटेनापि निःस्पृहत्वं फलप्रदम् ॥३९६
द्रोहप्रयोजने नैव भाव्यमत्युत्सुकैर्नरैः । कदाचिदपि कर्तव्यः सुपात्रेषु न मत्सरः ॥३९७
स्वजातिकष्टं नोपेक्ष्यं तदैक्यं कार्यमादरात् । मानिनो मानहानिः स्यात्तद्दोषादयशोऽपि च ॥३९८

अत्यन्त खेद-खिन्न होनेपर भी पुरुषोंको उचित कालमें करनेके योग्य जो कर्तव्य है, उसे निश्चयसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि क्लेशसे पराजित होनेवाला पुरुष अपने पुरुषार्थोंका कभी फल नहीं पाता है ॥३८६॥ मनस्वी पुरुषको सर्वदा ही ऊँचे मनोरथ करना चाहिए। क्योंकि उसके अनुमानसे किया गया कार्य-विधान सम्पत्तिके लिए प्रयत्नकारक होता है ॥३८७॥ क्षमाशाली सज्जन पुरुषपर कभी भो कर्कश कार्य नहीं करना चाहिए। शीतल-स्वभावी चन्दनके भी मथन (रगड़) से अग्नि उत्पन्न हो जाती है ॥३८८॥ मलयाचलपर चन्दन वृक्षकी संगति पाकर शाखोट आदि वृक्षोंके भी चन्दनपना देख करके मनुष्यको सदा महापुरुषोंके साथ संगति करनी चाहिए ॥३८९॥ जो उत्तम शुभ उपदेशमें रुचि रखते हैं, वयोवृद्ध हैं और वहुज्ञानी हैं, वे ही कुशल पुरुष कहलाते हैं (और उनका ही सत्संग करना चाहिए)। जो पुरुष स्वयंका विनाश करता है, वह दूसरे पुरुषकी रक्षा कैसे कर सकता है ॥३९०॥ अत्यन्त नीच कुलवाला भी पुरुष शूरवीरतासे, या तपश्चरण करनेसे, या विद्या पढ़नेसे अथवा धनोपार्जनसे क्षणभरमें कुलीन हो जाता है ॥३९१॥

भारी प्रयाससे भी अपने मरनेकी कामना न करे। क्योंकि उससे मनुष्यका अधःपतन ही होता है और तब वह महादुःखके लिए ही होता है ॥३९२॥ दैव-जनित और मनुष्य-कृत दोषोंसे प्रायः कार्य सिद्ध नहीं होता है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष दैव-जनित दोषोंको तो शान्ति-कर्मसे निवारण करे और मनुष्य-कृत दोषोंको अपनी सुबुद्धिसे दूर करे ॥३९३॥ स्वीकार किये व्रतादिका त्याग न करे और गई हुई वस्तुका शोक भी नहीं करे। तथा किसी भी सोते हुए व्यक्तिका निद्रा-विच्छेद भी कभी नहीं करना चाहिए ॥३९४॥ बहुत पुरुषोंके साथ वैरको नहीं करते हुए बहुमतके साथ अपना मत प्रदान करे। तथा विगत-स्वादवाले कार्योंको भी वहुत जनोंके साथ करना चाहिए ॥३९५॥

मनीषी पुरुषोंको सभी शुभ क्रियाओंमें प्रमुख होना चाहिए। कपटके द्वारा भी मनुष्योंकी निःस्पृहता फलको प्रदान करती है ॥३९६॥ अत्यन्त उत्सुक भी मनुष्योंको कभी भी द्रोहकार्यके प्रयोजनमें प्रयत्नशील नहीं होना चाहिए। तथा उत्तम पात्र जनोंपर कभी भी मत्सर नहीं करना चाहिए ॥३९७॥ अपनी जातिपर आये हुए कष्टकी कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न कुर्याज्ज्ञातिषु प्रायः कलहादिर्निरन्तरम् । मिलता एव वर्धन्ते कमलिन्य इवाम्भसि ॥३९९
दारिद्र्योपद्रुतं मित्रं नरः साधर्मिकं सुधीः । चेयात् ज्ञानिगणैर्जामिमनपत्यां च पूजयेत् ॥४००
स्मारथ्यायां न वस्तूनां विक्रयाय क्रयाय च । कुलानुचितकार्याय नो गच्छेद् गौरवप्रियः ॥४०१
स्वाङ्गवाद्यं तृणच्छेद्यं व्यर्थं भूमिविलेखनम् । नैव कुर्यान्नरो दन्त-नखराणां च घर्षणम् ॥४०२
प्रवर्तमानमुन्मार्गे स्वं स्वेनैव निवारयेत् । किमम्भोनिधिरुद्वेलः स्वस्मादन्येन वार्यते ॥४०३
सन्मानसहितं दानमौचित्येनोचितं वचः । नयेन चर्यं (भाष्यं) च त्रिजगद्वश्यकृत् त्रयम् ॥४०४
व्यर्थादधिकनेपथ्यो वेषहीनोऽधिकं धनी । अशक्तो वैरकृच्छक्तैर्महद्भिरुपहस्यते ॥४०५
चौर्याद्यैर्बद्धवित्ताशः सदुपायेषु संशयी । सत्यां शक्तौ निरुद्योगो नाप्नोति नरः श्रियम् ॥४०६
फलकाले कृतालस्यो निष्फले विहितोद्यमः । न शङ्कः शत्रुसंज्ञेऽपि न नरश्चिरमेधते ॥४०७
दम्भः संरम्भिर्ग्राह्यो दम्भमुक्तेष्वनादरी । शठस्त्रीवाचि विश्वासी विनश्यति न संशयः ४०८
ईर्ष्यालुः कुलटा-कामी निर्धनो गणिकाप्रियः । स्थविरश्च विवाहेच्छुरुपहास्यास्पदो नृणाम् ॥४०९

आदरसे उनकी एकता ही करनी चाहिए। जो पुरुष अपनी जातिके कष्टकी उपेक्षा करता है उस मानी पुरुषके मानकी हानि होती है और उस दोषसे उसका अपयश भी होता है ॥३९८॥ अपनी जातिवालोंपर निरन्तर कलह आदि करना प्रायः अच्छा नहीं होता हैं। देखो कमलिनियाँ मिलकरके ही जलमें बढ़ती हैं ॥३९९॥

दरिद्रतासे पीड़ित साधर्मी मित्रकी बुद्धिमान् पुरुष सदा ही उन्नति करे। तथा जो पूज्य स्त्री सन्तान-रहित हो, उसका ज्ञानी जनोंके साथ सदा पूजा-सत्कार करे ॥४००॥ जिसे अपना गौरव प्रिय है, वह गली-कूचेमें वस्तुओंके बेंचने या खरीदनेके लिए तथा कुलके अयोग्य कार्य करनेके लिए कभी न जावे ॥४०१॥ मनुष्यको अपने शरीरके अंगोंका बजाना, तृणोंका छेदना, व्यर्थ भूमिका खोदना, दाँतों और नखोंका घिसना ये कार्य नहीं करना चाहिए ॥४०२॥ कुमार्गमें प्रवर्तमान अपने आपको स्वयं ही निवारण करे। बेलाका उल्लंघन करता हुआ समुद्र क्या अपनेसे भिन्न दूसरेके द्वारा निवारण किया जाता है ? कभी नहीं ॥४०३॥

सन्मानके साथ दान देना, समुचितपनेके साथ उचित वचन बोलना और सुनीतिके साथ आचरण और संभाषण करना, ये तीनों कार्य तीनों जगत्को वशमें करनेवाले होते हैं ॥४०४॥ प्रयोजनसे अधिक वेष धारण करनेवाला धनी होते हुए भी अधिक हीन वेष धारण करनेवाला तथा असमर्थ होते हुए भी समर्थ पुरुषोंके साथ वैर करनेवाला पुरुष महाजनोंके द्वारा हँसीका पात्र होता है ॥४०५॥ चोरी आदि करके धनकी आशा रखनेवाला, उत्तम उपायोंमें संशय रखनेवाला और शक्ति होनेपर भी उद्योग नहीं करनेवाला मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त नहीं कर पाता है ॥४०६॥ फल-प्राप्तिके कालमें आलस करनेवाला, निष्फल कार्यमें उद्यम करनेवाला और शत्रु-संज्ञावाले पुरुषमें शंका नहीं रखनेवाला पुरुष चिरकालतक वृद्धिको प्राप्त नहीं होता है ॥४०७॥

उत्तम कार्य करनेवालोंके साथ दम्भ करनेवाला, व्यर्थके समारम्भ करनेवाला, उनको ग्रहण करने योग्य माननेवाला, दम्भ-रहित पुरुषोंमें अनादर करनेवाला, मूर्खों और स्त्रियोंके वचनोंमें विश्वास करनेवाला मनुष्य विनाशको प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥४०८॥ दूसरोंसे ईर्ष्या करनेवाला, कुलटा-व्यभिचारिणी स्त्रियोंके साथ काम-सेवनका इच्छुक, निर्धन हो करके भी वेश्याओंके साथ प्यार करनेवाला और वृद्ध हो करके भी विवाह करनेकी इच्छा रखने-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामिस्पर्धावितीर्णार्थः कान्ताकोपाद् विवाहकृत् ।
त्यक्तादोषः प्रियाशक्तः पश्चात्तापमुपैत्यलम् ॥४१०

वैरि-वेश्याभुजङ्गेषु दुःखी सुखमनोरथी । ऋणो च स्थावरक्रेता मूर्खाणामादिमास्त्रयः ॥४११
सदैन्यार्थो सुदायत्ते भार्यावित्ते वनीपकः । प्रदायानुशयं धत्ते यस्तदन्यो हि कोऽधमः ॥४१२
अहंयुर्मतिमाहात्म्याद् गर्वितो मागधोक्तिभिः । लाभेच्छुर्नायके लुब्धे ज्ञेया दुर्मतयस्त्रयः ॥४१३
बुष्टे मन्त्रिणि निर्भीकः कृतघ्नादुपकारधीः । दुर्नाथान्न्यायमाकाङ्क्षन्नेष्टसिद्धि लभेज्जनः ॥४१४
अपथ्यसेवको रोगी सद्वेषो हितवादिषु । नीरोगो ह्यौषधप्राशी मुमूर्षुनात्र संशयः ॥४१५
शुल्कदोत्पथगामी च भुक्तिकाले प्रकोपवान् । असेवकः कुलमदास्त्रयोऽमी मन्दबुद्धयः ॥४१६
मित्रोद्वेगकरो नित्यं धूर्तैर्श्वविश्ववञ्चितैः । गुणीषु मत्सरी यस्तु तस्य स्युर्विफलाः कलाः ॥४१७
चारुप्रियोऽन्यदारार्थी सिद्धेऽन्ने गमनादिकृत् । निःस्वोऽक्षीवरतो नित्यं निर्बुद्धीनां शिरोमणिः ॥४१८
धातुवादे धनप्लोषी रसिकश्च रसायने । विषभक्षो परीक्षार्थं त्रयोऽनर्थस्य भाजनम् ॥४१९

वाला पुरुष मनुष्योंकी हँसीका पात्र होता है ॥४०९॥ कामीजनोंके साथ स्पर्धा करनेमें कुलटा-व्यभिचारिणी स्त्रियोंको धन-वितरण करनेवाला, स्त्रीके कोपसे दूसरा विवाह करनेवाला, दोषोंको नहीं छोड़नेवाला और अपनी प्रियामें अत्यन्त आसक्त रहनेवाला पुरुष अन्तमें भारी पश्चातापको प्राप्त होता है ॥४१०॥

स्वयं दुखी रहने पर भी वैरी, वेश्या-भुजंग (वेश्यागमी) से सुखकी इच्छा रखनेवाला, ऋणी (कर्जदार) होकर स्थावर भूमि आदिका खरीदनेवाला ये तीनों मूर्खोंके आदिम अर्थात् शिरोमणि हैं ॥४११॥ दीनता-सहित धनार्थी हो करके भी स्त्रीके धन पर मौज उड़ानेवाला और दान दे करके पीछे पश्चात्ताप करनेवाला जो पुरुष है, उसके सिवाय अन्य कौन अधम पुरुष होगा ॥४१२॥ बुद्धिके माहात्म्यसे अहंकारी, मागधजनोंकी उक्तियोंसे गर्वित और लोभी स्वामीसे लाभ की इच्छा करनेवाला ये तीनों पुरुष दुर्बुद्धि जानना चाहिए ॥४१३॥ राजमंत्रीके दुष्ट होने पर भी निर्भीक रहनेवाला, कृतघ्नी पुरुषसे उपकारकी वुद्धि रखनेवाला और दुष्ट स्वामीसे न्यायकी आकांक्षा रखनेवाला मनुष्य कभी इष्ट-सिद्धिको प्राप्त नहीं होता है ॥४१४॥ अपथ्यका सेवन करनेवाला रोगी, हितकी बात कहनेवालों पर द्वेषभाव रखनेवाला और नीरोगी हो करके भी औषधियोंका खानेवाला मनुष्य मरनेका इच्छुक है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥४१५॥

शुल्क (राज्य-कर) दे करके भी उन्मार्गसे गमन करनेवाला, भोजनके समय क्रोध करनेवाला और कुलके मदसे दूसरोंकी सेवा नहीं करनेवाला, ये तीनों पुरुष मन्द बुद्धिवाले जानना चाहिए ॥४१६॥ जो मित्रोंमें नित्य उद्वेग करनेवालाहै, सबको ठगनेवाले धूर्त पुरुषोंके साथ रहता है और जो गुणीजनों पर मत्सर भाव रखता है, उन पुरुषोंकी सभी कलाएँ निष्फल होती हैं ॥४१७॥ सुन्दर स्त्रीवाला हो करके भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा करनेवाला, अन्नके पक जाने पर भी अन्यत्र गमन करनेवाला और निर्धन हो करके भी नित्य हठ करनेवाला, ये सभी पुरुष निर्बुद्धिजनोंमें शिरोमणि हैं ॥४१८॥

धातुवाद (पारद आदिसे सोना बनाने) में धनको खर्च करनेवाला, रसायन बनानेका रसिक और परीक्षण करनेके लिए विष-भक्षण करनेवाला ये तीनों ही अनर्थके पात्र होते हैं ॥४१९॥ दूसरेके अधीन रहनेवाला, अपनी गुप्त बातोंको कहनेवाला, नौकर-चाकरोंसे डरनेवाला, कुकर्मके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परवश्यः स्वगुह्योक्तो भृत्यभीरुः कुकर्मणा । धत्ते कः स्वस्य कोपेन पदं दुर्यशसो ह्यमी ॥४२०
क्षणरागोऽगुणाभ्यासी दोषेषु रसिकोऽधिकम् । बहुहान्याऽल्परक्षी च सम्पदामास्पदं न हि ॥४२१
नृपेषु नृपवन्मौनी सोत्साहो दुर्बलार्दने । स्तब्धः स्वबहुमानेन भवेद् दुर्जनवल्लभः ॥४२२
दुःखे दीनमुखोऽत्यन्तं सुखे दुर्गतिनिर्भयः । कुकर्मण्यपि निर्लज्जो बालकैरपि हस्यते ॥४२३
धूर्तस्तुत्याऽऽत्मनिर्भ्रान्तः कीर्त्या चापात्रपोषकः । स्वहितेष्वविमर्शी च क्षयं यात्येव बालिशः ॥४२४
विद्वानस्मीति वाचालः सोद्यमीत्यतिचञ्चलः । शूरोऽस्मीति च निःसूक्तः स सभायां न राजते ॥४२५
धर्मद्रोहेण सौख्येच्छुरन्यायेन विवर्द्धिषुः । पापैर्यश्च स्वमोक्षेच्छुः सोऽतिथिर्दुर्गतेर्नरः ॥४२६
विकृतः सम्पदप्राप्त्या विज्ञम्मन्यो मुखत्वतः । देवशक्त्या नृपत्वेच्छुर्धीमद्भिर्न प्रशस्यते ॥४२७
क्लिष्टोक्त्यापि कविम्मन्यः स्वश्लाघी च पर्षदि । व्याचष्टे चाश्रुतं शास्त्रं यस्तस्य मतये नमः ॥४२८
उद्वेजकोऽतिचाटूक्त्या समं स्यात्तं हसन्नपि । निर्गुणो गुणिनिन्दाकृत्क्रकचप्रतिमः पुमान् ॥४२९
प्रसभं पाठको विद्वानदातुरभिलाषुकः । अज्ञो नवरसज्ञश्च कपिकच्छुसमा इमे ॥४३०

द्वारा एवं अपने क्रोधसे कौन पुरुष उत्तम पदको धारण करता है ? अर्थात् कोई भी नहीं । ये सभी अपयशके पात्र हैं ॥४२०॥ क्षणरागी अर्थात मित्रादिकोंके साथ अल्पकाल ही स्नेह रखनेवाला, दुर्गुणोंका अभ्यासी, दोषोंमें अधिक रस लेनेवाला और अधिक धनादि की हानि करके अल्प धनादिकी रक्षा करनेवाला, ये सभी पुरुष सम्पत्तियोंके पात्र नहीं होते हैं ॥४२१॥ राजाओंके मध्यमें राजाके समान मौन धारण करनेवाला, दुर्बल पुरुषको दुःखित-पीड़ित करनेमें उत्साह रखनेवाला और अपनेको बहुत बड़ा मान करके अहंकार-युक्त रहनेवाला, ये सभी दुर्जनोंके वल्लभ (प्रिय) होते हैं ॥४२२॥ दुःखके आने पर अत्यन्त दीन मुख रहनेवाला, सुखके समय (पाप करके भी) दुर्गतियोंसे निर्भय रहनेवाला और कुकर्म करते हुए भी निर्लज्ज रहनेवाला पुरुष बालकोंके द्वारा भी हँसीका पात्र होता है ॥४२३॥ धूर्तजनोंकी स्तुति-प्रशंसासे अपने आपमें भ्रान्ति-रहित रहनेवाला, कीर्त्ति प्राप्त करनेकी इच्छासे अपात्र-कुपात्रजनोंका पोषण करनेवाला और अपने हितमें भी भले-बुरेका विचार नहीं करनेवाला, ये तीनों ही मूर्ख विनाशको ही प्राप्त होते हैं ॥४२४॥

'मैं विद्वान् हूं' ऐसा समझ कर वाचाल रहनेवाला, 'मैं उद्यमशील हूँ' ऐसा मानकर अति चंचल रहनेवाला और 'मैं शूर-वीर हूं' ऐसा अभिमान कर उत्तम वचनोंको नहीं बोलनेवाला पुरुष सभामें शोभा नहीं पाता है ॥४२५॥ धर्मके साथ द्रोह करके सुखकी इच्छा करनेवाला, अन्यायसे धनादिकी वृद्धिका इच्छुक तथा पाप करके भी मुक्तिको चाहनेवाला, ये सभी मनुष्य दुर्गतिके अतिथि जानना चाहिए ॥४२६॥ सम्पतिकी प्राप्ति न होनेसे विकार-युक्त रहनेवाला, अपने मुखसे अपनेको विद्वान् माननेवाला और दैवी शक्तिसे राजा बननेकी इच्छा करनेवाला पुरुष बुद्धिमानोंके द्वारा प्रशंसा नहीं पाते हैं ॥४२७॥ कठिन-वचन-रचना करके भी अपनेको कवि माननेवाला, सभामें अपनी प्रशंसा करनेवाला और अश्रुत (गुरुमुखसे नहीं सुने हुए) शास्त्रका जो व्याख्यान करता है, ऐसे पुरुषकी बुद्धिके लिए नमस्कार है ॥४२८॥

अति खुशामदी वचनोंसे उद्वेगको प्राप्त होनेवाला, अर्थात् अपनेको बड़ा माननेवाला, खुशामदीके हँसनेपर उसके साथ हँसनेवाला और गुण-रहित होते हुए भी गुणी पुरुषोंकी निन्दा करनेवाला, ये तीनों पुरुष क्रकच (करोंत-आरा) के समान हैं ॥४२९॥ पठन-पाठन प्रारम्भ करते ही अपनेको शीघ्र बड़ा विद्वान् माननेवाला, दान नहीं देनेवालेकी अभिलाषा (प्रशंसा) करनेवाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूतो वाचि कविः स्मारी गीतकारी स्वरस्वरः । गृहाश्रमगतो योगी महोद्वेगकरास्त्रयः ॥४३१
ज्ञानिदोषोऽजनश्लाघा गुणिनां गुणनिन्दकः । राजाद्यवर्णवादी च सद्योऽनर्थस्य भाजनम् ॥४३२
गृहदुश्चरितं मन्त्रं वित्तायुर्मर्मवञ्चनम् । अपमानं स्वधर्मं च गोपयेदष्ट सर्वदा ॥४३३

इत्येवं कथितमशेषजन्मभाजा-माजन्म प्रतिपदमत्र यद्विधेयम् ।
कुर्वन्तः सततमिदं च केऽपि धन्याः साफल्यं विदधति जन्म ते निजस्य ॥४३४

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे जन्मचर्यायां
विशेषोपदेशो नामाष्टमोल्लासः ।

और नवों रसोंसे अपरिचित होनेपर भी अपनेको सर्वरसोंका ज्ञाता माननेवाला ये तीनों जातिके पुरुष कपिकच्छु (केंवाचकी फली) के समान जानना चाहिए ॥४३०॥

वचन बोलनेमें अपनेको कुशल दूत, कवि और स्मरण-शक्ति-सम्पन्न समझनेवाला, गायकके स्वरमें स्वर मिलाकरके अपनेको गीतकार माननेवाला, तथा गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी अपनेको योगी कहनेवाला, ये तीनों महान् उद्वेगकारक जानना चाहिए ॥४३१॥ ज्ञानी पुरुषोंमें दोष देखनेवाला, दुर्जनोंकी प्रशंसा करनेवाला, गुणी जनोंके गुणोंकी निन्दा करनेवाला और राजा आदि महापुरुषोंका अवर्णवाद करनेवाला, ये सभी पुरुष शीघ्र ही अनर्थके पात्र होते हैं ॥४३२॥ अपने घरके दुश्चरित्रको, मंत्रको, धनको, अपनी आयुको, मर्मको, वंचना करनेवाले कार्यको, अपमानको और अपने धर्मको इन आठ बातोंको सदा गुप्त रखे। अर्थात् सबके सामने प्रकट नहीं करे ॥४३३॥

इस प्रकार समस्त प्राणियोंके जन्मसे लेकर जीवनमें प्रतिपदपर करनेके योग्य जो कार्य हैं, उन सबको मैंने कहा। जो कोई भी पुरुष निरन्तर इन कार्योंको करते हैं, वे धन्य हैं और वे अपने जन्मको सफल करते हैं ॥४३४॥

इस प्रकार श्रीकुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारके अन्तर्गत
जन्मचर्यामें विशेष कार्योंका उपदेश करनेवाला
अष्टम उल्लास समाप्त हुआ ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ नवमोल्लासः

प्रत्यक्षमप्यमी लोकाः प्रेक्ष्य पापविजृम्भितम् । मूढाः किं न विरज्यन्ते ग्रथिता इव दुर्ग्रहात् ॥१
वधेन प्राणिनां मद्यपानेनानृतजल्पनैः । चौर्यैः पिशुनभावैः स्यात्पातकं श्वभ्रपातकम् ॥२
परवञ्चनमारम्भपरिग्रहकदाग्रहैः । परदाराभिसङ्गैश्च पापं स्यात्तापवर्धनम् ॥३
अभक्ष्यैर्विकथालापैः सन्मार्गाप्ररूपणैः । अनात्मयन्त्रणैश्चापि स्यादेनस्तेन तत्त्यजेत् ॥४
लेश्याभिः कृष्णकापोतनीलाभिश्चैव चिन्तनैः । ध्यानाभ्यामार्तरौद्राभ्यां दुःखकृत्कल्मषं भवेत् ॥५
क्रोधो विजितदावाग्निः स्वस्यान्यस्य च घातकः । दुर्गतेः कारणं क्रोधस्तस्माद्वर्ज्यो विवेकिभिः ॥६
कुल-जाति-तपो-रूप-बल-लाभ-श्रुत-श्रियाम् । मदात्प्राप्नोति तान्येव प्राणी हीनानि मूढधीः ॥७
दौर्भाग्यजननी माया-माया दुर्गतिवर्धिनी । नृणां स्त्रीत्वप्रदा माया ज्ञानिभिस्त्यज्यते ततः ॥८
कज्जलेन सितं वासो दुग्धं शुक्लेन यादृशम् । क्रियते गुणसंघातो युक्तो लोभेन तादृशः ॥९
भवे कारागृहनिभे कषाया कामिका इव । जीवः किन्त्वेषु जाग्रत्सु मोक्षमान्योऽतिबालिशः ॥१०
शौर्यं गाम्भीर्यमौदार्यं ध्यानमध्ययनं तपः । सकलं सफलं पुंसा स्याच्चेद्विषय-निग्रहः ॥११
पापात्पङ्गुः ऋणी पापात्कुष्टी पापाज्जनो भवेत् । पापादस्फुटवाक् पापान्मूकः पापाच्च निर्धनः ॥१२

ये संसारी मूढ लोक पापके फल-विस्तारको प्रत्यक्ष देखकर भी खोटे ग्रहसे ग्रसित हुएके समान पापसे क्यों विरक्त नहीं होते हैं ? (यह आश्चर्य है) ॥१॥ प्राणियोंका घात करनेसे, मदिरा-पानसे, असत्य बोलनेसे, चोरी करनेसे चुगली और काम-कथारूप पैशुन्यभावसे नरकमें ले जानेवाला महापाप होता है ॥२॥ दूसरोंको ठगनेसे, आरम्भ, परिग्रह और दुराग्रहसे तथा परस्त्री के साथ संगम करनेसे सन्तापको बढ़ानेवाला पाप होता है ॥३॥ अभक्ष्य-भक्षण करनेसे, विकथाओं के कहनेसे, असत् मार्गके उपदेश देनेसे और दूसरोंको यंत्रणा देनेसे भी पापका संचय होता है, अतः उक्त सर्व कार्योंको छोड़ना चाहिए ॥४॥ कृष्ण, नील और कापोत लेश्यारूप परिणतिसे, तद्रूप चिन्तन करनेसे तथा आर्त और रौद्र ध्यानसे दुःखोंको उत्पन्न करनेवाला पाप-संचय होता है ॥५॥

क्रोध दावानलको भी जीतने वाला होता है, तथा अपने और परके घातका करने वाला है। क्रोध दुर्गतिका कारण है, इसलिए विवेकी जनोंको क्रोध छोड़ना चाहिए ॥६॥ कुल, जाति, तप, रूप. बल, लाभ, शास्त्र-ज्ञान और धनादि लक्ष्मीके मदसे मूढ बुद्धि प्राणी इन्हीं कुल, जाति आदिकी हीनताको प्राप्त होता है ॥७॥ माया दौर्भाग्यकी जननी है, माया दुर्गतिकी बढानेवाली है और माया मनुष्योंको भी स्त्रीपना देती है, इसलिए ज्ञानीजन मायाका परित्याग करते हैं ॥८॥ दूधके समान श्वेत वस्त्र जैसे काजलसे काला हो जाता है, उसी प्रकार लोभसे युक्त गुणोंका समूह मलिन कर दिया जाता है ॥९॥ कारागार (जेलखाना) के सदृश इस संसारमें कषाय कारागार के स्वामी (जेलर) हैं। किन्तु इन कषायोंके जाग्रत रहते हुए यह अति मूढ़ जीव अपना मोक्ष मानता है, अर्थात् संसारसे छुटकारा समझता है ॥१०॥

यदि मनुष्योंके इन्द्रिय-विषयोंका निग्रह हो, तो शूरता, गम्भीरता, उदारता, ध्यान, शास्त्र-अध्ययन और तप ये सर्व सफल हैं ॥११॥ पापसे जीव पंगु होता है, पापसे ऋणी (कर्जदार) होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रोक्ष्या पापान्मली पापात्पापाद्विषयलोलुपः । दुर्भगः पुरुषः पापात्षण्ढः पापाच्च दृश्यते ॥१३
जायते नारकस्तिर्यगकुलीनोऽपि च मूढधीः । चातुर्वर्ग्यफलैर्वन्ध्यो रोगग्रस्तश्च पापतः ॥१४
यदन्यदपि संसारे जीवः प्राप्नोत्यसुन्दरम् । तत्समस्तं मनो-दुःखहेतुः पापविजृम्भितम् ॥१५

इति गदितमथादौ कारणं पातकस्य प्रतिफलमपि तस्य श्वभ्रपातादिदुःखम् ।
सकलसुखसमूहं प्राप्तिकामैर्मनुष्यैर्मनसि न खलु धार्यः पापहेतूपदेशः ॥१६

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे जन्मचर्यायां
पापोत्पत्तिकारणो नाम नवमोल्लासः ।

●

है पापसे मनुष्य कोढ़ी होता हैं, पापसे अस्पष्ट वचन बोलनेवाला होता है, पापसे मूक (गूँगा) होता है और पापसे मनुष्य निर्धन होता है ॥१२॥ पापसे मनुष्य तिरस्कार एवं बहिष्कारके योग्य होता है, पापसे मलिन होता है, पापसे विषय-लोलुपी होता है, पापसे पुरुष दुर्भागी होता है और पापसे मनुष्य नपुंसक हुआ देखा जाता है ॥१३॥

पापसे यह जीव नारकी, तिर्यंच, अकुलीन और मूढ़ बुद्धि होता है। पापसे ही यह जीव धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्गके फलसे रहित होता है और पापसे ही यह रोगोंसे ग्रस्त रहता हैं ॥१४॥ इस संसारमें जो कुछ भी असुन्दर वस्तुएँ हैं उन सबको यह जीव पापके उदयसे ही पाता है। मनमें दुःख उत्पन्न करनेके जितने भी हेतु हैं, वे समस्त पापके ही विस्तार समझना चाहिए ॥१५॥

इस प्रकार मैंने पापके आदि कारण कहे। इस पापका प्रतिफल भी अति दुष्ट नरक-पात आदि जानना चाहिए। अतएव सर्व सुख-समूहको पानेके इच्छुक मनुष्योंको पापके कारणोंका उपदेश मनमें भी नहीं धारण करना चाहिए ॥१६॥

इस प्रकार कुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें श्रावकचर्याके अन्तर्गत पापोत्पत्तिके कारणोंका वर्णन करनेवाला नवम उल्लास समाप्त हुआ ॥९॥

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ दशमोल्लासः

प्रत्यक्षमन्तरं श्रुत्वा दृष्ट्वा वा पुण्य-पापयोः । सदैव युज्यते कर्तुं धर्मं एव विपश्चिता ॥१
धिग्मूढा जन्मिनो जन्म गमयन्ति निरर्थकम् । धर्माधिष्ठानविकलं सुप्ता इव तपस्विनी ॥२
नृपवित्तधनस्नेहदेहदुष्टजनायुषाम् । विघ्नं विघटमानानामस्त्यतो धर्ममाचरेत् ॥३
धर्मोऽस्त्येव जगज्जैत्रः परलोकोऽस्ति निश्चितः । देवोऽस्ति तत्त्वमस्त्येव सत्त्वं नास्ति तु केवलम् ॥४
कुगुरोः कुक्रियातश्च प्रत्यूहात्कालदोषतः । न सिद्ध्यन्त्याप्तवाचश्चेत्तत्तासां किमु वाच्यते ॥५
अनल्पकुविकल्पस्य मनसः स्थिरता नृणाम् । न जायते ततो देवाः कुतः स्युस्तद्वशंवदाः ॥६
आगताऽप्यन्तिकं सिद्धिर्विकल्पैर्नीयते यतः । अनादरवतां पार्श्वे कथं को वाऽवतिष्ठते ॥७
विश्वश्लाघ्यं कुलं धर्माद्धर्माज्जातिर्मनोरमा । काम्यं रूपं भवेद्धर्माद्धर्मात्सौभाग्यमद्भुतम् ॥८
निरोगत्वं भवेद्धर्माद्धर्माद्दैर्घ्यं [च जीवनम्]। धर्मादर्थो भवेद् भोग्यो धर्माज्ज्ञानं वपुष्मताम् ॥९
मेघवृष्टिर्भवेद् धर्माद्धर्माद्दिव्यश्च सिद्धयः । धर्मान्मुद्रां समुद्रश्च तनोत्युच्छृङ्खलो जलैः ॥१०
धर्मप्रभावतो याति नरकीर्ती रसातलम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धिर्धर्माच्च वर्तते ॥११

पुण्य और पापका प्रत्यक्ष अन्तर सुनकर, अथवा देखकर विद्वान् पुरुषको सदैव धर्म ही करना योग्य है ॥१॥ जो मूढ पुरुष इस मनुष्य जन्मको सोती हुई तपस्विनीके समान धर्माचरणसे रहित निरर्थक गँवाते हैं, उन्हें धिक्कार है ॥२॥ राजाओंका वैभव, धन-धान्यका स्नेह, शरीरकी दुष्टता और प्राणियोंकी आयु इन सब विघटित होनेवाली वस्तुओंके विघ्न होता ही है, इसलिए मनुष्यको धर्मका आचरण करना ही चाहिए ॥३॥ धर्म जगत्का जीतनेवाला है ही, परलोक है, यह बात भी निश्चित है, देव है और तत्त्व भी हैं ही। केवल तुम्हारी सत्ता ही वर्तमान रूपमें सदा नहीं रहनेवाली है ॥४॥ कुगुरुके निमित्तसे, खोटी क्रियाओंके आचरणसे, विघ्नों और कलिकालके दोषसे यदि आप्तके वचन सिद्ध नहीं होते हैं, तो उनकी क्या निन्दा की जा सकती है ? अर्थात् नहीं की जा सकती ॥५॥ मनुष्योंके बहुत संकल्प और खोटे विकल्प वाले मनकी यदि स्थिरता नहीं होती है, तो इससे देव उनके वशंवद (इच्छानुसार बोलनेवाले) कैसे होंगे ? अर्थात् जब मनुष्योंके मनमें स्थिरता नहीं, तब देवता उनकी इच्छानुसार कैसे कार्य करेंगे ॥६॥ इससे समीपमें आई हुई भी सिद्धि मनुष्योंके नाना विकल्पोंके द्वारा अन्यत्र ले जायी जाती है। ठीक ही है— अनादर करनेवाले पुरुषोंके पासमें कौन ठहरता है ? कोई भी नहीं ठहरता ॥७॥

धर्मसे सभीके द्वारा प्रशंसनीय कुल प्राप्त होता है, धर्मसे मनोरम जाति प्राप्त होती है, धर्मसे मनोवांछित सुन्दररूप प्राप्त होता है और धर्मसे आश्चर्य-जनक सौभाग्य प्राप्त होता है ॥८॥ धर्मसे शरीरमें निरोगता रहती है, धर्मसे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है, धर्मसे भोगने योग्य धन मिलता हैं और धर्मसे ही शरीर-धारियोंको ज्ञान प्राप्त होता है ॥९॥ धर्मसे समय पर मेघ वृष्टि होती है, धर्मसे दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त होती है और धर्मसे जलके द्वारा उद्वेलित समुद्र भी प्रशान्त मुद्राको धारण कर लेता हैं ॥१०॥ धर्मके प्रभावसे मनुष्यकी कीर्त्ति समस्त भूतल पर फैलती है और धर्मसे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदन्यदपि सद्वस्तु प्राप्नोति हृदयेप्सितम् । जीवः स्वर्गापवर्गादि तत्सर्वं धर्मसञ्चयात् ॥१२
दानशीलतपोभावैर्भेदभिन्नैः स दृश्यते । कार्यस्ततः स एवात्र मुक्तेर्यत्कारणं मतम् ॥१३
श्रेष्ठो मे धर्म इत्युच्चैर्ब्रूते कः कोऽत्र नोद्धतः । भेदो न ज्ञायते तस्य दूरस्थैराम्रनिम्बवत् ॥१४
मायाऽहङ्कारलज्जाभिः प्रत्युपक्रियया‌थवा । यत्किञ्चिद्दीयते दानं न तद्धर्मस्य साधनम् ॥१५
असद्भ्योऽपि च यद्दानं तन्न श्रेयस्करं विदुः । दुग्धपानं भुजङ्गानां जायते विषवृद्धये ॥१६
प्रसिद्धिर्जायते पुण्यान्नदानाद्यत्प्रसिद्धये । कैश्चिद्वितीर्यते दानं तज्ज्ञेयं व्यसनं बुधैः ॥१७
यज्ज्ञानाभययोरत्र धर्मोपष्टम्भवस्तुनः । यच्चानुकम्पया दानं तदेव श्रेयसे भवेत् ॥१८
स विवेकधुरोद्धारधौरेयो यः स्वमानसे । विरक्तहृदयो वेत्ति ललनां शृङ्खलामिव ॥१९
आस्तां सर्वपरित्यागालङ्कृतस्य महामुनेः । गृहिणोऽपि हितं ब्रह्म लोकद्वयसुखैषिणा ॥२०
तिर्यग्देवासुरस्त्रीश्च परस्त्रीं चापि यस्त्यजेत् । सोऽपि धीमान् सदा तुङ्गो यः स्वदाररतिः सदा ॥२१
तनौ यदि नितम्बिन्याः प्रमादाद् दृग् पतत्यहो । चिन्तनीया तदैवात्र मलमूत्रादिसंस्थितिः ॥२२

अन्य जो भी मनोवांछित उत्तम वस्तु जीव प्राप्त करता है तथा स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) प्राप्त होता है, वह सब धर्मके संचयसे ही प्राप्त होता है ॥१२॥ वह धर्म-दान, शील, तप और भावनाओंके विभिन्न भेदोंके द्वारा प्राप्त होता हुआ देखा जाता है, इसलिए मनुष्यको इस लोकमें वही यह धर्म उपार्जन करना चाहिए, क्योंकि यह धर्म ही मुक्तिका कारण माना गया है ॥१३॥

मेरा धर्म श्रेष्ठ है; इस प्रकार उच्च स्वरसे कौन उद्धत पुरुष यहाँ पर नहीं बोलता है ? सभी लोग चिल्ला-चिल्ला करके कहते हैं कि मेरा ही धर्म श्रेष्ठ है। किन्तु वे लोग उस धर्मका भेद नहीं जानते हैं। जैसे कि दूरवर्ती पुरुषोंके द्वारा आम और नीम वृक्षका भेद ज्ञात नहीं होता है ॥१४॥

अब ग्रन्थकार दानका वर्णन करते हैं—मायाचार, अहंकार और लोक-लाजसे अथवा प्रत्युपकारकी भावनासे जो कुछ दिया जाता है, वह दान धर्मका साधक नहीं है ॥१५॥ दुर्जन पुरुषोंको भी जो दान दिया जाता है, ज्ञानीजन उसे भी श्रेयस्कर नहीं मानते हैं। क्योंकि भुजंगोंको दूध पिलाना विषकी वृद्धिके लिए ही होता है ॥१६॥ 'पुण्य-कार्यसे प्रसिद्धि होती हैं' ऐसा जानकर जो प्रसिद्धिके लिए अन्नदान आदि कितने ही लोगोंके द्वारा वितरित किया जाता है, वह दान ज्ञानीजनोंको व्यसन जानना चाहिए ॥१७॥ जो ज्ञान.दान और निर्भयताका कारण अभयदान तथा इस लोकमें धर्म-साधक वस्तुका दान दिया जाता है और जो अन्नादिका दान करुणाभावसे दिया जाता है, वही दान कल्याणके लिए होता है ॥१८॥

अब ग्रन्थकार ब्रह्मचर्यरूप शीलका वर्णन करते हैं—वह पुरुष विवेकरूप धुराके उद्धार करनेमें अग्रणी है, जो विरक्तचित्त पुरुष अपने मनमें स्त्रीको संसारमें बाँधनेवाली सांकलके समान जानता है ॥१९॥ सर्वपरिग्रहके त्यागसे अलंकृत महामुनिका ब्रह्मचर्य तो दूर ही रहे, किन्तु दोनों लोकोंमें सुखके इच्छुक मनुष्यको गृहस्थका स्वदार-सन्तोषरूप ब्रह्मचर्य भी हित-कारक जानना चाहिए ॥२०॥ जो बुद्धिमान् पुरुष सदा अपनी स्त्रीमें सन्तोषके साथ रति रखता है और जो तिर्यंचनी, देवी, असुर स्त्री तथा परपुरुषकी स्त्रीका त्याग करता है, वह मनुष्योंमें सदा ही सर्वश्रेष्ठ है ॥२१॥ अहो भव्यपुरुषो, यदि कदाचित् प्रमादसे भी स्त्रीके शरीरपर दृष्टि पड़ जाय, तो उस समय उसके शरीरमें मल-मूत्र आदि घृणित वस्तुओंका अवस्थान चिन्तन करना चाहिए ॥२२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानात्परमानन्दो लोकोऽयं विषयोन्मुखः । अदृष्टनगरैर्ग्रामः पामरैरुपवर्ण्यते ॥२३
परानन्दसुखस्वादी विषयैर्नाभिभूयते । जाङ्गुली जपनिष्कम्पः किं सर्पैरुपसर्प्यते ॥२४
रसत्यागतनुक्लेश ऊनोदर्यमभोजनम् । लीनतावृत्तिसङ्क्षेपस्तपः षोढा बहिर्भवम् ॥२५
प्रायश्चित्तं शुभं ध्यानं स्वाध्यायो विनयस्तथा । वैयावृत्त्यमथोत्सर्गस्तपः षोढान्तरं भवेत् ॥२६
दुःखव्यूहाय हाराय सर्वेन्द्रियसमाधिना । आरम्भपरिहारेण तपस्तप्येत शुद्धधीः ॥२७
पूजालाभप्रसिद्धयर्थं तपस्तप्येत योऽल्पधीः । शोष एव शरीरस्य न तस्य तपसः फलम् ॥२८
विवेकं विना यच्चस्यात्तत्तपस्तनुतापकृत् । अज्ञानकष्टमेवेदं न भूरिफलदायकम् ॥२९
दृष्टिहीनस्य पङ्गोश्च संयोगे गमनादिकम् । तथा प्रवर्तते ज्ञानं त्रययोगः शिवं तथा ॥३०
शरीरं योजितं वित्तं संयोगश्च स्वभावतः । इदमित्थमनित्यत्वाद्धेयं जानाहि सर्वतः ॥३१
शक्र-चक्र्यादयोऽप्येते म्रियन्ते कालयोगतः । तदत्र शरणं यत्तु कः कस्य मरणाद् भवेत् ॥३२
संसारनाटके जन्तुरुत्तमो मध्यमोऽधमः । नटवत्कर्मसंयोगान्नानारूपैर्भ्रमत्यहो ॥३३

यह इन्द्रियोंके विषयोंके उन्मुख हुआ संसार अज्ञानसे स्त्रीके साथ रमण करनेमें परम आनन्द मानता है। जैसे जिन पामर (दीन हीन किसान) लोगोंने नगरको नहीं देखा है, उनके द्वारा ग्रामकी प्रशंसा वर्णनकी जाती हैं ॥२३॥ आत्मिक परम आनन्दरूप सुखका आस्वाद लेनेवाला ज्ञानी पुरुष इन्द्रियोंके विषयों द्वारा पराभूत नहीं होता है। विष-हरण करनेवाले मंत्रके जापसे निष्कम्प रहनेवाला पुरुष क्या सांपोंके द्वारा आक्रान्त या पीड़ित होता है? अर्थात् नहीं होता है ॥२४॥

अब ग्रन्थकार तपका वर्णन करते हैं—रसपरित्याग, कायक्लेश, अवमोदर्य, अनशन, लीनता (विविक्तशय्यासन) और वृत्तिपरिसंख्यान ये छह प्रकारका बाह्यतप है ॥२५॥ प्रायश्चित्त, शुभध्यान, स्वाध्याय, विनय, वैयावृत्त्य, तथा व्युत्सर्ग ये छह प्रकारका अन्तरंग तप है ॥२६॥ दुःखोंके समूहको दूर करनेके लिए सर्व इन्द्रियोंके निरोधरूप समाधिके द्वारा तथा आरम्भके परिहारसे शुद्ध बुद्धिवाले पुरुषको तप तपना चाहिए ॥२७॥ जो अल्पबुद्धि पुरुष लोक-पूजा, अर्थ-लाभ और अपनी प्रसिद्धिके लिए तप तपता है, वह अपने शरीरका शोषण ही करता है, उसे उसके तपका कुछ फल नहीं मिलता है ॥२८॥ विवेकके बिना जो तप किया जाता है, वह शरीर-को ही सन्ताप करनेवाला होता है, वह अज्ञानरूप कष्ट ही है, वह तपके भारी फलोंको नहीं देता है ॥२९॥ जिस प्रकार दृष्टिहीन अन्धे और पंगु पुरुषके संयोग होनेपर गमनादि कार्यका होता है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका योग शिव-पदका दायक होता है ॥३०॥

अब ग्रन्थकार बारह भावनाओंका वर्णन करते हैं कर्मोदयके स्वभावसे जो यह शरीर उपार्जित धन और कुटुम्बका संयोग मिला है, और जिसे मनुष्य नित्य समझता है, वह सब विचार करनेपर अनित्य है, ऐसा सर्व प्रकारसे जानना चाहिए। यह अनित्य भावना है ॥३१॥ जब ये इन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुष भी कालके योगसे मरते हैं, तब इस संसारमें मरणसे बचानेके लिए कौन किसका शरण हो सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं। यह अशरण भावना है ॥३२॥ इस संसाररूप नाटकमें यह प्राणी कर्मके संयोगसे कभी उत्तम, कभी मध्यम और कभी अधम इन नानारूपोंसे भ्रमण करता है, यह आश्चर्य है। यह संसार भावना है ॥३३॥ निश्चयसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक एव ध्रुवं जन्तुर्जायते म्रियतेऽपि च। एक एवं सुखं दुःखं भुङ्क्ते चान्योऽस्ति नो सुखम् ॥३४
देहार्थे बन्धुमात्रादि सर्वमन्यत्वतस्ततः। युज्यते नैव कुत्रापि शोकः कर्तुं विवेकिना ॥३५
रसासृग्मांसमेदास्थिमज्जाशुक्रमये पुरे। नवस्रोतःपरीते च शौचं नास्ति कदाचन ॥३६
कषायैर्विषयैर्योगैः प्रमादैरङ्गिभिर्नवम्। रौद्रार्त्तैर्नियमाज्ञत्वैश्चात्र कर्म प्रबध्यते ॥३७
कर्मोत्पत्तिविघातार्थं संवराय नतोऽस्म्यहम्। यश्छिनत्ति समास्त्रेण शुभाशुभमयं द्रुमम् ॥३८
सुसंयमैर्विवेकोघैरकोमोग्रतपोऽग्निना। संसारकारणं कर्म जरणीयं महात्मभिः ॥३९
शरावसम्पुटाधःस्थमुखैकशरावत्। पूर्णं चिन्त्यं जगद् द्रव्यैः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकैः ॥४०

दुर्लभेऽपि मनुष्यत्वे प्राप्ते जीवः श्रुतादिभिः।
आसन्नसिद्धिकः कश्चिद् बुध्यते तत्त्वनिश्चयम् ॥४१

श्रेष्ठो धर्मस्तपः क्षान्तिमार्दवार्जवसूनृतैः। शौचाकिञ्चन्यकरुणाब्रह्मत्यागैश्च सम्मतः ॥४२
भावनीयाः शुभध्यानैर्भव्यैर्द्वादश भावनाः। एता हि भवनाशिन्यो भवन्ति भविनां किल ॥४३
गोदुग्धस्यार्कदुग्धस्य यद्वत्स्यादन्तरं महत्। धर्मस्याप्यन्तरं तद्वत्फलेऽमुत्रापरत्र च ॥४४

यह जन्तु अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही सुख और दुःखको भोगता है। इसका अन्य कोई सगा साथी नहीं है और न कोई सुख है। यह एकत्व भावना है ॥३४॥ शरीरके अर्थमें ही यह बन्धु है, यह माता है, इत्यादि सम्बन्ध कहे जाते हैं, वस्तुतः सभी अपनेसे भिन्न है। इसलिए विवेकी पुरुषको उनके वियोग आदि किसी भी दशामें शोक करना योग्य नहीं है। यह अन्यत्व भावना है ॥३५॥ रस, रक्त, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा और वीर्यमयी इस शरीर रूप नगरमें जोकि नव मल-द्वारोंसे व्याप्त है, कभी भी शुचिता-पवित्रता सम्भव नहीं है। यह अशुचिभावना है ॥३६॥ इस संसारमें कषायोंसे, इन्द्रिय-विषयोंसे, योगोंसे, प्रमादोंसे, रौद्र-आर्त्त-ध्यानसे और व्रत-नियमादिकी अजानकारीसे सदा नवीन कर्मको यह जीव बाँधता रहता है। यह आस्रवभावना है ॥३७॥ कर्मोंकी आस्रवरूप उत्पत्तिके विनाशार्थ संवरके लिए मैं विनत हूँ, जोकि समभावरूप अस्त्रके द्वारा शुभ-अशुभरूप इस संसार-वृक्षका छेदन करता है उत्तम संयमके द्वारा, विवेक आदिके द्वारा तथा अविपाकरूप उग्रतपोग्निके द्वारा महान् आत्माओंको संसारका कारण-भूत कर्म निर्जीर्ण करना चाहिए। यह निर्जरा भावना है ॥३९॥ शराव-सम्पुटके नीचे स्थित एक मुखवाले शराबके समान आकारवाला यह जगत् स्थिति, उत्पत्ति और व्ययस्वभावी द्रव्योंसे परिपूर्ण चिन्तवन करना चाहिए। यह लोक भावना है ॥४०॥ अति दुर्लभ इस मनुष्यभवके प्राप्त करनेपर कोई निकट भव्यजीव शास्त्राभ्यासादिके द्वारा तत्त्व-निश्चय करके सम्यग्ज्ञानरूप बोधिको प्राप्त करता है। यो बोधिदुर्लभ भावना है ॥४१॥ तप, क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य और त्यागके द्वारा श्रेष्ठ धर्म माना गया है। यह धर्म भावना है ॥४२॥ भव्यपुरुषोंको ये बारह भावनाएँ शुभ ध्यानके द्वारा सदा भाना चाहिए। क्योंकि सम्यक् प्रकारसे भावित ये भावनाएँ ही संसारी जीवोंके संसारका नाश करनेवाली होती हैं ॥४३॥

जिस प्रकार गायके दूध और आकड़ेके दूधमें महान् अन्तर है, उसी प्रकार सद्-धर्म और असद्-धर्म तथा उनके इसलोक और परलोकमें प्राप्त होनेवाले फलमें भी महान् अन्तर है ॥४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यनेन विधिना करोति यः कर्म-धर्ममसमिद्धवासितः ।
तस्य सूत्रयति मुक्तिकामिनी कण्ठकन्दलहठग्रहक्रियाम् ।।४५

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे जन्मचर्यायां
धर्मोत्पत्तिकारणाख्ये दशमोल्लासः ।

इस उपर्युक्त विधिके द्वारा जो सांसारिक वासनाओंसे विमुक्त होकर धर्म-कार्य करता है, उसके मुक्तिरूपी कामिनी कण्ठ-कन्दलको हठ-पूर्वक ग्रहण करनेकी क्रियाको सूचित करती है, अर्थात् मुक्तिरूपी वधू उसके गलेमें वरमाला डालती है ।।४५।।

इस प्रकार कुन्द-कुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें जन्मचर्याके अन्तर्गत
धर्मोत्पत्तिकारण नामका दशम उल्लास समाप्त हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ एकादशोल्लासः

पूर्वोक्तयत्नसन्दोहैः पालितं देहपञ्जरम् । श्लाघ्यं स्याद् ब्रह्महंसस्य विद्याधारो वृथाऽन्यथा ॥१
मुग्धानां वर्धते क्षेत्रपाकाद्यैर्भवारिधिः । धीमतामपि शास्त्रौघैरध्यात्मविकलैर्भृशम् ॥२
करोत्यप्यहर्निशं कार्यं बहुभिर्ग्रन्थगुम्फनैः । विद्वद्भिस्तत्त्वमालोक्यमन्तर्ज्योतिमयं महत् ॥३
जन्मान्तरसंस्कारात्प्रसादादथवा गुरोः । केषाञ्चिज्जायते स्वत्त्वे वासना विशदात्मनाम् ॥४
अहं बत सुखी दुःखी गौरः श्यामो दृढोऽदृढः । ह्रस्वो दीर्घो युवा वृद्धो दुरत्यजेयं कुवासना ॥५
जातिपाखण्डयोर्येषां विकल्पाः सन्ति चेतसि । वार्ताभिस्तैः श्रुतं तत्त्वं न पुनः परमार्थतः ॥६
तावत्तत्त्वं कृतो यावद् भेदः स्वपरयोर्भवेत् । नगरारण्ययोर्भेदे कथमेकत्ववासना ॥७
धर्मः पिता क्षमा माता कृपा भार्या गुणाः सुताः । कुटुम्बं सुधियां सत्यमेतदन्ये तु विभ्रमाः ॥८
पादबन्धदृढं स्थूलकटीभागं भुजार्गलम् । धातुभित्ति नवद्वारं देहं गेहं सुयोगिनः ॥९
कान्ताप्रकाशमेकान्तं पवित्रं विपुलं समम् । समाधिस्थानमच्छेद्यं सद्भिः साम्यस्य साधकम् ॥१०
शमाग्निः समदोषश्च समधातुः शमोऽक्षयः । सुप्रसन्नेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यधिभीयते ॥११

पूर्वोक्त नाना प्रयत्नोंके समूहसे पालित यह देहरूप पींजरा यदि ब्रह्मरूप हँसकी विद्याका आधार हो तो प्रशंसाके योग्य है, अन्यथा वह व्यर्थ है ॥१॥ मूर्ख पुरुषोंका संसार-समुद्र क्षेत्र, काल आदिके विपाकसे वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी प्रकार बुद्धिमानोंका भी संसार-समुद्र अध्यात्म-शून्य शास्त्रोंके समूहसे भी अति वृद्धिको प्राप्त होता है ॥३॥ यद्यपि रात-दिन इन शास्त्रज्ञोंके द्वारा ग्रन्थोंकी रचनाओंसे पुण्यकार्य किया जाता है, तथापि विद्वज्जनोंको अन्तर्ज्योतिमय महान् तत्त्वका अवलोकन (दर्शन) करना चाहिए ॥४॥ पूर्व जन्मके संस्कारसे अथवा गुरुके प्रसादसे कितने ही निर्मल आत्माओंको आत्म-तत्त्वमें वासना होती है ॥४॥ अहो, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं काला हूं, मैं दृढ़ हूँ, मैं दृढ़ नहीं हूं, मैं छोटा हूँ, मैं वड़ा हूं, मैं जवान और मैं बूढ़ा हूं, यह कुवासना छोड़ना वहुत कठिन होती है ॥५॥ जिन पुरुषोंके चित्तमें जाति और पाखण्ड-सम्बन्धी विकल्प होते हैं, उन लोगोंने वार्त्ताओंसे तत्त्वको सुना है, किन्तु परमार्थसे तत्त्वको नहीं सुना है ॥६॥ तब तक तत्त्वका अभ्यास करना चाहिए, जब तक कि स्व और परका भेद ज्ञान उत्पन्न होवे। यदि तत्त्वज्ञके मनमें यह नगर है और यह वन हैं, ऐसा भेद हो तो आत्माके एकत्त्व की भावना कैसे उत्पन्न हो सकती है ? अर्थात् कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकती ॥७॥ धर्म मेरा पिता है, क्षमा माता है, दया भाई है और सद्गुण ही मेरे पुत्र हैं, बुद्धिमानोंका तो यही सच्चा कुटुम्व है। इससे अन्य विकल्प तो विभ्रमरूप ही हैं ॥८॥

जिसके पाद-बन्ध (पद्मासन) दृढ़ है, कटिभाग स्थूल है, भुजारूप अर्गला है, सप्त धातुरूप भित्ति और नौ द्वार हैं, ऐसा यह देह ही उत्तम योगीका गेह है ॥९॥ सुन्दर स्त्रियोंसे रहित, अथवा सुरम्य और प्रकाशयुक्त ऐसा पवित्र एकान्त, विशाल समभाव और अच्छेद्य समाधिस्थान ये ही सन्त पुरुषोंके द्वारा साम्यभावके साधक माने गये हैं ॥१०॥ शम-अग्निवाला, सम दोषवाला, सम धातुवाला, शम, अक्षयी, सुप्रसन्न इन्द्रिय और मनवाला पुरुष ही स्वस्थ कहा जाता है ॥११॥ जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वस्थः पद्मासनासीनः संयमैकधुरन्धरः । क्रोधाद्यैरनाक्रान्तः शीतोष्णाद्यैरनिर्जितः ॥१२
भोगेभ्यो विरतः कामममात्मदेहेऽपि निःस्पृहः । स्वपतौ दुर्गतेऽन्येऽपि सममानसवासनः ॥१३
समीरण इवाविद्धः सानुमानिव निश्चलः । इन्दुवज्जगदानन्दी शिशुवत्सरलाशयः ॥१४
सर्वक्रियासु निर्लेपः स्वस्मिन्नात्मावबोधकृत् । जगदप्यात्मवज्जानन् कुर्वन्नात्ममयं मनः ॥१५
मुक्तिमार्गरतो नित्यं संसाराच्च विरक्तिभाक् । गीयते धर्मतत्त्वज्ञैर्धीमान् ध्यानक्रियोचितः ॥१६
(पञ्चभिः कुलकम्)

विश्वं पश्यति शुद्धात्मा यद्यप्युन्मत्तसन्निभः । तथापि वचनेनापि मर्यादां नैव लङ्घयेत् ॥१७
कुलीनाः सुलभाः प्रायः सुलभाः शास्त्रशालिनः । सुशीलाश्चापि सुलभा दुर्लभा भुवि तात्त्विकाः ॥१८
अपमानादिकान् दोषान् मन्यते स पुमान् किल । सविकल्पं मनो यस्य निर्विकल्पस्य ते कुतः ॥१९
मयि भक्तो जनः सर्वं इति हृष्येन्न साधकः । मय्यभक्तो जनः सर्वं इति कुप्येन्न वा पुनः ॥२०
अन्तश्चित्तं न शुद्धं चेद्बहिः शौचे न शौचभाक् । सुपक्वमपि निम्बस्य फले बीज कटु स्फुटम् ॥२१
यस्यात्ममनसोभिन्नरुच्यो मैत्री निवर्तते । योगविघ्नैः समं मित्रैस्तस्येच्छा कौतुके कुतः ॥२२
कालेन भक्ष्यते सर्वं स केनापि न भक्ष्यते । अभक्षाभक्षको योगी येन द्वावपि भक्ष्यते ॥२३

पुरुष स्वस्थ है, पद्मासनसे स्थित है, एकमात्र संयमकी धुराका धारण करनेवाला है, क्रोध आदि कषायोंके आक्रमणसे रहित है, शीत-उष्ण आदि परीषहोंको जीतनेवाला है, इन्द्रियोंके भोगोंसे विरक्त है, अपने शरीरमें भी सर्वथा निःस्पृह है, धनके स्वामित्वमें और निर्धनतामें भी समान चित्तकी वासनावाला है, वायुके समान निर्लेप है, पर्वतके समान निश्चल है, चन्द्रके समान जगत्को आनन्द-दायक है, शिशुके समान सरल हृदय है, संसारिक सभी क्रियाओं अलिप्त है, अपने आत्म-बोध करनेवाला है, सारे संसारको अपने समान जानता है, मनको आत्मामें संलग्न करनेवाला है, मोक्षमार्गमें निरत है और संसारसे सदा ही विरक्त रहता है, ऐसा बुद्धिमान् पुरुष ही धर्म तत्त्वके ज्ञाताजनोंके द्वारा ध्यान करनेके योग्य कहा गया है ॥१२-१६॥

यद्यपि शुद्ध आत्मावाला व्यक्ति सारे विश्वको उन्मत्तके सदृश देखता है, तथापि वचनके द्वारा भी लोक-मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता है ॥१७॥ इस लोकमें कुलीन पुरुष प्रायः सुलभ हैं, शास्त्रोंका परिशीलन करनेवाले भी सुलभ हैं और उत्तम शीलवाले भी पुरुष सुलभ हैं, किन्तु तत्त्वके मर्मको जाननेवाले पुरुष दुर्लभ हैं ॥१८॥ जिसका मन विकल्पोंसे भरा हुआ है, वह पुरुष निश्चयतः दूसरोंके द्वारा किये गये अपमान आदि दोषोंको मानता है। किन्तु निर्विकल्पवाले पुरुषके वे अपमानादि दोष कैसे सम्भव हैं? अर्थात् विकल्प-रहित पुरुष अपमान आदिको कुछ भी नहीं गिनता है ॥१९॥ सर्वजन मेरे भक्त हैं, ऐसा समझकर आत्म-साधक पुरुषको हर्षित नहीं होना चाहिए। तथा सब लोग मेरे अभक्त हैं, ऐसा मानकर उसे किसी पर क्रोधित नहीं होना चाहिए ॥२०॥

जिसका अन्तरंगमें चित्त शुद्ध नहीं है, वह बाहिरी शारीरिक शुद्धिसे शुद्ध नहीं कहा जा सकता। नीमके भले प्रकारसे पके हुए फलमें बीज तो स्पष्टरूपसे कटु स्वादवाला ही रहता है ॥२१॥ जिसके आत्मा और मनकी भिन्न रुचिवाली मैत्री दूर हो जाती है, उसके योग-साधनमें विघ्न करनेवाले मित्रोंके साथ सांसारिक कौतूहलमें इच्छा कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती ॥२२॥ संसारके सर्व पदार्थ कालके द्वारा भक्षण कर लिए जाते हैं, किन्तु योगी पुरुष किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या शक्यते न केनापि पातुं किल परा किल । यस्तां विशत्यविश्रान्तं स एवामृतपायकः ॥२४
अगम्यं परमस्थानं यत्र गन्तुं न पार्यते । तत्रापि लाघवाद् गच्छन्नगम्यगमको मतः ॥२५
ब्रह्मात्मनि विचारी यो ब्रह्मचारी स उच्यते । अमैथुनः पुनः स्थूलस्तादृक् षण्ढोऽपि यद् भवेत् ॥२६
अनेकाकारतां धत्ते प्राणी कर्मवशंगतः । कर्ममुक्तः स नो धत्ते तमेकाकारमादिशेत् ॥२७
दुःखी किमिति कोऽप्यत्र नरः पापं करोति किम् । मुक्तिर्भवेद्धि विश्वस्य मतिर्मैत्रीति कथ्यते ॥२८
दोषनिर्मुक्तवृत्तीनां धर्मसर्वस्वदर्शिनाम् । योऽनुरागो गुणेषूच्चैः स प्रमोदः प्रकीर्त्यते ॥२९
भीतार्तदीनलीनेषु जीवितार्थिषु वाञ्छितम् । शक्त्या यत्पूर्यते नित्यं करुणा सात्र विश्रुता ॥३०
मोहान्धाद्द्विषतां धर्मं निर्भयं कुर्वतामघम् । स्वश्लाघिनां च योपेक्षा माध्यस्थ्यं तदुदीरितम् ॥३१
विभवश्च शरीरं च बहिरात्मा निगद्यते । तदधिष्ठायको जीवस्त्वन्तरात्मा सकर्मकः ॥३२
निरातङ्को निराकारो निर्विकल्पो निरञ्जनः । परमात्मा स योऽत्यक्षो ज्ञेयोऽनन्तगुणोच्चयः ॥३३

के द्वारा भी खाया नहीं जाता है। योगी पुरुष अभक्ष्योंका अभक्षक है, क्योंकि उसके द्वारा काल और अपमान ये दोनों ही भक्षण कर लिए जाते हैं ॥२३॥ निश्चयसे जो परा-आत्मविद्या है, वह किसी भी सांसारिक वासनाओंमें ग्रस्त पुरुषके द्वारा पान करनेके लिए शक्य नहीं है किन्तु जो पुरुष विना विश्राम लिए निरन्तर उसमें प्रवेश करता है, वही निश्चयसे अमृत-पायी है ॥२४॥ परम ब्रह्मका स्थान अगम्य हैं, क्योंकि वहाँ पर जानेके लिए कोई पार नहीं पाता है। किन्तु उस अगम्य स्थान पर लघुतासे अर्थात् संकल्प-विकल्पोंके भारसे रहित होनेके कारण जानेवाला योगी अगम्यगमक माना जाता है ॥२५॥

ब्रह्मरूप आत्मामें जो विशेष रूपसे विचार कर विचरण करता है वह ब्रह्मचारी कहा जाता है। जो मैथुन-सेवी नहीं है, वह तो स्थूल या बाह्य ब्रह्मचारी है। वैसा स्थूल ब्रह्मचारी तो नपुंसक भी होता है ॥२६॥ कर्मके वशीभूत हुआ प्राणी संसारमें अनेकों आकारोंको धारण करता है। किन्तु कर्मोंसे मुक्त हुआ आत्मा अनेक आकारोंको नहीं धारण करता है, उसे एक आकार-वाला कहना चाहिए ॥२७॥

इस संसारमें कोई भी प्राणी दुःखी क्यों है? (यदि पापके उदयसे वह दुःखी है तो) वह मनुष्य पाप क्यों करता है? सर्व प्राणियोंकी कर्मोंसे मुक्ति हो, इस प्रकारकी बुद्धिको 'मैत्री भावना' कहा जाता है ॥२८॥ राग-द्वेषरूप दोषोंसे रहित मनोवृत्तिवाले और धर्म-सेवनको ही सर्वस्व समझनेवाले पुरुषोंका जो उत्तम गुणोंमें और गुणीजनोंमें अनुराग होता है, वह प्रमोद कहा जाता है ॥२९॥ भय-भीत, दु खोंसे पीड़ित और दीन-दरिद्री जीवोंपर तथा जीनेके इच्छुक जनोंपर अपनी शक्तिके अनुसार जो उनकी इच्छाको नित्य पूर्ण किया जाता है, वह इस लोकमें 'करुणा' नामसे प्रसिद्ध है ॥३०॥ मोहसे अन्धे होनेके कारण जो धर्मसे द्वेष करते हैं और निर्भय होकर पाप करते हैं तथा अपनी प्रशंसा करते हैं (और दूसरोंका निन्दा करते हैं) उन लोगोंके ऊपर जो उपेक्षाभाव रखा जाता है, उसे मध्यस्थभावना कहा गया है ॥३१॥

वैभव और शरीर ही मेरा सब कुछ है, ऐसा माननेवाला मनुष्य बहिरात्मा कहा जाता है। इस शरीरका अधिष्ठाता जीव है और वह इस शरीरसे भिन्न और कर्म-सहित है, ऐसा माननेवाला जीव अन्तरात्मा कहा जाता है ॥३२॥ जो सर्वप्रकारके आतंक-रोगादिसे रहित है, निराकार है, निर्विकल्प है, कर्मरूप अंजनसे रहित है वह परमात्मा है और जो इन्द्रियोंसे अतीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा लोहं सुवर्णत्वं प्राप्नोत्यौषधयोगतः । आत्मध्यानात्तथैवात्मा परमात्मत्वमश्नुते ॥३४
अभ्यासवर्जिते ध्यानैः शास्त्रस्थैः फलमस्ति न । भवेन्न हि फलैस्तृप्तिः पानीयप्रतिबिम्बतैः ॥३५
रूपस्थं च पदस्थं च पिण्डस्थं रूपवर्जितम् । ध्यानं चतुर्विधं ज्ञेयं संसारार्णवतारकम् ॥३६
पश्यति प्रथमं रूपं स्तौति ध्येयं ततः पदैः । तन्मयः स्यात्ततः पिण्डो रूपातीतः क्रमाद् भवेत् ॥३७
यथावस्थितमालम्ब्य रूपं त्रिजगदीशितुः । क्रियते यन्मुधा ध्यानं तद्रूपस्थं निगद्यते ॥३८
विद्यायां यदि वा मन्त्रे गुरु-देवस्तुतावपि । पदस्थं कथितं ध्यानं पवित्रान्यपदेष्वपि ॥३९
स्तम्भे सुवर्णवर्णानि वश्ये रक्तानि तानि तु । क्षोभे विद्रुमवर्णानि कृष्णवर्णानि मारणे ॥४०
द्वेषणे धूम्रवर्णानि शशिवर्णानि शान्तिके । आकर्षणेऽरुणवर्णानि स्मरेन्मन्त्राक्षराणि तु ॥४१
यत्किमपि शरीरस्थं ध्यायते देवतादिकम् । तन्मयी भावशुद्धं तत्पिण्डस्थं ध्यानमुच्यते ॥४२
आपूर्य वाममार्गेण शरीरं प्राणवायुना । तेनैव रेचयित्वाऽथ नयेद् ब्रह्मपदं नमः ॥४३
अभ्यासाद् रेचकादीनां विनापीह स्वयं मरुत् । स्थिरीभवेन्मनःस्थैर्याद्द्युतिर्नो का ततः परा ॥४४
निमेषार्धार्धमात्रेण भुवनेषु भ्रमंस्तथा । मनश्चञ्चलसद्भावं युक्त्या भवति निश्चलम् ॥४५

है उसे अनन्त गुणोंका स्वामी जानना चाहिए ॥३३॥ जिस प्रकार औषधिके प्रयोगसे लोह सुवर्णपनेको प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार यह कर्म-मलीमस संसारी आत्मा भी आत्म-ध्यानसे परमात्मपनेको प्राप्त हो जाता है ॥३४॥ ध्यानके अभ्याससे रहित जीवमें शास्वस्थध्यानसे, अर्थात् शास्त्रोक्त ध्यानोंके ज्ञानमात्रसे कोई फल प्राप्त नहीं होता है। जैसे कि जलमें प्रतिबिम्बित फलोंसे किसीकी तृप्ति नहीं होती है ॥३५॥

रूपस्थ, पदस्थ, पिण्डस्थ और रूपातीत यह चार प्रकारका धर्मध्यान संसार-समुद्रका तारनेवाला जानना चाहिए ॥ ६॥ पहिले ध्येयरूप परमात्माके रूपको देखता है, तत्पश्चात् मंत्र या स्तुतिरूप पदोंके द्वारा ध्येयकी स्तुति करता है, तदनन्तर तन्मय पिण्डरूप होता है। पश्चात् क्रमसे वह ध्याता आत्मा रूपातीत परमात्मा हो जाता है ॥३७॥ त्रिजगदीश्वर परमात्माका जैसा रूप अवस्थित है उसका आलम्बन लेकर जो सांसारिक वासनाओंसे निस्पृह होकर ध्यान किया जाता है, वह रूपस्थ ध्यान कहा जाता है ॥३८॥ विद्याकी सिद्धिमें अथवा मंत्रके साधनमें तथा देव और गुरुकी स्तुति करनेमें भी जो पदोंका उच्चारण किया जाता है, वह पदस्थ ध्यान कहा जाता हैं। तथा पवित्र अन्य पदोंके उच्चारण और जाप करनेमें भी पदस्थ ध्यान होता है ॥३९॥॥

किसी व्यक्तिके स्तम्भन करनेमें मंत्रके अक्षरोंको स्वर्णवर्णका, वशीकरणमें रक्तवर्णका, क्षोभित करनेमें विद्रुम (मूँगा) के वर्णका, मारणमें कृष्णवर्णका, द्वेष-कार्यमें धूम्रवर्णका, शान्ति-कर्ममें चन्द्रवर्णका और आकर्षण-कार्यमें अरुण वर्णका स्मरण करना चाहिए ॥४०-४१॥

शरीरमें स्थित जिस किसी भी देवतादिका ध्यान किया जाता हे, वह तन्मयीभावसे शुद्ध पिण्डस्थ ध्यान कहा जाता हैं ॥४२॥ नासिकाके वाममार्ग (स्वर) से प्राणवायुके द्वारा शरीरको पूर्ण करके, तत्पश्चात् उसी ही मार्गसे रेचन करके मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। उस ब्रह्मपदको हमारा नमस्कार है ॥४३॥ रेचक-पूरक आदिके अभ्यासके बिना भी इस शरीरके भीतर वायु स्वयं स्थिर हो जाती है, उस समय मनकी स्थिरतासे जो ज्योति भीतर प्रकट होती है, उससे परे कोई ज्योति नहीं है ॥४४॥ अर्धके अर्ध निमेषमात्रसे तीनों भुवनोंमें परिभ्रमण करनेवाला यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लीयते यत्र कुत्रापि स्वेच्छया चपलं मनः। निराबाधं तथैवास्तु व्यालतुल्यं हि चालितम् ॥४६
मनश्चक्षुरिदं यावदज्ञाने तिमिरावृतम्। तत्त्वं न वीक्ष्यते तावद्विषयेष्वेव मुह्यति ॥४७
जन्म मृत्युर्धनं दौस्थ्यं स्व-स्वकाले प्रवर्तते। तदस्मिन् क्रियते हन्ति चेतश्चिन्ता कथं त्वया ॥४८
यथा तिष्ठति निष्कम्पो दीपो निर्वातवेश्मगः। तथैषोऽपि पुमान्नित्यं क्षीणधीः सिद्धवत्सुखी ॥४९
विकल्पविरहादात्मज्योतिरुन्मेषवद् भवेत्। तरङ्गविगमाद् दूरं स्फुटं (स्थिरो) भवाम्बुधिः ॥५०
विषयेषु न युञ्जीत तेभ्यो नापि निवारयेत्। इन्द्रियाणि मनःशाम्याच्छाम्यन्ति स्वयमेव हि ॥५१
इन्द्रियाणि निजार्थेषु गच्छन्त्येव स्वभावतः। स्वान्ते रागो विरागो वा निवार्यस्तत्र धीमता ॥५२
यातु नामेन्द्रियग्रामः स्वान्तादिष्टो यतस्ततः। न चालनीयः पञ्चास्यसन्निभो वालितोर्बलात् ॥५३
निर्लेपस्यानिरूपस्य सिद्धस्य परमात्मनः। चिदानन्दमयस्यास्य स्यान्नरो रूपवर्जितः ॥५४
स्वर्णादिबिम्बनिष्पत्तौ कृते निर्मदनेऽन्तरा। ज्योतिःपूर्णे च संस्थाने रूपातीतस्य कल्पना ॥५५
यद् दृश्यते न तत्तत्त्वं यत्तत्वं तन्न दृश्यते। देवात्मनोर्द्वयोर्मध्ये भावस्तत्त्वे विधीयताम् ॥५६
अलक्ष्यः पञ्चभिस्तावदिन्द्रियैर्निकटैरपि। स तु लक्षयते तानि क्षेत्रज्ञो लक्ष इत्यसौ ॥५७

चंचलस्वभावी मन युक्तिसे निश्चल हो जाता है ॥४५॥ यह चंचल मन जिस किसी ध्येय वस्तुपर लीन हो जाता है, वह उसी प्रकारसे निराबाध रहना चाहिए। अन्यथा किसी विकल्पसे चलाया गया यह मन सांपके समान भयंकर होता है ॥४६॥ अन्धकारसे आवृत यह मन और नेत्र जबतक अज्ञानमें संलग्न रहते हैं, तबतक आत्मतत्त्व नहीं दिखाई देता है और यह जीव इन्द्रियोंके विषयोंमें ही मोहित रहता है ॥४७॥

जन्म, मरण, धन-सम्पत्ति और निर्धनता ये सब अपने-अपने समय आनेपर होते हैं। दुःख है कि हे मन, तू इस विषयमें चिन्ता कैसे करता है ॥४८॥ जिस प्रकार वायु-रहित गृहके भीतर अवस्थित दीपक निष्कम्प रहता है, उसी प्रकार यह पुरुष भी चंचल बुद्धिको छोड़कर सिद्धके समान सुखी रहता है ॥४९॥ विकल्पोंके अभावसे आत्म-ज्योति प्रकाशवान् होती है। जैसे कि तरंगोंके अभावसे समुद्र स्थिर और प्रशान्त रहता है, उसी प्रकार मनकी विकल्परूप तरंगोंके दूर होनेसे यह भव-सागर भी स्थिर और शान्त रहता है ॥५०॥ इन्द्रियोंको विषयोंमें न लगावे, और न उनसे निवारण ही करे। क्योंकि मनके शान्त हो जानेसे इन्द्रियाँ स्वयं ही शान्त हो जाती है ॥५१॥ इन्द्रियाँ स्वभावसे ही अपने विषयोंमें जाती हैं। किन्तु बुद्धिमान् पुरुषको अपने चित्तमें इन्द्रिय-विषय-सम्बन्धी राग या द्वेष निवारण करना चाहिए ॥५२॥ मनसे प्रेरित हुआ इन्द्रिय-समुदाय यदि इधर-उधर जाता है तो जाने दो। किन्तु पंचानन-सिंहके समान अपने प्रशान्त आत्मारामको बलात् इधरसे उधर नहीं चलाना चाहिए ॥५३॥

कर्म-लेपसे रहित, रूप-रसादिसे रहित, सत्-चिद्-आनन्दमयी इस सिद्ध परमात्माके ध्यानसे यह ध्याता पुरुष भी रूपातीत हो जाता है ॥५४॥ सुवर्ण आदि धातुओंसे मूत्तिके निर्माण करनेमें सांचेरूप कृतिके विनष्ट कर देने पर अन्दर जैसा आकार रहता है, उसी प्रकार ज्ञान ज्योतिसे परिपूर्ण पुरुषाकार शरीर-संस्थानमें रूपातीत सिद्ध-परमात्माकी कल्पना जाननी चाहिए ॥५५॥ जो दिखाई देता है; वह आत्मस्वरूप तत्त्व नहीं हैं और जो आत्मस्वरूप तत्त्व है, वह दिखाई नहीं देता है। किन्तु देह और आत्मा इन दोनोंके मध्य-वर्ती तत्त्वमें अपना भाव लगाना चाहिए ॥५६॥ निकट-वर्ती होते हुए भी इन पाँचों इन्द्रियोंसे वह आत्मा अलक्ष्य है, अर्थात् देखनेमें नहीं आता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगतं बीजमन्यस्य क्षेत्रेऽन्यस्य निधीयते। चित्रं क्षेत्रज्ञ एवात्र प्ररोहति यदा तदा ॥५८
परमाणोरति स्वल्पं स्वमति व्यापकं किल। तौ जितौ येन माहात्म्यान्नमस्तस्मै परात्मने ॥५९
आत्मद्रव्ये समीपस्थे योऽपरद्रव्यसम्मुखम्। भ्रान्त्या विलोकयत्यज्ञः कस्तस्माद् बालिशो नरः ॥६०
परात्मगतिसंस्मृत्या चित्रं संसारसागरः। असंशयं भवत्येव प्राणिनां चुलुकोपमः ॥६१
आत्मानमेव संसारमाहुः कर्मभिर्वेष्टितम्। तदेव कर्मनिर्मुक्तं साक्षान्मोक्षं मनीषिणः ॥६२
अयमात्मैव निष्कर्मा केवलज्ञानभास्करः। लोकालोकं यदा वेत्ति प्रोच्यते सर्वगस्तदा ॥६३
शुभाशुभैः परिक्षीणैः कर्मभिः केवलो यदा। एकाकी जायते शून्यः स एवात्मा प्रकीर्त्तितः ॥६४
लिङ्गत्रयविनिर्मुक्तं सिद्धमेकं निरञ्जनम्। निराश्रयं निराहारमात्मानं चिन्तयेद् बुधः ॥६५
जितेन्द्रियत्वमारोग्यं गात्रलाघवमार्दवे। मनो वचनवन्नृणां प्रसत्तिश्चेतनोदये ॥६६
बुभुक्षामत्सरानङ्गमानमायाभयक्रुधाम्। निद्रालोभादिकानां च नाशः स्यादात्मचिन्तनात् ॥६७
लयस्थो दृश्यतेऽभ्यासी जागरूकोऽपि निश्चलः। प्रसुप्त इव सानन्दो दर्शनात्परमात्मनः ॥६८

है। किन्तु वह आत्मा इन इन्द्रियोंको देखता-जानता है, इसलिए वह क्षेत्रज्ञ लक्ष कहा जाता है ॥५७॥ अन्यका आया हुआ बीज अन्यके क्षेत्र (खेत) में डाला (बोया) जाता है, (यह लोक-परम्परा है)। किन्तु आश्चर्य है कि यहाँ पर यह क्षेत्रज्ञ आत्मा ही जब तब (स्वयं) अंकुरित होता है ॥५८॥

यह आत्म तत्त्व परमाणुसे भी अति स्वल्प या सूक्ष्म है, किन्तु आश्चर्य है कि वह स्वयं अतिव्यापक है। जिसने अपने माहात्म्यसे स्वल्प या व्यापक इन दोनों रूपोंको जीत लिया है, उस परमात्माके लिए मेरा नमस्कार है ॥५९॥ आत्म द्रव्यके समीपमें स्थित होते हुए भी जो पुरुष अन्य द्रव्यके सम्मुख भ्रान्तिसे देखता है, उससे अधिक मूर्ख कौन मनुष्य होगा ॥६०॥ परमात्माकी गतिके संस्मरणसे प्राणियोंका यह संसार-सागर निःसंदेह चुल्लु-भर जलके समान हो जाता है, यह आश्चर्यकी बात है ॥६१॥

कर्मोंसे वेष्टित इस आत्माको ही मनीषी जन संसार कहते हैं और कर्मोंसे निर्मुक्त उसी आत्माको ज्ञानीजन साक्षात् मोक्ष कहते हैं ॥६२॥ कर्म-रहित यह आत्मा ही केवल-ज्ञानरूप सूर्य होकर जब लोक और अलोकको जानता-देखता है, तब वह सर्वग-सर्वव्यापी या सर्वज्ञ कहा जाता है ॥६३॥ शुभ और अशुभ कर्मोंके सर्वथा क्षीण हो जाने पर जब यह केवल अकेला रह जाता है, तब वही आत्मा 'शून्य' कहा जाता है ॥६४॥ स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन तीनों लिंगोंसे विमुक्त एक निरंजन, निराश्रय, निराहार आत्मा ही सिद्ध स्वरूप परमात्मा है, ऐसा ज्ञानीजनोंको चिन्तवन करना चाहिए ॥६५॥

शुद्ध चेतनाका उदय होने पर मनुष्योंके मन और वचनकी प्रसन्नताके समान जितेन्द्रियता, आरोग्य, शरीर-लाघव और मार्दव गुण प्रकट होते हैं ॥६६॥ आत्मस्वरूपके चिन्तन करनेसे खाने-पीने की इच्छा, मत्सरभाव, काम-विकार, मान, माया, भय, क्रोध, निद्रा और लोभ आदि विकारोंका नाश हो जाता है ॥६७॥ ध्यानका अभ्यास करनेवाला आत्मा परमात्माके दर्शनसे लय (समाधि) में स्थित-सरीखा दिखता है, जागरूक होते हुए भी निश्चल-सा और आनन्द-युक्त होते हुए भी गाढ़ निद्रामें सोये हुए सा प्रतीत होता है ॥६८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनोवचनकायानामारम्भो नैव सर्वथा । कर्त्तव्यो निश्चलैर्भव्यमौदासीन्यपरायणैः ॥६९
पुण्यार्थमपि माऽऽरम्भं कुर्यान्मुक्तिपरायणः । पुण्यपापक्षयान्मुक्तिः स्यादन्तःसमतापरः ॥७०
संसारे यानि सौख्यानि तानि सर्वाणि यत्पुरः । न किञ्चिदिव दृश्यन्ते तदौदासीन्यमाश्रयेत् ॥७१
वेदा यज्ञाश्च शास्त्राणि तपस्तीर्थानि संयमः । समतायास्तुलां नैते यान्ति सर्वेऽपि मीलिताः ॥७२
एकवर्णं यथा दुग्धं भवेत्सर्वासु धेनुषु । तथा धर्मस्य वैचित्र्यं तत्त्वमेकं परं पुनः ॥७३
आत्मानं मन्यते नैकश्चार्वाकस्तस्य वागियम् । तनुनीरन्ध्रिते भाण्डे क्षिप्तश्चौरो मृतोऽथ सः ॥७४
निर्जगाम कथं तस्य जीवः प्रविविशुः कथम् । अपरे कृमिरूपाश्च निश्छिद्रे तत्र वस्तुनि ॥७५

उच्यते—

तथैव मुद्रिते भाण्डे क्षिप्तः शङ्खयुतो नरः । शङ्खात्तद्वादितो नादो निःक्रामति कथं बहिः ॥७६
अग्निर्मूर्त्तः कथं ध्मातो लोहगोले विशत्यहो । अमूर्तस्यात्मनस्तस्य विज्ञेयौ तद्-गमागमौ ॥७७

परः प्राह—

दस्योरन्यस्य काये च लवशः शकलीकृते । न दृष्टः क्वचिदप्यात्मा सोऽस्ति चेत् किन्न दृश्यते ॥७८

उदासीनतामें तत्पर एवं निश्चल पुरुषोंको मन वचन और कायका आरम्भ सर्वथा ही नहीं करना चाहिए ॥६९॥ मुक्ति-प्राप्तिमें संलग्न पुरुषोंको पुण्य-उपार्जनके लिए भी किसी प्रकारका आरम्भ नहीं करना चाहिए, क्योंकि पुण्य और पापके क्षयसे ही मुक्ति प्राप्त होती है, अतएव मनुष्यको अन्तरंगमें समताभावकी प्राप्तिके लिए तत्पर होना चाहिए ॥७०॥ जिस समता भावरूप उदासीनताके आगे संसारके जितने सुख है, वे सब 'न कुछ' से अकिंचित्कर दिखाई देते हैं, उस उदासीनताका आश्रय लेना चाहिए ॥७१॥ समस्त वेद, यज्ञ, शास्त्र, तप, तीर्थ और संयम ये सब मिल करके भी समताभावकी तुलनाको नहीं पाते हैं ॥७२॥ जिस प्रकार (विभिन्न वर्णवाली) सभी गायोंमें दूध एक ही वर्णका होता हैं, उसी प्रकार धर्मकी विचित्रता है, परन्तु परम तत्त्व एक ही है ॥७३॥

चार्वाक (नास्तिक) आत्माको नहीं मानता है। उसका यह कथन है कि छिद्र-रहित शरीररूपी भाण्डमें बन्द किया गया और तत्पश्चात् मर गया वह जीव कैसे निकल गया ? इसी प्रकार निश्छिद्र वस्तुमें उसके भीतर अन्य कृमिरूप प्राणी कैसी प्रवेश कर गये ? अर्थात् आकर कैसे उत्पन्न हो जाते हैं ॥७४-७५॥

उत्तर कहते हैं—उसी प्रकारके निश्छिद्र मुद्रित भाण्डमें शंख-युक्त पुरुष डाला गया, पश्चात् उसके द्वारा बजाये गये शंखसे उसका नाद (गम्भीर शब्द) कैसे बाहिर निकल आता है ? (यह बताओ ?) ॥७६॥ तथा अग्नि मूर्त्तिमान् है, वह धोंकी जाकर लोहेके ठोस गोलेमें कैसे प्रविष्ट हो जाती है ? अहो चार्वाक, तुम इसका उत्तर दो ? जिस प्रकार मूर्त्तिमान् अग्नि लोहेके गोलेमें प्रवेश कर जाती है और मुद्रित भाण्डमेंसे शंखकी ध्वनि बाहिर निकल आती है, इनके समान ही शरीर-पिण्डमें जीवका आगमन और उससे बहिर्गमन जानना चाहिए ॥७७॥

चार्वाक कहता है—किसी अन्य चोरके लव-प्रमाण खंड-खंडकर देनेपर भी आत्मा कहींपर भी दिखाई नहीं देता है। यदि वहाँ आत्मा है, तो फिर क्यों दिखाई नहीं देता है ॥७८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्रोत्तरम्—

खण्डितेऽप्यरणेः काष्ठे मूर्तो वह्निर्वसन्नपि । न दृष्टो दृश्यते किं वा जीवो मूर्त्तिविवर्जितः ॥७९

पुनरप्यपरो ब्रूते—

जीवन्नन्यतरश्चौरस्तोलितो मारितोऽथ सः । श्वासरोधेन किं तस्य तोलनेऽभून्न चोन्नता ॥८०

अत्रोत्तरम्—

दृतेः पूर्णस्य वातेन रिक्तस्यापि च तोलने । तुलासमात्तथाङ्गस्य सात्मनोऽनात्मनोऽपि च ॥८१

पुनः परो वदति—

जलपिष्टादियोगेन मद्यवन्मदशक्तिवत् । अचेतनेभ्यश्चैतन्यं भूतेभ्यस्तद्वदेव हि ॥८२

उत्तरम्—

शक्तिर्नो विद्यते येषां भिन्न-भिन्नस्थितिस्पृशाम् । समुदायेऽपि नो तेषां शक्तिर्भीरुषु शौर्यवत् ॥८३
प्रत्यक्षैकप्रमाणस्य नास्ति कस्य न गोचरः । आत्मा ज्ञेयोऽनुमानाद्यैर्वायुः कम्प्रैः पटैरिव ॥८४
अङ्कुरः सुन्दरे बीजे सूर्यकान्तौ च पावकः । सलिलं चन्द्रकान्तौ च युक्त्याऽऽत्माङ्गेऽपि साध्यते ॥८५

उत्तर—काठमें मूर्त्त अग्निके निवास करते हुए भी अरणिकाठके खण्ड-खण्ड कर देनेपर भी वह नहीं दिखाई देती है। फिर जीव तो मूर्त्तिसे रहित अमूर्त्त है, यह कैसे दिखाई दे सकता है ॥७९॥

पुनः दूसरा कहता है—कोई जीता हुआ चोर तोला जाय, इसके पश्चात् मारा गया उसका शरीर तोला जाय, तो श्वासके निरोधसे उसके तोलनेपर तुलाके उन्नतपना क्यों नहीं हुआ ॥८०॥

इसका उत्तर—वायुसे परिपूर्ण दृति (चर्म-मशक) के तोलनेपर तथा वायुसे रिक्त कर देनेपर तुला जैसे समान रहती है, उसी प्रकार आत्मासे सहित और आत्मासे रहित शरीरके तोलनेपर भी तुलाको समान जानना चाहिए ॥८१॥

पुनः चार्वाक कहता है—जिस प्रकार जल-पिष्टी आदिके संयोगसे मदशक्तिवाली मदिरा उत्पन्न होती हे, उसी प्रकार अचेतन पृथ्वी आदि भूतोंसे चैतन्य भी उत्पन्न हो जाता हैं। (अतः आत्मा या जीव नामक कोई स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है) ॥८२॥

उत्तर—भिन्न-भिन्न स्थितिका स्पर्श करनेवाले जिन पदार्थोंके स्वयं शक्ति नहीं होती है, उनके समुदायमें भी वह शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती है। जैसे कि भीरु पुरुषोंमें शौर्य सम्भव नहीं हैं ॥८३॥

यद्यपि एक प्रत्यक्ष प्रमाणके माननेवाले किसी भी पुरुषके आत्मा दृष्टिगोचर नहीं होता है, तथापि अनुमान आदि प्रमाणोंके द्वारा आत्मा ज्ञेय है, अर्थात् उसका अस्तित्व जाना जाता है। जैसे कि वायु आँखोंसे नहीं दिखती है, फिर भी वह कम्पित्त होनेवाले वस्त्रोंसे जानी जाती है ॥८४॥ जिस प्रकार सुन्दर बीजमें अंकुर, सूर्यकान्तमणिमें अग्नि और चन्द्रकान्तमणिमें जलका अस्तित्व युक्तिसे सिद्ध है, उसी प्रकार युक्तिसे शरीरमें आत्माका अस्तित्व भी सिद्ध होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यक्षेण प्रमाणेन लक्ष्यते न जनैर्यदि । तन्नास्तिक तवाङ्गे किं नास्ति बुद्धिः कुरूत्तरम् ॥८६

अप्रत्यक्षा तवाम्बा चेद् दूरदेशान्तरं गता ।
जीवत्यपि मृता हन्त नास्ति नास्तिक सा कथम् ॥८७

तिलकाष्ठपयःपुष्पेष्वासवः क्रमशो यथा । तैलाग्निघृतसौरभ्याण्येवमात्मापि विग्रहे ॥८८
अस्त्येव नियतो जीवो लक्षणैर्ज्ञायते पुनः । भूतावेशवशान्नत्यं जातिस्मरागतस्तथा ॥८९
पयःपानं शिशौ भीतिः सङ्कोचिन्यां च मैथुनम् । अशोकेऽर्थग्रहो विल्वे जीवसंज्ञा चतुष्टयम् ॥९०
अन्तराये त्रुटे (?) ज्ञानं कियत्क्वापि प्रवर्तते । मतिश्रुतिप्रभृतिकं निर्मलं केवलावधिः ॥९१
इन्द्रियापेक्षया प्रायः स्तोकमस्तोकमेव च । चराचरेषु जीवेषु चैतन्यमपि निश्चितम् ॥९२
त्रिकालविषयव्यक्तं चिन्तासन्तानधारकम् । नानाविकल्पसङ्कल्परूपं चित्तं च वर्तते ॥९३
नास्तिकस्यापि नास्त्येव प्रसरः प्रश्नकर्मणि । नास्तिकत्वाभिमानस्तु केवलं बलवत्तरः ॥९४

ध्यातुर्न प्रभवन्ति दुःखविषमव्याध्यादयः साधयः,
सिद्धिः पाणितलस्थितेव पुरतः श्रेयान्सि सर्वाण्यपि ।

है ॥८५॥ हे नास्तिक, यदि तेरे शरीरमें बुद्धिका अस्तित्व प्रत्यक्ष प्रमाणसे मनुष्योंके द्वारा नहीं जाना जाता है, तो क्या तेरे शरीरमें बुद्धि नहीं है ? इसका उत्तर दो ॥८६॥ यदि दूरवर्ती देशान्तर को गई हुई तेरी माता लोगोंको प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देती है तो क्या वह जीते हुए भी मृत मान ली जावे ? हे नास्तिक, दुःख है कि यदि वह नहीं है, तो वह है, यह कैसे सिद्ध करोगे ॥८७॥ जिस प्रकार तिलमें तेल, काष्ठमें अग्नि, दूधमें घी और फूलोंमें सौरभ क्रमशः पाये जाते हैं, उसी प्रकार शरीरमें आत्मा है, प्राण हैं, यह बात भी सिद्ध है ॥८८॥ अतएव जीव नियत रूपसे है ही, और वह ज्ञान-दर्शनरूप लक्षणोंसे जाना जाता है। यथा भूतावेश देखे जानेसे, भवका जाति-स्मरण होनेसे, जन्मे हुए शिशुमें दुग्ध-पानरूप आहार संज्ञा, लजवन्तीमें भय संज्ञा, अशोक वृक्षमें मैथुन संज्ञा और विल्व वृक्षमें धनके ग्रहणरूप परिग्रहसंज्ञा पाई जाती है, सो ये चारों संज्ञाएँ ही उनमें जीवके अस्तित्वको सिद्ध करती हैं ॥८९-९०॥

ज्ञानके अन्तरायरूप ज्ञानावरण कर्मके टूटने पर कितना ही ज्ञान किसी भी जीवमें प्रवृत्त होता है। वह ज्ञान मति, श्रुतको आदि लेकर निर्मल केवलज्ञानकी सीमा तक प्रकट होता है ॥९१॥ इन्द्रियोंकी अपेक्षा वह ज्ञान प्रायः अल्प और अल्पतर ही होता है। इस प्रकार चर-त्रस जीवोंमें और अचर-स्थावर जीवोंमें चैतन्य भी निश्चित रूपसे पाया जाता हैं ॥९२॥ वह चित्त या चैतन्य त्रिकालवर्त्ती विषयोंको ग्रहण करनेसे व्यक्त है, नाना चिन्ताओंकी सन्तानका धारक है और वह चित्त नाना प्रकारके विकल्पसे प्रवर्तता है ॥९३॥

(उक्त प्रकारसे आत्माका अस्तित्व सिद्ध हो जानेपर) नास्तिकके भी और आगे प्रश्न करनेमें प्रसार संभव नहीं है। फिर भी 'आत्मा नहीं है' इस प्रकारसे नास्तिकताका अभिमान तो केवल बलवत्तर दुराग्रहमात्र है ॥९४॥

आत्माका ध्यान करनेवाले पुरुषको दुःख और आधि (मानसिक व्यथा) सहित सभी विषम व्याधियाँ (शारीरिक रोग) पीड़ा देनेको समर्थ नहीं है, अभीष्टकी सिद्धि उसके हस्ततलपर स्थित जैसी ही है, सर्वप्रकारके श्रेयस् (कल्याण) उसके आगे उपस्थित होते हैं, और खोटे कर्मोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रुट्यन्ते च मृणालनालमिव वा मर्माणि दुष्कर्मणां
तेन ध्यानसमं न किञ्चन जनैः कर्त्तव्यमस्त्यद्भुतम् ॥९५

इति श्रीकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे जन्मचर्यायां
ध्यानस्वरूपनिरूपणो नाम एकादशोल्लासः ।

मर्म कमल-नालके समान क्षणभरमें टूट जाते हैं, इस कारण ध्यानके समान और कोई भी वस्तु आत्माकी कल्याण करनेवाली नहीं है। अतएव विवेकी जनोंको यह अद्भुत (आश्चर्य-कारक) ध्यान अवश्य ही करना चाहिए ॥९५॥

इस प्रकार श्रीकुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें जन्मचर्याके
अन्तर्गत ध्यानके स्वरूपका वर्णन करनेवाला
ग्यारहवाँ उल्लास समाप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ द्वादशोल्लासः

दुःस्वप्नैः प्रकृतित्यागैर्दुर्निमित्तैश्च दुर्ग्रहैः । हंसवारान्यथान्यैश्च ज्ञेयो मृत्युः समीपगः ॥१
प्रायश्चित्तं व्रतोच्चारं संन्यासमनुमोदनम् । गुरुदेवस्मृति मृत्यौ स्पृहयन्ति विवेकिनः ॥२
अनार्त्तः शान्तिमान्मृत्योर्न तिर्यग् नापि नारकः । धर्मध्यानी सुरो मर्त्योऽनशनी त्वमरेश्वरः ॥३
तप्तस्य तपसः सम्यक्-पठितस्य श्रुतस्य च । पालितस्य व्रतस्यापि फलं मृत्युः समाधितः ॥४
अजडेनापि मर्त्तव्यो जडेनापि हि सर्वथा । अवश्यं तेन मर्त्तव्यं किं विभ्यति विवेकिनः ॥५
दित्सा स्वल्पधनस्याप्यवष्टम्भः कष्टितस्य च । गतायुषोऽपि धीरत्वं स्वभावोऽयं महात्मनः ॥६
नास्ति मृत्युसमं दुःखं संसारेऽत्र शरीरिणाम् । ततः किमपि तत्कार्यं येनैतन्न भवेत्पुनः ॥७
शुभं सर्वं समागच्छन् श्लाघनीयं पुनः पुनः । क्रियासमभिहारेण मरणं तु त्रपाकरम् ॥८
सर्ववस्तुप्रभावज्ञैः सम्पन्नाखिलवस्तुभिः । आयुः-प्रवर्धनोपायो जिनैर्नाज्ञापितौऽप्यसौ ॥९
सर्वेषां सर्वजाः सर्वे नृणां तिष्ठन्तु दूरतः । एकैकोऽपि स्थिरतः स्याल्लोकः पूर्येत तैरपि ॥१०

खोटे स्वप्नोंसे, प्रकृतिके स्वाभाविकरूपके परित्यागसे, दुर्निमित्तोंसे, खोटे ग्रहोंकी चाल या दशासे और हंस-वारसे तथा अनेक प्रकारकी अन्य व्यथाओंसे मृत्युको समीपमें आई हुई जानना चाहिए ॥१॥ विवेकी पुरुष मरणके समय प्रायश्चित्त लेनेकी, व्रतोंके ग्रहण करनेकी, संन्यासधारण करनेकी, सत्कार्योंको अनुमोदनाकी, देव और गुरुके स्मरणकी इच्छा करते हैं ॥२॥ जो पुरुष मरणके समय आर्त्तध्यानसे रहित रहता है और रौद्रध्यानको छोड़कर शान्तिको धारण करता है, वह मरकर न तिर्यञ्च होता है और न नारकी होता है। जो मरणकालमें धर्मध्यानसे युक्त होता हैं, वह मरणकर देव या उत्तम मनुष्य होता है। तथा जो उस समय अशन-पानका त्यागकर मरता है वह देवताओंका स्वामी इन्द्र होता है ॥३॥ जीवन-भर तपे हुए तपका, सम्यक् प्रकारसे पढ़े हुए श्रुतका और पालन किये हुए व्रतका भी फल समाधिसे मरण होना ही है ॥४॥ जो तत्त्वका जानकार है, उसे भी अवश्य मरना पड़ता है और जो सर्वथा मूर्ख है उसे भी अवश्य मरना पड़ता है। फिर विवेकी जन मरणसे क्यों डरते हैं ॥५॥

अल्पधन होते हुए भी दान करनेकी इच्छा होना, कष्ट आनेपर भी सहन करना और आयुके व्यतीत होनेके समय धीरता रखना यह महापुरुषका स्वभाव होता है ॥६॥ इस संसारमें मृत्युके समान प्राणियोंको कोई दुःख नहीं है, इसलिए ऐसा कुछ कार्य करना चाहिए, जिससे कि पुनः यह मरण न होवे ॥७॥ सर्व शुभ कार्य पुनः-पुनः करना प्रशंसनीय होता है। किन्तु क्रियाओं-के समभिहारसे अर्थात् मरण समय पुनः-पुनः आर्तध्यान करके मरना तो लज्जाकर है ॥८॥ समस्त वस्तुओंके प्रभावको जाननेवाले तथा जिन्हें संसारकी सभी श्रेष्ठ वस्तुएँ प्राप्त है, ऐसे जिनेन्द्र देवोंने भी आयुके बढ़ानेका कोई वह उपाय नहीं बताया है, जिससे कि वह अपनी आयुको बढ़ा सके ॥९॥ सभी मनुष्योंके सर्व जन्मोंमें उत्पन्न हुए शरीर तो दूर रहें, किन्तु एक जीवका एक-एक भी शरीर यदि स्थिर रहे, तो उनके द्वारा भी यह सारा लोक पूरित हो जायगा ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आबाल्यात्सुकृतैः सुजन्म सफलं कृत्वा कृतार्थं चिरं
धर्मध्यानविधानलीनमनसो मोहव्यपोहोद्यताः ।
पर्यन्तप्रतिभाविशेषवशतो ज्ञात्वा निजस्यायुषः
कायत्यागमुपासते सुकृतिनः पूर्वोक्तयाशिक्षया ॥११

स श्रेष्ठोऽपि तथा गुणी स सुभटोऽत्यन्तं प्रशंसास्पदं
प्राज्ञः सोऽपि कलानिधिः स च मुनिः स क्षमाबलो योगवित् ।
स ज्ञानी स गुणिव्रजस्य तिलको जानाति यः स्वां मृतिं
निर्मोहः समुपार्जयत्यथ पदं लोकोत्तरं शाश्वतम् ॥१२

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामिविरचिते श्रावकाचारे जन्मचर्यायां
परमपद-प्रापणो नाम द्वादशोल्लासः समाप्तः ।

●

बाल-कालसे लेकर सुकृत कार्योंके द्वारा अपना सुजन्म सफल करके और चिरकाल तक कृतार्थ होकर धर्मध्यान करनेमें संलग्न चित्तवाले तथा मोहके विनाश करनेमें उद्यत पुण्यशाली पुरुष अपने जीवनके अन्तमें प्रतिभाविशेषके निमित्तसे अपनी आयुको अल्प जानकर पूर्वोक्त शिक्षाके द्वारा शरीरके त्यागकी उपासना करते हैं ॥११॥ वही पुरुष श्रेष्ठ है, तथा वही पुरुष गुणी है, वही सुभट है, वही अत्यन्त प्रशंसाके योग्य है, वही प्रकृष्ट बुद्धिमान् है, वही कलाओंका निधान है, वही मुनि है, वही क्षमावान् है, वही योग-वेत्ता है, वही ज्ञानी है और वही गुणीजनोंके समूहका तिलक है, जो अपनी मृत्युको जानकर तत्पश्चात् संसार, देह और कुटुम्ब-परिग्रहादिसे मोह-रहित होकर लोकोत्तर शाश्वत शिवपदको उपार्जित करता है ॥१२॥

इस प्रकार श्रीकुन्दकुन्दस्वामि-विरचित श्रावकाचारमें जन्मचर्याके अन्तर्गत
परमपदको प्राप्त करानेवाला बारहवाँ उल्लास समाप्त हुआ ।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ-संकेत-सूची

भाग	सङ्केत		पूर्ण नाम
१	अमित०	—	अमितगति-श्रावकाचार
३	उमा० उमास्वा०	—	उमास्वामि-श्रावकाचार
४	कुन्द०	—	कुन्दकुन्द श्रावकाचार
२	गुणभू०	—	गुणभूषण श्रावकाचार
३	चारित्त०	—	चारित्रप्राभृत
१	चारित्रसा०	—	चारित्रसार-गत श्रावकाचार
३	तत्त्वार्थ०	—	तत्त्वार्थसूत्र-गत सप्तम अध्याय
३	देशव्रत०	—	देशव्रतोद्योतन श्रावकाचार
२	धर्मसं०	—	धर्मसंग्रह श्रावकाचार
२	धर्मोप०	—	धर्मोपदेश श्रावकाचार
३	पद्मच०	—	पद्मचरित-गत श्रावकाचार
३	पद्म० पं० पद्मनं० पं०	—	पद्मनन्दि पंचविंशति-गत श्रावकाचार
३	पुरु० शा०	—	पुरुषार्थानुशासन
१	पुरुषा०	—	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
३	पूज्य० पूज्यपा०	—	पूज्यपाद श्रावकाचार
३	प्रा० भाव० प्रा० भावसं०	—	प्राकृतभावसंग्रह-गत श्रावकाचार
२	प्रश्नो०	—	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
३	भव्य० भव्यध०	—	भव्यधर्मोपदेश उपासकाध्ययन
१	महापु०	—	महापुराणान्तर्गत श्रावकाचार
१	यशस्ति०	—	यशस्तिलकचम्पू-गत उपासकाध्ययन
१	रत्नक०	—	रत्नकरण्ड श्रावकाचार
३	रत्नमा०	—	रत्नमाला
३	रयण०	—	रयणसार-गत श्रावकाचार
३	लाटी०	—	लाटीसंहिता
३	वराङ्ग०	—	वराङ्गचरित-गत श्रावकाचार
१	वसुनं०	—	वसुनन्दि श्रावकाचार
३	व्रतोद्यो०	—	व्रतोद्योतन श्रावकाचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग	सङ्केत		पूर्ण नाम
३	श्रा० सा०	—	श्रावकाचार सारोद्धार
२	सागार०	—	सागारधर्मामृत
१	सावय०	—	सावयधम्मदोहा
३	सं० भाव० सं० भावसं०	—	संस्कृतभावसंग्रह-गत श्रावकाचार
१	स्वामिका०	—	स्वामिकर्त्तिकेयानुप्रेक्षा ,,
३	हरिवं०	—	हरिवंशपुराण-गत श्रावकाचार

कुन्दकुन्द श्रावकाचारकी

टिप्पणी में उपयुक्त-ग्रन्थनाम-संकेत-सूची

अग्नि०	—अग्नि पुराण (प्रसिद्ध हिन्दू पुराण)
अष्टाङ्ग०	—अष्टाङ्ग हृदय, (प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ)
करल०	—करलक्खण, (भारतीय ज्ञानपीठ काशी)
ज्ञान०	—ज्ञानदीपिका, (जैन सिद्धान्त भवन, आरा)
नीतिवा०	—नीतिवाक्यामृत, (माणिकचन्द ग्रन्थमाला बम्बई)
भद्रबा०	—भद्रबाहुसंहिता, (भारतीय ज्ञानपीठ काशी)
वर्षप्र०	—वर्षप्रबोध, (मेघविजयगणि-रचित्त)
वास्तुसा०	—वास्तुसार प्रकरण, (जैन विविध ग्रन्थमाला जयपुर)
विश्वक०	—विश्वकर्मप्रकाश, (राधेश्याम यंत्रालय काशी)
सामुद्रि०	—सामुद्रिकशास्त्र, (जैन सिद्धान्त भवन, आरा)
सुश्रुत०	—सुश्रुतसंहिता (प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ)
हस्तसं०	—हस्तसञ्जीवनम्, (भारतभूषण प्रेस, काशी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वार्थसूत्राणामनुक्रमणिका

अणुव्रतोऽगारी	तत्त्वार्थ० ७.२०
अदत्तादानं स्तेयम्	,, ७.१५
अनशनावमौदर्य	तत्त्वा० ९.१९ लाटी० ६.६४
अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो	तत्त्वा० ७.३८
अप्रत्यक्षवेक्षिताप्रमार्जितो	,, ७.३४ लाटी० ५.५८
असदभिधानमन्टतम्	तत्त्वार्थ० ७.१४
आगार्यनगारश्च	,, ७.१९
आनयनप्रेष्यप्रयोग	,, ७.३१ लाटी० ५.५२
कन्दर्पकौत्कुच्य	तत्त्वा० ७.३२ लाटी० ५.५३
क्रोधलोभभीरुत्व	तत्त्वा० ७.५ लाटी० ५.४२
ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्	तत्त्वा० ७.३० लाटी० ५.५१
जगत्कायस्वभावो वा	तत्त्वा० ७.१२ लाटी० ५.५६
जीवितमरणाशंसा	तत्त्वा० ७.३७ लाटी० ५.६२
क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्ण	तत्त्वा० ७.२९ लाटी० ५.५०
तत्स्थैर्यार्थं भावनाः	तत्त्वा० ७.३ लाटी० ४.३९
दिग्देशानर्थदण्डविरति	तत्त्वा० ७.२१
दुःखमेव वा	,, ७.१०
देशसर्वतोऽणुमहती	,, ७.२
निःशल्यो व्रती	,, ७.१८
परविवाहकरणेत्वरिका	,, ७.२८ लाटी० ५.४८
प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं	तत्त्वा० ७.१३
प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्य	तत्त्वा० ९.२० लाटी० ६.६५
बन्धवधच्छेदातिभारा	तत्त्वा० ७.२५ लाटी० ४.४१
मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय	तत्त्वा० ७.८ लाटी० ५.४९
मारणान्तिकीं सल्लेखनां	तत्त्वा० ७.२२
मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यान	,, ७.२६ लाटी० ५.४३
मूर्च्छा परिग्रहः	तत्त्वा० ७.१७
मैत्रीप्रमोदकारुण्य	,, ७ ११
मैथुनमब्रह्म	,, ७.१६
योगदुःप्रणिधानानादर	,, ७.३३ लाटी० ५.५७
वाङ्मनोगुप्तीर्यादान	तत्त्वा० ७.४ लाटी० ४.४०
विधिद्रव्यदातृपात्र	तत्त्वा० ७.३९
व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च	,, ७.२४
शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा	,, ७.२३
शून्यागार-विमोचितावास	,, ७.६ लाटी० ५.४४
सचित्तनिक्षेपापिधान	तत्त्वा० ७.३६ लाटी० ५.६१
सचित्तसम्बन्धसम्मिश्र	तत्त्वा० ७.३५ लाटी० ५.५९
सामायिकप्रोषधोपवास	तत्त्वा० ७.२१ लाटी० ५.५४
स्त्रीरागकथाश्रवण	तत्त्वा० ७.७ लाटी० ५.४६
स्तेनप्रयोगतदाहृतादान	तत्त्वा० ७.२७ लाटी० ५.४५
हिंसानृतस्तेयाब्रह्म	तत्त्वा० ७.१
हिंसादिष्विहामुत्रापाया	तत्त्वा० ७.९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथानुक्रमणिका

अ

अइणिट्ठुरफरुसाइं वसुनं० १३५
अइतिव्वदाहसंताविओ ,, १६१
अइबालबुड्ढरोगा ,, ३३७
अइबुड्ढबालमूयंध ,, २३५
अइलंघिओ विचिट्ठो ,, ७१
अइ वा पुव्वमि भवे ,, १४६
अइसरसमइसुगंधं ,, २५२
अकयणियाणं सम्मो भावसं० ५६
अक्खयवराडओ वा वसुनं० ३८४
अक्खेहि णरो रहिओ ,, ६६
अगणित्ता गुरुवयणं ,, १६४
अग्गिविसचोरसप्पा ,, ६५
अच्छउ भोयणु ताहं सावय० ३०
अच्छरसमज्झगया वसुनं० २६६
अज्जविसप्पिणि भरहे धम्मज्झाणं रयण० ५१
अज्जविसप्पिणि भरहे पंचमयाले ,, ५०
अज्जविसप्पिणि भरहे पउरा ,, ४९
अज्झयणमेव झाणं रयण० ८३
अज्झावयगुणजुत्तो भावसं० २९
अट्टज्झाणपउत्तो ,, ११
अट्टरउद्दं झाणं ,, ८
अट्ठइ पालइ मूलगुण सावय० २६
अट्ठ कसाए च तओ वसुनं० ५२१
अट्ठदलकमलमज्झे ,, ४७०
अट्ठदसहत्थमेत्तं ,, ३९५
अट्ठविहअच्चणाए भावसं० १०६
अट्ठविहच्चण काउं ,, १२०
अट्ठविहमंगलाणि य वसुनं० ४४२
अणउदयादो छण्हं उक्तं श्रा० सा० १, १५५
अणउवइट्ठइ मण्णियइ सावय० २४
अणयाराणं वेज्जावच्चं रयण० २४
अणिमा महिमा लघिमा वसुनं० ५१३
भावसं० ६१
अणुकूलं परियणयं भावसं० ६४
अणुपालिऊण एवं वसुनं० ४९४
अणुमइ देइ ण पुच्छियउ सावय० १६
अणुलोहं वेदंतो वसुनं० ५२३
अणुवयगुणसिक्खा सावय० ५९
अण्णाएं आवंति जिय ,, १४५
अण्णाए' दालिद्दियहं ,, १४९
अण्णाए' दालिद्दियहं रे जिय ,, १४८
अण्णाए' बलियहं वि खउ ,, १४७
अण्णाणि एवमाईणि वसुनं० १९०
अण्णाणिणो वि जम्हा ,, २३९
अण्णाणी विसय विरत्तादो रयण० ६३
अण्णु जि सुललिउ वसुनं० ३५
अण्णे उ सुदेवत्तं ,, २६९
अण्णे कलंबवालुय ,, १६९
अण्णो उ पावरोएण ,, १८७
अण्णोण्णाणुपवेसो ,, ४१
अण्णोण्णं पविसंता ,, ३८
अण्णोवि परस्स धणं ,, १०८
अतिहिस्स संविभागो ,, २१९
अत्तागमतच्चाइयहं सावय० १९
अत्तागमतच्चाणं वसुनं० ६
अत्तादोसविमुक्को ,, ७
अत्थपरिणाममासिय ,, २७
अनउदयादो छण्हं स्वामिका० ८
अप्पाणं पि ण पिच्छइ रयण० ७७
अभयदाणु भयभीरुयहिं सावय० १५६
अभयप्पयाणं पढमं भावसं० १४०
अमयक्खरे णिवेसिउ ,, ८१
अयदंड पास विक्कय वसुनं० २१६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरहंत-भत्तियाइसु	,,	४०
अरहंतु वि दोसहिं रहिउ	सावय०	५
अरुहाईणं पडिमं	वसुनं०	४०८
अलिउ कसायहिं मा	सावय०	६१
अलिचुंबिएहिं पुज्जइ	भावसं०	१२४
अलियं करेइ सवहं	वसुनं०	६७
अलियं ण जंपणीयं	,,	२१०
अवरु वि जं जहिं	सावय०	११९
अवसाणे पंच घडाविऊणं	वसुनं०	३५५
अविरयसम्माइट्ठी	भावसं०	१४९
असणं पाणं खाइमं	वसुनं०	३२४
अ सि आ उ सा सुवण्णा	वसुनं०	४६६
असियसय किरियाणं	धर्मसं० (उक्त)	१.३६
असुइमयं दुग्गंधं	स्वामिका०	३६
असुहकम्मस्स णासो	भावस०	१९
असुरा वि कूर पावा	वसुनं०	१७०
असुह सुहस्स विवाओ	भावसं०	२०
असुहस्स कारणेहिं य	,,	४८
असुहादो णिरयाऊ	रयण०	५२
अहउड्ढतिरियलोए	भावसं०	२१
अह एउणवण्णा	भावसं०	११७
अह कावि पावबहुला	वसुनं०	११९
अह ढिंकुलिया झाणं	भावसं०	३७
अह ण भणइ सो भिक्ख	वसुनं०	३०७
अह तेवंडं तत्तं खिवेउ	,,	१३९
अह भुंजइ परमहिलं	,,	११८
अहवा आगम-णोआगमाइ	,,	४७७
अहवा किं कुणइ पुरा	,,	२००
अहवा खिप्पउ सेहा	भावसं०	८६
अहवा जइ असमत्थो	,,	११३
अहवा जिणागम-पुत्थएसु	वसुनं०	३९२
अहवा णाहि च विअप्पिऊण	,,	४६०
अहवा णियं विढत्तं	भावसं०	२३२
अहवा णिलाड देसै	वसुनं०	४६९
अहवा णोआगमाइ भेएण	,,	४५१
अहवा तरुणी महिला	भावसं०	२३५
अहवा वत्थुसहावे	भावसं०	२४
अह वेदगसद्दिट्ठी	वसुनं०	५१६
अहिसेयफलेण णरो	,,	४९१

आ

आउकुलजोणि मग्गण	वसुनं०	१५
आउसंति सग्गहु चइवि	सावय०	७३
आगमसत्थाइं लिहाविऊणं	वसुनं०	२३७
आगरसुद्धि च करेज्ज	,,	४४५
आगासमेव खित्तं	,,	३१
आदहिदं कादव्वं	लाटीसं० (उक्त)	२५
आधारधरा पढमा	लाटी० (उक्त)	४,२९
आमिससरिसउ भासियउ	{ सावय० / धर्मोप०(उक्त)	२८ / ४.१७
आयाराई सत्थं	भावसं०	१७५
आयासफलिहसंणिह	वसुनं०	४७२
आयंबिल निव्वियडी	{ ,,	३७ / २९२
आरत्तिए दिण्णउ	सावय०	१९६
आरोविऊण सीसे	वसुनं०	४१७
आरंभे धण-धण्णे	रयण०	९४
आलिहिउ सिद्धचक्कं	भावसं०	९४
आवाहिऊण देवे	,,	९०
आसणठाणं किच्चा	,,	७९
आसाढ कत्तिए फग्गुणे	{ वसुनं० / ,,	३५३ / ५०७
आसी ससमय परसमय	,, प्र०	५४०
आहरण गिहम्मि	वसुनं०	५०२
आहरण वासियाईहिं	,,	४०४
आहारमओ देहो	भावसं०	१७०
आहारसणे देहो	,,	१७२
आहारोसहसत्थामय	वसुनं०	२३३

इ

इच्चाइ गुणा बहवो	वसुनं०	५०
इच्चाइ बहुविणोएहि	,,	५०९
इच्चेवमाइ काइयविणओ	,,	३३०
इच्चेवमाइबहवो	,,	६९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्चेवमाइ बहुयं दुक्खं ,, १८२
इच्छुरससप्पिदहि ,, ४५४
इट्ठविओए अट्टं भावसं० १०
इय अट्ठभेय अच्चण ,, १२९
इय अवराहं बहुसो वसुनं० ७७
इय एरिसमाहारं ,, ३१७
इय चिंतंतो पसरइ भावसं० ६९
इय जाणिऊण णूणं ,, २३६
इय णाऊण विसेसं ,, १३८
इय पच्चक्खो एसो वसुनं० ३३१
इय बहुकालं सग्गे भावसं० ७१
इय संखेवं कहियं भावसं० ९८
इलयाइ थावराणं ,, ३
इह णियसुवित्तबीयं रयण० १६
इह-परलोयणिरीहो स्वामिका० ६४
इह लोए पुण मंता भावसं० १०८
इंदो अह दायारो वसुनं० ४०२

उ

उक्कस्सं च जहण्णं वसुनं० ५२८
उक्किट्ठइं विहिं तिहिं सावय० ७४
उक्किट्ठभोयभूमीसु वसुनं० २५८
उग्गतवतयियगत्तो भावसं० ३०
उग्गूसिहा देसियसग्ग वसुनं० ४२९
उग्गो तिव्वो दुट्ठो रयण० ४०
उच्चारिऊण णामं वसुनं ३८२
उच्चारिऊण मंते भावसं० ९२
उच्चारं पस्सवणं वसुनं० ७२
उज्जवणविही ण तरइ ,, ३५९
उज्जाणम्मि रमंता ,, १२६
उट्ठाविऊण देहं भावसं० ८५
उड्डम्मि उड्ढलोयं वसुनं० ४६१
उत्तमकुले महंतो भावसं० ७२
उत्तमगुणगहणरदो स्वामिका० १४
उत्तमछित्ते बीयं भावसं० १५२
उत्तमपत्तविसेसे स्वामिका० ६५
उत्तमपत्तं णिंदिय भावसं० २०५
उत्तममज्झ जहण्णं वसुनं० २८०
उत्तमरयणं खु जहा भावसं० १५५
उत्तमु पत्तु मुणिंदु सावय० ७९
उत्तविहाणेण तहा वसुनं० २८८
उद्दिट्ठपिंडविरओ ,, ३१३
उद्दसमेत्तमेयं कीरइ ,, ३७९
उप्पज्जंति मणुस्सा भावसं० १८६
उप्पण्णपढमसमयम्मि वसुनं० १८४
उप्पण्णो कणयमए भावसं० ६३
उभय चउद्दसि अट्ठमिहिं सावय० १३
उवारहणगुणजुत्तो वसुनं० ५५
उवयारिओ वि विणओ ,, ३२५
उववज्जइ दिवलोए भावसं० १३४
उववायाओ णिवडइ वसुनं० १३७
उववासहो एक्कहो सावय० १११
उववासवाहिपरिसम वसुनं० २३६
उववासा कायव्वा ,, ३७१
उववासं कुव्वंतो स्वामिका० ७७
उववासं पुण पोसह वसुनं० ४०३
उवसमतवभावजुदो रयण० ६०
उस्सियसियायवत्तो वसुनं० ५०५
उंबर-वड-पिप्पल ,, ५८
ऊसरखित्ते बीयं भावसं० १८३

ए

एए जंतुद्धारे भावसं० ११९
एए णरा पसिद्धा ,, १९१
एक्कावणकोडीओ धर्मोप० (उक्त) २.२
एकु खणं ण विचिंतइ रयण० ४६
एक्कु जि इंदिउ मोक्कलउ सावय० १२८
एक्कु वि तारइ भवजलहिं ,, ८५
एक्केक्कं ठिदिखंडं वसुनं० ५१९
एक्कंपि णिरारंभो स्वामिका० ७६
एक्कंपि वयं विमलं ,, ६९
ए ठाणाइं एयारसइं सावय० १८
एण विहाणेण फुडं भावसं० १३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एत्तियपमाणकालं वसुनं० १७६
एदे महाणुभावा ,, १३२
ए बारह वय जो करइ सावय० ७२
एमेव होइ विइयो वसुनं० ३११
एयणिगोयसरीरे { लाटी० (उक्तं) १. ७ / ,, ,, ४.३२
एयवत्थु पहिलउ सावय० १७
एया पडिवा बीयाउ वसुनं० ३६८
एयारस ठाणाइं ,, ५
एयारसम्मि ठाणे ,, ३०१
लाटी० (उक्तं) ६.६३
एयारस ठाणठिया वसुनं० २२२
एयारसेसु पणयं ,, ३१४
एयारहविहु तं कहिउ सावय० ९
एयारसंगधारी वसुनं० ४७९
एयंतरोववासा ,, ३७६
एयं रयणं काऊण ,, ४०१
एरिसओ च्चिय परिवार ,, ४७४
एरिसगुण-अट्ठजुयं ,, ५६
एरिसपत्तम्मि वरे भावसं० १६३
एयस्से संजायइ वसुनं० ३७२
एवं काऊण तओ ईसाण ,, ४०७
एवं काऊण तओ खुहिय ,, ४११
एवं काऊण तवं ,, ५१४
एवं चउत्थठाणं ,, २९४
एवं चत्तारि दिणाणि ,, ४२३
एवं चलपडिमाए ,, ४४३
एवं चिरंतणाणं ,, ४४६
एवं जो णिच्छयदो स्वामिका० २२
एवं जंतुद्धारं भावसं० १०५
एवं णाऊण फलं वसुनं० ३५०
एवं णाऊण फुडं भावसं० २२८
एवं णाऊण विहिं वसुनं० ३६७
एवं ण्हवणं काऊण ,, ४२४
एवं तइयं ठाणं ,, २७९
एवं तं सालंबं भावसं० . ३१
एवं थुणिज्जमाणो वसुनं० ५०१
एवं दंसणसावयठाणं ,, २०६
एवं पएसपसरण ,, ५३२
एवं पत्तविसेसं भावसं० २०७
वसुनं० २७०
एवं पिच्छंता विहु वसुनं० ११०
एव पंचपयारं स्वामिका० ४८
एवं बहुप्पयारं दुक्खं वसुनं० २०४
एवं बहुप्पयारं दोसं ,, ७९
,, ३१८
एवं बहुप्पयारं सरण ,, २०१
एवं बारस भेयं वयठाणं वसुनं० २७३
एवं भणिए घित्तूण ,, १४७
एवं विहिणा जुत्तं भावसं० १८०
एवं विहु जो जिण महइ सावय० १८०
एवं सोऊण तओ वसुनं० १४५
एवं सावयधम्मं चरित्तपा० ७ (२६)
एस कमो णायव्वो वसुनं० ३६१
एसा छव्विहपूजा वसुनं० ४७८
एह विहूइ जिणेसरहं सावय० १७९
एहु धम्मु जो आयरइ ,, ७६

ओ

ओसहदाणेण णरो भावसं० १४३

अं

अंगे णासं किच्चा भावसं० ८७
अंतर मुहुत्तमज्झे ,, ५७
अंतोमुहुत्तकालेण वसुनं० ४९६
अंतोमुहुत्तसेसाउगम्मि ,, ५३१

क

कच्चोलकलसथालाइ वसुनं० २५५
कज्जं किंपि ण साहदि स्वामिका० ४२
कणवीरमल्लियाहिं वसुनं० ४३२
कत्ता सुहासुहाणं ,, ३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कप्पूर-कुंकुमायरु	,,	४२७
कप्पूरतेल्लपयलिय	भावसं०	१२६
कम्मि अपत्तविसेसे	वसुनं०	२४३
कम्मु ण खेत्तिय सेव	सावय०	९७
करचरण पिट्ठसिरसाणं	,,	३३८
करणं अधापवत्तं	,,	५१८
कलसचउक्कं ठाविय	भावसं०	८९
कस्स थिरा इह लच्छी	,,	२११
कहमवि णिस्सरिऊणं	वसुनं०	१७८
कहवि तओ जइ छुट्टो	,,	१५६
कहिं भोयण सहुं भिट्टडी	सावय०	९४
कहियाणि दिट्ठिवाए	भावसं०	३४
कंदप्पकिब्भिसासुर	वसुनं०	१९४
काइं बहुत्तइं जंपियइं	सावय०	१०४
काइं बहुत्तइं संपयइं	,,	८९
काउस्सग्गम्मि ठिओ	वसुनं०	२७६
काऊण अट्ठ एयंतराणि	,,	३७३
काऊण तवं घोरं	,,	५११
काऊण पमत्तेयरपरित्त	,,	५१७
काऊणाणंतचउट्ठयाइ	,,	४५६
काऊणुज्जवणं पुण	,,	३६४
कामकहा परिचत्तयइ	सावय०	४५
कायकिलेसुववासं	रयण०	७५
कायाणुरूवमद्दण	वसुनं०	३२९
कारावगिदपडिमा	,,	३८६
कारुय किराय चंडाल	,,	८८
कालस्स य अणुरूवं	भावसं०	१६४
कालायरु णह चंदह	वसुनं०	४३८
किकवाय-गिद्ध-वायस	,,	१६६
किं किंचिवि वेयमयं	भावसं०	१५६
किं किं देइ ण धम्मतरु	सावय०	९८
किं केण वि दिट्ठो हं	वसुनं०	१०३
किच्चा काउस्सग्गं	भावसं	१३०
किच्चा देसपमाणं	स्वामिका०	५६
कित्ती जस्सिंदुसुब्भा	वसुनं० प्र०	५४१
किरियम्मब्भुट्ठाणं	वसुनं०	३२८
किवणेण संचियधणं	भावसं०	२१०
किं करमि कत्थ वच्चमि	वसुनं०	१९७
किंचुवसमेण पावस्स	वसुनं०	१९१
किं जंपिएण बहुणा	,,	३४७, ४९३
किं जं सो गिहयंतो	भावसं०	३५
किं दाणं मे दिण्णं	,,	६८
किं बहुणा उत्तेणं	,,	११२
किं सुमिणदंसणमिणं	वसुनं०	४९९
कुच्छिगयं जस्सण्णं	भावसं०	१६२
कुच्छियपत्ते किंचिवि	,,	१८४
कुत्थुंभरि दलमेत्ते	वसुनं०	४८१
कुसुमेहिं कुसेसयवयणु	,,	४८५
कूडतुलामाणाइयहिं	सावय०	१६२
केई गयसीहमुहा	भावसं०	१८९
केई पुण गयतुरया	,,	१९५
केई पुण दिवलोए	,,	१९६
केई समवसरणगया	,,	२४६
को हं इह कस्साओ	,,	६७
कोहं माणे माणं मायाए	वसुनं०	५२२

ख

खयकुट्ठमूल सूलो	रयण०	३४
खीरुवहि सलिलधारा	वसुनं०	४७५
खुट्टइ भोउ ण तसु महइ	सावय०	१८६
खुद्दो सद्दो सट्ठो	रयण०	४१
खेत्तविसेसे काले	रयण०	१७
खंचहि गुरुवयणंकुसहिं	,,	१३०
कंधेण वहंति णरं	भावसं०	२२२

ग

गच्छइ विसुज्झमाणो	वसुनं०	५२०
गब्भावयार-जन्माहिसेह	,,	४५३
गरुउ सहावइं परिणवइं	सावय०	२१७
गय भूय डायणीओ	भावसं०	१०९
गयहत्थपायणासिय	रयण०	३३
गहिऊण सिसिरकर	वसुनं०	४२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गहिऊणस्सिणि रिक्खम्मि ,, ३६६
गिज्जंतसंधिबंधाइएहिं ,, ४१३
गिण्हदि मुंचदि जीवो स्वामिका० ९
गिहतरुवर वरगेहे भावसं० २३९
गिह-वावारं चत्ता स्वामिका० ७३
गिह-वावाररयाणं भावसं० १४
गिहवावारविरत्तो ,, ४७
गुणपरिणामो जायदि वसुनं० ३४३
गुणवयतवसमपडिमा लाटीसं (उक्तं) १.१
गुणवंतहं सह संगुकरि सावय० १४१
गुरुआरभंहि णरयगइ सावय० १६१
गुरुपुरओ किदियम्मं वसुनं० २८३
गुरुभक्तिविहीणाणं रयण० ७१
गुलुगुलु गुलंततवलेहिं ,, ४१२
गेहे वट्टंतस्स य भावसं० ४२
गोणसमयस्स एए वसुनं० २१
गोवंभण महिलाणं ,, ९८
गोवंभणित्थिघायं वसुनं० ९७
गंतूण णिययगेहं ,, २८९
गंतूण गुरुसमीवं ,, ३१०
गंतूण सभागेहं ,, ५०४
गंधोदएण जि जिणवरहं सावय० १८२

घ

घणपडलकम्मणिवहव्व वसुनं० ४३७
घरवावारा केई भावसं० ३६
घरु पुरु परियणु सावय० १२०
घाणिंदिय वढवसि ,, १२५
घादिसरीरा थूला लाटी० (उक्तं ४.२८
घंटाहिं घंट-सद्दाउलेसु वसुनं० ४८९

च

चउतोरण चउदारोव वसुनं० ३९४
चउदसमल परिसुद्धं ,, २३१
चउरट्ठह दोसहं रहिउ सावय० १२
चउविहदाणं उत्तं भावसं० १७३
चउविहमरूवि दव्वं वसुनं० १९
चउसुवि दिसासु ,, ३९७
चदुगदि भव्वो सण्णी स्वामिका० ६
चम्मट्ठि कीड उंदुर वसुनं० ३१५
सावय० ३२
चम्मट्ठिय पीयइ जलइं धर्मोपि० (उक्तं) ३.६
चम्मं रुहिर मंसा भावसं० ५८
चहुं एइंदिय विण्णि धर्मोप० (उक्तं) ४.१५
चामर ससहरकरधवलं सावय० १७६
चारित्तं खलु धम्मो लाटी (उक्तं) ३.२१
चिट्ठेज्ज जिणगुणा वसुनं० ४१८
चित्तपडिलेवपडिमाए ,, ४४४
चित्तं वित्तं पत्तं भावसं० २१३
चिरकयकम्महखउ करइ सावय० ६९
चिंतइ किं एवड्ढं भावसं० ६६
चिंततो सरुवं स्वामिका० ७१
चिंतेइ म किमिच्छइ वसुनं० ११४
चिंध चमर छत्तइं सावय० २००
चोरी चोर हणेइ परं ,, ४८
चंडाल भिल्ल छिंपिय भावसं० १९४
चंदण सुअंधलेओ ,, १२२
चंदोवइं दिण्णइ जिणहं सावय० १९८

छ

छच्च सया पण्णसुत्ताणि वसुनं० प्र० ५४६
छत्तेहिं चामरेहिं य ,, ४००
छत्तेहि एयछत्तं भुंजइ ,, ४९०
छत्तइं छणससिपंडुरइं सावय० १७७
छत्तीसगुणसमग्गो भावसं० २८
छद्दव्वणवपयत्था ,, १८
छप्पंचणवविहाणं व्रतसा० ३
छम्मासाउगसेसे वसुनं० ५३०
छम्मासाउयसेसे ,, १९५
छुड्डु दंसणु गड्ढायरहु सावय० ५०
छुड्डु सुविसुद्धिए होइ ,, १०७
छुहा तण्हा भयदोषो वसुनं० ८
छेयण भेयण ताडण ,, १८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज

जइ अच्छहिं संतोसु करि सावय० १३७
जइ अद्धवहे कोइवि वसुनं० ३०६
जइ अहिलासु णिवारियउ सावय० ५१
जइ एवं ण रएज्जो वसुनं० ३०९
जइ अतरम्मि कारणवसेण ,, ३६०
जइ कोवि उसिणणरए ,, १३८
जइ खाइयसद्दिट्ठी ,, ५१५
जइ गिहत्थु दाणेण विणु सावय० ८७
जइ जिय सुक्खइं अहिलसइ ,, १२२
जइ देइ तहवि तत्थ वसुनं० १२०
जइ देखेवउ छंडियउ सावय० ३९
जइ पुज्जइ कोवि णरो भावसं० १००
जइ फलइ कहवि दाणं ,, ५३
जइ भणइ कोवि एवं भावसं० ४०
जइ मे होहिहि मरणं वसुनं० १९९
जइवि सुजायं बीयं भावसं० ५२
जत्थ ण कलयलसद्दो स्वामिका० ५२
जत्थेक्क मरइ जीवो लाटी० (उक्तं) १.६
जय जीव णंद बड्ढाइ वसुनं० ५००
जरसोय-बा-हि-वेयण भावसं० २४३
जलधारा जिणपयगयउ सावय० १८३
जलधारा णिक्खेवेण वसुनं० ४८३
जल्लोसहि-सव्वोसहि ,, ३४६
जसकित्ति-पुण्णलाहे रयण० २६
जसु दंसणु तसु मणुसहं सावय० ५४
जसु पत्तुंत्तमराइयउ ,, १७१
जसु हियइ अ सि आ उ सा ,, २१४
जस्स ण तवो ण चरणं भावसं० १८२
जस्स णहु आउसरिसाणि वसुनं० ५२९
जह उक्कस्सं तह मज्झिम ,, २९०
जह उत्तिमम्मि खित्ते ,, २४०
जह ऊसरम्मि खित्ते ,, २४२
जह गिरिणई तलाए भावसं० ४३
जह जह वड्ढइ लच्छी ,, २१९
जह णावा णिच्छिद्दा ,, १६०
जहणीरं उच्छुगयं ,, १५४
जह मज्झिमम्मिं खित्ते ,, २४१
जह रयणाणं वइरं भावसं १७७
जह रुद्धम्मि पवेसे वसुनं० ४४
जह लोहणासणहं स्वामिका० ४०
जह समिलहिं सायरगयहिं सावय० ३
जाणित्ता संपत्ती स्वामिका० ४९
जाम ण छंडइ गेहं भावसं० ४४
जायइ अक्खयणिहि वसुनं० ४८४
जायइ कुपत्तदाणेण ,, २४८
जायइ णिविज्जदाणेण वसुनं० ४८६
जायंति जुयल-जुयला ,, २६२
जासु जणाणि सग्गागमणि सावय० १६७
जिणजम्मण-णिक्खमणे वसुनं० ४५२
जिणभवणइं काराविय‍इं ,, १९३
जिणभवण-बिंब-पोत्थय धर्मोप० (उक्तं) ४,३०
जिणपडिमइं काराविय‍इं सावय० १९२
जिणपयगयकुसुमंजलिहिं ,, १९१
जिणवयण-धम्मचेइय वसुनं० २७५
जिणवयणेयग्गमणो स्वामिका० ५५
जिणसिद्धसूरिपाठय वसुनं० ३८०
जिणहरि लिहियइं सावय० २०१
जिणु अच्चइ जो अक्खयहिं ,, १८५
जिणु गुण देइ अचेयणु ,, २१८
जिण्णुद्धार पइट्ठा रयण० ३१
जिब्भाच्छेयण णयणाण वसुनं० १६८
जिब्भिदिउ जिय संवरहिं सावय० १२४
जिय मंतइ सत्तक्खरइं ,, २१५
जीवस्सुवयारकरा वसुनं० ३४
जीवादी सद्दहणं लाटी० (उक्तं) २१३
जीवाजीवासवबंध ,, १०
जीवो हु जीवदव्वं वसुनं० २८
जूए धणहुं ण हाणि पर सावय० ३८
जूयं खेलंतस्स हु वसुनं० ६०
जूयं मज्जं मंसं ,, ५९
जे केइवि उवएसा ,, ३३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जेण अगालिउ जलु पियउ	सावय०	२७
जेणज्ज मज्झ दव्वं	वसुन०	७४
जेण सुदेउ सुणरु हवसि	सावय०	१५५
जे पुण सम्माइट्ठी	वसुनं०	२६५
जे पुणु मिच्छादिट्ठी	भावसं०	२४५
जे पुव्वसमुद्दिट्ठा	वसुनं०	४४७
जे मज्जमंसदोसा	,,	९२
जे सुणंति धम्मक्खरइं	सावय०	११८
जेहिं न दिण्णं दाणं	भावसं०	२२०
जो अणुमणणं न कुणदि	स्वामिका०	८८
जो अवलेहइ णिच्चं	वसुनं०	८४
जो आयरेण मण्णदि	स्वामिका०	११
जो आरंभं ण कुणदि	,,	८५
जो उवएसो दिज्जदि	,,	४४
जो कयकारय-मोयण	,,	८४
जो कुणदि काउस्सग्गं	,,	७०
जो घरि हुंतइं धणकणइं	सावय०	९३
जो चउविहं पि भोज्जं	स्वामिका०	८१
जो चच्चइ जिणु चंदणइं	सावय०	१८४
जो जम्मुच्छवि ण्हावियउ	,,	१६८
जो जणदि पच्चक्खं	स्वामिका०	१
जो जिणु ण्हावइं	सावय०	१८१
जो ण य कुव्वदि गव्भं	स्वामिका०	१२
जो ण य भक्खेदि सयं	,,	७९
जो णवकोडिविसुद्धं	,,	९०
जो ण विजाणदि तच्चं	,,	२३
जो ण हवदि सव्वण्हू	,,	२
जो णिसिभुत्ति वज्जदि	,,	८२
जो तच्चमणेयंतं	,,	१०
जो तस-वहाउ विरओ	भावसं०	२
	लाटी (उक्तं)	४.३५
जो दिढचित्तो कीरदि	स्वामिका०	२८
जो धवलावइ जिण-भवणु	सावय०	१९४
जो पइठावइ जिणवरहं	,,	१९५
जो परदव्वं ण हरदि	स्वामिका०	३५
जो परहरेइ संतं	,,	५०
जो परिमाणं कुव्वदि	,,	३९
जो परिवज्जइ गंथं	,,	८६
जो पस्सइ समभावं	वसुनं०	२७७
जो पुज्जइ अणवरयं	भावसं०	१०७
जो पुणु कुभोयभूमीसु	वसुनं०	२६१
जो पुण चिंतदि कज्जं	स्वामिका०	८९
जो पुण जहण्णपत्तम्मि	वसुनं०	२४७
जो पुण जिणिंद-वयणं	,,	४८२
जो पुण हुंतइं धण	भावसं०	१६७
जो पुणु वड्ढद्धारो	,,	९९
जो बहुमुल्लं वत्थुं	स्वामिका०	३४
जो बोलाइ अप्पाणं	भावसं०	२०७
जो भणइ को वि एवं	,,	३३
जो मज्झिमम्मि पत्तम्मि	वसुनं०	२४६
जो मण्णदि परमहिलं	स्वामिका०	३७
जो मुणिभुत्तविसेसं	रयण०	२१
जो लोहं णिहणित्ता	,,	३८
जो वज्जेदि सचित्तं	,,	८०
जो वय-भायणु सो जि तणु	सावय०	११६
जो वावारेइ अदओ	स्वामिका०	३०
जोव्वणमएण मत्तो	वसुनं०	१४३
जो सावयवयसुद्धो	स्वामिका०	९१
जं उप्पज्जइ दव्वं	भावसं०	२२९
जं किंचि गिहारम्भं	वसुनं०	२९८
जं किंचि तस्स दव्वं	,,	७३
जं किंचि वि पडियभिक्खं	,,	३०८
जं किं पि एत्थ भणियं	,,	५४५
जं किं पि देवलोए	,,	३७५
जं किं पि सोक्खसारं	,,	५३८
जं कीरइ परिरक्खा	वसुनं०	२३८
जं कुणइ गुरुसयासम्मि	,,	२७२
जं जस्स जम्मि देसे	स्वामिका०	२०
जं जिय दिज्जइ इत्थु भवि	सावय०	९५
जं झाइज्जइ उच्चारिऊण	,,	४१४
जतं मंतं तंतं	रयण०	२७
जंतेण कोद्दवं वा	लाटी० (उक्तं)	२.१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जं दिज्जइ तं पावियइ	सावय० ९२
जं दुप्परिणामाओ	वसुनं० ३२६
	,, २१३
जं परिमाणं कीरइ	वस्तु २१७
जं परिमाणं कीरदि	स्वामिका० ४१
जं पुणुवि णिरालंबं	भावसं० ३२
जंबीर-मोच-दाडिम	वसुनं० ४४०
जंबूदीउ समोसरणु	सावय० २०२
जंबूदीवे भरहे	लाटी० (उक्त) १.८
जं रयणत्तय-रहियं	भावसं० १८१
जं वज्जिज्जइ हरियं	वसुनं० १९५
जं सक्कइ तं कीरइ	लाटी० (उक्तं) २.१९
जं सवणं सत्थाणं	स्वामिका० ४७
जं सुद्धो तं अप्पा	भावसं० ८३
झ	
झाणं झाऊण पुणो	भावसं० १३२
झाणाणं संताणं	,, ३८
झाणेहिं तेहिं पायं	,, १५
झुणि अक्खिय संपुण्णहल	सावय० १७८
ठ	
ठिदियरण गुणपउत्तो	वसुनं० ५४
ढ	
ढिल्लउ होइ मइ दियहं	सावय० १२९
ण	
ण गणेइ इट्ठमित्तं	वसुनं० ६३
ण गणेइ मायवप्पं	,, १०४
णट्ठचउघाइकम्मं	भावसं० १३१
णट्ठट्ठकम्मखंधो	,, २७
णत्थि वय-सील-संजमं	,, २०९
णमिऊण वड्ढमाणं	रयण० १
ण मुणइ इय जो पुरिसो	,, ३९
ण य कत्थइ कुणइ रइं	वसुनं ११५
ण य को वि देदि लच्छी	स्वामिका० १८
ण य देइ णेव भुंजइ	भावसं० २०९
ण य भुंजइ आहारं	वसुनं० ६८
णय-सुर-सेहर-मणि-किरण	सावय० २२३
णवि जाणइ कज्जमकज्जं	रयण० ३७
णवि जाणइ जोग्गमजोग्गं	रयण० ३८
ण लहंति फलं गरुयं	भावसं० २०१
णवकारेप्पिणु पंच गुरुं	सावय० १
णवमासाउगि सेसे	वसुनं० २६४
णह-दंत-सिर-ण्हारु	भावसं० ५९
णहि जेसिं पडिखलणं	लाटी० (उक्तं) ४.२७
ण हि दाणं णहि पूजा	रयण० ३६
ण हु दडइ कोहाइं	,, ५९
ण हु विग्गासिय कमलदलु	सावय० २१२
णाऊण तस्स दोसं	भावसं० १९७
णाणी खवेइ कम्म	रयण० ६१
णाणुग्गम्मि जसु समवसरणु	सावय० १७०
णाणे णाणुवयरणे	वसुनं० ३२२
णाणंतरायदसयं	,, ५२५
णामट्ठवणादव्वे	,, ३८१
णावा जह सच्छिद्दा	भावसं० १९९
णासइ धणु तसु धर-तणउ	सावय० ६२
णासावयारदोसेण	वसुनं० १३०
णिच्चं पलायमाणो	,, ९६
णिज्जिय दोसं देवं	स्वामिका० १६
णिट्ठुर-कक्कस-वयणाइं	वसुनं० २३०
णिद्दा तहा विसाओ	,, ९
णिद्देसं सामित्त	,, ४६
णिद्धण-मणुयहं कट्ठडा	सावय० ११४
णियम-विहूणहं णिट्ठडिय	,, ११५
णिययं पि सुयं बहिणिं	वसुनं० ७६
णियसुद्धप्पणुरत्तो	रयण० ६
णिव्विदिगिच्छो राओ	वसुनं० ५३
णिसिऊण णमो अरहंताणं	,, ४७१
निसुणंतो थोत्तसए	भावसं० ६५
णिस्ससइ रुयइ गायइ	वसुनं० ११३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिस्सेसकम्ममोक्खो	,,	४५
णिस्संका णिक्खंखा	,,	४८
णिस्संकिय संवेगाइ जे	,,	३२१, ३४१
णेऊण णियय-गेहं	,,	२२७
णेच्छंति जइ वि ताओ	,,	११७
णेत्तुद्धारं अह पाणि-पायगहणं	,,	१०९
णेरइयाण सरीरं	,,	१५३
णेवज्जइं दिण्णइं जिणहु	सावय०	१८७
णो इंदिएसु विरदो	लाटी० (उक्तं)	२.१८
णंदीसरट्ठ-दिवसेसु	वसुनं	४५५
णंदीसरम्मि दीवे	,,	३७४
ण्हवणं काऊण पुणो	भावसं०	९३
ण्हाण-विलेपण-भूसण	स्वामिका०	५७
त		
तणकुट्ठी कुलभंगं	रयण०	४४
तत्तो णिस्सरिऊणं	वसुनं०	१४८
तत्तो पलाइऊणं	,,	१५१
तत्तो पलायमाणो	,,	१५४
तत्थ चुया पुण संता	भावसं०	१९३
तत्थ वि अणंतकालं	वसुनं०	२०२
तत्थ वि दहप्पयारा	,,	२५०
तत्थ वि दुक्खमणंतं	,,	६२
तत्थ वि पडंति उवरिं	,,	१५२
तत्थ वि पविट्ठमित्तो	,,	१६२
तत्थ वि बहुप्पयारं	,,	२६७
तत्थ वि विविहे भोए	भावसं०	७३
तत्थ वि सुहाइं भुत्तं	,,	२४८
तत्थेव सुक्कझाणं	वसुनं०	५२४
तप्पाओग्गुवयरणं	,,	४१०
तम्हा सम्मादिट्ठी	भायसं०	७५
तम्हा सो सालंबं	,,	३९
तम्हा ह णियसत्तीए	वसुनं०	४८०
तय वितय घणं सुसिरं	,,	२५३
तरुणियण-णयण-मणहारि	,,	३४८
तसघादं जो ण करदि	स्वामिका०	३१
तस्स पसाएण मए	वसुनं० प्र०	५४४
तस्स फलमुदयमागय	वसुनं०	१४४
तस्स फलेणित्थी वा	,,	३६५
तस्स वहुमज्झदेसे	,,	३९६
तस्सुवरि सिद्धणिलयं	,,	४६३
तह संसारसमुद्दे	भावसं०	१६१
ता अच्छउ जिय पिसुण	सावय०	१५०
ताण पवेसो वि तहा	वसुनं०	३७
ता णिसहं जहयारं	भावसं०	११८
ता देहो ता पाणा	,,	१७१
तामच्छउ तहं भंडयहु	सावय०	३१
तिण्णि सया छत्तीसा	लाटी (उक्तं)	४.३०
तिरियगईए वि तहा	वसुनं०	१७७
तिलयइं दिण्णइ जिणभवणि	सावय०	१९७
तिविहा दव्वे पूजा	वसुनं०	४४९
तिविह भणंति पत्तं	भावसं०	१४८
तिविह मुणेह पत्तं	वसुनं०	२२१
तिविहे पत्तम्मि सया	स्वामिका०	५९
तिसओ वि भुक्खिओ हं	वसुनं०	१८८
तुरियं पलायमाणं	,,	१५८
तूरंगा वरतूरे	भावसं०	२४१
तें कम्मक्खए मग्गि जिय	सावय०	२१०
तें कज्जे जिय तुव भणमि	,,	११२
तेंच्चिय वण्णा जट्ठदलं	वसुनं०	४६७
तेणुवइट्ठो धम्मो	स्वामिका०	३
ते तसकाया जीवा	वसुनं०	२०९
ते धण्णा लोयतए	भावसं०	२१७
तें सम्मत्तु महारयणु	सावय०	२०८
तेसिं च सरीराणं	वसुनं०	४५०
तेसिं पइट्ठयाले	,,	३५६
तो खंडियसव्वंगो	,,	१४२
तो खिल्लविल्लजोएण	,,	१७९
तो तम्मि चेव समये	,,	५३६
तो तम्हि जायमत्ते	,,	१४१
तो तम्हि पत्तपडणेण	,,	१५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो तेसु समुप्पण्णो ,, १३६
तो रोय-सोय-भरिओ ,, १८९
तो सुहुमकायजोगे ,, ५३४
तो सो तियालगोयर ,, ५२६
तं अपत्तु आगमि भणिउ सावय० ८३
तं किं ते विस्सरियं वसु० १६०
तं तस्स तम्मि देसे स्वामिका० २१
तं तारिस सीदुण्हं वसुनं० १४०
तं दव्वं जाइ समं भावसं० २३३
तं पायडु जिणवर-वयणु सावय० ६
तं फुडु दुविहं भणियं भावसं० २०
तं बोलोसहि जलु मुइवि सावय० ३७
धर्मोप० (उक्तं) ४.१०

थ

थुणु वयणे झायहि मणहिं सावय० १०८
थूले तसकायवहे चारित्त० ४ (२३)
थोत्तेहिं मंगलेहिंय वसुनं० ४१५

द

दट्ठूण असणमज्झे वसुनं० ८१
दट्ठूण णारया णीलमंडवे ,, १६३
दट्ठूण परकलत्तं ,, ११२
दट्ठूण महिड्ढीणं ,, १९२
दट्ठूण मुक्ककेसं ,, ९५
दधि-दुद्ध-सप्पि-मिस्सेहिं ,, ४३४
दय जि मूलु धम्मंधियहु सावय० ४०
दव्वत्थिकाय छप्पण रयण० ५५
दव्वेण दव्वस्स य जा वसुनं० ४४८
दहलक्खण-संजुत्तो भावसं० २३
दहि-खीर-सप्पि-संभव भावसं० १२५
दाऊण किंपि रत्तं वसुनं० २८६
दाऊण पुज्जदव्वं भावसं० ९१
दाऊण मुहपर्डं धवल वसुनं० ४२०
दाणच्चण-विहि जे करहि सावय० ११७
दाणच्चणविहि जो करहि ,, २०९
दाणसमयम्मि एवं वसुनं० २३२
दाणस्साहारफलं भावसं० १४४
दाणं पूया मुक्खं रयण० १०
दाणं पूया सीलं ,, ९
दाणं भोयणमेत्तं ,, १४
दाणीणं दालिद्दं ,, २८
दाणु कुपत्तहं दोसडइ सावय० ८६
दाणु ण धम्मु ण चागु रयण० ११
दाणे लाहे भोए वसुनं० ५२७
दाणं च जहाजोग्गं ,, ३५८
दायारेण पुणे वि य भावसं० १६६
दायारो उवसंतो ,, १४६
दायारो विय पत्तं ,, १४५
दिणपडिम वीरचरिया वसुनं० ३१२
दिण्णइ वत्थ सुअज्जियहं सावय० २०३
दिण्णइ सुपत्तदाणं रयण० १५
दिसि-विदिसि पच्चक्खाणं भावसं० ५
दिसि विदिसहिं परिमाणु करि सावय० ६६
दिसि-विदिसि-माण पढमं चारित्त० ५ (२४)
दीउज्जोयं जइ कुणइ वसुनं० ३१६
दीवइं दिण्णइं जिणवरहं सावय० १८८
दीवे कहिंपि मणुया भावसं० १८८
दीवेसु सायरेसु य वसुनं० ५०६
दीवेहिं णियपहोहा ,, ४३६
दीवेहिं दीवियासेस ,, ४८७
दुक्खेण लहइ वित्तं ,, २१२
दुज्जणु सुहियउ होउ सावय० २
दुण्णि य एयं एयं वसुनं० २४
दुण्णि सयइं विसुत्तरइं सावय० २२२
दुल्लहु लहिवि णरत्तयणु ,, २२०
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ ,, २२१
दुविहा अजीवकाया वसुनं० १६
दुविहं संजमचरणं चारित्त० १ (२१)
देइ जिणिंदहं जो फलइं सावय० १९०
देव गुरु धम्म गुण चारित्तं रयण० ४५
देवगुरुसमयभत्ता रयण० ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

देवाण होइ देसे	भावसं०	६२
देविंद-चक्कहर-मंडलाय	वसुनं०	३३४
देवे धुवइ तियाले	भावसं०	६
देस-कुल-जाइ-सुद्धो	वसुनं०	३८८
देह-तव-णियम-संजम	वसुनं०	३४२
देहमिलियं पि जीवं	स्वामिका०	१५
देहस्सुच्चत्तं मज्झिमासु	वसुनं०	२५९
देहि दाणु वउ किंपि करि	सावय०	१२१
देहो पाणा रूवं	भावसं०	१६८
दोधणुसहस्सुत्तुंगा	वसुनं०	२६०
दोससहियं पि देवं	स्वामिका०	१७
दोसु पव्वेसु सया	,,	५८
दंसण-णाण चरित्ते	वसुनं०	३२०
दंसणभूमिहिं बाहिरा	सावय०	५७
दंसण-रहिय कुपत्त जइ	सावय०	८१
दंसण-रहिय जि तउ करडिं	सावय०	५५
दंसण वय सामाइय	चारित्त० २ (२१) वसुनं० ४ लाटी० (उक्तं) १.२	
दंसणसुद्धिए सुद्धयह	सावय०	५६
दंसणु णाणु चरित्तु तउ	,,	२२४

ध

धण-धण्णाइसमिद्धं	रयण०	२९
धम्मज्झाणं भणियं	भावसं०	१७
धम्मसरूवें परिणवइ	सावय०	९१
धम्महु धणु पर होइ थिरु	,,	१००
धम्माधम्मागासा	वसुनं०	३०
धम्मिल्लाणं चयणं	वसुनं०	३०२
धम्मु करउं जइ होइ धणु,	सावय०	८८
धम्मु करंतहं होइ धणु	,,	९९
धम्मु जि सुद्धउ तं जि पर	,,	११३
धम्में एक्कुवि बहु भरइ	,,	१०३
धम्में जाणहिं जंति णर	,,	१०२
धम्में जं जं अहिलसइ	,,	१९५
धम्में विणु जे सुक्खडा	,,	१५२
धम्में सुद्धु पावेण दुहु	,,	१०१
धम्में हरि हल चक्कवइ	,,	१६६
धम्मोदएण जीवो	भावसं०	९
धरिऊणं उड्ढंघ	वसुनं०	१६७
धरिऊण वत्थमेत्त	,,	२७१
धवलु विं सुरमउडंकियउ	सावय०	१७४
धरियउ बाहिरलिंगं	रयण०	५७
धावंति सत्थहत्था	भावसं०	२२५
धूवउ खेवहिं जिणवरहं	सावय०	१८९
धूवेण सिसियर-धवल	वसुनं०	४८८

न

न मुयंति तदवि पावा	वसुनं०	१५०

प

पक्केहिं रसड्ढसमुज्जलेहिं	भावसं०	१२८
पक्खालिऊण पत्तं	वसुनं०	३०४
पक्खालिउण वयणं	,,	२८२
पच्चारिज्जइ जं ते पीयं	,,	१५५
पच्चूसे उट्ठित्ता वंदण	,,	२८७
पज्जात्तापज्जत्ता	,,	१३
पट्ठवणे णिट्ठवणे	वसुनं०	३७७
पडिकूइलयाइं काउं	भावसं०	२१४
पडिगहमुच्चट्ठाणं	वसुनं०	२२५
पडिचीणणेत्तपट्टाइएहिं	,,	३९८
पडिजग्गणेहिं तणुजोय	,,	३३९
पडिदिवसं जं पावं	भावसं०	८३
पडिवुद्धिऊण चइऊण.	,,	२६८
पडिबुद्धिऊण सुत्तुट्ठिओ	वसुनं०	४९८
पडिमासमेक्कखमणेण	,,	३५४
पढमाइ जमुक्कस्सं	,,	१७४
पढमाए पुढवीए	,,	१७२
पढम पढमं णियदं	(उक्तं) आ० सा०	१५३
पणतीस सोल छप्पण	धर्मोप० (उक्तं)	४.२८
पणमंति मुत्तिमेगे	भावसं०	११६
पतिभत्तिविहीणसदी	रयण०	७०

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्तविणा दाणं ण	रयण०	३०
पत्तस्सेस सहावो	भावसं०	१६५
पत्तहं जिण-उवएसियहिं	सावय०	८०
पत्तहं दाहइं दिण्णइ ण	,,	९६
पत्तहं दिज्जइ दाणु जिय	,,	७०
पत्तहं दिण्णउं थोवडउ	,,	९०
पत्तं णियघरदारे	वसुनं०	२२६
पत्तंतर दायारो	,,	२२०
पत्थरमया वि दोणी	भावसं०	१९८
पभणइ पुरओ एयस्स	वसुनं०	९०
परिणामजुदो जीवो	,,	२६
परिणामि जीव मुत्ता	,,	२२
परिणामि जीव मुत्तं	,,	२३
परतिय वह बंधण	सावय०	५०
परदव्वहरणसीलो	वसुनं०	१०१
परदोसाण वि गहणं	स्वामिका०	४३
परपेसणाइ णिच्चं	भावसं०	२२१
परमत्थो ववहारो	वसुनं०	२०
परमप्पयस्स रूवं	भावसं०	१५८
परलोए वि सरूवो	वसुनं०	३४५
परलोए विहु चोरो	वसुनं०	१११
परलोयम्मि अणंतं	,,	१२४
परसंपया णिएउं	भावसं०	२२७
परिहरि कोहु खमाइ करि	सावय०	१३२
परिहरि पुत्तुवि अप्पणउ	,,	१४६
पल्लोवम आउस्सा	भावसं०	१८७
पव्वेसु इत्थिसेवा	वसुनं०	२१२
पसमइ रमं असेसं	भावसं०	१२१
पसु-धण-धण्णइं	सावय०	६४
पहरंति ण तस्स रिउणा	भावसं०	१११
पहु तुम्हं समं जायं	,,	२२३
पाउ करहि सुहु अहिलसहि	सावय०	१६०
पाओदयं पवित्तं	वसुनं०	२२८
पाणाइवाय विरई	,,	२०८
पारद्धउ परिणिग्घिणउ	सावय०	४६
पावेण तेण जर-मरण	वसुनं०	६१
पावेण तेण दुक्खं	,,	९३
पावेण तेण बहुसो	,,	७८
पावेण सह सदेहं	भावसं०	८०
पावेण सह सरीरं	,,	८२
पिच्छरु दिव्वे भोए	वसुनं०	२०३
पिच्छिय परमहिलाओ	भावसं०	२२६
पिट्ठिमंसु जइं छेडियउ	सावय०	४१
पिंडत्थं च पयत्थं	वसुनं०	४५८
पीठं मेरुं कप्पिय	भावसं०	८८
पुग्गलु जीवें सहु गणिय	सावय०	२०५
पुज्जणविहिं च किच्चा	स्वामिका०	७५
पुज्जाउवयरणाइ य	भावसं०	७८
पुट्ठो वाऽपुट्ठो वा	वसुनं०	३००
पुढवी आदि चउण्हं	लोटी० (उक्तं	४.३१
पुढवी जलं च छाया	वसुनं०	१८
पुणरवि तमेव धम्मं	भावसं०	७०
पुण्णबलेणुववज्जइ	,,	२३८
पुण्णरासि ण्हवणाइयइं	सावय०	२०७
पुण्णस्स कारणं फुडु	भावसं०	७६
पुण्णस्स कारणाइं	,,	४६
पुण्णाणं पुज्जेहि य	,,	१२३
पुण्णु पाउ जसु मणि	सावय०	२११
पुण्णेण कुलं विउलं	भावसं	२३७
पुण्णं पुव्वाइरिया	,,	५०
पुत्तकलत्तविदूरो	रयण०	३२
पुप्फंजलिं खिवित्ता	वसुनं	२२९
पुर-गाम-पट्टणाइसु	,,	२११
पुव्वं जिणेहिं भणियं	रयण०	२
पुव्वं जो पंचिंदिय	,,	६९
पुव्वट्ठियं खवइ कम्मं	,,	४८
पुव्वण्हे मज्झण्हे	स्वामिका०	५३
पुव्वपमाणकदाणं	,,	६६
पुव्वभवे जं कम्मं	वसुनं०	१६५
पुव्वुत्तणवविहाणं	,,	२९७
पुव्वुत्तर-दक्खिणपच्छिमासु	,,	२१४
पुव्वुत्तवेइमज्झे	,,	४०५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुव्वं दाणं दाऊण ,, १८६
पुव्वं सेवइ मिच्छा रयण० ६२
पुईफल-तिंदु-आमलय वसुनं० ४४१
पूयफलेण-तिलोए रयण० १३
पेच्छह मोहविणडिओ वसुनं० १२३
पोट्टहं लग्गिवि पावमइ सावय० १०६
पोट्टलियहिं मणिमोत्तियहिं ,, ११०
पोत्थय दिण्ण ण मुणिवएहं ,, १५९
पंचणमोक्कारपएहिं वसुनं० ४५७
पंचमयं गुणठाणं { भावसं १ / ,, २५०
पंचमि उववास विहिं वसुनं० ३६२
पंचमु सावउ जाणि सावय० १४
पंचवि इंदिय पाणा लाटी० (उक्तं) ४.२६
पंचविहं चारित्तं वसुनं० ३२३
पंचसु मेरुसु तहा ,, ५०८
पंचाणुव्वय जो धरइ सावय० ११
पंचाणुव्वयधारी स्वामिका० २९
पंचुबरसहियाइं { वसुनं ५७ / ,, २०५
पंचुंबरहं णिवित्ति जसु सावय० १०
पंचेव अणुव्वयाइं { वसुनं० २०७ / चारित्त० ३(२२)

फ

फरसिंदिय मा लालि जिय सावय० १२३
फलमेयस्से भोत्तूण वसुनं० ३७८
फासुयजलेण ण्हाइय भावसं० ७७

ब

बत्तीसा अमरिंदा ,, १०३
बद्धाउगा सुदिट्ठी वसुनं २४९
बलिवत्तिएहिं जावारएहिं ,, ४२१
बहुतस-समण्णिदं जं स्वामिका० २७
बहिरब्भन्तरतवसा भावसं० १५९
बहुहावभावविब्भम वसुनं० ४१४
बादरमण-बचिजोगे ,, ५३३
बारस य बारसीओ ,, ३७०
बारह-अंगंगी जा ,, ३९१
बालत्तणे वि जीवे ,, १८५
बालोऽयं बुड्ढोऽयं ,, ३२४
बाहत्तरि कलसहिया ,, २६३
बाहिरगंथविहीणा स्वामिका० ८७
बीओ भायो गेहे भावसं० २३०
बुद्धितवो वियलद्धी वसुनं० ५१२
बंधण भारारोवण ,, १८१
बंधित्ता पज्जंकं स्वामि० ५४
बंभयारि सत्तमु भणि सावय० १५

भ

भत्तीए पिच्छमाणस्स वसुनं० ४१६
भत्तीए पुज्जमाणो स्वामिका० १९
भत्ती तुट्ठी य खमा भावसं० १४७
भद्दस्स लक्खणं पुण ,, १६
भमई जए जसकित्ती वसुनं० ३४४
भयविसणमलविवज्जिय रयण० ५
भव्वुच्छाहणि पावहरि सावय० १९९
भागी वच्छल्ल-पहावणा वसुनं० ३८७
भावह अणुव्वयाइं भावसं० १३९
भुक्खसमा ण हि बाही ,, १६९
भुक्खाकयमरणभयं ,, १७४
भुंजेइ जहा लाहं रयण० ९९
भुंजेइ पाणिपत्तम्मि वसुनं० ३०३
भूमहिलाकणयाई रयण० ६८
भोगहं करहि पमाणु सावय० ६५
भोत्तु अणिच्छमाणं वसुनं० १५९
भोत्तूण मणुयसोक्खं ,, ५१०
भो भो जिब्भिंदिय लुद्ध ,, ८२
भोयणदाणं सोक्खं स्वामिका० ६१
भोयणदाणे दिण्णे ,, ६२
भोयणबलेण साहू ,, ६३
भोयणु मउणें जो करइ सावय० १४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म

मइल कुचेली दुम्माणी (उक्त) श्रा० सा० ५०२
मउयत्तणु जिय मणि धरहि सावय० १३२
मग्गइ गुरु उवएसियइं ,, ८
मज्जार-पहुदि धरणं स्वामिका० ४६
मज्जु मुक्क मुक्करु मयहं सावय० ४३
मज्जु मंसु महु परिहरइ ,, ७७
मज्जु मंसु महु परिहरहि ,, २२
मज्जेण णरो अवसो वसुनं० ७०
मज्जंग तूर भूसण ,, २५१
मज्झिमपत्ते मज्झिम भावसं० १५१
मज्झे अरिहं देवं ,, १०१
मण गच्छहो मणमोहणहं सावय० १२७
मण वय कायहिं दय करहि ,, ६०
मण वयण कायकय वसुनं० २९६
मण वयण काय सुद्धी भावसं० १७९
मणि-कणय-रयण-रुप्पय वसुनं० ३९०
मणुयत्तणु दुल्लहु लहिवि सावय० २१९
मणुयत्तणे वि य जोवा वसुनं० १८३
मणुयहं विणय-विवज्जियहं सावय० १३८
मण्णि इच्छिया परमहिल ,, ६३
मदि-सुदणाण बलेण रयण० ३
मय-कोह-लोह-गहिओ भावसं० २०३
मय-मूढमणायदणं रयण० ७
मरदु व जीवदु जीवो लाटी० (उक्त) ४.३३
महु आसायउ थोडउ वि सावय० २३
महु-मज्ज-मंस-विरई भावसं० ७
महु-मज्ज-मंस-सेवी वसुनं० ९९
माणी कुलजो सूरो ,, ९१
मादु पिदु पुत्त मित्तं रयण० १८
मा मुक्क पुण्णहेउं भावसं० ४५
मायाए तं सव्वं ,, ९७
माया मिल्लहिं थोडिय वि सावय० १३३
मालइ-कयंब-कणयारि वसुनं० ४३१
माहउ-सरणु सिलीमुहउ सावय० १७३
मिच्छत्ताविरइकसाय वसुनं० ३९
मिच्छत्तें णर मोहियउ भावय० १३६
मिच्छादिट्ठी पुण्णं भावसं० ५१
मिच्छादिट्ठी पुरुसो ,, १५०
मिच्छादिट्ठी भद्दो वसुनं० ३४५
मिच्छामइमयमोहा रयण० ४७
मिच्छो हु महारंभो लाटी० (उक्तं) ४.३७
मुक्क सुणह-मंजार-पमुह सावय० ४७
मुक्कह कूडतुलाइयहं ,, ४९
मुक्खं धम्मज्झाणं भावसं० २२
मुणिऊणं गुरुवकज्जं वसुनं० २९१
मुणि दंसणु जिय जेण विणु सावय० २१
मुणि-भोयणेण दव्वं भावसं० २१८
मुप्ता जीवं कायं णिच्चा वसुनं० ३३
मुहुवि लिहिवि मुत्तइं सावय० ४३
मुहु विहिलिवि मुत्तइं धर्मोप०(उक्तं) ३.३
मूलउ णाली भिसु ल्हसणु सावय० ३४
मूलगुणा इय एत्तडइं ,, ५३
मूलग्गपोरबीआ लाटी० (उक्तं) १.४
मेहाविणरा एएण चेव वसुनं० ३५२
मेहावीणं एसा सामण्ण ,, २४४
मेहुणसण्णारूढो भावसं० ४१
मोक्खणिमित्तं दुक्खं रयण० ५८
मोत्तूण वत्थमेत्तं वसुनं० २९९
मोहु जि छिज्जइं दुब्बलउ सावय० १३५
मंसासणेण गिद्धो वसुनं० १२७
मंसासणेण वड्ढइ ,, ८६
मंसं अमेज्झसरिसं वसुनं० ८५

र

रक्खंति गो-गवाडं भावसं० २२४
रजब्भंसं वसणं वसुनं० १२५
रज्जं पहाणहीणं रयण० ७२
रत्तं णाऊण नरं वसुनं० ८९
रत्ति जगिज्ज पुणो ,, ४२२
रयणत्तय-तव-पड्डिमा ,, ४६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रयणत्तयस्सरूवे	रयण०	५६
रयणप्पह सक्करपह	वसुनं०	१७२
रयणाण महारयणं	स्वामिका०	२४
रयणि-दिनं ससि-सूरा	भावसं०	२४२
रयणि-समयम्हि ठिच्चा	वसुनं०	२८५
राईभोयण-विरओ	स्वामिका०	५
रायगिहे णिस्संको	वसुनं०	५२
रुद्दं कसायसहियं	भावसं०	१२
रुप्पय-सुवण्ण-कंसाइ	वसुनं	४३५
रुहिरामिसु चम्मट्ठिसुर	सावय०	३३
	धर्मोप० (उक्तं)	४.१३
रुवहिं उप्परि रइ म करि	सावय०	१२६
रे जिय पुव्वि म धम्मु किउ	सावय०	१५४
रंगावलिं च मज्झे	वसुनं०	४०६

ल

लज्जा कुल-मज्जायं	वसुनं०	११६
लज्जा तहाभिमाणं	,,	१०५
लद्धं जइ चरमत्तणु	भावसं०	७४
लवणे अडयालीसा	,,	१८५
लहिऊण देससंजम	,,	२४७
लहिऊण सुक्कझाणं	,,	१३७
लहिऊण संपया जो	,,	२०८
लोइयजण-संगादो	रयण०	३९
लोइयसत्थम्मि वि	वसुनं०	८७
लोगे वि सुप्पसिद्धं	,,	८३
लोहमए कुतरंडे	भावसं०	२००
लोह लक्खु विसु सणु	सावय०	६७
	धर्मोप० (उक्तं)	४.१९
लोहु मिल्लि चउगइ सलिलु	सावय०	१३४
लंबंतकुसुमदामो	वसुनं०	३९५
ल्हुक्कइ पलाइ पखलइ	,,	१२२

व

वज्जाउहो महप्पा	वसुनं०	१९८
वण्ण-रस-गंध-फासेहिं	,,	४७६
वत्थंगा वरवत्थे	भावसं०	२४०
वत्थादियसम्माणं	वसुनं०	४०९
वत्थुसमग्गो णाणी	रयण०	६७
वत्थुसमग्गो मूढो	,,	६६
वदसमिंदिंदियरोधो	लाटी० (उक्तं)	३.२०
वय-तव-सील-समग्गो	वसुनं	२२३
वय-भंग-कारणं होइ	,,	२१५
वर-अट्ठपाडिहेरेहिं	,,	४७२
वरकमल सालितंडुल	,,	४३०
वरपट्ट चीण खोमाइयाइं	,,	२५६
वरबहुलपरिमलामोय	,,	२५७
वरवज्जविविहमंगलरवेहि	,,	५०३
वसणइ तावच्छंतु जिय	सावय०	५२
वसियरणं आइट्ठी	भावसं०	११०
वाणर-गद्दह-साणग	रयण०	४२
वामदिसाइ णयारं	भावसं०	११५
वायण कहाणुपहेण	वसुनं०	२८४
वारवईए विज्जाविच्चं	,,	३४९
वारसवएहिं जुत्तो	स्वामिका०	६८
वारिउ तिमिरु जिणेसरहं	सावय०	१७२
वावत्तरि पयडीओ	वसुनं०	५३५
वासादिकयपमाणं	स्वामिका०	६७
वासाणुभग्गसंपत्तमुइय	वसुनं०	४२८
विउलगिरिपव्वए णं	,,	३
विकहाइसु रुद्दज्झाणेसु	रयण०	५४
विजयं च वइजयंतं	वसुनं०	४६२
विजयपडाएहिं णरो	,,	४९२
विज्जावच्चु ण पइं कियउ	सावय०	१५७
विज्जाविच्चें विरहियउ	,,	१३९
विणएण ससंकुज्जल	वसुनं०	३३२
विणओ भत्तिविहीणो	रयण०	६४
विणओ विज्जाविच्चं	वसुनं०	३१९
विण्णिसयइं अ सि आ उ सा	सावय०	२१६
वि-ति-चउ-पंचिंदिय	वसुनं०	१४
विसय-कसाय-वसणणिवहु	सावय०	१४४
विसयासत्तो वि सया	स्वामिका०	१३
विहडावइ ण हु संघडइ	सायव०	१५१
विहलो जो वावारो	स्वामिका०	४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विहिणा गहिऊण विहिं	वसुनं०	३६३
वेओ किल सिद्धंतो	भावसं०	१५७
वेदलमीसिउ दहि महिउ	सावय०	३६
वेसहि लग्गिवि धणियधणु	,,	४४
स		
सइं ठाणाओ भुल्लइ	भावसं०	२३४
सक्किरिय जीव-पुग्गल	वसुनं०	३२
सगसत्तीए महिला	,,	२१८
सच्चित्तं पत्तफलं	स्वामिका०	७८
सजणे य परजणे वा	वसुनं०	६४
सज्झाएँ णाणह पसरु	सावय०	१४०
सत्तण्हं उवसमदो	लाटी० (उक्तं)	२.१७
सत्तण्हं पयडीणं	स्वामिका०	७
सत्तण्हं विसणाणं	वसुनं०	१३४
सत्तमि तेरसि दिवसे	स्वामिका०	७२
सत्तमि तेरसि दिवसम्मि	वसुनं०	२८१
सत्तप्पयाररेहा	भावसं०	१०४
सत्तवि तच्चाणि मए	वसुनं०	४७
सत्तु वि महुरइं उवसमइ	सावय०	१४२
सत्तू वि मित्तभावं	वसुनं०	३३६
सत्तेव अहो लोए	,,	१७३
सत्तेव सत्तमीओ	,,	३६९
सत्तंगरज्जणवणिहि	रयण०	१९
सत्थब्भासेण पुणो	स्वामिका०	७४
सत्थसएण वि जाणियहं	सावय०	१०५
सद्दमिसिण दुंदुहि रडइ	,,	१७५
सद्धा भत्ती तुट्ठी	वसुनं०	२२४
सप्पुरिसाणं दाणं	रयण०	२५
सब्भावासब्भावा	वसुनं०	३८३
समचउरससंठाणो	,,	४९७
सम्मत्तगुणपहाणो	स्वामिका०	२५
सम्मत्तविणा रुई	रयण०	७३
सम्मत्तस्स पहाणो	वसुनं०	९४
सम्मत्त णाण दंसण	,,	५३७
सम्मत्तरयणसारं	रयण०	४
सम्मत्तें विणु वयवि गय	सावय०	२०६
सम्मत्तें सावयवयहिं	,,	१६४
सम्मत्तेंहिं वएहिं	वसुनं०	४२
सम्मद्दंसण-सुद्धो	स्वामिका०	४
सम्मविणा सण्णाणं	रयण०	४३
सम्मविसोही तवगुण	रयण०	३५
सम्माइट्ठी जीवो	स्वामिका०	२६
सम्माइट्ठी जीवो	लाटी० (उक्तं)	४.३६
सम्मादिट्ठी पुण्णं	भावसं०	५५
सम्मादिट्ठी पुरिसो	,,	१५३
सपएस पंच कालं	वसुनं०	२९
सयलं मुणेह बंधं	,,	१७
सयवत्त-कुसुम-कुवलय	,,	४२६
सविवागा अविवागा	,,	४३
सव्वइं कुसुमइं छंडियइं	सावय०	२५
सव्वगदत्ता सव्वग	वसुनं०	३६
सव्वत्थ णिवुणबुद्धी	,,	१२८
सव्वावयवेसु पुणो	,,	४१९
सव्वे भोए दिव्वे	भावसं०	२४४
सव्वे मंद कसाया	,,	१९२
सव्वेसिं इत्थीणं	स्वामिका०	८३
सव्वेसिं जीवाणं	भावसं०	१४१
सस-सक्कुलि-कण्णाविय	,,	१९०
ससिकंत खंडविमलेहिं	वसुनं०	४२९
ससि-सूर-पयासाओ	,,	२५४
सहिरण्णपंचकलसे	,,	३५७
साकेते सेवंतो	,,	१३३
सामण्णां वि य विज्जा	वसुनं०	३३५
सामाइयस्स करणे	स्वामिका०	५१
सामाइयं च पढमं	चारित्त०	६, (२५)
सायरसंखा एसा	वसुनं०	१७५
सायारोऽणायारो	,,	२
सारंभइं ह्णवणाइयहं	सावय०	२०४
सावयगुणोववेदो	वसुनं०	३८९
सावयधम्महिं सयलहंमि	सावय०	७८
साहारणमाहारं	लाटी० (उक्तं)	१.५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिक्खावयं च तिदियं स्वामिका० ६०
सिग्घं लाहालाहें वसुनं० ३०५
सिज्झइ तइयम्मि भवे ,, ५३९
सिद्धसरूवं झायइ ,, २७८
सिद्धं सरूवरूवं भावसं० २४९
सिद्धा संसारत्था वसुनं० ११
सियकिरण-विप्फुरंतं ,, ४५१
सिरण्हाणुब्वट्टणगंधमल्ल ,, २९३
सिररेह भिण्णसुण्णं भावसं० ११४
सिल्लारस-अयरु-मीसिय ,, १२७
सिस्सो तस्स जिणागम वसुनं० प्र० ५४३
सिस्सो तस्स जिणिंदसासण ,, ५४२
सीदुण्हवाउपिउल रयण० २२
सुइ अमलो वरवण्णो भावसं० ६०
सुकुल सुरूव सुलक्खण रयण० २०
सुण्णं अयारपुरओ वसुनं० ४६५
सुयदाणेण य लब्भइ भावसं० १४२
सुरवइतिरीडमणिकिरण वसुनं० १
सुरसायरि जसु णिक्कमणि सावय० १६९
सुहडो सूरत्तविणा रयण० ६५
सुहियउ हुवउ ण कोवि इह सावय० १५३
सुहुमा अवाग विसया वसुनं० २५
सुहु सारउ मणुयत्तणहं सावय० ४
सेसा जे वे भावा भावसं० २३१
सोऊण किं पि सद्दं वसुनं० १२१
सो कह सयणो भण्णइ भावसं० २१५
सो दायव्वो पत्ते ,, १७८
सोलदल-कमलमज्झे ,, ९५
सोलस-सरेहि वेढहु भावसं० ९६
सोलह दलेसु सोलह ,, १०२
सोवण्ण-रुप्पि-मेहिय वसुनं० ४३३
सो सयणो सो बंधू भावसं० २१६
सोहम्माइसु जायइ वसुनं० ४९५
संकाइदोसरहिओ ,, ५१
संकाइय अट्ठट्ठ मय सावय० २०
संगचाउ जे करहिं जिय सावय० ७५
संगें मज्जामिसरयहं ,, २९
संघहं दिण्णु ण चउविहहं ,, १५८
संजमु सील सउच्च तउ ,, ७
संझहिं तिहिं सामाइयउ ,, ६८
सणासेण मरंतहं ,, ७१
संथार-सोहणेहि वसुनं० ३४०
संपत्त बोहिलाहो भावसं० १३६
संभूसिऊण चंदद्ध वसुनं० ३९९
संवेओ णिव्वेओ { लाटी० (उक्तं) २.१८; ,, ४९; धर्मोप० (उक्तं) १.१; श्रा० सा० (उक्तं) १, ७३३, }
संसार-चक्कवाले भावसं० ५४
संसारत्था दुविहा वसुनं० १२
संसारम्मि अणंतं ,, १००

ह

हय-गय-गोदाणाइं भावसं० १७६
हय-गय-सुणहहं सावय० ८२
हरमाणो परदव्वं वसुनं० १०६
हरिऊण परस्स धणं ,, १०२
हरि-रइय-समवसरणो भावसं० २६
हलुवारंभहिं मणुयगइ सावय० १६३
हवइ चउत्थं झाणं भावसं० १३
हा मणुभवें उप्पज्जिऊण वसुनं० १९३
हा मुयह मं मा पहरह ,, १४९
हारिउ ते धणु अप्पणउं सावय० ८४
हा हा कय णिल्लोए वसुनं० १९६
हिंडाविज्जइ टिंटे ,, १०७
हिद-मिद-वयणं भासदि स्वामिका० ३३
हियकमलिणि ससहर सावय० २१३
हिय-मिय-पुज्जं वसुनं० ३२७
हिय-मियमण्णं पाणं रयण० २३
हिंगु धिय तेल सलिलं धर्मोप० (उक्तं) ३, ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिंसाइदोस जुत्तो	भावसं० २०४	हुंडावसप्पिणीए	वसुनं० ३८५
हिंसाइसु कोहाइसु	रयण० ५३	होइ वणिज्जु ण पोट्टिलिंहि	सावय० १०९
हिंसा-रहिये धम्मे	व्रतसा० २	होऊण खयरणाहो	वसुनं० १३१
हिंसावयणं ण वयदि	स्वामिका० ३२	होऊण चक्कवट्टी	,, १२९ / भावसं० १३५
हिंसा-विरई सच्चं	भावसं० ४		
हीणादाण वियार	रयण० ७४	होऊण सुई चेइयगिहम्मि	वसुनं० २७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतश्लोकानुक्रमणिका

अ-क-च-त-य-ह-स- पयात्	कुन्द०	१.१५५
अकर्ता कर्म-नोकर्म	प्रश्नो०	२.१२
अकर्णदुर्बलः सूरः	कुन्द०	२.७७
अकस्माज्जातमित्युच्चैः	लाटी०	३.६६
अकर्मकठिनः पाणी	कुन्द०	५.३२
अकालविद्युति भ्रष्ट	कुन्द०	८.१२०
अकाले पुष्पिता वृक्षाः	कुन्द०	८.१३
अकारपूर्वकं शून्यं	गुणभू०	३.१२५
अकाले यदि चायाति	प्रश्नो०	२२.८
अकीर्त्यां क्लिश्यते चित्तं	धर्मसं०	६.१८८
अकीर्त्या तप्यते चेतः	सागार०	२.८५
अकुर्वन् बहुभिर्वैरं	कुन्द०	८.३९०
अक्रुद्धः शास्त्रमर्मज्ञो	कुन्द०	८.१०४
अकृत्रिमेषु चैत्येषु	सं० भाव०	११९
अकृत्रिमो विचित्रात्मा	यशस्ति०	६२४
अकृत्वा नियमं रात्रिभोजनं	श्रा० सा०	३.११४
अक्रम-कथनेन यतः	पुरुषा०	१९
अक्षपासादिनिक्षिप्तं	लाटी०	१.११४
अक्षय्यकेवलालोक	अमित०	१५.७३
अक्षरमात्रपदस्वर-हीनं	लाटी०	६.८९
अक्षर-स्वर-सुसन्धिपदाद	प्रश्नो०	२४.१४४
अक्षरैर्न विना शब्दाः	पूज्यपा०	३९
अक्षाज्ज्ञानं रुचिर्मोहा	यशस्ति०	२३०
अक्षार्थानां परिसंख्यानं	रत्नक०	८२
अखण्ड-तन्दुलैः शुभैः	उमा०	१६५
अखिल-कुजन-सेव्यां	प्रश्नो०	१५.५४
अखिल-गुण-निधानं सर्वः	प्रश्नो०	२४.१ ७
अखिल-गुण-निधानं धर्म	प्रश्नो०	२३.१४८
अखिल-गुण-समुद्रं कृत्स्न	प्रश्नो०	२४.११८
अखिल-गुण-समुद्रः पूजितो	प्रश्नो०	१६.८९
अखिल-दुरितमूलां दुर्गति	प्रश्नो०	१६.११०
अखिलसुजनसेव्यं धर्मपीयूष	प्रश्नो०	२३.१२०
अगदः पावनः श्रीदो	कुन्द०	१.११
अगम्यं परमं स्थानं	कुन्द०	११.२५
अगाध-जल-सम्पूर्णं	उमा०	२०४
अगालितं जलं येन	व्रतसा०	१०
अगृहीतं स्वभावोत्थं	धर्मसं०	१.३७
अग्निज्वालोपमा नारी	प्रश्नो०	२३.८१
अग्निः पीडयते याम्यां	कुन्द०	८.३०
अग्निमूर्तः कथं ध्मातो	,,	११.७७
अग्निवत्सर्वभक्षित्वं	धर्मोप०	४.८३
अग्निवेश्मसु सर्वेषु	कुन्द०	८.६३
अग्निस्तृप्यति नो काष्ठैः	धर्मसं०	५.३२
अग्नेर्दिशि तु 'क' प्रश्ने	कुन्द०	१.५७
अग्रभागे लसत्तारहारं	श्रा० सा०	१.४६३
अग्रस्थिते यदा दूते	कुन्द०	८.१६२
अग्रस्थितो वामगो वापि	कुन्द०	१.९५
अग्रे प्रगच्छतश्चैको	प्रश्नो०	१४.५९
अघप्रदायीनि विचिन्त्य	अमित०	५.७२
अघस्य बीजभूतानि	प्रश्नो०	२.५६
अघ्नन्नपि भवेत्पापी	यशस्ति०	३२६
अङ्कनं नासिकावेधो	श्रा० सा०	३.२७८
अङ्कनं मङ्कनं लङ्कं	उमा०	४१५
अङ्कुरं सुन्दरे बीजे	कुन्द०	११.८५
अङ्गचङ्गमनिर्धूत	श्रा० सा०	१.५१०
अङ्गदेशाभिवर्तिन्यां	श्रा० सा०	१.२३७
अङ्गदेशे जनाकीर्णे	प्रश्नो०	६.३
अङ्गपूर्व-प्रकीर्णात्म	गुणभू०	१.६२
अङ्गपूर्व-प्रकीर्णानि	प्रश्नो०	१.६
अङ्गपूर्व-प्रकीर्णोक्तं	यशस्ति०	८०८
अङ्गप्रकटनं क्रीडां	कुन्द०	५.१६८
अङ्गप्रक्षालनं कार्यं	भव्यध०	६.३४६
अङ्गमर्दननीहार	कुन्द०	३.६०
अङ्गरागं च ताम्बूलं	कुन्द०	५.१७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्गसारं विशालं प्रोपासका	प्रश्नो०	१.२७
अङ्गसंवाहनं योग्य	गुणभू०	३.९२
अङ्गानां सप्तमाङ्गाद्	महापु०	३८.५४
अङ्गानि चालयन् योऽपि	प्रश्नो०	१८.१५९
अङ्गानि यानि सन्त्यत्र	प्रश्नो०	४.३२
अङ्गादङ्गात्सम्भवसि	महापु०	४०.११४
अङ्गार-भ्राष्ट्रकरण	श्रा० सा०	३.२७१
अङ्गार-भ्राष्ट्रकरणभयः	उमा०	४०७
अङ्गीकृत्य विमानैश्यं	धर्मसं०	६.१३७
अङ्गुष्ठमात्रं बिम्बं च	उमा०	११४
अङ्गुष्ठस्य तले यस्य	कुन्द०	५.७७
अङ्गुष्ठः पितृरेखान्तः	कुन्द०	५.७६
अङ्गुष्ठे मोक्षार्थी तर्जन्यां	यशस्ति०	५६९
अङ्गे निःशङ्कितारव्येऽपि	प्रश्नो०	५.२
अतिथीनर्थिनो दुःस्थान्	कुन्द०	३.९
अचेतनस्य न ज्ञानं	अमित०	४.३७
अचेतनार्ऽचिता जैनी	धर्मसं०	६.३८
अचेतृतिर्यग्देवोपसृष्टा	सागार०	८.१०५
अचेलक्यं शिरोलोचो	धर्मसं०	६.२८१
अच्छिन्नं फल-पूगादि	व्रतसा०	८
अजडेनापि मर्तव्यं	कुन्द०	१२.५
अजस्तिलोत्तमाचित्तः	यशस्ति०	६२
अजः सृष्टा जगज्ज्येष्ठः	पुरु० शा०	५.६८
अजितं जिनमानम्य	प्रश्नो०	२.१
अजितादिजिनाधीशैः	प्रश्नो०	१.३१
अजीर्णे पुनराहारो	कुन्द०	३.२३
अजीवः पञ्चधा ज्ञेयः	प्रश्नो०	२.२१
अजीवप्रसवस्तोक	कुन्द०	५.११४
अजैर्यष्टव्यमित्यम	सागार०	८.८४
अजैर्होतव्यमत्रैति	धसर्मं०	७.१५४
अज्ञात-तत्त्वचेतो	यशस्ति०	७७३
अज्ञातकं फलमशोधित	व्रतो०	५९
	भावसं० (उक्तं)	३.९१
अज्ञात-परमार्थानां	यशस्ति०	१२
अज्ञातफलमद्याद्यो	धर्मसं०	२.१५१
अज्ञातफलमश्नाताः	उमा.	३०५
अज्ञातभाजन-कुतक्रजलार्द्रपात्रं	व्रतो०	५८
अज्ञातागममज्ञातं	कुन्द०	३.३६
अज्ञातादिफलं दोषादोष	प्रश्नो०	१७.१०५
अज्ञाते दुष्प्रवेशे च	कुन्द०	२.८
अज्ञानजं कुमिथ्यात्वं	प्रश्नो०	४.२४
अजानतिमिरव्याप्ति	रत्नक०	१८
अज्ञानतो यदेनो	अमित०	६.४२
अज्ञानपूर्वकं वृत्तं	उमा०	२६०
अज्ञानपूर्वक सम्यग्वृत्तं	श्रा० सा०	३.२
अज्ञानात्परमानन्दो	कुन्द०	१०.२३
अज्ञानी कर्म नोकर्म	लाटी०	३.३३
अञ्जनं भूषणं गानं	कुन्द०	५.१७३
अञ्जनं मुखसंस्कारं	प्रश्नो०	१९.१२
अञ्जनाख्यः पुनश्चौरः	,,	५.३५
अञ्जनो वीक्ष्य तं देवं	,,	५.४३
अञ्जनो व्यसनासक्तो	,,	५.५३
अञ्जलिद्वय-धान्यार्थं	,,	१४.२१
अञ्जलिं पवमानस्य	अमित०	२.१८
अटव्यां कुण्डलस्यैव	प्रश्नो०	१२.१९४
अणिमादिगुणोपेतं	धर्मोप०	५.१३
अणिमादिभिरष्टाभिः	महापु०	३८.१९३
अणुगुणशिक्षाद्यानि	अमित०	६.२
अणुत्वमल्पीकरणं	लाटी०	४.१४७
अणुव्रत-गुणव्रतप्रथित	व्रतो०	४३३
अणुव्रतं गुणं शिक्षा	भव्यध०	४.२५२
अणुव्रतं प्रवक्ष्येऽहं	प्रश्नो०	१५.२
अणुव्रतादिसम्पन्नं	धर्मसं०	४.११७
अणुव्रतानि पञ्च स्युः	श्रा० सा०	१२२
अणुव्रतानि पञ्च स्युः	उमा०	३३१
अणुव्रतानि पञ्चेति	धर्मोप०	४.५८
अणुव्रतानि पञ्चैव	प्रश्नो०	२४
अणुव्रतानि पञ्चैव	यशस्ति०	२९९
अणुव्रतानि पञ्चैव	रत्नमा०	१४
अणुव्रतानि पञ्चैव	धर्मोप०	४.१
अणुव्रतानि पञ्चैव	व्रतसा०	१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुव्रतानि पञ्चैव	सं०भाव०	९१
अणुव्रतानि पञ्चैव	वराङ्ग०	१५.५
अणुव्रतानि यो धत्ते	पूज्यपा०	३४
अणुव्रतानि पञ्चोच्चैः	धर्मोप०	२३३
अणुव्रतानि व्याख्याय	प्रश्नो०	१७.२
अण्डज-वुण्डज-रोमज	व्रतो०	४८
अततीत्यतिथिर्ज्ञेयः	धर्मसं०	४.८०
अतत्वमपि पश्यन्ति	अमित०	२.३
अतः कारणतो भव्यैः	व्रतो०	५१८
अतः प्रचण्डपाखण्ड	श्रा०सा०	१.३८९
अतः सर्वात्मना सम्यक्	लाटी०	१.४
अतः संसारिणो जीवा	धर्मसं०	१.१९
अतस्त्याज्यं नरैरेतत्	प्रश्नो०	१७.१००
अतः स्थानं रवेर्ज्येष्ठा	कुन्द०	८.५१
अतस्त्वत्तः परं मर्त्यं	श्रा०सा०	१.६६२
अतथ्यं मन्यते तथ्यं	अमित०	२.१०
अतद्गुणेषु भावेषु	यशस्ति०	७९३
अतद्-गुणेषु	उमा०	१७५
अतरिः स्वयमेव गृहं	अमित०	६.९५
अतस्तद्-भावना कार्यं	धर्मसं०	७.१४२
अतत्वे तत्त्वश्रद्धानं	लाटी०	३.१११
अतावकगुणं सर्वं	यशस्ति०	६५३
अतिकांक्षा हता येन	रत्नमा०	३७
अतिक्रम्य दिनं सर्वं	श्रा० सा०	३.३१२
अतिक्रम्य दिनं सर्वं	उमा०	४२७
अतिक्रमो न कर्त्तव्यः	प्रश्नो०	१८.९६
अतिचारविनिर्युक्तं	,,	१३.२८
अतिचारविनिर्युक्तं	,,	११.९५
अतिचाराः सम्यक्त्वे	पुरुषा०	१८१
अतिचारे व्रताद्येषु	रत्नमा०	५७
अतितृष्णां विधत्ते यः	प्रश्नो०	१५.५०
अतिथिः प्रोच्यते पात्रं	धर्मसं०	४.८२
अतिथिर्यस्य भग्नाशो	कुन्द० (उक्तं)	३.१६
अतिथिसंविभागस्य	लाटी०	५.१८०
अतिथिसंविभागाख्यं	,,	५.२१९
अतिथिसंविभागोऽयं	धर्मसं०	४.१२०
अतिथीनर्थिनो दुःस्थान्	कुन्द०	३.९
अतिप्रसंगं निक्षेप्तुं	धर्मसं०	४.३७
अतिप्रसंगमसितुं	सागार०	४.३०
अतिप्रसङ्गहानाय	यशस्ति०	३०९
अतिप्रातश्च सन्ध्यायां	कुन्द०	३.२९
अतिमिथ्यात्विनः पापाः	धर्मसं०	७.१०६
अतिवाहनं तथातिसग्रंहश्च	धर्मोप०	४.५५
अतिवाहनातिसग्रह	रत्नक०	६२
अतिशीतोष्णदंशादि	प्रश्नो०	१८.५४
अतिष्ठद् रममाणोऽयं	धर्मसं०	६.११२
अतिसङ्कीर्ण-विषमाः	कुन्द०	५.१०८
अतिसन्धापनं मिथ्योप	हरिवं०	५८.५२
अतिसूक्ष्मास्त्रसा यत्र	धर्मसं०	३.२२
अतिसंक्षेपाद् द्विविधः	पुरुषा०	११५
अतिह्रस्वातिदीर्घां च	कुन्द०	५.११२
अतीचारा व्रते चास्मिन्	धर्मसं०	३.६०
अतिस्तोकं परस्वं यो	प्रश्नो०	१४.१०
अतिस्तोकेन नीरेण	,,	१२.१२१
अतीचारपरित्यक्तं	,,	१७.१४
अतीचारविनिर्मुक्तां	,,	१७.१३७
अतीचारास्तु तत्रापि	लाटी०	१.१४९
अतीताब्दशतं यत्स्यात्	{ उमा०	१.१३३
	{ कुन्द० श्रा०	७.४७
अतीताब्दशतं यत्स्यात्	कुन्द०	१.१३३
अतीतास्तेऽप्यहो सर्वे	प्रश्नो०	७.४७
अतीर्ष्यातिप्रसङ्गो	कुन्द०	५.१४६
अतीर्ष्यार्त्तो हि रोषः स्याद्	कुन्द०	५.१४८
अतुच्छैस्तस्य वात्सल्यैः	श्रा० सा०	१.६९६
अतुच्छैस्तस्य वात्सल्यैः	,,	१.३५५
अतुलगुणनिधानं	प्रश्नो०	४.६१
अतृप्तिजनकं सेवा	,,	२३.११
अतो गत्वा वितन्वन्तु	श्रा० सा०	१.७२७
अतो ज्ञानमयात्वात्ते	धर्मसं०	७.११३
अतोऽतिबालविद्यादीन्	महापु०	४०.२१२
अतो निर्विचिकित्साङ्ग	श्रा० सा०	१.३३२
अतोऽन्येऽपि प्रजायन्ते	उमा०	३२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतोऽप्युत्तरदिग्देशे	प्रश्नो०	७.४३
अतो मुमुक्षुणा हेया	पुरु० शा०	४.१३२
अतो देव तमद्याहं	प्रश्नो०	१२.१७०
अतो देशव्रताभिख्ये	सं० भावसं०	१
अतोऽयमेव हिंस्यः	श्रा० सा०	१.५५५
अतो लक्षणमेषां च	पुरु० शा०	३.६०
अतो विमानमारुह्य	श्रा० सं०	१.६७४
अतो विवेकिभिर्भव्यैः	धर्मोप०	३.१५
अतो व्रज गृहीत्वा	प्रश्नो०	१२.१९६
अतो हि धनदेवस्य	,,	१३.५४
अत्ति यः कृमिकुलाकुलं पलं	अमित०	५.१७
अत्थानकं नचादेयं	प्रश्नो०	१७.११३
अत्थानकं प्रखादन्ति	,,	१७.११२
अन्यायाचरणात्सोऽपि	,,	१४.१६
अत्यक्षेऽप्यागमात्पुंसि	यशस्ति०	५८
अत्यक्तात्मीयसद्-वर्णं	प्रश्नो०	२२.६९
अत्यक्तायां तु हिंसादि	लाटी०	४.११८
अत्यन्ततनुशोषेव	श्रा० सा०	१.४२३
अत्यन्त-निशितधारं	पुरुषा०	५९
अत्यन्तनिःस्पृहो लोके	प्रश्नो०	१४.५२
अत्यन्त-मलिनो देहः	यशस्ति०	६९
अत्यन्त-संग्रहं योऽपि	प्रश्नो०	१६.४८
अत्यर्थमर्थकाङ्क्षाया	यशस्ति०	४१२
अत्यल्पायतिरक्षजा	,,	४६३
अत्यादरः स्मृतिर्नित्यं	धर्मोप०	४.१४६
अत्यालोकादनालोकाद्	कुन्द०	५.१५०
अत्याशक्त्याऽनवसरे	कुन्द०	५.२३८
अत्यासन्नो हि यो भूत्वा	प्रश्नो०	१८.११७
अत्युक्तिमन्यदोषो	यशस्ति०	३.५९
अत्र तात्पर्यमेवैतत्	लाटी०	४.१२७
अत्र तात्पर्यमेवैतान्	लाटी०	३.१६
अत्र सुवर्णशब्देन	लाटी०	५.१०२
अत्र सूत्रे चकारस्य	लाटी०	४.१३५
अत्राणं क्षणिकैकाना	लाटी०	३.५४
अत्राति विस्तरेणालं	लाटी०	२.६
अत्राति विस्तरेणालं	लाटी०	३.१८७
अत्रातीचारसंज्ञाः स्युः	लाटी०	५९७
अत्राभिज्ञानमप्यस्ति	लाटी०	१९५
अत्रानुरागशब्देन	लाटी०	२.७९
अत्रापर्याप्तिशब्देन	लाटी०	४.८२
अत्रापि देशशब्देन	लाटी०	४.१२२
अत्रापि सन्त्यतीचाराः	लाटी०	५.४८
अत्राप्यऽऽशङ्कहो कश्चिद्	लाटी०	४.१२९
अत्रामुत्र च नियतं	यशस्ति०	५७७
अत्रावश्यं त्रिकालेऽपि	लाटी०	६.८
अत्रासत्यपरित्याग	लाटी०	५.१७
अत्रापि पूर्ववद्दानं	महापु०	३८.९७
अत्राभिप्रेतमेवैतत्	लाटी०	३.२९७
अत्रान्तरे मधुरायां	प्रश्नो०	१०.४१
अत्रान्तरे श्रणु श्रीमन्	धर्मसं०	२.५१
अत्रेर्याविचनं यावद्	लाटी०	४.२०५
अत्रैकाक्षादिजीवाः स्युः	लाटी०	४.६४
अत्रैव नगरे पुत्री	प्रश्नो०	२१.१०२
अत्रैव भारते वर्षे	प्रश्नो०	१६.८९
अत्रैवाऽऽयोभिधे खण्डे	धर्मसं०	६.१०९
अत्रोक्तं वधशब्देन	लाटी०	४.२६२
अत्रोत्तरं कुदृष्टिर्यः	लाटी०	३.१८
अत्रोदुम्बरशब्दस्तु	लाटी०	१.७९
अत्रोद्देशोऽपि न श्रेयान्	लाटी०	३.१२४
अथ कश्चिद् गृहस्थोऽपि	पुरु० शा०	६.३१
अथ कार्यः परित्यागः	पुरु० शा०	६.१९
अथ किं बहुनोक्तेन	लाटी०	४.५२
अथ कुम्भपुरे दुर्गे	प्रश्नो०	९.३०
अथ क्वचिद् यथा हेतोः	लाटी०	३.२९३
अथ क्रियां च तामेव	लाटी०	२.१३४
अथ च पाक्षिको यद्वा	लाटी०	३.१४८
अथ चेन्निश्चलं ध्यानं	सं० भावसं०	१६९
अथ चौर्यव्यसनस्य	लाटी०	१.१६२
अथ जातिमदावेशात्	महा पु०	३९.१०८
अथ तत्पाठसंहृष्टो	श्रा० सा०	१.५९९
अथ तद्-व्रतमाहात्म्या	श्रा० सा०	१.५५६
अथ तेऽकम्पनाचार्यादयो	प्रश्नो०	९.३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ ते कृतसन्मानः	महापु०	३८.२३
अथ धातुचतुष्काङ्गा	लाटी०	४.८५
अथ नत्वाऽर्हतोऽक्षूण	सागार०	१.१
अथ नन्दीश्वराष्टम्या	श्रा० सा०	१.२४०
अथ नन्दीश्वराष्टम्यां	प्रश्नो०	१२.१४६
अथ न प्रार्थयेद् भिक्षां	धर्मसं०	५.६७
अथ नागपुरे चक्री	श्रा० सा०	१.५६१
अथ नानुमतिं दद्याद्	पुरु० शा०	६.५४
अथ नारी भवेद् रण्डा	धर्मसं०	६.२७६
अथ निर्लोभता शौचं	व्रतो०	३७४
अथ निर्विचिकित्साख्यो	लाटी०	३.९९
अथ निःशङ्कितत्वं प्राङ्	पुरु० शा०	३.५८
अथ निर्माश्चित्तौ बाह्यस्य	पुरु० शा०	११७
अथ प्रातर्बहिर्भूर्भि	श्रा० सा०	१.३५९
अथ प्राज्ये प्रभू राज्ये	श्रा० सा०	१.३४७
अथ मृषात्यागलक्षणं	लाटी०	५.१
अथवा कुर्कुर-कुर्कुर	व्रतो०	४५०
अथवा चरमदेह	प्रश्नो०	२२.३९
अथवा—चेतनाचेतना	यशस्ति०	४०१
अथवा तद्दशांशेन	कुन्द०	१ १४६
अथवादः परित्यज्य	श्रा० सा०	१.५९३
अथवा न विद्यते यस्य	धर्मसं०	४.८१
अथ योग्यं समाहूय	धर्मसं०	५.४०
अथ रम्ये दिने स्वरूप	श्रा० सा०	१.६३८
अथ राज्ये लसत्कीर्ति	श्रा० सा०	१.४०३
अथवा वीतरागाणां	धर्मसं०	४५३
अथवा सच्चिदानन्दा	श्रा० सा०	३.३६१
अथवा सातिपुण्येन	प्रश्नो०	१६.२३
अथवा सा द्रव्यपूजा	धर्मसं०	६.९३
अथवा सिद्धचक्राख्यं	सं० भाव०	५४
अथवा सूक्ष्मजन्तूनां	भव्यध०	१.८७
अथवा स्वरूपं निश्चत्य	प्रश्नो०	२२.११
अथ श्री जिनमानम्य	धर्मोप०	३.१
अथ श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तं	धर्मोप०	२.१
अथ सन्ततिसातत्यभीरवो	पुरुशा०	६.२६
अथ सामान्यरूपं तद्	लाटी०	४.१६२
अथ सामायिकादीनां	धर्मसं०	५.१
अथ सूरिरुपाध्यायः	लाटी०	३.२१६
अथ हिंसाकरं क्षेत्रं	प्रश्नो०	१६.७
अथ सम्प्रवक्ष्यामि	महा० पु०	३९.८१
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि	महा० पु०	४०.१
अथातो निजपत्नीतो	श्रा० सा०	१.६६४
अथात्तोऽस्य प्रवक्ष्यामि	महा० पु०	४०.१६५
अथानन्तमती ब्रूते	प्रश्नो०	६.३७
अथानन्तमती शोक	प्रश्नो०	६.३०
अथाऽऽनम्य जिनं वीरं	पुरु०शा०	५.१
अथानम्यार्हतो वक्ष्ये	पुरु०शा०	६.१
अथानिष्टार्थसंयोगो	लाटी०	५.९५
अथान्ययोषिद्-व्यसनं	लाटी०	१.१७६
अथापरदिने चर्या	प्रश्नो०	७.४८
अथापि मिथिलाख्यायां	प्रश्नो०	९.४३
अथाऽऽपृच्छ्य निजां	श्रा० सा०	१.४८९
अथाब्रवीद द्विजन्मभ्यो	महापु०	३९.१
अथामरावतीनाथो	श्रा० सा०	१.६४३
अथायोध्यां समासाद्य	श्रा० सा०	१.२६५
अथाऽऽरम्भपरित्यागो	पुरु०शा०	६.४२
अथासिद्धं स्वतन्त्रत्वं	लाटी०	३.९१
अथासौ फाल्गुने मासि	श्रा०सा०	१.७१२
अथास्रवः कर्मसम्बन्धः	कुन्द०	८.२४३
अथाऽस्त्येकः स सामान्यात्	लाटी०	३.१५९
अथाहारकृते द्रव्यं	लाटी०	१.१८
अथाहूय सुतं	सागार०	७.२४
अथेर्यापथसंशुद्धि	सागार०	६.११
अथैकदा गणाधीशः	धर्मसं०	१.१
अथैकदा घृतेजाते	प्रश्नो०	१६.९६
अथैकदार्तध्यानेन	प्रश्नो०	२१.१७५
अथैकदापुरे तत्र	प्रश्नो०	१ ,६६
अथैतस्मिन् महीभर्तुः	श्रा० सा०	१.६६७
अथोत्तरमथुरायां स	श्रा० सा०	१.३५१
अथोत्थाय श्रुतोम्भोधि	श्रा० सा०	१.३५६
अथोद्दिष्टाऽऽहृतित्याग	पुरु० शा०	६.७२
अदत्तपरवित्तस्य	सं० भाव०	१४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अदत्तपरिहारेण	प्रश्नो०	१४.४१
अदत्तं गृह्णता वित्तं	पुरु० शा०	४.८४
अदत्तं यो न गृह्णाति	प्रश्नो०	१४.३८
अदत्तं यो न गृह्णाति	प्रश्नो०	१४.४
अदत्तमन्त्रिणे राज्यं	श्रा० सा०	१.५७४
अद्भ्य उद्गीर्णे जलानां	कुन्द०	३.२२
अदत्तस्य परस्वरूप	यशस्ति०	३४९
अदत्तस्य यदादानं	लाटी०	५.३३
अदत्तस्य स्वयं ग्राहो	हरिवं०	५८.१७
अदीक्षार्हे कुले जाता	महा० पु०	४०.१७०
अदीक्षापनयौ गूढावलम्बौ	धर्मसं०	६.१६
अदुर्जनत्वं विनयो	यशस्ति०	८.७४
अदृष्टविग्रहाच्छान्ता	यशस्ति०	७७
अदृष्टमृष्टव्युत्सर्गादान	प्रश्नो०	१९.६७
अदेवे देवताबुद्धि	यशस्ति०	१४३
अदेवे देवताबुद्धि	श्रा० सा०	८३
अदेवे देवताबुद्धि	उमा० श्रा०	६
अदेवे देवताबुद्धि	धर्मोप०	१.५४
अदेवे देवबुद्धिः स्याद्	लाटी०	३.११७
अदैन्यवैराग्य कृते	उमा०	५०
अदैन्यवैराग्यपरीषहादि	श्रा० सा०	१.३१४
अदैन्यासङ्गवैराग्य	यशस्ति०	१३५
अद्य दिवा रजनीवा	रत्नक०	८९
अद्य यावन्मया वत्स	धर्मसं०	५.४१
अद्य यावद् यथालिङ्गो	लाटी०	६.४९
अद्य रात्रिंदिवा वापि	धर्मसं०	४.३५
अद्य श्वो वा परस्मिन् वा	पूज्य०	९६
अद्याहं सफलो जातः	धर्मसं०	४.९७
अद्भिः शुद्धिं निराकुर्वन्	यशस्ति०	४३५
अद्राक्षमहमद्यैव	श्रा० सा०	१.४८३
अद्रिमध्ये यथा मेरुः	प्रश्नो०	२०.८२
अद्रिं समुत्थितं दृष्टं	भव्यध०	१.४५
अद्रयब्धितटिनीदेश	उमा०	३९३
अद्रोहः सर्वसत्त्वेषु	यशस्ति०	९४७
अद्वैतं तत्त्वं वदति कोऽपि	यशस्ति०	५५३
अध ऊर्ध्वगतिं जीव	व्रतो०	५१७
अधः कृतं मया भोगि	श्रा० सा०	१.२६
अधर्मकर्मनिर्मुक्ति धर्मं	यशस्ति०	२४७
अधर्मस्तु कुदेवानां	लाटी०	३.१२२
अधर्माद् धर्ममाख्याति	भव्यध०	१.६६
अधर्माणाचिरैराद्य	कुन्द०	१.१०९
अधस्तात्तस्य योगस्य	श्रा० सा०	१.६२९
अधस्तादूर्ध्ववक्त्राणि	श्रा० सा०	१.२१०
अधस्ताच्छ्वभ्रभूषट्के	अमित०	२.६
अधिकाराः स्युश्चत्वारः	सं० भाव०	७०
अधिकारे ह्यसत्यस्मिन्	महापु०	४०.२०३
अधिष्ठान भवेन्मूलं	व्रतसा०	१
अधिष्ठानं भवेन्मूलं	प्रश्नो०	११.४३
अधिष्ठानं भवेन्मूलं	पूज्य०	११
अधिष्ठानं यथा शुद्धं	धर्मोप०	१.४६
अधीतविद्यं तद्विद्यै	महापु०	३८.१७३
अधीत्य सर्वशास्त्राणि	यशस्ति०	६७३
अधुना समुपात्तात्मकाय	धर्मसं०	७.१७६
अधुनैव कृतं ध्यानं	व्रतो०	४९८
अधोऽपूर्वानिवृत्याख्यं	लाटी०	२.१७
अधोभागमधो लोकं	गुणभू०	३.१२१
अधोमध्योर्ध्वलोकानां	,,	२.९
अधोमध्योर्ध्वलोकेशाः	पुरु० शा०	३.२६
अधोमध्योर्ध्वलोकेषु	यशस्ति०	८८५
अधोमध्योर्ध्वलोकेषु	सागार०	८.७०
अधोमध्योर्ध्वलोकेषु	सागार०	८.७२
अधौतमुखहस्ताङ्घ्रि	कुन्द०	३.३१
अध्यगीष्ट तथा बालः	श्रा० सा०	१.६५४
अध्यधिव्रतमारो	यशस्ति०	८२३
अध्यात्माग्नौ	यशस्ति०	८४९
अध्रुवमशरणमेकत्व	पुरु० शा०	२०५
अध्रुवाणि समस्तानि	पद्म० पंच०	४५
अध्रुवाशरणे चैव	पद्म० पंच०	४३
अनग्निपक्वमन्यद्वा	प्रश्नो०	२२.६८
अनग्निपक्वमाहारं	प्रश्नो०	२४.५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनङ्गानलसंलीढे	यशस्ति०	३९५
अनन्तकायाः सर्वेऽपि	सागार०	५.१७
अनन्तकालं समवाप्य नीचां	अमित०	६,३५
अनन्तगुणसन्दोहं	प्रश्नो०	१९.२१
अनन्तगुणसन्निधौ	यशस्ति०	५६२
अनन्तगुणसम्पूर्णान्	प्रश्नो०	३.७८
अनन्तं च महावीर्यं	प्रश्नो०	३.७५
अनन्तजन्मसन्तानदायिना	प्रश्नो०	३.७
अनन्तदर्शन-ज्ञान	अमित०	१५.५०
	प्रश्नो०	२०.९६
अनन्तदुःखसन्तान	,,	४.१२
अनन्तमहिमायुक्तां	,,	११.८३
अनन्तमहिमोपेतं	,,	२०.९३
अनन्तरेषदूनाङ्गः	अमित०	३.४
अनन्तशक्तिरात्मेति	सागार०	७.१७
अनन्तं श्रीजिनं वन्दे	प्रश्नो०	१४.१
अनन्तसुखसाद्भूत	पुरु० शा०	५.७५
अनन्तसुखशब्दश्च	महापु०	४०.१५
अनन्तानन्तकालेऽपि	धर्मोप०	५.१६
अनन्तानन्तजीवाश्च	भव्यध०	२.१७०
अनन्तानन्तजीवास्तु	लाटी०	४.८८
अनन्तानन्तसंसारे	भव्यध०	२.१७१
अनन्तरयाश्च गृद्धयाः	पद्मच०	१४.६
अनन्यजन्यं सौजन्यं	कुन्द०	३.६
अनन्यशरणो वस्तु	प्रश्नो०	३.७९
अनन्यशरणैरेभिः	महापु०	३८.१४६
अनभ्यस्ताध्वनो जातु	धर्मसं०	७.१९
अनयैव दिशा चिन्त्यं	यशस्ति०	८५
अनर्घ्यं यद्दुराराध्यं	प्रश्नो०	२०.९५
अनर्थकारिणः कान्ताः	अमित०	८.१४
अनर्थदण्डनिर्मोक्षा	यशस्ति०	४२३
अनर्थं दुर्बलं हन्ति	भव्यध०	१.१३१
अनवरतमहिंसाया	पुरुषा०	२९
अनपेतस्य धर्मस्य	अमित०	१४.१७
अनल्पकुविकल्पस्य	कुन्द०	१०.-
अनल्पैः किमहो जल्पैः	,,	२.१०७
अनवेक्षाप्रतिलेख	यशस्ति०	७२४
अनवेक्षिताप्रमार्जित	पुरुषा०	१९२
अनवेक्षिताप्रमार्जितो	धर्मसं०	४.७९
अनवेक्ष्य मलोत्सर्गः	हरिवं०	५८.६७
अनशनमवमोदर्य	पुरुषा०	१९८
अनश्वरश्रीप्रतिबन्धकेषु	अमित०	१३.१००
अनश्वरीं यो विदधाति	,,	१.५८
अनसूयाऽविषादादि	हरिवं०	५८.७५
अनागारश्च सागारो	धर्मसं०	१.२३
अनाच्छाद्य स्वशक्तिं	प्रश्नो०	१०.७०
अनात्मनीनं परिहर्तुकामा	अमित०	१३.९०
अनात्मनीना भवदुःखहेतवो	,,	१४.३०
अनात्मार्थं विना रागैः	रत्नक०	८
	श्रा०सा०(उक्तं)	१.८९
अनात्मोचितसङ्कल्पाद्	लाटी०	५.८७
अनादरं यो वितनोति	अमित०	१.१९
अनादिकालं भ्रमतां	श्रा० सा०	३.६८
अनादिकालं भ्रमता मया	धर्मसं०	७.२०२
अनादिकालाद् भ्रमतां	उमा०	२७०
अनादिनिधना जोवा	भव्यध०	२.१६२
अनादिनिधनो ह्यात्मा	,,	२.१५७
अनादिपदपूर्वाच्च	महापु०	४०.२१
अनादिप्रभवा जीवा	कुन्द०	५.२३५
अनादिमिथ्यादृगपि	सागार०	८.४
अनादिरात्माऽनिधनः	अमित०	१४.२६
अनादिवामदृगपि	धर्मसं०	७.४
अनादिवासनालीन	श्रा० सा०	१.५१९
	,, ,,	१.६३६
अनादिश्रोत्रियायेति	महापु०	४०.३४
अनादृतश्च स्तब्धः	प्रश्नो०	१८.११०
अनादेयगिरो गर्ह्याः	अमित०	१३.११
अनादौ बम्भ्रमन् घोरे	सागार०	६.२
अनादिनिधना नूनं	लाटी०	१.६१
अनाद्यविद्यादोषोत्थ	सागार०	१.२
अनाद्यविद्यानुस्यूतां	,,	१.३
अनामिकस्य रेखायाः	कुन्द०	५.४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनामिकान्तपर्वस्था	कुन्द०	५.७४	अनुबद्धुं जगद्बन्धुं	धर्मसं०	६.१८३
अनामिकां प्रयान्त्यां तु	,,	५.५७	अनुभूतश्रुतौ दृष्टौ	कुन्द०	१.१६
अनार्तः शान्तिमान् मृत्योः	,,	१२.३	अनुभूय दुःखकारण	व्रतो०	४५९
अनार्याचरिते कार्ये	पुरु० शा०	३.१३४	अनुभूय महाघोरं	प्रश्नो०	१२.२०६
अनारम्भवधं चोज्झेद्	धर्मसं०	२.१७१	अनुभूय महादुखं	,,	१५.१२६
अनारम्भवधं मुञ्चेद्	सागार०	३.२५	अनुभूय सुरःसौख्यं	धर्मसं०	२.७७
अनारतं भवत्पुष्पवर्षा	पुरु० शा०	५.६२	अनुमानं त्रिधा पूर्वं	कुन्द०	८.२९५
अनास्वान्नियताहार	महापु०	३९.१९५	अनुमतिरारम्भे वा	रत्नक०	१४६
अनाहूतमविज्ञातं	कुन्द०	३.१०	अनुमान्या समुद्देश्या	यशस्ति०	८५८
अनिगूहितवीर्यस्य	यशस्ति०	८९०	अनुयाचेत नायूंषि	,,	६३९
अनिच्छन्ती ततस्तेन	श्रा० सा०	१.२५८	अनुयायिनि तत्त्यागा	महापु०	३८.२८९
अनिच्छन्नपि तत्पार्श्वे	प्रश्नो०	८.१३	अनुयोगगुणस्थान	यशस्ति०	८८३
अनित्यानि शरीराणि	वसुन०	४३७	अनुराधाभिजिज्ज्येष्ठो	कुन्द०	८.२८
अनित्यासृतिसंसारैक	धर्मसं०	७.८७	अनुवादादरासूया	कुन्द०	८.३०९
अनिपित्सुरपि ध्रुवं	श्रा० सा०	१.११९	अनुवीचिवचो भाष्यं	यशस्ति०	७८५
अनिष्टानुपसेव्ये ये	धर्मसं०	४.२६	अनुष्ठितं च प्रच्छन्नं	प्रश्नो०	१३.३४
अनिष्टार्थफलत्वात्	लाटी०	३.९०	अनुसरतां पदमेतत्	पुरुषा०	१७
अनिष्टेष्टप्रसंयोगे	प्रश्नो०	१८.५६	अनूत्खत्य प्रदेशं तं	प्रश्नो०	२१.११०
अनिष्टं यद्भवेत्स्वस्य	{	२.६५	अनृतवचनयोगात्	,,	१३.१०७
	,,	७.११८	अनृतं कलहः क्रोधो	भव्यध०	१.१११
अनीर्तिर्हि वेषस्य	महापु०	३९.५४	अनेकर्द्धिसम्पूर्णान्	प्रश्नो०	३.१४५
अनुकम्पा कृपा ज्ञेया	लाटी०	२.८९	अनेकगुणसम्पूर्णः	,,	३.५०
अनुकूले समुत्पन्ने	धर्मसं०	७.१६६	अनेकजन्तुसंकीर्णे	उमा०	२९१
अनुक्तं मुनिना तस्या	प्रश्नो०	१.१८०	अनेकजन्मजं पापं	धर्मसं०	६४९
अनुक्ता नैव लभ्येत	धर्मसं०	२.५८	अनेकजन्मसंबद्धः	अमित०	१२.११८
अनुगामि यदुत्पन्नं	गुणभू०	२.१९	अनेकजन्मसन्ततेः	यशस्ति०	३५
अनुत्थितेषु सम्प्रीत्या	महापु०	३८.२८८	अनेककोटिदेवैश्च	प्रश्नो०	२०.९२
अनुपदेशसंवादि	अमित०	४.५८	अनेकजन्मार्जितकर्म	अमित०	१०.४२
अनुपमकेवलवपुषं	यशस्ति०	५२३	अनेकजीवसाधारं	प्रश्नो०	२०.१६९
अनुपायानिलोद्भ्रान्तं	,,	६६०	अनेकत्रससम्पूर्णे	,,	१२.८
अनुपासितवृद्धानां	कुन्द०	१.८७	अनेकभेदयुक्तस्या	,,	१७.२५
अनुप्रेक्षा अनित्याद्या	पुरु० शा०	६.१०८	अनेकभेदसंकीर्णे	,,	१७.८६
अनुप्रेक्षा इमाः सद्भिः	पद्म० पंच०	५८	अनेकमहिमायुक्ता	,,	११.७९
अनुप्रेक्षा तपोधर्मैः	व्रतो०	४२५	अनेकमेकमङ्गादि	अमित०	१५.७८
अनुप्रेक्षादिका चिन्ता	प्रश्नो०	२.६२	अनेकयोनिपाताले	,,	८.११
अनुप्रेक्षाश्च षट्द्रव्य	,,	१९.१९	अनेकाकारतां धत्ते	कुन्द०	११.२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेकातिशयापन्नं	प्रश्नो०	३.५५
अनेकान्तमयं यस्य	श्रा० सा०	१.६
	उमा० श्रा०	१
अनेकान्तमताकाशे	श्रा० सा०	१.१२
अनेकान्तात्मकं वस्तु	श्रा० सा०	१.७५
	उमा० श्रा०	३५
अनेकैर्भव्यसन्दोहैः	धर्मोप०	४.२१९
अनेन किं कृतं स्वामिन्	प्रश्नो०	२१.१७२
अनेन दत्तं विधिना	अमित०	१०.४५
अनेन मिथ्यात्वपरिग्रहेण	व्रतो०	३५९
अनेहसा या कलिलस्य	अमित०	१४.५७
अनेहसा या दुरितस्य	,,	२.६५
अनैहिकफलापेक्ष्यं	पुरु० शा०	३.३४
अनौपम्यं सुखं नृणां	प्रश्नो०	२२.९३
अन्तकाले जपेन्मन्त्रं	,,	२२.३३
अन्तकेन यदि विग्रहभाजः	अमित०	१४.८
अन्तःकर्माणि मन्त्राग्नि	पुरु० शा०	५.५३
अन्तःक्रियाधिकरणं	रत्नक०	१२३
अन्तरात्मा तु निर्भीकः	लाटी०	३.४५
अन्तरानीय दद्याच्च	पुरु० शा०	४.१७३
अन्तरायाश्च सन्त्यत्र	लाटी०	४.२३९
अन्तराया हि पाल्यन्ते	भव्यध०	१.९५
अन्तराये त्रुटे ज्ञानं	कुन्द०	११.९१
अन्तरायो भवेन्नृणां	प्रश्नो०	२४.६३
अन्तरिता यथा द्वीप	लाटी०	३.८
अन्तर्दुरन्तसञ्चारं	यशस्ति०	१६९
	श्रा०सा०	१.३४३
अन्तर्बहिर्गते सङ्गे	यशस्ति०	४०७
अन्तर्बहिर्मलप्लोषा	,,	८९१
अन्तरे करणे तत्र	अमित०	२.५२
अन्तःपुरपुरानीक	कुन्द०	८.२१
अन्तःपुरे नृपालोऽपि	श्रा० सा०	१.५७५
अन्तर्भावोऽस्ति तस्यापि	लाटी०	१.१३९
अन्तर्मुहूर्तकः कालः	अमित०	२.५०
अन्तर्मुहूर्तकालेन	,,	२.४१
	प्रश्नो०	४.३
अन्तर्मुहूर्ततो यत्र	श्रा० सा०	३.५६
	उमा० श्रा०	२९.७

अन्तर्मुहूर्तमध्येऽभूद	प्रश्नो०	२१.१८७
अन्तर्मुहूर्तमात्रान्या	उमा०	३०
अन्तर्मुहूर्तमात्रं तु	सं० भाव०	५९
अन्तश्चित्तं न शुद्धं चेद्	कुन्द०	११.२१
अन्तःशुद्धिं बहिः शुद्धिं	यशस्ति०	४२८
अन्तःसारशरीरेषु	,,	१९६
अन्तस्तत्त्वं विशुद्धात्मा	पद्म० पंच०	६०
अन्तस्तत्त्वविहीनस्य	यशस्ति०	१५२
अन्तातीतगुणप्रदं	प्रश्नो०	२३.१४९
अन्तातीतप्रदेशोऽपि	,,	२.२६
अन्ते संन्यासमादाय	,,	६.४०
अन्धकूपे वरं क्षिप्तं	,,	२०.१३९
अन्धत्वं वामनत्वं च	,,	२२.१०१
अन्धाः कुब्जकवामना	प्रश्नो०	१२.१२५
अन्धसा क्रियते यावान्	अमित०	११.२६
अन्धो मदान्धैः प्रायेण	सागार०	८.२३
अन्नदानप्रसादेन	अमित०	११.२२
अन्नपानादिकं कर्म	श्रा० सा०	३.७५
	उभा० श्रा०	२७३
अन्नपानादि ताम्बूलं	धर्मोप०	४.१४३
अन्नपाननिरोधस्तु	हरिवं०	५८.५१
अन्नपाननिरोधाख्यो	लाटी०	४.२७०
अन्नदानं द्विधा प्रोक्तं	पूज्य०	४१
अन्नदानभवां सारां	प्रश्नो०	२१.५४
अन्नदानसमं दानं	उमा०	२२८
अन्नस्याहारदानस्य	सं० भाव०	१२७
अन्नं स्वाद्यं च लेह्यं च	धर्मसं०	७.३२
अन्नं पानं खाद्यं	रत्नक०	१४२
अन्नं पानं तथा खाद्यं	धर्मोप०	४.२३७
अन्नं पानं च खाद्यं च	,,	४.१३४
	प्रश्नो०	२२.७७
अन्नं मद्गादि शुष्ठ्यादि	लाटी०	१.१६
अन्नं सविषमाघ्राय	कुन्द०	३.८५
अन्नं हालाहलाकीर्णं	कुन्द०	३.८१
अन्नानि मिष्टान्यपि यत्र	श्रा० सा०	३.१८
अन्नेन गात्रं नयनेन वक्त्रं	अमित०	१.१६
अन्नैः पुष्टो मलैर्दुष्टो	सागार०	८.२१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यग्राम-गृहायातं	पुरु० शा०	४.१७८
अन्यजातेरन्यजाते:	कुन्द०	८.१९
अन्य: कौपीनसंयुक्त:	सं० भाव०	१०५
अन्यत्सूक्ष्मक्रियं तुर्यं	अमित०	१५.१५
अन्यत्राप्येवमित्यादि	लाटी०	६.९
अन्यथा जीवितव्यस्य	श्रा० सा०	१.२१९
अन्यथा दोष एवं स्यात्	लाटी०	१.२४
अन्यथाऽन्यकृतां सृष्टि	महापु०	४०.१९१
अन्यथा विमतिर्भूपो	,,	३८,२७३
अन्यथा सर्वलोकेऽस्मिन्	लाटी०	५.३४
अन्यथा सृष्टिवादेन	महापु०	४०.१८८
अन्यथैकेन जीवेन	अमित०	७.२०
अन्यदा क्षीणमालोक्य	श्रा० सा०	१५६७
अन्यथा नन्दनो ज्येष्ठ:	श्रा० सा०	१.६९०
अन्यदा प्रस्फुरच्चिन्ता	,,	१.६२८
अन्यदा वर्धमानस्य	,,	१.५००
अन्यद्रव्यग्रहादेव	धर्मसं०	७.५२
अन्यविवाहकरणं	प्रश्नो०	१५.४४
अन्यविवाहाकरण	रत्नक०	६०
अन्यस्त्रीव्यसनत्याग	धर्मसं०	२.१६७
अन्यस्मिन् दिवसे चर्या	श्रा० सा०	१.३९२
अन्यस्मिन् दिवसे सोऽथ	,,	१.३७२
अन्यस्मिन् वासरे जैनं	,,	१.३८५
अन्यान्मणिव्रतादींश्च	उमा०	३८९
अन्यान्यपि च दुष्कर्माणि	,,	४७१
अन्यायकुसमाचारौ	कुन्द०	८.१०
अन्यायद्रव्यनिष्पन्न:	,,	१.१४४
अन्यायि-देव-पाखण्डि	,,	२.७३
अन्यायतोऽपि या लक्ष्मी	प्रश्नो०	२०.१२२
अन्यूनमनतिरिक्तं	रत्नक०	४२
अन्ये गुणा जिनेन्द्राणां	प्रश्नो०	३.७६
अन्ये च वहव:सन्ति	,,	७.५८
अन्ये चातिशयं दृष्ट्रा	,,	१०.६६
अन्ये चार्हद्दिवा ब्रह्म	धर्मसं०	५.२२
अन्येद्युर्दक्षिणस्यां स	श्रा० सा०	१.३७८
अन्ये नारक-तिर्यक्त्व	धर्मसं०	७.१०८
अन्येऽपि प्रतिमायां ये	धर्मसं०	५.८२
अन्येऽपि बहव: श्वभ्रं	प्रश्नो०	१३.२०८
अन्येऽपि बहव: सन्ति	,,	५.५७
अन्येऽपि भूरिशो यत्र	धर्मसं०	७.१५८
अन्येऽपि ये त्वतीचारा	,,	२.१५४
अन्येभ्यो नित्यमाख्याति	पूज्य०	१०१
अन्ये ये बहव: ख्याता:	प्रश्नो०	१५.१०७
अन्ये ये बहवो नष्टा:	,,	१४.८५
अन्ये ये बहवो नष्टा:	,,	१२.५४
अन्ये ये बहव: प्राप्ता:	,,	१६.८४
अन्ये ये ब्रहव: प्राप्ता:	,,	२१.५२
अन्ये ये बहव: सन्ति	,,	९.६५
अन्ये ये बहव: सन्ति	,,	१०.६८
अन्ये ये बह्वो जाता:	,,	१५.१३१
अन्येषामुपदेशं यो	,,	१४.३०
अन्येषां नाधिकरित्वं	सं० भाव०	२६
अन्येषां योऽपि दातृणां	प्रश्नो०	२१.८
अन्यै: कृत्वापि प्रद्वेषं	,,	१८.१३१
अन्यैरपि दशधा श्राद्धै:	धर्मसं०	५.७९
अन्यैश्च बहुवाग्जालै:	महापु०	३९.२००
अन्योन्यजानुस्कन्धान्त	कुन्द०	१.१२६
अन्योन्यतत्त्वान्तर्भावाद्	कुन्द०	८.२७६
अन्योन्यस्येर्षया यत्र	लाटी०	१.१२०
अन्योन्यानुप्रवेशेन	यशस्ति०	१११
अन्योऽहं पुद्गलश्चान्य:	सागर०	८.५२
अपक्वमर्धपक्वं तु	भव्यध०	६.३६१
अपक्वमर्धपक्वं वा	प्रश्नो०	२२.७१
अपथ्यमन्नमेतस्मै	श्रा० सा०	१.३९६
अपथ्यसेवको रोगी	कुन्द०	८.४१०
अपध्यानं करोत्यन्य:	प्रश्नो०	१७.६०
अपध्यानं जय: स्वस्य	हरिवं०	५८.३५
अपनीय तदुच्छिष्टं	प्रश्नो०	७.५१
अपनीयातिदुर्गन्ध	श्रा० सा०	१.३९७
अपमानादिकान् दोषान्	कुन्द०	११.१९
अपरत्वं बुद्धिमाख्ये	कुन्द०	८.२८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपरस्मिन् भवे जीवो	पूज्य०	७३
अपराण्यपि लक्ष्माणि	लाटी०	२.२८
अपरित्यज्य तान् दोषान्	प्रश्नो०	१८.१५०
अपरीक्षितमालिन्य	उमा०	३०६
अपरेद्युर्दिनारम्भे	महापु०	३८.२५४
अपरेऽपि यथाकामं	लाटी०	३.१२०
अपमृत्युविनाशनं भव	महा० पु०	४०.२५
अपवादस्तूपात्तानां	लाटी०	५.९०
अपवित्रः पवित्रो वा	यशस्ति०	६७५
अपर्याप्तकजीवस्तु	लाटी०	४.७९
अपहाय पयःपान	श्रा० सा०	३.३५९
अपात्रदानजं दोषं	प्रश्नो०	२०.१३१
अपात्रदानता किञ्चिन्न	अमित०	११.९०
अपात्रदान दोषेभ्यो	अमित०	११.९६
अपात्रदानयोगेन	प्रश्नो०	२०.१३८
अपात्रमाहुराचार्याः	धर्मसं०	४.११८
अपात्रमिव यः पात्रं	अमित०	११ ९८
अपात्राय धनं दत्तं	अमित०	११.८९
अपात्राय धनं दत्ते	,,	११.९७
अपात्राय प्रदत्ते यो	प्रश्नो०	२०.१३६
अपात्रे विहितं दानं	सं० भाव०	१६५
अपापोहता वृत्तिः	महापु०	३८.४४
अपामार्गे च धीर्विद्या	कुन्द०	१.६५
अपायो हि सपत्नेभ्यो	महापु०	३८.२७६
अपारसंसारसमुद्रतारकं	अमित०	२.८३
अपारापारसंसार	उमा०	११
	श्रा० मा०	१.९२
अपास्तैकान्तवादीन्द्रा	यशस्ति०	४५४
अपि चात्मानुभूतिश्च	लाटी०	२.४२
अपि चैषां विशुद्ध	महापु०	३९.१४५
अपि छिन्ने व्रते साधोः	लाटी०	३.१६८
अपि तत्र परोक्षत्वे	,,	२.१०७
अपि तत्रापिनिन्दादि	,,	४.१४३
अपि तीर्थादियात्रासु	लाटी०	२.१६९
अपिधानमावरणं	लाटी०	५.२२७
अपि येन विना ज्ञानं	,,	२.५
अपि रागं समुत्सृज्य	महापु०	३८.१७७
अपि शान्त्यै न कर्त्तव्यो	श्रा० सा०	३.१३८
	उमा०	३४३
अपि सन्ति गुणाः सम्यक्	लाटी०	२.५५
अपूज्यपूजा पूज्यानां	कुन्द०	८.१७
अपूर्णदौहृदाद्वायुः	कुन्द०	५.२०७
अपूर्वकरणं तस्मात्	अमित०	२.४७
अपूर्वो ह्यनिवृत्तिश्च	भव्यध०	३.२४७
अपौरुषेयतो मुक्त	अमित०	४.५९
अप्यस्ति देशस्तत्र	लाटी०	३.२००
अप्यस्ति भाषासमितिः	,,	४.२२६
अप्रत्यवेक्षितं तत्र	,,	५.२०७
अप्रत्यक्षा तवाम्बा चेद्	कुन्द०	११.८०
अप्रत्ययतमोरात्रि	धर्मसं०	३.७५
अप्रमत्तगुणाच्छ्रेणी	,,	६.२८८
अप्रमाणं महावीर्यं	प्रश्नो०	३.५९
अप्रशस्तानि कर्माणि	श्रा० सा०	१.२९७
अप्रादुर्भावः खलु	पुरुषा०	४४
अप्रादुर्भावः खलु	श्रा० सा० (उक्तं)	३.१५१
अप्रासुकेन सम्मिश्रं	सं० भाव०	८१
अप्रेरितेन केनापि	लाटी०	५.५०
अप्सरोभिश्च रन्त्वा	वराङ्ग०	१५.२२
अप्सरोभिः समाकीर्णं	श्रा० सा०	१.६१
अफला कुफला हेतुशून्या	लाटी०	३.११६
अबद्धायुष्कपक्षे तु	रत्नमा०	११
अबुधस्य बोधनार्थं	पुरुषा०	६
अबुद्धिपूर्वापेक्षायां (आप्त०)	यशस्ति०	२१०
अबान्धाक्षतसंमिश्रं	धर्मसं०	६.९६
अब्धौ निज्जत्याशु	सं० भा०	१५६
अब्रह्माज्जायते हिंसा	प्रश्नो०	२३.३७
अब्रह्मारम्भपरिग्रह	सागार०	३.३
अब्रह्मारम्भवाणिज्यादि	पुरु० शा०	५.९१
अभक्तानां कदर्याणा	यशस्ति०	७५३
अभक्तानां सदर्पाणां	श्रा० सा०	३४०
	उमा०	४४१
अभक्ष्यं मन्यते भक्ष्यं	पुरु० शा०	४.८
अभक्ष्यैर्विकथालापैः	कुन्द०	९.४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभग्नं कीटसंयुक्तं	प्रश्नो०	१७.१०८
अभङ्गानतिचाराभ्यां	यशस्ति०	९०७
अभयं प्राणसंरक्षा	सं० भाव०	१२६
अभय सर्व सत्वानामादौ	यशस्ति०	७४१
अभयाख्यं महादानं	प्रश्नो०	२०.३३
अभयाख्येन दानेन	,,	२०.७९
अभयान्नत्रौषधज्ञानभेदतः	अमित०	९.८३
अभयाहारभैषज्य	पद्म० पञ्च०	३३
अभयाहारभैषज्यश्रुत	यशस्ति०	७३९
अभयेन समं दान	प्रश्नो०	२०.८३
अभव्यस्त्यक्तवस्त्रोऽपि	श्रा० सा०	१.३६६
अभव्यो भव्यमात्रो वा	लाटी०	४.१५
अभावे दन्तकाष्ठस्य	कुन्द०	१.७४
अभाषिष्ट तत्त्वे ज्येष्ठो	श्रा० सा०	१.६९२
अभिगम्यो नृभिर्योग	कुन्द०	२.७५
अभिधेया नमस्कारपदै	अमित०	१५.४९
अभिमानभयजुगुप्सा { श्रा०सा०	पुरुषा०	६४
	(उक्तं)	३.२०
अभिमानस्य रक्षार्थं	यशस्ति०	८०२
अभिमानावने गृद्धि	सागार०	४.३५
अभिलषितकामधेनौ	यशस्ति०	५७८
अभिलाषेण पापं तु	भव्यध०	१.१३९
अभूत् केकी मृगो मत्स्यो	पुरु० शा०	४.६६
अभूत्स यो यस्य न तेजसेः	अमित०प्रश०	१
अभेद एक एवात्मा	धर्मसं०	७.१३७
अभ्याख्यानतिरस्कार	अमित०	१३.२९
अभ्याख्यानं करस्फोटं	,,	१३.४१
अभ्यधाच्च ततः सोऽपि	श्रा० सा०	१.७०७
अभ्यन्तरं दिगवधे	रत्नक०	७४
अभ्यासवर्जिते ध्यानैः	कुन्द०	११.३५
अभ्यासाद् रेचकादीनां	कुन्द०	११.४४
अभ्यासी वाहने शास्त्रे	कुन्द०	२.८६
अभ्युत्थानासनत्याग	अमित०	१३.३५
अभ्युत्तिष्ठेद् गुरौ दृष्टे	कुन्द०	१.१८५
अभ्यर्चयन्ति ये दीपैः	प्रश्नो०	२.२०१
अभ्यस्यतो ध्यानमनस्यवृत्तेः	अमित०	१५.९३
अभ्यस्यमानं बहुधा	अमित०	१५.१११
अमज्जनमनाचम्भो	यशस्ति०	१२५
अमनोज्ञे श्मशाने च	कुन्द०	८.३६३
अमर-तरुणी नेत्रानन्दे	,,	५६१
अमर-नरविभूतिं	अमित०	१.७२
अमर गुणसुसेव्यं	प्रश्नो०	२४.१
अमरासुरनरपतिभि	रत्नक०	३९
अमल-गुणनिधानं	प्रश्नो०	१९.७५
अमलगुण निधानो	,,	१३.५६
अमलगुणविभूषा	,,	७.६१
अमल-सुखनिधानं	,,	१२.१३
अमात्यनन्दनोऽन्योऽपि	धर्मसं०	२.८४
अमितप्रभदेवे	प्रश्नो०	५.१०
अमितप्रभनामा	,,	५.४
अमिश्रं मिश्रमुत्सर्गि	यशस्ति०	३१३
अमीषां पुण्यहेतूनां	रत्नमा०	९
अमुत्र दुर्गतिं यान्ति	प्रश्नो०	२३.३४
अमुत्र सारं सम्यक्त्व	,,	११.८०
अमूढत्वगुणं लोके	,,	७.६०
अमूर्ता निष्क्रया नित्याः	अमित०	३.३०
अमूर्तो निश्चयादङ्गी	प्रश्नो०	२.११
अमूर्तो निष्क्रयः प्रोक्तो	,,	२.२८
अमूर्तो निष्क्रयोऽधर्मो	,,	२.२४
अमृतकृतकर्णिकेऽस्मिन्	यशस्ति०	५१६
अमृतश्वसने माद	महापु०	३८.२१९
अमृतत्व हेतुभूतं { श्रा०सा०	पुरुषा०	७०८
	(उक्तं)	१५९
अमृताख्या महादेवी	प्रश्नो०	१५.१२८
अमृतादपरं न स्यान्मिष्ट	,,	३.१०८
अमेध्यभक्षणं श्रेष्ठं	,,	१३.१४
अमेध्यसम्भवं नाद्याद्	कुन्द०	३.३५
अमोघवचनः कल्यः	,,	२.८४
अम्बुगालितशेषं तत्र	धर्मसं०	३.३५
अम्भश्चन्दनतन्दुलोद्गम	यशस्ति०	५२५
अम्भोभूतत्त्वयोर्निद्रा	कुन्द०	१.२४
अम्लस्वादूष्णसुस्निग्ध	,,	६.२५
अयंमर्थः पृथिव्यादिकाये	लाटी०	४.८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अयमर्थो यथात्रादि	लाटी०	१.७६
अयमर्थो यदीष्टार्थं	,,	५.९४
अयमेव विशेषोऽस्ति	अमित०	११.७२
अयं तडित्वानिव	,, प्रश०	७
अयं तेषां विकल्पो यः	लाटी०	४.१३०
अयं भावः क्वचिद्दैवाद्	,,	३.२९२
अयं भावः स्वतः सिद्धं	,,	६.४६
अयं भावः स्वसम्बन्धि	,,	५.७४
अयं भावो व्रतस्थाने	,,	४.१६८
अयमात्मैव निष्कर्मा	कुन्द०	११.६३
अयस्कान्तोपलाकृष्ट	,,	१.६२
अयुमपीत्यमी वर्णाः	अमित०	१५.३५
अयोग्यं नवनीतं च	भव्यध०	१.१०१
अयोग्यं हि यदा द्रव्यं	,,	६.३४०
अयोग्याय वचो जैनं	अमित०	८.२५
अयोग्यासंयमस्याङ्गं	सागार०	४.६१
अयोनिसंभवं जन्म	महापु०	३९.६५
अयोनिसंभव दिव्यज्ञान	,,	३९.९८
अयोनिसम्भवास्तेन	,,	३९.११६
अरण्ये वा गृहलोके	व्रतो०	१४.११
अरतिकरं भीतिकरं	पुरुषा०	९८
अरतिकरं भीतिकरं	श्रा०सा० (उक्तं)	३.१९६
अरतीर्थंकरं वन्दे	प्रश्नो०	१८.१
अरहस्ये यथा लोके	यशस्ति०	६२०
अरिहननरजोहनन	चारित्र सा०	१
अरिष्टाध्यायमुख्योक्तौ	धर्मसं०	७.१०
अरीणां कर्मशत्रूणां	प्रश्नो०	३.५
अरूपं ध्यायति ध्यानं	अमित०	१५.५६
अरुणा श्यामला वापि	कुन्द०	८,३४१
अरेखं बहुरेखं वा	,,	५.५६
अर्कालोकेन विनाभुञ्जानः	पुरुषा०	१३३
अर्केऽर्धास्तमिते यावद्	कुन्द०	४.८
अर्चयन्ति जिनेन्द्रं ये	प्रश्नो०	२०.१९७
अर्च्यं द्रूयस्त्रिधा पुम्भय	अमित०	१२.३४
अर्चयेच्चैत्यवेश्मस्थान	लाटी०	५.१७७
अर्च्यार्चिमालिनी प्रोक्ता	भव्यध०	३.२२३
अर्च्यं वरं गृहस्थत्वं	प्रश्नो०	२४.८२
अर्जनीयं कलावद्भिः	कुन्द०	७.५
अर्जने च विलयेऽभिरक्षणं	श्रा० सा०	३.२५४
अर्थ एव ध्रुवं सर्वं	कुन्द०	२.४५
अर्थनाशो मतिभ्रंशो	पुरु० शा०	४.४
अर्थवशादत्र सूत्रार्थे	लाटी०	३.६
अर्थः प्रयोजनं तस्याभावो	धर्मसं०	४.८
अर्थं दुःखेन चायाति	प्रश्नो०	१६.३८
अर्थात्कालादिसंलब्धौ	लाटी०	४.१०
अर्थाच्छ्रद्धादयः सम्यग्	,,	२.६३
अर्थाज्जैनोपदेशोऽय	,,	३.२४८
अर्थात्तज्जोवद्रव्यस्य	,,	४.१०४
अर्थात्तन्न यथार्थत्व	,,	४.२१
अर्थात्तद्धर्मणः पक्षे	,,	३.३०८
अर्थात्सञ्जायते चिन्ता	प्रश्नो०	१६.३९
अर्थात्सामायिकः प्रोक्तः	लाटी०	५.१५२
अर्थात्सर्वोऽभिलाषः	,,	२.८१
अर्थाद् गुरु स एवास्ति	,,	३.१४२
अर्थाद ज्ञानिनो भीतिः	,,	३.३२
अर्थादन्यतमस्योच्चैः	,,	३.३०२
अर्थादाकस्मिकभ्रान्त	,,	३.६८
अर्थादाद्यत्रिकं ज्ञानं	,,	२.५८
अर्थादेव द्वयं सूक्तं	,,	२.११८
अर्था नाम य एते	पुरुषा०	१०३
अर्थान्नातत्परोऽप्येव	लाटी०	३.१९९
अर्थाभासेऽपि तमोच्चैः	,,	३.११४
अर्थित्वं भक्तिसंपत्तिः	यशस्ति०	१९९
अर्थो जिनेश्वरमुखादिह	प्रश्नो०	२४.१३२
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण	कुन्द०	८.२६३
अर्थोऽयं सति सम्यक्त्वे	लाटी०	३.२६५
अर्थ्यं पथ्यं तथ्यं श्रव्यं	अमित०	६.५६
अर्धमर्द्धं स्वलाभस्य	प्रश्नो०	१३.४६
अर्धरात्रौ पुनश्चेषां	,,	१४.८०
अर्धशुष्कत्वचाहीनं	कुन्द०	१.६७
अर्वाग्दृष्टिभिरग्राह्यो	प्रश्नो०	१.१२०
अर्द्धाङ्गे योषिता युक्तः	,,	३.८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

अर्हंच्चरणसपर्या	रत्नक०	१२०
अर्हंच्चरणसपर्या	धर्मोप० (उक्तं)	४.३३
अर्हंच्छ्रततपोभृत्सु	गुणभू०	१.५१
अर्हन्तममितनीति	यशस्ति०	५२१
अर्हतो दक्षिणे भागे	उमा०	१२७
अर्हद्देव-तदुक्ततत्त्व	धर्मोप०	१.५३
अर्हन् देवो भवेन्नो वा	गुणभू०	१.३०
अर्हन्ततनुर्मध्ये	यशस्ति०	४४८
अर्हन्निति जगत्पूज्यो	लाटी०	३.१३१
अर्हन्मातृपदं तद्वत्	महापु०	४०.२८
अर्हद्रूपे नमोऽस्तु	यशस्ति०	७.८४
अर्हत्सिद्धौ समाराध्यौ	धर्मसं०	७.१२८
अलक्ष्यः पञ्चभिस्तावद्	कुन्द०	११.५७
अलब्धपूर्वं किं तेन	सागार०	८.४१
अलं कोलाहलेनालं	लाटी०	४.१७३
अलं वा बहुनोक्तेन	,,	४.१५१
अलं विकल्प संकल्पै	,,	४.१८९
अलाभो मेऽद्य सज्जातः	धर्म सं०	२.११२
अल्पद्रव्यैः कुतस्त्यागः	भव्यध०	१.२०
अल्पं जिनभवं दानं	अमित०	९.७२
अल्पफलबहुविघाता	रत्नक०	८५
अल्पवृत्तेन वक्रेण	कुन्द०	५.९४
अल्पशोऽपि परद्रव्ये	धर्म० सं०	७.१९४
अल्पसंक्लेशतः सौख्यं	श्रा० सा०	३.३६
अल्पात्क्लेशात्सुखं	यशस्ति०	२६७
अल्पायुर्बलहीनो वा	कुन्द०	५.१९०
अल्पारम्भग्रन्थसन्दर्भ	अमित०	३.४९
अल्पैरपि समर्थैः	यशस्ति०	३७५
अवकाशप्रदो ज्ञेयो	प्रश्नो०	२.२५
अवञ्चकः स्थिरप्राज्ञः	कुन्द०	२.८७
अवतारक्रियाऽस्यान्या	महापु०	३८.२१४
अवतारक्रियाऽस्यैषा	महापु०	३९.३५
अवतारो वृत्तलाभः	महा पु०	३८.६४
अवद्यशतसङ्कुला	श्रा० सा०	३.१६
अवधार्या विशेषोक्तिः	कुन्द०	८.३०८
अवक्राग्रसमस्थौल्यं	कुन्द०	१.६०

अवधेर्बहिरणुपाप	रत्नक०	७०
अवन्तिविषये चण्डो	उमा०	२८९
अवन्ती विषये चण्डो	श्रा० सा०	३.९०
अवन्ती विषये रम्ये	प्रश्नो०	९.३
अवबुध्य हिंस्य-हिंसक	पुरुषा०	६०
अवमतरुगहनदहन	यशस्ति०	५१९
अवर्गादि-हकारात्तं	भव्यध०	५.२९९
अवस्यमाण कर्त्तव्यं	लाटी०	६.१४
अवश्यं द्रविणादीनां	लाटी०	५.८४
अवश्यं नाशिनोऽङ्गाय	धर्मसं०	७.७
अवश्यं भाविकार्येऽपि	लाटी०	४.१९१
अवश्यं भाविनी तत्र	,,	३.२८०
अवश्यं मरणं प्राप्ते	धर्मोप०	५.११
अवसाने च मूढात्मा	धर्मसं०	६.१११
अवहारविशेषोऽत्र	महापु०	३९.८६
अवाप्यते ते चक्रधरादि	अमित०	११.१२१
अवाप्य मानुष्यमिदं	अमित०	१५.११२
अविक्लेद्यं भवेदन्नं	कुन्द०	३७०
अविचार्य सुखं दुःखं	प्रश्नो०	१२.११३
अविचार्यं कुर्वन्ति	श्रा० सा०	१.४७९
अवितीर्णस्य ग्रहणं	पुरुषा०	१०२
अविधायापि हि हिंसा	,,	५१
	श्रा० सा० (उक्तं)	१५५
अविद्धमपि निर्दोषं	लाटी०	१.२१
अविरुद्धा अपि भोगा	पुरुषा०	१६४
अविश्वस्ताः प्रपञ्चाढ्या	भव्यध०	१.१२५
अविश्वासतमोनक्तं	सागार०	४.६३
अविहितमनाः मद्योत्सङ्गं	अमित०	२.९०
अवीक्ष्यग्रहणंवस्तु	धर्मोप०	४.१४१
अवृत्ताभूरदिग्मूढा	कुन्द०	१.१५३
अव्यक्तनरयोर्नित्यं	यशस्ति०	२५
अव्याबाधपदं चान्य	महापु०	४०.१४
अव्रतमनियमकरणं	व्रतो०	५०८
अव्रता अपि सम्यक्त्वे	पूज्यपा०	१३
अव्रतित्वं प्रमादित्वं	यशस्ति०	११७
अव्रतैः क्रोधमिथ्यात्वैः	भव्यध०	२.१८६
अशक्तस्यापराधेन	यशस्ति०	१८२

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशक्यधारणं चेदं	महा पु०	१६०
अशनं क्रमेण हेयं	यशस्ति०	८६८
अशनं पेयं स्वाद्यं	अमित०	६,९६
अशरणमशुभमनित्यं	रत्नक०	१०४
अशुचिस्थानजं घोरं	प्रश्नो०	२३,१२
अशुद्धनिश्चयेनैते	धर्मसं०	७.११२
अशुभः प्राक् शुभःपश्चात्	कुन्द०	१.२२
अशुभसकलखानिं	प्रश्नो०	२२.७६
अशुभसकलपूर्णां	,,	१४.८६
अशुभसकलपूर्णां दुर्गतिं		१२,२०९
		१५,१३८
अशुभं सर्वसङ्कल्पं	,,	१९.१४
अशोकवृक्षध्वनि	भव्यध०	१.५१
अशोकाख्यो महावृक्षः	प्रश्नो०	३.७१
अशौचां हीनवर्णां च	कुन्द०	५.१३०
अश्नन्त्येव शठा रात्रौ	प्रश्नो०	२२.९६
अश्नात्येव सचित्तं यस्तस्य	,,	२२.७४
अश्मपोताधिरूढो ना	,,	२०.१३५
अश्मा हेम जलं मुक्ता	यशस्ति०	८२
अश्वत्थोम्बरप्लक्ष	,,	२८१
अश्वत्थोदुम्बरवटप्लक्षाः	कुन्द०	१.१११
अश्ववृषभगोसर्व	प्रश्नो०	१६.९९
अश्वाद्यारोहणं मार्गे	लाटी०	४.२२४
आजन्म गुरुदेवानां	कुन्द०	१.११८
अष्टकर्मविनिर्मुक्तं	धर्मसं०	६.६७
अष्टकर्मविनिमुक्तान्	प्रश्नोत०	१.४
अष्टगुणपुष्टितुष्टा	रत्नक०	३७
आज्ञा-लाभादयः सर्वे	कुन्द०	२.९८
अष्टभेदान्वितां पूजां	प्रश्नो०	२१.१५५
आतपत्रं करे यस्य	कुन्द०	५.६७
अष्टमी चाष्टकर्मघ्नी	पूज्यपा०	८४
अष्टमी दिवसे सारे	प्रश्नो०	१९.३५
अष्टमी प्रतिमा साऽथ	लाटी०	६.३१
अष्टमी प्रतिमां पूर्वं	प्रश्नो०	२३.१२१
अष्टमूलगुणोपतो	लाटी०	१.६
आत्मद्रव्ये समीपस्थे	कुन्द०	११.६०
अष्टम्यामुपवासं	प्रश्नो०	१९.३४
	,,	१९.३
	,,	२२.६१
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां	व्रतसा०	१५
	धर्मोप०	४.१३३
	,,	४.२३५
	धर्मसं०	६.१६८
अष्टम्यां सिद्धभवत्यामाः	रत्नमा०	४६
अष्टम्यादिदिने सारे	प्रश्नो०	१९.४१
अष्टाङ्गदर्शनं सम्यग्	व्रतो०	३३५
अष्टाङ्गं परिपूर्णं हि भज	प्रश्नो०	४.५९
अष्टाङ्गसंयुतं येऽत्र	,,	४.३१
अष्टाङ्गसंयुतं सारं	,,	४.५७
अष्टाङ्गै शोभते तच्च	धर्मोप०	१.८
अष्टादशमहादोषैः	प्रश्नो०	३.३५
आत्मनश्च गुरोश्चैव	कुन्द०	८.११७
अष्टादशसमुद्रायुर्भुक्त्वा	प्रश्नो०	६.४१
अष्टादशैकभागेऽस्मिन्	लाटी०	४.८०
अष्टावनिष्टदुस्तर	पुरुषा०	७४
अष्टाविंशतिकान् मूल	धर्मसं०	६.२८०
अष्टाविंशतिसंख्यानां	अमित०	८.६६
अष्टाशीतिश्च सद्वर्णाः	प्रश्नो०	१.३०
अष्टैतान् गृहिणां मूल	सागार०	२.३
अष्टोत्तरशता पादं	प्रश्नो०	५.२८
अष्टोत्तरशतैः पुष्पैः	सं०भाव०	५३
अष्टोत्तरशतोच्छ्वास	अमित०	८.६८
अष्टोत्तरसहस्राद्वा	महापु०	३८.८९
अष्टौ दोषा भवन्त्येते	गुणभू०	१.२९
अष्टौ निःशङ्किता दोषा	हरिवं०	५८.४८
अष्टौ मद्यपलक्षौद्र	पुरु०शा०	४.३
अष्टौ मदास्त्रयो मूढाः	गुणभू०	१.२२
अष्टौ मूलगुणान्	धर्मोप०	३.३७
अष्टौ मूलगुणोपेतान्	धर्मसं०	२.१५६
अष्टौ मूलगुणानेव	प्रश्नो०	१२.२८
अष्टौ शङ्कादयो दोषाः	धर्मोप०	१.२९
असक्ता आमिषं त्यक्तुं	प्रश्नो०	१२.१६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असच्छूद्रास्तथा द्वेधा	धर्मसं०	६.२३४
असज्जन्म सतो नाशं	लाटी०	३.६०
असत्यमपि तत्सत्यं	पुरु० शा०	४.७७
असत्यं वय वासोऽन्धो	सागार०	४.४२
असत्यं सत्यतां याति	लाटी०	५.७
असत्यमसत्यगं	यशस्ति०	३६६
असत्यमहितं ग्राम्यं	पुरु०शा०	४.७
असत्यवचनाल्लोको	प्रश्नो०	१३.२०
असत्यवादिताः कश्चिन्न	पुरु०शा०	४.७१
आत्मवित्तानुसारेण	कुन्द०	२.२१
असद्विद्याविनोदेन	प्रश्नो०	१.४८
असद्वेदनीयाभावाद्	,,	३.२९
असत्यसदृश पापं	,,	१३.२५
असत्यस्मिन् गुणेऽन्यस्मात्	महापु०	४०.२११
असत्यस्मिन्न मान्यत्व	,,	४०.२०५
असत्यस्य निधानं यत्	गुणभू०	३.७
असत्यादिसमुद्रं च	प्रश्नो०	२३.११२
असत्याधिष्ठितं श्लिष्टं	श्रा० मा०	३.१७२
	उमा०	३४९
असदपि हि वस्तुरूपं	पुरुषा०	९३
	श्रा०सा० (उक्तं)	३.१९१
असदिति हिंसाकरं	लाटी०	५.३
असदुद्भावनमाद्यं	अमित०	६.४९
असद्वदनवल्लोके	प्रश्नो०	१३.२३
असमग्रं भावयतो	पुरुषा०	२११
असमर्था ये कर्तुं	,,	१०६
आपद्युक्तो हि नालोकेत्	कुन्द०	२.१०४
असमीक्षितकारित्वं	अमित०	६.१०
असमीक्ष्याधिकरणं	लाटी०	५.१४४
आदाय दक्षिणां दंष्ट्रां	कुन्द०	१.७१
असर्वज्ञेषु देवेषु	पुरु० शा०	३.७८
असिधेनुविषहुताशन	,,	१४४
असिमष्यादिषट्कर्म	धर्मसं०	६.२४८
असिर्मषि : कृषिस्तिर्यक्	,,	६.१५५
असुरकुमारोच्चत्वं	भव्यध०	३.२३९
असुराणां सागरैक	,,	३.२१०

असूयकत्वं शठता	यशस्ति०	८७५
असंख्यं भुवनाकाशे	अमित०	३.३४
असंख्यमहिमायुक्तं	प्रश्नो०	१९.२२
असंज्ञी स्थावरा पञ्च	धर्म सं०	१.७,२
असंल्लिखतः कषायान्	,,	७.३४
असृग्मांससुरासार्द्रं	गुणभू०	३.३०
अस्ति कन्दर्पवलापि	लाटी०	५.१४१
अस्ति कश्चिद् विशेषोऽत्र	लाटी०	१.४१
		६.७२ ४.१६७
अस्ति चात्मपरिच्छेद	,,	३.१३
अस्ति चादाननिक्षेप	,,	४.१५३
अस्ति चामूढदृष्टिः सा	,,	३.११०
अस्ति चालोकितं पान	लाटी०	४.२५७
अस्ति तत्र कुलाचारः	,,	१.४५
अस्ति तत्र मरुद्रङ्ग	श्रा० सा०	१.२२
अस्ति तत्रापि सम्यक्त्व	लाटी०	३.११
अस्ति तस्यापि जन्मार्धं	,,	६.२२
अस्ति दोषविशेषोऽत्र	,,	१.१८७
अस्ति नूनं कुदृष्टेः सा	,,	३.५०
अस्ति पुण्यं च पापं च	,,	२.९८
अस्ति पुद्गलनिक्षेप	,,	५.१३३
अस्ति पुरुषश्चिदात्मा	पुरुषा०	९
अस्ति यस्यैतदज्ञानं	लाटी०	२.९२
अस्ति वा द्वादशाङ्गाद	,,	४.३५
अस्ति श्रद्धानमेकेषां	,,	३.११९
अस्ति सद्दर्शनज्ञान	,,	५.१६०
अस्ति सद्दर्शनं तेषु	,,	५.१४६
अस्ति सद्दर्शनस्यासौ	,,	२.१०७
अस्ति सम्यग्गहिस्वस्य	,,	४.१५३
अस्ति सिद्धं परायत्तं	,,	३.२१
अस्ति सूत्रोदितं शुद्धं	,,	५.२२५
अस्ति स्तेयपरित्यागो	,,	५.३१
अस्ति स्मृत्यनुपस्थानं	,,	५.१९३
अस्ति हेतुवशादेष	,,	६.२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्तु यद्वा न शैथिल्यं लाटी० ३.२०४
अस्तु सूत्रानुसारेण ,, ४.२४
अस्त्यत्र केवलं ज्ञानं ,, ३.१२६
अस्त्यत्र पञ्चधा पूजा ,, ५.१७३
अस्त्यत्र वंशपुरपाटसंज्ञा गुणभू० ३.१५३
अस्त्यत्रापि समाधानं लाटी० ६.१२
अस्त्यवस्थाविशेषोऽत्र ,, ३.१४४
अस्त्यहेतुदृष्टान्तै : ,, ३.११२
अस्त्यात्मा जीवसंज्ञो यः ,, २.९६
अस्त्यात्मानन्त धर्मसं० ५.२९
अस्त्यात्माऽनादितो बद्धः लाटी० २.९७
अस्त्यात्मनो गुणः लाटी० २.३२
अस्त्याक्तैकशरीरार्थं लाटी० ६.४१
अस्त्युत्तरगुणनाम्ना लाटी० ६.७५
अस्त्युपलक्षणं यत्तत् लाटी० २.१११
अस्त्युपशमसम्यक्त्वं लाटी० २.३५
अस्त्येव पर्ययादेशाद् लाटी० २.९९
अस्त्येव नियमो जीवो कुन्द० ८.३२८
अस्त्वेतल्लक्षणं नून लाटी० २.६६
अस्त्रधारणवद् बाह्ये यशस्ति० ८११
अस्थाने बद्धकक्षाणा यशस्ति० ३७७
अस्थिचर्मादिजैर्धूम्रैस्तथा प्रश्नो० ९.४१
अस्थिस्थं मर्मपीडां च कुन्द० ८.२२१
अस्पन्दनयनः केशनख प्रश्नो० ३.६२
अस्पष्टाभिरदीर्घाभिः कुन्द० ५.६०
अस्पृश्यजनसंस्पर्शात् धर्मसं० ६.२३५
अस्पृष्टजनसंस्पृष्ट धर्म सं० ६.२३८
अस्मदीयमतं चैतद् लाटी० १.२१९
अस्माकं देहि भो देव प्रश्नो० ९.३८
अस्मिन्नग्नित्रयपूजा महापु० ४०.८५
अस्मिन्ननादिसंसारे प्रश्नोत्त० ११३
अस्मिन्नपारसंसार श्रा० सा० १.६५
अस्मिन्नसारे संसारे श्रा० सा० १.१८९
अस्मिन्नसारे संसारे श्रा० सा० १.२६६
अस्मिन्नसारे संसारे श्रा० सा० १.६३१
अस्यते स्थीयते यत्र अमित० ८ ३८
अस्याऽऽद्याऽऽयुधरज्ज्वादि धर्मोप० ४.११४
अस्योतरे गुणाः सन्ति धर्म सं० ७.१६९
अस्यामेवावसर्पिण्यां धर्म सं० ६.२४०
अस्यायम भगवदर्थो यशस्ति० . २२०
अस्यार्थो मुनिसाक्षेपः लाटी० ४.२०६
अस्याः संसर्गवेलायां लाटी० १.२०२
अहमेको न मे कश्चित् यशस्ति० ३८.१८४
अहमेको न मे कश्चिदस्ति यशस्ति० १४७
अहङ्कार-निपातेन प्रश्नो० ३.३०
अहङ्कारं हि यः कुर्याद् प्रश्नो० ११.२७
अहङ्कारस्फारी भव पद्मनं० प्र० २
अहङ्कारस्फारी भव-दमित श्रा०सा०प्र० २
अहं दुःखी सुखी चाहं अमित० ४.११
अहं पवनवेगाख्या श्रा० सा० १.६६१
अहं भेकचरो देव धर्म सं० ६.१३२
अहर्निशमियं वेला कुन्द० ८.१९७
अहं युर्मतिमाहात्म्याद् कुन्द० ८.४८
अहं राज्यधुरं धर्तुं धर्मसं० २.१०२
अहं वत्त सुखी दुःखी कुन्द० ११.५
अहिच्छत्राभिधे गत्वा श्रा० सा० १.६१८
अहिंसाख्यं व्रत धीमान् प्रश्नो० १२.७५
अहिंसाख्यं व्रतं मूलं प्रश्नो० २४.७६
अहिंसा जननी प्रोक्ता प्रश्नो० १२.६७
अहिंसादिगुणा यस्मिन् हरिवं० ५८.१८
अहिंसापरमो धर्मः लाटी० १.१
अहिंसाव्रत्यपि दृढं सागार० ८.८१
अहिंसाप्राणिवर्गस्य भव्यध० १.१३२
अहिंसालक्षणो धर्मः प्रश्नो० १२.९७
अहिंसालक्षणोपेत्तो प्रश्नो० ११.१२
अहिंसाव्रतमाख्याय प्रश्नो० १३.२
अहिंसाव्रतरक्षार्थं { यशस्ति० ३.१० ; सागार० ४.२४ ; धर्म सं० ३.१८ ; प्रश्नो० १२.७३ ; प्रश्नो० १३.३ }
अहिंसा व्रतसारस्य प्रश्नो० १२.१८४
अहिंसा शस्यते सात्र धर्मोप० ४.५
अहिंसा शुद्धिरेषां स्याद् महापु० ३९.३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहो पिप्पलदूर्वादीन्	प्रश्नो०	३.९५
अहो पुण्यमहो पुण्यं	श्रा० सा०	१.४७४
अहो पूजाफलं नॄणां	प्रश्नो०	२०.१९०
अहो भास्वांश्च वारुण्याः	पुरु० शा०	४.९
अहो मिथ्यातमः पुंसां	यशस्ति०	६२२
अहो मूर्खा न जानीयुः	व्रतो	४११
अहोरात्रत्रयमापुः	भव्यध०	३.२०३
अहो रात्रौ मतं पापं	प्रश्नो०	२४.७
अहो रात्र्यादिजातस्य	,,	१८.८७
अहो सन्तोषिणां चित्रं	धर्मसं०	५.२३
अहो सप्तकशीलेऽस्मिन्	,,	५.२
अह्नायोद्धूयते सर्वं	अमित०	१५.१९

आ

आकर्ण्य तद्वचस्तेन	प्रश्नो०	१३.७३
आकर्ण्य तद्वचो वज्र	,,	१०.४०
आकर्ण्य लोभसम्पूर्णः	श्रा० सा०	१.४१८
आकर्ण्य वचस्तेषां	धर्म०	६.२४३
आकम्पिताख्यदोषस्तु	प्रश्नो०	१९
आकांक्षन् संयमं भिक्षा	सागार०	७.४४
आकाङ्क्षेन्नात्मनो लक्ष्मीं	कुन्द०	२.२८
आकारसहिता बुद्धिः	कुन्द०	८.६४
आकाराच्छ्राविकां मत्वा	प्रश्नो०	६.२८
आकारितः पुनः पृष्ठो	,,	१२.१५३
आकार्य नगरस्त्रीणां	प्रश्नो०	१५.९६
आकारोऽर्थविकल्पः स्याद्	लाटी०	२.४६
आकाशं निर्मलं विद्धि	,,	३.६८
आकाशस्फटिकाभासः	गुणभू०	३.१३२
आकाशगामिनीं विद्यां	प्रश्नो०	५.१८
आकुकर्म स षट्कर्मो	कुन्द०	८.२६४
आकेकराक्षिमार्जार	,,	५.१०६
आक्रन्दं विपुलं चैव	कुन्द०	८.७५
आखेटके तु हिंस्रो यः	लाटी०	१.१४५
आखेटिनः समागत्य	प्रश्नो०	२०.२३८
आगच्छन्तं समालोक्य	,,	१३.६०
आगच्छन्त्या तया दृष्टो	प्रश्नो०	२१.९९

आगतं दोषमालोक्य	प्रश्नो०	४.९६
आगतं बीजमन्यस्य	कुन्द०	११.५८
आगतात्यन्तिकं सिद्धिः	,,	१०.७
आगताभ्यामिह त्वं च	श्रा० सा०	१.१९४
आगतो दक्षिणाख्यां सः	प्रश्नो०	७.२१
आगत्य कुण्डलेनैव	,,	१२.१९८
आगत्य तद्विलासिन्या	,,	१३.८९
आगमस्तु यथा द्वेधा	लाटी०	४.१५८
आगमश्चाप्तवचनं	कुन्द०	८.२९७
आगमा लिङ्गिदेवा	अमित०	२.८
आगमाध्ययनं कार्यं	,,	१३.१०
आगमिष्यति त्वत्तैव	प्रश्नो०	२१.१०६
आगमोक्तमनिन्द्यं च	,,	१३.८
आगमोऽकृत्रिमः कश्चिन्न	अमित०	४.६०
आगमोऽनन्तपर्यायो	,,	८.२
आग्नेयां च कृता पूजा	उमा०	११८
आगामि-कर्मसंरोधि	गुणभू०	३.१४३
आगामि गुणयोग्योऽर्थो	यशस्ति०	७९५
	उमा०	१७७
आग्नेये स्याद् विषे तापो	कुन्द०	८.२२३
आचर्यते शठैर्लोके	प्रश्नो०	११.१३
आचाम्लं निर्विकृत्यैक	गुणभू०	३.१००
आचाम्लं भाजनं गेहं	प्रश्नो०	३.८०
आचारसूत्रकं सारं	,,	२०.२७
आचाराद्या गुणा अष्टौ	धर्मसं०	७.११७
आचारो हि दुराचारो	भव्यध०	१.१०८
आचार्यपाठकादिषुदश	श्रा० सा०	१.५
	,,	१.५२६
आचार्यं स्तवतः स्तुत्वा	अमित०	१२.१८७
आचार्यः स्यादुपाध्यायः	लाटी०	३.१६०
आचार्याणां कवीनां च	कुन्द०	१.१११
आचार्यो हि गुणैर्दृष्टि	प्रश्नो०	१८.१२७
आचार्यो मधुरैर्वाक्यैः	कुन्द०	८.१०८
आचार्यादिषु प्रच्छन्नं	प्रश्नो०	१८.१३८
आचार्यादिषु यो रोग	पुरु० शा०	९३.९
आचार्येऽध्यायके वृद्धे	अमित०	१३.६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्योऽनादितो रूढेः	लाटी०	३.१६७
आचार्योपासनं श्रद्धा	यशस्ति०	७८१
आचार्योऽपि सुमित्राख्यः	प्रश्नो०	१०.११
आजन्म गुरु-देवानां	कुन्द०	१.११८
आजन्म जायते यस्य	अमित०	११.३७
आज्ञापायविपाकाख्य	प्रश्नो०	१८.५२
आज्ञापायविपाकानां	अमित०	१५.१३
आज्ञाभिमानमुत्सृज्य	महापु०	३९.१०९
आज्ञामार्गसमुद्भव	यशस्ति०	२१९
	(उक्तं) श्रा० सा०	१.१६७
आज्ञामार्गोपदेशात्तु	गुणभू०	१.५७
आज्ञा लाभादयःसर्वे	कुन्द०	२.९८
आज्ञा सर्वविदः सैव	लाटी०	१.४९
आज्ञोपायविपाकाख्यं	प्रश्नो०	२४.९८
आत्मगुणप्रशंसादिकरं	,,	१३.१८
आत्मघातं महापापं	धर्मोप०	१.३४
आत्मज्ञः संचितं दोषं	यशस्ति०	६११
आत्मज्ञातिः परज्ञातिः	लाटी०	१.१८४
आततायी क्षणादन्यो	,,	४.६
आतपत्रं करे यस्य	कुन्द०	५.६७
आतापनं गिरौ कायो	प्रश्नो०	९.३९
आतापनादियोगे न	लाटी०	६.८०
आतिथेयं स्वयं यत्र	यशस्ति०	७९८
आत्तानुपात्ते त्वरिका	अमित०	७.६
आत्मदेशपरिस्पन्दो	यशस्ति०	३३८
आत्मद्रव्ये समीपस्थे	कुन्द०	१९.६०
आत्मधर्मः सधर्मी स्याद्	लाटी०	५.४५
आत्मनश्च गुरोश्चैव	कुन्द०	८.११७
आत्मनाथं परित्याज्य	व्रतो०	३८
आत्मनः प्रतिकूलं यत्	श्रा० सा०	१.१०५
आत्मनः श्रेयसेऽन्येषां	यशस्ति०	७३४
आत्मनि मोक्षे ज्ञाने	,,	१७७
आत्मनैवाथवा त्यक्त	धर्मसं०	६.२०
आत्मनो दर्शनं दृष्टिः	,,	७.२९
आत्मनो दर्शने दृष्टि	,,	७.१३८
आत्मनो देहतोऽन्यत्वं	अमित०	१५.७९
आत्मन्यात्मगुणोत्कर्षं	लाटी०	३.१००
आत्मपरिणामहिंसन	पुरुषा०	४२
आत्मप्रकृतिमापन्नो	व्रतो०	३९२
आत्मरूढतरोरपि	पूज्य० पा०	१००
आत्मलाभं विदुर्मोक्षं	यशस्ति०	११३
आत्मवधो जीववधः	अमित०	६.३०
आत्मवित परित्यागः	यशस्ति०	७५६
आत्मवित्तानुसारेण	कुन्द०	२.२१
आत्मशक्तेरदौर्बल्य	लाटी०	३.२७४
आत्मशरीरविभेदं	अमित०	६.२१
आत्मसङ्कल्पितादुदेशाद्	लाटी०	५.१२९
आत्मकर्त्ता स्वपर्यायै	यशस्ति०	२३३
आत्मानं च चलं कृत्वा	प्रश्नो०	१८.११९
आत्मानमपरं वायो वेत्ति	,,	३.१३
आत्मानमात्मना ध्यायन्	अमित०	१५.७५
आत्मानमात्मनात्मानं	धर्मसं०	७.१३५
आत्मानमेव संसार	कुन्द०	११.६२
आत्मानं मन्यते नैकः	,,	११.७४
आत्मानात्मस्थिति	यशस्ति०	१०१
आत्मान्वयप्रतिष्ठार्थं	महापु०	३८.४०
आत्माप्रभावनीयो	पुरुषा०	३०
	उमा०	६६
आत्माप्रभावनीयो	श्रा० सा० (उक्तं)	१.६१२.
आत्मानं परमात्मेति	भव्यध०	५.२९६
आत्मानं स्फोरय	श्रा० सा०	१.४१९
आत्मार्जितमपि द्रव्यं	यशस्ति०	३५३
आत्मायं बोधसम्पत्ते	,,	६३२
आत्मा शुद्धिकरैर्यस्य	,,	८३१
आत्माकरोत्ति यो दानं	अमित०	९.७८
आत्मीयं मन्यते द्रव्यं	,,	९.१७
आत्मेतराङ्गिणामङ्गरक्षणं	लाटी०	३.२५४
आत्मोपशाम्यते	अमित०	९.८२
आत्यन्तिकं स्वभावोत्थ	प्रश्नो०	२.४१
आदरेण विना दानं	,,	२१.७
आदरेण विना योऽधी	,,	१८.१०६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदरो व्यावृतिर्भक्ति	श्रा० सा०	१.५२४
	उमा०	६४
आदर्शे मलिने यद्वत्	प्रश्नो०	११.३९
आदानं संस्तरोत्सर्गा	श्रा० सा०	३.३२०
आदाय दक्षिणां दंष्ट्रा	कुन्द०	१.७१
आदाय प्रोषधं धीरः	प्रश्नो०	१९.१६
आदाय प्रोषधं रात्रौ	,,	५.९
आदाय मुनयो धीराः	,,	९.४२
आदाय यतिनो दीक्षां	श्रा० सा०	१.२२९
आदायाऽऽदाय काष्ठानि	पुरु०शा०	४.१२६
आदावन्ते बृहन्नाम	प्रश्नो०	१८.४४
आदावुत्पद्यते चिन्ता	लाटी०	१.२१४
आदावेव स्फुटमिह	अमित०	५.७३
आदितः पञ्चतिर्यक्षु	यशस्ति०	८८९
आदित्यादिषु वारेषु	कुन्द०	२.२
आदिमदमावसानेषु	भव्यध०	१.५९
आदिध्यासुः परंज्योतिः	यशस्ति०	५८०
आदिमत्रितयं हित्वा	अमित०	२.५६
आदिश्रीजिनदेवोऽपि	प्रश्नो०	१९.५६
आदिष्टाः कोपिता मत्ता	कुन्द०	८.१४१
आद्गोनीते यामयुग्मे	कुन्द०	४.१०
आदृतिर्व्यावृत्तिर्भक्तिः	पुरु० शा०	३.९७
आदृत्य दीयते दानं	अमित०	११.५८
आदेयः सुभगः सौम्यः	,,	११.१०
आदेयाः सुभगाः सौम्याः	,,	११.८१
आदेशस्योपदेशेभ्यः	लाटी०	३.१६९
आदेशोऽनुमतिश्चाज्ञा	,,	६.४५
आदौ पत्रकाष्ठोत्ति	महापु०	४०.१८
आदौ मध्येऽवसाने च	प्रश्नो०	१८.९५
आदौ मध्यमधःप्रान्ते	यशस्ति०	६३६
आदौ मुनीन्द्रभागीति	महापु०	४०९३
आदौ मूलगुणान् सर्वान्	प्रश्नो०	१२.३२
आदौ सायायिकं कर्म	यशस्ति०	४२४
आदौ स्वादूनि राजेन्द्र	धर्मसं०	२.१०५
आद्यन्निसंहृते साधो	अमित०	१५.५
आद्यः षष्ठस्त्रयोविंशो	कुन्द०	५.२२३

आद्यसंहति-संस्थाना	कुन्द०	१२.६
आद्य संहननोपेताः	धर्मसं०	६.१३२
आद्यं व्रतं विधत्ते यः	प्रश्नो०	१२.१४१
आद्यः पापोपदेशश्च	,,	१७.२६
आद्यः पात्रेऽथवा पाणौ	धर्मसं०	५.६३
आद्यः सचित्तनिक्षेपाख्यः	,,	४.१२१
आद्याश्रयेऽभ्यस्य	,,	६.२९३
आद्याः षट्प्रतिमाःयोऽपि	प्रश्नो०	२२.११५
आद्यास्तु षट् जघन्या	चारित्रसा०	२०
आद्यो जिनो नृपः श्रेयान्	पद्म० पंच०	१
आद्योत्तमक्षमा यत्र	पद्म० पं०	५९
आद्यो दर्शनिकः श्राद्ध	धर्मसं०	२.११
आद्यो दर्शनिकःसोऽत्र	सं०भाव०	५
आद्यो मिथ्योपदेशश्च	प्रश्नो०	१३.३१
आद्यो विदधति क्षौरं	सं०भाव०	१०४
आधानं नाम गर्भादौ	महापु०	३८.७०
आधानं प्रीतिसुप्रीती	,,	३८.५५
आधानमन्त्र एवात्र	,,	४०.१०१
आधानादिक्रियामंत्र	सागार०	२.५७
आधानादिक्रियारम्भे	महापु०	४०.३
आधानाद्दशमे जन्म	कुन्द०	५.१९०
आधानात्पञ्चमे मासि	,,	३८.८०
आधानाद्यास्त्रिपञ्चाशत्	,,	३८.५२
आधाने मन्त्र एषः स्यात्	,,	४०.९५
आधारभस्मकौपीन	कुन्द०	८.२९१
आधाराधेयहेतुत्वाद्	लाटी०	४.९२
आधिव्याधिनिरुक्तस्य	यशस्ति०	२०१
आधिव्याधिविपर्यास	,,	६०३
आनन्दश्च महाधर्म्यं	प्रश्नो०	१७.१२८
आनन्दो ज्ञानमैश्वर्यं	यशस्ति०	४५
आनन्दोत्पत्तिसंदोहं	प्रश्नो०	४.१
आनयनभुज्ययोजन	अमित०	७.९
आनर्थक्यं तयोरेव	लाटी०	५.१४८
आनीतमुपदेशेन	प्रश्नो०	१४.३१
आन्तरान् कामकोपादीन्	पुरु० शा०	६.१०४
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता	कुन्द०	२.८५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपगासागरस्नान	रत्नक०	२२
आपद्गताञ्जनान्	धर्मसं०	६.१९२
आपद्-व्याप्त-जगत्ताप	श्रा० सा०	१.७२१
आपद्-व्यापादने स्वामि	कुन्द०	१.१०७
आपद्युक्तो हि नालोकेत्	कुन्द०	२.१०४
आपदामास्पदं मूलं	श्रा० सा०	३.२३९
	उमा०	३७९
आपातसुखदैः पुण्य	अमित०	९.७५
आपूर्य वाममार्गेण	कुन्द०	११.४३
आपाते लभते सौख्यं	,,	९.७४
आपाते सुन्दरारम्भैः	यशस्ति०	९०५
आप्तपञ्चनुतिर्जीव	धर्मसं०	२.१५५
आप्तः स्याद्दोषनिर्मुक्तः	गुणभू०	१.६
आप्तसेवोपदेशः	यशस्ति०	४.२६
आप्तस्य वपुषः	धर्मसं०	१.२१
आप्तस्यासन्निधानेऽपि	यशस्ति०	४२
	पूज्यपा०	७६
आप्तागमपदार्थानां	यशस्ति०	४.८
	,,	११५
आप्तागमविशुद्धत्वे	,,	१७४
आप्तात्परो न देवोऽस्ति	धर्मसं०	१.२९
आप्तेन भाषितो धर्मः	,,	१.६
आप्तेन विशदो धर्मं	,,	१.२२
आप्तेनोत्सन्नदोषेण	रत्नक०	५
अप्ते श्रुते व्रते तत्वे	शस्ति०	२.१७
	श्रा० सा०	१.१७२
आप्तोदितं प्रमाभूत	गुणभू०	१.१०
आप्तोपज्ञमनुल्लंध्य	रत्नक०	९
आप्तोपज्ञमहागमावगमतो	श्रा० सा०	३५.३६
आप्तोऽष्टादशभिर्दोषैः	पूज्यपाद०	३.७
आप्तोऽर्हन् वीतरागश्च	धर्मसं०	१.१९
आप्लुतः संप्लुतस्वान्तः	यशस्ति०	४.३८
आप्रवृत्तेर्विवृत्तिर्मे	,,	३४
आबालपालितस्फार	श्रा० सा०	१.२८७
आबाल्यात्सुकृतैः सुजन्म	कुन्द०	१२.११
आभान्त्यसत्यदृङ्माया	सागार०	४.३
आमगोरससम्प्रक्तं	सागार०	५.१३
	श्रा० सा०	३.२
	लाटी०	२.४५
	उमा०	३.११
आमनन्ति दिवसेषु भोजनं	अमित०	५.४८
आमपात्रगतं क्षीरं	पूज्य०	४८
आमास्वपि पक्वास्वपि	पुरु० शा०	६.७
	श्रा० सा०	३.३४
आमां वा पक्वां वा	,,	६८
	श्रा० सा०	३५
आमिषं रुधिरं धर्मं	प्रश्नो०	२४.५८
आमिषाशनपरस्य सर्वथा	अमित०	५.१९
आमिषाशीत्तमो ज्ञेयो	प्रश्नो०	२२.१०६
आम्नायः शुद्धसंघोषो	उमा०	२००
आम्र-नारङ्ग-खर्ज्जूर	प्रश्नो०	२२.६४
आम्र-नारिङ्ग जम्बीर	उमा०	१७०
आम्रेक्षुनालिकेराद्यैः	भव्यध०	६.३५२
आयातं मे तपोराशि	अमित०	१३.३६
आयादावीक्ष्य सत्पात्रं	धर्मसं०	४.८७
आयान् भावनया मार्गे	,,	६.१२०
आयान्ति लक्ष्म्याः स्वयमेव	अमित०	१.२२
आयामे विस्तरहते	कुन्द०	८.६५
आयास-विश्वास-निराश	अमित०	७.४७
आयासेन विना भोगी	,,	११.७८
आयुर्देहः कुयोनिश्च	भव्यध०	२.१७६
आयुः प्रजासु परम	यशस्ति०	५०८
आयुर्मानादिकं सूत्रं	भव्यध०	३.३४८
आयुरन्ते ततश्च्युत्वा	धर्मसं०	२.१२७
आयुर्लेखा कनिष्ठान्ता	कुन्द०	५.५९
आयुर्लेखावसानाभिः	कुन्द०	५.५८
आयुष्मान्सुभगः	यशस्ति०	३.४७
आये नष्टे सुखं न स्यात्	कुन्द०	८.८१
आरम्भकर्मणा क्वापि	धर्मसं०	४.७८
आरम्भकर्मतो हिंसा	पुरु० शा०	६ ४३
आरम्भ-जलपानाभ्यां	श्रा०सा०	३.३१८
	धर्मसं०	६.१६९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरम्भसन्दर्भविहीनचेताः	अमित०	७.७६
आरम्भ-संग-साहस	रत्नक०	७९
आरम्भसंभवं पापं	धर्मसं०	४.७७
आरम्भा सावद्या	अमित०	६.५३
आरम्भाज्जायते हिंसा	प्रश्नो०	२३.१०१
आरम्भाद् विनिवृत्तः	चारित्र सा०	५
आरम्भादिक्रिया तस्य	लाटी०	२.७४
आरम्भा येन जन्यन्ते	अमित०	९.४५
आरम्भे गृहकर्मादौ	प्रश्नो०	२४.३
आरम्भेन विना वासो	धर्मसं०	६.२१८
आरम्भेन समं कुर्यात्	प्रश्नो०	२३.११४
आरम्भेऽपि सदा हिंसा	सागार०	२.८२
आरम्भोऽयं महानेव	कुन्द०	२.४७
आराधनां भगवतीं	अमित०	२.२९
आराधयन्ति सद्-भक्त्या	धर्मोप०	२.२९
आराद्धोऽपि चिरं धर्मो	सागार०	८.१६
आराध्यन्तेऽखिला येन	अमित०	१३.५०
आराध्यमानस्त्रिदशैरनेकैः	,,	१-६२
आराध्य मुनिसत्पादौ	प्रश्नो०	२४.२३
आराध्य रत्नत्रय	यशस्ति०	८७२
आराध्यो न विराध्यो	व्रतो०	७८
आरूढः शिविकां दिव्यां	महापु०	३८.२८६
आरूढा मत्तमातङ्गा	पूज्य०	९०
आरोग्यं क्रियते येन	अमित०	११.४०
आरोपितः सामायिकव्रत	सागार०	७.३
अरोप्यैदंयुगीनेषु	धर्मसं०	६.१८०
आर्तं तनूभृतां ध्यानं	अमित०	१५.१६
आर्तं रौद्रं तथा धर्म्यं	,,	१५.९
आर्तरौद्रं द्वयं	प्रश्नो०	२० १५८
आर्त-रौद्रंपरित्यज्य	पूज्यपा०	२९८
आर्त-रौद्रद्वयं यस्यां	अमित०	८.५८
आर्त-रौद्रद्वयं यस्या	अमित०	८.६०
आर्त-रौद्रं परित्यज्य	पूज्य०	२९
आर्त-रौद्रं भवेद् ध्यानं	सं० भाव०	११०
आर्द्रकन्दाश्च नाद्यन्ते	उमा०	३१७
आर्द्रचर्मास्थिमांसासृक्	धर्मसं०	३.३९
आर्द्रीभूतो मनोऽनिष्टः	अमित०	८.४१
आर्यास्कन्धानलादित्य	,,	४.९४
आर्यिकाः श्राविकाश्चापि	सागार०	२.७३
आर्यैर्धार्या यथाशक्ति	पुरु० शा०	६.९९
आर्हन्त्यभागी भवति	महापु०	४०.९४
आर्हन्त्यमर्हतो भावो	,,	३९.२०३
आलयं जिनदेवस्य	प्रश्नो०	२०.१८०
आलस्याद्वपुषो हृषीकहरणै	यशस्ति०	५३१
आलस्योऽनादरो भोगी	व्रतो०	४९९
आलिङ्गनं समादत्ते	प्रश्नो०	२०.८९
आलोकनं दशदिशां	,,	१८.१७५
आलोक्य पलितं केशं	,,	२३.९२
आलोक्य भणितं देव	,,	१०.५६
आलोक्य स्वयं तेन	,,	१५.६४
आलोचनादिकस्याति	,,	१८.१४४
आलोचितं च वक्तव्यं	लाटी०	५.१६
आलोच्यजुं स्वाभावेन	अमित०	१३.७८
आलोच्य तेन प्रारब्धं	प्रश्नो०	१३.१०२
आलोच्य सर्वमेनः	रत्नक०	१२५
आवर्ता वामभागेऽपि	कुन्द०	५.११८
आवर्तो दक्षिणे भागे	कुन्द०	५.२६
आवश्यकमिदं धीरः	अमित०	८.२१
आवश्यकमिदं प्रोक्तं	,,	८.१०५
आवश्यकं न कर्त्तव्यं	,,	८.४
आवश्यकं प्रकर्त्तव्यं	प्रश्नो०	२४.१०
आवश्यकं विधत्ते यः	,,	१८.१४०
आवश्यके मलक्षेपे	अमित०	१२.१११
	सागार०	४.३८
आवश्यके व्यतीचारः	प्रश्नो०	१८.९८
आवश्यकेषु सर्वेषु	अमित०	८.३६
आवश्यकेषु सर्वेषु	पुरु० शा०	६.७९
आवश्यकैः षड्भि	व्रतो०	४७
आवाहनं च प्रथमं	उमा०	१४७
आवेशिकाश्रितज्ञाति	यशस्ति०	७६३
आशंसा जीविते मृत्यौ	धर्मसं०	७.६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशंसा जीविते मोहाद्	लाटी०	५.२३७
आशंसा मरणे वापि	,,	५.२३८
आशंसे जीविते मृत्यौ	हरिवं०	५८.७०
आशा तत्राशतो दुःखं	प्रश्नो०	२३.१२६
आशा देशप्रमाणस्य	यशस्ति०	४१८
आशास्महे तदेतेषां	,,	६२३
आशीर्वादादिकं दत्वा	प्रश्नो०	२०.७
आश्रयन् दक्षिणां शाखां	कुन्द०	१.९०
आश्रमाः सन्ति चत्वारः	धर्मसं०	६.१५
आश्रितेषु च सर्वेषु	यशस्ति०	३११
आश्रित्य भक्तितः सूरिं	अमित०	१३.७५
आश्रुत्य स्नपनं विशोध्य	सागार०	६.२२
आश्लिष्टास्तेऽखिलैर्दोषैः	अमित०	४७३
आषाढे दशमी कृष्णा	कुन्द०	८.४४
आष्टाह्निको महः	महापु०	३८.३२
आसनस्थोऽपदो नाद्यात्	कुन्द०	३.३४
आसने चाथ शय्यायां	कुन्द०	५.१३९
आसन्ने स्यात्प्रभोर्बाधा	कुन्द०	२.९१
आसनं ये प्रकुर्वन्ति	प्रश्नो०	२४.३२
आसनं शयनं कुर्यात्	पुरु० शा०	६.८२
आशावासा विमुक्ताशः	,, ,,	३.३५
आसनं शयनं मार्गं	यशस्ति०	३०७
आसनं शयनं सर्वं	प्रश्नो०	१२.११४
आसनस्थेन भूपेन	धर्मसं०	२.९३
आसने निश्चले शुद्धे	व्रतो०	५०३
आसन्नभव्यता कर्म	यशस्ति०	२०९
	सागार०	११६
	उक्तं श्रा० सा०	१.१५०
	धर्मसं०	१.२५
आसन्नभव्यता कर्महानि	उमा०	२३
आसन्नभव्यशब्दश्च	महापु०	४०.२३
आसमयमुक्ति मुक्तं	रत्नक०	९७
आसवोद्धत-पिशाचगृहीत	श्रा० सा०	३.९
आसां संज्ञां व्रतं निष्ठा	धर्मसं०	५.८३
आसीत्खदिरसाराख्यः	,,	२.५२
आसीत्तस्यां पुरि स्फार	श्रा० स०	१.६८४
आस्तां च तद्व्रतादत्र	लाटी०	१.१३४
आस्तां तत्सङ्गमे दोषो	,,	१.१३१
आस्तां परस्वस्वीकाराद्	,,	१.१७०
आस्तां यन्नरके दुःखं	,,	१.२१२
आस्तामिष्टार्थसंयोगो	,,	३.७५
अस्तां केलिपरीरम्भे	उमा०	३७७
	श्रा० सा०	३.२२६
आस्तां स्तेयमभिध्यापि	सागार०	८.८५
आस्तिक्यं सत्त्वसद्भावे	लाटी०	२.९५
आस्तिक्यो निरहङ्कारो	अमित०	९.१६
आस्ते सशुद्धमात्मानं	लाटी०	३.१९१
आस्थानकं च वृन्ताकं	उमा०	३१२
आस्माकीनं सुसिद्धान्तं	लाटी०	५.२२८
आस्यशोषाधरस्फोट	कुन्द०	३.३७
आस्रवस्य निरोधो यः	अमित०	३.५९
आस्रवो जायते येन	भव्यध०	२.१८५
आह कृषीवलः कश्चिद्	लाटी०	४.१६३
आह सोऽपि पुनः श्रेष्ठिन्	प्रश्नो०	५.२४
आह स्त्रीजनसंसर्गो	धर्मसं०	१.४५
आहारदानतः सम्यग्	प्रश्नो०	२०.३४
आहारदानमेकं हि	सं० भाव०	१२३
आहारनाममात्रेण	प्रश्नो०	३.४३
आहार-बल-सामर्थ्यात्	,,	२०.३८
आहारवर्जितं देहं	अमित०	९.९१
आहार-विग्रहाक्षा	,,	३.६
आहारसंज्ञया युक्तो	प्रश्नो०	३.३९
आहारः सर्वजीवानां	उमा०	२२७
आहारमौषधं शास्त्रं	प्रश्नो०	२०.३
आहारं न समादेयं	,,	२४.५२
आहारं परिहाप्य	रत्नक०	१२७
आहारं प्रावमोदर्यं	प्रश्नो०	२२.२९
आहारं भक्तितो दत्तं	स० भाव०	८७
आहारं यदि गृह्णाति	प्रश्नो०	३.३७
आहारं वीतरागस्य	,,	३.३६
आहारं शास्त्रभैषज्यं	भव्यध०	६.३०९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहारश्च शरीराक्षा	भव्यध०	२.१६८
आहारं स्निग्धाग्राहिश्च	लाटी०	५.२१७
आहारं स्निग्धपानं च	गुणभू०	३.५३
आहारादिचतुर्भेदं	प्रश्नो०	२.५९
आहारात्सुखितौषधा	देशव्र०	१२
आहारादिसमायुक्तः	प्रश्नो०	३.४९
आहाराभयभैषज्य	{ रत्नमा० { गुणभू०	६० ३.४५
आहाराद् भोगवान्	,,	३.४६
आहारालाभतो द्वेषो	प्रश्नो०	३.४०
आहारावधि तत्पार्श्वे	धर्मोप०	४.१५९
आहारास्वादनाद्यस्य	प्रश्नो०	३.४७
आहारेण विना कायो	अमित०	११.१४
आहारेण विना किञ्चित्	प्रश्नो०	२०.३७
आहारेण विना पुंसां	अमित०	९.८८
आहारो निःशेषो	,,	६.८५
आहारो हि सचित्तः	पुरुषा०	१९३
आहारौषधताम्बूल	व्रतो०	३३८
आहारौषधयोरप्युप	रत्नक०	११७
आहारौषधवासोप	धर्मसं०	४.८३
आहारौषधशास्त्रे	धर्मोप०	४.१६७
आहुः स्वस्मात्परं	यशस्ति०	६५८

इ

इच्छन्ति ये खला नूनं	प्रश्नो०	१५.४७
इच्छन्ति ये बुधानित्यं	,,	४.३८
इच्छया येऽपि गृह्णन्ति	,,	१७.१३३
इच्छाकारं नमः कुर्याद्	पुरु० शा०	६.९१
इच्छाकारं मिथः कुर्युः	,,	६.९७
इच्छाकारबचः कृत्वा	सं० भाव०	६३
इच्छाकारं समाचारं	अमित०	८.७२
इच्छा यस्य भवेन्नित्यं	प्रश्नो०	३.४५
इज्या वार्ता तपो दानं	धर्मसं०	६.२६
इज्यां वार्तां च दत्तिं च	महापु०	३८.२४
इतः पुण्यात्स पापीयान्	धर्मसं०	२.९०
इतरप्रागिहाख्यातं	लाटी०	३.३०६

इतरत्र पुना रागः	लाटी०	३.७८
इतश्च तत्प्रमाणं स्याद्	महापु०	३९.१८
इतः पूर्वं कदाचिद्वा	लाटी०	६.१९
इतः पूर्वं कदाचिद्वै	,,	६.१६
इतः पूर्वमतीचारो	,,	६.३२
इतः पूर्वं सुवर्णादि	,,	६.४०
इतः प्रभृति यद् द्रव्यं	,,	६.३३
इतः प्रभृति सर्वेपि	,,	६.३०
इतः शमश्रीः स्त्री चेत्तः	सागार०	६.३४
इतः समितयः पञ्च	लाटी०	४.२१२
इति केचिन्न तच्चारु	सागार०	५.२३
इति कथित-विधानं	पुरु० शा०	३.१६०
इति क्रुद्धो तदा काले	भव्यध०	२०
इति गदितमथादिःकारणं	कुन्द०	९.१६
इति घोरतरं दुःखं	प्रश्नो०	१३.२०७
इति च प्रतिसन्ध्या	सागार०	६.३७
इति चर्यागृहत्याग	,,	७.३६
इति चातुर्विधित्वेन	उमा०	१७८
इति चिन्तयतस्तस्य	{ धर्मसं० { लाटी०	६.१३१ ५.१६४
इति चिन्तयतो धर्म्मं	यशस्ति०	६२६
इति जीवादितत्त्वानां	व्रतो०	४२७
इति जिनेश्वरयज्ञ	प्रश्नो०	२१.१९४
इति ज्ञात्वा कुपात्रं	,,	२०.१०८
इति ज्ञात्वा बुधैः कार्यं	धर्मो०प०	४.५४
इति ज्ञात्वा बुधैः सर्वं	प्रश्नो०	२२.१११
इति ज्ञात्वा सदा त्याज्यं	,,	२३.११८
इति ज्ञात्वा सुपात्राय	धर्मोप०	४.१८६
इति तदमृतनाथ स्मर	यशस्ति०	५६०
इति दोषवतीं मत्वा	अमित०	१२.१००
इति द्वात्रिंशभिर्दोषाः	व्रतो०	५००
इति द्वितीयां प्रतिमां	पुरु० शा०	४.१८३
इति द्विविध सम्यक्त्वं	धर्मोप०	१.४४
इति तद्वचनात् सर्वान्	महापु०	३८.२०
इति त्रिविधपात्रेभ्यो	धर्मोप०	४.१५३
इति ध्यानं मया ज्ञातं	भव्यध०	५.३०२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति नियमितदिग्भागो पुरु०शा० १३८
इति निर्वाणपर्यन्ताः महापु० ३८.३१०
इति निश्चयमासाद्य श्रा०सा० १.२१५
इति निश्चित्य चित्ते प्रश्नो० १२.१७५
इति निश्चित्य राजेन्द्र महापु० ३८.९
इति पिशितनिवृत्ति धर्मसं० २.१३७
इति पूजाफलं काले ,, ६.१४०
इति पृष्ठवते तस्मै महापु० ३९.११
इति प्रथममावर्ण्यं उमा० ९५
इति भरतनरेन्द्रात् महापु० ४०.२२२
इति भावनया चक्री धर्मसं० ७.१४५
इति भावनया चैतद् ,, ७.७५
इति भूयोऽनुशिष्यैतान् महापु० ३८.२६४
इति मूढत्रयेणोच्चैः धर्मोप० १.३७
इति मत्वा कुपात्रं हि प्रश्नो० २०.१३०
इति मत्वा कुरु त्वं भो ,, १८.२१
इति मत्वा कुशास्त्रं च ,, १७.६९
इति मत्वा गृहस्थैश्च ,, २३.९५
इति मत्वा जनैर्धीरैः ,, २३.४०
इति मत्वा जनैर्निन्द्यं ,, १७.५५
इति मत्वा जपं त्वं च ,, १८.७९
इति मत्वा जिनाधीशान् ,, ३.१००
इति मत्वा जिनेन्द्रोक्तं धर्मोप० २.३२
इति मत्वा तपोमित्र प्रश्नो० १९.६४
इति मत्वा त्यजेत्सर्वं ,, २३.६२
इति मत्वा त्वया धीमन् ,, २.५५
इति मत्वा त्वया श्रीमन् ,, १७.१३६
इति मत्वा न कर्त्तव्यं ,, २०.२३९
इति मत्वा न तद्ग्राह्यं ,, २४.४४
इति मत्वा न तद्द्रव्यं ,, २२.७५
इति मत्वा न संग्राह्यं ,, २३.१२७
इति मत्वा परस्वं भो प्रश्नो० १४.२४
इति मत्वा फलं त्याज्यं ,, ७.११७
इति मत्वा बुधैः कार्यं ,, १९.४३
इति मत्वा बुधैर्नित्यं ;, २०.२१४
इति मत्वा बुधैः पूर्वं ,, १८.६८
इति मत्वा बुधैस्त्याज्यं प्रश्नो० २३.८३
इति मत्वा मनःकृत्वा ,, २३.९१
इति मत्वा मनःशुद्धि ,, २२.२२
इति मत्वा महाभव्यैः धर्मोप० ४.१९७
इति मत्वा महाभाग प्रश्नो० ३.१५४
इति मत्वा विधातव्यः ,, १८.१९१
इति मत्वा सोऽपि ,, ५.३२
इति मत्वा शुभं दानं ,, २४२
इति मत्वा सदा कार्यो ,, ६.४४
इति मत्वा सदा त्याज्यं ,, २२.८७, २४.८४
इति मत्वा सदारम्भं ,, २३.१०३
इति मत्वा सदा सार ,, १९.३९
इति मत्वा सुधीर्नित्यं ,, २४.१०
इति मत्वा हि दातव्यं ,, २०.९७
इति मत्वा हि भो मित्र ,, १५.३१, ,, १६.४१
इति मन्त्रपदान्युक्त्वा महापु० ४०.२२
इति मूर्च्छनभावं हि उमा० ३९०
इति यः परिमितभोगैः पुरु० १६६
इति यः षोडश यामान् ,, १५७
इति यो व्रतरक्षार्थं ,, १८०
इति रत्नत्रयमेत ,, २०९
इति लात्वा व्रतं तस्य धर्मसं० २.५९
इति वाक्यार्थसन्दर्भहीना उमा० १९९
इति विमलसुदानी प्रश्नो० २१.११८
इति विरतो बहुदेशा पुरुषा० १४०
इति विविधभङ्गगहने ,, ५८
इति वृत्तं मयोद्दिष्टं उमा० ४७७
इति वृत्तशिखारत्नं धर्मसं० ७.७६
इति वेश्योदितैरेषा श्रा०सा० १.२६८
इति व्रतगुणयुक्तः प्रश्नो० २१.१४८
इतिव्रतशिरोरत्नं सागार० ८.६३
इति शिक्षाव्रतदूषण व्रतो० ४५८
इति शुद्धतरां वृत्ति महापु० ४०.१७३
इति शुद्धं मतं यस्य ,, ३९.३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति श्रुत्वा नराधीशो	धर्मसं०	२.१३२
इति श्रुत्वा वचस्तस्य	,,	२.१२०
इति श्रुत्वा वचस्तेषां	,,	६.१३६
इति षट्कर्मभिर्नित्यं	उमा०	२४३
इति सङ्क्षेपतः ख्यातं	लाटी०	१.१११
इति सङ्क्षेपतस्तस्याः	,,	४.२२८
इति सङ्क्षेपतोऽप्यत्र	,,	४.१०२
इति सञ्चिन्त्य तत्रैव	प्रश्नो०	१६.९५
इति सञ्चिन्त्य सञ्जाता	,,	२१.१९१
इति सद्गृहिणा कार्यो	धर्मसं०	६.३५
इति संन्यासमादाय	प्रश्नो०	१५.८९
इति सर्वं प्रयत्नेन	,,	२२.३७
इति साध्वी निषिद्धापि	श्रा०सा०	१.२९४
इति स्तुत्वा महावीरं	प्रश्नो०	२१.१६७
इति स्फुटं वर्षविधेयमेतत्	कुन्द०	७.१०
इति स्वाध्यायमुख्यानि	उमा०	२४७
इति हतदुरितौघ	श्रा०सा० उमा०	३.०७४ ४७६
इतीयं प्रस्फुरच्चिन्ता	श्रा०सा०	१.७१९
इतीर्यासमितिः प्रोक्ता	लाटी०	४.२२५
इत्थदोषं सततमनूनं	अमित०	८.१०९
इत्थमन्त्यक्रियां भव्या	धर्मोप०	५.१२
इत्थमशेषितहिंसः	पुरुषा०	१६०
इत्थमात्मनि संरोप्य	श्रा०सा० उमा०	२.१ २४८
इत्थमानन्दथुस्फार	श्रा० सा०	१.४७६
इत्थमित्यादिभिर्योगैः	पुरु० शा०	३.१०४
इत्थमेता मयाख्याताः	,,	६.८९
इत्थं काममहाव्याल	श्रा० सा०	१.७०२
इत्थं किल द्वितीय	कुन्द०	२.११६
इत्थं चतुर्थ प्रहरार्धकृत्यं	कुन्द०	३.९२
इत्थं चिन्तयतां तेषां	अमित०	११.१०९
इत्थं नियतवृत्ति	यशस्ति०	७३२
इत्थं पञ्चाणुव्रत	व्रतो०	४४६
इत्थं पथ्यप्रथासारैः	सागार०	८.५५
इत्थं पथ्याभिरथ्याभिः	पुरु० शा०	३.९४
इत्थं परिग्रहत्याग	पुरु० शा०	६.५३
इत्थं परिसमाप्यायु	,,	६.१११
इत्थं परीक्ष्य ये देव	,,	३.३९
इत्थं प्रयतमानस्य	यशस्ति०	३२३
इत्थं प्राप्य नृपादेशं	श्रा० सा०	१.४७०
इत्थं भूपतिराराध्यः	पुरु० शा०	६.५९
इत्थं मनो मनसि	यशस्ति०	५७९
इत्थं मन्त्रजलस्नातः	पुरु० शा०	५.९६
इत्थं मयैता प्रतिमाः	,,	६.१२०
इत्थं महाब्रह्म मुहूर्तमादौ	कुन्द०	१.१८९
इत्थं मूलगुणैर्युक्तः	,,	४.४९
इत्थं येऽत्र समुद्र	यशस्ति०	४७८
इत्थं यो धारणाःपञ्च	पुरु० शा०	५.५७
इत्थं यो यः क्रमाद्धत्ते	,,	६.९२
इत्थं रजस्वला रक्ष्या	धर्मसं०	६.२७३
इत्थं राजा निषिद्धोऽपि	श्रा० सा०	१.५४४
इत्थं रूपस्थमाख्यातं	पुरु० शा०	५.८०
इत्थं वणिक्यतेर्वाक्यं	श्रा० सा०	१.४३८
इत्थं वरुणभूपाल	,,	१.४०२
इत्थं विधूतदृग्मोहै	उमा०	२५९
इत्थं विविच्य परिमृच्य	अमित०	४.९९
इत्थं व्याघुटनार्थं स	श्रा० सा०	१.४९३
इत्थं शङ्कितचिन्तस्य	यशस्ति०	१४९
इत्थं शासनवात्सल्य	श्रा० सा०	१.६०७
इत्थं श्रीजिनभाषितं	धर्मोप०	५.१८
इत्थं षोडशभेदेन	व्रतो०	३२२
इत्थं स धर्मविजयी	महापु०	४०.२२१
इत्थं समासेन मया	पुरु० शा०	५.१०१
इत्थं समायिके भव्यः	पुरु० शा०	५.१४
इत्थं सुश्रावकाचारं	,, ,,	६.९८
इत्थं संसार-सम्भोग	श्रा० सा०	१.४८४
इत्थं स्नात्वाऽच्छ	धर्मसं	६.५५
इत्थं स्तुत्य मुनीशानं	श्रा० सा०	१.७२२
इत्थं स्थिरीकरण	,, ,,	१.५२१
इत्यखिलं य :कुर्याद्	व्रतो०	४५२
इत्यज्ञानि स्पृशेदस्य	महा०पु०	४०.११३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यचिन्नृपशुर्स्वंग्यु	धर्मसं०	७.१८९
इत्यत्र त्रितयात्मनि	पुरु० शा०	१३५
इत्यत्र ब्रूमहे सत्य	महापु०	३९.१४४
इत्यत्र वार्हंदर्चाच	पुरु० शा०	५.८२
इत्यनारम्भजां	सागार०	४.१०
इत्यनुत्सुकतां तेषु	महापु०	३८.२१२
इत्यनेन विधिना करोति	कुन्द०	१.४५
इत्यभिष्टुत्य भूपालं	श्रा० सा०	१.३३३
इत्यसाधारण्यप्रीति	महापु०	३८.२०९
इत्यागमानुसारेण	,,	२०७
इत्यात्मनो गुणोत्कर्षं	,,	३९.१२५
इत्यादिकं जिनपतेः	धर्मोप०	४.१०४
इत्यादिकं परित्याज्यं	,,	४.१०३
इत्यादिकं महादानं	प्रश्नो०	२०.९८
इत्यादिकामिमां भूति	महापु०	३८.३०३
इत्यादिकाश्चयावन्त्यः	लाटी०	४.१८३
इत्यादिगणनातीत्त	पुरु० शा०	५.७८
इत्यादिगुणसद्-रत्न	उमा०	१९२
इत्यादिगुणसम्पन्नैः	पुरु० शा०	३.१०९
इत्यादिगुणसम्पन्नो	,,	३.३६
इत्यादिसूरिभिः प्रोक्तं	धर्मोप०	३.२८
इत्यादिजगत्सर्वं स्वं	लाटी०	५.१६१
इत्यादिदूषणैर्मुक्तं	श्रा० सा०	१.७५१
	उमा०	८७
इत्यादिनाम संलब्धा	प्रश्नो०	३.१९
इत्यादि पात्रभेदज्ञो	धर्मोप०	४.१९४
इत्यादिफलमालोच्य	पुरु० शां०	५.९९
इत्यादिभिर्गुणैर्युक्तं	,, ,,	३.१४९
इत्यादिभूरिभेदै	धर्मोप०	४.१७
इत्यादिमहिमोपेतं	,,	२.२६
इत्यादिमिथ्यात्वमनेकं	अमित०	७.६५
इत्यादियुक्तिभिः शीलं	पुरु० शा०	४.१०३
इत्यादियुक्तितो नित्यं	धर्मोप०	४.६८
इत्यादियुक्तिविद् धत्ते	पुरु० शा०	६.८६
इत्यादिहेतुदृष्टान्तैः	,,	४.११७
इत्याद्यनन्तधर्माढ्यः	लाटी०	३.१४१
इत्याद्यनादिजीवादि	लाटी०	२.१०१
इत्याद्यनेकदोषा	,,	४.८
इत्याद्यनेकधाऽनेकैः	,,	३.१९६
इत्याद्यनेकनामापि	,,	३.१३३
इत्याद्यनेकभेदानि	,,	४.२०९
इत्याद्यालम्बनां	,,	४.२०२
इत्याद्यावश्यकं येऽपि	प्रश्नो०	१८.९०
इत्याद्युक्तिकुसिद्धान्ता	पुरु० शा०	३.१५३
इत्यापवादं विविधं	धर्मसं०	५.९०
इत्यापवादिकी चित्रां	सागार०	७.६०
इत्याप्तागमचारित्र	धर्मोप०	१.१७
इत्याश्रितसम्यक्त्वैः	पुरुषा०	३१
इत्यास्थायोत्थित	सागार०	६.३
इत्यष्टभेदसञ्जातैः	प्रश्नो०	२०.२०५
इत्यहोरात्रिकाचार	सागार०	६.४५
इत्युक्तमत्रदिङ्मात्रं	लाटी०	४.२७३
इत्युक्तव्रततपः शील	,,	३.१८०
इत्युक्ता वर्णिनो मध्वा	धर्मसं०	५.४९
इत्युक्तास्ते च तं	महापु०	३९.९६
इत्युक्तो युक्तिपूर्वो	लाटी०	३.१८९
इत्युक्त्वा गृहकोणे	प्रश्नो०	१२.१५८
इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य	,,	५.२०
इत्युकत्वा तं स्तवैः	श्रा०सा०	१.२०३
इत्युकत्वा पूजयित्वा	प्रश्नो०	१६.८०
इत्युक्त्वा मूलतश्छित्वा	श्रा०सा०	३.३५५
	उमा०	४५६
इत्युक्त्वा संस्थितो यावत्	प्रश्नो०	१६.७३
इत्युकत्वा सा ततो	,,	१५.९४
इत्युकत्वाऽसौ महीपालः	श्रा०सा०	१.४६९
इत्युक्तेऽति सुक्षेत्रे	प्रश्नो०	२०.३३१
इत्युक्तैस्तैः सुज्ञातो	धर्मसं०	५.५७
इत्युक्त्वैनं समाश्वास्य	महापु०	३९.७१
इत्युच्चैर्जिनपुङ्गवं	धर्मोप०	४.२२१
इत्युच्चैर्जिनभाषितानि	,,	४.५७
इत्युच्चैर्भरताधिपः	महापु०	३८.३१२
इत्युत्तमोपवासस्य	पुरु०शा०	६.५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्युद्दिष्टाभिरष्टाभिः	महापु०	३८.६५
इत्युपारूढसंरम्भ	,,	३९.११३
इत्युपासकसंस्कारः	पद्म०पंच०	६२
इत्यूचे भव्यलोकानां	व्रतो०	५३८
इत्येकमुपवासं यो	सं०भाव०	९६
इत्येकविंशतिविधा	उमा०	१३७
इत्येकादशधापूजां	सं०भाव०	५२
इत्येकादशधाऽऽख्यातो	धर्मसं०	५.८०
इत्येकादशधाऽऽम्नातो	सागार०	७.६१
इत्येकादश सम्प्रोक्ताः	भव्यध०	६.३६५
इत्येकादशसागार	गुणभू०	३.१४०
इत्येतदात्मनो रूपं	धर्मसं०	७.१३९
इत्येतानतिचारानपरानपि	पुरु०शा०	१९६
इत्येतानि व्रतान्यत्र	वराङ्ग०	१५.२०
इत्येवमादयोऽप्यन्ये	लाटी०	१.१२२
इत्येवमनुशिष्य स्वं	महा०पु०	३८.१५६
इत्येवमनुशिष्यैनं	,,	३८.१४१
इत्येवमेताः प्रतिमा	भव्यध०	६.३६०
इत्येवं कथयित्वा स	प्रश्नो०	१४.७७
इत्येवं कथितमशेष	,,	८.४२९
इत्येवं कथिता सम्यक्	उमा०	४६३
इत्येवं च परिज्ञाय	प्रश्नो०	२३.१४७
इत्येवं च वरस्त्रीणां	,,	२३८
इत्येवं ज्ञातसम्प्रोक्तां	भव्यध०	५.२८१
इत्येवं जिनदेवशास्त्रनिपुणैः	धर्मोप०	४.२५२
इत्येवं जिनपूजां च	उमा०	१८२
इत्येवं दर्शनाचारं	भव्यध०	४.२४९
इत्येवं दशभेदं यः	प्रश्नो०	२३.१२३
इत्येवं दोषसंयुक्तं	,,	२२.८१
इत्येवं पलदोषस्य	लाटी०	१.५८
इत्येवं पात्रदानं यो	सं०भाव०	९०
इत्येवं बोधितो भव्यः	उमा०	४७५
इत्येवं हि समालोक्य	प्रश्नो०	१४.७५
इत्येष गृहिणां धर्मः	यशस्ति०	९०९
इत्येष धर्मो गृहिणां	गुणभू०	३.१५०
इत्येष षड्विधा पूजा	,,	३.१३६
इत्वरिकागमनं परविवाह	सागार०	४.५८
इत्वरिका स्यात्पुंश्चली	लाटी०	५.७५
इदं धत्ते भक्त्या	अमित०	७.७९
इदं पापफलं मत्वा	प्रश्नो०	१०.२१
इदं मे चेष्टितं देव	श्रा०सा०	१.४८१
इदमावश्यकषट्कं	पुरुषा०	२०१
इदमिति यः परिहरते	व्रतो०	४७३
इदमिदं कुरु मैवेदं	लाटी०	६.४७
इदमेवात्र तात्पर्यं	,,	१.८८
इदमेवेदृशं चैव	रत्नक०	११
इदमेवेदृशमेवतत्त्वं (उक्तं)	श्रा०सा०	१.१७८
इदानीमुपलब्धात्मदेह	सागार०	८.९६
इदानीं पूजकाचार्य	धर्मसं०	६.१४४
इदानीं सद्धृतेनाहं	प्रश्नो०	१६.९८
इदानीं सम्प्रवक्ष्येहं	,,	२४.२१
इन्द्रखेन्द्र-नरेन्द्रादिसम्पदां	धर्मोप०	४.१२
इन्द्रतीर्थेशचक्र्यादि	प्रश्नो०	१८.८५
इन्द्रत्यागक्रिया सैषा	महापु०	३८.२१३
इन्द्रत्वं च फणीन्द्रत्वं	श्रा० सा०	१.२३४
इन्द्रनागेन्द्र चन्द्रार्कैः	धर्मोप०	४.२०८
	,,	३.३
इन्द्रश्रीजिनदेवादि	प्रश्नो०	११.४२
इन्द्राणां तीर्थकर्तॄणां	अमित०	१२.३६
इन्द्रादिभिः सदाभ्यर्च्य	पुरु० शा०	५.७६
इन्द्राद्यष्ट दिशापालान्	सं० भाव०	४१
इन्द्राद्याः हि सुराः	प्रश्नो०	२३.४६
इन्द्रायुधमिवानेक	कुन्द०	३.८२
इन्द्राः स्युस्त्रिदशाधीशाः	महापु०	३८.१९१
इन्द्रियसुखं विषयरसं	व्रतो०	६७
इन्द्रियाणि निजार्थेषु	कुन्द०	११.५२
इन्द्रियाणि स्फुटं पञ्च	लाटी०	५.९२
इन्द्रियादिजये शूराः	प्रश्नो०	२०.११
इन्द्रियानिन्द्रयोद्भूतं	गुणभू०	२.३
इन्द्रियार्थेषु संसक्तः	प्रश्नो०	२०.११२
इन्द्रियाद्याः दश प्राणाः	हरिवं०	५८.१३३
इन्द्रियापेक्षया प्रायः	कुन्द०	११.९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियार्थरतैः पापैः पुरु० शा० ३.७९
इन्द्रोपपादाभिषेकौ महापु० ३८.६०
इन्द्रो यमश्च राजा च कुन्द० ८.७०
इन्द्रोऽहमिति संकल्पं भव्यध० ६.३४९
इममेव मन्त्रमन्ते यशस्ति० ५७२
इमं ध्यानं समापन्नं प्रश्नो० ५.११
इमं सत्वं हिनस्मीति सागार० ४.८
इमां कथां समाकर्ण्य प्रश्नो० १३.११०
इमां ततोऽधुना भ्रान्ति धर्मसं० ७.६१
इमांमेतादृशीं चक्रे श्रा० सा० १.४३
इमे दोषाः बुधैस्त्याज्या प्रश्नो० १८.९९
इमे पदार्थाः कथिता अमित० ३.७३
इमं च वैष्णवी माया व्रतो० ३९३
इयतापि प्रयत्नेन श्रा० सा० १.६५७
इयतीं क्ष्मां गमिष्यामि पूज्यपा० ८७
इयन्तं कालमज्ञानात् महापु० ३९.४६
इयन्तं समयं सेव्यौ धर्मसं० ४.१६
इयमेकैव समर्था धर्मं पुरु० शा० १७५
इत्यष्टकं तस्य फलप्रदं व्रतो० ३३४
इत्यष्टाङ्गयुतं पुरु० शा० ३.१२९
इत्यष्टौ जिनसूत्रेण धर्मोप० ३.३६
इष्टदेव नमस्कारं कुन्द० ५.२३३
इष्टादिकं विधेयं प्रश्नो० १७.४७
इष्टानामप्यपत्यानां कुन्द० ८.१२६
इष्टानिष्टादिशब्दार्थं लाटी० ५.९६
इष्टानिष्टेन्द्रियार्थेषु हरिवं० ५८.८
इष्टिकाचितिबल्मीकाद् कुन्द० ८.१२६
इष्टोपदेशं किल श्रा० सा० ३.१८५
इष्टो यथात्मनो देहः पद्म०पं० १४.७
इह खलु जम्बूद्वीपे व्रतो० ५२५
इह जन्मनि विभवादीन् पुरु० शा० २४
इह जम्बन्तरीयेऽस्मिन् धर्मसं० २.८०
इह भवे विभवादिक श्रा० सा० १.२३२
इह लोके परलोके व्रतो० ७९
इह लोके सुखं हित्वा अमित० ४.३
इहामुत्र दयार्द्रान्तः धर्मसं० ६.१९३
इहामुत्र हितार्थं प्रश्नो० २०.२२२
इहामुत्रेति तन्मत्वा धर्मसं० २.३२
इहैव स्याद्यशोलाभो महापु० ३८.२६३
इह दानर्थसन्देहो लाटी० १.२१३

ई

ईदृग्दोष मृदाचार्यः धर्मसं० ६.१५२
ईदृग्विधं पदं भव्यः सं० भाव० १७८
ईदृग्विधं सुनारीणां प्रश्नो० २३.९
ईदृशंदशभेदं सा ,, २१.४१
ईदृशं हि तदा कार्यं ,, २२.९
ईदृशीं सम्पदं त्यक्त्वा श्रा० सा० १.५१४
ईप्सितार्थप्रदः सर्वं कुन्द० १.४
ईर्तें युक्ति यदेवात्र यशस्ति० १६
ईर्यासमितिरप्यस्ति लाटी० ४.२१४
ईर्यासमिति संशुद्धः ,, ६.६१
ईर्ष्यालुः कुलटा-कामी कुन्द० ८.४०४
ईर्ष्याऽसौ सुषेणेन धर्मसं० २.८८
ईशान्यां दिशि प-प्रश्ने कुन्द० १.१६३
ईशान्यां नैव कर्त्तव्या उमा० ११९
ईश्वर-प्रेरितो ह्यात्मा व्रतो० ३८८
ईषन्न्यूनं च मध्याह्ने लाटी० ५.२२०
ईषन्न्यूनाच्च मध्याह्ना ,, ५.२३०

उ

उक्तं केनाप्यनुक्तेन लाटी० ५.१३०
उक्तं गाथार्थसूत्रेऽपि लाटी० २.११०
उक्तं चायं बलीवर्दस्तरुणो प्रश्नो० ९.१५
उक्तं तत्त्वार्थसूत्रेषु लाटी० ४.१८६
उक्तं तद्-गुरुणा वत्स प्रश्नो० ९.४७
उक्तं तया ममैषापि ,, १०.३०
उक्तं तेन मया गेहमण्डनं ,, ६.३५
उक्तं दिग्मात्रमतोऽप्यत्र { लाटी० २.१७३ / लाटी० ३.३०० }
उक्तं दिग्मात्रमत्रापि लाटी० ३.२३६
उक्तं पञ्चव्रतानां हि धर्मोप० ४.१२९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तं व्रह्मव्रतं साङ्ग	लाटी०	५.८१
उक्तं लोकोत्तरं ध्यानं	यशस्ति०	६७६
उक्तं वज्रकुमारेण	प्रश्नो०	१०.६२
उक्तं शिक्षाव्रतं चाद्यं	प्रश्नो०	१८.२२
उक्तं श्रीगौतमेनैव	प्रश्नो०	२१.१७१
उक्तं सम्यक् परिज्ञाय	लाटी०	४.१७०
उक्तं हाहा मुनीन्द्राणा	प्रश्नो०	९.४५
उक्तं प्रभावनाङ्गोऽपि	लाटी०	३.३१५
उक्तं प्राणिवधो हिंसा	लाटी०	१.१६७
उक्तमस्ति क्रियारूपं	लाटी०	३.२४७
उक्तमाक्षं सुखं ज्ञानं	लाटी०	२.२९
उक्तं मांसाद्यतीचारैः	लाटी०	४.२३२
उक्तमेकाक्षजीवानां	लाटी०	४.९६
उक्तः सप्रतिभो ब्रूयात्	कुन्द०	८.३०२
उक्तातिचारनिर्मुक्तं	लाटी०	५.५८
	,,	५.१३४
	,,	५.२१८
उक्तावाग्गुप्तिरत्रैव	लाटी०	४.२०३
उक्ता सल्लेखनोपेता	लाटी०	५.२४५
उक्ताः संख्या व्रतस्यास्य	लाटी०	५.१०८
उक्तेन ततो विधिना	पुरुषा०	१५६
उक्तेन विधिना नीत्वा	उमा०	४२९
उक्तेन विधिना नीत्वा	श्रा० सा०	३.३१४
उक्तेषु वक्ष्यमाणेषु	लाटी०	१.५०
उक्तो धर्मस्वरूपोऽपि	लाटी०	३.२७०
उक्तो निःकाङ्क्षितो भावो	लाटी०	३.९८
उक्तो न्यासापहारः सः	लाटी०	५.२५
उक्त्वेति मौनमालम्ब्य	धर्मसं०	२.१०९
उत्क्षेपणावक्षेपणा	कुन्द०	८.२२६
उग्ररोगोपसर्गाद्यैः	पुरु० सा०	३.१३८
उग्रसेनेन तत्सर्वं	प्रश्नो०	२१.७३
उग्रसेनेन रुष्टेन	,,	२१.९४
उग्रसेनो महाकोपाद्	,,	२१.६५
उचिते स्थानके यस्य	यशस्ति०	१५९
उच्चत्व-नीचत्व-विकल्प एव	अमित०	७.३८
उच्चस्थानस्थितैः कार्या	अमित०	१३.४२
उच्चावचनप्रायः	यशस्ति०	७९०
उच्चावचप्रसूतानां	यशस्ति०	५६
उच्चासु नीचासु च हन्त	अमित०	७.३६
उच्चैर्गोत्रं प्रणते	रत्नक०	११५
उच्चैर्धात्रीधरारोहे	लाटी०	५.११८
उच्चैर्मनोरथाः कार्याः	कुन्द०	८.३८२
उच्चोऽपि नीचत्वमवेक्ष्य	अमित०	७.३७
उच्यते गतिरस्यास्ति	लाटी०	५.८०
उच्यते विधिरमापि	लाटी०	४.२३७
उच्यते श्रृणु भो प्राज्ञ	,,	४.१२१
उच्छलद्-धूलिचरणाः	कुन्द०	५.९६
उच्छिष्टं नीचलोकार्हं	यशस्ति०	७४८
उच्छिष्टं नीचलोकार्हं	धर्मोप० (उक्तं)	४.१६५
उज्जयिन्यां महीपालो	श्रा० सा०	१.५३३
उज्झितानकसङ्गीतघोषः	महापु०	३९.१८३
उडपो मङ्क्षिनीपातो	कुन्द०	५.७१
उड्डीनं गुणपक्षिभिः	श्रा० सा०	३.२२१
उत्कटस्नायुदुर्दर्शं	कुन्द०	५.१११
उत्कर्षो यद्व्रताधिक्याद्	लाटी०	३.३१०
उत्कृष्टं पद्मनालस्य	भव्यध०	३.२३२
उत्कृष्टपात्रमनगार	लाटी० (उक्तं)	५.२६०
	धर्मोप० (उक्तं)	४.२३
उत्कृष्टमध्यनिकृष्टेः	प्रश्नो०	२०.५
उत्कृष्टमध्यमक्लिष्ट	सं० भाव०	७४
उत्कृष्टः श्रावको द्वेधा	लाटी०	६.५५
उत्कृष्टः श्रावको यः प्राक्	धर्मसं०	६.२७९
उत्कृष्टश्रावकेणैते	अमित०	८.७१
उत्कृष्ट श्रावकेना	धर्मसं०	५.७८
उत्कृष्टेन द्वितीये वा	भव्यध०	१.७७
उत्कृष्टोऽसौ द्विधा ज्ञेयः	धर्मसं०	५.६०
उत्क्षिप्य चैकपादं यो	प्रश्नो०	१८.१५८
उत्तमं सात्त्विकं दानं	यशस्ति०	७९९
उत्तमभोगभूषूच्चैः	लाटी०	४.४२
उत्तममुत्तमगुणतो	अमित०	१०.३
उत्तमाचारणात्सच्छ्री	प्रश्नो०	१७.५४
उत्तमाचारमायाति	,,	२०.४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तमादिसुपात्राणां धर्मसं० ४.११२
उत्तमा मध्यमा ये च उमा० १८४
उत्तमार्थे कृतास्थानः महापु० ३८.१८७
उत्तमैका सदारोप्य कुन्द० ८.३८०
उत्तमो दैवते लाभो कुन्द० २.३२
उत्तमो मध्यमश्चैव गुणभू० ३.६२
उत्तरस्यां दिशि प्रौढ श्रा० सा० १.३८२
उत्तराभिमुखं चैत्यगेहादौ प्रश्नो० १८.३६
उत्तराभिमुखः प्राची कुन्द० १.७२
उत्तराशानिलाद् रुक्षं कुन्द० ६.२९
उत्तरोत्तरभावेन यशस्ति० ७९२
उत्तुङ्गतोरणोपेतं रत्नक० २६
उत्तुङ्गसौधमारूढो श्रा० सा० १.५३७
उत्तुङ्गैर्बहुभिश्चैव भव्यध० १.१४
उत्थाय शयनोत्सङ्गाद् कुन्द० ४.१
उत्पत्तिस्थानसाम्यत्वाद् धर्मसं० २.४१
उत्पत्ति-स्थिति-संहारसाराः यशस्ति० १०२
उत्पत्तिहीनस्य जनस्य नूनं अमित० ७.२३
उत्पद्यते क्वचित् पापं प्रश्नो० २४.६
उत्पद्यन्ते ततो मृत्वा सं० भाव० १५३
उत्पद्यमाना निलये अमित० १०.६५
उत्पद्योत्पादशय्यायां अमित० ११.१०३
उत्पन्ना मन्त्रयोगेन भव्यध० ५.२९८
उत्पन्नं यत्कदाचित्तु गुणभू० २.१८
उत्पलादौ निराकारे गुणभू० ३.१०७
उदङ्मुखः स्वयं तिष्ठेत् यशस्ति० ४९४
उदयस्त्रिगुणः प्रोक्तः कुन्द० १.१६८
उदयात्कर्मणो नाग्न्यं लाटी० ६.२८
उदयात्पर्याप्तकस्य लाटी० ४.७८
उदयास्तात्प्राक्पाश्चात्य धर्मसं० ४.४६
उदये दृष्टिमोहस्य अमित० २.१६
उदश्वितेव माणिक्यं यशस्ति० १५७
उदारं विकथोन्मुक्तं कुन्द० ८.३०३
उदारश्च तिरस्कारः पद्मच० १४.१४
उदारश्रावकाचार { श्रा० सा० १.४१६ / ,, १.१८१ }
उदारान् खदिराङ्गारान् { श्रा० सा० ३.२३५ / उमा० ३७६ }
उदाहार्यं क्रमं ज्ञात्वा महापु० ४०.६८
उदीच्यां दिशि श-प्रश्ने कुन्द० १.१६२
उदीर्य त्वमुत्साहं च प्रश्नो० २२.२७
उदुम्बराणि पञ्चैव भव्यध० १.८१
उदुम्बरफलान्येव { प्रश्नो० १२.२३ / लाटी० १.७८ }
उदुम्बर-वट-प्लक्षफल्गु धर्मसं० २.१४५
उदुम्बराणि पञ्चैव गुणभू० ३.४
उद्बद्धपिण्डिका स्थूल कुन्द० ५.९८
उद्यमे सप्तमी प्राज्ञो कुन्द० ८.३४३
उद्यामारामसङ्कीर्णो श्रा० सा० १.१८०
उद्यायनो नृपो भूयः प्रश्नो० ७.१३
उद्दिश्य चण्डिकां पापं प्रश्नो० १२.९३
उद्दिष्टविरतो द्वेधा गुणभू० ३.७६
उद्दिष्टं विक्रयानीतं सं० भाव० ८१
उद्भ्रान्तार्भकगर्भे यशस्ति० २८०
उद्यत्क्रोधादि-हास्यादि सागार० ४.६०
उद्यद्बोधैर्बुधैस्तस्य श्रा० सा० १.१५१
उद्यमं कुरुते यावत् प्रश्नो० ५.३०
उद्यानभोजनं जन्तुयोधनं सागार० ६.२०
उद्यानादागतां भार्या प्रश्नो० ६.१७
उद्यानादिकृतां छायामपरस्य महापु० ३९.१८४
उद्योतनं मखेनैक धर्मसं० ३.४८
उद्योतनं महेनैकं सागार० ४.३७
उद्यमादिगुणोपेताः प्रश्नो० ११.७७
उद्विग्नो विघ्नशङ्को लाटी० १.१७२
उद्वेगं याति मार्जारः कुन्द० ३.८८
उद्वेजकोऽतिचाटूक्त्या कुन्द० ८.४२४
उत्पातः पटिको लक्ष्म कुन्द० ५.२७
उन्नतिं विनतिं कृत्वा व्रतो० ४७९
उन्नतेभ्यः ससत्त्वेभ्यो अमित० १२.२८
उपकाराय सर्वस्य यशस्ति० २९७
उपकारो न शीलस्य अमित० १२.५०
उपगूहस्थितीकारौ यशस्ति० १७९

Ganesh Varni·Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपचारोऽस्ति तं रूपं	गुणभू०	२.३३
उपदेशैः स्थिरं येषां	अमित०	१२.२७
उपदेशं समासाद्य	श्रा०सा०	१.२०९
उपनीतक्रियामन्त्रा	महापु०	४०.१५३
उपपादि च सौधर्मे	धर्मसं०	६.१२८
उपबृंहणनामाथ	लाटी०	३.४
उपबृंहणनामादि	लाटी०	३.२८४
उपबृंहणमत्रास्ति	,,	३.२७३
उपभोगो मुहुर्भोग्यो	गुणभू०	३.३७
उपमानोपमेयाभ्यां	लाटी०	४.२५०
उपयाचन्ते देवान्	अमित०	९.६५
उपयोगमयो जीवः	प्रश्नो०	२.१०
उपयोगमयो जीवो	व्रतो०	४१२
उपयोगयुतो जीवो	भव्यध०	२.१४९
उपयोगो द्विधा ज्ञेयो	भव्यध०	२.१५४
उपलब्धि-सुगति	पुरुषा०	८७
उपवासं जिननाथा	अमित०	६.९१
उपवासं विधत्ते यः	प्रश्नो०	१९.२६
उपवासं विना शक्तो	अमित०	१२.१३३
उपवासः कृतोऽनेन	,,	१२.१३२
उपवासा विधीयन्ते	,,	१२.१३६
उपवासः सकृद्भुक्ति	सं०भाव०	१६१
उपवासदिने धीरैः	प्रश्नो०	१९.६
उपवासदिने सारे	,,	१९.११
उपवासाक्षमैः कार्योऽनुप	सागार०	५.३५
उपवासादिभिः कायं	,,	८.१५
उपवासादिभिरङ्गे	यशस्ति०	८६४
उपवासानुपवासैकस्थाने	अमित०	६.९०
उपवासेन सन्तप्ते	,,	१२.१३४
उपवासो जिनैरुक्तः	प्रश्नो०	१९.१०
उपवासो विधातव्यः	पूज्यपा०	८२
उपवासो विधातव्यो गुरुणां	पूज्य०	८३
उपविश्य ततःप्रोक्तं	प्रश्नो०	८.६३
उपविष्टस्य देवस्य	कुन्द०	१.१२१
उपशमो जिनभक्तिश्च	भव्यध०	१.७२
उपशान्तासु दुष्टासु	पुरु०शा०	३.४५
उपसर्गा हि सोढव्याः	प्रश्नो०	१८.५५
उपसर्गेण कालेन	धर्मसं०	७.९
उपसर्गे दुर्भिक्षे	रत्नक०	१२८
उपहासः कृतश्चैतै	प्रश्नो०	९.१३
उपहास्यं च लोकेऽस्मिन्	लाटी०	१.२१६
उपाङ्गमथवाङ्गं स्याद्	कुन्द०	५.११६
उपाधिपरिमाणस्य	,,	५.८२
उपाध्यायत्वमित्यत्र	,,	३.१८३
उपाध्यायमुपासीत	कुन्द०	८.११६
उपाध्यायः स साध्वीयान्	,,	३.१८१
उपाध्यायः समाख्यातो	,,	३.१८८
उपानत्सहितो व्यग्र	कुन्द०	३.३३
उपाये सत्युपेयस्य	यशस्ति०	८१
उपार्जितं कर्म न वृद्धिमेति	व्रतो०	४२३
उपार्ज्यते वित्तमनेकवारं	व्रतो०	९७
उपार्ज्यं बहुशो द्रव्यं	प्रश्नो०	१३.४७
उपासक श्रृणुत्वं हि	,,	१६.८८
उपासकस्य सामग्रीविकलस्य	धर्मसं०	७.२
उपासकाख्यो विबुधैः	प्रश्नो०	२४.१४२
उपासकाचार-विचारसारं	अमित०	१.९
उपासकाचार-विधिप्रवीणो	अमित०	१०.३०
उपेक्षायां तु जायेत	यशस्ति०	१८९
उपेत्याक्षाणि सर्वाणि	अमित०	१२.११९
उपोषितस्य जीवस्य	प्रश्नो०	३.५२
उप्तं क्षारक्षितौ यद्वद्	धर्मोप०	४.१९३
उप्तं यथोसरे क्षेत्रे	पूज्यपा०	४७
उभयपरिग्रह-वर्जनमाचार्या	पुरुषा०	११८
उभे पक्षे चतुर्दश्यां	भव्यध०	४.२६६
उररीकृत-निर्वाह	यशस्ति०	१५४
उरोलिङ्गमक्षास्य स्याद्	महापु०	३८.११२
उर्मिलाया महादेव्या	श्रा०सा०(उक्तं)	१.६१५
,, ,,	पुरु०शा०	३.१२८
,, ,,	उमा०	६८
उर्वोपरि निक्षेपे	अमित०	८.४७
उलूक-काकमार्जार	उमा०	३२९
	धर्मोप० (उक्तं)	४.१२
	श्रा०सा० (उक्तं)	३.११८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लङ्घ्यते च यावन्त्यो कुन्द० ५.५३
उल्लंघ्य न्यायमार्गं यो प्रश्नो० १६.५१
उल्लसत्किकणीक्वाण श्रा० सा० १.७१३
उल्लसन्मक्षिकालक्ष ,, ,, १.६८९
उल्लाघोऽहं भविष्यामि लाटी० ३.४९
उवाच कौ युवां कस्माद् श्रा०सा० १,१८७
उवाच तं गदी मे त्वं सुहृत् धर्मसं० २.७०
उवाच त्रिदशः श्रेष्ठिन् श्रा०सा० १.१८
उवाच स जलं स्वामिन् श्रा०सा० १.३६४

ऊ

ऊचे च पाप ते दीक्षा श्रा०सा० १,६४१
ऊचे स श्रृणु यो धीमन् प्रश्नो० ५.२५
ऊरुर्भावोऽप्ययं ताव महापु० ३८.१३६
ऊर्ध्वगो हि स्वभावेन भव्यध० २.१५९
ऊर्ध्वं तु प्रतिमामान कुन्द० १.१२९
ऊर्ध्वत्वमुक्तितो नाग्न्यात् { श्रा०सा० १.३०१ / उमा० ४८ }
ऊर्ध्वरेखा मणेर्बन्धात् कुन्द० ५.५०
ऊर्ध्ववह्निरधस्तोयं कुन्द० १.३०
ऊर्ध्वः सामायिकं स्तोत्र अमित० ८.१०१
ऊर्ध्वदृक् द्रव्यनाशाय कुन्द० १.१५०
ऊर्ध्वमधस्तात्तिर्यक् पुरुषा० १८८
ऊर्ध्वव्यतिक्रमश्चाधो प्रश्नो० १७.१६
ऊर्ध्वं स्थित्वा क्षणं पश्चाद् कुन्द० १.७७
ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग् { रत्नक० ७३ / श्रा०सा० ३.२६२ }
ऊर्ध्वाधस्तिर्यगाक्रान्तिः धर्मोप० ४.१०८
ऊर्ध्वाधो दिग्विदिगवस्थानं बराङ्ग० १५.११
ऊर्ध्वीभूय पुनश्चैव प्रश्नो० १८.४३
ऊर्ध्वोऽधस्तिर्यगाक्रान्ति व्रतो० ४४७
ऊर्विलाया महादेव्याः यशस्ति० १९८
ऊहापोहोऽपि कर्तव्यः लाटी० ५.१८२
ऊह्यं स्वयमकर्त्तारं अमित० ४.३८

ऋ

ऋजुभूतमनोवृत्ति अमित० १३.२
ऋजुर्वाग्मी प्रसन्नोऽपि धर्मसं० ६.१४६
ऋतावेव ध्रुवं सेव्या कुन्द० ५ १८५
ऋतुगतमिति सर्वं कृत्यं कुन्द० ६.३०
ऋते धर्मार्थकामानां धर्मसं० ६.१६३
ऋते नृत्वं न कुत्रापि धर्मसं० ६.२२२
ऋते सम्यक्त्वभावं यो लाटी० २.२२४
ऋद्धिः संजायते नैव प्रश्नो० १.४६
ऋद्ध्यष्टकसमायुक्ताः प्रश्नो० ११.८५
ऋषिर्मुनिर्यतिः साधुः धर्मसं० ६.२८३
ऋषीणामर्च्यं ज्येष्ठरवाद् प्रश्नो० ३.१८

ए

एक एव ध्रुवं जन्तुः कुन्द० १०.३४
एक एव हि भूतात्मा यशस्ति० ४३
एकः करोति हिंसा भवन्ति पुरुषा० ५५
एकः करोति हिंसां श्रा०सा० (उक्तं) ३.१२८
एककालादपि प्राप्त { श्रा०सा० २.२ / उमा० २४९ }
एकको भ्रमति दुःखकानने अमित० १४.२४
एकतः कुरुते वाञ्छां कुन्द० ३.१८
एक-द्वि-त्रि-चतुर्युक्ता कुन्द० २.५५
एक-द्वि-त्रि-चतुःसञ्ज्ञा कुन्द० २.५३
एकमथायुधं पाणौ कुन्द० ५.७०
एकमपि पदे तिष्ठन् श्रा०सा० १.५१७
एकः खेऽनेधान्यत्र यशस्ति० ४४
एकः स्वर्गे सुखं भुङ्क्ते धर्मसं० ७.९२
एकचित्तेन भो धीमन् { प्रश्नो० १२.३१ / ,, १२.४९ }
एकचित्तेन भो मित्र ,, १४.४०
एकचित्तेन मे शीलं ,, १५.३३
एकचित्तेन यो धीमान् { प्रश्नो० ३.२० / ,, १९.५२ }
एकचित्तेन वा धीमान् ,, १९.२३
एकचित्तेन मुक्त्यर्थं ,, १८.४८
एकचित्तेन व्युत्सर्गं ,, १८.१८४
एकचित्तान्वितो भूत्वा ,, २१.१५०
एकत्र भाविनः केचिद् अमित० ४.६३
एकत्र वसतिः श्लाघ्या प्रश्नो० २३.२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकदाऽकम्पनो नाना	,,	९.५
एकदा कर्त्तुमारब्धो	श्रा० सा०	१.५७७
एकदा क्षुल्लकं पृष्ट्वा	प्रश्नो०	८.१४
एकदा खलु गुर्विण्या	,,	१०.९
एकदा चैत्रसन्मासे	,,	१०.५१
एकदा तद्गृहे धीरा	,,	२१.३३
एकदा तं समालोक्य	,,	२१.१२६
एकदा तस्य धीरस्य	,,	१०.३३
एकदा दक्षिणस्थायां	श्रा० सा०	१.३४८
एकदा ददते दुःखं	अमित०	१२.४३
एकदा दम्पती पूर्वं	प्रश्नो०	१६.५८
एकदा नगरं मुष्णं	,,	१४.४६
एकदा निर्धनं नैवा	,,	१६.९२
एकदा प्रागतं कूल	,,	२१.८९
एकदा पुंश्चली रात्रौ	प्रश्नो०	१५.११३
एकदा व्युग्रसेनेन	,,	२१.६२
एकरात्रंत्रिरात्रं वा (उक्तं)	श्रा० सा०	१.३०८
एकदा रुद्रभट्टस्य	प्रश्नो०	२१.२५
एकदा हृष्टया प्रोक्तं	,,	१५.११९
एकदा वसतिर्दत्ता	,,	२१.१३४
एकदा श्रीगुरुपृष्टो	,,	७.२२
एकदा स चतुर्दश्यां	,,	८.३१
एकदा सर्पदष्टोऽहं	,,	१२.१६७
एकदा सोमदत्तादि	,,	५.२२
एकदाऽसौ चतुर्दश्या	श्रा० सा०	१.४५१
एकदासौ सुकेश्यामा	,,	१.२५०
एकदा स्नान-गर्तायां	प्रश्नो०	२१.५८
एकदेति प्रशंसन्तं	श्रा० सा०	१.१९७
एकद्वयचतुःपञ्चषट्	धर्मस०	७.१२२
एकद्वित्रिचतुःपञ्च	अमित०	३.१९
एकद्वित्रिचतुःपञ्चदेहा	,,	८.६२
एकपदं बहुपदापि ददासि	यशस्ति०	७११
एकप्रकारमपि योगवशादुपेतं	,,	१४.४६
एकभेदं द्विभेदं वा	प्रश्नो०	१.१७
एकमथायुधं पाणौ	कुन्द०	५.७०
एकमपि प्रजिघांसु	पुरुषा०	१६२
एकमासे रवेर्वाराः	कुन्द०	८.३२
एकमेकं सहन्ते नो	धर्मसं०	२.८९
एकमेव जलं यद्वद्	पूज्यपा०	५०
एकमेव हि सम्यक्त्वं	गुणभू०	१.६९
एकरात्रं त्रिरात्रं वा	उमा०	४७
एकवस्त्रं विना त्यक्त्वा	प्रश्नो०	१८.३४
एकवर्णं यथा दुग्धं	कुन्द०	११.७३
एकवस्त्रान्वितश्चार्द्रं	,,	३.३२
एकवस्त्रो विवस्त्रश्च	,,	८.१५६
एक वारं सुभावैर्यः	उमा०	१५८
एकशो भुज्यते यो हि	धर्मसं०	४.१७
एकस्य सैव तीव्रं	पुरुषा०	५३
	श्रा० सा० (उक्तं)	३.१५७
एकस्यानर्थदण्डस्य	लाटी०	५.१३६
एकस्याल्पाहिंसा	पुरुषा०	५२
	श्रा० सा० (उक्तं)	३.१५६
एकस्तम्भं नवद्वारं	यशस्ति०	६९५
एकस्मिन् कूपके स्थूलं	कुन्द०	५.११०
एकस्मिन्नेव व्युत्सर्गे	प्रश्नो०	१८.४३
एकस्मिन् मनस	यशस्ति०	३३१
एकस्मिन् योऽपि प्रस्तावे	प्रश्नो०	२१.७४
एकस्मिन् वासरे	यशस्ति०	२६३
एकस्मिन् समवाया	पुरुषा०	२२१
एकाकिना न गन्तव्यं	कुन्द०	८.३४७
एकाकी व्यक्तहिंसः स	प्रश्नो०	११.५६
एकाक्षरादिकं मन्त्रं	गुणभू०	३.१२४
एकाक्षाः स्थावरा जीवाः	अमित०	३.८
एकाक्षे तत्र चत्वारो	लाटी०	४.६२
एकाग्रचेतसा धीमन्	प्रश्नो०	३.१४६
एकाग्रचेतसा मित्र	,,	११.७३
एकाग्रचेतसा वत्स	,,	१.२६
एकाग्रचेतसा सर्वान्	,,	१६.४५
एकाङ्गः शिरसो नामे	अमित०	८.६३
एकाङ्गुलं भवेच्छ्रेष्ठं	उमा०	१०१
एका जीवदयैकत्र	यशस्ति०	३४६
एकादशाङ्गयुक्तस्य	श्रा० सा०	१.३५३
एकान्तरं त्रिरात्रं वा	यशस्ति०	१२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकान्तरा द्वितीयाद्या	कुन्द०	८.१४८
एकान्तं विपरीतं च	प्रश्नो०	४.१६
एकान्तः शपथश्चैव	यशस्ति०	७०
एकान्तसंशयाज्ञानं	,,	११६
एकान्ते निर्मले स्वास्थ्यकरे	धर्मसं०	४.४५
एकान्ते मधुरैर्वाक्यैः	कुन्द०	२.९९
एकादश गता रुद्रा	प्रश्नो०	१५.१३०
एकान्ते केशबन्धादि	सागार०	५.२८
एकान्ते यौवनध्वान्ते	अमित०	१२.८८
एकान्ते वा वने शून्ये	श्रा० सा०	३.२९९
	उमा०	४१८
एकान्ते विजनस्थाने	लाटी०	६.७९
एकान्ते सामयिकं	रत्नक०	९९
एकादशसम्प्रतिमां	प्रश्नो०	२४.११५
एकादशाङ्गपाठोऽपि	लाटी०	४.१८
एकादशाङ्गयुक्तोऽपि	प्रश्नो०	११.६८
एकादशाङ्गविद्भव्यसेन	,,	७.२५
एकादशाङ्गसत्पूर्वं	धर्मसं०	७.११८
एकादशाङ्गुलबिम्बं	उमा०	१००
एकादशोक्ता विदितार्थतत्त्वै	अमित०	७ ६६
एकादशोपपासकेषु	धर्मसं०	२.१३
एकापि समर्थेयं जिनभक्तिः	यशस्ति०	१५३
एकापि समर्थेयं	धर्मोप० (उक्तं)	४,२६
एकादशप्रकारोऽसौ	गुणभू०	३.४१
एकाह्मपि निष्पन्नं	कुन्द०	१.१७२
एके तिष्ठन्ति सन्मार्गे	व्रतो०	४०५
एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्तो	पुरुषा०	२२५
एकेनापि सुपात्रेण	अमित०	११.९५
एकेनैवोपवासेन	पुरु० शा०	६.१६
एकेन्द्रियस्य चत्वारि	भव्यध०	२.१६९
एकेन्द्रियादिका जीवा	धर्मोप०	४.९९
एकेन्द्रियाणां विकले	भव्यध०	३.२३१
एकेन्द्रियादिपर्याप्ताः	,,	२.१६६
एकैकक्षेत्रसम्भूत	कुन्द०	५.९१
एकैकं छिन्दता पादं	श्रा० सा०	१.२१३
एकैकमङ्गमासाद्य	प्रश्नो०	४.५८
एकैकविषयादेव	धर्मसं०	७.१६५
एकैकं वा च यो द्वे द्वे	अमित०	२.२६
एकैकव्यसनासक्ता	प्रश्नो०	१२.४५
	,,	१२.५५
एकैकव्यसनेनेत्थं	धर्मसं०	२.१६३
एकैकहानिस्तोयादेः	कुन्द०	१.६५
एकैकेन्द्रियसंसक्ताः	उमा०	२०८
एकैवास्तु जिने भक्तिः	सागार०	८.७४
एकैवेयं यतो दृष्टिः	गुणभू०	१.३३
एको देवः स द्रव्यार्थात्	लाटी०	३.१२८
एको देवः ससामान्या	,,	३.१८७
एको धर्मस्य तस्यात्र	वराङ्ग०	१५.३
एकोनपञ्चाशतमवेहि	भव्यध०	३.२०९
एकोनविंशतिर्भेदा	,,	२.१७४
एकोऽप्यत्र करोति यः	देशव्र०	२
एकोऽप्यभिमुखः स्वस्य	कुन्द०	५.६३
एकोऽप्यर्हन्नमस्कारः	सागार०	८.७६
एकोऽप्युपकृतो जैनो	धर्मसं०	६.१७६
एकोरुका गुहावासाः	सं० भाव०	१४८
एकोऽसौ धर्मकार्येऽतो	महापु०	३८.१५३
एकोऽहं शुद्ध-बुद्धोऽहं	धर्मोप०	४.१२५
एको हि देशतो धर्मं	प्रश्नो०	१.२३
एकोहि देशतो धर्मः	प्रश्नो०	१.२३
एको हेतुः क्रियाप्येका	लाटी०	३.१६१
एत एकेन्द्रिया जीवाः	श्रा० सा०	१.३६१
एतत्तत्त्वमिदं तत्त्व	यशस्ति०	१४८
एतद्ग्रन्थमुज्झित्वा	धर्मसं०	६.४१
एतद्दोषपरित्यक्तं	प्रश्नो०	१३.३८
एतत्फलेन राजा स्यां	धर्मसं०	७.७३
एतद्-भेदास्तु विज्ञेया	,,	६.१००
एतन्मानैव रङ्गाख्ये	कुन्द०	१.१७४
एतद्विधिर्न धर्माय	यशस्ति०	४११
एतत्समयसर्वस्व	प्रश्नो०	१२.८४
एतत्समयसर्वस्वं	प्रश्नो०	११.५१
एतत्समुदितं प्रोक्तं	लाटी०	२.१९
एतत्सूत्रविशेषार्थे	,,	४.१३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतन्मंत्रप्रसादेन	धर्मोप०	४.२१५
एतयोश्चण्डकर्मं त्वं	प्रश्नो०	१२.१७२
एतावता विनाप्येष	लाटी०	२.१५६
एतानि ह्यन्यानि मया	भव्यध०	५.९
एतां कृष्ट्वा यदाऽऽयतां	धर्मसं०	६ ११६
एतद्-ग्रन्थानुसारेण	,,	५.४
एतत्सर्वं परिज्ञाय	लाटी०	१.२०७
एतत्स्वस्यापि संयोज्य	प्रश्नो०	८.५९
एतदस्तीति येषां ते	धर्मसं०	१.३४
एतदुक्तं परिज्ञाय	लाटी०	१.६५
एतदेवात्मनो मोक्षसाधनं	धर्मसं०	४.५५
एतत्पञ्चविधस्यास्य	,,	४.१४
एतन्मत्वाऽर्हंता प्रोक्तं	लाटी०	१.८९
एतानि सप्त तत्त्वानि	भव्यध०	२.१९९
एतेषां भवभीतानां	,,	१.२५
एतेषु निश्चयो यस्य	श्रा० सा०	१.१४७
एते स्वदार सन्तोष	हरि वं०	५८.६१
एतैंरष्टगुणैयु क्तं	श्रा० सा०	१.७४३
एतद्युक्त्या कियामात्तं	धर्मसं०	५.२१
एतान् देवा हि कुर्वन्ति	प्रश्नो०	३.७०
एते ग्रीष्मेऽतिपानाद्धि	कुन्द०	६.१५
एतेषु पीठिका मन्त्राः	महापु०	४०.७७
एतदाकर्ण्य तेनैव	प्रश्नो०	९.५०
एतेन भूतसंयोगो	व्रतो०	४०२
एते पञ्च महाव्रत	,,	४७५
एतेऽपि दोषनिवहाः	,,	५१०
एते प्राप्ता महादुःखं	गुणभू०	३.१६
एतेऽर्थाः तत्र तत्त्वेन	महापु०	३९.२१
एतेऽर्हद्वन्दनादोषा	व्रतो०	४८८
एते षष्ठिरतीचाराः	,,	४६०
एतेषामुद्वहनं निर्वाहः	धर्मसं०	७.२७
एतेषां व्यसनाज्जाता	प्रश्नो०	१२.५३
एते सत्यस्य पञ्चापि	धर्मोप०	४.२७
एतेऽस्तेयव्रतस्यापि	धर्मोप०	४.३८
एते दोषाः परित्याज्या	प्रश्नो०	१८.१८
एते दोषा विधीयन्ते	व्रतो०	३२
एतेन हेतुना ज्ञानी	लाटी०	३.२६
एते मूल गुणा प्रोक्ताः	,,	३.२४५
एतेषु निश्चयो यस्य	व्रतसा० उमा० पूज्य०	४ २० ९
एतेष्वन्यतमं प्राप्य	लाटी०	५.२२२
एतैः कलङ्कभावैर्जीवः	व्रतो०	५०९
एतैर्दोषैर्महानिन्द्यैः	प्रश्नो०	३.३३
एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तं	लाटी० ,,	५.२३१ ५.२४४
एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तां	धर्मोप०	४.१०
एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तो	,,	१.१२
एतैर्मुक्तं हि द्वात्रिंशद्दोषैः	प्रश्नो०	१८.१४८
एतैरष्टगुणैर्युक्तं	उमा०	७९
एतैरष्टभिरङ्गैश्च	उमा०	६९
एतैरष्टभिरङ्गैर्युक्तं	व्रतो०	५३४
एतैः सप्तमहादोषैः	धर्मोप०	४.२३१
एतैः सर्वैर्महादोषैः वर्जिता	प्रश्नो०	३.३४
एभिर्दोषविनिर्मुक्तः	यशस्ति०	५४
एभिः पक्षादिभिर्योगैः	धर्मसं०	६.१४
एभिः स्वजीवनं कुर्युः	,,	६.१५६
एभ्यो गुणेभ्य उक्तेभ्यो	,,	६.२८९
एभ्यो देशतो विरतिः	लाटी०	४.५८
एनःकारणभूतानि	प्रश्नो०	२.५७
एनःसेनायुतस्तेन	श्रा०सा० उमा०	३.२०२ ३६१
एलालवङ्गकङ्कोल	यशस्ति०	५११
एवमग्नि-जलादीनां	लाटी०	४ ७२
एवं करोति संन्यासं	प्रश्नो०	२२.४७
एवं कृतप्रतिज्ञस्य	लाटी०	५.११४
एवं कृतविवाहस्य	महापु०	३८.१३५
एवं कृतवृतस्याद्य	,,	३९.६८
एवं केवलिसिद्धेभ्यः	,,	४०.२०
एवं गच्छति कालेऽस्य	धर्मसं०	६.१२१
एवं चर्या गृहत्यागावसानां	,,	५.५८
एवं चादिव्रतेनैव	प्रश्नो०	१२.१८१
एवं चिन्तयतो तेन	,,	१६.१०४
एवं चेत्तत्र जीवास्ते	लाटी०	१.८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं चेत्तर्हि कृष्यादौ	लाटी०	४.१४२
एवं जिनागमे प्रोक्तं	धर्मोप०	४.२१७
एवं ज्ञेयं जलादीनां	लाटी०	४.८३
एवं तथा गणाधीशै	धर्मोप०	२.१८
एवं तृतीयवेलायां	धर्मसं०	२.११७
एवं त्रिवित्र-पात्रेभ्यो	धर्मोप०	४.१८७
एवं दक्षैः प्रकर्तव्यं	प्रश्नो०	२४.१०६
एवं दण्डत्रयं भुक्त्वा	,,	१३.१०४
एवं दोषं परिज्ञाय	,,	२३.७९
	,,	२३.१३९
एवं द्वादशधा व्रतं	धर्मसं०	४.१३२
एवं न विशेषः स्या	पुरुषा०	१२०
एवं निवेद्य संघाय	सागार०	८.६४
	,,	८.८४
एवं परमराज्यादि	महापु०	४०.१५५
एवं पाठं पठेत् वाचा	धर्मसं०	६.७१
एवं पालयितुं व्रतानि	सागार०	५.५५
एवं पूजां समुद्दिश्य	धर्मसं०	६.१०१
एवं पूर्वापरीभूतो भावः	लाटी०	५.१५७
एवं प्रजाः प्रजापालान्	महापु०	३८.२६६
एवं प्रतिदिनं कुर्वन्	प्रश्नो०	१३.७८
एवं प्रवर्तमानस्य	लाटी०	५.१८७
एवं प्राग्वासरे	धर्मसं०	६.२७२
एवं प्रायेण लिङ्गैन	महापु०	३८.११४
एवं यत्रापि चास्त्यत्र	लाटी०	४.११४
एवं वाऽनादिसन्तानाद्	लाटी०	५.१५८
एवमन्यदपि त्याज्यं	,,	१.९०
एवमतिव्याप्ति	पुरुषा०	११४
एवमयं कर्मकृतैर्भावै	,,	१४
एवमष्टाङ्गसम्यक्त्वं	व्रतो०	३३२
एवमस्तु भणित्वेति	श्रा० सा०	१.३६५
एवमस्त्विति सा नाथ	,,	१.७१७
एवमानन्दपूर्वो यो	धर्मसं०	४.९८
एवमादिव्रतादीनां	भव्यध०	३.२२०
एवमालोच्य लोकस्य	यशस्ति०	१२२
एवं मांसाशनाद् भावो	लाटी०	१.६४
एवमित्यत्र विख्यातं	,,	४.१३८
एवमित्यादि दिग्मात्रं	लाटी०	६.५१
	,,	६.७४
	,,	६.८८
एवमित्यादि बहवो	,,	२.२५
एवमित्यादि तत्रैव	,,	५.२०२
एवमित्यादियद्वस्तु	,,	१.६९
एवमित्यादिसत्यार्थं	,,	२.१२०
एवं मिथ्यात्वसंस्थानं	व्रतो०	४१८
एवमित्यादिस्थानेषु	लाटी०	१.१५३
एवमित्याद्यवश्यं स्यात्	लाटी०	५.१७६
एवमुत्कृष्टभागेन	धर्मसं०	४.७३
एवं मुनित्रयी ख्याता	लाटी०	३.१९७
एवमेतत्परिज्ञाय	,,	१.१६९
एवमेव च सा चेत्स्यात्	,,	२.१२९
एवं यत्नं प्रकुर्वन्ति	धर्मोप०	४.९४
एवं यः प्रोषधं कुर्यात्	प्रश्नो०	१९.२५
एवं येऽत्र महाभव्याः	धर्मोप०	४.४७
एवं विघमपरमपि ज्ञात्वा	पुरुषा०	१४७
एवं विधविधानेन	महापु०	३८.३४
एवं विधापि या नारी	व्रतो०	३७
एवं विधिं विधायासौ	धर्मं०	४.९०
एवं व्युत्सृज्य सर्वस्वं	सागार०	७.२९
एवं व्रतं मया प्रोक्तं	उमा०	४६४
एवं संव्यवहाराय	लाटी०	५.३०
एवं शक्त्यनुसारेण	सं० भाव०	६७
एवं शीलमहामातरः	उमा०	४४९
एवं श्रीमद्गणाधीशैः	धर्मोप०	४.७९
एवं षट्प्रतिमा यावत्	धर्मसं०	५.२५
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं	सं०भाव०	१७९
एवं सदा प्रकर्त्तव्यं	प्रश्नो०	२४.६८
एवं सम्यक् परिज्ञाय	लाटी०	४.३६
एवं सम्यग्दर्शन	पुरुषा०	२०
एवं सद्-दृष्टिना बाला	प्रश्नो०	८.२२
एवं सम्यग्विचार्यात्र	उमा०	१५५
एवं सामयिकं सम्यग्	सं०भाव०	६५
एवं सुयुक्तितो भव्यः	धर्मोप०	४.१४०
एवं स्नानत्रयं कृत्वा	सं० भाव०	३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

एवं स्युर्द्वयूनपञ्चाशत् सं० भाव० १४७
एष एवं भवेद्देवः यशस्ति० १५०
एषणाशुद्धितो दानं सं०भाव १२२
एषणासमितिः कार्या लाटी० ४.२२९
एषणासमितिः ख्याता लाटी० ४.२५२
एषणासमितिर्नाम्ना लाटी० ४.२३१
एष देशः श्रियां देशः धर्मसं० २.१०१
एष निष्ठापरो मन्यो धर्म०सं० ५.८९
एष वेष्टयति भोगकांक्षया अमित० १४.६७
एषा महामोहपिशाच ,, ७.५४
एषा रेखा इमास्तिस्रः कुन्द० ५.५२
एषैव परा काष्ठा पद्मच० १४.८
एषोऽपि द्विविधः सूत्रे धर्मसं० ५.६८
एष्वेकमपि यः स्वादादत्ति श्रा०सा० ३.५९
एष्वेकशोऽनुवानाःस्वं धर्मसं० ६.१५८

ऐ

ऐदम्पर्यमतो मुक्त्वा यशस्ति० ३९१
ऐश्वर्यं त्र महत्त्वं वा लाटी० ४.५१
ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो (उ०) यशस्ति० ३४
ऐश्वर्यौदार्यशौण्डीर्य यशस्ति० ३९५
ऐहिकफलानपेक्षा { पुरुषा० १६९; श्रा०सा० ३.३२५; उमा० ४४१ }

ओ

ओजस्तेजोविद्या रत्नक० ३६; (उक्तं) श्रा०सा० १.७५७
ओं ह्रींकारद्वयान्तस्थो अमित० १५.४१

औ

औचित्यवेदसः श्राद्धो अमित० ८.२२
औदार्यधैर्यसौन्दर्य श्रा०सा० १.२३९
औषधाख्येन दानेन प्रश्नो० २०.५८

क

ककुबष्टकेऽपि कृत्वा अमित० ६.७६
कक्षापटेऽपि मूर्च्छत्वादार्यो धर्मसं० ७.४८
कंकल्लवोलूकपोतकाक कुन्द० २.३४
कंकोल-क्रमुकादिचूर्णं श्रा०सा० १.१३०
कक्षायां रसनायां च कुन्द० ८.१७८
कज्जलेन सितं वासो कुन्द० ९.९
कटाक्षगोचरे जातु पुरु०शा० ४.९६
कटिक्ककाटिका शीर्षो कुन्द० ५.११७
कटिभागेन यः कृत्वा प्रश्नो० १८.१२१
कटिमण्डलसंसक्त महापु० ३८.२४७
कटीलिङ्गं भवेदस्य ,, ३८.११०
कटुकं परनिन्दादियुक्तं प्रश्नो० १३.१६
कठोरं कष्टदं क्रूरं व्रतो० ३७०
कडुम्बों करडश्चैव भव्यध० १.९९
कण्ठे वक्षःस्थले लिङ्गं कुन्द० ६.१६८
कण्ठं पृष्ठं च लिङ्गं च कुन्द० ५.१३
कथं केन हृता बाले श्रा०सा० १,२८८
कथं परस्त्रिया योगः पुरु० शा० ४.१४८
कथयित्वा कथां स्वस्य प्रश्नो० ७.१२
कथयिष्यसि चेत्सत्यं श्रा० सा० १.६७१
कथा तस्य बुधैर्ज्ञेया प्रश्नो० २१.५१
कथामौषधदानस्य ,, २१.११९
कथिता द्वादशावतीः अमित० ८.६
कथ्यते क्षणिको जीवः प्रश्नो० ४.१७
कदलीघातवज्जातु पुरु०शा० ६.११८
कदलीघातवदायुः यशस्ति० ८६९
कदाचन न केनापि अमित० १२.५२
कदा माधुकरी वृत्तिः सागार० ६.१७
कदाचित् कार्यतः स्वस्य कुन्द० १.१८४
कदाचिज्जातवैराग्यः प्रश्नो० १६.८२
कदाचिज्जीवनाभावे धर्मसं० ५.३७
कदाचिद् वीतरागाणां ,, ७.१३१
कदाचिन्महत्तेऽज्ञानाद् लाटी० १.१०१
कदा मे मुनिवृत्तस्य धर्मसं० ५.७५
कदोपवेशनं सैव प्रश्नो० २४.३१
कनकद्रङ्गभूमीशो श्रा०सा० १.६५३
कनिष्ठादितलस्पर्शी कुन्द० २.५४
कनिष्ठाद्यङ्गुलितलैः कुन्द० २.५९

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कन्दमूलकसन्धानं	व्रतसा०	१४	करोति यो भयं तीव्र	प्रश्नो०	२२.५३
कन्दमूलं च सन्धानं	धर्मोप०	४,९५	करोति योगात्प्रकृति	अमित०	३.५७
कन्दमूलानि हेयानि	व्रतो०	२२	करोति रथ-यात्रां सा	प्रश्नो०	१०.४३
कन्दर्पं कौत्कुच्यं	रत्नक०	८१	करोति वन्दनां योऽपि	,,	१८.१२५
कन्दर्पं कौत्कुच्यं भोगा	पुरुषा०	१९०	करोति विकथां यस्तु	,,	१७.६८
कन्दर्पं चापि कौत्कुच्यं	धर्मोप०	४.११८	करोति सर्वकार्याणि	व्रतसा०	११
कन्दर्पः प्रस्फुरद्दर्पो	श्रा०सा०	१.७०१	करोति सङ्घे बहुधोपसर्गैः	अमित०	३.७९
कन्दर्पवत् कौत्कुच्यं तत्तो	प्रश्नो०	१७.८०	करोति संस्तवं योऽधीः	प्रश्नो०	११.१०३
कन्दरे शिखरे वाद्रेः	पुरु०शा०	५.६	करोत्यनिभिः कार्यं	कुन्द०	११.३
कन्दः सुदर्शनायाश्च	कुन्द०	८.२३४	करोम्यद्य त्वया सार्द्धं	प्रश्नो०	१३ ८४
कन्यागोक्ष्मालीकं	सागार०	४.३९	कर्कशं दुःश्रवं वाक्यं	अमित०	१२.६१
कन्यादूषण-गान्धर्व	,,	३.२३	कर्कश-निष्ठुरं-निन्द्यं	प्रश्नो०	१३.१५
कन्यादानं प्रदत्ते यः	प्रश्नो०	२०.१५१	कर्कश-निष्ठुर-भेदन	अमित०	६.५४
कन्यायां मिथुने मीने	कुन्द०	८.८५	कर्णाकर्णिकयाऽऽकर्ण्य	श्रा० सा०	१.४२५
कः पूज्यः पूजकस्तत्र	सं०भाव०	२४	कर्णान्तिकेशपाश -	यशस्ति०	८६३
कपटेन शठो वेषं	श्रा०सा०	१,४२२	कर्त्तव्यं तदवश्यं स्यात्	लाटी०	५.१९७
कपर्दप्रमुखा क्रीडा	कुन्द०	८.११२	कर्तव्या जिनसत्पूजा	प्रश्नो०	२०.१९५
कपर्दी दोषवानेष	यशस्ति०	६५	कर्तव्या मुनिभिः सा च	,,	२.३७
कपिलेन नमस्कारं	प्रश्नो०	२१.२६	कर्तव्या महती भक्तिः	अमित०	१३.९
कपिलो यदि वाञ्छति	यशस्ति०	५४६	कर्तव्यो न कदाचित् स	लाटी०	५ ५३
कम्पते पूत्करोत्युच्चैः	श्रा०सा०	३.१४	कर्तव्योऽध्यवसायः	पुरुषा०	३५
कम्पननर्तनहास्याश्रु	कुन्द०	५.१४२	कर्तव्यो नियमः सारो	प्रश्नो०	१७.१३
कम्पनं बद्धमुष्टिश्च	व्रतो०	४९०	कर्ताऽकर्ता सुकर्ता च	,,	२१.१५९
करटोवाङ्कुशारूढः	अमित०	८.७८	कर्ता कर्मशरीरादि	,,	२.१३
करणक्रम-निर्मुक्तं	गुणभू०	२.३२	कर्ता फलं न चाप्नोति	धर्मसं०	६.१५३
करपृष्ठं सुविस्तीर्णं	कुन्द०	५.३७	कर्तिकां ब्रह्मसूत्रं च	प्रश्नो०	१३.९२
करमर्दी वपुःस्पर्शी	व्रतो०	४७८	कर्त्रन्वयक्रियाश्चैव	महापु०	३८.५३
कराङ्गुष्ठं ललाटेर्यो	प्रश्नो०	१८.१२०	कर्पासिन भृता यद्वा	प्रश्नो०	२३.१९
करिकुन्थुप्रमाणोऽयं	भव्यध०	२.१७७	कर्पूरैलालवङ्गाद्यैः	धर्मोप०	४.९१
करिकेसरिणो यत्र	अमित०	११.८३	कर्मक्लेश-विनिर्मुक्तो	भव्यध०	५.२८५
करेण सलिलार्द्रेण	कुन्द०	३.५४	कर्मक्षयभवाः प्राप्ताः	अमित०	१२.२
करोति जिनबिम्बानि	प्रश्नो०	२०.१८२	कर्मणः पुद्गलस्यास्य	भव्यध०	२.१६१
करोति द्वादशाङ्गे च	कुन्द०	५.२१४	कर्मणामेकदेशेन	धर्मसं०	७.९७
करोति नाडीप्रभवां	कुन्द०	५.२१०	कर्मणां क्षयतः शान्ते	यशस्ति०	२१८
करोति नियमेनैव नित्यं	,,	२२.५८	कर्मणां वर्गणामेक	गुणभू०	२.२४
करोति बाह्येषु ममेति	अमित०	१४.३२	कर्मतस्तत्र प्रवृत्तिः स्याद्	लाटी०	१.१२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मपरवशे सान्ते	रत्नक०	१२
कर्मपर्ययमात्रेषु	लाटी०	३.१०८
कर्मपर्वत-निपातने वज्रं	प्रश्नो०	११.१०७
कर्मप्रकृति-हेतुत्वात्	व्रतो०	३९१
कर्म बन्धाति भावैर्ये	भव्यध०	२.१८८
कर्मबन्धकलितोऽप्य	धर्मोप० (उक्तं)	४.२०१
कर्मबन्धो गृहस्थस्य	प्रश्नो०	१२.११५
कर्मभूमि-मनुष्याणां	भव्यध०	३.२३५
कर्मभ्यः कर्मकर्मेभ्यः	पद्म० पंच०	६१
कर्मवर्त्तिनिवहो वियुज्यते	अमित०	१४.६६
कर्मव्यपायतो येषां	,,	१२.१९
कर्मव्यपायं भव-दुःखहानिं	,,	७.२१
कर्माकृत्यमपि प्राणी	यशस्ति०	२६५
कर्माणि षण्मयोक्तानि	धर्मसं०	६.२२३
कर्माण्यपि यदीमानि	यशस्ति०	६०८
कर्माण्यावश्यकान्याहुः	सं० भाव०	१६२
कर्मात्मनो विवेक्ता यः	यशस्ति०	८४४
कर्माददाति यदयं	अमित०	१४.४३
कर्मादान-क्रियारोधः	लाटी०	३.२६१
कर्मादान-निमित्तायाः	यशस्ति०	६
कर्मारण्यं छेत्तुकामैः	अमित०	२.८०
कर्मारण्य-हुताशानां	,,	८.३३
कर्मासातं हि बध्नाति	लाटी०	४.१०७
कर्मास्रव-निरोधोऽत्र	पद्म० पंच०	५२
कर्मेन्द्रियाणि वाक्यानि	कुन्द०	८.२७०
कर्मोत्पत्ति-विघातार्थं	,,	१०.३८
कर्मोदय-वशाज्जात	धर्मसं०	४.१०५
कर्शयेन्मूर्त्तिमात्मीयां	महापु०	३९.१७०
कर्षयेत्थं क्षमां तृण्यां	पुरु० शा०	६.५७
कलङ्क-विकलं कुलं	श्रा० सा०	१.१०८
कलङ्क लभते पूर्वं	प्रश्नो०	२३.२६
कलाचार्यस्य वाऽजस्रं	कुन्द०	८.११४
कल्पद्रुमैरिवाशेष	सं० भाव०	११७
कल्पयेदैकशः पक्षक्षे	कुन्द०	२.२०
कलत्रे स्वायत्ते सकल	श्रा० सा०	३.२२०
कलधौत-कमल-मौक्तिक	यशस्ति०	७१४
कलाविज्ञानकौशल्यं	प्रश्नो०	२०.६८
कलाविज्ञान-सम्पन्ना	प्रश्नो०	६.१३
कलिकोपक्रमो यत्र	श्रा० सा०	१.३८
कलित-विविधऋद्धि	प्रश्नो०	९.७०
कलि-प्रावृषि मिथ्यादिङ्	सागार०	१.७
कलिलजालवशः स्वयमात्मनो	अमित०	१४.१६
कलुषयति कुधीर्निरस्तधर्मो	,,	१४.७८
कलौ काले वने वासो	रत्नमा०	१२
कल्पन्ते वीरचर्याहः	धर्मसं०	५.७४
कल्पवृक्षा अमी सन्ति	,,	६.१३५
कल्पाधिपतये स्वाहा	महापु०	४०.५१
कल्पैरप्यम्बुधिः शक्यः	यशस्ति०	६००
कल्प्यां बहुविधां मुक्ति	धर्मसं०	७.५६
कल्याण-पञ्चकोत्पत्ति	गुणभू०	३.११५
कल्याणातिशयोपेतं	भव्यध०	१.३
कल्याणानामशेषाणां	अमित०	११.१७
कवित्वहेतुः साहित्यं	कुन्द०	८.१२५
कविः प्रत्यग्रसूत्राणां	लाटी०	३.१८२
कश्चिदूचे पुरोभागे	कुन्द०	८.१०१
कश्चिन्न गालयेत्तोयं	भव्यध०	१.८४
कश्चिन्मत्तेन भिल्लेन	धर्मसं०	२.२८
कश्चित्सूरिः कदाचिद्वै	लाटी०	३.२२१
कषायद्रव्यसन्मिश्रं	प्रश्नो०	१९.८
कषाय-विकथा-निद्रा	सागार०	४.२२
कषायसेनां प्रतिबन्धिनीये	अमित०	१.५
कषायस्नेहवानात्मा	धर्मसं०	७.१६२
कषायाकुलिते व्यर्थं	अमित०	८.२६
कषायाः क्रोधमानाद्याः	यशस्ति०	११८
कषायाणामनुद्रेकः	लाटी०	३.२१४
कषायादि-प्रमादानां	धर्म०सं०	३.१८
कषायेन्द्रिय-तन्त्राणां	सागार०	८.९०
कषायेन्द्रियदण्डानां	यशस्ति०	८९२
कषायैर्विषयैर्योगैः	कुन्द०	१०.३७
कषायोदयात्तीव्रात्मा	यशस्ति०	३१८
कषायो मर्द्यते येन	अमित०	११.४२
कस्यचित् सन्निविष्टस्य	यशस्ति०	३२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

कस्यापि चाग्रतो नैव	कुन्द०	८.०६
कस्यापि दिशति हिंसा	पुरुषा०	५६
कस्येयं रमणी गजेन्द्रगामिनी	व्रतो०	४२१
कस्मिंश्चित् सुकृतावासे	महापु०	३८.२८३
काकमांसं त्वया पूर्वं	धर्मसं०	२.५६
काकविष्टादिकैर्नाना	प्रश्नो०	३.८८
काकस्येव चलाक्षस्य	अमित०	८.९२
काङ्क्षा भोगाभिलाषः	लाटी०	३.७०
काचिद् देवीति विज्ञाय	श्रा० सा०	१.२६१
काञ्जिकं पुष्पितमपि	गुणभू०	३.१८
काञ्जिकाहारमेकान्न	पुरु० शा०	६.१२
काणान्धा बाधिरा मूका	धर्मोप०	४.७१
कातरत्वेन यो देवो	प्रश्नो०	३.४१
कादम्ब तार्क्ष्यगोसिंह	यशस्ति०	१७८
	श्रा० सा०	१.३४४
काननं दवहुताशनदाघं	श्रा० सा०	३.१८०
कानिचिज्जिननामानि	प्रश्नो०	३.३
कानीनानाथदोनानां	धर्मसं०	६.१९१
कान्ताप्रकाशान्तमेकान्त	कुन्द०	११.१०
कान्तापुत्र-भ्रातृमित्रा	अमित०	२.७६
कान्तिः कीर्त्तिर्मतिः क्षान्तिः	,,	९.९०
कापथे पथि दुःखानां	रत्नक०	१४
कामकषायहृषीकनिरोधं	अमित०	१४.५४
कामकोपादिभिर्दोषै	पुरु० शा०	३.१३५
कामक्रोधमदोन्माद	श्रा० सा०	१.४४४
	उमा०	५९
काम-क्रोध-मदादिषु	पुरुषा०	२८
काम-क्रोधो मदो माया	यशस्ति०	८३९
काम क्रोधा व्रीडा प्रमाद	अमित०	६.४६
कामज्वरमपीहन्ते	प्रश्नो०	१५.१८
कामतीव्राभिनिवेशो	लाटी०	५.१७८
कामदं षड्रसाधारं	कुन्द०	२.३८
काम-दाहो न शाम्येत	प्रश्नो०	१५.१७
कामदेवाकृतिं वापि	धर्मोप०	४.४९
कामो नागकुमाराख्यो	पुरु० शा०	६.१७
कामवह्निर्ज्वलत्येष	प्रश्नो०	२३.६९
कामशुद्धिर्मता तेषां	महापु०	२९.३१
कामहन्ता महादेवो	पुरु०	५.७०
कामातुरोऽतिगृद्धया यो	प्रश्नो०	१७.१४२
कामासूया-मायामत्सर	अमित०	६.९
कामिन्या वीक्ष्यमाणायाः	कुन्द०	५.१५५
कामिस्पर्धा वितीर्णार्थैः	कुन्द०	८.४०५
कामोद्रेकोऽतिमाया च	प्रश्नो०	२३.१२५
काम्यमन्त्रमतो ब्रूयाद्	महापु०	४०.३७
काम्यमन्त्रमतो ब्रूयात्	,,	४०.७६
कायकान्तिविनिर्धूत	श्रा०सा०	१,४२६
कायकान्तिहतध्वान्तौ	श्रा०सा०	१.१८४
कायकौत्कुच्यमौखर्यौ	व्रतो०	४४९
कायक्लेशाद् भवत्येव	गुणभू०	३०.१०१
कायक्लेशैर्वणिक्तस्य	श्रा०सा०	१.४२८
कायक्लेशो मधुरवचनो	व्रतो०	४३८
कायचेष्टां विधत्ते	प्रश्नो०	१८.१०४
कायजांस्तत्र वक्ष्यामि	भव्यध०	५.२७५
कायप्रमाण आत्माऽयं	प्रश्नो०	२.१४
कायप्रमाणमथ लोकमानं	भव्यध०	५.२९३
काय-बाल-ग्रहोर्ध्वाङ्ग	कुन्द०	८.१३१
काययोगस्ततोऽन्यत्र	लाटी०	५.१९१
कायवाक्चित्तयोगं च	प्रश्नो०	२३.८४
कायवाक्चेतसां दुष्ट	श्रा०सा०	३.३०७
कायवाङ्मनसा योऽपि	प्रश्नो०	२२.११३
कायबाङ्मानसस्फार	श्रा०सा०	३.३०२
कायवाङ्मनसां शुद्धिः	प्रश्नो०	२०.२२
कायसेवां प्रकुर्वन्ति	,,	१९.४०
कायः स्वस्थोऽनुवर्त्यः स्यात्	सागार०	८.६
कायेन मनसा वाचा	यशस्ति०	३२०
	लाटी०	६.२५
	धर्मसं०	३.१२
कायेन वाचा मनसापि	व्रतो०	९०
कायोत्सर्गं विधत्ते यः	प्रश्नो०	१८.१६१
कायोत्सर्गे विना पादौ	,,	१८.१८८
कायोत्सर्गं समादाय	,,	१८.१९०
कायोत्सर्गविधायी	अमित०	१०.१७
कायोत्सर्गभवान् दोषान्	प्रश्नो०	१८.१५३
कायोत्सर्गस्थितो भूत्वा	गुणभू०	३.५९

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कायोत्सर्गान्विता नीली	प्रश्नो०	१५.६३
कायोत्सर्गान्वितो	,,	१८.१६६
कायोत्सर्गान्वितो यस्तु	,,	१८.१७०
कार्योत्सर्गेण युक्तोऽन्यो	,,	१८.१७३
कायोत्सर्गेण संयुक्तो	,,	१८.१७७
कायोत्सर्गो विधातव्यो	,,	२४.१०९
कारण-कार्यविधानं	पुरुषा०	३४
कारणं सर्वं वैराणां	अमित०	११.८
कारणेन विनाऽनर्थं	प्रश्नो०	१७.७६
कारणे सत्यपि राग	पुरु०शा०	३.१३६
कारयित्वा नरःक्षौर	कुन्द०	८.३५३
कारयेत्थं ततो लार्वं	,,	६.५८
कारापयति यो भव्यो	प्रश्नो०	२०.१८१
कारापितं प्रवरसेन	व्रतो०	५४२
कारितं यत्कृतं पापं	{ श्रा० सा०	३.३५३
	उमा०	४५४
कारुण्य-कलित-स्वान्त	उमा०	२१७
कारुण्यादथवौचित्यात्	यशस्ति०	७७०
कारुण्यादथवौचित्याद्	गुणभू०	३.४९
कार्यं चारित्रमोहस्य	लाटी०	३.२१२
कार्यं विनापि कीडार्थं	,,	१.१५०
कार्यं हिताहितं किञ्चिद्	प्रश्नो०	१७.८४
कार्यः सद्भिस्ततोऽवश्य	कुन्द०	१.७
कार्यस्तस्मादित्ययं हेतुः	अमित०	४.८०
कार्यमुद्दिश्य योऽसत्य	प्रश्नो०	१३.३३
कार्यार्थं स्वगृहस्यान्ते	धर्मोप०	४.१६१
कार्याय चलितः स्थानाद्	कुन्द०	८.३४६
कार्यो मुक्तौ दवीयस्यामपि	सागार०	८.१९
कालकृत्यं न मोक्तव्यं	कुन्द०	८.३८१
कालं पात्रं विधिं ज्ञात्वा	अमित०	९.३८
कालकूटच्छटाक्षिप्त	श्रा० सा०	३.२००
कालक्रमाव्युदासित्व	अमित०	८.२८
कालक्षेपो न कर्तव्यः	पूज्य०	९८
कालत्रयेऽपि यत्किञ्चिद्	कुन्द०	८.३१२
कालत्रयेऽपि ये लोके	अमित०	१३.५२
कालत्रयेषु कुर्वन्ति	प्रश्नो०	१८.७३
कालत्रितये त्रेधा	अमित०	६.८७
कालदष्टोऽपि सूर्यस्य	कुन्द०	८.२०७
कालमाहात्म्यमस्त्येव	कुन्द०	६.१
कालव्यञ्जनग्रन्थार्थ	प्रश्नो०	१८.१४२
कालश्रमणशब्दं च	महापु०	४०.४६
कालस्य यापनां कृत्वा	धर्मसं०	४.६७
कालस्यातिक्रमश्चान्य	श्रा० सा०	३.३४८
कालस्यातिक्रमे ध्यानं	व्रतो०	४९५
कालाग्नियन्त्रपक्वं यत्	धर्मसं०	५.१६
कालाद्यार्धे शनैरन्त्या	कुन्द०	८.२१६
कालान्तरे परिप्राप्य	प्रश्नो०	२१.४२
कालापेक्षाव्यतिक्रान्तिः	अमित०	८.९२
कालुष्यमरतिं शोकं	{ श्रा० सा०	३.३५६
	उमा०	४५७
कालुष्यकारणे जाते	अमित०	९.१०
काले कलौ चले चित्ते	यशस्ति०	७६४
काले कल्पशतेऽपि च	रत्नक०	१३३
काले ददाति योऽपात्रे	अमित०	९.३६
काले दुःखमसंज्ञके	देश ब्र०	२१
कालेन भक्ष्यते सर्वं	कुन्द०	११.२३
कालेन सूचितं वस्त्रं	कुन्द०	२.११५
काले पूर्वाह्निके यावत्	लाटी०	४.२३४
कालेन वोपसर्गेण	सागार०	८.९
कालोदधौ नृणां यः स्यात्	प्रश्नो०	२०.११६
कांश्चनासहमानोऽपि	पुरु० शा०	६.८७
काष्ठं पिधाय वस्त्रेण	प्रश्नो०	१२.१९७
काष्ठं वह्निरिव प्रसर	श्रा० सा०	३.३०६
काष्ठ-लेप-वसनाश्म-भित्ति	व्रतो०	८१
काष्ठेनेव हुताशं लाभेन	अमित०	६.७९
काष्ठोदुम्बरिकाश्वत्थ	व्रतो०	६८
का शक्तिः के द्विषःकोऽहं	कुन्द०	८.३७७
का सम्पदविनीतस्य	अमित०	१३.५८
कासश्वासजराजीर्णं	कुन्द०	१.७८
कासश्वासमहापित्त	प्रश्नो०	१२.८६
कासश्वासादिसंरोगाः	,,	२३.१०
कायस्योपकृतिर्येन	पुरु०शा०	३.७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

कि करिष्याम्यहं कस्य	व्रतो०	३७९
कि कामं कामकामात्मा	यशस्ति०	३८६
किं कुलं किं श्रुतं किं वा	कुन्द०	८.३७६
किं कोऽपि पुद्गलः सोऽस्ति	सागार०	८.४९
कि कृतप्राणिघातेन	पुरु० शा०	५.९२
किञ्च कश्चिद् यथा सार्थः	लाटी०	५.२३
किञ्च कार्यं विना हिंसां	,,	४.१३३
किञ्च गन्धादि द्रव्याणा	,,	६.६९
किञ्च तत्र त्रिकालस्य	,,	६.६
किञ्च तत्र विवेकोऽस्ति	,,	४.२१६
किञ्च प्रोक्ता क्रियाप्येषा	,,	२.१२६
किञ्च मूलगुणादीना	,,	२.१४२
किञ्च रजन्यां गमनं	,,	४.२२३
किञ्च रात्रौ यथाभुक्तं	,,	६.२१
किञ्च सोऽपि क्रियामात्रात्	,,	२.१३२
किञ्च दर्शनं हेतुः	,,	३.२६४
किञ्च स्थूलशरीरास्ते	,,	४.७५
किञ्चाङ्गस्योपकार्यन्नं	सागार०	८.५४
किञ्चात्र साधकाः केचित्	लाटी०	६.७०
किञ्चात्मनो यथाशक्ति	,,	४.१२
किञ्चापराह्णके काले	,,	५.१८४
किञ्चाय सद्मस्वामित्वे	,,	६.३६
किञ्चास्ति यौगिकी रूढिः	,,	३.२३१
किञ्चिद् ज्ञानं परिज्ञाय	प्रश्नो०	११.२२
किञ्चित् कारणमासाद्य	सागार०	८.३
किञ्चित्तत्र निकोतादि	लाटी०	१.७४
किं चित्रमपरं तस्माद्	अमित०	१३.३२
किञ्चन्न्यूना स्थितिः प्रोक्ता	उमा०	३१
किञ्चित् पदस्थ-पिण्डस्थ	पुरु०शा०	५.३४
किञ्चिद् भूम्यादिजीवानां	लाटी०	४.८४
किञ्चिन्मात्रावशिष्टायां	महापु०	३८.२०३
किन्तु कश्चिद् विशेषोऽस्ति	लाटी०	४.२२
	,,	४.३३
किन्तु चैकाक्षजीवेषु	,,	४.१७५
किन्तु देवेन्द्र-चक्रयाधि	धर्मोप०	१.४९
किन्तु दैवाद् विशुद्धयशः	लाटी०	३.२०६
किन्तु धातुचतुष्कस्य	,,	४.८६
किन्तु प्रजान्तरं स्वेन	महापु०	४०.२०९
किन्तु प्राक् प्रार्थनामित्थं	लाटी०	५.३९
किन्तु बन्धस्य हेतुःस्याद्	,,	३.२५८
किन्तु सत्यन्तरङ्गेऽस्मिन्	,,	२.२१
किन्तु स्वल्पा यथा कश्चित्	,,	५.२१
किन्त्वङ्गस्योपयोग्यन्नं	धर्मसं०	७.६४
किं द्रव्येण कुबेरस्य	अमित०	९.२५
किम्पाकफलतुल्यं ये	पुरु० शा०	४.३०
किं पुनर्गणितस्तत्र	लाटी०	३.२२६
किमकारि मया पुण्य	अमित०	११.१०८
किमिच्छकेन दानेन	सागार०	२.२८
किमत्र बहुनोक्तेन	महापु०	३९.१९७
	श्रा० सा०	१.७६०
	उमा०	९१
	प्रश्नो०	२.५४
	,,	११.९०
	,,	१२.८९
	,,	१६.४०
	,,	१८.८६
	,,	१९.२४
	,,	२०.५७
	,,	२०.१९४
	,,	२२.४६
	,,	२२.१०४
	,,	२३.५४
	,,	२४.१९
	,,	२४ ११४
किमपि वेत्ति शिशुर्न हिताहितं	अमित०	१४.१७
किमस्ति विक्रियालब्धिः	श्रा० सा०	१.५८५
किमागतोऽसि भो मित्र	प्रश्नो०	१३.८२
किमारब्धमिदं भ्रात	श्रा० सा०	१.५८८
किमिदं दृश्यते स्थानं	अमित०	११.१०७
किमियं देवता काचित्	श्रा० सा०	१.६९९
किमुच्यते परं लोके	धर्मोप०	३.१४
कियत्कालं तपः कृत्वा	धर्मसं०	२.१२६
कियद्भिर्वासरैर्हित्वा	श्रा० सा०	३.३५८
	उमा०	४५९

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किरीटमुद्वहन् दीप्रं	महापु०	३८.१९७
किं वात्र बहुनोक्तेन	लाटी०	३.१६६
किं वा बहुप्रलपितै	पुरुषा०	१३४
कीटाढ्यं विल्वजम्व्वादि	प्रश्नो०	१७.१०३
कीटादिसम्भृतं यच्च	,,	१७.५१
कीर्त्तिर्नाम गुणो यशः	व्रतो०	३५१
कीलिका छिद्रसुषिर	कुन्द०	१.१८१
कुकर्म जीविनामुग्रपतिता	कुन्द०	३.५८
कुगति कर्म सारं	प्रश्नो०	१२.१२
कुगति-गमन-हेतुं	,,	१५.५९
कुगुरुः कुत्सिताचारः	लाटी०	३.१२३
कुगुरोः कुक्रियात्तश्च	कुन्द०	१०.५
कुक्षिम्भरिर्नं कोऽप्यत्र	कुन्द०	३.३९
कुचे वराङ्गपार्श्वे	,,	५.१०२
कुज्ञानाद् द्वेषरागादि	प्रश्नो०	१७.६७
कुटुम्बकारणोत्पन्नं	,,	२०.१९
कुटुम्बादि प्रभोगार्थं	,,	१४.२२
कुटुम्बेन तदाऽऽहूतो	धर्मसं०	२.६०
कुणिर्वरं वरं पङ्गुः	उमा०	३४४
	श्रा० सा० (उक्तं)	३.१३९
कुण्डत्रये प्रणेतव्या	महापु०	४०.८४
कुतश्चित् कारणाद्	,,	४०.१६८
कुतस्ते दोषवद्देवाः	धर्मसं०	१.१३
कुतपोभिर्द्वयं जन्म	पुरु० शा०	३.१५४
कुतीर्थ-गमनं स्नानं	भव्यध०	१.६७
कुतोऽप्रवर्तते तेषां	श्रा० सा०	१.५८३
कुत्सितागम-सम्भ्रान्ताः	,,	३.७९
	उमा०	२७५
कुन्थुं कुन्थ्वादिजीवानां	प्रश्नो०	१७.१
कुदर्शनस्य माहात्म्यं	धर्मसं०	१.५२
कुदानं सन्मुनिभ्यो यो	प्रश्नो०	२०.१६१
कुदानस्यैव यो दाता	,,	२०.१६४
कुदुष्टभावाः कृतिमस्तदोषां	अमित०	१.१०
कुदृष्टेः कुतपो ज्ञान-व्रतेषु	प्रश्नो०	११.१०२
कुदेव-कुगुरौ मूढैः	,,	११.२९
कुदेव-लिङ्गिशास्त्राणां	धर्मसं०	१.४४
कुदेवस्तस्य भक्तश्च	धर्मोप०	१.३०
कुदेवागमचारित्रे	गुणभू०	१.२७
कुदेवागम-लिङ्गानि	भव्यधर्म०	१.७०
कुदेवादिसमस्तांश्च	प्रश्नो०	३.९६
कुदेवाराधनां कुर्याद्	लाटी०	३.११८
कुधर्मं दूरतस्त्यक्त्वा	प्रश्नो०	३.१०९
कुधर्मस्य कुशास्त्रस्य	,,	१७.६४
कुधर्मस्थोऽपि सद्धर्मं	सागार०	१.९
कुन्दपुष्पोपमाः सूक्ष्माः	कुन्द०	५.२३०
कुपात्रं च भवेल्लोके	धर्मोप०	४.१९०
कुपात्रदानतो जीवाः	प्रश्नो०	२०.१२६
कुपात्रदानतो नाकभोगं	,,	२०.१२९
कुपात्रदानतो याति	अमित०	११.९४
कुपात्रदानदोषेण	प्रश्नो०	२०.१२७
कुपात्रापात्रयोः स्वामिन्	,,	२०.१०९
कुपात्रायाप्यपात्राय	लाटी०	२.१६१
	,,	५.२२४
कुप्यशब्दो घृताद्यर्थः	,,	५.१०७
कुप्रवृत्तिं त्रिधा त्यक्त्वा	कुन्द०	१.११९
कुबद्धारम्भद्रव्यादिभृतः	प्रश्नो०	१८.७४
कुम्भी मीनान्तरेऽष्टभ्यां	कुन्द०	८.४१
कुमारमारणे तस्य	,,	१२.१६०
कुमारश्रमणाः सन्तः	धर्मसं०	६.१९
कुमारी भूगावालीकं	,,	३.५०
कुमार्गे पथ्यशर्मणां	,,	१.४८
कुमुद-बान्धव-दीधितिदर्शनो	अमित०	१०.३१
कुम्पलानि च सर्वेषां	लाटी०	१.९७
कुरुजाङ्गलदेशे	प्रश्नो०	९.२६
कुरुजाङ्गल सद्देशे	प्रश्नो०	१६.५६
कुरुते तिर्यगूर्ध्वाधः	व्रतो०	४९३
कुरु वत्स जिनागारं	प्रश्नो०	२०.१६७
कुरूपत्वलघीयस्त्व	श्रा० सा०	३.१७०
	उमा०	३४७
कुरूपत्वं तथा लिङ्गच्छेदं	श्रा० सा०	३.२१६
	उमा०	३६८
कुर्यात्करयोर्न्यासं	यशस्ति०	५७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुर्यात्तपो जपेन्मन्त्रान्	,,	६६९
कुर्यादक्षतपूजार्थं	महापु०	४०.८
कुर्यात्पर्यस्तिकां	कुन्द०	२.९६
कुर्यात्पुष्यवती मौन	धर्मसं०	६.२६२
कुर्यादभ्यङ्गमङ्गस्य	कुन्द०	६.२६
कुर्याद् योऽपि निदानं ना	प्रश्नो०	२२.५५
कुर्यात्संस्थापनं तत्र	सं० भाव०	४०
कुर्यान्न कर्कशं कर्म	कुन्द०	८.३८३
कुर्यान्नात्मनो मृत्युञ्च	,,	८.३८७
कुर्यान्न चार्थसम्बन्ध	,,	८.३६०
कुर्वन्ति चित्तसङ्कल्प	प्रश्नो०	१८.१०५
कुर्वन्न व्रतिभिः सार्धं	यशस्ति०	२८३
कुर्वन्ति बिम्बं भुवनैकपूज्यं	प्रश्नो०	२०.२४४
कुर्वन्ति भुवने शीला	,,	१५.३६
कुर्वन्ति प्रकटं ये च	,,	४.५५
कुर्वन्ति प्राणिनां घातं	,,	१२.९०
कुर्वन्ति ये दुष्टधियश्च	,,	१८.१२७
कुर्वन्ति ये महामूढा	,,	४.५०
कुर्वन्ति वृषभादीना	,,	१६.४७
कुर्वत्यपि जने चित्रं	पुरुषा०	३.७७
कुर्वत् यथोक्तं सन्ध्यासु	धर्मसं०	५.६
कुर्वन्मूक इवात्यर्थं	अमित०	८.८५
कुर्वन् वक्षो भुजद्वन्द्वं	,,	८.७९
कुर्वतः शिरसः कम्पं	,,	८.९४
कुर्वताऽवग्रहं योग्यं	,,	१३.११
कुर्वित्थं रत्नसंस्कारं	पुरुशा०	६.५५
कुर्वीयं सर्वशास्त्रेभ्यः	कुन्द०	१.८
कुल-कोटिक-संख्याया	भव्यध०	३.२४०
कुलक्रमस्त्वया तात	महापु०	३८.१५२
कुलचर्यामनुप्राप्तो	,,	३८.१४४
कुल-जाति-क्रियामन्त्रैः	धर्मसं०	६.२०१
कुल-जाति-तपो ज्ञार्था	गुणभू०	१.२३
कुल-जाति-तपोरूप	कुन्द०	९.७
कुल-जाति-वयो-रूप	महापु०	४०.१११
कुल-जात्यादि-संशुद्धः	धर्मसं०	६.१४५
कुल-धर्मोऽयमित्येषा	महापु०	३८.२५
कुल-वृत्तोनार्ति धर्मसन्तति	धर्मसं०	६.२०५
कुलाद्रिनिलया देव्यः	महापु०	३८.२२६
कुलानुपालने चायं	,,	३८.२७४
कुलावधिः कुलाचार	,,	४०.१८१
कुलीनाः सुलभाः प्रायः	कुन्द०	११.१८
कूप-वाप्योः पयः पेयं	,,	६.१६
कुलीनो मान-संयुक्तो	भव्यध०	१.१२७
कुल्यायते समुद्रोऽपि	श्रा० सा०	१.२६०
कुवस्त्रमललिप्ताङ्गा	प्रश्नो०	८.५८
कुवादिवादनक्षत्र	श्रा०सा०	१.५१
कुशीलानां गुणाःसर्वे	पुरु०शा०	४.१०९
कुष्ठिन्नुत्तिष्ठ यामप्रमित	श्रा०सा०	१.१२३
कुस्तुम्बर-खण्डमात्रं यो	गुणभू०	३.१३७
कूटमानतुलापाश	,,	३.३४
कूटलेखक्रिया सा स्याद्	लाटी०	५.२०
कूटलेख्यो रहोऽभ्याख्य	श्रा०सा०	३.१८७
कूटेष्टस्य स्मरं श्मश्रु	धर्मसं०	७.१६०
कूपादि खननाच्छिल्पी	प्रश्नो०	२०.२३५
कृच्छ्रेण सुखावाप्ति	पुरुषा० श्रा०सा०	८६ ३.१६७
कृतकृत्यः परमपदे	पुरुषा०	२२४
कृतकृत्यस्य तस्यान्तः	महापु०	३८.५
कृतज्ञाः शुचयः प्राज्ञाः	कुन्द०	८.११०
कृतदेवादिकृत्यः सन्	कुन्द०	१.१८३
कृतमौनमचक्रागैः	कुन्द०	३.४२
कृतस्य कारितस्यापि	प्रश्नो०	२२.१६
कृतं च कारितं चापि	धर्मोप०	३.२०
कृतं च बहुनोक्तेन	लाटी०	१.१९६
कृतःकारितं परित्यज्य	धर्मोप०	४.२४७
कृतकारितानुननैः	पुरुषा० लाटी०	७६ ५.१३९
कृतदीक्षोपवासस्य	महापु०	३८.१६१
कृतद्विजार्चनस्यास्य	,,	३८.१२४
कृतप्रमाणाल्लोमेन	यशस्ति०	४१०
कृतमात्मार्थं मुनये	पुरुषा० श्रा०सा०	१७४ ३.३४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतमानन्दभेरीणां भव्यध० १.४०
कृतराज्यार्पणो ज्येष्ठे महापु० ३८.२६८
कृतादिभिर्महादोषैः प्रश्नो० २०.१०
कृतानायतनत्यागे अमित० १३.४
कृतानुबन्धना भूयः महापु० ३८.१५
कृतान्तैरिव दुर्वारैः अमित० १३.६१
कृता यत्र समस्तासु { श्रा०सा० ३.२५८
उमा० ३९२
कृतार्हत्पूजनस्यास्य महापु० ३८.१०५
कृतेन येन जीवस्य रत्नमा० ५३
कृतोत्तरासङ्गपवित्रविग्रहो अमित० १०.४०
कृतोपकारो गुरुणा मनुष्यः अमित० १.४७
कृत्तिकमण्डलुमौड्यं कुन्द० ८.२६६
कृत्याकृत्यविमूढत्वं अमित० ८.९८
कृत्रिमेष्वप्यनेकेषु ,, ४.६८
कृत्वा कपित्थवन्मुष्टिं प्रश्नो० १८.१६९
कृत्वा कर्मक्षयं प्राप्य गुणभू० ३.१०२
कृत्वा कार्यशतानि देशव्र० १३
कृत्वा कालावधिं शक्त्या सं०भाव० २०
कृत्वा जैनेश्वरी मुद्रां अमित० ८.१०२
कृत्वा तपः सुखाधारं प्रश्नो० ७.५५
कृत्वा तपोऽनघं याव प्रश्नो० २२.६
कृत्वातिनिश्चलं चित्तं ,, १९.७३
कृत्वा तेभ्यो नमस्कारं ,, ९.६३
कृत्वा दिनत्रयं यावत् व्रतो० ८५
कृत्वातिदुस्सहं सारं प्रश्नो० १६.८३
कृत्वा नतिं ततस्तासु श्रा०सा० १.५११
कृत्वा परिकरं योग्यं महापु० ३८.१८०
कृत्वा परिभवं योऽपि प्रश्नो० १८.१३४
कृत्वा पूजां नमस्कृत्य सं०भाव० ६१
कृत्वा वहूपवासं च प्रश्नो० २४.७८
कृत्वा माध्याह्निकं भोक्तुं सागार० ५.५१
कृत्वा मध्याह्निकीं पूजां कुन्द० ३.८
कृत्वा यथोक्तं कृतिकर्मसन्ध्या सागार० ७.२
कृत्वाऽऽरम्भं कुटुम्वार्थी पुरु० शा० ६४४
कृत्वा विधिममुं महापु० ३९.४४
कृत्वा संख्यानमाशायां सं०भाव० १९
कृत्वा सन्तोषसारं ये प्रश्नो० १६.४
कृत्वा सुनिश्चलं देहं ,, १८.३५
कृत्वा स्वहृदयं वत्स ,, १३.३०
कृत्वेर्यापथसंशुद्धिं ,, १८.४१
कृत्वेर्यापथसंशुद्धि सं०भाव० ३२
कृत्वैवमात्मसंस्कारं महापु० ३८.१७८
कृत्वोपवासघस्रस्य { श्रा०सा० ३.३०९
उमा० ४.२४
कृपणत्वं वरंलोके प्रश्नो० २०.१६२
कृपणा स्यान्महापार्ष्णिः कुन्द० ५.९५
कृपादानं न कुर्वन्ति प्रश्नो० २०.२३३
कृपादिसहितं चित्तं ,, २.६३
कृपा-प्रशम-संवेग श्रा०सा० १.१६८
कृपालुतार्द्रबुद्धीनां { ,, ३.६९
उमा० २७१
कृपां विना धनश्रीर्या प्रश्नो० १२.१८५
कृपासत्यादिरक्षार्थं ,, १४.३
कृपासमं भवेन्नैव ,, १२.८२
कृपा-संवेग-निर्वेदा पुरु०शा० ३.५६
कृपा-संवेग-निर्वेद ,, ३.१३०
कृमयो द्वीन्द्रियाः प्रोक्ताः लाटी० ४.९८
कृमिकुलशतपूर्णं प्रश्नो० १२.२२
कृष्णकेशचयव्याजाद् श्रा०सा० १.४५
कृष्णपक्षे न्हणां जन्म कुन्द० ५.६२
कृष्णागुरुस्फुरद्धूपैः श्रा० सा० १.२५
कृष्णागुर्वादिजैर्धूपैः उमा० १६९
कृष्यादयो महारम्भाः लाटी० ४.१४८
कृष्यादिजीवनोपायैः धर्मसं० ६.९
कृष्यादिभिः सदोपायैः कुन्द० २.४६
कृत्स्नकर्मक्षयाज्ज्ञानं लाटी० २.१३९
कृत्स्नकर्ममलापायात् महापु० ३९.२०६
कृत्स्नचिन्तानिरोधेन लाटी० ६.८७
कृत्स्नातिचारसंत्यक्तं प्रश्नो० १२.१४०
केकिकुक्कुटमार्जार { उमा० ४०६
श्रा०सा० ३.२७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केकिमण्डल-मार्जार	पूज्य०	२८
केचित्कुपात्रदानेन	,,	६१
केचिच्चमूरस्थाने	महापु०	३८.२०७
केचिज्जैना वदन्त्येव	लाटी०	१.२०३
केचिच्छ्रीजिनभक्त्या हि	प्रश्नो०	११.९३
केचित् पञ्चमुखं खरायत	श्रा०सा०	३.२०६
केचित्परिजनस्थाने	महापु०	३८.२०८
केचिद् द्विधैव सम्यक्त्वं	पुरु०शा०	३.४९
केचिद् वदन्ति नास्त्यात्मा	अमित०	४.१
केचिद् वदन्ति माषादि	पुरु०शा०	४.१६
केचिद् वदन्ति मूढाः	अमित०	६.३३
केचित्सद्दृष्टयो भव्याः	प्रश्नो०	११.९२
केचित्संन्यासयोगेन	,,	२२.४०
केवलं करणैरेनमलं	सागार०	८.५०
केवलज्ञानतो ज्ञानं	अमित०	११.२५
केवलज्ञान-पूजायां	धर्मसं०	६.६२
केवलज्ञानमत्यन्तं	प्रश्नो०	३.८
केवलज्ञान-साम्राज्य	{ उमा०	२३०
	{ प्रश्नो०	२०.७०
केवलं प्राप चक्र्याद्यो	पुरु०शा०	५.१००
केवललोकालोकितलोको	अमित०	१४.८४
केवलं यस्य सम्यक्त्वं	पूज्यपा०	४५
केवलं वा सवस्त्रं वा कौनीनं	अमित०	८.७४
केवलं सारसम्यक्त्वं	धर्मोप०	४.१५२
केवलिश्रुतसङ्घेषु	यशस्ति०	३६२
केवलेनाग्निपक्वं	लाटी०	१.३३
केशप्रसाधनं नित्यं	कुन्द०	१.८२
केशप्रसाधनाशक्तो	कुन्द०	६.१८
केशबन्धस्तथामुष्टिबन्धः	धर्मोप०	४.१२८
केशवापस्तु केशानां	महापु०	३८.९८
केषाञ्चित्कल्पवासादि	लाटी०	४.४०
केषाञ्चिदन्धतमसायते	सागार०	१.५
कोटपालैस्तथा तं च	प्रश्नो०	८.४०
को देवः किमिदं ज्ञानं	यशस्ति०	१७३
को नाम विशति मोहं	पुरुषा०	९०
कोपप्रसादकैश्चिह्नैः	कुन्द०	२.१०२
को पादं धृत्वा स्ववालं	प्रश्नो०	१०,१७
कोपात्सागरदत्तस्य	,,	१५.८६
कोपादयो न संक्लेशा	अमित०	१२.११२
कोपीनं खण्डवस्त्रं च	प्रश्नो०	२४.३६
कोपोऽन्यवेश्मसंस्थान	कुन्द०	५ १७२
कोपो लोभो भयं हास्य	व्रतो०	४६९
कोमलानि महार्घाणि	अमित०	११.५२
कोमलालापया कान्तः	,,	११.८०
कोमलैर्वचनालापैः	प्रश्नो०	२२.१५
कोलाहलं समाकर्ण्य	प्रश्नो०	८.१८
कोविदोऽथवा मूर्खो	कुन्द०	३.१२
कोशातकी च कर्कोटी	उमा०	३१५
कोऽहं कुतः समायातः	धर्मसं०	६.१३०
कौ कालदेशौ का दैव	कुन्द०	८.३७८
कौपीनाच्छादनं चैन	महापु०	४०.१५७
कोपीनेऽपि समूर्च्छत्वात्	सागार०	८.३६
कौपीनोपधिपात्रत्वाद्	लाटी०	६.५८
क्रमात्तद्धि समायातं	प्रश्नो०	१.३७
क्रमान्मुनीन्द्रनिष्क्रान्ति	महापु०	४०.१३६
क्रमाच्छ्रीशान्तिनाथोऽयं	प्रश्नो०	२१.४३
क्रमेण केवली ज्ञानी	धर्मोप०	४.१४
क्रमेण चक्रवर्ती च	प्रश्नो०	१६.१००
क्रमेण पक्त्वा फलवत्	सागार०	८.१२
क्रमेण पर्यटन् प्राप्तः	श्रा० सा०	१.४२४
क्रमेणामूं श्चित्ते विदधति	अमित०	७.७८
क्रमेणाराधनाशास्त्र	लाटी०	५.२३४
क्रय-विक्रयणे वृष्ट्यै	कुन्द०	१.९४
क्रय-विक्रयवाणिज्ये	,,	४.१७८
क्रयाणकं च विक्रीय	प्रश्नो०	१६.४९
क्रयाणकेष्वदृष्टेषु	कुन्द०	२.६०
क्रान्त्वां स्वस्योचितां	महापु०	३८.१३२
क्रिमिनीलीवपुर्लेप	यशस्ति०	८९८
क्रियते गन्धपुण्याद्यैः	सं० भाव०	१५८
क्रियते यत्क्रिया कर्म	प्रश्नो०	१८.११५
क्रियमाणा प्रयत्नेन	अमित०	८.८७
क्रियाकर्म विधत्ते यस्त्यक्त्वा	प्रश्नो०	१८.१०८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रियाकलापेनोक्तेन	महापु०	३९.५३
क्रियाकलापोऽयमाम्नातो	,,	३८.६९
क्रिया गर्भादिका यास्ता	,,	३९.२५
क्रियाग्रनिर्वृत्तिर्नाम	,,	३८.३०९
क्रियान्यत्र क्रमेण	यशस्ति०	३३०
क्रियां पक्षोद्भवां मूढः	अमित०	८.१०७
क्रियामन्त्रविहीनास्तु	महापु०	४०.२१९
क्रियामन्त्रानुसारेण	,,	४०.२१४
क्रियामन्त्रास्त एते स्यु	,,	४०.७८
क्रियामन्त्रादि त्विह ज्ञेया	महापु०	४०.२१५
क्रियायां यत्र विख्यातः	लाटी०	४.१२८
क्रिया समभिहारोऽपि	सागार०	६.३९
क्रिया शेषास्तु निःशेषा	महापु०	३९.७९
क्रियास्वन्यासु शास्त्रोक्त	रत्नमा०	५०
क्रियोपनीतिर्नामास्य	महापु०	३८.१०४
क्रूरं कृष्यादिकं कर्म	लाटी०	४.१७७
क्रूरै राक्षसकैः कर्णेजपैः	कुन्द०	८.३६०
क्रेतुं मानाधिकं मानं	लाटी०	५.५४
क्रोधभीशोकमाद्यस्त्री	कुन्द०	५.२४१
क्रोधमान-ग्रहग्रस्तो	भव्यध०	१.१४३
क्रोधमानादिभेदेन	प्रश्नो०	४.२९
क्रोधमानादयो दोषाः	अमित०	१३.५१
क्रोधलोभमयमोहरोधन	,,	३.६०
क्रोध-लोभ-भीरुत्व	लाटी० (उक्तं)	५.८
क्रोधलोभमदमत्सरशोका	अमित०	१३.९८
क्रोधादिनापि नो वाच्यं	गुणभू०	३.२६
क्रोधादीनां निरोधेन	भव्यध०	२.१९३
क्रोधाद्यभ्यन्तरग्रन्था	धर्मसं०	४.७३
क्रोधाद्याविष्टचित्तः प्राग्	,,	७.१६१
क्रोधाद् व्याघ्रो भवति	व्रतो०	७०
क्रोधो विजितदावाग्निः	कुन्द०	९.६
क्रोशत्रयवपुस्तस्य	अमित०	११.६३
क्लिष्टाचाराः परे नैव	महापु०	३९.१३३
क्लिष्टोक्त्यापि कविम्मन्य	कुन्द०	८.४२३
क्लेशं सपल्लवा रेखा	कुन्द०	५.५०
क्लेशाय कारणं कर्म	यशस्ति०	२३२

क्लेशायैव क्रियामोषु	,,	१४१
क्वचित्कथञ्चित्कस्मैचित्	पुरु०शा०	४.६२
क्वचित्कार्यवशाद् येऽपि	प्रश्नो०	१७.१८
क्वचिच्चेत् पुद्गले सक्तो	धर्मसं०	६.६३
क्वचिच्चैत्यालये	पुरु०शा०	६.७७
क्वचित्तत्र सुरेन्द्रस्य	श्रा० सा०	१.५०१
क्वचित्तस्यापि सद्भावे	लाटी०	२.८२
क्वचिद्विक्कोणदेशादौ	,,	५.११९
क्वचिद् बर्हि शुभाचारं	,,	३.२९४
क्वचिल्लोहं न नेतव्यं	प्रश्नो०	१७.४१
क्वचित्सर्गमुखाद्दैवाद्	प्रश्नो०	१२.१०२
क्वचित्सर्पारिव्याघ्राणां	,,	२३.३२
क्वचित्सूर्यस्त्यजेद् घाम	,,	१६.२८
क्व तावकं वपुर्वत्से	श्रा०सा०	१.२९२
क्व ध्यानरचनाघोरे	,,	१.४६८
क्वापि केनावस्तस्य	लाटी०	६.३५
क्वापि चेत्पुद्गले सक्तो	सागार०	८.५३
क्वायं लोकः प्रयात्यद्य	प्रश्नो०	९.९
क्षणरागोऽगुणाभ्यासी	कुन्द०	८.४१६
क्षणिकाः सर्वसंस्काराः	कुन्द०	८.२६१
क्षणादमेध्याः शुचयोऽपि	अमित०	१४.३३
क्षणार्धमपि यश्चित्ते	{ श्रा०सा० उमा०	३.३७२ ४६८
क्षमादिदशभेदेन	,,	१२
क्षणिकत्वं जगद्दृश्वं	व्रतो०	३९०
क्षणिकोऽक्षणिको जीवः	अमित०	२.६
क्षणिको यो व्ययमानः	,,	६.२७
क्षणे क्षणे गलत्यायुः	सागार०	६.३८
क्षतात्पीडनतो लोकान्	धर्मसं०	६.२२८
क्षत्रपुत्रोऽक्षविक्षिप्तः	यशस्ति०	१५५
क्षन्तव्यं सह सर्वैं	धर्मसं०	७.१०३
क्षपयित्वा परः कश्चित्	अमित०	२.५४
क्षपामयसमः कामः	यशस्ति०	३८८
क्षमया जय कोपारिं	पुरु०शा०	६.६५
क्षमादि दशधा धर्मो	प्रश्नो०	२.५८
क्षमादि-दशभेदेन	श्रा०सा०	१.९३
क्षमादि-दश सद्भेदं	प्रश्नो०	२४.९६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षयाक्षयैकपक्षत्वे	यशस्ति०	१०३
क्षान्तिर्मार्दवमार्जवं	अमित०	१४.८१
क्षान्तियोषिति यः सूक्तः	यशस्ति०	८४१
क्षान्त्या सत्येन शौचेन	,,	१८०
क्षान्त्वापि स्वजनं सर्वं	प्रश्नो०	२२.१४
क्षामो बुभुक्षया व्यर्थं	श्रा०सा०	३.६४
क्षायिकं चौपशमिकं	गुणभू०	१.५६
क्षायिकं निर्मलं गाढ	धर्मसं०	१.७०
क्षायिकं भजते कश्चिद्	प्रश्नो०	४.४
क्षायिको तद्भवे सिध्येत्	धर्मसं०	१.७४
क्षायोपशमिकस्योक्ताः	अमित०	२.६१
क्षारादिवह्नियोगेन	धर्मसं०	६.१६६
क्षालितव्यं न तद्वस्त्रं	प्रश्नो०	२४.३९
क्षालिताङ्घ्रिस्तथैवान्तः	सागार०	६.९
क्षितिगतमिव वटबीजं	रत्नक०	११६
क्षितिधरजलनिधितटिनी	श्रा०सा०	३.२५९
क्षितिसलिलदहन	रत्नक०	८०
क्षिप्तोऽसि तेन तत्कण्ठे	प्रश्नो०	८.४२
क्षिप्तं प्रकाश्यते सर्वं	अमित०	९.९९
क्षीणकर्माणमद्राक्षीत्	श्रा०सा०	१.९
क्षीयते सर्वथा रागः	अमित०	४.५४
क्षीरजलंसवन्ता हि	भव्यध०	१.३८
क्षीरनीरवदेकत्र	पद्म० पंच०	४९
क्षीरं भुक्त्वा रतिं कृत्वा	कुन्द०	८.३५२
क्षीरभूरुहफलानि	अमित०	५.६९
क्षीरमोदक-पक्वान्त	प्रश्नो०	२०.२००
क्षीरवृक्षफलान्यत्ति	श्रा०सा०	३.६२
	उमा०	३०२
क्षीरवृक्षोपशाखाभिः	महापु०	४०.१२५
क्षीराज्यममृतं पूतं	,,	४०.११५
क्षीराद्यज्ञातिपात्रस्थं	पुरु०शा०	४.३३
क्षीराम्भोधिः क्षीरधारा	गुणभू०	३.१३४
क्षुत्तृष्णाशीतोष्ण	पुरुषा०	२५
क्षुत्तृष्णा हिममुष्णं	,,	२०६
क्षुत्पिपासाजरातङ्कं	रत्नक०	६
क्षुत्पिपासातृणस्पर्शं	पुरु०शा०	६.१०९
क्षुत्पिपासाभयं द्वेषः	यशस्ति०	५२
क्षुत्पिपासाभयं द्वेषो	उमा०	७
	श्रा०सा०	१.८६
क्षुत्पिपासादिसन्तप्ताः	धर्मसं०	६.२४१
क्षुत्पिपासा भयो द्वेषो	प्रश्नो०	३.२३
क्षुत्पिपासे भयद्वेषौ	धर्मसं०	१.७
क्षुधाक्रान्तस्य जीवस्य	कुन्द०	३.१७
क्षुदादिभयतस्तूर्णं	,,	७.७०
क्षुधा तृषा भयद्वेषौ	पूज्य०	४
क्षुधा तृषा श्रमस्वेद	अमित०	१२.१७
क्षुधादिनोदनैर्मैषां	,,	१२.१८
क्षुधादिपीडितो योऽपि	प्रश्नो०	१९.७१
क्षुद्रभवायुरेतद्वा	लाटी०	४.८१
क्षुधाऽऽतुराय कस्मैचिच्च	प्रश्नो०	२२.११२
क्षुद्रमत्स्यः किलैकस्तु	यशस्ति०	२.९६
क्षुद्-रुगादि-प्रतीकार	पुरु०शा०	४.२०
क्षुद्-रोगेण समो व्याधिः	अमित०	९.९३
क्षुल्लकः कोमलाचारः	लाटी०	६.६३
क्षुल्लकः पुष्पदन्ताख्यः	श्रा०सा०	१.५८२
क्षुल्ली तत्-क्रिया तेषां	लाटी०	६.७१
क्षुद्वेदना समा न स्यात्	प्रश्नो०	३.४२
क्षेत्रं गृहं धन धान्यं	प्रश्नो०	१६.५
क्षेत्रजन्यानुगाम्युक्तं	गुणभू०	२.२१
क्षेत्रज्ञाऽऽज्ञा-समा कीर्ति	महापु०	३९.१६५
क्षेत्रं धान्यं धनं वास्तु	यशस्ति०	३९९
क्षेत्रप्रवेशनाद्यैश्च	भव्यध०	६.३४८
क्षेमार्थी वृक्षमूलं च	कुन्द०	८.३५१
क्षेत्रवास्तुधनधान्य	अमित०	७.७
क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं	प्रश्नो०	२३.१२२
	पूज्य०	७
	उमा०	१६
	श्रा०सा० (उक्तं)	१.१४२
	धर्मोप० (उक्तं)	४.३४
क्षेत्रवास्तु समुत्संगति	महापु०	३९.१८८
क्षेत्रवृद्धि प्रकुर्वन्ति	प्रश्नो०	१७.२०
क्षेत्रं स्याद्वसतिस्थानं	लाटी०	५.९८
क्षेत्रस्य वास्तुनो दास्ये	श्रा०सा०	३.२५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेत्रस्वभावतो घोरा	अमित०	२.३२
क्षेत्रानुगामि यज्जातं	गुणभू०	२.२०
क्षेत्रे ग्रामेऽरण्ये रथ्यायां	अमित०	६.५९
क्षेत्र पथि कुले पापि	वराङ्ग०	१५.८
क्षौमादिके सुवस्त्रे च	प्रश्नो०	१६.१४
क्षौरं प्रोक्तं विपश्चिद्भिः	कुन्द०	२.[illegible]
क्षौरं श्मश्रुशिरोलोम्नां	लाटी०	६.६५
ख		
खट्वां जीवाकुलां ह्रस्वां	कुन्द०	५.६
खड्गसर्वांयुधान्येव	प्रश्नो०	१७.३६
खण्डयेत्प्राणनाशेऽपि	पुरु०शा०	६.८५
खण्डनी पेषणी चुल्ली	उमा०	२४४
खण्डपद्यैस्त्रिभिः कुर्वन्	धर्मसं०	७.१५०
खण्डश्लोकैस्त्रिभिः कुर्वन्	सागार०	८.८०
खण्डिलारातिचक्राणां	धर्मसं०	६.६०
खण्डिते गलिते छिन्ने	उमा०	१३९
खण्डितेऽप्यरणेः काष्ठे	कुन्द०	११.७९
खदिरादिचरः स्वर्गदित्य	धर्मसं०	२.८२
खदिरे मुखसौगन्ध्यं	कुन्द०	१.६४
खनित्र विषशस्त्रादेः	सं० भा०	२१
खरद्विपरदा धन्या	कुन्द०	५.७१
खरपानं विहायाथ	उमा०	४६०
खरपानहापनामपि	रत्नक०	१२८
खरस्य रसतश्चापि	कुन्द०	८.१८
खरवेश्यागृहे शस्तो	कुन्द०	८.६४
खर्जूरपिण्डखर्जूर	पूज्य०	६२
खर्जूरी दाडिमी रम्भा	कुन्द०	८.९८
खसुप्तदोपनिर्वाणे	यशस्ति०	६५४
खादन्त्यहर्निशं येऽत्र	उमा०	३२६
खादन्नभक्ष्यं विशितं	श्रा०सा०	३.२३
खादन्नहर्निशं योऽत्र	,,	३.११२
खाद्यादिचतुर्धाऽऽहार	लाटी०	६.७६
खाद्यान्यप्यनवद्यानि	पुरु०शा०	४.२९
खेटनं शकटादीनां	{ उमा०	४१०
	श्रा०सा०	३.२७४
ख्यातः पण्याङ्गनात्यागः	लाटी०	१.१३८

ख्यातं सामान्यतः साध्य	कुन्द०	८.२९६
ख्यातं सामायिकं नाम	लाटी०	५.१९४
ख्यातिलाभ-निमित्तेन	भव्यध०	५.२८०
ख्याति-लोभातिमानेन	प्रश्नो०	१७.५६
ख्यातो योऽभूदिहैव	,,	८.२
ख्यापयन् त्रिजगद्-राज्य	पुरु०शा०	५.६१
ग		
गङ्गनप्रक्षीणरङ्गनः	श्रा०सा०	१.६०५
गङ्गागतेऽस्थिजाते	अमित०	९.६४
गच्छन्नप्यात्मकार्यार्थं	लाटी०	१.१५७
गच्छंस्तत्रापि दैवाच्चेत्	,,	४.२१९
गच्छद्भिस्तैर्महाक्रुद्धैः	प्रश्नो०	९.२१
गच्छद्भिस्तैर्महादुष्टैः	,,	९.१४
गच्छद्भिर्भोजनं कृत्वा	प्रश्नो०	१५.८१
गच्छन्तं तस्करं तस्मा	,,	८.१६
गच्छन्ती जारपार्श्वे सा	,,	१५.११४
गच्छेन्नाकारितो भोक्तुं	गुणभू०	३.७७
गच्छेद् यथा यथो	पुरु० शा०	४.११९
गच्छे श्रीमति	धर्मोप० (प्रशस्ति०)	५.१९
गजात्करसहस्रेण	कुन्द०	८.३५७
गणग्रहः स एष स्यात्	महापु०	३९.४८
गणधर-मुनिनिन्द्यं	प्रश्नो०	१६.४२
गणधर-मुनिसेव्यं	प्रश्नो०	२४.१४१
गणधाकल्पवासीनां	भव्यध०	१.४८
गणनां त्वद्-गुणौघस्य	श्रा० सा०	१.७०
गणपोषणमित्यापि	महापु०	३८.१७२
गणिस्तान् मम दोषांश्च	प्रश्नो०	१८.१०९
गणेशिनाऽमितगतिना	अमित०	११.१२६
गण्डं पाटयतो बन्धोः	धर्मसं०	६.७८
गण्डान्तमूलमश्लेषा	कुन्द०	४.२२१
गण्डूपद-जलौकाख्य	अमित०	३.१३
गतकृपः प्रणिहन्ति	,,	१०.३६
गतिरोधकरो बन्धो	हरिवं०	५८.५०
गतिशक्त्यर्थमेवासौ	कुन्द०	१.५८
गतिस्वरास्थित्वग्मांस	,,	५.२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गतिस्थित्यप्रतीघात	यशस्ति०	११०
गतिस्थित्यवकाशश्च	भव्यध०	२.१४७
गतीन्द्रियज्ञानकषायवेदा	,,	३.२४५
गतीन्द्रियवपुर्योग	अमित०	३.२५
गते प्रशस्यते वर्णं	कुन्द०	५.४८
गते मनोविकल्पेऽस्य	धर्मसं०	७.१३६
गते मासपृथक्त्वे च	महापु०	३८.९५
गतेषु तेषु सर्वेषु	प्रश्नो०	१४.७०
गतेषु तेष्वभिमानत्वात्	व्रतो०	३८६
गत्वा तीर्थेषु पृथ्वी	श्रा० सा०	३.१४३
गत्वाऽधुना तकं मासं	धर्मसं०	२.६७
गदितुं कः कथा तेषां	प्रश्नो०	१३.१०९
गदितोऽस्ति गृहस्थस्य	कुन्द०	३.४
गन्तव्यं हि त्वया मेघ	प्रश्नो०	२१.८४
गन्धताम्बूलपुष्पेपु	वराङ्ग०	१५.१२
गन्धधूपाक्षतस्रग्भिः	उमा०	१२८
गन्धनान्मद्यगन्धेव	लाटी०	४.२४३
गन्धप्रदानमन्त्रश्च	महापु०	४०.७
गन्धप्रसूनसान्नाय	अमित०	१२.१३
गन्धमाल्यान्नपानादि	हरिवं०	५८.४१
गन्धवर्णरसस्पर्श	गुणभू०	३.१३५
गन्धवाहप्रवाहस्य	कुन्द०	१.५३
गन्धस्पर्शरसैर्वर्ण	भव्यध०	२.१५८
गन्धोदकं च शुद्धयर्थं	उमा०	१४५
गन्धोदकार्द्रितान् कृत्वा	महापु०	३८.९९
गम्भीरमधुरोदारा	श्रा० सा०	१.१३
गम्भीरोऽपि सदा चारु	,,	१.३९
गमने कृतमर्यादा	भव्यध०	४.२५४
गर्तादि-निर्जन-स्थाने	प्रश्नो०	१४.७४
गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-मोक्ष	धर्मसं०	६.३५
गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञानलाभ	,,	६.९४
गर्दभारोहणं कोपात्	श्रा० सा०	१.५६०
गर्भादिपञ्चकल्याण	धर्मसं०	६.९५
गर्भाधान-क्रियामेनां	महापु०	३८.७६
गर्भाधानात् परं मासे	,,	३८.७७
गर्भाधाने मघा वर्ज्यां	कुन्द०	५.१९५
गर्भान्वयक्रियाश्चैव	महापु०	३८.५१
गर्भावतरणं क्वापि	भव्यध०	१.४४
गर्भाशयाद् ऋतुमतीं	कुन्द०	२.६
गर्भे जीवो वसत्येवं	,,	५.२१७
गर्भे त्वधोमुखो दुःखी	,,	५.२१८
गर्भे बाल्येऽपि वृद्धत्वे	श्रा० सा०	१.१२०
गर्भतोऽशुचिवस्तूनां	रत्नमा०	४०
गर्व-पर्वतमारूढो	श्रा० सा०	१.६२०
	,,	१.३५७
गर्वो निखर्व्यते तेन	अमित०	१३.५३
गर्हणं तत्परित्याग	लाटी०	२.११७
गर्हितमवद्यसंयुत	पुरुषा०	९५
	श्रा०सा० (उक्तं)	३.१९३
गवाद्यैर्नैष्ठिको वृत्ति	सागार०	४.१६
गवाश्वमणिमुक्तादौ	हरिवं०	५८.१९
गवाश्वषण्ढतामित्थं	पुरुशा०	८.१५०
गहनं न तनोर्हानिं	सागार०	८.२४
गहनं न शरीरस्य	यशस्ति०	८६०
गह्वरादिवनाद्रौ वा	प्रश्नो०	१८.३२
गाढापवर्तकवशाद्	धर्मसं०	७.११
गाम्भीर्येण सरिन्नाथं	,,	२.९६
गायति भ्रमति वक्ति गद्गदं	अमित०	५.८
गायति भ्रमति श्लिष्टं	श्रा० सा०	३ १५
गार्हस्थ्यमनुपाल्यैवं	महापु०	३९.१५५
गार्हस्थ्यं बाह्यरूपेण	रत्नमा०	५२
गार्हस्थोऽपि वरो ध्यानं	पुरु०शा०	५.३०
गालयित्वा जलं दत्वा	प्रश्नो०	१२.१०७
गालिते तोयमप्युच्चैः	धर्मोप०	४.९०
गालितं दृढवस्त्रेण	लाटी०	१.२३
गालितं शुद्धतोयं च	भव्यध०	१.८३
गालितैर्निर्मलैर्नीरैः	धर्मसं०	६.५१
गिरि-शून्य-गृहत्वासान्	प्रश्नो०	३.१३४
गीतनाद-विवाहादि	लाटी०	१.१५५
गीत नृत्यादिसंसक्ताः	प्रश्नो०	११.८९
गुडखण्डेक्षुकापाक	पुरु० शा०	४.१५६
गुणधर्म-विनिर्मुक्ताः	भव्यध०	१.२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणभूमि-कृताद् भेदात्	महापु०	३८.२२
	प्रश्नो०	७.१७
गुणं निर्विचिकित्साख्यं	,,	७.४
गुणपालेन तज्ज्ञातं	,,	१२.१९०
गुणं सत्यवचो जातं	,,	१३.५७
गुणव्रतत्रयं चापि	धर्मोप०	४.२२३
गुणव्रतत्रितयं शिक्षा	पुरु० शा०	४.१३४
	पूज्य०	३३
गुणव्रतं द्वितीयं ते	प्रश्नो०	१७.२३
गुणव्रतानि व्याख्याय	,,	१८.२
गुणव्रतानि साराणि	,,	१७.४
गुणव्रतानामाद्यं स्याद्	रत्नमा०	१६
गुणव्रतान्यपि त्रीणि	हरिवं०	५८.२९
गुणा निःशङ्कितत्वाद्याः	पुरु० शा०	१.१४३
गुणानां दुरवपाणां	अमित०	११.६
गुणानामनवद्यानां	,,	१३.२२
गुणाननन्यसदृशान्	धर्मसं०	६.१८९
गुणानुरागिणो ये स्युः	पुरु० शा०	३.७५
गुणान्वितं मुनिं दृष्ट्वा	प्रश्नो०	९.६८
गुणाः पवित्राः समसंयमाद्याः	अमित०	१३.८८
गुणाश्चान्ये प्रसिद्धा ये	लाटी०	२.६९
गुणिनः सूनृतं शौचं	कुन्द०	८.२
गुणेष्वेव विशेषोऽन्यो	महापु०	४०.२१३
गुणाय चोपकाराया	धर्मसं०	४.२
गुणाय जायते शान्ते	अमित०	८.२४
गुणाष्टकेन संयुक्त	प्रश्नो०	११.३
गुणास्तस्याष्ट संवेगो	धर्मसं०	१.७९
गुणे प्रभावनाख्ये यो	प्रश्नो०	१०.२
गुणैरमीभिः शुभदृष्टि	अमित०	३.८१
गुणोत्थमवधिज्ञानं	गुणभू०	२.१२
गुणोत्थितं देश-सर्वं	,,	२.१३
गुणैरष्टाभिरेतैश्च	धर्मोप०	१.२६
गुणैर्युक्तं व्रतं विद्धि	धर्मसं०	४.३१
गुणैरेभिरूपाष्टमहिमा	महापु०	३९.१०६
गुणैः सदास्मत्प्रतिपक्षभूतैः	पद्मनं०	५.१४
गुप्ति व्रत समितिभिः	व्रतो०	४२४
गुरुर्ज्ञात्वा ततः शिष्यं	श्रा० सा०	१.५०४
गुरुणा वारितः संघः	प्रश्नो०	९.७
गुरुं नत्वा स्थितस्तत्र	,,	१०.३८
गुरुर्नियुज्य सत्कार्ये	धर्मसं०	७.५५
गुरुतरकर्मजाल-सलिलं	अमित०	१२.१३७
गुरुर्न प्रेक्षते लग्नं	कुन्द०	५.२२५
गुरुपादमूलसंभव	व्रतो०	३२१
गुरुपार्श्वे स्थितो नित्यं	प्रश्नो०	२४.२४
गुरुवारोदयी पद्म	कुन्द०	८.१९३
गुरुं विना न कोऽस्ति	उमा०	१९३
गुरुशिष्यसुहृत्स्वामि	कुन्द०	५.१२७
गुरुष्वविनयो धर्मे	कुन्द०	८.११३
गुरु सेवा विधातव्या	उमा०	१८३
गुरु सोमश्च सौम्यश्च	कुन्द०	८.१०२
गुरुस्तुतिः क्रियायुक्ता	गुणभू०	३.९१
गुरूणां कुरु शुश्रूषां	पुरु० शा०	६.६२
गुरुणामपि पञ्चानां	गुणभू०	३.१०३
गुरूणां गुणयुक्तानां	उमा०	१९४
गुरूणामग्रतो भक्त्या	धर्मोप०	५.७
गुरूणां वचनं श्रुत्वा	भव्यध०	१.३१
गुरुन् सङ्गविनिर्मुक्तान्	प्रश्नो०	३.१४४
गुरुर्जनायिता तत्त्वज्ञानं	महापु०	३९.३४
गुरुपास्तिमथोऽप्युक्त्वा	उमा०	१९७
गुरोरग्रे स्तुतिं कृत्वा	व्रतो०	४८५
गुरोरतिशयं ज्ञात्वा	कुन्द०	८.१३८
गुरोरनुज्ञया लब्ध	महापु०	३८.१३७
गुरोरनुमितातपोऽपि	,,	३८.१७४
गुरोरेव प्रसादेन	पद्म० पंच०	१८
गुरोः सनगरग्रामां	कुन्द०	८.११५
गुरोः सप्तान्तपञ्चद्धि	कुन्द०	८.३९
गुरौः समर्पयित्वा स्वं	धर्मसं०	७०५४
गुरौ च प्रतिपज्ज्येष्ठा	कुन्द०	८.२०२
गुर्वादिभ्यो प्रच्छन्नां यो	प्रश्नो०	१८.१-९
गुर्वादिभ्यो विभीतो यः	,,	१८.१२६
गुर्वादिवन्दनां कृत्वा	अमित०	८.१००
गुर्वादिसन्निधिं गत्वा	गुणभू०	३.६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुर्वादीनां यथाप्येषा	लाटी०	६.८३
गुर्वादिरग्रतो भूत्वा	अमित०	८.८६
गुर्वादेशेन कौपीनं	पुरु०शा०	६.७४
गुल्फोत्तान-कराङ्गुष्ठ	यशस्ति०	७०१
गूथमश्नाति या हन्ति	अमित०	४.९५
गृद्धयै हुङ्कारादिसंज्ञां	सागार०	४.३४
गृहकर्मणापि निचितं	रत्नक०	११४
गृहकार्यं ततः कुर्याद्	लाटी०	५.१८३
	,,	५.१८९
गृहकार्याणि सर्वाणि	यशस्ति०	३०६
गृहकार्यादिसंसक्तो	प्रश्नो०	१९.७२
गृहं तदुच्यते तुङ्ग	अमित०	९.२२
गृहतो मुनिवनमित्वा	रत्नक०	१४७
गृहं त्यक्त्वा वनं गत्वा	धर्मोप०	४.२४३
गृहत्यागस्ततोऽस्य	महापु०	३९.७६
गृहदुश्चारितं मन्त्र	कुन्द०	८.४२८
गृहद्वारं समासाद्य	प्रश्नो०	२४.५०
गृहद्वारे स्थितस्तस्य	,,	७.६
गृहधर्ममिमं कृत्वा	पद्मच०	१४.२४
गृहमागताय गुणिने	पुरुषा०	१७३
	श्रा०सा०(उक्तं)	३.३४३
गृहमागत्य रात्रौ हि	प्रश्नो०	१२.१५१
गृहमेध्यनगाराणां	रत्नक०	४५
गृहवास-सेवनरतो	अमित०	६.७
गृहवासं महानिन्द्यं	प्रश्नो०	८.५८
गृहवासो विनाऽऽरम्भान्न	सागार०	४.१२
गृहव्यापारजां हिंसां	प्रश्नो०	१९.१३
गृहव्यापारयुक्तस्य	सं०भाव०	१६७
गृहव्यापारयुक्तेन	,,	१६८
गृहव्यापारसारम्भ	धर्मोप०	१.३६
गृहव्यापारसावद्ये	प्रश्नो०	१७.३०
गृहशोभां कृता रक्षा	महापु०	३९.१८६
गृहस्थेनापि दानेन	प्रश्नो०	२०.४८
गृहस्थत्वं परित्यज्य	,,	२४.७९
गृहिस्थितैर्लम्बित	भव्यध०	५.१५
गृहस्थः प्राप्य वैराग्यं	प्रश्नो०	२४.२२
गृहस्थैः क्रियते मूढैः	,,	१७.७२
गृहस्थैरथवा कार्या	प्रश्नो०	१७.७
गृहस्थैनैव कर्त्तव्यो	,,	१७.४०
गृहस्थोऽपि यतिर्ज्ञेयो	अमित०	१३.६६
गृहस्थोऽपि सदाचारतः	श्रा०सा०	१.३६८
गृहस्थो मुनितां याति	प्रश्नो०	१७.१३५
गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो	रत्नक०	३३
गृहस्थो वा यतिर्वापि	यशस्ति०	७७७
गृहस्य सन्मार्जनमादधाना	व्रतो०	१५
गृहहारिग्रामाणां	रत्नक०	९३
गृहाङ्गजापुत्रकलत्रमित्र	अमित०	१.६०
गृहाण पुत्रि वेगेन	प्रश्नो०	६.३८
गृहाणाभरणान्येतानि	श्रा०सा०	१.२६३
गृहाऽऽपणपुरग्राम	पुरु०शा०	४.१४१
गृहाश्रमं यः परिहृत्य	धर्मसं०	६.२९४
गृहाश्रमो मया सूक्तः	,,	६.२७८
गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु	रत्नक०	५१
गृहीतं नियमं सारं	प्रश्नो०	६.१२
गृहीतं ब्रह्मचर्यं च	,,	६.७
गृहीतमगृहीतं च परं	धर्मसं०	१.३२
गृहीतापि द्विधा तत्र	लाटी०	१.१९९
गृहीत्वा कुण्डिकामेष	प्रश्नो०	७.३०
गृहीत्वा दर्शनं येऽपि	,,	११.५३
गृहीत्वाऽनशनं यस्तु	,,	२२.५२
गृहीत्वा परमर्थं यः	,,	१३.३७
गृहीत्वेति प्रतिज्ञां सा	,,	१०.५९
गृही दर्शनिकस्तत्र	सं०भाव०	८
गृही देवार्चनं कृत्वा	धर्मसं०	४.८५
गृही यतः स्वसिद्धान्तं	यशस्ति०	८८४
गृही सामायिकस्थो हि	प्रश्नो०	१८.६२
गृहे तिष्ठेद् व्रतस्थोऽपि	लाटी०	६.४८
गृहे धृत्वा स्वरामां च	प्रश्नो०	६.१६
गृहे प्रविशता वामभागे	उमा०	९८
गृहेषु हस्तसङ्ख्यानं	कुन्द०	८.८०
गृहे सम्पूजयेद् बिम्ब	उमा०	१०४
गृह्णतोऽपि तृणं दन्तैः	अमित०	१२.९५
गृह्णन्ति धर्मविषया	,,	१.२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गृह्णन्ति सुन्दरं वस्त्रं	प्रश्नो०	२४.३८
गृह्णाति कर्म सुखदं	अमित०	१४.४५
गेहादि व्याक्षमं त्यक्त्वा	गुणभू०	३.७५
गेहिना समवृत्तस्य	यशस्ति०	९३
गेहे जिनालयेऽन्यत्र	गुणभू०	३.५७
गोकन्याहेमहस्त्यश्व	प्रश्नो०	२०.१४९
गोचरीभ्रमरीदाहप्रशाम	धर्मसं०	४.९६
गोचरेषु सुखभ्रान्ति	,,	६.२०७
गोत्रवृद्धास्तथा शक्त्या	कुन्द०	७.७
गोदानं योऽतिमूढात्मा	प्रश्नो०	२०.१५०
गोदुग्धस्यार्कदुग्धस्य	कुन्द०	१०.४४
गोदेवकरणारक्ष	कुन्द०	२.१७४
गोधूमतिल-सच्छालि	प्रश्नो०	२२.६५
गोध्वानिर्निशि सर्वत्र	कुन्द०	२.७४
गोपः पञ्चनमस्कारस्मृतेः	पुरु०शा०	५.४६
गोपाङ्गनादिसंयुक्तं	प्रश्नो०	७.४०
गोपाङ्गनासमासक्तः	,,	३.८२
गोपाल-बालिकागान	श्रा०सा०	१.२१
गोपालब्राह्मणस्त्रीतः	अमित०	११.३
गोपो विवेकहीनोऽपि	धर्मसं०	७.१२६
गोष्टष्टान्तनमस्कार	यशस्ति०	१३८
गोभूमि-स्वर्णकच्छादि	रत्नमा०	२८
गोमन्तः स्युर्नराः शौचं	कुन्द०	५.७३
गो-महिष्याः पयश्चापि	धर्मोप०	४.१०१
गोमूत्रवन्दनं पृष्ठवन्दनं	उमा०	८३
गोरसाभावतो नैव गोमान्	धर्मसं०	३.३
गोविन्दो नाम गोपालो	प्रश्नो०	२१.१२१
गोविन्दोऽपि निदानेन	,,	२१.१२५
गोऽश्ववाहनभूम्यस्त्र	धर्मोप०	१.३२
गोषण्ढपाणिग्रहणे	व्रतो०	३५८
गौडदेशे प्रसिद्धेऽस्मिन्	श्रा०सा०	१.४१५
गौणं हि धर्मसद्ध्यानं	सं०भाव०	१११
गौतमादिगणाधीशानङ्ग	प्रश्नो०	१.९
गौतमोऽकथयत्तत्र	धर्मसं०	६.१०५
गौरचर्मावृतां बाह्ये	प्रश्नो०	१५.२३
गौरीरूप-समासकः	,,	७.४२

ग्रन्थं गृहस्थचरणा	,,	२४.१३१
ग्रन्थारम्भक्रोधलोभादि	अमित०	१०.५८
ग्रंथार्थोभयपूर्णं	पुरुषा०	३६
	श्रा०सा० (उक्तं)	३.७
	उमा०	२५२
ग्रहगोत्रगतोऽप्येष	यशस्ति०	७५
ग्रहणविसर्गास्तरण	रत्नक०	११०
ग्रहणस्नानसूर्यार्घा	उमा०	८२
ग्रहणास्तरणोत्सर्गान्	सागार०	५.४०
गुरुं प्रणम्य सङ्ग्राह्यं	प्रश्नो०	२४.६७
ग्रहीतुः कुरुते सौख्यं	अमित०	९.७३
ग्रहोपरागग्रहणो	महापु०	३९.१५९
ग्रामद्वादशदाहोत्थं	उमा०	२९३
ग्रामसप्तकदाहोत्थैः	श्रा०सा०	३.४६
ग्रामसप्तकविदाहरेफसा	अमित०	५.२८
ग्रामस्वामिस्वकार्येषु	यशस्ति०	३३३
ग्रामादीनां प्रदेशस्य	हरिवं०	५८.३१
ग्रामान्तरात्समानीतं	यशस्ति०	७४९
	श्रा०सा०	३.३३७
	धर्मोप०(उक्तं)	४.१६६
ग्रामान् द्वादश कोपेन	धर्मसं०	२.१७९
ग्रामादौ वस्तु चान्यस्य	,,	३.५४
ग्रामापण-क्षेत्रपुरां	उमा०	३९७
ग्रामे चतुष्पथादौ या	गुणभू०	३.२७
ग्रामे पलाशकूटाख्ये	श्रा०सा०	१.४८६
ग्राम्यमर्थं बहिश्चान्तर्यं	यशस्ति०	८४२
ग्राहितासौ विनोदेन	प्रश्नो०	६.८
ग्राह्यं दुग्धं पलं नैव	धर्मसं०	२.४२
ग्राह्या तत्रानुवृत्तिः सा	लाटी०	५.२
ग्रीवां प्रसार्य यः कुर्यात्	प्रश्नो०	१८.१६८
ग्रीवोन्नमनमेव प्रणमनः	,,	१८.१५७
ग्रीष्मे भुञ्जीत सुस्वादु	कुन्द०	६.७
ग्रैवेयका स्वग्रीवायां	गुणभू०	३.१२२
ग्रैष्मो रविरिव प्राप्य	श्रा०सा०	१.६६६

घ

घटिकाद्वयसंस्थाने	भव्यध०	१.८८
घटिकानां मतं षड्कं	अमित०	८.५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घटे यथा मेऽमे सलिलं	,,	१०.५१
घण्टाचामरदीपाम्भः	लाटी०	४.२०७
घण्टाद्यैर्मङ्गलद्रव्यैः	सं० भाव०	५०
घण्टां श्रीजिनदेवस्य	प्रश्नो०	२०.२२४
घातिकर्म-विनिर्मुक्तं	भव्यध०	५.२९०
घातिकर्म विनिहत्य केवलं	अमित०	३.६७
घातिक्षयोद्भूतविशुद्धबोध	,,	१.६१
घनकर्मवशादुपागतैः	श्रा० सा०	१.३००
घनाङ्गुलासंख्यश्लोकै	लाटी०	१.८७
घूर्णमानो हि व्युत्सर्गे	प्रश्नो०	१८.१७४
घृतस्य तैलस्य जलस्य	व्रतोद्यो०	११
घृतेन तैलेन जलेन	धर्मोप० (उक्तं)	३.५
घ्राणेन्द्रियसमासक्तो	उमा०	२०५
घोटकश्च लतादोषः	प्रश्नो०	१८.१५४
घोरदुःखदभवेत्य कोविदा	अमित०	५.३२

च

चकारग्रहणादेव	लाटी०	४.१३७
चक्ररत्नं पुरोधाय	महापु०	३८.२३६
चक्रलाभो भवेदस्य	,,	३८.२३३
चक्रवर्त्यादिदिव्यश्री	प्रश्नो०	२.७९
चक्रस्योपरि जाप्येन	अमित०	१५.४०
चक्राभिषेक इत्येक	महापु०	३८.२५३
चक्राभिषेक-साम्राज्ये	,,	३८.६२
चक्रित्वं सन्नृपत्वं वा	लाटी०	४.५०
चक्रिश्रीः संश्रयोत्कण्ठा	यशस्ति०	२२५
चक्रिसेनाधिपो धीरो	प्रश्नो०	१५.१०५
चक्रे च नीलपीता स्यात्	कुन्द०	३.७४
चक्षुर्गण्डाधरग्रीवा	लाटी०	५.६४
चक्षुः परं करणकन्दर	यशस्ति०	७१२
चञ्चत्काञ्चनसङ्काश	कुन्द०	५.२
चञ्चन्नीरजलोचनायुवतयः	श्रा० सा०	३.१२०
चञ्चच्चञ्चललोचनाञ्चल	,,	३.२२६
चञ्चलत्वं कलङ्कं ये	कुन्द०	१.५
चञ्चलं निर्मलं गाढं	धर्म सं०	१.६९
चञ्चलत्वं परित्यज्य	प्रश्नो०	१८.१८२
	,,	१८.११
चण्डालिनीव दूरस्था	धर्मसं०	६.२६५
चण्डोऽवन्तिषु मातङ्ग	यशस्ति०	२९८
चतस्रः पञ्च षड् ज्ञेया	अमित०	३.७
चतुर्गतिकरं पापखानिं	प्रश्नो०	२३.११०
चतुर्गतिभवं दुःखं	श्रा० सा०	१.६९
चतुर्गति-महावर्ते	प्रश्नो०	१.१४
चतुर्णां करजानूनां	अमित०	८.६४
चतुर्णामनुयोगानां	सं०भाव०	१५९
चतुर्णामाश्रमाणां च	महापु०	३९.१५१
चतुर्णां यत्र भुक्तीनां	अमित०	१२.१२३
चतुर्थतो गुणेषु स्यात्	श्रा० सा०	१.१५६
	उमा०	२५
चतुर्थरात्रौ भोग्या सा	धर्मसं०	६.२७०
चतुर्थं ब्रह्मचर्यं स्याद्	लाटी०	५.५९
चतुर्थं व्रतमादाय	प्रश्नो०	१५.५
चतुर्थोऽनङ्गक्रीडा स्या	,,	१५.४५
चतुर्दलस्य पद्मस्य	गुणभू०	३.१२६
चतुर्दश-गुणस्थानान्	प्रश्नो०	२.२०
चतुर्दश मनुष्येषु	अमित०	३.२४
चतुर्दशललैर्मुक्त	धर्मसं०	४.९३
चतुर्दश्यां चाष्टमीपर्व	भव्यध०	६.३०६
चतुर्दश्यां तिथौ सिद्ध	रत्नमा०	४८
चतुर्दश्यादिकं पर्वव्रतं	प्रश्नो०	१९.४२
चतुर्दश्यामथाष्टम्यां	पूज्य०	३०
चतुर्दश्या समं पर्वं	प्रश्नो०	१९.३०
चतुर्धा दीयते देयं	पुरु० शा०	३.११४
चतुर्धा देयमाहारा	,,	३.११२
चतुर्धाशन-संन्यासो	लाटी०	५.१९६
चतुः पञ्चाशदुच्छ्वासाः	पुरु० शा०	५.२७
चतुरङ्गं फलं येन	अमित०	११.४९
चतुरङ्गमपाकृत्य	,,	१३.१९
चतुरङ्गं सुखं दत्ते	,,	१३.२०
चतुरङ्गुल्यन्तरितौ	प्रश्नो०	१८.१८१
चतुरशीतिलक्षाः स्युः	,,	२.१९
चतुरशीतिलक्षेषु	भव्यध०	१.१७
चतुरः श्रावकज्येष्ठो	महापु०	३९.६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुरावर्तत्रितय	रत्नक०	१३९
चतुराहारविसर्जन	,,	१०९
चतुराहारहानं यत्	हरिवं०	५८.४०
चतुर्थो नवमी षष्ठी	कुन्द०	२.१५
चतुर्थ्यां जायते पुत्रः	कुन्द० (उक्तं)	५.१८०
चतुर्दशी कुहूराका	कुन्द०	८.११८
चतुःपञ्चचतुर्वह्नि	कुन्द०	१.१३१
चतुर्मुखादयः पूजा	धर्मसं०	६.३२
चतुर्युक्तचत्वारिंशत्	कुन्द०	३.६४
चतुर्वर्णाः समुद्दिष्टाः	धर्मसं०	६.२५४
चतुर्विधं महादानं	प्रश्नो०	२१.११
चतुर्विधमहादानात्	प्रश्नो०	२१.१२
चतुर्विधमिदं साधोः	अमित०	१३.१५
चतुर्विधं सदाहारं	,,	२२.८६
चतुर्विधाय संघाय	,,	२०.२२९
चतुर्विधे महाहारो	,,	२२.१०
चतुर्विधो वराहारः	वराङ्ग०	१५.१८
चतुर्विलासिनीभिश्च	प्रश्नो०	१६.६६
चतुर्विंशतिकां सारां	,,	२०.१८७
चतुर्विंशति-वैशेषिक	कुन्द०	८.२९०
चतुर्विंशतिरित्यादि	लाटी०	३.१३४
चतुर्विंशतिरेवात्र	श्रा० सा०	१.३८८
चतुर्विंशतिलोकेशस्तवन	प्रश्नो०	१८.४५
चतुर्विंशतिसंख्यकाः	सं०भाव०	१४६
चतुःषष्ठिमहर्धीनां	श्रा० सा०	१.७५४
चतुः षष्ठिमिता देव्यो	भव्यध०	१.११
चतुष्कदर्शनादेष	श्रा० सा०	१.२८३
चतुष्कोणस्थितैः	सं० भाव०	४५
चतुष्टयं कषायस्य	व्रतोद्यो०	३१७
चतुष्पदं न चादेयं	प्रश्नो०	२३.१३१
चतुष्पदान्तं सर्वेषां	कुन्द०	३.२१
चतुष्पर्व्यां चतुर्भेदा	{ श्रा० सा० { उमा०	३.३०८ ४२३
चतुःसागर-सीमायाः	रत्नमा०	३४
चतुरभ्यावर्त्त-संयुक्तः	सं० भाव०	९२
चत्वारि यानि पद्मानि	गुणभू०	३.१२९

चत्वारो देवता एते	धर्मसं०	७.१४७
चत्वारो देवता-भागाः	कुन्द०	२.३०
चत्वारो भगवद्भेदा	कुन्द०	८.२५५
चत्वारो मन्त्रिणस्तस्य	श्रा० सा०	१.५३४
चत्वारो मन्त्रिणस्तेऽपि	,,	१.६०८
चन्दनं तुहिनरश्मिरम्बुजं	,,	३.१८२
चन्दनागुरु-कर्पूर	प्रश्नो०	२०.२०२
चन्दनादर्शहेमोक्ष	कुन्द०	८.९३
चन्दनाद्यर्चनापुण्यात्	उमा०	१६४
चन्द्रप्रभमहं वन्दे	प्रश्नो०	८.१
चन्द्ररश्मि-समाकारं	भव्यध०	५.२९४
चन्द्रवत्कृष्णपक्षे स्याद्	गुणभू०	२.१६
चन्द्रशेखर-पुत्राय	प्रश्नो०	७.२०
चन्द्रोपकमहाघण्टा	,,	२०.१७४
चरणादि वृषं कृत्वा	,,	११.१००
चरणोचितमन्यच्च	महापु०	३८.१०७
चरन्तः पञ्चधाऽऽचारं	अमित०	१२.२९
चरति यश्चरणं	,,	१०.३४
चरित्रं च वराङ्गस्य	भव्यध०	५.७
चरित्रं वसुपालस्य	,,	५.६
चरित्रं सुचरित्राणामपि	पुरु० शा०	४.१०१
चरुभिः सुखसंवृद्धयै	सं० भाव०	४९
चर्म-तोयादि-सम्मिश्रात्	लाटी०	४.२४७
चर्मपात्रगतं तोयं	रत्नमा०	६६
चर्मभाण्डे तु निक्षिप्ताः	लाटी०	१.११
चर्मसंस्थं घृतं तैलं	भव्यध०	१.९७
चर्मस्थमम्भः स्नेहश्च	{ सागार० { धर्मोप० (उक्तं)	३.१२ ३.२४
चर्मस्थिते घृते तैले	,,	३.२७
चर्मादिपशुपञ्चाक्षव्रत	धर्मसं०	३.४०
चर्यां कृत्वाति सौन्दर्यं	श्रा०सा०	१.५४५
चर्या तु देवतार्थं वा	महापु०	३९.१४७
चर्यैषा गृहिणां प्रोक्ता	,,	३९.१४९
चलितत्वात्सीम्नश्चैव	लाटी०	१.३१
चलत्यचलमालेयं	प्रश्नो०	४.३३
चलयन्नखिलं कायं	अमित०	८.७७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चलादविचलः श्लाघ्यो	कुन्द०	१.१०६
चाण्डालहृतहस्तेषु	भव्यध०	१.१२१
चामीकरभवीमुर्वी	अमित०	११.५
चारयन्त्यनुमन्यन्ते	,,	१२.२५
चारित्रं दर्शनं ज्ञानं	,,	११.४१
चारित्रं देहजं ज्ञान	गुणभू०	१.५४
चारित्रं पञ्चधा ख्यातं	व्रतो०	५१३
चारित्रं भवति यतः	पुरुषा०	३९
चारित्रभेदान्त्रिदशप्रकाराद्	व्रतो०	३६३
चारित्रं मुनिभिः प्रोक्तं	धर्मोप०	४.२
चारित्राद्दर्शनाच्चैव	गुणभू०	१.३९
चारित्रान्तर्भावात्	पुरुषा०	१९७
चारित्रेणैव चेत्सिद्धिः	गुणभू०	३.१४७
चारुचारित्रसम्पन्नो	व्रतो०	८४
चारुदत्तेन सम्प्राप्तं	प्रश्नो०	१२.४९
चारूपधानं शयनं	पुरु०शा०	३.५
चारुप्रियोऽन्यदारार्थी	कुन्द०	८.४१३
चातुर्वर्ण्यमहासङ्घाद्	प्रश्नो०	१८.१२७
चातुर्वर्ण्यस्य संघस्य	यशस्ति०	२०३
चिकीर्णन्नपि सत्संख्यां	लाटी०	५.२१४
चिञ्चावृक्षं समारुह्य	प्रश्नो०	१३.७७
चित्तकालुष्यकृत्काम	सागार०	५.९
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं	प्रश्नो०	३.११६
चित्तमूर्च्छाकरं माया	धर्मसं०	५.४६
चित्तस्य वित्तचिन्तायाः	यशस्ति०	४०६
चित्तस्यैकाग्रता ध्यानं	,,	५८४
चित्ते चिन्तामणिर्यस्य	,,	१५८
चित्ते अनन्तप्रभावेऽस्मिन्	,,	५९२
चित्तं चित्ते विशति करणे	,,	४९०
चित्तं दोलायते यस्य	व्रतो०	४६५
चित्तं न विचारकमक्षजनित	यशस्ति०	५५२
चित्तं विनिर्जितं येन	प्रश्नो०	२४.१४
चित्रकूटेऽत्र मातङ्गी	सागार०	२.१५
चित्रजीव-कुलायांतनू	अमित०	१४.१३
चित्रजीव-गणसूदनास्पदं	,,	५.३५
चित्रदुःख-सुखादान	,,	५.२४
चित्रं पाणिगृहीतीय	सागार०	६.३५
चित्र प्राणिगणाकीर्णे	श्रा०सा०	३.५७
चित्राक्षरकलाभ्यासो	कुन्द०	८.१३४
चित्रादि-निर्मिता नारी	प्रश्नो०	२३.२५
चित्रास्वातिविशाखासु	कुन्द०	८.४
चित्राहस्ताश्विनी-स्वाति	कुन्द०	८.२६
चित्रेण कर्मपवनेन	अमित०	१४.४२
चित्रैश्च मण्डलैरेभिः	कुन्द०	१.१७९
चिदानन्दं परंज्योतिः	रत्नमा०	५१
चिन्तनानन्तरं चेति	लाटी०	५ १६२
चिन्तनीयं ततश्चित्ते	,,	५.१५४
चिन्तनीयाः सदाऽसाराः	प्रश्नो०	२४.९५
चिन्तामणित्रिदिवधेनु	यशस्ति०	७१३
चिन्तामणिनिधि-कल्पद्रुम	प्रश्नो०	१८.८४
चिन्तामणिस्तस्य करे	श्रा०सा०	१.७५३
चिन्तारत्न-सुरद्रु-कामसुरभिः	देशव्र०	१९
चिन्ताऽऽरम्भमदं द्वेषं	धर्मोप०	४.१२६
चिन्तितं चिन्तताधं वा	गुणभू०	२.२८
चिन्तितं तेन मूढेन	प्रश्नो०	५.३१
चिन्तितं पूजितं भोज्यं	अमित०	११.१६
चिद्रूपं ध्यानसम्भूतं	श्रा०सा०	१.४८५
चिरेणापि विरक्तिःस्यात्	पुरु०शा०	६.३५
चिरं बम्भम्यमाणानां	अमित०	८.१३
चुरांस्तान् तदभिध्यापि	धर्मसं०	७.१५५
चुराशीलं जनं सर्वे	श्रा०सा०	३.२०५
	उमा०	३६२
चूर्णपूगदलाधिक्ये	कुन्द०	२.३६
चेटिका भोगपत्नी च	लाटी०	१.१८५
चेटिका या च विख्याता	,,	१.२००
चेतृप्यन्तो धनैर्बहिः	धर्मसं०	२.१०६
चेतनं वाऽचेतनं वा	गुणभू०	३.११२
चेतनाचेतनं वस्तु	पुरु०शा०	४.११५
चेतनाचेतनाः सञ्ज्ञा	धर्मसं०	७.१५९
चेतनादात्मनो यत्र	,,	७.९३
चेतनालक्षणो जीवः	गुणभू०	१.१२
चेतनालक्षणो जीवः	कुन्द०	८.२४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेतनेतरवस्तूनां यत्प्रमाणं	धर्मसं०	३.७२
चेतनो येन तेभ्योऽपि	अमित०	४.२०
चेतसीति सततं वितन्वतो	,,	१०.६८
चेतोमध्ये प्रियारूप	व्रतो०	४९६
चेद् दुग्धदानतो वन्ध्या	अमित०	४.९६
चेतना वासुदेवश्च	भव्यध०	१.७४
चेलनी तौ मुनी दृष्ट्वा	प्रश्नो०	८.६१
चैतन्यपरिणामेन	भव्यध०	२.१९१
चैतन्यमादिमं नूनं	अमित०	४.१५
चैत्यगेहं विधत्ते यो	प्रश्नो०	२०.१६८
चैत्य-चैत्यालयादीनां	महापु०	३८.२८
चैत्यपञ्चगुरूणां च	धर्मोप०	४.१२४
चैत्यभक्ति समुच्चार्य	अमित०	८.१०३
चैत्यभक्त्यादिभिः स्तूयात्	सं० भाव०	५७
चैत्यदिभिः स्तूयात्	,,	९३
चैत्यवादी वदेवृंक्षैः	भव्यध०	१.४७
चैत्यादिस्तवनं कृत्वा	प्रश्नो०	१८.४७
चैत्यादौ न्यस्य शुद्धे	सागार०	२.३१
चैत्यादौ सम्मुखः प्राच्या	धर्मसं०	४.४३
चैत्यालयं विधत्ते यः	प्रश्नो०	२०.१७९
चैत्यालयस्थःस्वाध्यायं	सागार०	७.३१
चैत्यालये तथैकान्ते	धर्मोप०	४.१२३
चैत्यैश्चैत्यालयैर्ज्ञानैः	यशस्ति०	१९२
चोदनालक्षणं धर्म	महापु०	३९.१३५
चोलाख्यया प्रतीतेयं	,,	३८.१०१
चौरप्रयोग-चौरार्था	रत्नक०	५८
चौरप्रयोग-चौराहृत	सागार०	४.५०
चौरं विज्ञाय सन्तोऽपि	प्रश्नो०	१४.१४
चौरं सोऽलभमानो हि	,,	१४.४८
चौरस्य चित्ते कलुषप्रसक्ते	श्रा०सा०	३.३०३
चौरीव रहसि प्रायः	धर्मसं०	६.२६४
चौरो मृत्युं समीहते	प्रश्नो०	१७.१४६
चौरो रूपखुरो नाम	धर्मसं०	७.१२४
चौर्यत्वाच्छिवभूतिश्च	उमा०	४७०
चौर्यव्यसनतो घोरं	प्रश्नो०	१२.५१
चौर्याच्छ्रीभूतिराखेटाद्	पुरु०शा०	४.४४
चौर्यार्जिताद् धनाद् दूरं	,,	४.८९
चौर्याद्यैर्बद्धवित्ताशः	कुन्द०	८.४०१
चौर्यासक्तो नरोऽवश्यं	लाटी०	१.१७१
चौर्यासक्तं स्वजनं च	प्रश्नो०	१४.१२
चौर्ये निदर्शनीभूताः	पुरु०शा०	४.८७
चौरराजान्ननारीणां कथा	प्रश्नो०	२४.९२
चौलकर्मव्यथो मन्त्रः	महापु०	४०.१४७

छ

छत्रचामरवाजीभ	रत्नमा०	४२
छत्रत्रयं च नाग्रोत्तारि	कुन्द०	१.१२४
छत्रं दधामि किमु चामर	यशस्ति०	४७१
छत्रध्वजस्वस्तिकवर्धमान	कुन्द०	२.३३
छत्रप्राकारसेनादि	कुन्द०	८.९
छिन्नाः सपल्लवा रूक्षा	कुन्द०	५.४९
छेदं कार्यं न वृक्षाणां	प्रश्नो०	१७.४६
छेदे श्रावो न रक्तस्य	कुन्द०	८.१७३
छेदन-ताडन-बन्धा	पुरुषा०	१८३
छेदनं ताडनं बन्धो	श्रा०सा०	३.१५१
छेदनबन्धन पीडन	रत्नक०	५४
छेदन-भेदन-मारण	पुरुषा०	९७
	श्रा०सा० (उक्तं)	३.१९५
छेदं भेदवधौ बन्ध	वराङ्ग	१५.१४
छेदो नासादिच्छिद्रार्थः	लाटी०	४.२६५

ज

जगत्कायस्वभावौ वा	लाटी०	४.२००
जगत्क्षोभकमर्हत्वं	पुरु०शा०	३.९
जगत्ख्यातं विदन्नाशु	उमा०	४७३
जगद्-गुरोः सुदेवस्य	प्रश्नो०	३.५३
जगद्-ग्रसनदक्षस्य	श्रा०सा०	३.२६१
	उमा०	३९५
जगज्जनमनोजय्य	श्रा० सा०	१.४९
जगतां कौमुदी चक्रं	यशस्ति०	६५६
जगति भयक्तानां	श्रा० सा०	१.७४५
जगदुद्योतते सर्वं	अमित०	११.५४
जगन्निर्माण-सामग्री	श्रा० सा०	१.३७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जगन्नेत्रं पात्रं निखिल	यशस्ति०	५६४
जगत्समक्षं स्त्री-पुम्से	कुन्द०	५.१३३
जगत्सूरोऽपि यं दृष्ट्वा	धर्मसं०	२.९७
जग्मतुः केलिवाप्यां तौ	,,	२.८६
जगाद तस्करः कान्ते	श्रा० सा०	१.४०५
जगादाह्लाद-संयुक्तं	,,	१.६४८
जग्धं मध्वौषधेनापि	,,	३.४९
	उमा०	२९४
जघन्यमध्यमोत्कृष्ट	पुरु० शा०	३.१५
जघन्याराधनेनैव	प्रश्नो०	२२.४५
जघन्ये भवः स पात्रेभ्यो	अमित०	११.६७
जङ्घाभ्यां शवरवधूरिव	प्रश्नो०	१८.१६३
जङ्घाया जङ्घयाश्लेषे	अमित०	८.४५
जङ्गमेषु भवेन्मासं	उमा०	२७८
जज्ञे तद्दर्शनात्तस्य	धर्मसं०	६.११३
जठरस्यानलकायो	कुन्द०	८.१३२
जडत्वाम्भोनिधौ मग्नो	श्रा० सा०	१.५४६
जडराशि-समुत्पन्ना	,,	१.५४
जडा शरीरमारोप्य	धर्मसं०	७.१७७
जनकस्तनयस्तनयो	अमित०	१४.१५
जनसञ्चारनिर्मुक्तो	,,	८.४३
जननीचरया व्याघ्र्या	धर्मसं०	७.१८६
जननी जगतः पूज्या	अमित०	४.९२
जननी जनको भ्राता	,,	१२.६९
जनन्या कुरुते गर्भं	कुन्द०	५.२०५
जनपति यो विधूय विपदं	अमित०	१२.१३८
जनो धनं धनार्जने	श्रा० सा०	३.२४९
जने निद्राग्रहग्रस्ते	,,	१.४६०
जनो वेदादि-युक्तो यः	प्रश्नो०	११.३३
जन्तवोऽन्ये भवे चेति	धर्मोप०	४.७२
जन्तुजाताकुलं सर्वं	पुरु० शा०	४.३६
जन्तूनां विद्यते यत्र	धर्मोप०	२४
जन्तोरनन्त-संसारभ्रमैः	यशस्ति०	६.१९
जन्तोरेकतरस्यापि रक्षणे	श्रा० सा०	३.५८
	उमा०	२९९
जन्म-जन्म यदभ्यस्तं	पूज्य०	७९
जन्मजरामयमरणैः	रत्नक०	१३१
जन्मनः प्रथमे भागे	कुन्द०	५.८०
जन्म पञ्चत्वयोरस्ति	अमित०	५.७
	,,	४.१४
जन्म-मृत्युकलितेन जन्तुना	,,	१४.६२
जन्ममृत्युजरातङ्क	धर्मोप०	२.३१
जन्ममृत्युजरातङ्का	सागार०	८.१३
जन्ममृत्युजरादुःखं	उमा०	१६३
जन्ममृत्युरतिकीर्त्तिसम्पदा	अमित०	१४.२५
जन्मयौवनसंयोग	यशस्ति०	६३८
जन्मसंस्कारमन्त्रोऽय	महापु०	४०.११०
जन्मस्नेहच्छिदपि जगतः	यशस्ति०	५१०
जन्मान्तर-संस्काराद्	कुन्द०	११.४
जम्बूद्वीपे जनाकीर्णे	श्रा० सा०	१३.४४
जम्बूद्वीपेऽतिविख्याते	प्रश्नो०	२१.१५१
जम्बूद्वीपे प्रसिद्धेऽस्मिन्	,,	१३.५९
	,,	२१.१२०
जम्बूद्वीपे प्रसिद्धेऽस्मिन्	श्रा० सा०	१.१५
जम्बूद्वीपस्य भरते	भव्यध०	१.३२
जम्बूपलक्षिते द्वीपे	प्रश्नो०	२१.१३१
जन्मनिःक्रमणं ज्ञानोत्पत्ति	गुणभू०	३.३१४
जन्मभूमिर्गुणानां भो	प्रश्नो०	१२.६८
जन्मान्तको भयं निद्रा	धर्मोप०	१.११
जन्मान्तरमायातैः	महापु०	३८.२२७
जन्माम्भोधौ कर्मणा	अमित०	२.८१
जन्मी च्युतश्चेतनया	श्रा० सा०	१.१०३
जन्मेह सफलं तस्य	प्रश्नो०	२४.१८
	,,	२४.८६
जन्मेह सफलं तेषां	,,	२३.८६
जय निखिलनिलिम्पालाप	यशस्ति०	५४०
जयन्त्यखिलवाङ्मार्गं	महापु०	३८.१
जय लक्ष्मीकरकमला	यशस्ति०	५४१
जयात्र भो सन्मातङ्ग	प्रश्नो०	१२.१७८
जयार्थी गोचराणां यः	धर्मसं०	७.१६७
जरतृणमिवाशेषं	सं०भाव०	१७६
जरामृत्युदरिद्रादि	लाटी०	२.८४
जरायुजाण्डजाः पोताः	अमित०	३.२०
जरायुपटलं चास्य	महापु०	४०.१२१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

जरारोगादिक्लिष्टानां	गुणभू०	१.३५
जलगन्धाक्षतातीव	उमा०	१७१
जलगन्धाक्षतैः पुष्पैः	भव्यध०	१.४२
जलगन्धादिकैर्द्रव्यैः	गुणभू०	३.११२
जलगन्धादि-सद्वस्त्रै	धर्मसं०	६.६८
जलपानं निषिद्धं स्यात्	लाटी०	५.२००
जलपिष्टादियोगेन	कुन्द०	११.८२
जलवार्ता समाकर्ण्य	प्रश्नो०	२१.६६
जलस्थलपुरारण्य	कुन्द०	८.८
जलस्नानं तथा नस्यं	धर्मोप०	४.१३७
जलादावपि विख्याताः	लाटी०	४.१४४
जलाद्यैर्धौतपूताङ्गैः	धर्मसं०	६.२७
जलार्द्रपात्रविन्यस्त	उमा०	३०८
जलार्द्रीचन्दनं चन्द्रः	श्रा०सा०	१.७०३
जलानलादियोगे वा	पुरु०शा०	६.१००
जलानां गालनं पुण्यं	धर्मोप०	४.८७
जलाविलं च दीनस्य	कुन्द०	८.३२९
जले जम्बालवज्जीवे	लाटी०	३.१०६
जले तैलमिवैतिह्यं	यशस्ति०	१७६
जले पृष्ठेरगस्त्यस्य	कुन्द०	८.२३५
जहाराकम्पनाचार्य	पुरु०शा०	३.१०५
जाङ्गुल्याः कुरुकुल्यायाः	कुन्द०	८.१४०
जातकर्मविधिःसोऽय	महापु०	४०.१३१
जातदेहात्मविभ्रान्ते	अमित०	१५.६०
जातयोऽनादयः सर्वाः	यशस्ति०	४४३
जातस्य नियतं मृत्युः	कुन्द०	७.९
जाता जैन कुले पुरा	सागार०	२.२०
जातिं कुलं बान्धव	अमित०	७.२२
जातिपाखण्डयोर्मैका	कुन्द०	११.६
जातिर्जरा मृतिः	यशस्ति०	८५३
जाति-पूजा-कुल-ज्ञान-रूप	,,	८७७
जातिमन्त्रोऽयमाम्नातो	महापु०	४०.३१
जातिमानप्यनुत्सिक	,,	३९.१६७
जातिमूर्तिश्च तत्रस्थ	,,	३९.१६३
जातिरैन्द्री भवेद् दिव्या	,,	३९.१६८
जातिःसैव कुलं तच्च	,,	३९.११०
जातिहीनो दिनं याति	प्रश्नो०	१५.२७
जातीचम्पकसत्पद्म	,,	२०.१९९
जातीतगरमन्दारैः	कुन्द०	१.६६
जातु शीलादिमाहात्म्याद्	पुरु०शा०	४.१९
जाते रोगेऽप्रतीकारे	,,	६.९९
जाते दोषे द्वेषरागादिदोषैः	अमित०	२.७७
जातोऽन्येन दुरात्मायं	श्रा०सा०	१.६६८
जाते दोषः प्रसिद्धोऽस्मिन्	प्रश्नो०	१५.८७
जात्या कुलेन पूतात्मा	धर्मसं०	६.१४३
जात्यादि-कान्तिमान्	महापु०	३९.१६६
जात्येव ब्राह्मणः पूर्वं	,,	४०.१५९
जात्यैश्वर्य-तपोविद्या	पुरु०शा०	३.१४४
जानात्यकृत्यं न जनो	अमित०	१३.८९
जानन्नप्येष निःशेषाम्	लाटी०	३.२७५
जाप्यः पञ्चपदानां वा	गुणभू०	३.११८
जायते च महासौख्यं	प्रश्नो०	२०.४३
जायते दन्दसूकस्य	पूज्यपा०	४९
जायते द्वितयलोकदुःखदं	अमित०	५.२५
जायते न पिशितं जगत्त्रये	,,	५.१४
जायते न स सर्वत्र	,,	८.६
जायते नारकस्तिर्यग्	कुन्द०	९.१४
जायते पुण्यपाकेन	प्रश्नो०	२.७७
जायते प्रतिमाहीन	कुन्द०	१.१४१
जायन्ते राजयो नीलाः	कुन्द०	३.७३
जाया समग्रशोभाढ्याः	रत्नमा०	३६
जिजीविषति सर्वोऽपि	श्रा०सा०	३.१३०
	उमा०	३३८
जितं स्वमानस येन	प्रश्नो०	२४.१६
जितेन्द्रियत्वमारोग्यं	कुन्द०	११.६६
जित्वेन्द्रियाणि सर्वाणि	यशस्ति०	८२६
जिनं पद्मेन भेकोऽपि	पुरु० शा०	५.९८
जिनं प्रशम्य सार्पीयं	अमित०	८.१
जिन एकोऽस्ति सद्देवः	उमा०	३६
जिन एव भवेद् देवः	श्रा० सा०	१.१७७
जिनगेहसमं पुण्यं	प्रश्नो०	२०.१७०
जिनचैत्यगृहादीनां	लाटी०	२.१६७

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनदत्तस्ताम्रलिप्ते	धर्मसं०	१.५८
जिनदत्तो भवेच्छ्रेष्ठी	प्रश्नो०	५.८
	,,	१५.६०
	प्रश्नो०	५.८
	,,	१५.६०
जिनदत्तेन तेनाशु	श्रा० सा०	१.२७८
जिनदेवोऽतिलोभार्थं	प्रश्नो०	१३.४८
जिनधर्म-जगद्बन्धु	सागार०	२.७१
जिनधर्म प्रभावेन	प्रश्नो०	९.२३
जिनधर्मस्य यो निन्द्यो	,,	४.४७
जिनध्यानं ज्ञानं व्यसनहरणं	श्रा०सा०	३.१४६
जिनपति-कथितं ये	धर्मोप०	४.३९
जिनपति-कथितं वै	धर्मोप०	४.७४
जिनपति-पदे स्फीता	श्रा० सा०	३.१४८
जिनपतीरिततत्त्वविचक्षणो	अमित०	१०.३३
जिनपुङ्गवप्रवचने	पुरुषा०	२००
जिनपूजा कृता हन्ति	धर्मसं०	६.१०२
जिनपूजा-प्रभावेन	प्रश्नो०	२०.२०८
जिनपूजायुतं दक्ष	,,	२०.२१८
जिनपूजा प्रकर्तव्या	सं० भाव०	२७
जिनपूजोद्यमोत्पन्न	धर्मसं०	६.१३३
जिनबिम्बं जिनागारं	धर्मोप० (उक्तं)	४.३१
जिनभवनं तेन तदा	व्रतो०द्यो०	४
जिनमतविहितं पुराण	महापु०	३९.२०९
जिनमर्चयतः पुण्यराशौ	धर्मसं०	६.७७
जिनमार्गपरित्यक्तांस्त्यज	प्रश्नो०	३.१५१
जिनमार्गाद् विपक्षं यद्	,,	३.१३१
जिनमार्गे भवेद् भद्रं	,,	४.४०
जिनमुद्राऽन्तरं कृत्वा	अमित०	८.५३
जिनमुद्रां समादाय	प्रश्नो०	५.५०
जिनराजमुखाम्भोज	श्रा० सा०	१.८
जिनलिङ्गधराः सर्वे	धर्मसं०	६.२९०
जिनरूपं सुरैः पूज्यं	प्रश्नो०	११.६२
जिनवचन-पञ्जरस्थं	अमित०	१०.१५
जिनवररुचिमूलस्तत्त्व	प्रश्नो०	११.१०८
जिनशासनमाहात्म्य	श्रा० सा०	१.७३१
जिन-सिद्ध-सूरि-देशक	यशस्ति०	४५९
जिनसिद्धान्तसूत्रे यः	प्रश्नो०	११.१०
जिनस्तवं जिनस्नानं	अमित०	१२.४०
जिनस्य शास्त्रस्य गुरोः	व्रतो०	३६५
जिनागम-हृतध्वान्त	श्रा० सा०	१.३९०
जिनागारे शुभे लग्ने	भव्यध०	६.२४४
जिनाङ्गं स्वच्छनीरेण	प्रश्नो०	२०.१९६
जिनाज्ञा जिनमार्गो जिनसूत्रं	व्रतो०	३२०
जिनादौ भक्तिरेवास्तु	धर्मसं०	७.१४८
जिनाधिस्वामिनां भाषा	प्रश्नो०	३.६३
जिनाधीशस्य सत्पूजां	,,	२०.२११
जिनानां जितजेयानां	अमित०	८.३२
जिनानां पूजनात्पूज्यः	गुणभू०	३.१३९
जिनानां पूजया रोगाः	प्रश्नो०	२०.२१५
जिनानिव यजन् सिद्धान्	सागार०	२.४२
जिनाः पद्मासनादीना	अमित०	८.५५
जिनाभिषेकस्य जिनार्चनस्य	भव्यध०	६.३५९
जिनार्चा क्रियते भव्यैः	सागार०	२.२६
जिनार्चाऽनेकजन्मोत्थं	धर्मसं०	६.७३
	उमा०	१४१
जिनार्चाभिमुखं सूरिः	महापु०	३९.४१
जिनान् स्तुत्वा तथा नत्वा	धर्मसं०	४.६३
जिनार्कस्कन्दकृष्णानां	कुन्द०	१.१४९
जिनालयकृतौ तीर्थयात्रायां	धर्मसं०	३.११
जिनालये च तद्बिम्बे	प्रश्नो०	२०.२३०
जिनालये शिवाशायै	भव्यध०	४.२६७
जिनालये शुचौ रङ्गे	महापु०	३९.३८
जिनानाहूय संस्थाप्य	धर्मसं०	६.५६
जिने जिनागमे सूरौ	यशस्ति०	२०२
जिनेज्या पात्रदानादि	सं० भाव०	११२
जिनेन्दुपरिषज्जनमन्यमाना	धर्मसं०	३.८३
जिनेन्द्र-पूजया भव्या	प्रश्नो०	२०.२०७
जिनेन्द्र-प्रतिमा भव्यः	उमा०	१६१
जिनेन्द्र-मत-माहात्म्यं	श्रा० सा०	१.७१८
जिनेन्द्र-मन्दिरे सारे	प्रश्नो०	२०.१७१
जिनेन्द्र-वचने प्रीताः	धर्मोप०	४.९७
जिनेन्द्रवचने शङ्का	भव्यध०	१.६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

जिनेन्द्रवन्दना योग	अमित०	८.५२
जिनेन्द्रसंहिताभ्यो	पुरु० शा०	५.९७
जिनेन्द्राल्लब्धसज्जन्मा	महापु०	३९.१०१
जिनेशं वृषभं वन्दे	प्रश्नो०	१.१
जिनेशानां विमुक्तानां	अमित०	१३.८
जिनेश्वर-गुणग्रामरञ्जितैः	उमा०	१७९
जिनेश्वर-निवेदितं	अमित०	६.१००
जिनेश्वर-मुखोत्पन्नं	व्रतो०	४१३
जिनेश्वरं समभ्यर्च्यं	सं० भाव०	३९
जिनेन्द्रैर्दशधा प्रोक्ता	प्रश्नो०	१६.६
जिनैः प्रमादचर्यापि	,,	१७.२७
जिनो देवो गुरुः सम्यक्	कुन्द०	८.२३९
जिह्वायास्तालुनो योगा	कुन्द०	८.२३२
जिह्वाविलोकनं नैव	कुन्द०	८.१७६
जीर्णं चातिशयोपेतं	उमा०	१११
	धर्मसं०	६.३७
जीवकर्मादि-संश्लेषो	प्रश्नो०	२.३२
जीवकृतं परिणामं	पुरुषा०	१२
जीवगुणमार्गणविधि	अमित०	१०.५
जीवघातकरं दुःखमूलं	प्रश्नो०	२३.१११
जीवघातादसत्याच्च	पुरु० शा०	४.५०
जीवघातो वचो दुष्टं	प्रश्नो०	२०.१५७
जीवतत्त्वं मया प्रोक्तं	भव्यध०	२.१८०
जीवन्ती प्रतिमा यस्य	कुन्द०	१.३
जीवत्राणेन विना	अमित०	६.१४
जीवत्वं नन्द प्रकट जलनिधि	श्रा०सा०	१.१२२
जीव-द्रव्येण संयुक्ता	प्रश्नो०	२.२१
जीवनाशकरं स्नानं	प्रश्नो०	३.११४
जीवन्तं मृतकं मन्ये	पूज्य०	१०२
जीवन्तोऽपि मृता ज्ञेयाः	प्रश्नो०	१५.२८
जीवन्तु वा म्रियन्तां	यशस्ति०	२३५
जीवन्नन्यतरश्चौरः	कुन्द०	११.८०
जीव-पुद्गलयोरैक्यं	व्रतो०	३८७
जीवपोतो भवाम्भोधौ	पद्म० पंच०	५१
जीवयुक्तजलेनैव	प्रश्नो०	२४.४०
जीव-योगाविशेषेण	यशस्ति०	२८५

जीवयोगाविशेषेण	श्रा० सा० (उक्तं)	३.८०
जीवयोगाविशेषो न	उमा०	२७६
जीवत्सु बन्धुवर्गेषु रण्डा	लाटी०	१.२०१
जीववपुषोरभेदो	अमित०	६.२०
जीवः शिवः शिवो जीवः	यशस्ति०	६८९
जीवस्तवनाद्यपेक्षातो	धर्मसं०	२.१३३
जीवस्थान-गुणस्थान	यशस्ति०	८८८
जीवस्य कर्मप्रदेशानां	भव्यध०	२.१८९
जीवस्य चेतना प्राणाः	लाटी०	३.६५
जीवस्य ताडनं बन्धच्छेदौ	व्रतो०	४४१
जीवहिंसाकरं पापं	प्रश्नो०	१२.४२
जीव-हिंसादिसङ्कल्पं	प्रश्नो०	१२.८५
जीव-हिंसादिसङ्कल्पैः	पद्म० पंच०	४१
जीवहिंसादिसञ्जातं	प्रश्नो०	१२.१३
जीवाजीवसुतत्त्वे	रत्नक०	४६
जीवाजीवादिकं तत्त्वं	धर्मोप०	१.१४
जीव-जीवपरिज्ञानं	यशस्ति०	८८७
जीवाजीवादितत्त्वानि	अमित०	३.१
जीवाजीवादि तत्त्वानां	श्रा०सा०	१.१४८
	धर्मोप०	२१५
	उमा०	२१
जीवाजीवादीनां	पुरुषा०	२२
जीवातुः शुभसम्पदां	श्रा० सा०	३.१४९
जीवादीनां पदार्थानां	धर्मसं०	७.२४
जीवानां पुद्गलानां च	अमित०	३.३३
जीवाजीवास्रवा बन्धः	पुरु० शा०	३.४०
	भव्यध०	२.११४
	धर्मसं०	१.३०
	प्रश्नो०	२.७
	गुणभू०	१.११
जीवाजीवौ पुण्यपापे	कुन्द०	८.१४१
जीवादिहिंसनं ये च	प्रश्नो०	३.११२
जीवानां सुदया यत्र	धर्मोप०	२.३
जीवाः सन्ति न वासन्ति	लाटी०	५.२०५
जीवास्तु द्विविधा ज्ञेया	धर्मसं०	७.१०७
जीवा यत्र हि रक्ष्यन्ते	उमा०	२१४

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवा येन विहन्यते	अमित०	९.४४
जीवाहारो न संग्राह्यो	व्रतो०	२५
जीवितं मरणं सौख्यं	अमित०	३.३५
जीवित्त-मरणाशंसा	अमित०	७.१५
	श्रा०सा०	३ ३६७
जीवित्त-मरणाशंसे	पुरु० शा०	६.११२
	रत्नक०	१२९
	यशस्ति०	८७१
	पुरुषा०	१९५
	सागार०	८.४५
	व्रतो०	४५७
जीवितव्यं भवेद् यत्र	प्रश्नो०	१२.१७४
जीवितव्यं वरं चैकदिन	,,	२३.३५
जीवितव्ये जये लाभे	कुन्द०	१.४२
जीवितान्ते ससौ धर्मे	धर्मसं०	२.७२
जीवितोऽनादित्तो जीवो	प्रश्नो०	२.८
जीविते मरणे योगे	अमित०	८.३१
जीविते मरणे वाञ्छा	धर्मोप०	५.१७
जीवित्तो जीवमानो हि	भव्यध०	२.१५०
जीवितं शरदब्दाभं	धर्मसं०	७.८९
जीवितं हरते रामा	अमित०	१२.७८
जीवैरमूर्तैः सह कर्म मूर्त्तं	,,	७.६४
जीवो जिनागमे चान्यः	व्रतो०	४०३
जीवोऽध्वगपदे भग्नः	,,	६४
जीवो न परीक्ष्यते क्वापि	,,	३८२
जीवो नास्तीति मन्यन्ते	,,	३८१
जीवोऽस्तीति प्रभावन्ते	,,	३८४
जीवोऽस्त्यनादिसंशुद्धो	व्रतो०	३९६
जैनधर्मे तथा नीतिमार्गे	धर्मोप०	४.९२
जैनधर्मं प्रतीतिश्च	लाटी०	४.४६
जैनमेकं मतं मुक्त्वा	यशस्ति०	८६
जैनशासन-मध्ये च	प्रश्नो०	१३.२२
जैन-मीमांसक-बौद्ध	कुन्द०	८.२३६
जैनाचारे व्रते पूर्वे	भव्यध०	१.१२९
जैनेन्द्रवादिना प्रोक्तं	व्रतो०	३९४
जैनेन्द्राङ्घ्रिसरोजभक्ति	पद्मनं०	५.१९
जैनेश्वरी परामाज्ञां	महापु०	३९.१९९
जैनोपासक-दीक्षा स्यात्	महापु०	३९.५६
जैमिनीयादि-जीवानां	लाटी०	४.२३८
जैमिन्यादेर्नरत्वेऽपि	यशस्ति०	३९
जोषेण विशत्तो रोधः	अमित०	१२.१०६
ज्ञ		
ज्ञातव्यं तत्त्वतस्तत्र	प्रश्नो०	२२.६०
ज्ञातव्याः स्युः प्रपञ्चेन	महापु०	३९.१५३
ज्ञाताज्ञातामन्दमन्दादिभावैः	अमित०	३.४१
ज्ञाता दृष्टा महान् सूक्ष्मः	यशस्ति०	१०४
ज्ञातीनामत्यये वित्तमद	,,	३५०
ज्ञातुरेव स दोषोऽयं	,,	२४५
ज्ञात्वा तद्वचनं श्रेष्ठी	प्रश्नो०	१५ ७३
ज्ञात्वा दानं तथा पात्रं	,,	२०.४
ज्ञात्वा दृढ़तरमार्गवृत्तान्तं	धर्मसं०	२.७१
ज्ञात्वा धर्म-प्रसादेन	अमित०	११.११२
ज्ञात्वा निदर्शनैरित्यादिभिः	पुरु०	६.१८
ज्ञात्वा भर्ता स्वकीयोऽति	प्रश्नो०	२१.१८१
ज्ञात्वा भूपं हि तद्भक्तं	,,	९.३७
ज्ञात्वा मरणागमनं	अमित०	६.९८
ज्ञात्वा यैरित्यभी दोषा	पुरु० शा०	३.१५६
ज्ञात्वा वज्रकुमारोऽसौ	श्रा० सा०	१.६५८
ज्ञात्वा समुद्रदत्तेन	प्रश्नो०	१५.६८
ज्ञात्वेति दर्शनं धृत्वा	पुरु० शा०	६.९६
ज्ञानकाण्डे क्रियाकाण्डे	यशस्ति०	७८१
ज्ञानं च पूज्यता लोके	धर्मोप०	१.३९
ज्ञान-चारित्र-धर्मादि	प्रश्नो०	४.१५
ज्ञान-चारित्रयोर्बीजं	,,	११.६९
ज्ञानजः स तु संस्कारः	महापु०	३९.९२
ज्ञान-ज्ञानोपकरण	गुणभू०	३.८५
ज्ञानदर्शनमयं निरामयं	अमित०	१५.८९
ज्ञानदर्शन-शून्यस्य	यशस्ति०	१०५
ज्ञानदानं प्रदातव्यं	प्रश्नो०	२०.२९
ज्ञानदानेन पात्राणां	,,	२०.६१
ज्ञानदान-प्रभावेन	,,	२०.७१
ज्ञान-दानेन पात्रस्य	धर्मोप०	४.१७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानं दुर्भगदेह-मण्डनमिव	यशस्ति०	४६६
ज्ञानध्यानतपोयोगैः	धर्मोप०	१.१६
ज्ञानध्यान-समायोगो	महापु०	३८.३००
ज्ञानध्यान-सुवृत्तादि	प्रश्नो०	२.७४
ज्ञानं पङ्गौ क्रिया चान्धे	यशस्ति०	२२
ज्ञानं पूजा तपो लक्ष्मी	धर्मसं०	१.४३
ज्ञानं पूजां कुलं जातिं	रत्नक०	२५
	श्रा०सा० (उक्तं)	१.७५०
	उमा०	८५
ज्ञानपोतं समारूढः	प्रश्नो०	२०.६३
ज्ञानं भक्तिः क्षमा तुष्टिः	सं० भाव०	७२
ज्ञानभावनया हीने	यशस्ति०	८१२
ज्ञानमर्च्यं तपोऽङ्गत्वात्	सागार०	२.६६
ज्ञानमूर्त्तिपदं तद्वत्	महापु०	४०.३०
ज्ञानमेकं पुनर्द्वेधा	यशस्ति०	२४६
ज्ञानयुक्तः क्रियाधारः	कुन्द०	३.४१
ज्ञानवान् ज्ञानदानेन	पूज्य०	७१
ज्ञानवान् धर्मसंयुक्तः	प्रश्नो०	१९.१८
ज्ञानवान् मृग्यते कश्चित्	यशस्ति०	५०
ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्नः	महापु०	३८.१६७
ज्ञानं विद्यां विवेकं च	प्रश्नो०	१३.२७
ज्ञानं विहाय नात्मास्ति	अमित०	४.२४
ज्ञान-संयम-शौचादि	रत्नमा०	२४
ज्ञान-संयम-शौचोपकरणं	धर्मसं०	४.१०८
ज्ञानहीने क्रिया पुंसि	यशस्ति०	२१
ज्ञानहीनो दुराचारो	,,	८५७
ज्ञानहीनो न जानाति	प्रश्नो०	२०.६४
ज्ञानात्सद्ध्यानवृत्तादि	,,	२०.६२
ज्ञानाद् विना गुणाः सर्वे	लाटी०	२.५०
ज्ञानादवगमोऽर्थानां	यशस्ति०	२०
ज्ञानादिसिद्ध्यर्थतनु	सागार०	५.४२
ज्ञानादेवेष्टसिद्धिश्चेत्	गुणभू०	३.१४६
ज्ञानानन्दमयात्मानं	धर्मसं०	२.८
ज्ञानावरणादीनां	भव्यध०	२.१८७
ज्ञानिदोषो जनश्लाघा	कुन्द०	८ ४२७
ज्ञानिनोऽग्रस्थितो दूतो	कुन्द०	८.१६१
ज्ञानादिसङ्गतपोध्यानैः	सागार०	६.३२
ज्ञानी पटुस्तदैव	यशस्ति०	८१६
ज्ञानेन तेन विज्ञाय	अमित०	११.११०
ज्ञाने तत्त्वं यथैतिह्यं	यशस्ति०	६३१
ज्ञाने तपसि पूजायां	यशस्ति०	१९३
	श्रा०सा०	१.५३०
ज्ञाने सत्यपि चारित्रं	गुणभू०	३.१४२
ज्ञानैर्मनो वपुर्वृत्तैः	यशस्ति०	८४५
ज्ञानोग्रतपसासक्तैः	प्रश्नो०	४.५४
ज्ञानोद्योताय पूर्वं च	महापु०	४०.९
ज्ञानोपकरणं शास्त्रं	धर्मसं०	४.१०९
ज्ञायन्ते न यथाऽसंख्या	प्रश्नो०	३.७७
ज्ञायन्ते विस्तरेणोच्चैः	धर्मोप०	२.१४
ज्ञास्यते वन्दनां कृत्वा	अमित०	८.८२
ज्ञेयं तत्रोपवासस्य	प्रश्नो०	२२.६३
ज्ञेयं पूर्वोक्तसन्दर्भाद्	लाटी०	५.२०९
ज्ञेयाऽन्या स्थापनापूजा	धर्मसं०	६.९०
ज्ञेया गतोपयोगाः	अमित०	७.१२
ज्ञेया तस्य कथा दक्षैः	प्रश्नो०	१४.४२
ज्ञेयास्तत्रासनं स्थानं	अमित०	८.३७
ज्येष्ठां गर्भवतीमार्यां	श्रा०सा०	१.४४६
	उमा०	६१
ज्येष्ठो मुनिस्ततो ब्रूयाद्	प्रश्नो०	५.४७
ज्योतिरेकं परं वेषः	यशस्ति०	६६१
ज्योतिर्ज्ञानमथच्छन्दो	महापु०	३८.१२०
ज्योतिर्देवे जघन्यायुः	भव्यध०	३.२३०
ज्योतिर्बिन्दुः कलानादः	यशस्ति०	६०५
ज्योतिर्मन्त्र-निमित्तज्ञः	,,	७७८
ज्योतिःशास्त्रं समीक्षेत	कुन्द०	८.१२८
ज्योतिषां सप्त चापानि	भव्यध०	३.२३६
ज्योतिष्कं व्यन्तरत्वं च	प्रश्नो०	११.८४
ज्योतिष्का व्यन्तरा देवा	भव्यध०	१.४९
ज्वलति ज्वलनः कन्धिः	पुरु०शा०	४.१०७
ज्वलनः प्रज्जवलन्नेष	श्रा०सा०	१.५९२
ज्वलन्तं संयमारामे	धर्मसं०	७.१७३
ज्वलन्नञ्जनभा धत्ते	यशस्ति०	६१८
ज्वालोरुवूकबीजादेः	,,	४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ट

टङ्कनं नासिकावेधो उमा० ४१४
टीका व्याख्या यथा कश्चित् लाटी० ४.१३६

ण

णमो अरिहंताणं पुरु०शा० ५ ३९

त

तं च स्थूलमृषात्यागं धर्मोप० ४.२१
तं ज्ञात्वा वरवर्धमान भव्यध० (प्र०) १९
तं ज्ञात्वा वारिषेणेन प्रश्नो० ८.६०
तं दृष्टवाऽप्यागमे जीवा ,, ७.३२
तं देशं तं नरं तत्स्वं पद्म०पंच० २६
तन्तूनां सततं रोम कुन्द० ३.८०
तं नत्वा परमं ज्योति महापु० ३८.३
तं प्रातिशयमाकर्ण्य प्रश्नो० १२.१७९
तं शब्दमात्रेण वदन्ति धर्मं अमित० १.३१
तं श्रुत्वातिशयं जातं प्रश्नो० ८.४३
तं सम्यग्दर्शनज्ञान धर्मोप० १.५
तत् आहूय दिग्नागान् भव्यध० ६.३५०
तत् ऊर्जितपुण्येति महापु० ४०.१२७
तत ऊर्ध्वं त्रसान् पाति पुरु०शा० ४.१३७
तत्कथं नाम निर्भीकः लाटी० ३.२३
तत्कथाश्रवणानन्दो अमित० ८.२७
तत्करणे महच्छ्रेयो लाटी० ५.११६
तत्कर्णनासिकाच्छेद प्रश्नो० १२.२०५
तत्कालमपि तद्-ध्यानं यशस्ति० ५९९
तत्कालोचितमन्यच्च महा०पु० ३८.२४९
तत्किञ्चिदष्टभिर्मासैः कुन्द० ७.३
तत्कुदृष्टयन्तरोद्भूता यशस्ति० १६०
तत्क्रिया व्रतरुपा स्याद् लाटी० ३.८५
तत्क्षणं जातसंवेगो प्रश्नो० २१.१२७
तत्क्षपक त्वमप्यङ्ग धर्मसं० ७.१९०
तक्षास्त्रष्टा दिवाकीर्त्तिः उमा० १५१
तच्च तत्वार्थश्रद्धानं लाटी० २.७

तच्चाष्टपत्रपद्मानां गुणभू० ३.१२७
तच्छाक्यसांख्यचार्वाक / तच्छाक्यसांख्यचार्वाक { यशस्ति० २९४ ; श्रा०सा० ३.८९ ; उमा० २८७ }
तच्छासनैकभक्तानां यशस्ति० ६६७
तच्छुद्धयशुद्धी वोधव्ये महापु० ३९.१४१
तच्छ्रुत्वा गौतमः प्राह प्रश्नो० २१.१७३
तच्छ्रुत्वा तं प्रति प्राह ,, ९.१८
तच्छ्रुत्वा तां समुद्वीर्यं ,, ८.३७
तच्छ्रुत्वा नृपतिः पश्चात्तापं ,, २१.९८
तच्छ्रुत्वा पुष्पडालोऽभूल्लज्जा ,, ८.६६
तच्छ्रुत्वा पुष्पदन्तारक ,, ९.४६
तच्छ्रुवा मुनिना तेऽपि ,, ९.१६
तच्छ्रुत्वा मुनिना बूतं ,, १०.३९
तच्छ्रुत्वा वासवाख्योऽहं श्रा०सा० १.३२९
तच्छ्रुत्वा विक्रियाऋद्धिः प्रश्नो० ९.५१
तज्जयति परंज्योतिः पुरुषा० १
तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं लाटी० ५.१६६
तत्तत्कर्मानुसारेण धर्मसं० ६.२४९
तत्तत्रावसरेऽवश्यं लाटी० १.१४०
तत्तु स्यादसिवृत्या वा महापु० ४०.१६७
तत्पुस्तकमटव्यां च प्रश्नो० २१.१०३
तत्तादृक्संयमाभ्यास सागार० ७.१६
तत्त्यागः सर्वतः श्रेयान् लाटी० १.१३०
तत्तद्व्रतास्त्रनिमित्त सागार० ७.३७
तत्पद्यं त्रिगुणीभूतं अमित० १५.४४
तत्सत्यमपि नो सत्यं यशस्ति० ३६०
तत्संस्तवं प्रशंसां वा ,, १७५
तत्स्वस्य हितमिच्छन्तो ,, २७३
ततः कपटवेषाढ्या श्रा०सा० १.४३९
ततः कर्मत्रयं प्रोक्तमस्ति लाटी० ३.१५८
ततः कामाग्निना तप्ता प्रश्नो० २३.७७
ततः कालादिदोषेण प्रश्नोत्त० १.३५
ततः कालोचित्तं शुद्धं श्रा०सा० १.४८८
ततः किञ्चिदुपायं प्रश्नो० १०.६
ततः क्रियानुरागेण लाटी० ४.३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततः कुत्सितदेवेषु	पूज्यपा०	६३
ततः कुमारकालेऽस्य	महापु०	३८.२३१
ततः कुम्भं समुद्धार्यं	सं०भाव०	४३
ततः कुर्याद्यथाशक्ति	पुरु०शा०	६.११
सतः कृतार्थमात्मानं	महापु०	३८.१५०
ततः कृतेन्द्रियजयो	,,	३८.२७२
ततः कृतोपवासस्य	,,	३९.३७
ततः कृत्वाऽऽत्मनो निन्दां	प्रश्नो०	२१ १११
ततः कृष्णचतुर्दश्यां	,,	५.२७
ततः क्षात्रमिमं धर्मं	महापु०	३८.२८२
ततः क्षुत्तृड्विनाशः स्याद्	लाटी०	१.२१४
ततः क्षोणीभुजो वृत्तं	श्रा०सा०	१.७०४
ततः पञ्चनमस्कार	महापु०	३९.४३
ततः पञ्चपरं मन्त्रं	श्रा०सा०	१.२०८
ततः पश्याशनं तस्मै	,,	१.३९५
ततःपरं निषद्यास्य	महापु०	३८.९३
ततःपरं शता विघ्नाः	श्रा०सा०	१.१९७
ततः परमजाताय	महापु०	४०.१८
	,,	४०.६५
ततः परमरूपाय	,,	४०.६६
ततः परमवीर्याय	,,	४०.७२
ततः परम्परेन्द्राय	,,	४०.५२
ततः परमार्थसम्पत्त्यै	,,	३८.३०५
ततः परमार्हताय	,,	४०.५३
ततः पश्यत्सु लोकेषु	श्रा०सा०	१.४७१
ततः पश्चिमदिग्भागे	प्रश्नो०	७.४१
ततः पाठोऽस्ति तेषूच्चैः	लाटी०	४.२०
ततः पात्राणि सन्तर्प्य	सागार०	६ २४
ततः पानीयमानीय	श्रा०सा०	१.३२५
ततः पारं गतो धीमान्	प्रश्नो०	२१.१२८
ततः पीठात्समुत्थाय	श्रा०सा०	१.५८
ततः पीयूष-सर्वस्व	,,	१.२८१
ततः पुरगतेनैव	प्रश्नो०	१४.७२
ततः पूजनमत्रास्ति	लाटी०	५.१७४
ततः पूजाङ्गतामस्य	महापु०	४०.८९
ततः पूर्ववदेवास्य	,,	३९.७५
ततः पौर्वाह्णिकीं सन्ध्यां	सं०भा०	२९
ततः प्रथमतोऽवश्यं	लाटी०	२.१२३
ततः प्रसीद मे मन्त्रं देहि	श्रा०सा०	१.२२७
ततः प्रातः कृतस्नानः	,,	१.२७९
ततः प्रातर्नृपो दृष्ट्वा	,,	१.५५७
ततः प्राभातिकं कुर्यात्	सागार०	५.३८
ततः प्रासुकनीरेण	प्रश्नो०	२४.६६
ततः प्रियतमादेशात्	श्रा०सा०	१.६४९
ततः प्रोक्तं पुनस्तेन	प्रश्नो०	१३.७५
ततः शनैः शनैर्गत्वा	लाटी०	५.१७०
ततः शास्त्रं जिनेन्द्रोक्तं	धर्मोप०	४.१८०
ततः शुद्धोपयोगो यो	लाटी०	३.२५६
ततः शौचक्षणे ब्रह्मनिष्ठो	श्रा० सा०	१.३६४
ततश्च दिव्यजाताय	महापु०	४०.४९
ततश्च वाञ्छितान् भोगान्	पुरु० शा०	६.११५
ततश्च शयनं कुर्याद्	लाटी०	५.१८५
ततश्च स्वप्रधानाय	महापु०	४०.१३
ततश्चानुपमेन्द्राय	,,	४०.५८
ततश्चार्हन्त्यकल्याण	,,	४०.९९
ततश्चावर्जयेत्सर्वान्	सागार०	६ १२
ततश्छर्दिः कृता तेन	श्रा० सा०	१.३२१
ततः शोकं भयं स्नेह	प्रश्नो०	२२.२५
ततः श्री कुन्दकुन्दाचार्यादि	,,	१.३६
ततः श्रीसिंहराजाय	श्रा० सा०	१.२६९
ततः श्रेयोऽर्थिना श्रेयं	महापु०	३९.१६
ततः षट्कर्मणे स्वाहा	,,	४०.३३
ततः सच्छ्रेष्ठिना प्रोक्तं	प्रश्नो०	२१.७१
ततः संज्ञान-वृत्तादि	,,	२०.५९
ततः स दर्शन-स्फार	श्रा० सा०	१.४३५
ततः सद्गृहिं कल्याणी	महापु०	४०.१०३
ततः सम्पूर्णतां नीत्वा	लाटी०	५.१६८
ततः सम्यक्त्व-शुद्धात्मा	श्रा० सा०	१.४३४
ततः सर्वप्रयत्नेन	महापु०	४०.१९८
ततः स विद्युच्चौरोऽपि	श्रा० सा०	१.४८०
ततः सागारधर्मो वा	लाटी०	३.२४६
ततः सागाररूपो वा	,,	३.२३९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततः साधीयसी मैत्री	लाटी०	४.११९
ततः साधु समाधिश्च	,,	५.१६५
ततः सिद्धं निसर्गाद्वै	,,	३.१४७
ततः सिद्धमनायासात्	,,	३.२३४
ततः सिद्धमिदं सम्यग्	,,	२.१०९
ततः सुदेव्यो द्वात्रिंशद्	प्रश्नो०	८.६४
ततः सुविहितस्यास्य	महापु०	३८.१६८
ततः सुश्रावकैर्भव्यैः	धर्मोप०	४.७८
ततः सुस्थिरचित्ताया	प्रश्नो०	१०.२९
तनस्तच्छ्रवणोद्भूत	श्रा० सा०	१.५०३
ततस्तात सुता जाता	कुन्द०	५.१२६
ततस्तं मारणस्थाने	प्रश्नो०	१२.१५६
ततस्तं सपरिज्ञाय	,,	७.३५
ततस्तद्-ब्रह्ममाहात्म्यात्	श्रा० सा०	१.२७०
ततस्तद्-भस्म निर्धूय	पुरु० शा०	५.५४
ततस्तन्मातरं तां च	श्रा० सा०	१.६९५
ततस्तया जलेनैव	प्रश्नो०	२१.६९
ततस्तया जिते यज्ञोपवीत	,,	१३.९१
ततस्तया मदीयोऽयं	,,	२१.१७८
ततस्तानि समादाय	श्रा० सा०	१.६३०
ततस्तूर्णं तलारैः स	प्रश्नो०	१२.१६५
ततस्ते तं नमस्कृत्य	,,	८.२०
ततस्ते तत्र गत्वाऽऽशु	,,	१०.६३
ततस्तेन खगेशेन	,,	१०.३६
ततस्ते मन्त्रिणः पद्मभया	,,	९.६२
ततस्तेन स्वयं सत्यमुक्तं	,,	२१.२९
ततस्तेषामनुद्रेकः	लाटी०	३.२१५
ततस्तैः सा समं नाभि	श्रा० सा०	१.६४०
ततस्तैः सा समानीता	,,	१.२८५
ततस्त्यक्त्वापि तं दुष्टं	प्रश्नो०	२१.३१
ततः स्नात्वा शिरःकण्ठ	कुन्द०	१.८८
ततस्त्वं यास्यसि श्वभ्रमाद्यं	धर्मसं०	२.१३१
ततः स्वकाम्यसिद्ध्यर्थं	महापु०	४०.२४
तत्स्वरूपं परिज्ञाय	लाटी०	१०.९९
ततो गत्वा गुरूपान्तं	सागार०	७.४५
ततो गत्वा गुरोरग्रे	श्रा० सा०	१.५४९
ततो गत्वाप्यसौ तत्र	प्रश्नो०	९.२०
ततो गत्वा प्रजापाल	श्रा० सा०	१.२२०
ततो गत्वा व्रती तत्र	,,	१.३५४
ततो गरुत्रवेगाख्यो	प्रश्नो०	१०.२५
ततो गरुड़वेगेन	श्रा० सा०	१.६६३
ततो गुणकृतां	महापु०	४०.१८६
ततो गृहस्थ एवायं	पुरु० शा०	६.४७
ततो गृहाण सम्पूर्णं	प्रश्नो०	२२.२३
ततोऽघाद् गुणपालेन	,,	१२.१९९
ततो जयकुमारोऽपि	,,	१६.८१
ततो जाना प्रसिद्धा सा	,,	२१.६१
ततो जाप्यं जगत्सारं	धर्मोप०	४.२१३
ततो जितारिषड्वर्गः	महापु०	३८.२८०
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो	रत्नक०	२०
ततो जिनेन्द्रसूत्रोक्त्या	धर्मोप०	४.१७
ततो जिह्वाञ्चलास्वाद	श्रा० सा०	१.३३०
ततो झकटिको जातः	प्रश्नो०	१३.४९
ततोऽतिनष्टसन्मानाः	,,	१५.८५
ततोऽतिबहुसद्-रत्नमध्ये	,,	१३.९४
ततोऽतिबालविद्यादी	महापु०	४०.१६१
ततोऽतिरिक्ते लोभात्	लाटी०	५.९९
ततो दत्तो वराहारो	प्रश्नो०	२१.३५
ततो दिव्याष्टसहस्र	महापु०	४०.१३३
ततो दुःखी दरिद्री च	धर्मोप०	४.३५
ततो दुःखोपतापोष्मा	श्रा०सा०	१.६६९
ततो द्यूते समं जाते	प्रश्नो०	१३.८५
ततो द्वादश वर्षाणि	श्रा०सा०	१.४९९
ततो धनश्रिया पृष्टो	प्रश्नो०	१२.२००
ततो धनश्रिया प्रोक्तं	,,	२१.६७
ततो धर्मपरीक्षार्थं	श्रा०सा०	१.१९३
ततोऽधिगतसज्जाति	महापु०	३९.९९
ततोऽधीताखिलाचारः	,,	३८.१६४
ततो नत्वा गणाधीशं	प्रश्नो०	२१.१९३
ततो नत्वा नृपः प्राह	श्रा०सा०	१.५९६
ततो नित्यं भयाक्रान्तो	लाटी०	३.४४
ततो निरुद्धनिःशेष	महापु०	३८.३०८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततो निर्गत्य तिर्यक्षु	धर्मसं०	२.२७
ततो निर्ग्रन्थमुण्डादि	महापु०	४०.१४८
ततो निर्यापकः कर्णे	सागार०	८.६७
ततो निःशेषमाहारं	महापु०	३८.१८६
ततो नीत्वा कृतोल्लोचे	पुरु०शा०	४.१७४
ततो नृपतिना पृष्ठः	प्रश्नो०	१३.९८
ततो नृपतिना वारिषेणो	श्रा०सा०	१.४८२
ततोऽन्यस्मिन् दिने	प्रनो०	७.३६
ततो न्यायागतं चैतत्	लाटी०	४.१०८
ततोऽन्या पुण्ययज्ञाख्या	महापु०	३९.५०
ततोऽपभ्रषितेनालमन्यत्र	,,	३९.४७
ततोऽपि नेमिनाथाय	,,	४०.५९
ततोऽपि याचितस्तूर्णं	प्रश्नो०	१०.५२
ततो बाह्यनिमित्तानुरूपं	लाटी०	१.१९४
ततो बृहन्मुखो योग्यः	प्रश्नो०	२४.३५
ततोऽब्रवीद् बलिर्मन्त्री	श्रा०सा०	१.५७३
ततो भव्यैर्जिनेन्द्राणां	धर्मोप०	४.६२
ततो भस्मीभवन्त्येव	प्रश्नो०	२३.७८
ततोऽभिषेकमाप्नोति	महापु०	३८.२३९
ततो भीत्यानुमेयोऽस्ति	लाटी०	३.२०
ततोऽभूत्तपसेशाने	पुरु०शा०	४.६७
ततोभूम्नि क्रियाकाण्डे	,,	३.२८३
ततो मत्वा समीपं तौ	प्रश्नो०	५.४६
ततो मम मुखं बद्ध्वा	,,	१४.६२
ततोऽमराप्रमेयोक्तौ	महापु०	४०.१६
ततो महानयं धर्मं	,,	४०.२१०
ततो मुनिमुखोद्गीर्णं	लाटी०	५.१७८
ततो मुनीन्द्र कल्याण	महापु०	४०.१०४
ततो मृत्वा गतः श्वभ्रं	प्रश्नो०	१३.१०६
ततो मृत्वा निदानेन	,,	२१.११३
ततोऽमुष्यैकदेशेन	धर्मसं०	५.८५
ततो यथोचितस्थानं	सागार०	६.१५
ततोऽयं कृतसंस्कारः	महापु०	४०.१६०
ततोऽयं मौलिमेकाङ्क्षं	धर्मसं०	६.१३८
ततोऽयं शुद्धिकाम. सन्	महापु०	४०.१८४
ततोऽयमुपनीतः	,,	३९.५७

ततो यष्टिं समादाय	प्रश्नो०	१४.६५
ततो रक्त-समालिप्तं	,,	१२.२०१
ततो राजादिभिर्नीली	,,	१५.९८
ततो राज्ञा तदाकर्ण्य	,,	१५.१२४
ततो राज्ञा तयोर्दत्तं	,,	१३.५३
ततो राज्ञा महाद्दुःखैः	,,	१५.१२५
ततो रुष्टेन भूपेन	,,	१३.१००
ततो वक्तुमशक्यत्वात्	लाटी०	२.५१
ततोऽवतीर्णोगभेऽसौ	महापु०	३८.२१७
ततोऽवभानितानेतान्	,,	३८.१९१
ततो वर्णोत्तमत्वेन	,,	३८.१४५
ततोऽवश्यं हि पापः	लाटी०	१.१६८
ततोऽवश्यं हि हिंसायाः	,,	१.१४७
ततो वसतिकां शीघ्र	प्रश्नो०	७.२९
ततो वादोद्यतः सोऽपि	श्रा० सा०	१.५४७
ततो वाप्यां प्रविश्यासो	धर्मसं०	६.१२६
ततो विजृम्भते कामदाहः	प्रश्नो०	२३.७६
ततो विज्ञाय राजानं	,,	२१.८१
ततो विधिममुं सम्य	महापु०	४०.२५०
ततो विवक्षितं साधु	लाटी०	२.१४१
ततो विशुद्धि-संसिद्धे	,,	४.३१
ततो विश्वेश्वरास्तस्य	महापु०	४०.११९
ततो विष्णुकुमारेण	प्रश्नो०	९.५५
ततो विष्णुकुमारोऽसौ	श्रा० सा०	१.५६४
ततो विसर्जनं कार्यं	उमा०	१४८
ततो वृषभसेनायाः	प्रश्नो०	२१.९२
ततो वैकालिक कार्यं	कुन्द०	४.२
ततो वैराग्यमापन्नो	श्रा० सा०	१.६३४
ततो व्यभिचरन्तौ तौ	कुन्द०	५.१३४
ततो व्रतप्रभावेण	प्रश्नो०	११.९६
ततोऽशक्यः गृहत्यागः	लाटी०	६.२९
ततोऽसावुपसंहृत्य	प्रश्नो०	१६.७६
ततोऽसौ ग्रहिलो भूत्वा	श्रा० सा०	१.६२१
ततोऽसौ जारसंकेतग्रहं	प्रश्नो०	१५.११७
ततोऽसौ दिव्यशय्यायां	महापु०	३८.१९२
ततोऽसौ भणितो लोकैः	श्रा० सा०	१.६०१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततोऽसौ भव्यसेनाख्यं	,,	१.३७०
ततोऽस्ति जगतः कर्त्ता	अमित०	४.७९
ततोऽस्ति यौगिकी	लाटी०	२.६८
ततोऽस्त्यन्तकृत्तो	,,	३.२३०
ततोऽस्य केवलोत्पत्तौ	महापु०	३८.३०१
ततोऽस्य गुर्वनुज्ञाना	,,	३८.१२७
ततोऽस्य जिनरूपत्व	,,	३९.७८
ततोऽस्थ पञ्चमे वर्षे	,,	३८.१०२
ततोऽस्य विदिताशेष	,,	३८.१६६
ततोऽस्य वृत्तलाभः	,,	३९.३६
ततोऽस्य हायने पूर्णे	,,	३८.९६
ततोऽस्याधीतविद्यस्य	,,	३८.१२१
ततोऽर्हद्-भारतीं स्तुत्वा	लाटी०	५.१६७
ततो हि बलिना दत्तं	प्रश्नो०	९.५९
ततो हि श्रेष्ठिना तस्मै	,,	५.२६
तत्राभ्यां भू-जलाभ्यां स्यात्	कुन्द०	१.३६
तत्त्वं जीवास्तिकायाद्याः	लाटी०	२.८
तत्त्वं प्रकाश्यते येन	अमित०	११.४४
तत्त्वं चिन्तादिसंयुक्तं	प्रश्नो०	२०.८७
तत्त्वचिन्तामृताम्भोधौ	यशस्ति०	५८१
तत्त्वज्ञानादि-श्रद्धान-युक्ता	प्रश्नो०	२०.१७
तत्त्वतः सह देहेन	अमित०	१५.८४
तत्त्वभावनयोद्भूतं	यशस्ति०	७९
तत्त्वमभ्यङ्ग सङ्गत्य	सागार०	८.१०६
तत्त्वश्रद्धानतो जीवा	प्रश्नो०	२.८४
तत्त्वानि जिनसिद्धान्ताद्	पुरु० शा०	३.४२
तत्त्वाऽऽप्तव्रतमार्गेषु	गुणभू०	१.५२
तत्त्वार्थं प्रतिपद्य तीर्थकथना	सागार०	२.२१
तत्त्वार्थान् श्रद्धधानस्य	धर्मसं०	१.३१
तत्त्वार्थाभिमुखी बुद्धिः	लाटी०	२.५७
तत्त्वार्थश्रद्धाने	पुरुषा०	१२४
तत्त्वे ज्ञाते रिपौ दृष्टे	यशस्ति०	१५१
तत्त्वे पुमान्मनः	,,	८३८
तत्त्वेषु प्रणयः परोऽस्य	,,	४६०
तत्स्थितीकरणं द्वेधा	लाटी०	३.२९०
तडागं कमलाकीर्णं	श्रा० सा०	१.४९२
तडागेऽतिमहामत्स्यः	प्रश्नो०	२०.२३७
तथा कुटुम्बभोगार्थं	उमा०	१४४
तथा कुटुम्बभोग्यार्थं	धर्मसं०	६.७६
तथा कुर्वन् प्रजायेत	यशस्ति०	३६९
तथा गतो दिन-स्फार	श्रा० सा०	१.७१०
तथा गुरूपदेशेन जपं कार्यं	धर्मोप०	४.२१६
तथा चाण्डालिकादीनां	,,	४.८६
तथा चैकादश प्रोक्ताः	,,	४.२२५
तथा चोपशमाद्याश्च	,,	१.४१
तथा जलादिभिर्द्रव्यैः	,,	४.२०७
तथा तद्-व्रतरक्षार्थं	,,	३.१६
तथा तद्-व्रतशुद्ध्यर्थं	,,	३.२६
तथा तद्-व्रतसंशुद्ध्यै	,,	३.३२
तथा देवैर्नरैः पूज्या	प्रश्नो०	१५.१०२
तथा द्वितीयः किन्त्वार्यं	धर्मसं०	५.७२
तथान्यतरसंयुक्ता	कुन्द०	५.१४९
तथापि तत्क्रमाम्भोज	प्रश्नो०	१.३९
तथापि न निरर्गलं	लाटी० (उक्तं)	४.३४
तथापि न बहिर्वस्तु	,,	३.२०१
तथापि प्रेरितो देव	प्रश्नो०	२१.१५७
तथापि यदि मूढत्वं	यशस्ति०	१४४
तथापि स्वस्य पुण्यार्थं	,,	४९८
तथा पुण्यधनैर्भव्यैः	धर्मोप०	३.३५
तथा पूज्यो महाशीला	प्रश्नो०	१५.१०६
तथाप्यत्र तदावासे	यशस्ति०	४७
तथा बन्धवधच्छेद	धर्मोप०	४.९
तथा भव्यैः प्रकर्तव्यं	,,	४.७५
तथा भव्यैः प्रदातव्यं	,,	४.१७३
तथा भव्यैः समभ्यर्च्यं	,,	४.२१२
तथाभूतं तमालोक्य	प्रश्नो०	१०.८
तथा मर्मव्यथं वाक्यं	धर्मोप०	४.२२
तथा मौनं विधातव्यं	धर्मसं०	३.४३
तथायमात्मरक्षायां	महापु०	३८.२७५
तथा योगं समाधाय	,,	३८.१९०
तथार्पकः पूर्वदिशि	उमा०	११६
तथालब्धात्मलाभस्य	महापु०	३९.१२१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथाविधोऽपि यःकश्चित्	लाटी०	५.२१५
तथा शिक्षाव्रतान्युच्चैः	धर्मोप०	४.११९
तथाऽशुचिरयं कायः	पद्म०पंच०	५०
तथाऽशुचौ शरीरेऽपि	धर्मोप०	१.२०
तथा श्रावकलोकानां	,,	४.१०५
तथा श्रीमज्जिनेन्द्राणां	,,	५.१
तथा श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तं	,,	१.७
तथा श्रीमद्-गणाधीश	,,	२.१०
तथा सद्-दृष्टिभिभव्यैः	,,	१.३८
तथा समर्जयेद्वित्तं	धर्मसं०	६.१५७
तथा सर्वजनैर्लोकैः	प्रश्नो०	१३.५५
तथा सामायिकस्थस्य	पुरु० शा०	५.११
तथा सुश्रावकाणां हि	धर्मोप०	४.८४
तथा सूत्रार्थवाक्यार्थौ	लाटी०	४.२७
तथाऽस्य दृढ़चर्या स्यात्	महापु०	३९.५१
तथा हि प्राप्तवीर्यौ तौ	कुन्द०	५.१८८
तथैव चाङ्गविद्यायाः	कुन्द०	८.१३६
तथैव मुद्रिते भाण्डे	कुन्द८	११.७६
तथोल्कापातनिर्घात	कुन्द०	८.११९
तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसाप्रपञ्चे	अमित०	२.७४
तदकृत्यं समालोक्य	प्रश्नो०	१४.४७
तदत्यक्षसुखं मोहा	लाटी०	३.९७
तदन्येषां यथाशक्ति	अमित०	१५.६
तदपलनं द्वितीयं	अमित०	६.५०
तदपि वदेयं किमपि	यशस्ति०	५३८
तदभावे च वध्यत्व	महापु०	४०.१९७
तदभावे स्वमन्याश्च	,,	४०.१९३
तदयुक्तं न वाच्यं च	उमा०	२७७
तदयुक्तं यतःपुण्य	कुन्द०	२.११३
तदयुक्तं यतो नेदं	अमित०	८.९
तदयुक्तं यतो मुक्त्वा	,,	४.२१
तदयुक्तं वचस्तेषां	,,	४.४९
तदर्थात्प्रातरुत्थाय	लाटी०	५.१५३
तदर्धं प्रहरादूर्ध्वं	धर्मसं०	३.३६
तदलं बहुनोक्तेन	लाटी०	१.१२८
तदलमतुलं त्वादृग्वाणी	यशस्ति०	५६३
तदवश्यं तत्कामेन	लाटी०	१.१०३
तदष्टाशीति द्विशतीभेदं	गुणभू०	२.४
तदसत्याञ्चितं वाक्यं	श्रा०सा०	३.१७१
तदसत्योचितं वाक्यं	उमा०	३४८
तदस्ति न सुखं लोके	अमित०	११.१२
तदर्हंजस्तनेहातो	यशस्ति०	२९
तदाकर्ण्य जयेनोक्तं	प्रश्नो०	१६.७०
तदाकर्ण्य ततो द्रष्टुं	,,	१०.३७
तदाकर्ण्य पुनःप्रोक्तं	,,	१०.४८
तदाकर्ण्य विरक्ता सा	,,	२१.३०
तदाकर्ण्य समालोच्य	,,	२१.८५
तदाकर्ण्याशु मित्रेण	,,	१५.६५
तदा कर्तिकया जिह्वाच्छेदं	,,	१३.६२
तदाखिलो वर्णिमुखग्राहि	सागार०	८.६६
तदागत्य महाभव्याः	प्रश्नो०	२१.१८३
तथागमं यथाकर्ण्य	श्रा०सा०	१.७२४
तदा तत्स्वसृनाशाय	धर्मसं०	२.६४
तदा तया गृहीतेति	प्रश्नो०	१८.९५
तदादरोदयात्यन्त	श्रा०सा०	१.३९८
तदादाय प्रपूज्याशु	प्रश्नो०	२१.१२२
तदादि प्रत्यहं भेरी	महापु०	३८.७९
तदादौ शोषणं स्वाङ्गे	सं०भाव०	३३
तदान्वेषयता तेन	श्रा०सा०	१.६२०
तदापि पूर्ववत् सिद्ध	महापु०	३८.१३८
तदा पौरजनानाह	धर्मसं०	२.११३
तदा भर्त्ता त्वमेव स्यादन्यथा	प्रश्नो०	५.३६
तदा विद्या समायाता	,,	५.४०
तदा वृतिततौ तस्य	यशस्ति०	४१
तदाशक्यं धनं दातुं	प्रश्नो०	१३.१०३
तदाशोकः समुत्पन्नो	,,	६.२९
तदासक्तेन विद्युच्चौरेणागत्य	,,	८.३५
तदा सङ्घोऽखिलो	धर्मसं०	७.७९
तदा सालम्बमालम्ब्य	श्रा०सा०	१.५७९
तदा सुराः समागत्य	,,	१.६०६
तदाऽस्य क्षपकश्रेणी	महापु०	३८.२९७
तदास्योपनयार्हत्वं	,,	४०.१६९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदिदं तस्य साम्राज्यं	महापु०	३८.३६५	तत्पूर्वं दिशि पद्मासनस्थं	प्रश्नो०	७.३७
तदिदं मे धनं धर्म्यं	सागार०	७.२७	तत्प्रसीदाधुना प्राज्ञ	लाटी०	४.५३
तदिदानीमियां भ्रान्ति	,,	८.५१	तत्सर्वमाकर्ण्य तयोर्भवन्तं	भव्यध०	५.१३
तदीयश्चेटिकापुत्रः	प्रश्नो०	२१.२०	तत्सर्वविगमात्तेषां	प्रश्नो०	३.२६
तदुत्तमं भवेत्पात्रं	यशस्ति०	७६६	तत्सुतः सोमवत्सौम्यः	श्रा०सा०	१.६१७
तदुत्थितोत्थितं	पुरु०शा०	५.२६	तत्सुपात्रं त्रिधा प्रोक्तं	धर्मोप०	४.१४८
तदुत्पत्ति निसर्गेण	गुणभू०	१.६४	तत्सूनुः पुष्पडालाख्यो	श्रा०सा०	१.४८७
तदुन्मुखस्य या वृत्तिः	महापु०	३९.५	तत्सारूपं प्रवक्ष्यामः	लाटी०	१.१६६
तदेकबिन्दुशः खादन्	धर्मसं०	२.१४१	तद्गीःसुधां निपीयासौ	धर्मसं०	२.९९
तदेकाक्षादि पञ्चाक्ष	लाटी०	४.१११	तद्वान् ज्ञान-विज्ञान	यशस्ति०	१९५
तदेतत्सिद्धसाध्यस्य	महापु०	३८.२९९	तद्-दृष्ट्वा तु तया प्रोक्तं	प्रश्नो०	१५.११५
तदेतन्मे धनं पोष्यं	धर्मसं०	५.४४	तद्-द्रव्य-दातृ-पात्राणां	यशस्ति०	२.९४
तदेतद्योगनिर्वाणं	महापु०	३८.१८१	तत्तद्गुण-प्रधानत्वा	,,	८२५
तदेतद्विधिदानेन्द्र	,,	३८.२०१	तद्दिनात् त्रीणि चान्यानि	धर्मसं०	६.२६३
तदेतद् व्यसनं नूनं	लाटी०	१.१६५	तद्दिने काञ्जिकाहार	,,	४.७५
तदेनं मोहमेवाह	सागार०	६.३०	तद्दुःखं नास्ति लोकेऽस्मिन्	,,	७.८३
तदेवं याचते सोऽपि	प्रश्नो०	९.५८	तद्दोषाः पञ्च मिथ्योपदेशौ	,,	३.५३
तदेवं वक्ष्यमाणेषु	लाटी०	१.१५	तद्-द्वेधा स्यात्सरागश्च	गुणभू०	१.४५
तदेवं सत्पुरुषार्थः	,,	२.२	तद्-द्वयोश्च यथाशक्ति	धर्मोप०	४.१४५
तदेवेष्टार्थसंसिद्धिः	,,	२.३	तद्धर्मस्थीयमाम्नायं	महापु०	४०.२००
तदेषां जातिसंस्कारं	महापु०	३८.४९	तद्धामबद्ध कक्षाणां	यशस्ति०	६६८
तदेहि वत्से गच्छाव	श्रा०सा०	१.२९०	तद्-ध्यानं तु गृहस्थानां	धर्मसं०	७.१४१
तदैतिह्ये च देहे च	यशस्ति०	१६७	तद्-ध्याननिश्चली	पुरु०शा०	५.७९
तदैष परमज्ञानगर्भात्	महापु०	३९.९३	तन्निवारय सन्तापं	श्रा०सा०	१.५९५
तदोक्तं रूपवत्या मां	प्रश्नो०	२१.७८	तन्वेचित्यित्ति गेहेऽसौ	,,	१.२५३
तदौपशमिकं पूर्वं	पुरु०शा०	३.४४	तत्पञ्चमगुणस्थाने	लाटी०	४.१३९
तद्देशाद् बहिरन्यस्मान्नराद्	प्रश्नो०	१८.१७	तत्पर्याय-विनाशो	अमित०	६.२३
तद्द्विधाऽथ च वात्सल्यं	लाटी०	३.३०४	तत्पाणिपद्मसङ्कोचं	श्रा०सा०	१.७३
तद्-भीतिर्जीवितं भूया	,,	३.६३	तत्पात्रं त्रिविधं ज्ञेयं	लाटी०	५.२२१
तद्यथा न रतिः पक्षे	,,	३.७२	तत्पारणाह्नि निर्माप्य	गुणभू०	३.६६
तद्वर्णने क्षमःकोऽत्र	धर्मोप०	४.२२०	तत्पूजादान-विद्याद्यैः	,,	१.४४
तच्छुद्धत्वं सुविख्यातं	लाटी०	३.१४८	तत्प्रत्याख्यान-सङ्ख्याने	पुरु०शा०	४.१६६
तत्तेजसा निशामध्ये	श्रा०सा०	१.४३२	तत्प्रस्तावे जयस्यैव	प्रश्नो०	१६.६३
तत्तन्नास्तिकवादने	,,	१.४४७	तत्प्रस्तावे मनुष्यस्य	,,	२१.१४३
तत्तन्मन्त्रमहौषधोद्धत	,,	१.७४७	तत्फलेन मृतो राजा	,,	२१.३७
तत्पुरः प्रस्फुरद्-वक्त्रं	,,	१.६४७	तद्-बलाद् रूपमादाय	,,	१६.६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तद्बहिः सूक्ष्म-पापानां	धर्मसं०	७.५
तद्बिम्बं लक्षणैर्युक्तं	,,	६.३६
तद्भक्षणे महापापं	लाटी०	१.८१
	धर्मोप०	३.३१
तद्भक्षिणो वृथा लाभं	धर्मोप०	३.२४
तद्भार्यायै भणित्वेति	प्रश्नो०	१३.८७
तद्भेकस्य कथां श्रुत्वा	प्रश्नो०	२१.१९२
तद्-भेदा बहवः सन्ति	लाटी०	१.१०
तद्-भेदाः भूरिशःसन्ति	धर्मोप०	२.७
तद्-भेदाः शतशः सन्ति	,,	३.६
तद्यथा वध्वमानेऽस्मिन्		
तद्यथा यो निवृत्तः स्याद्	लाटी०	४.१२५
तद्यथा लौकिकी रूढिः	,,	३.११५
तद्यथा सिद्धसूत्रार्थे	,,	४.१३१
तद्यथा सुखदुःखादिभावो	,,	२.५४
तद् यन्त्रगन्धतौ भाले	सं० भाव०	५६
तद्येनाष्टापरं यस्य	अमित०	९.५०
तद्रूपालोकनाज्जातो	प्रश्नो०	१५.६६
तद्रूपालोकनात् सार्थवाहः	श्रा० सा०	१.२६२
तद्-रेफवह्निना पद्म	पुरु० शा०	५.५१
तद्वच्च न सरेद् व्यर्थ	सागार०	५.११
तद्वत्सव्रतिकादिश्च	धर्म सं०	२.१७०
तद्वद्दर्शनिकादिश्च	सागार०	३.५
तद्वद्द्वितीयः किन्त्वार्यसंज्ञो	,,	७.४८
तद्वपुर्द्रव्यं शास्त्रं वा	गुणभू०	३.११३
तद्वंशजातो वरवर्धमानः	भव्यध०	५.११
तद्विधिश्चात्र निर्दिष्टः	लाटी०	५.१७५
तद्विशेषविधिस्तावद्	,,	२.१०
तद्विषयो गतित्यागस्तथा	,,	५.१२३
तद्व्यक्तभक्तिसम्भार	श्रा० सा०	१.३२६
तद्विद्यामाशु चादाय	प्रश्नो०	१०.३२
तद्-व्रतं सर्वथा कर्त्तुं	लाटी०	१.३
तद्-व्रतैर्विद्यया वित्तैः	यशस्ति०	२०४
तद्-वृत्तमाकर्ण्य सञ्जात	प्रश्नो०	९.३१
तल्लक्षणं यथा भङ्गे	लाटी०	१.१०९

तल्लक्षणं यथा सूत्रे	लाटी०	१.१६३
	,,	५.३२
	,,	३.९७
तल्लावण्यामिषग्रास	श्रा० सा०	१.२५६
तनु-जन्तुजातसंभव	व्रतो०	६६
तनूजेऽष्टदिनान्येव	श्रा० सा०	१.२४४
तनौ यदि नितम्बिन्याः	कुन्द	१०.२२
तन्दुलादिकसन्मिश्रं	प्रश्नो०	१९.९
तन्नाभौ हृदये वक्त्रे	अमित०	१५.३४
तन्नास्ति यदहं लोके	यशस्ति०	६४१
तन्नैरन्तर्यासान्त	,,	७२०
तन्मते द्विधैव स्वैरी	लाटी०	१.२०६
तन्मद्यं पापकृन्निन्द्यं	धर्मोप०	३.१३
तन्मन्त्रास्तु यथाम्नायं	महापु०	३८.७४
तन्मतेषु गृहीता सा	लाटी०	१.२०५
तन्मुखेऽन्ये ज्वलत्ताम्रद्रवं	धर्म सं०	२.२६
तत्रकन्दर्पकौत्कुच्य	धर्म सं०	४.१५
तत्र कश्चन भव्यात्मा	लाटी०	५.१५९
तत्र क्षणमिवासीने	महापु०	३८.२३७
तत्र क्षताष्टकर्माणः	अमित०	३.३
तत्र गच्छन्न छिन्द्रेद्वा	लाटी०	१.१५८
तत्र गत्वा जिनं नत्वा	श्रा० सा०	३.१०
	उमा०	४२५
तत्र गत्वा स्थितः पार्श्वे	प्रश्नो०	७.२७
तत्र जीवा द्विधा ज्ञेयाः	अमित०	३.२
तत्र जीवो महाकायः	लाटी०	४.६७
तत्र ताम्बूल-तोयादि	,,	१.४३
तत्र तावत् प्रवक्ष्यामि	भव्यध०	१.५७
तत्र त्याज्या आनयन	धर्म सं०	४.४१
तत्रत्यैरपि सङ्गत्य	श्रा० सा०	१.६७५
तत्र देवकुले चैकदा	प्रश्नो०	२१.१०३
तत्र धर्मादयः सूक्ष्माः	लाटी०	३.७
तत्र नित्यमहो नाम	महा पु०	३८.२७
तत्र न्यञ्चति नो विवेकतपनो	सागार०	७.५४
तत्र पक्षो हि जैनानां	महापु०	३९.१४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्र पाणिगृहीता या	लाटी०	१.१७९
तत्र प्रभृत्यभीष्टं हि	महापु०	३८.९१
तत्र प्रसिद्धोऽजनि कामदेवः	गुणम्०	३.१५४
तत्र बन्धुजनादर्थं	महापु०	३८.९२
तत्र वह्व्यः कथाः सन्ति	लाटी०	१.११६
तत्र भक्तिरनौद्धत्यं	,,	२.११३
तत्र भीतिरिहामुत्र	,,	३.२८
तत्र मुक्त्वाऽऽत्तपत्राद्यं	श्रा० सा०	१.६२
तत्र मिथ्योपदेशाख्यः	लाटी०	५.१८
तत्र मूलगुणाश्चाष्टौ	,,	२.१५४
तत्र मोहोदयोद्रेका	,,	३.२९१
तत्र यद्यपि भक्तादि	,,	३.२६०
तत्र वज्रकुमारश्च	प्रश्नो०	१०.२४
तत्र वाग्गुप्तिरित्युक्ता	लाटी०	४.१९०
तत्र वान्यत्र चैकान्ते	धर्म सं०	४.६५
तत्र विचार्या प्रागेव	लाटी०	४.२१७
तत्र व्यस्तानि केषाञ्चित्	,,	१.९२
तत्र शुश्राव षड्द्रव्य	प्रश्नो०	२१.१६८
तत्र श्रावक धर्मेऽत्र	धर्मोप०	३.८
तत्र श्रीयुगादिनाथो	(गद्य भा० ३, पृ० २६२)	
तत्र सज्जातिरित्याद्या	महापु०	३९.८२
तत्र सद्दर्शनं तावत्	पुरुशा०	३.१९
तत्र सद्भिर्जिनेन्द्राणां	धर्मोप०	५.५
तत्र सूत्रपदान्याहु	महापु०	३९.१६२
तत्र संसारिणो जीवाः	लाटी०	५.१५५
तत्र संस्कारजन्मेद	महापु०	३९.१२४
तत्र संस्थापयन्त्येव	धर्मोप०	४.२०४
तत्र स्थातुमशक्तोऽपि	प्रश्नो०	२१.६४
तत्रस्थान् जिनविम्बांश्च	लाटी०	५.१७१
तत्रस्थो मुनिनायकस्य	व्रतो०	३३९
तत्र स्यात् श्रेणिको भूपो	प्रश्नो०	२१.१५२
तत्र हिंसानृतस्तेयाब्रह्म	लाटी०	३.२४२
तत्र हेतुवशात् क्वापि	,,	६.७
तत्राकामकृते शुद्धिः	महापु०	३९.१४८
तत्राकृतमिदं सम्यक्	लाटी०	३.२३२
तत्रागतो महाभूत्या	प्रश्नो०	२१.१६
तत्रागमो यथासूत्राद्	लाटी०	४.१५८
तत्राऽऽचार्यः प्रसिद्धोऽस्ति	,,	३.१९८
तत्राणुव्रतसंज्ञानि	धर्म सं०	३.५
तत्रातिकालमात्रत्वे	लाटी०	१.३४
तत्रातिवालविद्याद्या	महापु०	४०.१७५
तत्रादौ तावदुन्नेष्ये	,,	४०.२
तत्रादौ श्रद्दधज्जैनी	सागार०	२.२
तत्रादौ सत्यजाताय	महापु०	४०.६४
तत्रादौ सम्यक्त्वं	पुरुषा०	२१
तत्राद्यं मुनिभिः प्रोक्तं	धर्मोप०	१.६
तत्राद्यः प्रशमो नाम	लाटी०	२.७०
तत्राद्ये करणे नास्ति	अमित०	२.४८
तत्राद्यो म्रियमाणस्य	,,	१२.१२१
तत्रानन्तसुखंसारं	प्रश्नो०	२३.१४६
तत्रानुभूय सत्सौख्यं	सं० भाव०	१७३
तत्रापि च परिमाणं	पुरुषा०	१३९
तत्रापि छेदनं शस्त्रैः	धर्मोप०	४.१६
तत्रापि निवसेद् धीमान्	लाटी०	५.४६
तत्रापि पूर्ववन्मन्त्र	महापु०	३८.७८
तत्रापि नोदतः सिद्धाः	धर्म सं०	७.१२९
तत्रापूर्वं जिनेन्द्राणां	धर्मो प०	४.२०२
तत्राऽसौ भण्यते देवः	,,	१.१०
तत्राप्यन्यतमे गेहे	लाटी०	६.६७
तत्राप्यस्ति विशेषोऽयं	,,	२.१२७
तत्रात्यल्पीकरणं	,,	१.११०
तत्राप्युक्तो विधिः पूर्वः	महापु०	३८.८१
तत्रायं जीवसंज्ञो यः	लाटी०	२.१००
तत्रायुस्तेन बुभुजे	व्रतो०	५३७
तत्रारोप्य परं कृत्स्नं	महापु०	३८.१७५
तत्रार्चनाविधौ चक्रत्रयं	,,	३८.७१
तत्रार्धरात्रके पूजां	लाटी०	५.१८६
तत्रार्हतीं त्रिधा भिन्नां	महापु०	३९.११५
तत्रालसो जनः कश्चित्	लाटी०	१.५
तत्रावतारसंज्ञा स्यादाद्या	महापु०	३९.७
तत्रावश्यं त्रसाः सूक्ष्माः	लाटी०	१.३६
तत्रावश्यं विशुद्धयंश	लाटी०	३.२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्रावान्तररूपस्य	,,	१.१४८
तत्रासत्यवचस्त्याग	,,	५.८
तत्राऽऽसीनो विना निद्रां	पुरुशा०	६.१०७
तत्राहिंसा कुतो यत्र	यशस्ति०	.३१६
तत्रेन्द्राः पूजयन्त्येनं	महापु०	३८.२३०
तत्रेर्यादाननिक्षेपभावनाः	लाटी०	४.२०४
तत्रेष्टो गात्रिका-बन्धो	महापु०	३८.८४
तत्रेहलोकतो भीतिः	लाटी०	३.३०
तत्रैकस्मिन् शरीरेऽपि	,,	४.९४
तत्रैव तस्करो दुष्टो	प्रश्नो०	१४.४४
तत्रैलकः स गृह्णाति वस्त्र	लाटी०	६.५६
तत्रैव निवसेद् रात्रौ	,,	५.१९९
तत्रैव वासरे जातः	अमित०	४.१६
तत्रैव सन्नगर्यां च	प्रश्नो०	१०.४४
तत्रैव सागार-सुधर्ममार्ग	भव्यध०	१.५४
तत्रैवामर्द्दके रम्ये	,,	१.१५
तत्रोत्तमं तपस्वी	अमित०	१०.४
तत्रोत्सर्गो नृपर्याय	लाटी०	५.८९
तत्रादेशो यथानाम	,,	२.५६
तत्रोपनयन-निष्क्रान्ति	महापु०	४०.१३५
तत्रोल्लेखः तपोनाशे	लाटी०	२.३७
तत्रोल्लेखोऽस्ति विख्यातः	,,	४.२३
तपः आकर्षणं मन्त्रं	प्रश्नो०	१९.४७
तपः कर्म महारण्यदहने	,,	१९.४८
तपः करोति च	,,	२०.१११
तपः करोतु चारित्रं	धर्मं०	७.१४०
तपः कामदुधाप्युक्ता	प्रश्नो०	१९.४६
तपः कुर्वित्थमित्थं च	पुरुशा०	६.६३
तपः कृत्वा महाघोरं	प्रश्नो०	७.१४
तपत्येव यथा नीरं	,,	२३.७४
तपः प्रभृतिकृत्येन	पुरुशा०	३.६६
तपः शीलव्रतैर्युक्तः	गुणभू०	३.४२
तपः श्रुतं च जातिश्च	महापु०	३८.४३
तपः श्रुतविहीनोऽपि	यशस्ति०	६७२
तपः श्रुताभ्यामेवातो	महापु०	३८.४७
तपः श्रुतोपयोगीनि	सागार०	२.६९
तपः समितिचारित्रगुप्ति	प्रश्नो०	२.३५
तपः समीहितस्यैव	,,	१९.४५
तपः सिंहो भवेद्दक्षो	,,	१९.५०
तपः सुदुःसहं तन्वन्	श्रा०सा० उमा०	१ २३० ३८
तपःस्वाध्यायवृद्ध्यादेः	हरिवं०	५८.७४
तपांसि रौद्राण्यनिशं	अमित०	१५.९६
तपो-गुणादि-वृद्धानां	गुणभू०	१.१४१
तपोगुणाधिके पुंसि	यशस्ति०	३२१
तपोदानार्चनाहीनं	यशस्ति०	७६२
तपोदानार्हदर्चादि	पुरुशा०	३.६५
तपो द्वादधा ख्यातं	धर्मसं०	६.१६४
तपो द्वादशधा द्वेधा	लाटी०	२.१७२
तपो द्वादशभेदं च	उमा०	२२३
तपो द्वादश भेदेन	व्रतो०	३७६
तपो धनं गृहायातं	अमित०	९.२७
तपोधन-समीपे यद्	धर्मसं०	२.६२
तपोधनानां तपसा सदृक्ष	व्रतो०	५२
तपोधनानां दैवाद्वा	लाटी०	६.८४
तपो धनं व्रतं दानं	प्रश्नो०	१२.७८
तपोध्वंसविधौ मृत्यु	उमा० श्रा०सा०	४५१ ३.३५०
तपोऽनशनकं चावमोदर्यं	उमा०	२२०
तपोनिष्ठः कनिष्ठोऽपि	गुणभू०	३.१४१
तपोऽन्तरानन्तरभेदभिन्ने	अमित० ,,	१३.८२ १५.९८
तप्तं चारु तपो जयश्च	श्रा०सा०	१.१८८
तप्तं यथाग्निना हेमं	प्रश्नो०	३९.५७
तपोभिमानसंयुक्तो	प्रश्नो०	३.८४
तपोभिरुग्रैः सति संवरे	अमित०	१४५९
तपोभिर्दुष्करै रोगैः	,,	१३.६५
तपो मुक्तिपुरीं गन्तुं	प्रश्नो०	१९.४४
तपोऽप्यमनुपानत्क	महापु०	२९.१९३
तपो यो न विधत्ते ना	प्रश्नो०	१९६२
तपोऽलङ्कारव्यक्तो यो	,,	१९.६१
तपोऽवगाहनादस्य	महापु०	३९.१८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तपो विना कथं पापं	धर्मसं०	२.१२५
तपो वज्रं जिनैरुक्तं	प्रश्नो०	१३.४९
तपोविधानैर्बहुजन्म	अमि०	०५.१००
तपो विना पुमान् ज्ञेयः	प्रश्नो०	१९.६३
तपो वृत्तादि-संयुक्तो	,,	२०.११४
तपो व्रतं यशो विद्या	अमित०	१२.६८
तपसः प्रत्यवस्यन्तं	यशस्ति०	१८६
तपसा दुःकरेणापि	श्रा०सा०	१.६११
तपसाऽलङ्कृतो धीमान्	प्रश्नो०	१९.५१
तपसा संभवो दक्षैर्मंदो	,,	११.२३
तपसा संयमेनैव	भव्यध०	१.६
तपस्तीव्रं जिनेन्द्राणां	यशस्ति०	१६२
तप्तस्य तपसः सम्यक्	कुन्द०	१२.४
तपस्यन्नपि मिथ्यादृक्	धर्मसं०	६.२२०
तपस्विनां यस्तनुमस्तसंस्कृतिं	अमित०	३.७५
तपोहीनो भवेद् रोगी	प्रश्नो०	१९.६०
तमवनिपतिसम्पत्सेवये	गुणभू०	१.७०
तमाचार्यं नमस्कृत्य	प्रश्नो०	१०.१२
तमाल-श्यामलागर्ज्ञं	श्रा०सा०	१.३१
तमेनं धर्मसाद्भूत	महापु०	३९.१०२
तमोरिपुर्जगच्चक्षुः	पुरुशा०	५.७२
तयाऽऽगस्त्य प्रदत्तानि	प्रश्नो०	१३.९२
तया च जलमध्येऽपि	,,	१२.१७७
तया तदा परीक्षार्थं	,,	२१.६०
तया दत्ता पुनः सिंहनृपाय	,,	६.२५
तया निर्घाटितो दूराद्	प्रश्नो०	२१.१७७
तया नीतो विनीतोऽसौ	श्रा०सा०	१.२२६
तया पथ्यं कृतं तस्य	प्रश्नो०	७.५०
तया सा प्रतिपन्नाऽपि	,,	२१.३२
तयैकदा मुनिः पृष्ठः	धर्मसं०	६.११७
तयोक्तं देवि पापात्मा	प्रश्नो०	१५.१२२
तयोक्तं यत्र ते सन्ति	,,	१५.८२
तयोक्तं यदि मे नाथ	,,	८.६६
तयोः पुत्रः सुवीराख्यः	,,	८.४
तयोः पुत्री समुत्पन्ना	,,	६.६
तयोः पुत्रोऽभवल्लुब्धदत्तो	,,	१६.९०
तयोः पुत्रौ समुत्पन्नौ	,,	२१.१७
तयोर्यत्क्रियते मानं	धर्मसं०	४.१८
तयोः समागमे हृष्टो	श्रा० सा०	१.२८९
तरामि भववाराशि	धर्मसं०	२.१०८
तरुदलमिव परिपक्वं	यशस्ति०	८५९
तरूणां मोटनं भूमैः	श्रा०सा०	३.२६९
	उमा०	४०५
तर्पणं ये प्रकुर्वन्ति	प्रश्नो०	३.११८
तर्जनी-मध्यमारन्ध्रं	कुन्द०	५.७९
तर्जन्यादिनखैर्भिन्नौ	कुन्द०	५.८५
तर्जन्यादौ द्वित्रिचतुः	कुन्द०	२.५७
तर्षेर्ष्यामर्षहर्षाद्यैः	यशस्ति०	३७४
तले कनिष्ठानां तु षट्	कुन्द०	२.५६
तत्रैव नगरे श्रेष्ठी	प्रश्नो०	२१.१७४
तस्करः सूर्यनामापि	,,	८.९
तस्करादि विधानार्थं	लाटी०	१.१५४
तत्सर्वं द्रव्यलोभाय	प्रश्नो०	१७.५२
तत्स्वामिनमतापृच्छन्न	लाटी०	५.४२
तस्माच्च बहवो जीवा	व्रतो०	४०६
तस्माच्छीलवती स्वं च	प्रश्नो०	१६.७२
तस्माच्छुद्धादयः सर्वे	लाटी०	२.६१
तस्मात्त्यक्त्वा कुदानं	—	२०.१६५
तस्मात्त्वं कुरु भो मित्र	प्रश्नो०	१७.३५
तस्मात्त्वं मा वदासत्यं	लाटी०	४.१०९
तस्माद् गुडोदकाद्युत्थं	धर्मसं०	२.३०
तस्मादजायत नयादिव	अमित० प्रश०	६
तस्माद् ज्ञानं महादानं	प्रश्नो०	२०.६५
तस्मादणुव्रती पञ्च	धर्मसं०	६.२
तस्मादनुमतोच्छिष्ट	सं० भाव०	७
तस्मात्पूर्वं गृहस्थैश्च	प्रश्नो०	२०.२२१
तस्मात् प्रमत्तयोगे	पुरु० शा०	४८
तस्मात्संयम-वृद्ध्यर्थं	लाटी०	१.५४
तस्मात्सद्दर्शनं सारं	प्रश्नो०	२.३
तस्मात्सद्-व्रतरक्षार्थं	लाटी०	१.२६
तस्मात्संतोषतो नित्यं	धर्मोप०	४.३६
तस्मात्सम्यक्त्व-सज्ज्ञान	गुणभू०	२.१४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन	पद्मध०	१४.११
	धर्मोप०	१.५२
तस्मात्स्वशक्तितो दानं	पूज्य०	६९
तस्मादत्रेत्य जायन्ते	,,	५७
तस्मादयं गुणैर्यत्ना	महापु०	४०.२०६
तस्मादात्मोचिताद्	लाटी०	५.८६
तस्मादादाय सद्धर्मं	प्रश्नो०	१७.६१
तस्मादौषधदानेन	,,	२०.६०
तस्माद्दत्तो वराहारो	,,	२०.३९
तस्माद् धनार्थिना लोके	,,	१६.२४
तस्माद् धीरेर्नं कर्त्तव्य	,,	१९.२७
तस्माद्धर्मार्थिना नूनं	लाटी०	१.२७
तस्माद् धर्मे मतिं	वराङ्ग०	१५.२
तस्माद् भव्यैर्न कर्तव्या	प्रश्नो०	५.५८
तस्माद् भव्यैः प्रयत्नेन	धर्मोप०	४.१७६
तस्माद् भोगादि संख्यानं	प्रश्नो०	१७.१३०
तस्माद् यत्प्रासुकं शुद्ध	लाटी०	१.१०६
तस्माद् रसदतीक्ष्णा	महापु०	३८.२७७
तस्मादवध्यतामेष	,,	४०.१९६
तस्माद्वसतिकादानं	प्रश्नो०	२०.७७
तस्मान्न प्रोषधस्त्याज्यः	,,	१९.३८
तस्मान्मनोनिकेतेऽस्मिन्	यशस्ति०	९०३
तस्मान्महाव्रतमेव	प्रश्नो०	१८९
तस्मान्नास्माभिराक्रान्त	महापु०	३८.१९
तस्मान्निर्गत्य संजातः	प्रश्नो०	८.१०
तस्मिन् कालेऽपि गुरुणा	भव्यध०	१.२६
तस्मिन् ध्यानं प्रजायेत	धर्मसं०	६.२१३
तस्मिन्नेव क्षणे भिक्षा	श्रा०सा०	१.६९३
तस्मिन्नेव क्षणे रात्रौ	,,	१.२१७
तस्मिन्नेव दिने धन्ये	,,	१.४१२
तस्मिन्नेव हि प्रस्तावे	प्रश्नो०	१०.१९
तस्मिन्नेवाह्नि प्रोद्याने	,,	८.३२
तस्मिन् पीते समालोक्य	,,	१६.९३
तस्मिन् प्रविष्टस्य	महापु०	४०.१६३
तस्मिन् वटतले विद्यां	श्रा०सा०	१.२२२
तस्मिन् वंशे महाशुद्धे	भव्यध०प्र०	३३
तस्मिन् सति जनैः	धर्मसं०	६.८२
तस्मिन्नष्टदले पद्मे	महापु०	३९.४०
तस्मै चामूढनेत्राय	व्रतो०	३२७
तस्मै निःकाङ्क्षिताङ्गाय	,,	३२५
तस्मै निर्विचकित्सायै	,,	३२६
तस्मै निःशङ्किताङ्गाय	,,	३२४
तस्मै प्रभावनाङ्गाय	,,	३३१
तस्मै वात्सल्यकाङ्गाय	,,	३३०
तस्मै सत्पुण्यसम्भार	श्रा०सा०	१.२०१
तस्य कल्पद्रुमो भृत्यः	अमित०	१३.४९
तस्य कालं वदन्त्यन्त	यशस्ति०	५९८
तस्य चापि गृह-ग्राम	धर्मोप०	४.११०
तस्य पञ्च व्यतीचाराः	धर्मसं०	४.५९
तस्य पुत्रो जयो नाम	प्रश्नो०	१६.५७
तस्य प्रपद्यते पश्चान्	अमित०	२.४३
तस्य प्रसादेन महापुराणं	मध्यध०	५.५
तस्य भेदद्वयं प्राहुः	धर्मोप०	४.२४४
तस्य राज्ये शुभे सिंह	प्रश्नो०	२१.१६
तस्य श्रियं च सौन्दर्यं	धर्मसं०	६.१०७
तस्य संख्यां प्रवक्ष्यामि	प्रश्नो०	१.२८
तस्य सत्यं परिज्ञाय	,,	१३.६५
तस्य सप्ततलप्रासादो	,,	८.६
तस्य सामयिकं सारं	,,	१८.३१
तस्याः कथा जनैर्ज्ञेया	,,	१५.१२९
तस्याः कथा परिज्ञेया	,,	६.४३
तस्याग्रे कथितो धर्मः	,,	२१.१४१
तस्या नरके ब्रूडन	व्रतो०	१९
तस्यानुयोगाश्चत्वारो	उमा०	२५३
तस्यातपवशाद्देहे	श्रा०सा०	१.६३०
तस्यादेशात्समागत्य	,,	१.७२८
तस्यापि सप्तमे भागे	कुन्द०	१.१५२
तस्या बन्धनताडन	व्रतो०	२१
तस्याभावो निवृत्तिःस्याद्	लाटी०	३.२५१
तस्यामसत्यां मूढात्मा	महापु०	४०.१७९
तस्यामिषं सुसस्कार्यं	प्रश्नो०	१२.१४८
तस्या रूपवती नाम	,,	२१.५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्या वाचं समाकर्ण्य	प्रश्नो०	१५.११६
तस्याविधिः समाख्यानः	धर्मोप०	५.२
तस्याश्छत्रत्रये लग्ना	प्रश्नो०	८.७
तस्यास्तु भेदसङ्ख्यानं	महापु०	३९.६
तस्याः स्पृष्टं जलाद्यं नो	धर्मसं०	६.२६७
तस्येष्टमुरुलिङ्गं च	महापु०	३८.१११
तस्यैव शमने धीरैः	प्रश्नो०	२३.८९
ताडनं पीडनं स्तेयं	अमित०	९.४१
तात तातेति जल्पन्ती	श्रा०सा०	१.२५५
ताताद्य यावदस्माभिः	सागार०	७.२५
तात्पर्यं सर्वतोऽनित्ये	लाटी०	३.३५
तादृशं यच्छतां नास्ति	अमित०	९.६९
तादृशं सम्पदं प्राप्य	श्रा०सा०	१.६२३
तान् प्रजानुग्रहेनित्यं	महापु०	३८.२५७
तानि कर्माणि नश्यन्ति	व्रतो०	३९७
तानेवोत्तमसत्पात्रान्	प्रश्नो०	२०.१३
तापसस्य कथां ज्ञात्वा	,,	१४.८४
तापापहान् श्रीजिनचन्द्रपादा	धर्मसं०	२.१७८
तापेऽपि सुखितः शीती	अमित०	१२.५१
ताभ्या प्रकारितं देवकुलं	प्रश्नो०	२१.१३३
ताभ्यामागत्य शीघ्रेण	,,	५.१७
ताभ्यां सरागवागादि	लाटी०	५.७६
ताम्बूलगन्धमाल्य	अमित०	६.८९
ताम्बूल-गन्ध-लेपन	,,	६.९३
ताम्बूल-तुन्दिलस्फार	श्रा० सा०	१.४१४
ताम्रलिप्तनगरीं स	प्रश्नो०	८.११
तार्णपूलमहापुञ्जे	धर्मसं०	७.१८१
तारालितरलस्थूल	महापु०	३८.२४४
तालत्रिभागमध्याङ्घ्रि	यशस्ति०	७०२
तावज्जागरिभिर्दक्षैः	श्रा० सा०	१.२२१
तावत्तथा कृतो घोर	प्रश्नो०	१६.७४
तावदञ्जनचौरोङ्गे	रत्नक०	१९
तावदागत्य विद्याभिः	प्रश्नो०	१६.५९
तावत्तत्त्वं कृतो यावद्	कुन्द०	११.७
तावदाज्ञां जिनेन्द्रस्य	धर्मसं०	२.१७
तावत्प्रातः समुत्थाश	सं० भाव०	२८
ताः शासनाधिरक्षार्थं	यशस्ति०	६६६
ताश्च क्रियास्त्रिधाम्नाताः	महापु०	३८.५०
तासां मध्ये प्रवक्ष्यामि	प्रश्नो०	१२.३
तासां संस्पर्शनं कुर्याः	,,	१५.९३
तास्ताः धर्मकथास्तथ्याः	श्रा० सा०	१.३४९
तास्तु कर्मन्वया ज्ञेया	महापु०	३८.६६
तां निरीक्ष्य लघुर्भिक्षु	श्रा० सा०	१.६९१
तां समाकर्ण्य देवाहं	प्रश्नो०	१६.७९
तांस्तानवसरे तत्र	लाटी०	१.११२
तिथिपर्व-हर्षशोकाः	कुन्द०	३.१४
तिरस्कार-मात्सर्य	अमित०	३.४२
तिरश्चक्रे चुरादोषं	पुरु० शा०	८.८७
तिरश्चां चतुरो लक्षाः	भव्यध०	३.२४३
तिरश्ची तेन पापेन	धर्मसं०	६.२७५
तिरश्ची मानुषी देवी	{ अमित०	१२.७७
	{ पुरु० शा०	४.९३
तिरीटं स्फुट-रत्नांशु	महापु०	३८.२४२
तिर्यक्क्लेशवणिज्या	रत्नक०	७६
तिर्यक्त्वेऽपि नरायन्ते	धर्मसं०	१.६३
तिर्यग्देवासुरस्त्रीश्च	कुन्द०	१०.२१
तिर्यग्दिक्षु सुमर्यादां	प्रश्नो०	१७.१९
तिर्यग्द्वीपेष्वसंख्येयेषु	,,	२०.११८
तिर्यग्मनुजसुमनसां	श्रा० सा०	१.१६४
तिर्यग्योनिभवाः शेषाः	अमित०	३.१६
तिर्यग्हस्त्यश्वबन्धादौ	प्रश्नो०	१७.२८
तिर्यङ्मानवदेवानां	अमित०	२.६०
तिर्यङ्मानुषदेवा	,,	१०.८
तिर्यङ्नरामराणां च	उमा०	३२
तिर्यङ्नरामराणां स्यात्	पुरु० शा०	३.५२
तिर्यञ्चस्तत्र पञ्चाक्षाः	लाटी०	४.१००
तिर्यञ्चोऽपि यदासाद्य	पुरु० शा०	५.२८
तिलकं द्रष्टुमादर्शो	कुन्द०	१.८३
तिलकाष्ठपयःपुष्पे	,,	११.८८
तिलकैस्तु विना पूजा	उमा०	१२०
तिल-तण्डुल-तोयं च	रत्नमा०	६२
तिलधेनुं घृतधेनुं	अमित०	९.५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिलनाल्यां तिला यद्वत्	उमा०	३७३
तिलपिण्डं जले मूढा	प्रश्नो०	३.११७
तिलमात्रसमे कन्दे	,,	१७.९८
तिलान्नीत्वा न दातव्या	,,	१७.४४
तिष्ठति शूकरो यत्र	प्रश्नो०	२१.१३९
तिष्ठ तिष्ठेति सम्भाष्य	श्रा० सा०	१.३१८
तिष्ठन्ति निःस्पृहाश्चैते	प्रश्नो०	९.१२
तिष्ठन्ति व्रत-नियमाः	अमित०	६.१५
तिष्ठन्तु दूरतो भूरि	श्रा० सा०	१,१९६
तिष्ठेच्चैत्यालये सङ्घे	लाटी०	६.५९
तिष्ठेत्स्वबन्धुवर्गाणां	,,	६.३४
तिष्ठेद्देवालये यद्वा	,,	६.५०
तिष्ठेन्निश्चलमेकान्ते	पुरु० शा०	६.१०६
तिसृभिः शान्तधाराभि	सं० भाव०	५१
तीर्णो जन्माम्बुधिस्तैयः	धर्मसं०	७.४४
तीर्णो भवार्णवस्तैर्ये	सागार०	८.३२
तीर्थं धर्ममयं यस्तु	प्रश्नो०	३.१५
तीर्थंकृच्चक्रवर्त्यादि	श्रा० सा०	१.७५८
	उमा०	९०
तीर्थकृच्चक्रिदेवानां	अमित०	११.११
तीर्थकृद्-गणभृच्छेष	महापु०	४०.८३
तीर्थकृद्भिरियं सृष्टा	,,	४०.१९०
तीर्थचक्रार्धचक्रेश	गुणभू०	२.७
तीर्थनाथा ध्रुवं मुक्तिनाथा	प्रश्नो०	१९.५५
तीर्थपूजोद्भवैः पुण्यै	श्रा० सा०	१.२७५
तीव्रक्रोधादि-मिथ्यात्व	गुणभू०	१.५५
तीव्रदुःखैरतिक्रुद्धैः	सागार०	८.१०४
तीव्राकारा तप्ता या	अमित०	२.९
तीर्थंशे सद्-गुरौ शास्त्रे	प्रश्नो०	११.९९
तीर्थोदकैः मणिसुवर्ण	यशस्ति०	५०२
तुच्छवीर्यो नरो नास्ति	प्रश्नो०	३.४४
तुच्छाभावो न कस्यापि	यशस्ति०	४०
तुण्ड-कण्डूहरं शास्त्रं	,,	२५०
तुरङ्गमलुलायोक्षखराणां	श्रा० सा०	३.२७२
	उमा०	४०८
तुरङ्गान् षण्ढय क्षेत्रं	श्रा० सा०	३.२६५
	उमा०	४०१
तुरीयं वर्जन्नित्यं	यशस्ति०	३६७
तुर्यमंशं परो दत्ते	पुरु० शा०	३.११८
तुर्यः षष्ठो निजायस्य	,,	४.१६९
तुर्याणुव्रते तस्यान्तर्भावः	लाटी०	१.१७७
तुर्याद् गुणेषु सर्वेषु	पुरु० शा०	३.५०
तुर्यादारभ्य भव्यात्म	श्रा० सा०	१.१५७
	उमा०	३६
तुर्यादारभ्य विज्ञेय	अमित०	२.५७
तुलाप्रस्थादिमानेन	प्रश्नो०	१४.३३
तुलासङ्क्रान्तिषट्कं चेत्	कुन्द०	८.४९
तुल्यप्रतापोद्यमसाहसानां	अमित०	७.५८
तुल्येऽपि हस्तपादादौ	श्रा० सा०	१.१७
तुषखण्डनतः क्वापि	श्रा० सा०	१.७४८
तुष्टिर्दन्तवतो यस्य	अमित०	९.५
तृणमात्रमपि द्रव्यं	,,	६.५०
तृणहेमादिसंतुल्याः	प्रश्नो०	२०.९
तृणानत्ति यथा गौश्च	,,	३०.१४५
तृणपूलवृहत्पुञ्जे	सागार०	८.१०१
तृणांशः पतितश्चाक्षिण	धर्मसं०	२.४७
तृणेन स्पर्शमात्रेण	प्रश्नो०	१२.१२४
तृतीये कोपसन्तापौ	कुन्द०	१.३८
तृतीये वासरे कृत्वा	अमित०	१२.१३१
तृतीयेऽह्नि चानन्त	महापु०	४०.१२९
तृष्णाग्निज्वंलत्येतद्	धर्मसं०	६.१९८
तृष्णामूलमनर्थानां	व्रतो०	९८
ते कुर्वन्तु तपांसि	यशस्ति०	४६१
ते चाणुव्रतधारिणोऽपि	देशव्र०	२४
ते चार्पितप्रदानेन	सं० भाव	१३२
ते चैवं प्रविवदन्त्यार्या	धर्मसं०	५.३
ते जायन्ते कलालापं	अमित०	११.७९
ते जीवजन्याः प्रभवन्ति	,,	७.५६
ते तदर्थमजानाना	श्रा० सा०	१.३०२
	उमा०	४३
ते तद्-व्रतप्रभावेन	धर्मसं०	४.३२
ते तुयंरत्ववमन्येत	यशस्ति०	८९
ते तु स्वव्रतसिद्ध्यर्थं	महापु०	३८.१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते देवा देवतास्ता ते	कुन्द०	८.१४२	ते भव्या भुवने पूज्या	धर्मोप०	४.२११
ते धन्या त्रिजगत्पूज्याः	प्रश्नो०	२४.११६	ते भव्याः श्रीजिनेन्द्राणां	,,	४.१३१
ते धन्याः शीलसद्रत्नं	,,	१५.३८	तेभ्यः पलायितुं दस्यु	श्रा०सा०	१.४६२
ते धन्यास्ते कृतार्थश्चि	श्रा० सा०	१.७६१	तेभ्यः पलायितुं भीरु	,,	१.४३३
ते धीराः पण्डिताः शूरास्ते	धर्मोप०	४.४२	तेभ्यः पलायितुं सोऽसमर्थो	प्रश्नो०	८.३९
तेन कृतो महाघोरो	प्रश्नो०	५.१२	तेभ्योऽर्वागपि छद्मस्थ	लाटी०	३.१४३
तेन गजेन समस्ता	व्रतो०	५२६	तेभ्यो विरतिरूपाणि	हरिवं	५८.२०
तेन तद्-गमनाभावे	धर्मसं०	४.३९	तेषां कृतानि चिह्नानि	महापु०	३८.२१
तेन दानेन तद्-दाता	धर्मोप०	४.१८४	तेषां खेदमदस्वेद	अमित०	११.११७
तेन नश्यन्ति कर्माणि	पूज्य०	८५	तेषां तीव्रोदयात्तावद्	लाटी०	३.२०७
तेन निक्षिपितौ शीघ्रं	प्रश्नो०	१२.१७६	तेषां तु यच्छरीराणां	धर्मसं०	६.९२
तेन पुत्रेण किं साध्यं	,,	१२.१५४	तेषां नग्रंन्थ्यपूतानां	रत्नमा०	२३
तेन पृष्टा तदाकालं	धर्मसं०	२.६६	तेषां पादाब्जयुग्मे	धर्मोप० (प्रशस्ति)	५.२०
तेन श्रीमज्जिनेन्द्रेण	धर्मोप०	१.१३	तेषामन्यतमोद्देशो	लाटी०	३.२६८
तेन सप्तगुणाढ्येन	श्रा०सा०	१.३२०	तेषामागमने काले	प्रश्नो०	१४.७१
तेन सम्फलके रूपे	प्रश्नो०	२१.८२	तेषामेकादशस्थान	धर्मोप०	४.२२९
तेन संसार-कान्तारे	,,	२३.१०२	तेषामेवाश्रयं लिङ्ग	लाटी०	३.१८५
तेन सा कलिता यष्टिः	,,	१४.६०	तेषां वचनमाकर्ण्य	प्रश्नो०	१२.१६१
तेनाकाशे समालोक्य	,,	९.४४	तेषां शुद्धिं कुरु त्वं हि	,,	२१.८०
तेनागत्य गुरुं नत्वा	,,	९.१७	तेषां श्रीमज्जिनेन्द्राणां	धर्मोप०	४.२०९
तेनागत्य प्रणम्योक्तं	,,	१३.७२	तेषां सुखप्रमां वक्ति	अमित०	११.११५
तेनात्रैतावता नूनं	लाटी०	३.२०८	तेषां स्यादुचितं लिङ्गं	महापु०	४०.१७१
तेनाधीतं श्रुतं सर्वं	यशस्ति०	७४३	तेष्वव्रता विना सङ्गात्	,,	३८.१२
ते नामस्थापनाद्रव्य	,,	७९१	तेष्वर्हदिज्याशेषांशं	,,	३ .७३
तेनायं भव्य-चित्तादि	गुणभू०	३.१५२	ते सच्चित्तेन निक्षेपः	हरिवं०	५८.६९
तेनैकदा पुलिन्देन	व्रतो०	५२९	ते सच्छूद्रा असच्छूद्रा	धर्मसं०	६.२३२
तेनोक्तं दृष्टिवैकल्यात्	प्रश्नो०	८.४१	ते सम्यग्दर्शनं पश्चाद्	पुरु० शा०	३.१७
तेनोक्तं देव नात्राहं	,,	१३.९९	ते सर्वे क्लेशनिर्मुक्ता	अमित०	११.११४
तेनोक्तं देहि मे पादत्रयं	,,	९.५७	तेहि साधारणाःसर्वक्रियास्तु	महापु०	४०.२१६
तेनोक्तं पापभीताय	,,	७.२३	तैरश्चमामरं मार्त्यं	यशस्ति०	५८५
तेनोक्तं भगवन्नद्य	,,	९.५४	तैराश्रिता यथा प्रोक्ताः	लाटी०	४.९३
तेनोक्तं भगवन् सोऽद्य	,,	९.४८	तैरुक्तं नास्ति चास्माकं	प्रश्नो०	१५.८३
तेनोक्तं यदि मे राजा	,,	१०.५३	तैरुक्तमद्य घस्रे त्वं	,,	१२.१६४
तेनोक्तं शृणु भो विप्र	,,	१४.४९	तैर्मुक्तो चिन्तयेद् ध्यानं	भव्यध०	५.२८२
तेपि मांसाशिनो ज्ञेया	उमा०	३०७	तैलं सलिलमाज्यं वा	श्रा० सा०	३.७७
				उमा०	३०३
ते बान्धवा महामित्रा	प्रश्नो०	२.५२	तैलस्निग्धे भवे पङ्के	प्रश्नो०	२.३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तैलाक्ती मुक्तकेशश्च	कुन्द०	८.१५४
तैलिक-लुब्धक-खट्टिक	अमित०	६.६३
तैस्तस्य च नयनाग्रे	प्रश्नो०	१४.७९
तैस्तैः स वचनैर्नीत्वा	श्रा० सा०	१.४९५
तैस्तैः स्वैरं दुराचारै	,,	१.३६९
तोतुरोति भविनि सुरारत्तो	अमित०	५.९
तोयमध्ये यथा तैलं	यशस्ति०	६९२
तोयैः कर्मरजःशान्त्यै	सं० भाव०	४८
तोयैः प्रक्षाल्य सच्चूर्णैः	,,	४४
तोषादुक्तं स्वयं राज्ञा	प्रश्नो०	९.३४
तौ तत्रापि महायुद्धं	,,	२१.१४५
तौ मुनी द्वादशाव्दैश्च	,,	८.१५
त्यक्तकर्कशशब्दस्त्री	,,	१८.३३
त्यक्तकामः सुखी भूत्वा	महापु०	३९.१९६
त्यक्तचेलादिसङ्गस्य	,,	३८ १५९
त्यक्तदेहो मुनिस्तत्र	प्रश्नो०	२१.१०८
त्यक्तदोषं महाधर्मं	,,	५.४८
त्यक्तदोषास्तदा जाता	,,	१५.९९
त्यक्त-पञ्चव्यतीपातं	,,	१५.५२
त्यक्त-पुण्यस्य जीवस्य	सं० भाव०	१७१
त्यक्त-प्राणं यथादेहं	प्रश्नो०	११.६६
त्यक्त-रोग-वपुः कान्तं	,,	२०.८५
त्यक्तरोगं हितं दृष्ट्वा	,,	२१.५९
त्यक्त-शीतातपत्राण	महापु०	३९.१८१
त्यक्त-स्नानादिसंस्कारः	,,	३९.१७६
त्यक्तागारस्य तस्यात	,,	३९.७७
त्यक्तागारस्य सद्-दृष्टे	,,	३८.१५७
त्यक्तार्तरौद्रयोगो	अमित०	६.८६
त्यक्ताहाराङ्गसंस्कार	सागार०	७.५
त्यज त्वं धर्मसिद्धयर्थं	प्रश्नो०	१२.६६
त्यजन्ति भोग-तृष्णां ये	,,	१७.१३४
त्यजन्त्यनूकामतमप्यवद्यं	अमित०	१.६९
त्यजेत् क्षीरप्रभूतान्नं	कुन्द०	३.४९
त्यजेत्तौर्यत्रिकासक्तिं	सागार०	३.२०
त्यजेदनन्तकामित्वात्	धर्मोप०	४.९६
त्यजेद् गवादिभिर्वृत्ति	धर्मसं०	६.२१९
त्यजेद् दोषांस्तु तत्रोक्तान्	लाटी०	२.१५९
त्यजेद् भोज्ये तदेवान्य	गुणभू०	३.३१
त्यजेत्सचित्तनिक्षेपा	पुरु० शा०	४,१८०
त्यजेत्सचित्तमित्यादि	,,	६.२५
त्यक्त्वा तक्रं क्रयान्नोरं	प्रश्नो०	२२.३१
त्यक्त्वा देवगतिं सारां	,,	११.९४
त्यक्त्वा देहादिसङ्गोऽयं	प्रश्नो०	१८.१७२
त्यक्त्वा परिग्रहं स्नेहं	गुणभू०	३.५१
त्यक्त्वा भोगाभिलाषं	अमित०	१०.७४
त्यक्त्वा रागादिकं योऽरि	प्रश्नो०	१८.२९
त्यक्त्वा वाग्जाल	,,	१८.३९
त्यक्त्वा शर्मप्रद	अमित०	१०.९९
त्यक्त्वा शुभं महापुण्य	प्रश्ना०	१८.१४९
त्यक्त्वा सर्वानतीचारान्	,,	१४.२५
	प्रश्नो०	१७.७८
	प्रश्नो०	१८.१२
त्यक्त्वाऽस्त्रशस्त्राणि	महापु०	३९.१७५
त्यक्त्वा स्त्री-पुत्र	पुरु० शा०	६.४८
त्यक्त्वा हिंसां च भो धीमन्	प्रश्नो०	१२.१०४
त्यागं पापोपदेशानां	उमा०	३९९
त्यागं सपापयोगानां	श्रा० सा०	३.२६३
त्यागः सर्वाभिलाषस्य	लाटी०	२.८६
त्यागः सावद्ययोगानां	पुरु० शा०	४.१४५
त्यागाय शोणगम्भीरा	कुन्द०	५.४८
त्यागेन हीनस्य	अमित०	१५.९५
त्यागो देह-ममत्वस्य	,,	८.५७
त्याज्य मांसं च मद्यं च	पद्म० पंच०	२३
त्याज्यं वत्स परस्त्रीषु	लाटी०	१.२०९
त्याज्य-वस्तुनि तु प्रोक्तो	धर्मसं०	४.१९
त्याज्यानजस्रं विषयान्	सागार०	२.१
त्याज्याः सचित्तनिक्षेप	,,	५ ५४
त्रयः पञ्चाशदेता हि	महापु०	३८.६३
त्रयी तेजोमयो भानु	श्रा०सा०(उक्तं)	३.१०३
त्रयीमार्गं त्रयीरूपं	यशस्ति०	६५५
त्रयोऽग्नयः प्रणेयाः	महापु०	४०.८२
त्रयोऽन्योऽर्हद्-गणभृद्	,,	३८.७२
त्रयोदशविधं चैकं	लाटी०	३.१६२
त्रयोदशविधं वृत्तं	प्रश्नो०	१८.६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रयो भेदास्तस्य चोक्ता	उमा०	२४
त्रयस्त्रिंशद्-गुणैर्युक्तं	गुणभू०	१.६८
त्रसजीवादिसंव्याप्तं	प्रश्नो०	१२.१८
त्रसस्थावरकायेषु	हरिवं०	५८.२४
त्रसस्थावरभेदेन	यशस्ति०	१०८
त्रसहतिपरिहरणार्थं	रत्नक०	८४
त्रसहिंसा-क्रियात्याग	लाटी०	४.१७४
त्रसहिंसा-क्रियात्यागी	,,	४.१७६
त्रसहिंसा-क्रियात्यागो	,,	४.१७१
त्रसहिंसा क्रियायां वा	,,	४.१९५
त्रसहिंसादिनिर्विण्णो	धर्मसं०	५.८४
त्रसाढ्यं गुडपुष्पं च	प्रश्नो०	१७.५०
त्रसाणां रक्षणं कार्यं	धर्मोप०	४.७
त्रसानां पालनं कार्यं	,,	३.७
त्रसानां भूयसां तेषु	पुरु० शा०	४.२७
त्रसानां रक्षणं स्थूल	धर्मसं०	३.२
त्रस्यन्ति सर्वदा दीनाः	अमित०	१२.९३
त्राताऽत्राता महात्राता	प्रश्नो०	२१.१५८
त्रिकालं क्रियते भव्यैः	उमा०	१८०
त्रिकालं जिननाथान्	प्रश्नो०	२०.२१०
त्रिकाल-गोचरं मूर्तं	गुणभू०	२.३१
त्रिकालयोगमुक्तानां	प्रश्नो०	१.७
त्रिकाल-योगे नियमो	धर्मोप०	४.२४८
त्रिकाल-विषयव्यक्तं	कुन्द०	११.९३
त्रिकालसामायिकमुत्तमस्य	व्रतो०	८
त्रिकोणरेखयः सीर	कुन्द०	५.८२
त्रिकोशं च द्विकोशं च	भव्यध०	३.२३४
त्रिगुणो द्विगुणो वायुः	कुन्द०	१.३४
त्रिगुप्ताय नमो महा	महापु०	४०.४०
त्रिचतुःपञ्चषष्ठादि	लाटी०	५.७७
त्रित्रित्रिचतुःसंख्यै	अमित०	६.१३
त्रिधा दुःप्रणिधानानि	प्रश्नो०	१८.१०२
त्रिधापि याचते किंचिद्	अमित०	९.८
त्रिधाभूतस्य तस्योच्चैः	लाटी०	२.१८
त्रिधाऽविधेयं सनिदान	अमित०	७.४६
त्रिधा वैराग्यसम्पन्नो	धर्मोप०	४.२३८
त्रिधेति विनयोऽध्यक्षः	अमित०	१३.४३
त्रिःपरीत्य जिनं स्तुत्वा	धर्मसं०	६.१०६
त्रिःपृष्ठेनैव तेनेति	श्रा०सा०	१.३५२
त्रिभुवनपतिपूज्यो	प्रश्नो०	२१.५३
त्रिमूढं च मदा अष्टौ	धर्म०	१.३९
त्रिलोकव्यापिनो वर्णाः	अमित०	४.६२
त्रिवर्गसारः सुखरत्नखानिः	,,	१.१३
त्रिवर्गो हि चतुर्वर्गे	पुरु०शा०	३.१४
त्रिवर्णस्य समा ज्ञेयाः	धर्मसं०	६.२३०
त्रिवर्णेषु च जायन्ते	,,	६.२५१
त्रिविधस्यापि पात्रस्य	पुरु०शा०	३.११०
त्रिविधा त्रिविधेन मता	अमित०	६.१९
त्रिविधायापि पात्राय	व्रतसा०	१७
त्रिविधालम्बनशुद्धिः	अमित०	१०.१०
त्रिविधेभ्यः सुपात्रेभ्यो	उमा०	२३४
त्रिशता तनुविष्टोऽष्टा	कुन्द०	५.२२९
त्रिशुद्धया कुरुते योऽत्र	श्रा०सा०	३.२८९
	उमा०	३३६
त्रिशुद्धया गृहीष्व तस्माद्	धर्मसं०	२००
त्रिष्वेतेषु न संस्पर्शो	महापु०	३९.१५०
त्रिस्थानदोषयुक्ताया	सागार०	८.३५
त्रिसंध्यं प्रार्चयेद्यस्तु	उमा०	१५७
त्रुटयन्ति मूर्धजा येषां	कुन्द०	८.१७०
त्रेधाननुगामी क्षेत्र	गुणभू०	२.३२
त्रेधा स्यादृजुर्वाक्काय	,,	२.३०
त्रैकाल्यं त्रिजगत्तत्त्वं	उमा०	२५१
	श्रा०सा०(उक्तं)	२.६
त्रैधस्तेनप्रयोगस्तै	हरिवं०	५८.५७
त्रैलोक्यं जठरे यस्य	यशस्ति०	६४
त्रैलोक्यं नयतो मूल्यं	अमित०	९.८६
त्रैलोक्यक्षोभकं तीर्थंकरत्त्व	प्रश्नो०	१७.१२९
त्र्यहाद्वसन्तशरदोः	कुन्द०	५.१४५
त्र्यूनाः कोटयो नवामीषां	धर्मसं०	६.२९१
त्वचं कन्दं फलं पत्रं	श्रा०सा०	३.६६
त्वत्तोऽधिगन्तुमिच्छामि	,,	१.७६
त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा	महापु०	४०.१२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वं देव जगतां नाथः	प्रश्नो०	२१.१५६
त्वं देव महतां पूज्यो	,,	१६.७७
त्वं देवस्त्रिदशेश्वरार्चितपदः	,,	२१.१६६
त्वं बन्धवधच्छेदादि	,,	१२.१३४
त्वमगाधो गुणाम्भोधिः	श्रा० सा०	१.२००
त्वं मन्दराभिषेकार्हो भव	महापु०	४०.११७
त्वमामुष्यायणः	,,	३९.१०९
त्वं मे प्राणवल्लभो मित्रः	धर्मसं०	२.११०
त्वं सप्त दिनमघोरे	प्रश्नो०	१४.४७
त्वं सर्वदोषरहित	यशस्ति०	४७२
त्वया जातोऽस्ति यः पुत्रो	श्रा०सा०	१.६४२
त्वया द्वादश वर्षाणि	,,	१.५१५
त्वया न्यायधनेनाङ्ग	महापु०	३८.२६९
त्वया सह प्रव्रजिता	भव्यध०	५.१४
त्वयैव दापितं ब्रह्मचर्य	श्रा०सा०	१.२४२
त्वां यद्युपैमि न पुनः	सागार०	४.२६

द

दंशः काकपदाकारो	कुन्द०	८.१५२
दंशकीटपतङ्गादि	प्रश्नो०	२२.७८
दक्षा तुष्टा प्रियालापा	कुन्द०	५.१५८
दक्षैराहारमादेयं	,,	२४.१२
दक्षैर्निशि न चादेयं	,,	२८.८२
दग्धे बीजे यथात्यन्तं	यशस्ति०	६८६
दण्डपाशविडालाश्च	वराङ्ग०	१५.१३
दत्तं गृहाण ते भूमेः	श्रा०सा०	१.६०२
दत्तं नागश्रिया मन्त्र	धर्मसं०	७.१२५
दत्तं येनाभयं दानं	प्रश्नो०	२०.८०
दत्तं सुतादिभिर्यावत्	पुरु०शा०	६.५२
दत्तं प्रलापभ्रम शोकमूर्च्छा	अमित०	१०.६६
दत्तः स्वल्पोऽपि भद्राय	कुन्द०	२.४२
दत्ता या कन्यका यस्मै	कुन्द०	५.१५६
दत्ते दानं न पात्राय	{ प्रश्नो०	२०.१०३
	,,	२०.१०६
दत्ते दूरेऽपि यो गत्वा	अमित०	९.३३
दत्ते योऽस्यै गृही भुक्ति	धर्मसं०	२.११४
दत्ते शुश्रूषयित्वा यो	अमित०	११.५७
दत्ते स्वर्नगरीश्रियं सुरगणा	श्रा०सा०	१.११४
दत्तो चन्द्रोपकं यो ना	प्रश्नो०	२०.१२५
दत्तो देवगिरौ पूर्वो	श्रा०सा०	१.६०४
दत्तोऽनु मुनिना चैकपादो	प्रश्नो०	९.६०
दत्वा किमिच्छकं दानं	महापु०	३८.३१
दत्वा चान्यानि साराणि	प्रश्नो०	२०.१७५
दत्वा दानं च सम्प्राप्य	,,	२१.४९
दत्वा दानं सुपात्राय	कुन्द०	३.४०
दन्तधावन-शुद्धास्यो	यशस्ति०	४३९
ददती जनता नन्दं	अमित०	११.५३
ददात्यनुमतिं नैव	सं०भाव०	१०२
ददानः प्रासुकं द्रव्यं	अमित०	११.५४
ददानोऽशन-पानं यत्	,,	११.२३
दद्यात्कन्याधरादीनि	धर्मसं०	६.२०८
दद्याच्चित्तं स सद्ध्याने	प्रश्नो०	५.१३
दद्यादन्नं न पात्राय	पुरु०शा०	४.१७६
दद्याद् धर्मोपदेशं च	लाटी०	६.६२
दद्यात्सौख्यामृतं वाच	कुन्द०	८.९४
दधाति ब्रह्मचर्यं यः	पुरु०शा०	३.३२
दधितक्ररसादीनां	लाटी०	१.५७
दधितक्रादिकं सर्वं	प्रश्नो०	१७.१०९
दधिभावगतं क्षीरं	यशस्ति०	६८३
दधिसर्पिपयःप्रायमपि	श्रा०सा०	३.३३९
दधिसर्पिपयो भक्ष्यप्रायं	यशस्ति०	७५०
दध्नः सर्पिरिवात्मायं	,,	६९३
दन्तकाण्ठग्रहो नास्य	महापु०	३८.११५
दन्तकाष्ठं तदा कार्यं	भव्यध०	६.३४०
दन्तखण्डं दृषद्-खण्डं	उमा०	३२२
दन्तदार्ढ्याय तर्जन्या	कुन्द०	१.६०
दन्तभङ्गं दृषत्-खण्डं	श्रा०सा०	३.१००
दन्तभग्नो यथा नागो	प्रश्नो०	२३.२९
दन्तहीनो गजो व्याघ्रो	,,	१८.९२
दन्तहीनो यथा हस्ती	,,	२४.१०२
दन्तान्मौनपरस्तेन	कुन्द०	१.७३
दम्भः संरम्भिर्ग्राह्यो	कुन्द०	८.४०३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दयादानं दमो देव	कुन्द०	३.५
दयां त्यक्त्वापि यः कुर्याद्	,,	१२.७६
दयादत्तादिभिर्नूनं	रत्नमा०	३०
दयादानेन पापस्य	प्रश्नो०	२०.९४
दयादिलक्षणो धर्मः	धर्मसं०	७.९९
दयामृतेन व्रतमेकमप्यलं	श्रा०सा०	३.१४५
दयायुक्तगृहस्थस्य	प्रश्नो०	१२.११६
दयार्थं दीयते सर्वं	धर्मोप०	४.१८५
दयार्द्रचित्तो जिनवाक्यवेदी	अमित०	७.७१
दयालुः सर्वजीवानां	,,	९.१३
दयाहीनेन किं तेन	प्रश्नो०	१२.८१
दर्दुरः कृकलासश्च	कुन्द०	१.१८०
दर्पणेन समा ज्ञेया	,,	३.६५
दर्पणे सलिले वापि	कुन्द०	८.१७९
दर्पेण वा प्रमादाद्वा	यशस्ति०	३३४
दर्भास्तरणं सम्बन्धः	महापु०	४०.६
दशताम्रपलावर्तं	कुन्द०	३.६२
दशदिक्ष्वपि संख्यानं	धर्मसं०	४.३
दर्शनं चक्षुराग्रेयं	भव्यध०	२.१५५
दर्शन-ज्ञान-चारित्र	रत्नक०	३१
दर्शनं नाङ्गहीनं स्यादलं	धर्मसं०	१.६०
दर्शनं मूलमित्याहुः	प्रश्नो०	२.२
दर्शनं साङ्गमुद्दिष्टं	उमा०	३४
दर्शन-ज्ञान-चारित्र	पद्म०पंच०	३०
	श्रा० सा०	१.४४३
	,,	३.३६०
	उमा०	४६१
दर्शन-ज्ञान-चारित्र	अमित०	१३.७
	,,	८.१०
	,,	५.६४
	श्रा० सा०	१.५२५
दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्	धर्मोप०	१.२३
दर्शन-ज्ञान-चारित्रत्रयाद्	उमा०	५८
दर्शन-ज्ञान-चारित्रत्रिकं	धर्मसं०	७.११९
दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः	उमा०	४६६
	गुणभू०	३.८३
दर्शनप्रतिमा चास्य	लाटी०	२.१३५
दर्शनप्रतिमा नास्य	,,	२.१३१
दर्शनप्रतिमाचारं	भव्यध०	१.१०५
दर्शनप्रतिमामित्थमारुह्य	सागार०	३.३२
दर्शनप्रतिमां यस्तु	लाटी०	२.१४५
दर्शनबन्धोर्न परो बन्धु	अमित०	२.८५
दर्शन-बोध-चरित्र-तपोभिः	,,	४५२
दर्शन-बोध-चरित्रत्रितयं	,,	१०.२०
दर्शनमात्मविनिश्चितिः	लाटी० (उक्तं)	२.१२
	पुरुषा०	२१६
दर्शनाख्यं प्रत्याख्याय	प्रश्नो०	१२.६१
दर्शनाच्चरणाद्वापि	रत्नक०	१६
दर्शनान्तद्यथा खाद्रं	लाटी०	४.२४१
दर्शनाद्देहदोषस्य	यशस्ति०	१६५
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव	लाटी०	४.२४०
दर्शनिकः प्रकुर्वीत	सं० भाव०	११
दर्शनिकोऽथ व्रतिकः	सागार०	३०२
दर्शनेन विना ज्ञानमज्ञानं	प्रश्नो०	११.४४
दर्शनेन विना पुंसां	,,	२.७३
दर्शनेन समं मूलगुणाष्टकं	धर्मसं०	१.२७
दर्शनेन समं यस्तु	प्रश्नो०	१२.४
दर्शनेन समं योऽत्र	,,	१२.६०
दर्शन स्पर्शसंकल्प	यशस्ति०	३०८
दर्शनं स्पर्शनं शब्द	पुरु० शा०	४.१०२
दर्शयित्वा कुशास्त्रं भो	प्रश्नो०	१२.९९
दलितं शस्त्रसंच्छिन्नं	पुरु० शा०	६.२३
दलीयः कुरुते स्थानं	अमित०	१.२७
दशधा ग्रन्थमुत्सृज्य	सं० भाव०	१०१
दशधा धर्मास्त्रसंभिन्न	धर्मसं०	५.५९
दशन्ति तं न नागाद्या	रत्नमा०	४३
दशनाकारधारित्वं	कुन्द०	८.१७४
दशलक्षमिता प्रोक्ता	भव्यध०	३.२४२
दष्टस्य देहे शीताम्बु	कुन्द०	८.१८३
दष्टस्य नाम प्रथमं	कुन्द०	८.१५९
दशसप्तदशं प्राहुः	,,	३.२०९
दशसहस्रवर्षायुः	,,	३.२०४
दशसागर-पर्यन्त	प्रश्नो०	७.५७
दशाधिकारास्तस्योक्ताः	महापु०	४०.१७४
दशाधिकारिवास्तूनि	,,	४०.१७७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशास्यः सीताहरणाद्	प्रश्नो०	१२.५२
दशास्योऽङ्गनादोषाद्	धर्मसं०	२.१६२
दस्योरन्यस्य काये च	कुन्द०	११.७८
दाता गुरुश्च शिष्याहि	उमा०	२३२
दाता दोषमजानानो	अमित०	९.७०
दातानुराग-संपन्नः	यशस्ति०	७३६
दाता पात्रं स्थिरं कुर्वन्	धर्मसं०	४.१०१
दाता शान्तो विशुद्धात्मा	सं० भाव०	७१
दातुं दक्षः सुरतरुरिव	अमित०	५.७४
दातोन्नततले पाणौ	कुन्द०	५.३५
दातृपात्र-विधिद्रव्य	यशस्ति०	७३५
दाता येन सती कन्या	धर्मसं०	६.२०४
दानं च कुत्सिते पात्रे	सं० भाव०	१५२
दानं चतुर्विधं देयं	लाटी०	२.१६०
दानं चतुर्विधं पात्र	धर्मसं०	६.१७२
दानं त्रिविधपात्राय	अमित०	११.१०१
दानं दत्त्वा मुनीन्द्राय	प्रश्नो०	८.४१
दानं पूजा जिनैः शील	अमित०	९.१
दानं भोगो विनाशश्च	धर्मसं०	६.१६०
दानं यतिभ्यो ददता	अमित०	१०.६१
दानं ये न प्रयच्छन्ति	पद्म० पंच०	३२
दानं लाभो वीर्यभोगोपभोगा	अमित०	३.५३
दानं लोकान् वशीकर्त्तुं	उमा०	२२५
दानं वितरता दात्रा	अमित०	९.२
दानं वैयावृत्यं	रत्नक०	१११
दानं व्रत-समूहं च	भव्यध०	१.१९
दानं सत्यमना परोपकरणं	व्रतो०	४३७
दानं हि वामृहग्वोक्ष्यं	सं० भाव०	१३५
दानकाले महापुण्यं	प्रश्नो०	२१.३६
दान-ज्ञान-चरित्र-संयम	यशस्ति०	४७७
दान-ध्यानाध्ययन-स्नान	श्रा० सा०	१.९८
दानपूजातपःशीलफलं	धर्मोप०	५.४
दानमन्यद् भवेन्मा	यशस्ति०	७४२
दानमाहारदानं स्यात्	उमा०	२२६
दानमाहार भैषज्य	सं० भाव०	१२१
दान-शील-तपो-भावैः	कुन्द०	१०.१३
दानशीलोपवासार्चा	सागार०	७.५१
दानसंज्ञं महाकर्म	उमा०	२२४
दानस्थाने कृतं सूत्रं	भव्यध०	६.३४२
दानादिपल्लवोपेतं	प्रश्नो०	३.१०७
दानानीमानि यच्छन्ति	अमित०	११.६१
दानायोपार्ज्यते वित्तं	धर्मसं०	६.१५९
दाने दत्ते पुत्रैर्मुच्यन्ते	अमित०	९.६३
दानेन तिष्ठन्ति यशांसि	धर्मोप०(उक्तं)	४ २५
दानेन पुण्यमाप्नोति	उमा०	२४१
दानेनैव गृहस्थता गुणवती	देशव्र०	१४
दानेनैव सुकेताख्यो	प्रश्नो०	२१.४४
दापयित्वा त्वमानन्दभेरीं	,,	२१.१८२
दापितं क्रीडया पुत्रि	,,	६.१०
दायादाज्जीवतो राज	सागार०	३.२१
दाराः पापभराः स्वबान्ध	श्रा० सा०	१.३३५
दारिद्रोपहतं मित्रं	कुन्द०	८.३९५
दारेषु परकीयेषु	हरिवं०	५८.२७
दार्शनिकश्च व्रतिकः	गुणभू०	३.२
दार्शनिक-व्रतिकावपि	चारित्रसा०	४
दावाग्निः शुष्कमार्द्रं वा	पूज्य०	९७
दासकर्मरता दासी	लाटी०	५.१०५
दासीदासद्विपम्लेच्छ	अमित०	११.८७
दासीदासनिवासधान्य	श्रा० सा०	३.१३४
दासीदासरथान्येषा	पूज्य०	२५
दासीदासभृत्यानां	लाटी०	४.२६९
दास्यप्रेष्यत्वदारिद्र्य	उमा०	३५८
दास्यप्रेष्यत्वदौर्भाग्य	श्रा० सा०	३.१९८
दाहच्छेदकषाऽशुद्धे	यशस्ति०	७१
दाहो मूर्च्छा भ्रमस्तन्द्रा	भव्यध०	१.११८
दिक्षु सर्वास्वधः	यशस्ति०	४१५
दिगम्बरधरांस्त्यक्तदण्ड	प्रश्नो०	३.१३८
दिगम्वरो निरारम्भो	रत्नमा०	८
दिग्देशनियमादेवं	{ यशस्ति०	४१४
	,,	४१६
दिग्देशानर्थदण्डविरतिः	गुणभू०	३.३२
दिग्देशानर्थदण्डानां	सं० भाव०	१८
	लाटी०	५.११०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्मात्रमत्र व्याख्यातं	लाटी०	१.७१
दिग्वलयं परिगणितं	रत्नक०	६८
दिग्विरत्यभिचारोऽध:	हरिवं०	५८.६३
दिग्विरतिर्यथा नाम	लाटी०	५.१११
दिग्विरतिव्रतं प्रोक्तं	प्रश्नो०	१७.३
दिग्विरत्या बहिः सीम्नः	सागार०	५.३
दिग्व्रतपरिमितदेश	,,	५.२५
दिग्व्रतमनर्थदण्ड	रत्नक०	६७
दिग्व्रतेन मितस्यापि	{ श्रा० सा० उमा०	३.२९१ ३९६
दिग्व्रताद् वृत्तदेशस्य	धर्मसं०	४.३४
दिग्व्रतोद्रिक्तवृत्तघ्न	सागार०	५.४
दित्सा स्वल्पधनस्याप्य	कुन्द०	१२.६
दिधक्षवो भवारण्यं	अमित०	१२.३२
दिनं दिनकरच्युतं	श्रा० सा०	१.९७
दिनद्वयोषितं तक्रं	व्रत सा०	६
दिननालीद्वयादर्वाग्	धर्मसं०	३.२०
दिनादिपक्षमासैक	प्रश्नो०	१८.७
दिनादौ तत्कृता सीमा	पुरु० शा०	४.१४०
दिनाद्यन्ते मुहूर्तेऽपि	धर्मसं०	२.१५८
दिनान्ते यः द्विषन्नास्ते	गुणभू०	३.२०
दिनाष्टकमिदं पुत्रि	प्रश्नो०	६.११
दिने कस्यापरो कोऽपि	कुन्द०	८.२०८
दिने कृष्णचतुर्दश्यां	श्रा० सा०	१.२११
दिने दिने ये परिचर्या	अमित०	१०.७०
दिन दिने सदा तद्धि कार्य	प्रश्नो०	१८.७२
दिने धारणके चैकभक्तं	,,	१९.४
दिने निद्रा न कर्त्तव्या	,,	२४.१०७
दिने रताश्रितं कर्म	पुरु० शा०	६.३०
दिने रम्ये शुभे लग्ने	श्रा० सा०	१.७०९
दिनैकजातसत्पुण्यं	प्रश्नो०	२०.१७८
दिनैकं ब्रह्मचर्यं भो	,,	१५.३४
दिवसस्याष्टमे भागे	{ श्रा० सा० पूज्यपाद०	३.१०५ ९४
दिवसेन विना सूर्यो	प्रश्नो०	२३.३८
दिवाकार्यो न सम्भोगः	कुन्द०	५.१८२
दिवाकीर्तिप्रयोगोऽत्र	,,	२.१६
दिवासरादि-देवान्तनामा	प्रश्नो०	१०.२०
दिवाद्यन्त-मुहूर्तो योऽस्ति	धर्मसं०	३.३३
दिवा निशि च कुर्वाणो	पुरु० शा०	६.२७
दिवा ब्रह्म सदा षष्ठे	भव्यध०	६.३६२
दिवामैथुननायंङ्गरम्भ	धर्मसं०	१.२८
दिवा-यामचतुष्केण	कुन्द०	७.२
दिविजकुञ्जमौलिमन्दार	यशस्ति०	५३५
दिवोऽवतीर्योर्जितचित्त	अमित०	११.१२१
दिव्यदेहप्रभावत्वात्	पूज्य०	५३
दिव्यनादं कलं गीतं	धर्मसं०	६.१२९
दिव्यमूर्त्तेर्जिनेन्द्रस्य	महापु०	३९.१३०
दिव्यसङ्गीतवादित्र	महापु०	३९.१९६
दिव्यसिंहासनपदाद्	,,	४०.१४०
दिव्याग्निना ततो मृत्वा	प्रश्नो०	१३.१०५
दिव्यानुभावसंभूत	महापु०	३८.१९४
दिव्यान् भोगानिदानीं	धर्मसं०	२.७५
दिवास्वापो निरन्नानां	कुन्द० (उक्तं)	५.२४१
दिव्यास्त्रदेवताच्चामू	महापु०	३८.२६०
दिव्येन ध्वनिना गत्वा	प्रश्नो०	९.५६
दिव्यौदारिकदेहस्थो	लाटी०	३.१२९
दिशं न काचिद् विदिशं	यशस्ति०	१०.११
दिशाञ्जयः स विज्ञेयो	महापु०	३८.२३४
दिशासु विदिशासूच्चैः	भव्यध०	४.२६१
दिशि स्वाहान्तमों ह्रीं ह्लं	अमित०	१५.४३
दीक्षां जैनीं प्रपन्नस्य	महापु०	३९.११२
दीक्षाक्षणान्तरात्पूर्वं	यशस्ति०	१९
दीक्षायात्राप्रतिष्ठाद्या	,,	७७९
दीक्षायोग्यास्त्रयो	,,	७५९
दीक्षासु तपसि वचसि	,,	५५७
दीनत्वं निर्धनत्वं च	प्रश्नो०	१२.८७
दीनानाथ-मनुष्येभ्यः	,,	२०.२३२
दीनारस्वामिना राज्ञा	पद्मच०	१४.१८
दीनाभ्युद्धरणे बुद्धिः	यशस्ति०	३२२
दीनोद्धरणमद्रोहं	कुन्द०	३.७
दीनो निसर्गमिथ्यात्व	अमित०	२.११
दीपकेन विना स्थूला	प्रश्नो०	२२.९७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीपको दीप्यते यत्र	कुन्द०	८.९२
दीपो दक्षिणदिग्वार्तो	,,	५.१
दीपोत्सवदिने भौमवारो	,,	८.५०
दीपप्रकाशयोरिव सद्दर्शन	श्रा० स०	२.४
दीप्रैः प्रकीर्णकव्रातैः	महापु०	३८.२५
दीपहस्तो यथा कश्चित्	यशस्ति०	६८१
दीयते प्रोपदेशो यो	प्रश्नो०	१७.३१
दीयन्ते चिन्तिता भोगाः	अमित०	१०.१७४
दीर्घनिर्मासपर्वाणः	कुन्द०	५.४०
दुःखं देवाकुलासन्ने	,,	८.९७
दुःखमायतनं चैव	,,	८.२५७
दुःखं यथा समायाति	प्रश्नो०	१८.१५२
दुखं व्यूहापहाराय	कुन्द०	१०.२७
दुखं सङ्कल्पयन्ते ते	सागार०	८.९७
दुखं संसारिणः स्कन्धाः	कुन्द०	८.२५८
दुःखं स्याद्वा सुखं	धर्मसं०	७.७४
दुःखक्षय-कर्मक्षय	व्रतो०	५४१
दुःखग्राहगणाकीर्णे	पद्म० पं०	५७
दुःखदं दुःखजं दुःखमहो	धर्मसं०	५.३१
दुःखभीतैरिति ज्ञात्वा	पुरु० शा०	६.४६
दुःखमुत्पद्यते जन्तोः	सागार०	४.१३
दुःखमेवेति चामेदा	हरि वं०	५८.१०
दुःखवतां भवति वधे	अमित०	६.३९
दुःखाग्निकीलैराभीलैः	सागरो०	८.९५
दुःखानि नारकाण्यापत्	पुरु०शा०	४..६५
दुःखानि यानि दृश्यन्ते	अमित०	१२.९९
दुःखानि येन जन्यन्ते	,,	१२.५६
दुःखानि सर्वाणि निहन्तुकामैः	,,	१.२०
दुःखाब्धेस्तरणिर्विमुक्त	श्रा० सा०	३.१५०
दुःखावर्त्ते भवाम्भोधौ	सागार०	६.२९
दुःखी किमिति कोऽप्यत्र	कुन्द०	११.२८
दुःखे दीनमुखोऽत्यन्तं	कुन्द०	८.४१८
दुग्धे तक्रपरिक्षेपाद्	धर्मप०	४.१०२
दुग्धेन धेनुः कुसुमेन	अमित०	१.४९
दुन्दुभिध्वनिते मन्द्र	महापु०	३८.२२०
दुरवधानतया मोहात्	लाटी०	१२४

दुराग्रह-ग्रहग्रस्तं	श्रा० सा०	१.६७२
	यशस्ति०	१५
दुराचारचयाक्रान्त	पूज्यपा०	२
दुरितवनकुठारं	प्रश्नो०	१८.९४
दुरितवनद्रुमेधं	,,	१२.३८
दुरितवनमहाग्नि	,,	१९.७४
दुर्गतित्वं कुमार्गत्वं	,,	२२.१०३
दुर्गतिं दलयत्येषा	धर्मसं०	६.१०३
दुर्गन्धं सुखदं शुष्कं	कुन्द०	१.७२
दुर्गन्धि क्वथितं शीर्णं	अमित०	९.९४
दुर्गमार्गे हठान्नीतं	प्रश्नो०	१६.९१
दुर्गा दुर्गतिदूतीषु	कुन्द०	५.१३२
दुर्गादुर्गति-दुःखाब्धि	पुरु० शा०	३.२
दुर्गे कुम्भपुराख्येऽस्मिन्	श्रा० सा०	१.५६८
दुर्जन-सुजनानां तु	भव्यध०	१.२८
दुर्जनस्य च सर्पस्य	,,	१.२३
दुर्जनाः सुजनाश्चैव	,,	१.२८
दुर्जयो येन निर्जिजे	श्रा० सा०	१.४
दुर्दैवाद् दुःखिते पुंसि	लाटी०	३.१०२
दुर्दैवेनाप्यलं कर्त्तुं	धर्मसं०	७.३८
दुर्ध्यानात् समाकृष्य	गुणभू०	३.८९
दुर्ध्यानेन गतो घोरां	प्रश्नो०	१६.१०७
दुर्ध्वानैः परनर्म मर्म	व्रतो०	४२२
दुर्द्धराद् ब्रतभाराद् ये	पुरु० शा०	३.१०८
दुर्द्धिया ये तरून् भक्त्या	प्रश्नो०	३.९२
दुर्बलत्वं शरीरे स्याद्	पुरु० शा०	६.१४
दुर्बलाङ्गस्तथा चाम्ल	कुन्द०	६.१२
दुर्बलीकृत-सर्वाङ्गान्	प्रश्नो०	३.१३९
दुर्भगत्वं दरिद्रत्वं	श्रा० सा० उमा०	३.२४० ३८०
दुर्भगो विकलो मूर्खो	अमित०	१३.२५
दुर्भिक्षं च सुधर्माय	प्रश्नो०	२२.५
दुर्भिक्षे चोपसर्गे वा	धर्मसं०	७.२१
दुर्भिक्षेणैव यो भुङ्क्ते	प्रश्नो०	१२.२४
दुर्भिक्षे दुस्तरे व्याधौ	श्रा० सा० उमा०	३.३४९ ४५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्भिक्षे नरके घोरे	अमित०	१३.६२
दुर्मुखस्य नृपस्यास्य	श्रा०सा०	१.६१९
दुर्मोहकर्मनाशत्वाद्	प्रश्नो०	६.२५
दुर्लंघ्यार्थं गुह्यं	लाटी०	५.२७
दुर्लभं स्वर्गलोकेऽत्र	प्रश्नो०	२३.५५
दुर्लभेऽपि मनुष्यत्वे	कुन्द०	१०.४२
दुर्लेश्याभिभवाज्जातु	सागार०	३.४
दुशीला दुर्भगा बन्ध्या	कुन्द०	५.११५
दुश्चिन्तनं दुरालाप	यशस्ति०	९०६
दुष्करा न तनोर्हानि	धर्मसं०	७.३६
दुष्कर्म-दुर्जनोस्पशी	यशस्ति०	८४८
दुष्टकुष्टव्रणाद्भूतमक्षिका	श्रा०सा०	१.३१९
दुष्टत्वाद् विबुधापवाद	व्रतो०	३५२
दुष्टानां निग्रहं शिष्ट	श्रा०सा०	१.५७९
दुष्टानां प्राणिनां पोषो	व्रत०सा०	१६
दुष्टे मन्त्रिणि निर्भीकः	कुन्द०	८.४०९
दुष्टो दारुणदृष्टिः स्यात्	,,	७.१
दुष्पक्वस्य निषिद्धस्य	यशस्ति०	७३१
दुष्प्रापं तीर्थकरत्वं	अमित०	१३.१७
दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यं	कुन्द०	७.१
दुःस्वप्नैः प्रकृतित्यागै	,,	१२.१
दुहितुः प्रियदत्तस्य	पुरु० शा०	३.६८
दूतस्य यदि पादः स्यात्	कुन्द०	८.१६०
दूतस्य वदनं रात्री	,,	८.१६७
दूतोक्तवर्णसङ्ख्याङ्को	,,	८.१६४
दूतो दिगाश्रितो जीवति	,,	८.१६५
दूतो वाचि कविः स्मारी	,,	८.४२६
दूरं गत्वा तृणलग्न	प्रश्नो०	१४.६१
दूरारूढे प्रणिधितरणा	यशस्ति०	४८४
दूरिकृत्य जनो दोषान्	प्रश्नो०	२१.१०
दृक्पूतमपि यष्टारं	सागार०	२.३२
दृगाद्येकादशान्तानां	लाटी०	२.१३६
दृगबोधवृत्ततपसां द्विधा	धर्मसं०	७.२३
दृगन्यां सम्यग् निरीक्ष्यादौ	लाटी०	४.२१
दृगमूलव्रतमष्टधा	देशव्र०	५
दृग्मोहवशतः कश्चित्	धर्मसं०	१.१०
दृग्मोहस्यात्यये दृष्टि	लाटी०	३.७८
दृग्मं हस्योदयाद् बुद्धिः	,,	३.५९
दृग्मोहस्योदयाभावात्	,,	१.११५
दृग्मोहस्योदयान्मूर्च्छा	,,	२.४०
दृग्मोहानुदयस्तत्र	,,	२.९०
दृग्मोहेऽस्तंगते	,,	३.२१०
दृग्मोहोपशमे स्याद्	,,	२.३८
दृढ़कुटुम्ब-परिग्रह	अमित०	१०.३८
दृढ़व्रतस्य तस्यान्या	महापु०	३९.५१
दृढीकृतो याति न कर्म	अमित०	१४.५५
दृढीकृत्य दयां चित्ते	प्रश्नो०	१२.७७
दृतिप्रायेषु पानीयं	यशस्ति०	२८४
दृतिप्रायेषु भाण्डेषु	धर्मसं०	२.१४९
दृतेः पूर्णस्य वातेन	कुन्द०	११.८१
दृशा पीयूष-वर्षिण्या	श्रा०सा०	१.३२७
दृश्यते जलमेवैकं	लाटी०	१.१९२
दृश्यते पाठमात्रत्वाद्	,,	४.२५
दृश्यन्ते नीचजातीनां	अमित०	११.८८
दृश्यन्ते बहवः शूराः	प्रश्नो०	२३.४३
दृश्यन्ते मर्त्यलोके	पूज्यपा०	९३
दृषन्नावसमारूढो	प्रश्नो०	२३.१३८
दृषन्नावसमो ज्ञेयो {	,,	२०.९००
	पद्म०पंच०	३५
दृष्टस्त्वं जिन सेवितोऽसि	यशस्ति०	७१७
दृष्टं संसार-वैचित्र्यं	श्रा० सा०	१.२९१
दृष्टान्ताः सन्त्यसंख्येया	यशस्ति०	१४
दृष्टात्मतत्त्वो द्रविणा	अमित०	१५.८८
दष्टदृष्टभवेत्यर्थं	यशस्ति०	८०
दृष्टिनिष्ठः कनिष्ठोऽपि	गुणभू०	१.७१
दृष्टिपातो भवेत्पूर्वं	प्रश्नो०	२३.७५
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं	धर्मोप०(स्मृतिवाक्यं)	४.१५
दृष्टिपूतं यथादानं	लाटी०	४.२१११
दृष्टिपूर्वं मुनीनां च	प्रश्नो०	२.७२
दृष्टियुक्तो नरः स्वामिन्	,,	११.७२
दृष्टिव्रतसामायिकप्रोषध	धर्मसं०	१.२६
दृष्टिहीनः पुमान् किञ्चिद्	प्रश्नो०	११.५९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टिहीनः पुमानेति	यशस्ति०	२२२
दृष्टिहीनस्य पङ्गोश्च	कुन्द०	१०.३०
दृष्टेऽर्थे वचसोऽध्यक्षा	यशस्ति०	९८
दृष्टोऽदृष्टो भवेत्सङ्घ	प्रश्नो०	१८.११२
दृष्ट्यादि दशधर्माणां	धर्मसं०	२.६
दृष्ट्या मूलगुणाष्टकं	सागार०	१.१७
दृष्ट्वा चन्दनतां यातान्	कुन्द०	८.३८४
दृष्ट्वा जगद्बोधकरं	सागार०	६.७
दृष्ट्वा तं चिन्तितं सारं	प्रश्नो०	५.३४
दृष्ट्वा तदीयवात्सल्यं	,,	७.२८
दृष्ट्वा तां मारयन्तीं	,,	१२.२०२
दृष्ट्वातिम्लानवीभत्सं	गुणभू०	१.३४
दृष्ट्वा तेनैव तानुक्तं	प्रश्नो०	१२.१५७
दृष्ट्वा तौ सोऽपि पुण्येन	,,	२१.१४०
दृष्ट्वा तौ स्थापितौ	,,	२१.३४
दृष्ट्वाऽथ भूपते पत्न्या	श्रा० सा०	१.३९४
दृष्ट्वा शनैः सम्यग्	लाटी०	४.२१५
दृष्ट्वा परं पुरस्ता	पुरुषा०	८९
	श्रा०सा०(उक्तं)	३.१६८
दृष्ट्वा माहात्म्यमत्यन्तं	प्रश्नो०	१०.६५
दृष्ट्वा मुनीश्वराङ्गं यो	,,	११.१०१
दृष्ट्वाऽऽर्द्रचर्मास्थिसुरा	सागार०	४.३१
दृष्ट्वा शुभाशुभं रूपं	प्रश्नो०	१८.२५
दृष्ट्वाऽऽशु सात्यकिस्तं च	,,	३१.२३
दृष्ट्वा सन्मुखमायान्तीं	श्रा०सा०	१.२५४
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा श्लिष्ट्वा	अमित०	६.६९
देयं दानं यथाशक्त्या	संभाव०	६४
देशजातिकुलरूप	अमित०	१२.६९
देशतः प्रथमं तत्स्यात्	यशस्ति०	२४८
देशतः सर्वतश्चापि	लाटी०	२.१२२
देशतः सर्वतो वापि	यशस्ति०	२४१
देशतस्तद्-व्रतं धाम्नि	लाटी०	५.६०
देशतः स्तेयसंत्याग	,,	५.३६
देशतो विरतिस्तत्र	,,	५.५
देशनावसरे शास्त्रं	,,	४.२०८
देशव्रतं तथा प्रोक्तं	धर्मोप०	४.१०२
देशव्रतानुसारेण	पद्म०पंच०	२२

देशप्रत्यक्षवित्केवल	चारित्रसा०	२२
देशयमघ्नकषाय	सागार०	३.१
देशयमघ्नकोपादि	धर्मसं०	२.९
देशयामि समीचीनं	रत्नक०	२
देशर्तु-प्रकृतीः ज्ञात्वा	पुरु०शा०	४.१८५
देशशब्दोऽत्र स्थूलार्थे	लाटी०	४.१२३
देशसमयात्मजागम	सागार०	४.६२
देशान्तरं वणिग्-नाथः	श्रा०सा	१.४३०
देशान्तरात्समागत्य	धर्मसं०	६.८३
देशावकाशिकं नाम	,,	४.३३३
देशावकाशिकं पूर्वं	प्रश्नो०	१८.३
देशावकाशिकं लोके	,,	१८.५
देशावकाशिकं वा	रत्नक०	९१
देशावकाशिकं सम्यग्	श्रा०सा०	३.२९३
	,, ,,(उक्तं)	३.२९०
	उमा०	३९८
देशावकाशिकं स्यात्	रत्नक०	९२
देशावकाशिकेनासौ	धर्मसं०	४.३७
देशावधिमपि कृत्वा	अमित०	६.७८
देशावधिर्जघन्येन	गुणभू०	२.२३
देशे जनपदाख्ये च	प्रश्नो०	२१.५५
देशेऽस्ति मगधाख्ये	श्रा०सा०	१.४४९
देह एव भवो जन्तो	सागार०	८.३९
देह-चेतनयोर्भेदो	अमित०	१५.८२
देहजा व्यसन-कर्मयन्त्रिता	,,	५.५८
देहदूषणकरावलोकनाद्	श्रा०सा०	१.३०४
देहद्रविणसंस्कार	यशस्ति०	३८९
देहपंजरमध्यास्य	अमित०	१४.६
देहबान्धवनिमित्त	,,	१४.२०
देहलीगेह-वाज्यर्था	गुणभू०	१.२५
देहसंसार-भोगेषु	प्रश्नो०	१८.५०
देहस्य न कदाचिन्मे	धर्मसं०	७.१३
देहान्तरपरिप्राप्ति	महापु०	३९.१२०
देहात्मनोरात्मवता	अमित०	१५.१०२
देहादिवैकृतैः सम्यङ्	सागार०	८.१०
देहार्थे बन्धुमात्रादि	कुन्द०	११.३५
देहारामेऽप्युपरतधिय	यशस्ति०	४८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहाहारेहितत्यागाद्	सागार०	८.१
देहिनो भवति पुण्य	अमित०	५.१५
देहिभ्यो दीयते येन	,,	११.४५
देहे भोगे निन्दिते	,,	२.७५
देहे याऽऽत्मजातिर्जन्तोः	,,	१५.६६
देहे वसंस्ततोमित्रः	धर्मसं०	७.१४४
देहोऽदेहो महादेहो	प्रश्नो०	२१.१६५
दैन्यदारिद्रय-दौर्भाग्य	अमित०	२.३४
दैवात्कालादिसंलब्धौ	लाटी०	२.३३
दैवात्पात्रं समासाद्य	,,	६.६८
दैवादायुर्विरामे	यशस्ति०	३४५
दैवाद्दोषेऽपि सञ्जाते	पुरु० शा०	३.८२
दैवाद्यदि समुद्भूता	धर्मसं०	२.२०
दैवाल्लब्धं धनं	यशस्ति०	७८९
	सागार०	२.६३
दैवाद् वणिक्पते वर्तेयं	श्रा० सा०	१.२१४
दैविकैर्मानुषैर्दोषैः	कुन्द०	८.३८८
दैवेऽस्मिन् विहितार्चने	यशस्ति०	५०५
दोर्भ्यां जानुप्रदेशं	प्रश्नो०	१८.११८
दोषं गूहति नो जातं	यशस्ति०	१८३
दोषं संशोध्य संजातं	धर्मसं०	२.५
दोषः कौत्कुच्यसंज्ञोऽस्ति	लाटी०	५.१४२
दोषः सुखानुबन्धाख्यो	,,	५.२४०
दोष-तोयैर्गुणग्रीष्मैः	यशस्ति०	३७२
दोषत्वं प्राग्मतिभ्रंशः	लाटी०	१.७०
दोष-निर्मुक्त-वृत्तीनां	कुन्द०	११.२९
दोषमालोचितं ज्ञानी	अमित०	१३.७७
दोषमेवमवगम्य	,,	६.१२
दोषवल्लोकदेवानां	धर्मसं०	१.११
दोषश्चानङ्गक्रीडाख्य	लाटी०	५.७७
दोषाः क्षुत्तृण्मदः	पुरु० शा०	३.२७
दोषा गुणा गुणा दोषाः	गुणभू०	१.६७
दोषाढ्या पापदा घोरा	प्रश्नो०	२२.९९
दोषान्धकारपरिमर्दन	अमित० प्रश०	२
दोषानालोच्य	गुणभू०	३.५२
दोषाभावात् कुतोऽसत्यं	धर्मसं०	१.१०
दोषाभावो गुणाढ्यत्वं	पुरु० शा०	३.२९
दोषाः शङ्कादयो	धर्मसं०	१.५५
दोषाश्च त्रिविधा ज्ञेया	भव्यध०	५.२७४
दोषाश्चापि तथा	उमा०	८०
दोषाः सूत्रोदिताः पञ्च	लाटी०	५.१४०
दोषः सूत्रोदिताः पञ्च	,,	५.२३७
दोषैकेण न तत्त्याज्यः	कुन्द०	१.१०५
दोषोक्तिरपगूहश्च	भव्यध०	१.६५
दोषो निदानबन्धाख्यो	लाटी०	५.२४१
दोषोपगूहनाङ्गाय	व्रतो०	३२८
दोषो बहुजनो नामा	प्रश्नो०	२२.२०
दोषो मित्रानुरागाख्यो	लाटी०	५.२३९
दोषो रत्नत्रयाणां च	प्रश्नो०	२०.१५९
दोषो रागादिचिद्भावः	लाटी०	३.१२५
दोषो रूपानुपाताख्यो	,,	५.१३२
दोषो ह्योढाद्यपि मनो	सागार०	३.१९
दोहवाहाङ्कनच्छेद	अमित०	२.३३
दौर्जन्यं सह सज्जनेन	व्रतो०	३५०
दौर्भाग्यजननी माया	कुन्द०	९.८
दौःस्थ्यैर्भावनिदेशस्य	कुन्द०	८.२३
द्यूतं मद्यं पलं वेश्या	भव्यध०	१.१०९
द्यूतं मांसं सुरा वेश्या	श्रा०सा०	२.३६९
	पूज्य०	३५
	उमा०	४६७
द्यूतक्रीडा पलं मद्या	धर्मसं०	२.१५९
द्यूतक्रीडां प्रकुर्वन्ति	प्रश्नो०	१२.३४
द्यूतमद्यामिषं वेश्या	गुणभू०	३.६
	पद्म०पंच०	१०
	पुरु०शा०	४.४०
	लाटी०	१.११३
द्यूतमूलानि सप्तैव	प्रश्नो०	१२.२५
द्यूताद् धर्मतुजो	,,	१२.४६
द्यूताद्धर्मतुजो वकस्य	सागार०	३.१७
द्यूताद्धर्मसुतः पलादिह	श्रा०स० (उक्तं)	३.३७३
द्यूतादराज्यविमुक्तोऽभूद्	धर्मसं०	२.१६०
द्यूतान्धा नहि पश्यन्ति	भव्यध०	१.११३
द्यूतामिषसुरा वेश्या	प्रश्नो०	१२.३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्यूतासक्तस्य यत्पापं	प्रश्नो०	१२.३७
द्यूतेन पाण्डवा नष्टा	पुरु०शा०	४.४३
द्यूते मांसं सुरा वेश्या	धर्मोप०	४.२३०
द्यूते हिंसानृतस्तेय	सागार०	२.१७
द्योतते यत्र जैनत्व	धर्मसं०	३.१७५
द्रव्यं क्षेत्रं सुधीः कालां	अमित०	९.७
द्रव्यं गुणस्तथा कर्म	कुन्द०	८.२८१
द्रव्यं नवविधं प्रोक्तं	कुन्द०	८.२८२
द्रव्यं विकृति-पुरःसर	,,	१०.१३
द्रव्य-क्षेत्रादि-सम्पन्न	अमित०	८.३४
द्रव्यतः क्षेत्रतश्चापि	लाटी०	३.५८
द्रव्यतः क्षेत्रतः सम्यक्	अमित०	८.३०
द्रव्यदानं न दातव्यं	प्रश्नो०	२०.१५४
द्रव्यदानं प्रदत्ते यो	,,	२०.१५५
द्रव्यपूजामसौ कुर्याज्जिनस्य	धर्मप्र०	४.७०
द्रव्यभावाश्च वश्यास्य	,,	७.९६
द्रव्यमात्र-क्रियारूढो	लाटी०	४.१३
द्रव्यरूप्य-सुवर्णादौ	प्रश्नो०	१६.९
द्रव्याढ्य-भाजनान्त	,,	२४.४३
द्रव्यादिकं नियोज्य	पुरु०शा०	६.१०२
द्रव्यादिकं परित्यक्तुं	प्रश्नो०	२३.१३३
द्रव्यादिके समादत्ते	,,	२३.१४१
द्रव्यानुसारेण ददाति	व्रतो०	३७७
द्रव्याय शकटं नीत्वा	प्रश्नो०	१७.४८
द्रव्यार्जनस्य वाणिज्य	,,	१७.६२
द्रव्यार्जनान्न संपाक	,,	३.१२१
द्रव्येणैव जिनेन्द्रमन्दिरवरं	भव्यध० प्र०	१८
द्रव्यौषधे तु कपिला	कुन्द०	३.७५
द्राक्षा-खर्जूर-चोचेक्षु	यशस्ति०	५०७
द्रुहिणाधोक्षजेशान	,,	६०
दोहप्रयोजनेनैव	कुन्द०	८.३९२
द्वारावत्यां मुनीन्द्राय	धर्मसं०	४.१०६
द्वयीमनुमतिं ज्ञात्वा	पुरु० शा०	७१
द्वात्रिंशदुर्वीशसहस्र	अमित०	१.६३
द्वात्रिंशद्दोषनिर्मुक्तं	भव्यध०	४.२६६
द्वादश वर्षाणि नृपः	यशस्ति०	८६६
द्वादश व्रतमध्येऽपि	लाटी०	६.१३
द्वादश व्रतमूलत्वाद्	प्रश्नो०	१२.२९
द्वादश व्रतशुद्धस्य	लाटी०	६.१
द्वादशाङ्गं श्रुतं चेति	धर्मोप०	२.१७
द्वादशाङ्गं श्रुतं येषां	भव्यध०	१.५
द्वादशाङ्गं नमस्कृत्य	धर्मसं०	४.६४
द्वादशाङ्गधरोऽप्येको	यशस्ति०	३३७
द्वादशानि व्रतान्यत्र	भव्यध०	४.२७०
द्वादशापि सदा चिन्त्या	पद्म० पंच०	४२
द्वादशात्परं नामकर्म	महापु०	३८.८७
द्वादशैता अनित्याद्या	धर्मसं०	७.८८
द्वाभ्यां तु यवमालाभ्यां	कुन्द०	५.४६
द्वारशाखाष्टभिर्भागैः	कुन्द०	१.१५१
द्वाविंशति-जिनान् शेषान्	प्रश्नो०	१.३
द्वाविंशतिरप्येते	पुरु० शा०	२०८
द्वाविंशति सहस्राणि	भव्यध०	३.२०१
द्विक्रोशोच्छ्रेयदेहोऽसौ	अमित०	११.६६
द्विजाण्डजनिहंतॄणां	यशस्ति०	२८७
द्विजादेशे विवाहे च	कुन्द०	२.२६
द्वितीयं कुरुते हेम	अमित०	२.४९
द्वितीया वर्जिता स्नाने	कुन्द०	२.१
द्वितीये युगले सप्त	भव्यध०	३.२१६
द्वितीयोऽपि भवेदेवं	गुणभू०	३.६९
द्वितीयोऽप्यद्वितीयोऽभूद्	पद्म०नं०प्र०	१३
द्वितीयो मुनिभिः शक्यो	प्रश्नो०	१.२४
द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः प्रोक्ताः	भव्यध०	२.१६७
द्वित्रितुर्येन्द्रिया द्वौ	प्रश्नो०	२.१८
द्विदलं गोरसं मिश्रं	भव्यध०	१.१००
द्विदलं द्विदलं प्राश्यं	यशस्ति०	३१५
द्विदलं मिश्रितं त्याज्य	धर्मसं०	४.२१
द्विधा जीवा भवन्त्येव	प्रश्नो०	२.१६
द्विधा जीवा विनिर्दिष्टा	धर्मसं०	२.३७
द्विधातुजं भवेन्यासं	धर्मोप०	३.१८
द्विधादानं समादिष्टं	श्रा० सा०	३.३२९
द्विधाऽन्नदानमुद्दिष्टं	उमा०	४४२
द्विनतिर्द्वादशावर्तं	धर्मसं०	४.५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्विनतिर्द्वादशावर्ताः	गुणभू०	३.५८
द्विनिषण्णं यथा	चारित्रसा०	१९
द्विपाच्चतुःपदानां तत्	पुरु० शा०	४.१५४
द्विपदानां च वाणिज्यं	लाटी०	४.१८१
द्विपृष्ठेनापि तेनैतदुक्तं	प्रश्नो०	७.२६
द्विमुहूर्त्तात्परं वार्यगालनं	धर्मसं०	२.१५७
द्विर्जातो हि द्विजन्मेष्टः	महापु०	३८.४८
द्विर्वाच्यौ ताविनौ शब्दौ	,,	४०.४५
द्विर्वाच्यं वज्रनामेति	,,	४०.५५
द्विविधं त्रिविधं दशविध	यशस्ति०	२११
द्विविधः स भवेद्धर्मो	पुरु० शा०	३.१२
द्विषद्विषत्तमोरोगै	अमित०	२.२९
द्विसप्ताद्युपवासेन	प्रश्नो०	१९.३२
द्विरास्तां त्रिलोकविजय	महापु०	४०.७५
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु	सागार०	५.५२
द्वेधा जीवा जैनैर्मताः	अमित०	६.४
द्वेधा दृग्बोधचारित्र	धर्मसं०	३.७०
द्वेधापि कुर्वता पूजा	अमित०	१२.१५
द्वेषणे धूम्रवर्णानि	कुन्द०	११.४१
द्वेषः क्षुद्वेदनोत्पन्नो	प्रश्नो०	३.३८
द्वे सम्यक्त्वेऽसंख्यातान्	धर्मसं०	१.७३
द्वौ तथैतौ ततो लक्ष्म्या	कुन्द०	२.११४
द्वैताद्वैताश्च यः शाक्यः	यशस्ति०	७६
द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां	,,	४४२

ध

धत्तेऽतिथिविभागाख्यं	पुरु० शा०	४.१७१
धत्ते मत्वेति योऽस्तेयं	,,	४.९०
धत्ते शङ्खः शनौ शक्ति	कुन्द०	८.१९५
धनकलत्रपरिग्रह	अमित०	१०.३५
धनदेवेन सम्प्राप्तं	उमा०	३५६
धनदेवो नृपादीनां	प्रश्नो०	१३.५२
धनं धान्यं पशुं प्रेष्यं	भव्यध०	४.२६०
धयं धान्यं सुवर्णं च	धर्मोप०	४.३१
धनं यच्चार्ज्यते किञ्चित्	कुन्द०	२.६५
धनधान्यसुवर्णादि	,,	४.५१

धनधान्यहिरण्यादि	गुणभू०	३.२९
धनधान्यादिकं गेहं	प्रश्नो०	११.२०
	उमा०	३८२
धनधान्यादिकं ग्रन्थं	रत्नक०	६१
	श्रा० सा०	३.२४३
धनधान्यादिवस्तूनां	सं० भाव०	१६
धनधान्यादिसंसक्तान्	प्रश्नो०	३.१४६
धनपाले मृते पश्चात्	,,	१२.१८९
धनमेतदुपादाय	महापु०	३८.१३९
धनलवपिपासितानां	पुरुषा०	८८
धनशब्दो गवाद्यर्थः	लाटी०	५.१०३
धनश्रीसत्यघोषौ च	रत्नक०	६५
धनायाविद्ध-बुद्धीनां	यशस्ति०	४०२
धनिष्ठा ध्रुवरवत्या	कुन्द०	२.२३
धनी न्यासापहारं च	,,	२.६६
धनुःशय्या विधातव्या	प्रश्नो०	२४.११२
धनैर्धान्यैर्जनैर्मुक्ता	धर्मोप०	४.१७०
धन्यास्ते जिनदत्ताद्याः	सागार०	६.४४
धन्यास्ते पुरुषोत्तमाः	प्रश्नो०	११.१०९
	,,	११.७०
धन्यास्ते भुवने पूज्या	,,	२३.४५
	,,	२३.८५
धन्यास्ते ये नरा बिम्बं	,,	२०.१८६
धन्यास्ते योऽत्यजन् राज्यं	सागार०	६.३३
धन्यास्ते वीरकर्माणो	लाटी०	५.२३५
धन्यास्ते श्रावकाः प्राग्ये	धर्मसं०	५.१२
धन्यास्ते सद्-गृहे येषां	प्रश्नो०	२०.५०
धन्येयमुर्विला राज्ञी	,,	१०.६७
धन्योऽहं तेन सन्त्यक्ता	,,	८.६७
धन्यो विष्णुकुमारोऽयं	,,	९.६४
धरणीधर-धरणी	यशस्ति०	५.४९
धरत्यपरिसंसार	श्रा०सा०	१.७१
धरत्यपारसंसार	उमा०श्रा०	३
धर्तुमिच्छति यः पूतां	पुरु०शा०	६.७३
धर्मकर्माविरोधेन	कुन्द०	२.४३
धर्मं कृत्वापि यो मूढः	प्रश्नो०	४.३७
धर्मं चतुर्विधं प्राहुः	पूज्य०	४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मद्रोहेण सौख्येच्छुः	कुन्द०	७.४२१
धर्मं धर्मं प्रजल्पन्ति	श्रा०सा०	१.७५
धर्मं पापं प्रजल्पन्ति	प्रश्नो०	१.१८
धर्मः पिता क्षमा माता	कुन्द०	११.८
धर्मबाधाकरं यच्च	कुन्द०	२.६४
धर्मप्रभावतो याति	कुन्द४	१०.११
धर्मं चः कुरुते साक्षादलं	,,	१.४७
धर्मं यशः शर्म च सेवमानाः	सागार०	१.२४
धर्मं योगिनरेन्द्रस्य	यशस्ति०	४५८
धर्मं वदन्तेऽङ्गिवधादयोऽमी	अमित०	१.३८
धर्मः पिता गुरुर्धर्मो	श्रा०सा०	१.१०७
धर्मविक्रयणां राज	कुन्द०	३.५९
धर्मः शास्त्रश्रुतौ शश्वत्	कुन्द०	८.१२५
धर्मः शोकमयाहार	कुन्द०	१.१०६
धर्मः सम्यक्त्वमात्रात्मा	लाटी०	२.७७
धर्मः सर्वसुखाकरो	चारित्र सा०	३
धर्मः सेव्यः क्षान्ति	पुरुषा०	२०४
	श्रा०सा० (उक्तं)	१.९४
धर्मकर्म फलेऽनीहो	यशस्ति०	८३२
धर्मकर्म इते दैवात्	श्रा०सा०	१.४०६
	उमा०	५४
धर्मकल्पद्रुमस्योच्चैः	धर्मोप०	३.२२
धर्मकार्यवशात् प्रोच्यं	व्रतो०	२६
धर्म-कार्यवशान्मृत्युः	,,	२७
धर्मक्षितावात्मघाती	धर्मसं०	७.८
धर्मचक्रं स्फुरद्रत्नं	प्रश्नो०	३.६९
धर्मधरस्य परीषहजेतु	अमित०	१४.५१
धर्मध्यानं दिवाकार्यं	भव्यध०	६.३०७
धर्मध्यानपरो नीत्वा	सागार०	५.३७
धर्मध्यानादि-संयोगैः	प्रश्नो०	१८.५९
धर्मध्यानादि सिद्धयर्थं	,,	१८.८८
धर्मध्यानासक्तो	पुरुषा०	१५४
धर्मध्यानेन शास्त्रादि	प्रश्नो०	२३.१००
धर्मध्यानेन स्थातव्यं	,,	२४.८७
धर्मनाथं जिनं देवं	,,	१५.१
धर्मनाशे महारोगे	,,	२२.४
धर्मपत्नीं विना पात्रे	धर्मसं०	६.२०६
धर्मपात्रमनुग्राह्यममुत्र	,,	६.१७३
धर्मपात्राण्यनुग्राह्या	सागार०	२.५०
धर्मप्रभावना हर्षो	भव्यध०	१.७१
धर्मबुद्धया गिरेरग्नौ	गुणभू०	१.२४
धर्मबुद्धया तमस्विन्यां	श्रा० सा०	३.११६
	धर्मोप०(उक्तं)	४.११
धर्मभूमौ स्वभावेन	यशस्ति०	३८०
धर्ममहिंसारूपं	पुरुषा०	७५
धर्ममार्गोपदेष्टारः	श्रा०सा०	१.३६८
धर्मवृद्धिर्गुरोस्तस्याः	प्रश्नो०	७.५३
धर्मशत्रुविनाशार्थं	पद्म०पंच०	१३
	प्रश्नो०	१२.५८
धर्मशुक्लद्वयं यस्या	अमित०	८.६१
	,,	८.५९
धर्मश्रवणमेकेषां	लाटी०	२.२४
धर्मसन्ततिमक्लिष्टां	सागार०	२.६०
धर्मसंवेग-वैराग्या	प्रश्नो०	१८.३८
धर्मस्थाने ततो गत्वा	कुन्द०	१.११६
धर्मसिंहासनारूढो	,,	१.४१
धर्माच्छर्म भुजां धर्मे	यशस्ति०	२६६
धर्मात् किलैष जन्तु	,,	५.१
धर्माद् गृहे स्थितिः कुर्युः	प्रश्नो०	१६.२५
धर्मादभ्युदयः पुंसां	,,	३.१०५
धर्मादिविघ्नकरणात्	,,	२.४८
धर्मादिश्रवणाद्यानात्	,,	१५.७८
धर्मादेशोपदेशाभ्यां	लाटी०	३.२९९
धर्माद्यतीन्द्रियं यद्वन्मीयते	गुणभू०	१.४७
धर्माधर्मं न जानाति	प्रश्नो०	४.४४
धर्माधर्मं नभः काल	अमित०	३.२९
धर्माधर्मनभःकालाः	गुणभू०	१.१४
धर्माधर्म-व्यवस्थां	व्रतो०	३४०
धर्माधर्मैकजीवानां	अमित०	३.३२
	यशस्ति०	१०९
धर्माधर्मौ नभः कालो	भव्यध०	२.१४४
	,,	२.१८४
धर्माऽऽधेयस्य चाऽऽधाराः	धर्मसं०	६.२३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्माध्यक्षास्तु शूद्राश्च	उमा०	१५३
धर्मान्नान्यः सुहृत्पायान्नान्यः	सागार०	७.५६
धर्माम्बुसिञ्चनैर्भव्य	श्रा०सा०	१.५७१
	अमित०	९.८४
धर्मार्थकाममोक्षाणां	,,	११.२
	कुन्द०	१.१३
धर्मार्थकामेषु च यस्य	श्रा०सा०	३.३८
धर्मार्थं ददते दानं	अमित०	९.६८
धर्मार्थकामसध्रीचो	सागार०	२.७४
धर्मार्थं सत्त्वसंघातं	प्रश्नो०	१२.९२
धर्मार्थेनोऽपि लोकस्य	पद्म०पंच०	११
धर्मामृतं सतृष्णः	रत्नक०	१०८
धर्माय व्याधिदुर्भिक्षजरादौ	सागार०	८.२०
धर्माय स्पृहयालुर्यः	श्रा०सा०	३.३९
धर्मेण मेघं वनराजि	व्रतो०	३४४
धर्मेण दूषितं वाक्यं	धर्मसं०	३.५१
धर्मेण देवेन्द्रपदं	व्रतो०	३४६
धर्मेण रत्नानि सुवर्णवन्ति	,,	३४५
धर्मेण राज्यं विभवः	,,	३४१
धर्मेण विज्ञानकला	,,	३४३
धर्मेण सप्तक्षण	,,	३४२
धर्मेण सफलं कार्यं	धर्मसं०	१.५
धर्मेणामरपादप	श्रा०सा०	१.१११
धर्मे देवे गुरौ पुण्ये	प्रश्नो०	४.४२
धर्मे धर्मफलेरागः	गुणभू०	१.४९
धर्मेषु धर्मनिरतात्म	यशस्ति०	५३०
धर्मेषु स्वामिसेवायां	,,	७५५
धर्मो जीवदया सत्यं	पुरु०शा०	३.३७
धर्मोदयान्वितः शुद्धो	भव्यध०	१.५८
धर्मो दयामयः प्रोक्तो	वराङ्ग०	१५.१
धर्मो दश प्रकारो वा	व्रतो०	५१२
धर्मो न गोपश्चिम	,,	३५५
धर्मो न मिथ्यात्व	,,	३५४
धर्मो न मोहक्रियया	,,	३५६
धर्मो न यज्ञे हतजीववृन्दे	,,	३५७
धर्मो नीचपदादुच्चैः	लाटी०	३.२३७
धर्मोऽन्यनारी-धनवारेण	व्रतो०	३६७
धर्मोपकरणान्येव	प्रश्नो०	२०.२२७
धर्मोपदेश पीयूषं	धर्मोप०	४.१३९
	उमा०	१८८
धर्मोपदेश पीयूषैः	श्रा०सा०	१.७२५
धर्मोपदेशमालाय	,,	१.५३
धर्मोपदेशसंयुक्तं	प्रश्नो०	२.६९
धर्मो बन्धुश्च मित्रं स्याद्	,,	१.४३
धर्मो भवेज्जीदयमयेन	व्रतो०	३६४
धर्मो भवेज्जैनमतैक	,,	३६०
धर्मो भवेद् दर्शनशुद्धि	,,	३६६
धर्मोभवेत्पञ्चमहाव्रतेन	,,	३६१
धर्मोऽभिवर्धनीयः	पुरुषा०	२७
धर्मोभिवर्धनीयोऽयं	श्रा०सा०	१.४०७
	उमा०	५५
धर्मो माता पिता धर्मो	पुरु०शा०	३.११
धर्मो मांसादिनिर्वृत्तिः	धर्मसं०	२.५४
धर्मोऽसंख्यप्रदेशः	प्रश्नो०	२.२३
धर्मोऽस्त्येव जगज्जैत्रः	कुन्द०	१०.४
धर्मो हि देवताभ्यः	पुरुषा०	८०
	श्रा०सा० (उक्तं)	३.१६२
धर्मोऽहिंसाहेतुर्हि सन्तो	अमित०	६.३५
धर्म्यकर्मविनिर्माण	श्रा०सा०	१.२४
धर्म्यैराचरितैः सत्य	महापु०	३९.१०७
ध्रवलास्कन्धो रेकतरैकं	धर्मसं०	६.२३
धातुलेप्यादिजं बिम्वं	कुन्द०	१.१३४
धातुवादे धनप्लोषी	कुन्द०	८.४१४
धातुसाम्यं वपुःपुष्टिः	कुन्द०	५.२४३
धान्यपक्वमपक्वं वा	कुन्द०	८.३४९
धान्यशब्देन मुद्गादि	लाटी०	५.१०४
धामं स स्वहितं सम्यग्	कुन्द०	३.६९
धारणाः पञ्च विज्ञेयाः	भव्यध०	५.२९५
धारणा यत्र काचिन्न	धर्मसं०	७.१३४
धारणा हि त्रयोदश्यां	लाटी०	५.१९८
धारा धान्यलता गुल्म	कुन्द०	५.१२०
धारानगर्यां वरराजवंशे	भव्यध०	५.२१
धारालः करवालोऽभूत्	श्रा०सा०	१.४७२
धार्मिकः प्राणनाशेऽपि	धर्मसं०	५.८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धार्मिकः शमितो गुप्तो	अमित०	३.६१
धार्मिकोद्धरणो जैनशासनो	धर्मसं०	३.५२
धार्ष्ट्यं बहुप्रलापित्वं	प्रश्नो०	१७.८३
धिग्दुःषमाकालरात्रि	सागार०	२.३६
धीर मेरौ जिनेन्द्राणां	श्रा०सा०	१.२०६
धीरै वीरैर्नरैर्दक्षैः	प्रश्नो०	२३.४१
धीरैः सप्तशतैर्दक्षैः	,,	९.६
धीवरैः प्राणिसङ्घात	श्रा० सा०	३.६३
धूमवन्निर्वयेत्पायं	यशस्ति०	६९९
धूमाकारं जगत्सर्वं	व्रतो०	३.८३
धूर्तस्तुत्याऽऽत्मनिर्भ्रान्तिः	कुन्द०	८.४१९
धूर्त्तानां प्रागरुद्धानां	,,	८.३७४
धूर्तावासे वने वेश्या	,,	८.३६१
धृतप्रथमगुणो यो	प्रश्नो०	५.५९
धृतिस्तु सप्तमेमासि	महापु०	३८.८२
धृत्वातु कोटरे तत्र	प्रश्नो०	२१.१२४
धृत्वा तृणं समागत्य	,,	१४.६३
धृत्वा व्रतानि योऽगारी	,,	२२.७
धेन्वा नवप्रसूतायाः	कुन्द०	३.५०
धैर्येण चलितं धर्मं	श्रा०सा०	३.१९९
	उमा०	३५९
धौरेयैः पार्थिवैः किञ्चित्	महापु०	३८.२८५
धौतपादाम्भसा सिक्तं	अमित०	९.२३
धौतवस्त्रैस्तथान्यैश्च	प्रश्नो०	२३.६४
ध्यातव्योऽयं सदा चित्ते	श्रा० सा०	१.९०
ध्यातात्मा ध्येयमात्मैव	यशस्ति०	६३३
ध्याताऽध्याता महाध्याता	प्रश्नो०	२१.१६३
ध्याता ध्यानं च ध्येयश्च	लाटी०	३.१६५
ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं	भव्यध०	५.२८३
ध्याता रत्नत्रयोपेतो	,,	५.२८४
ध्यातुर्न प्रभवन्ति	कुन्द०	११.९५
ध्यातुमिच्छति यो रूपातीतं	पुरु० शा०	५.३१
ध्यानद्वयेन पूर्वेण	अमित०	१५.२०
ध्यानस्य दृष्ट्वेति फलं	,,	१५.९९
ध्यानस्थितस्य ये दोषा	व्रतो०	४८९
ध्यानं पटिष्ठेन विधीयमानं	अमित०	१५.९४
ध्यानं यदह्नाय ददाति	,,	१५.९७
ध्यानं यदर्हदादीनां	धर्मसं०	७.१३०
ध्यानं वाऽध्ययनं नित्यं	प्रश्नो०	२४.८८
ध्यानं विधित्सता ज्ञेयं	अमित०	१५.२३
ध्यानं हि कुरुते नित्यं	भव्यध०	२.१९५
ध्यानं हीनाधिकं धत्ते	व्रतो०	४९४
ध्यानाध्ययनकर्मादि	प्रश्नो०	२०.७६
ध्यानानले सजिह्वाले	श्रा० सा०	१.३३७
ध्यानान्तर्भाव उत्सर्ग	पुरु० शा०	५.२३
ध्यानामृतान्नतृप्तस्य	यशस्ति०	६९६
ध्यानावलोकविगत	,,	४७०
ध्यानेन निर्मलेनाऽऽशु	अमित०	१५.२२
ध्यानेन शोभते योगी	,,	९.२६
ध्यानैकं प्रथमं काष्ठं	भव्यध०	५.२९७
ध्यायतो योगिनां पथ्य	अमित०	१३.२३
ध्यायन् विन्यस्य	यशस्ति०	६.७१
ध्यायेदर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय	पुरु० शा०	५.४०
ध्यायेद्यत्रोत्थितोऽशस्तं	,,	५.२५
ध्यायेद्वा वाङ्मयं ज्योतिः	यशस्ति०	६.७०
ध्येयं पदस्थपिण्डस्थ	अमित०	१५.३०
ध्वनत्सु सुरतूर्येषु	महापु०	३८.२९१
ध्वान्तं दिवाकरस्येव	अमित०	११.३९
ध्रियमाणः स तं त्यक्त्वा	प्रश्नो०	५.३८
ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं	कुन्द०	८.७४
ध्वजो धूमो हरिः श्वा गौः	,,	८.५९
न		
न कदाचिन्मृदुत्वं स्याद्	लाटी०	१.६०
न कम्पः पुलको दन्त	कुन्द०	८.१८१
न कर्त्तव्यं तदङ्गानां	लाटी०	५.६५
न कर्तव्या मतिधीरैः	,,	१.५६
न कालकूटः शितिकण्ठकण्ठे	श्रा० सा०	३.२२९
न कीर्त्ति-पूजादि-सुलाभ	प्रश्नो०	२४.१४३
न कुर्याद् दूरदृक्पातं	यशस्ति०	७०४
न कुत्सयेद् वरं बाला	कुन्द०	५.१६०
नकुलाक्षो मयूराक्षो	,,	८.३३३
नकुलो हृष्टरोमा स्यात्	,,	३.८९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न केवलं हि श्रूयन्ते	लाटी०	१.१७४
न केशधारणं कुर्यात्	प्रश्नो०	२४.२६
नक्षत्राङ्केऽष्टभिर्भक्ते	कुन्द०	८.६७
नक्षत्रेषु नभःस्थेषु	,,	१.४९
न क्रोधादिकषायाढ्यो	धर्मसं०	६.१५१
नखकेशादिसंहीना	प्रश्नो०	११.८८
न खट्वाशयनं तस्य	महापु०	३८.११६
नखाङ्गुली-बाहु-नासां	कुन्द०	१.१३५
न खात्कृतिर्न कण्डूतिः	यशस्ति०	७०३
नखेषु बिन्दवः श्वेता	कुन्द०	५.८४
नगर्यामप्ययोध्यायां	प्रश्नो०	९.२३
नगर्यां पुण्डरीकिण्यां	,,	१३.४५
न गर्वः सर्वदा कार्यः	कुन्द०	८.३०७
न गृह्णीयाद् धनं जीव	धर्मसं०	२.१६६
न गोचरं मतिज्ञानं	लाटी०	२.३१
नग्नत्वमेतत्सहजं	श्रा० सा०	१.३०९
न ग्राह्यं प्रोदकं धीरैः	प्रश्नो०	२२.८५
न ग्राह्यं व्रतिना निन्द्यं	,,	२४.५३
न चर्मपात्रगान्यत्ति	पुरु० शा०	४.३७
न च प्रकाशयेद् गुह्यं	कुन्द०	८.३१०
न च वाच्यमयं जीवः	लाटी०	१.१९३
न च वाच्यं स्यात्सद्दृष्टिः	,,	३.८१
न च स्वात्मेच्छया	,,	१.१०५
न चाकिञ्चित्करश्चैव	,,	३.२११
न चात्मघातोऽस्ति	सागार०	८.८
न चानध्यवसायेन	लाटी०	४.२५९
न चाभावप्रमाणेन	अमित०	४.५१
न चाऽऽशङ्क्यं क्रियाप्येषा	लाटी०	३.७९
न चाऽऽशङ्क्यं क्रियामात्रे	,,	४.२९
न चाऽऽशङ्क्यं निषिद्धः	,,	२.८०
न चाऽऽशङ्क्यं परोक्षास्ते	,,	३.१०
न चाशङ्क्यं पुनस्तत्र	लाटी०	१.१२
न चाऽऽशङ्क्यं प्रसिद्धं	,,	३.१७३
न चाऽऽशङ्क्यं यथासंख्यं	,,	३.१३६
न चाऽऽशङ्क्यं हि कृष्यादि	,,	४.१४९
न चाशंक्यमिमाः पञ्च	,,	४.१८०
न चा सिद्धमनिष्टत्वं	,,	३.८९
न जलस्थलदुर्गाणि	कुन्द०	८.३५९
न जाता तत्र सा वेश्या	प्रश्नो०	६.२४
न जातु मानेन निदान	अमित०	७.४३
न जातु विद्यते येषां	सं०भाव०	१४९
न जानासि त्वमेवाहं	प्रश्नो०	१६.१०३
न जायते सरागत्वं	अमित०	११.३६
न जीर्णां नावमारोहेत्	कुन्द०	८.३५८
न ज्वरवतो तृप्यति	कुन्द०	५.१४०
न ज्ञान-ज्ञानिनोर्भेदः	,,	४.४०
न ज्ञानमात्रतो मोक्षः	,,	४.३६
न ज्ञानविकलो वाच्यः	,,	४.३१
नटे पण्याङ्गनायां च	कुन्द०	२.६३
न तत्त्वं रोच्यते जीवः	,,	२.१४
न तथास्ति प्रीतिर्वा नास्ति	लाटी०	२.१०८
न तद्द्रव्यं न तत्क्षेत्रं	धर्मसं०	७.९१
न तस्य तत्त्वाप्ति	गुणभू०	२.३६
न तस्मै रोचते नव्यं	अमित०	१२.७०
नर्ति कृत्वा निविष्टेषु	श्रा०सा०	१.६७६
न तु धर्मोपदेशादि	लाटी०	३.२२४
न तु परदारान् गच्छति	रत्नक०	५९
न तु स्नानादि-शृङ्गार	पुरु०शा०	३.७३
न ते गुणा न तज्ज्ञानं	यशस्ति०	६६४
नतेर्गोत्रं श्रियो दाना	,,	८२०
न तैले न जले नास्त्रे	कुन्द०	८.३२५
नत्वा जिनोद्भवां वाणीं	भव्यध०	१.९
नत्वा वीरं जिनं देवं	,,	१.२
नत्वा वीरं त्रिभुवनगुरुं	,,	१.१
नदी-नद-समुद्रेषु	यशस्ति०	१३७
नदी-नदीदेशाद्रि	पुरु०शा०	४.१३६
नदी समुद्रगिर्यादि	धर्मोप०	४.१०७
न दुःखबीजं शुभदर्शन	अमित०	२.६९
न देहेन विना धर्मो	अमित०	९.१०१
न रोषो न तोषो न मोषो	,,	१५.१०६
न दोषो यत्र वेधादि	कुन्द०	८.८९
नद्यादिजलमत्रैव	प्रश्नो०	३.९३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नद्याः परतटाद् गोष्ठाद्	कुन्द०	८.३५४
नद्यादेः स्नानमद्र्यादेः	धर्मसं०	१.४१
न धार्यमुत्तमैक्षीणं	कुन्द०	२.२७
न नित्यं कुरुते कार्यं	अमित०	४.४३
न निमित्तद्विषां क्षेमो	कुन्द०	१.११३
न तिरस्यति सम्यक्त्वं	,,	१३.६
न निर्वृत्तिममी मुक्त्वा	,,	१२.२१
न निषिद्धः स आदेशो	लाटी०	३.१७५
न निषिद्धस्तदादेशो	,,	३.१७०
न निषिद्धोऽथवा सोऽपि	लाटी०	४.९
न निषेव्या परनारी	अमित०	६.६५
न पर्वेन च तीर्थेषु	कुन्द०	२.४
ननु कथमेवं सिद्ध्यति	पुरुषा०	२१९
ननु कार्यमनुद्दिश्य	लाटी०	३.७७
ननु केनानुमीयेत	,,	१.८२
ननु केनापि स्वीयेन	,,	१.२९
ननु चानर्थदण्डोऽस्ति	,,	१.१४१
ननु चास्ति स दुर्वारो	,,	५.७९
ननु चैवं मदीयोऽयं	,,	५.२८
ननु जलानलोर्व्यन्न	,,	४.१४०
ननु तत्त्वरुचिः श्रद्धा	,,	२.६४
ननु तद्दर्शनस्यैतल्लक्षणं	,,	३.१
ननु व्यक्तुमशक्तस्य	,,	४.१५२
ननु नेहां विना कर्म	,,	३.२२८
ननु प्रमत्तयोगो यः	,,	४.११५
ननु प्राणवियोगोऽपि	,,	४.१०५
ननु यथा धर्मपल्यां	,,	१.१८९
ननु या प्रतिमा प्रोक्ता	,,	२.१३७
ननु रात्रिभुक्तित्यागो	,,	१.३९
ननु विरतिशब्दोऽपि	,,	४.५६
ननु वै केवलज्ञान	,,	२.१०३
ननु व्रतप्रतिमायामेतत्	,,	६.४
ननु शङ्काकृतो दोषो	,,	३.१७
ननु शुद्धं यदन्नादि	,,	१.२२
ननु सन्ति चतस्रोऽपि	लाटी०	३.२२
ननु साक्षान्मकारा	,,	१.८

ननु साधारणं यावत्	लाटी०	१.१०८
ननु हिंसात्वं किं नाम	,,	४.५९
ननु हिंसा निषिद्धा स्याद्	,,	४.१२०
ननूल्लेखः किमेतावान्	,,	२.२७
नन्दीश्वरं दिनं सिद्ध	रत्नमा०	४९
नन्दीश्वर महापर्व	धर्मसं०	६.३१
नन्दीश्वरेषु देवेन्द्रैः	सं० भाव०	११८
नन्द्यावर्तं स्वस्तिकफल	यशस्ति०	५१२
नन्वनिष्टार्थसंयोग	लाटी०	३.८४
नन्वस्ति वास्तवं सर्वं	,,	२.४८
नन्वस्तु तत्तदाज्ञाया	,,	१.८४
नन्वात्मानुभवः साक्षात्	,,	२.४४
नन्वावृत्तिद्वयं कर्म	,,	३.१५३
नन्वेवमीर्यासमितौ	,,	४.११२
न धर्मसाधनमिति	सागार०	८.५
न धर्मेण विना शर्म	श्रा०सा०	१.११२
न ध्यायति पदस्थादि	पुरु०शा०	५.३२
न पश्यति न जानाति	अमित०	९.९४
न पश्येत्सर्वदाऽऽदित्यं	कुन्द०	८.३२३
न पारम्पर्यतो ज्ञान	अमित०	४.६७
न पिबेत्पशुवत्सोऽयं	कुन्द०	३.५३
न पुनश्चरणं तत्र	लाटी०	३.२५३
न प्रतिष्ठासमो धर्मो	प्रश्नो०	२०.१८९
न प्रमाणीकृतं वृद्धैः	लाटी०	३.२८६
न प्रश्नो जन्मतः कार्यो	कुन्द०	३.१३
न प्रीतिवचनं दत्ते	कुन्द०	५.१५१
न प्रोच्यते मर्म वचः परस्य	व्रतो०	९३
न बुध्यते तत्त्वमतत्त्वभङ्गी	अमित०	७.५१
नभस्यनन्तप्रदेशत्वं	भव्यध०	२.१४८
नमस्वता हतं ग्रावघटीयन्त्र	धर्मसं०	६.५३
न भीषणो दोषगणः	अमित०	२.७१
न भूतं भुवने नृणां	प्रश्नो०	१८.१८६
नभोमार्गेऽथवोक्तेन	गुणभू०	३.१३३
नमदमरमौलिमण्डल	यशस्ति०	५५३
नमदमरमौलिमन्दल	यशस्ति०	५४२
नमन्ति यदि गां मूढाः	प्रश्नो०	३.९४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमन्ति पे पशून् मूढा	प्रश्नो०	३.९१
नमन्नृपशिरोरत्न	श्रा०सा०	१.३६
नमन्नृपशिरोहीर	,,	१.३३४
नमः शब्दपरौ चेतौ	महापु०	४०.४२
नमः श्रीवर्धमानाय	रत्नक०	१
नमस्कारं कुरु त्वं भो	प्रश्नो०	१८.४२
नमस्कारं विधायोच्चैः	,,	२१.८६
नमस्कारादिकं ज्ञानं	,,	११.६७
नमस्कुर्यात्ततो भक्त्या	कुन्द०	२.२९
नमस्कृत्य जिनाधीशं	,,	८.५६
नमस्कृत्य त्रियोगेन	धर्मसं०	४.८९
नमामि भारतीं जैनीं	धर्मोप०	१.२
न मांससेवने दोषो	श्रा०सा०(उक्तं)	३.६७
	उमा०	२६९
न मिथ्यात्वसमः शत्रुः	अमित०	२.२८
नमिनाथं जिनाधीशं	प्रश्नो०	२१.१
न मे मूर्च्छेति यो वक्ति	पुरुशा०	४.१२१
नमेर्विद्याधराधीश	प्रश्नो०	१६.६८
न मे शुद्धात्मनो यूयं	धर्मसं०	५.५५
नमोऽन्ते नीरजः शब्दः	महापु०	४०.५
नम्रामरकिरीटांशु	यशस्ति०	६४७
नयनविहीनं वदनं	श्रा०सा०	१.९९
नयनाभ्यां शरीरं यः	प्रश्नो०	१८.१६५
नयनेन्द्रियसंसक्तः	उमा०	२०६
नयशास्त्रं जानन्नपि	व्रतो०	४१
न यस्य हानितो हानिः	अमित०	१५.८३
न याचनीया विदुषेति	,,	१०.७२
नयेति तेन सा प्रोक्ता	प्रश्नो०	५.४१
न यो विविक्तमात्मानं	अमित०	१५.७६
नरककर्मसारं पापवृक्षस्य	प्रश्नो०	१२.१७
नरकगमनमार्गं	,,	१२.२७
नरकगृहकपाटं	,,	१३.४०
नरकगृहकपाटं स्वर्गं	प्रश्नो०	२२.११४
नरक-गृह-प्रतोली	,,	१५.५३
नरक-द्वीप-पयोनिधि	श्रा० सा०	२.९
	उमा०	२५५
नरकादिगतिष्वद्य	धर्मसं०	७.१७५
नरत्वं दुर्लभं जन्तोः	,,	१.३
नरत्वेऽपि पशूयन्ते	सागार०	१.४
नर-नाग-सुरेशत्व	गुणभू०	१.४
नरलोके विदेहादौ	धर्मसं०	४.८६
नराणां गोमहिष्यादि	लाटी०	४.२७१
नरेऽधीरे वृथा वर्म	यशस्ति०	५८९
नरे परिग्रहग्रस्ते	श्रा० सा०	३.२५३
	उमा०	३८७
नरेषु चक्री त्रिदशेषु	अमित०	१.१२
नरेषु मत्स्येषु समायुषं च	भव्यध०	३.२०६
नरोरग-नराम्भोज	यशस्ति०	४५१
न लभन्ते यथा लोके	प्रश्नो०	१६.२०
न लालयति यो लक्ष्मीं	कुन्द०	२.१०९
नलो युधिष्ठिरो भीमो	भव्यध०	१.११०
नवतत्त्वदेशको देवो	कुन्द०	८.२४९
नवतालं भवेद् रूपं	कुन्द०	१.१२८
नवभागीकृते वस्त्रे	कुन्द०	२.२९
न वक्तव्यमिति प्राज्ञैः	अमित०	२.१९
न वक्तव्योऽणुमात्रोऽयं	,,	४.२९
नव ग्रैवेयकेषूच्चैः	भव्यध०	३.२१८
न वदत्यनृतं स्थूल	सं० भाव०	१३
नवनिधिसप्तद्वय	रत्नक०	३८
नवनिष्ठापरः सोऽनु	सागार०	७.३०
नवनीतं च त्याज्यं	पुरुषा०	१६३
नवनीतं मधुसमं	उमा०	२९८
नवनीतमपि त्याज्यं	पुरु० शा०	४.३१
नवंतीत-वसामद्य	श्रा० सा०	३.२७३
	उमा०	४०९
नवनीत समं ज्ञेयं	प्रश्नो०	१५.८
नवनीतादनल्पाल्पाहः	,,	१७.४९
नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः	रत्नक०	११३
नवपुण्यैर्विधातव्या	श्रा० सा०	३.३२३
	उमा०	४३९
नवप्रकारस्मर	व्रतो०	३६२
नवमं प्रतिमास्थानं	लाटी०	६.२९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

नवमे च सुखी गेहे	भव्यध०	६.३६३
नवमे मास्यतोऽभ्यर्णे	महापु०	३८.८३
नवयौवनसम्पन्ना	अमित०	११.११६
नवराज्योल्लसल्लक्ष्मी	श्रा० सा०	१.५६५
नवलक्षाङ्गिनोऽत्रैव	प्रश्नो०	२३.१८
नवविधो विधिः प्रोक्तः	सं० भाव०	८०
नवाङ्गुलं तु वैश्यानां	कुन्द०	१.७०
नवाङ्गुलं पुत्रवृद्धि	उमा०	१०३
न वाच्यं द्यूतमात्रं	लाटी०	१.११८
न वाच्यं पाठमात्र	,,	४.१९
न वाच्यं भोजयेदन्नं	,,	१.४४
न वाच्यमकिञ्चित्करं	,,	१.६३
न वाच्यमेकमेवैतत्	,,	१.१३५
नवासंज्ञिनि पञ्चाक्षे	,,	४.६३
न विद्यते यत्र कलेवरं	अमित०	१४.३१
न विना दर्शनं शेषाः	पुरु० शा०	६.९५
न विना प्राणिविधाता	{ पुरुषा० { श्रा. सा. उक्तं	६५ ३.३२
न विना शम्भुना नूनं	अमित०	४.७८
न वियोगः प्रियैः सार्धं	,,	११.७५
न विरागा न सर्वज्ञाः	,,	४.७१
न वेत्ति मद्यपानाच्च	पूज्य०	१५
नवैव वासुदेवाश्च	प्रश्नो०	७.४६
न वै संदिग्धनिर्वाहैः	यशस्ति०	१८७
नवोपचारसंपन्नः	,,	७४४
न व्याप्यते महात्मा	व्रतो०	५०
न व्रतं दर्शनं शुद्धं	सं० भा०	७७
न व्रतं स्थितिग्रहणं	यशस्ति०	३७६
न शक्नोति तपः कर्तुं	अमित०	९.१००
न शठस्येह यस्यास्ति	,,	१३.५९
न शरीरात्मयोरैक्यं	,,	४.२३
न शीघ्रं गमनं चैव	प्रश्नो०	२४.४६
न शीता ज्ञातिषु प्रायः	कुन्द०	८.३९४
न शुक्र-सोमयोः कार्यं	कुन्द०	२.१२
न शुद्धः सर्वथा जीवो	अमित०	४.३३
न शोधयेन्न कण्डूयेद्	कुन्द०	४.६
नश्यति कर्म कदाचन	अमित०	१४.४९
नश्यात्कर्ममलं	महापु०	४०.११८
न श्राद्धं दैवतं कर्म	धर्म सं०	३.२५
न श्रियस्तत्र तिष्ठन्ति	अमित०	१२.५७
न श्वभ्रायास्थितेर्नापि	उमा०	४९
न श्वभ्रायास्थितिर्भुक्ति	शा० सा०	१.३१२
नष्टाधिमासदिनयो	महापु०	३९.१६०
नष्टः परिजनस्तस्माद्	प्रश्नो०	७.८
नष्टा ये मुनयः पूर्वं	,,	२३.७३
नष्टे धने भवेद् दुःखं	,,	१४.२०
न सदोषः समः कर्तुं	अमित०	१३.७६
न सम्यक् करणं तस्य	,,	८.७
न सम्यक्त्वं विना मुक्तिः	पुरु० शा०	३.१५९
न सम्यक्त्वसमं किंचित्	रत्नक०	३४
न सम्यक्त्वात्परो बन्धुः	श्रा० का०	१.७५२
न सार्वकालिके मौने	अमित०	१२.११०
न सा सम्पद्यते जन्तोः	,,	१५.२
न सुवर्णादिकं देयं	,,	९.७९
न सेव्या त्रिधा वेश्या	,,	१२.७६
न सोऽस्ति पुद्गलः कोऽपि	धर्मसं०	७.५८
न सोऽस्ति सम्बन्ध	अमित०	१४.१८
न स्तुयादात्मनात्मानं	यशस्ति०	३६८
न स्फारयुतपोभार	श्रा० सा०	१.४३७
न स्यात्सुखममुनापि	प्रश्नो०	२४.८१
न स्यादणुव्रतार्हो यो	लाटी०	४.३
न स्यान्मिथ्यादृशो ज्ञान	,,	३.९
न स्वतोऽग्नेः पवित्रत्वं	महापु०	४०.८८
न स्वतो जन्तवः प्रेर्यो	यशस्ति०	१४५
न स्वपेन्नन्यमायासं	कुन्द०	१.४६
न स्वर्गाय स्थितेर्भुक्तिः	,,	१३३
न हन्मीति व्रतं क्रुध्यन्	{ सागार { धर्मसं०	४.१७ ३.१५
न हन्यते तेन जलेन	अमित०	१४.३५
नहि कालकलैकापि	लाटी०	६.२३
न हितं विहितं किं तन्ना	गुणभू०	१.३
न हि सम्यग्व्यपदेश	पुरुषा०	३८

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न हिंस्यात्सर्वभूतानी	सागार०	२.८१
न हीनाङ्गो नाधिकाङ्गो	धर्मसं०	६.१५०
नाकारः स्यादनाकारो	लाटी०	२.४७
नाकिनिकायस्तु	अमित०	१५.११४
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां	श्रा० सा०	३.२६
	उमा०	२६७
नाक्षमित्वमविघ्नाय	यशस्ति०	५८६
नागदत्तः पतिस्ते यो	धर्मसं०	६.११८
नागदत्तोऽभवत्तत्र	,,	६.११०
नागद्धंयामकाश्चैते	कुन्द०	८.२०६
नागवल्लीदलास्वादो	कुन्द०	२.३५
नागवल्ल्यादिजं पत्रं	प्रश्नो०	२२.६७
नाङ्गहीनमलं छेत्तुं	रत्नक०	२१
	श्रा०स०	१.१७४
नाग्नार्त्तः प्रोषितो यातः	कुन्द०	२.१
नाडीसप्तशतानि स्युः	कुन्द०	५.२११
नाणिमा महिमेवास्य	महापु०	३९.१०५
नातिक्षारं न चात्यम्लं	कुन्द०	३.४३
नातिव्याप्तिश्च तयोः	पुरुषा०	१०५
नात्मा कर्म न कर्मात्मा	यशस्ति०	२२१
नात्मा सर्वगतो वाच्यः	अमित०	४.२५
नात्यासन्नो न दूरस्थो	कुन्द०	२.९०
नात्रासदिति शब्देन	लाटी०	५.४
नाथामहेऽद्य भद्राणां	सागार०	१.८
नादेयं केनचिद्दत्त	लाटी०	५.४४
नादेयं दीयमानं वा	,,	५.५१
नादेशं नोपदेशं वा	,,	३.१९२
नानगारा वसून्यस्मत्	महापु०	३८.७
नानटीति कृतचित्र	अमित०	५.१०
नानानर्थकरं द्यूतं	,,	१२.५४
नाना प्रकारा भुवि वृक्षजाती	,,	७.६२
नानाभेदा कूटमानादिभेदैः	,,	३.४८
नानाविधैः स्तोत्रैःसुगद्यपद्यैः	भव्यध०	१.५३
नानाशास्त्रामृतैरेतं	श्रा० सा०	१.६२२
नानीतं कन्दुकादिभ्यो	धर्म सं०	४.९१
नान्यलोकपतिःकार्या	अमित०	४.५

नापरीक्ष्य स्पृशेत्कन्यां	कुन्द०	५.१२१
नापाकृतानि प्रभवन्ति	अमित०	१.१
नापि कश्चिद् विशेषोऽस्ति	लाटी०	३.२१७
नापि धर्मः क्रियामात्रं	,,	२.८७
नापूर्णे समये सर्वे	अमित०	११.७७
नाप्तेषु वहुत्वं यः	यशस्ति०	५५६
नाभावब्जं ततो ध्यायेत्	पुरु०शा०	५.५०
नाभिदेशतलस्पष्टो	कुन्द०	८.२१०
नाभिस्थितात्ततोऽर्धेन्दु	पुरु० शा०	५.५५
नाभितिदानतो दानं	अमित०	९.८७
नाभेयाद्यान् क्षुधापृष्ठ	धर्मसं०	७.१८०
नाभौ चेतसि नासाग्रे	यशस्ति०	६८७
नामौ नेत्रे ललाटे च	,,	६०६
नात्युच्चैर्नातिनीचैश्च	कुन्द०	८.१२१
नामकर्मविधाने च	महापु०	४०.१३२
नामग्रहं द्वये प्रश्नो	कुन्द०	१.१००
नामतः सर्वतो मुख्यं	लाटी०	३.१३७
नामतः स्थापनतश्च	उमा०	१७३
नामतः स्थापनातोऽपि	सागार०	२.५४
नामतः स्थापना द्रव्य	धर्मसं०	६.८५
नाम वज्रकुमारोऽय	प्रश्नो०	१०.२३
नाम संस्थापनाद्रव्यक्षेत्र	,,	१८.२३
नामादिभिश्चतुर्भेदैः	पूज्य०	७८
नामादीनामयोग्यानां	अमित०	८.३५
नामान्यासां यथार्थानि	कुन्द०	५.३१
नामापि कुरुते यस्या	अमित०	१२.९२
नामिश्रं लवणं ग्राह्यं	कुन्द०	३.४८
नामूर्त्तिः सर्वथा युक्तः	,,	४.४४
नामोच्चारोऽर्हदानीनां	गुणभू०	३.१०५
नामोच्चार्यं जिनादीनां	धर्मसं०	६.८६
नाम्नः पात्रायते जैनः	,,	६.१७७
नाम्ना मिथ्यात्वकर्मकं	लाटी०	२.१६
नाम्ना वृषभसेनाया	उमा०	२३७
नायं ना गृहितो देव	प्रश्नो०	१३.७९
नायं शुद्धोपलब्धौ स्यात्	लाटी०	३.२७६
नायं स्यात् पौरुषायत्तः	,,	३.३१८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारकाणां चतुर्लक्षाः	धर्मसं०	७.१०९
नारकैरपरैः क्रुद्धैः	अमित०	१२.६०
नारीभ्योऽपि व्रताढ्याभ्यो	लाटी०	२.१६६
नारीमित्रादिके स्नेहं	प्रश्नो०	२२.१२
नारीरक्ताधिके शुक्रे	कुन्द०	५.२००
नार्यङ्गघट्टनोद्भूतं	,,	२३.१४
नार्यां परिचयं सार्धं	अमित०	१२.९०
नार्या समं न कुर्वन्ति	प्रश्नो०	२३.७०
नालं छद्मस्थताप्येषा	लाटी०	३.१५२
नाली-सूरणकन्दो	अमित०	६.८४
नाली-सूरण-कालिन्द	सागार०	५.१६
नावश्यं नाशिनेर्हिंस्यो	,,	८.७
नाऽऽशङ्क्यं चास्ति	लाटी०	३.९५
नाशं पाण्डवराज्यमाप	व्रतो०	७२
नाशं पूर्वार्जितानां	प्रश्नो०	१८.६३
नाशरीरी मया दृष्टः	अमित०	४.८१
नासक्त्या सेवन्ते	,,	६.६७
नासम्भवमिदं यस्मात्	लाटी०	३.१२
	,,	३.२९६
नासाग्रीवा नखाः कक्षा	कुन्द०	५.१६
नासामुखे तथा नेत्रे	उमा०	११०
नासायां दक्षिणस्यां तु	कुन्द०	१.१०४
नासावेधं वधं बन्धं	भव्यध०	४.२६४
नासिका-नेत्र-दन्तौष्ठ	कुन्द०	५.२४
नासंबलः चलेन्मार्गे	कुन्द०	८.३५४
नासिद्धं निर्जरातत्त्वं	लाटी०	३.१५७
नासिद्धं बन्धमात्रत्वं	,,	३.७८
नास्तिकस्यापि नास्त्येव	कुन्द०	११.९४
नास्ति क्षुधासमो	सं०भाव०	१२४
नास्ति चार्हत्परो देवो	लाटी० (उक्तं)	२.१४
नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य	सं०भाव०	१०७
नास्ति दूषणमिहामिषाशने	अमित०	५.२०
नास्ति मृत्युसमं दुःखं	कुन्द०	१२.७
नास्त्यत्र नियतः	लाटी०	३.२१९
नास्त्यर्हतः परो देवो	पूज्य०	१२
नास्त्यासिद्धं निरीहत्वं	लाटी०	३.२२७
नास्वामिकमिति ग्राह्यं	सागार०	४.४८
नाहं कस्यापि मे कश्चिन्न	अमित०	१५.६९
नाहं देहो मनो नादिम	महापु०	३८.१८३
नाहरन्ति महासत्त्वा	यशस्ति०	७५४
	सा०सा०	३.३४१
	उमा०	४४६
निकटीभूय गुर्वादेः	अमित०	८.८३
निकर्तितुं वृत्तवनं	,,	७.४९
निःकाङ्क्षित गुणे ख्याता	प्रश्नो०	६.२
निःकाङ्क्षिताख्यं परमं	,,	६.४५
निःकारणं कृतैर्दुःखैः	धर्मसं०	७.१८७
निःकैतवोपचाराया	गुणभू०	१.४२
निक्षेपणं समर्थस्य	लाटी०	५.५६
निक्षेपे मारिचे चूर्णे	कुन्द०	८.२२४
निखिलसुखफलानां	अमित०	१.७१
निगडेनेव बद्धस्य	,,	८.९०
निगद्य यः कर्कशमस्तचेतनो	,,	१०.४८
निगूहति द्रुतं दोषान्	उमा०	५६
	श्रा०सा०	१.४०८
निघ्नानेनाहिंसामात्मा	अमित०	६.१६
निजधर्मोऽयमत्यन्तं	पद्म०पंच०	५६
निजनामाङ्कितं तत्र	भव्यध०	५.२२
निजबीजबलान्मलिनापि	यशस्ति०	५४४
निजवंशोपकरणार्थं	भव्यध०	५.१६
निजशक्त्याशेषाणां	पुरुषा०	१२६
निजात्मानं निरालम्ब	सं०भाव०	१६४
नित्यकर्मणि एकाग्रचेतसा	प्रश्नो०	१८.१०७
नित्यताऽनित्यता तस्य	अमित०	४.४२
नित्यं दुःखसमाश्रयो	व्रतो०	३४९
नित्यं देवगुरुस्थाने	कुन्द०	१.११७
नित्यनैमित्तिकाः कार्याः	रत्नम०	४५
नित्यं पतिमनीभूय	धर्मसं०	२.१७४
नित्यं भर्तृमनीभूय	सागार०	३.२८
नित्यमित्थं जिनेन्द्रार्चा	पुरु०शा०	६.६१
नित्यंरागी कुदृष्टि	लाटी०	२.८८
नित्यं सामायिकादीनि	धर्मसं०	६.१७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित्यं सन्नियमो मेऽपि	प्रश्नो०	१६.७१
नित्यपूजाविधायी यः	धर्मसं०	६.१४१
नित्यपूजाविधिकेन	उमा०	९६
नित्यमपि निरुपलेपः	पुरुषा०	२२३
नित्यस्नानं गृहस्थस्य	यशस्ति०	४३०
नित्या चतुर्मुखाख्या च	सं०भाव०	११४
नित्याष्टाह्निकसच्चतुर्मुख	सागार०	१.१८
नित्ये जीवे सर्वदा	अमित०	७.५७
नित्येतर-निगोताग्नि	धर्मसं०	७.११०
नित्यो नैमित्तिकश्चेति	अमित०	१२.१३५
नित्ये नैमित्तिके चैत्य	लाटी०	२.१७०
नित्यो नैमित्तिकश्चेति	पुरु०शा०	३.१२३
निदानमायाविपरीत	अमित०	७.१८
निद्राच्छेदे पुनश्चित्तं	सागार०	६.२८
निद्रादिकर्म नष्टत्वान्निद्रा	प्रश्नो०	३.३२
निद्राहास्यवचोगतिस्खलनता	व्रतो०	६५
निधयो नव रत्नानि	सं०भाव०	१७५
निधानमिव रक्षन्ति	अमित०	१२.३३
निधानमेव कान्तीनां	,,	११.३८
निधानादि धनग्राही	धर्मसं०	३.५८
निधानादि धनं ग्राह्यं	,,	३.५७
निधाय चित्तमेकाग्रं	प्रश्नो०	१२.१४३
निधाय स्ववशे चित्तं	,,	१३.४३
निधिः सर्वसुखादीनां	,,	१२.६९
निधुवनकुशलाभिः	अमित०	११.१२०
निन्दकश्च विना स्वार्थं	लाटी०	४.५
निन्दकेषु न कुर्वीत	पुरु०शा०	६.८३
निन्दनं तत्र दुर्वाररागादौ	लाटी०	२.११६
निन्दन्तु मानिनः सेवां	कुन्द०	२.७४
निन्दाऽऽक्रोशोमर्मगालिश्चपेट	व्रतो०	३६९
निन्द्यासु भोगभूमीषु	सं०भाव०	१३७
निद्रानुवमनस्वेद	कुन्द०	३.२६
निःप्रभाः पुरतो यस्य	श्रा०सा०	१.११
निबिडं या कृतापीडा	श्रा०सा०	१.१९९
निमज्जति भवाम्भोधौ	पुरु०शा०	४.११७
निभूयोः परं प्रायः	कुन्द०	८.३३६
निमूलकाषं स निकृत्य	अमित०	३.६८
निमेषार्धार्धमात्रेण	कुन्द०	११.४५
निम्बकेतकिमुख्यानि	धर्मसं०	४.२४
निम्बादि कुसुमं सर्वं	प्रश्नो०	१७.१०१
नियतं न बहुत्वं चेत्	यशस्ति०	८४
नियमस्य विभङ्गेन	प्रश्नो०	२.४७
नियमात्तद्बहिः स्थानां	धर्मसं०	४.६
नियमितकरणग्रामः	यशस्ति०	५७१
नियमेन विना प्राणी	प्रश्नो०	१६.२७
नियमेन विना मूढ	,,	१७.१३२
नियमेन सदा नृणां पुण्यं	,,	१६.३०
नियमेनान्वहं किञ्चिद्	सागार०	२.४९
नियमेनैव यो दध्या	प्रश्नो०	१९.६५
नियमेनोपवासं यः	,,	१९.३६
नियमोऽपि द्विधा ज्ञेयः	लाटी०	४.१६४
नियमो यमश्च विहितौ	रत्नक०	८७
निरर्थकोऽमरो जातो	प्रश्नो०	५.१५
नियम्य करणग्रामं	अमित०	१५.१
युक्तोऽपि महैश्वर्यें	{ उमा०	३६५
	{ श्रा० सा०	२.२११
निरञ्जनं जिनाधीशं	यशस्ति०	६४४
निरतःकात्स्न्र्यनिवृत्तौ	पुरुषा०	४१
निरतिक्रमणमणुव्रत	रत्नक०	१३८
निरन्तरानेकभवार्जितस्य	अमित०	१४.५६
निरन्तरे स्य गर्भादीदि	धर्मसं०	६.२०२
निरन्नैर्मैथुनं निद्रा	कुन्द०	१.११४
निरस्त कर्म सम्बन्ध	अमित०	१५.७४
निरस्तदेहो गुरुदुःख	,,	३.७०
निरस्तदोषे जिननाथशासने	,,	३.८०
निरस्तसर्वाक्षकषायवृत्तिः	,,	१३.८७
निरस्तसर्वेन्द्रियकार्यजातो	,,	१५.१०३
निरस्यति रजः सर्वं	,,	१३.१८
निराकर्तुं विषं शक्यं	कुन्द०	८.२२
निराकुलतमा देव	धर्मसं०	५.४८
निरातङ्को निराकारो	कुन्द०	११.३३
निराधारो निरालम्बः	यशस्ति०	१२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निरागसः पराधीनाः	अमित०	१२.९४
निरालम्बं तु पदध्यानं	सं० भाव०	१६६
निरालस्यो निरुद्वेगो	अमित०	१५.२७
निराशत्वात्तनैः सङ्ग	धर्मसं०	७ १९५
निराहारश्चोपसर्ग	प्रश्नो०	३.६१
निरीक्ष्य यत्नतो भूमिं	,,	२४.४७
निरुपमगुणयुक्तस्त्यक्त	,,	८.७०
निरुपमनिरवद्यशर्ममूलं	अमित०	१४.७५
निरुढसप्तनिष्ठोऽङ्गि	सागार०	७.२१
निरूपितं तया सत्यं	प्रश्नो०	२१.७०
निरोगत्वं भवेद् धर्माद्	कुन्द०	१०.९
निरोधनं समाधाय	कुन्द०	५.२३२
निर्गतोऽथ वसन्तर्तौ	श्रा०सा०	१.६९८
निर्गत्यान्यद्-गृहं	सागार०	७.४२
निर्ग्रन्थवृत्तिमादाय	धर्मसं०	२.९२
निर्ग्रन्थान् ये गुरून्	प्रश्नो०	३.१४५
निर्ग्रन्थाय नमो वीत	महापु०	४०.३९
निर्ग्रन्थेषु पुलाकादि	पुरु० शा०	३.१०१
निर्ग्रन्थोऽन्तर्बहिर्मोह	लाटी०	३.१९४
निर्ग्रन्थो यो मुनिर्बाह्या	धर्मोप०	१.१५
निर्ग्रन्थोऽसौ महापात्रं	,,	४.१५०
निर्घाटिता हता नैव	प्रश्नो०	९.२५
निर्जगाम कथं तस्य	कुन्द०	११.७५
निर्जन्तुकेऽविरोधे	अमित०	१०.१४
निर्जरा च तथा लोको	पद्म० पंच०	४४
निर्जरादिनिदान यः	लाटी०	३.११०
निर्जरा द्विविधा प्रोक्ता	भव्यध०	२.१९४
निर्जरा संवराभ्यां यो	गुणभू०	१.२०
निर्जरा शातनं प्रोक्ता	पद्म० पंच०	५३
निर्दग्धकर्मसन्तान	धर्मसं०	६.६४
निर्दम्भः सूदयो दानी	कुन्द०	५.२१
निर्दिष्टं लक्षणं पूर्वं	लाटी०	५.२१२
निर्दिष्टस्थानलाभस्य	महापु०	३९.४५
निर्दिष्टाऽनर्थदण्डस्य	लाटी०	५.१५०
निर्देशोऽयं यथोक्ताया	,,	४.१४
निर्दोषं प्रासुकं शस्यं	उमा०	२.३५
निर्दोषां सुनिमित्तसूचित	सागार०	२.५८
निर्दोषाहारिणां सर्वं	प्रश्नो०	२४.८५
निर्दोषोऽर्हन्नेव देवं	गुणभू०	१.३१
निर्धातु तनुमिद्धाभं	पुरु० शा०	५.५६
निर्निदानो निरापेक्षो	अमित०	१५.२९
निर्बाधं संसिद्धयेत्	पुरुषा०	१२२
निर्बाधोऽस्ति ततो जीवः	अमित०	४.४६
निर्बीजतेव तन्त्रेण	यशस्ति०	७३
निर्ममत्वेन कायस्थ	पुरु० शा०	५.२२
निर्मलः सर्ववित्सार्वः	श्रा० सा०	१.८८
निर्भयोऽभयदानेन	उमा०	२३८
निर्मारोऽस्ति प्रसादार्त्ते	धर्मसं०	२.१०३
निर्भीकैकपर्दो जीवः	लाटी०	३.६९
निर्मनस्के मनोहंसे	यशस्ति०	५९३
निर्ममत्वं शरीरादौ	प्रश्नो०	२२.२४
निर्ममो निरहंकारो	यशस्ति०	८३४
निर्मलं केवलज्ञान	अमित०	१२.११६
निर्मलः सर्ववित् सार्वः	उमा०	१०
निर्मलस्यापि शीलस्य	प्रश्नो०	१५.४२
निर्मलेदर्पणे यद्वत्	,,	११.४१
निर्मलेनारनालेन	कुन्द०	१.१७७
निर्माप्यं जिन चैत्यद्गृह	सागार०	२.३५
निर्माल्यकमिव मत्वा	अमित०	१०.७
निर्मूर्च्छं वस्त्रमात्रं यः	गुणभू०	३.७३
निर्मूलयन् मलान्मूल	सागार०	३.८
निर्मोहो निर्मदो योग	व्रतो०	४.१६
निर्यापकं महाचार्यं	प्रश्नो०	२२.३२
निर्यापकेन्द्रप्रतिमा प्रतिष्ठा	गुणभू०	३.१०९
निर्यापके समर्प्य स्वं	सागार०	८.४४
निर्लाञ्छनासतीपोषौ	,,	५.२२
निर्लेपस्यानिरूपस्य	कुन्द०	११.५४
निर्वाणदीक्षयात्मानं	महापु०	३८.२९३
निर्वाणसाधनं यत्	,,	३९.२८
निर्वाणहेतौ भवपातभीतैः	अमित०	१५.१०१
निर्वापितं समुत्क्षिप्य	सं० भाव०	८४
निर्विघ्नेन भवन्त्येव	प्रश्नो०	२०.२२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्विचारावसारासु	यशस्ति०	५९१
निर्विशन्तोऽपि कल्पेशाः	पुरु०शा०	६.३४
निर्व्याजया मनोवृत्त्या	सागार०	२.४६
निर्व्याजहृदया पत्युः	कुन्द०	५.१६४
निर्व्यापारो निरास्वादो	व्रतो०	४.१५
निर्व्यूढसप्तधर्मोऽङ्घ्रि	धर्मसं०	५.३६
निवृत्तानि यदाक्षाणि	कुन्द०	५.२३७
निर्वृत्तिर्दीयते तेन	अमित०	१३.६९
निर्वृतिस्तरसा वश्या	,,	१३.४७
निर्वेदादिमनोभावैः	श्रा० सा०	१.७३४
निवर्तमानं व्रततो गुरुभ्यो	अमित०	१.४८
निवारिता शेष परिग्रहेच्छ	,,	१०.२९
निविष्टा कुत्रचिद्द् शे	श्रा० सा०	१.२७२
निवेशितं बीजमिला	अमित०	१०.४६
निवेश्य विधिना दक्षो	,,	१५.४७
निःशङ्कात्मप्रवृत्तेः	यशस्ति०	२४
निःशंकादिगुणान्विता	प्रश्नो०	१६ १११
निःशङ्कितं तथा नाम	लाटी०	३.३
निःशङ्किततयाक्षार्थं	पुरु० शा०	३.६४
निःशङ्कित-निःकाङ्क्षित	व्रतो०	५३३
निःशङ्कितादयोऽपूर्णाः	गुणभू०	३.८४
निःशङ्कितादयो ये ते	प्रश्नो०	११.३७
निःशङ्कितोऽञ्जनश्चौरः	धर्मोप०	१.२७
निशम्य यस्य नामापि	पुरु०शा०	४.१४
निशम्य वनपालस्य	श्रा० सा०	१.५७
निशम्याचिन्तयेद् मिल्लो	धर्म सं०	२.५५
निशम्येति गणाधीश	,,	६.१०८
निःशल्योऽस्ति व्रती सूत्रे	,,	३.४
निशातधारमालोक्य	उमा०	३४०
	श्रा० सा०	३.१३५
निशान्ते घटिकायुग्मे	कुन्द०	१.२०
निशां नयन्तः प्रतिमायोगेन	सागार०	७.७
निशायामागते नाथ	श्रा० सा०	१.४५४
निशा षोडश नारीणां	कुन्द०	५.७९
निशाशनं कथं कुर्युः	पुरु० शा०	४.४६
निशाशनं वितन्वानाः	श्रा० सा०	३.१११
निशि निशाचरा दुष्टा	भव्यध०	१.८६
निशीथ-वासरस्येव	अमित०	२.४२
निशीथिन्यां सदाहारं	प्रश्नो०	२२.९४
निःशेषेऽह्नि बुभुक्षां ये	धर्मोप०	४.६६
	श्रा० सा०	३.११७
निश्चयं कुरु भो मित्र	प्रश्नो०	३.५४
निश्चयं कृत्य तीर्थेशं	,,	३.१०१
निश्चयमबुध्यमानो	पुरुषा०	५०
निश्चयमिह भूतार्थं	,,	५
निश्चयाराधना द्वेधा	धर्म सं०	७.२९
निश्चयोचितचारित्रैः	यशस्ति०	२२७
निश्चलं स्ववक्षे चित्तं	प्रश्नो०	१२.१३३
निश्चित्य प्रासुकं मार्गं	लाटी०	४.२१८
निश्छिद्रं प्रासुकं स्थानं	,,	४.२५६
निःश्रेयसमधिपन्ना	रत्नक०	१३४
निःश्रेयसमभ्युदयं	रत्नक०	१३०
निषण्णैस्तत्र शय्यायां	अमित०	११.१०४
निषिद्ध भक्तमात्रादि	लाटी०	१.४२
निषिद्धं हि कुलस्त्रीणां	कुन्द०	५.१६७
निषेवते यो दिवसे	अमित०	७.७२
निषेवते यो विषयं	,,	१.२३
निषेवते यो विषयामिलाषुको	,,	२.७३
निषेवन्ते हि नारीं ये	प्रश्नो०	१५.३६
निषेवमाणोगुरुपादपद्मं	अमित०	१.५५
निषेव्यमाणानिवचांसियेषां	,,	१.५३
निषेव्य लक्ष्मीमिति	,,	११.१२३
निष्कर्मा गुणयुक्तो हि	भव्यध०	२.१७८
निष्कामः कामिनीमुक्तो	पुरु० शा०	५.५६
निष्कारणं सुहृद्धर्मं	,,	५.६५
निष्क्रान्तिपदमध्येस्तां	महापु०	४०.१३८
निष्क्रान्तोविचिकित्सायाः	लाटी०	३.१०१
निष्किञ्चनोऽपि जगते	यशस्ति०	५५९
निष्पद्यन्ते विपद्यन्ते	श्रा० सा०	३.१८
निष्फलेऽल्पफलेऽनर्थफले	सागार०	६.१६
निष्ठीवनं करोत्युच्चैः	प्रश्नो०	१८.१७८
निष्ठीवनं वपुः स्पर्शः	अमित०	८.९६
निष्ठींवनमवष्टम्भं	,,	१३.४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निष्ठीयते व दन्तादेः	कुन्द०	१.४४
निष्ठ्यूतश्लेष्मविण्मूत्र	,,	८.३५०
निष्पन्दादिविधौ	यशस्ति०	१३०
निष्पादयेत्तमां भार्यां	धर्मसं०	२.१७२
निःसङ्गवृत्तिरेकाकी	महापु०	३८.१७६
निःसङ्गो हि व्रती भूत्वा	भव्यध०	४.२६९
निसर्गतो गच्छति	अमित०	३.६९
निसर्गमार्दवोपेतो	,,	१५.२४
निसर्गरुचौ जन्ता	अमित०	१३.३
निसर्गस्तु स्वभावोक्तिः	लाटी०	२.१५
निसर्गात्तिद्भवेज्जन्तोः	धर्मसं०	१.६५
निसर्गाद्वा कुलाम्नायाद्	लाटी०	२.१५५
निसर्गाधिगमौ हेतू	अमित०	२.६७
निसर्गेऽधिगमे वापि	लाटी०	२.२०
निसर्गोऽधिगमो वापि	यशस्ति०	२०८
निःसाक्षिकबलाद् व्रते	प्रश्नो०	१३.५०
निःसृता सदनाच्छोभाः	श्रा०सा०	१.६८६
निस्सारं प्रस्फुरत्येष	लाटी०	३.७६
निस्तारकोत्तमायाय	सागार०	२.५६
निस्तारकोत्तमं यज्ञ	धर्मसं०	२०३
निःस्पृहत्वेन स्याच्चित्तशुद्धिः	प्रश्नो०	२३.१४५
निःस्वादमन्नं कटु वा	कुन्द०	३.५१
निःस्वामित्वेन सन्त्यक्ताः	लाटी०	५.४०
निःस्वेदत्वं भवत्येव	प्रश्नो०	३.५७
निहत्य निखिलं मनो	यशस्ति०	३४३
निहत्य भेकसन्दर्भं	अमित०	९.७७
निहन्यते यत्र शरीरिवर्गो	,,	१.३३
निहितं वा पतितं वा	रत्नक०	५७
नीचदेवान् भजन्त्येव	प्रश्नो०	३.९०
नीचानामलसानां च	कुन्द०	८.३७५
नीचैर्गोत्रं स्वप्रशंसा	अमित०	३.५२
नीचैर्गोत्रोदयाच्छूद्रा	धर्मसं०	६.२५२
नीचैर्भूमिस्थितं कुर्याद्	उमा०	९९
नीत्वा गृहं तदहं	धर्मसं०	४.८८
नीत्वा चित्रान्वितः	प्रश्नो०	२१.८३
नीत्वा नीलीं स्वयं गेहे	,,	१५.७२
नीयन्तेऽत्र कषाया	पुरुषा०	१७९
,, ,,	(उक्तं) श्रा०सा०	३.३६६
नीरगोरसधान्यैधः	सागार०	६.१८
नीरं चागलितं येन	प्रश्नो०	१२.१२०
नीरसे सरसे वापि	,,	२४.११
नीरादानेन हीयेन	,,	१९.७
नीरादिकं गृहस्था मे	,,	२२.९०
नीरार्थमागतां भार्यां	प्रश्नो०	२१.१७६
नीरूपं रूपिताशेष	यशस्ति०	६४९
नीरैश्चन्दनशालीयैः	भव्यध०	६.३५३
नील्याहूय पुनस्तेषां	प्रश्नो०	१५.८०
नूनं तद्भीः कुदृष्टीनां	लाटी०	३.६४
नूनं प्रोक्तोपदेशोऽपि	,,	३.१७४
नूनं सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः	,,	३.२६२
नृणां मूकवधिरार्हं	प्रश्नो०	१३.२६
नृपजनसुरपूज्यो	,,	१२.१८३
नृपवित्तधनस्नेह	कुन्द०	१०.३
नृपस्येव यतेर्धर्मो	सागार०	८.१७
नृपाध्यक्षं कुपक्षैक	श्रा०सा०	१.५४८
नृपेण प्रेर्यमाणापि	,,	१.३७७
नृपेषु नृपवन्मौनी	कुन्द०	८.४१७
नृपैः मुकुटबद्धाद्यैः	सं०भा०	११६
नेत्थं यः पाक्षिकः	लाटी०	१.४७
नेत्रप्रकाशने ध्यानं	व्रतो०	४९७
नेत्रयोः शुक्लयोरह्नि	कुन्द०	८.१८२
नेत्ररोगी भवेदन्धः	धर्मसं०	६.२६०
नेत्रं हिताहिता लोके	यशस्ति०	४५७
नेत्रहीना यथा जीवा	प्रश्नो०	११.६५
नेत्रान्तरसृजा तालु	कुन्द०	५.१७
नेत्रानन्दकरं सेव्यं	अमित०	९.८९
नेमिनाथं जगत्पूज्यं	प्रश्नो०	२२.१
नेम्यादिविजयं चैव	महापु०	४०.६२
नेष्टं दातुं कोऽप्युपायः	अमित०	१३.९६
नैणाजिनधरा ब्रह्मा	महापु०	३९.११९
नैतत्तन्मनस्यज्ञान	लाटी०	३.१०३
नैतद्धर्मस्य प्राग्रूपं	,,	३.२८८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नैश्चनी मैत्रिका चैव	कुन्द०	८.७२
नैऋत्याग्नेयिका गम्या	कुन्द०	८.१५०
नैऋत्यां दिशि तःप्रश्ने	कुन्द०	१.१५९
नैयायिकानां चत्वारि	कुन्द०	८.२७९
नैरन्तर्येण यः पाठः	,,	६.८५
नैरश्यारब्धनैःश्वर्यं	सागार०	८.१०९
नैर्ग्रन्थ्यं मोक्षमार्गोऽयं	धर्मसं०	१.४५
नैर्मल्यं नमसोऽभितो	श्रा०सा०	१.४१०
नैव पुण्यं द्विधा कुर्यान्न	उमा०	१३०
नैव भवस्थितिवेदिनि	अमित०	२.८८
नैवमर्थाद् यतः सर्वं	लाटी०	३.२२५
नैव लग्नं जगक्वापि	यशस्ति०	१२१
नैव सिद्धयति सा विद्या	प्रश्नो०	१०.२८
नैवान्तस्तत्त्वमस्तीह	यशस्ति०	८
नैवं यतः समव्याप्तिः	लाटी०	२.६५
नैवं यतः सुसिद्ध प्रागस्ति	,,	३.८३
नैवं यतोऽनभिज्ञोऽसि	,,	२.४५
	लाटी०	४.१४५
नैवं यथोऽस्त्यनिष्टार्थः	,,	३.८६
नैवं वासरभुक्ते भवति	पुरुषा०	१३२
नैवाहुति र्न च स्ननं	श्रा०सा०(उक्तं)	३.१०४
नैवं हेतोरतिव्याप्तेः	लाटी०	३.२२९
नैष दोषोऽल्पदोषत्वाद्	,,	४.१४१
नैषापि रोचते भाषा	अमित०	४.७६
नैष्किश्चन्यमहिंसा च	यशस्ति०	१३२
नैष्ठिकेन विना चान्ये	धर्मसं०	६.२४
नैष्ठिकोऽपि यथा क्रोधात्	लाटी०	४.१९४
नोकर्म-कर्म-निर्मुक्तं	भव्यध०	१.४
नोक्तस्तेषां समुद्देशः	लाटी०	३.१२१
नो चेद्वचनविश्वासः	प्रश्नो०	१५.८४
नोचे वाचंयमी किंचिद्	लाटी०	३.१९०
नो जायेते पापने ज्ञानवृत्ते	अमित०	३.८३
नोदकमपि पीतव्यं	श्रा०सा०	३.११०
नो दातारं मन्मथा	अमित०	१०.५७
नोद्दिष्टां सेवते भिक्षां	सं०भा०	१०३
नोपवासोत्थबाधासु	पुरुशा०	६.९
नोह्यं छद्मस्थावस्था	लाटी०	३.१५६
नोह्यं दृग्प्रतिमामात्र	,,	३.१३९
नोह्यं प्रज्ञापराधत्वात्	,,	३.२६०
नोह्यमेतावता पापं	,,	१.१४
न्यक्षवीक्षाविनिर्मोक्षे	यशस्ति०	३३
न्यग्रोधपिप्पलप्लक्ष	श्रा०सा०	३.६०
	उमा०	३००
न्यग्रोधस्य यथा बीजं	पूज्य०	५१
न्यङ्मध्योत्तमकुत्स्य	सागार०	२.६७
न्यस्य भूषाधियाङ्गेषु	,,	८.१०२
न्यस्याङ्गेषु धिया	धर्मसं०	७.१८४
न्यस्यादानादिकं कृत्वा	सं०भाव०	४२
न्यस्यान्तभ्रूपृथिव्यादि	कुन्द०	१.४०
न्यायकुलस्थितिपालन	श्रा०सा०	१.१०१
न्यायमागात् समायाति	प्रश्नो०	१४.१५
न्यायश्च द्वितयो दुष्ट	महापु०	१८.२५९
न्यायात्तद्-भक्षणे नूनं	लाटी०	१.७३
न्यायाद् गुरुत्वहेतु. स्यात्	,,	३.१५१
न्यायादायातमेतद्वै	,,	३.२८१
न्यायेनोपार्ज्यते यत्स्वं	धर्मसं०	६.१६२
न्यायोपात्तधनो	सागार०	१.११
न्यायोपार्जितभोगाश्च	धर्मोप०	४.४४
न्यासस्याप्यपहारो यो	लाटी०	५.२२
न्यासात् स्वामिनो योऽपि	प्रश्नो०	१३.३६
न्यासापहारः परमन्त्रभेदः	अमित०	७.४
न्यूनषोडशवर्षायां	कुन्द०	५.१८९
न्यूनाधिके च षष्ठीना	कुन्द०	८.८३
प		
पक्वान्नादि सुनैवेद्यैः	उमा०	१६७
पक्षमासर्तुषण्मास	कुन्द०	८.२२
पक्षश्चर्या साधनञ्च	धर्म० सं०	२.२
पक्षान्निदाघे हेमन्ते	कुन्द०	५.१४४
पक्षीरूपं समादाय	प्रश्नो०	५.७
पङ्काञ्जनादिभिर्लिप्तं	कुन्द०	२ ३१
पङ्गुस्तुङ्गो (शिखादि) शिखरे	श्रा० सा०	१.१०२
पञ्च कन्दर्भंकौत्कुच्य	हरिवं०	५८.६५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चकल्याणकोपेतां	प्रश्नो०	११.८२
पञ्चकल्याणपूजाया	,,	३.४
पञ्चकृत्वः किलैकस्य	यशस्ति०	३४८
पञ्चगव्यं तु तैरिष्टं	श्रा० सा०	३.८६
	उमा०	२८४
पञ्चभूतात्मकं वस्तु	कुन्द०	८.२९३
पञ्चतायां प्रसूतौ च	धर्मसं०	६.२५७
पञ्चधाणुव्रतं त्रेधा	सागार०	४.४
पञ्चधाऽणुव्रतं यस्य	गुणभू०	३.२२
पञ्चधा वाचनामुख्यं	धर्मसं०	७.१४९
पञ्चन्यासहृतिः कूटलेखो	पुरु० शा०	४.८०
पञ्च पञ्च त्वतीचारा	हरिवं०	५८.४९
पञ्चप्रकारचारित्र	गुणभू०	३.८६
पञ्चप्रकारमिथ्यात्वं	प्रश्नो०	४.२५
पञ्च बाण स्फुरद् बाण	श्रा० सा०	१.२५१
पञ्चमं परमं विद्धि	उमा०	२२१
पञ्चमहाव्रतंयुक्तं	व्रतो०	३३६
पञ्चमाणुव्रतं धत्ते	प्रश्नो०	१६.५३
पञ्चमाणुव्रतं वक्ष्ये	,,	१६.२
पञ्चमाणुव्रतस्यैते	धर्मोप०	४.५६
पञ्चमी प्रतिमा चास्ति	लाटी०	६.१५
पञ्चमीरोहिणीसौख्य	धर्मसं०	६.१६७
पञ्चमी षष्ठिकाष्टम्यौ	कुन्द०	८.१४६
पञ्चमुष्टिविधानेन	महापु०	३९.४२
पञ्चमूर्त्तिमयं बीजं	यशस्ति०	६७७
पञ्चम्यादिविधिं कृत्वा	सागार०	२.७८
पञ्चविंशतितत्त्वानि	कुन्द०	८.२७२
पञ्चसूनाकृतं पापं	रत्नमा०	५९
पञ्चसूनापरः पापं	सागार०	५.४९
पञ्चस्वेषु मनोज्ञेषु	लाटी०	५.९३
पञ्चाक्षपूर्णपर्याप्ते	उमा०	२२
पञ्चाक्षं सञ्ज्ञिनं हित्वा	अमित०	२.६४
पञ्चाक्षः द्विप्रकाराश्च	उमा०	२१५
पञ्चाक्षे पूर्णपर्याप्ते	श्रा० सा०	१,१४९
पञ्चाङ्गं प्रणतिं कृत्वा	अमित०	१२.१२६
पञ्चाङ्गुलेषु वृद्धिः स्याद्	उमा०	१०२

पञ्चाग्निना तपो निष्ठा	सं० भाव०	१५१
पञ्चाग्निसाधने योऽपि	प्रश्नो०	११.३१
पञ्चाग्निसाधको मिथ्या	,,	११.३४
पञ्चाचारक्रियोद्युक्तो	सागार०	७.३४
पञ्चाचारं जिघृक्षुश्च	धर्म० सं०	५.५४
पञ्चाचारं ये चरन्ति	प्रश्नो०	२४.१३७
पञ्चाचारविचारज्ञाः	श्रा० सा०	१.१४१
	उमा०	१५
पञ्चाणुव्रतनिधयो	रत्नक०	६३
पञ्चाणुव्रतपुष्ट्यर्थं	धर्मसं०	४.१३०
पञ्चाणुव्रतरक्षार्थं	,,	४.१
पञ्चाणुव्रतशीलसप्तक	धर्मोप०	४.२२४
पञ्चातिचारनिर्मुक्ता	प्रश्नो०	१६.४३
पञ्चातिचारसंज्ञास्ति	लाटी०	५.१२८
पञ्चातिचारसंत्यक्तं	प्रश्नो०	११.१०४
पञ्चातिचारसंयुक्तं	,,	२१.२
पञ्चात्र पुद्गलक्षेपं	पुरु० शा०	४.१४४
पञ्चात्रापि मलानुज्झेद्	सागार०	५.३३
पञ्चाप्येवमणुव्रतानि	,,	४.६६
पञ्चानर्था दुष्टा	अमित०	६.८१
पञ्चानां पापानां	रत्नक०	७२
पञ्चानां पापानामलं	रत्नक०	१०७
पञ्चानुत्तरमायुष्यं	भव्यध०	३.२१९
पञ्चामृतै जिनेन्द्रार्चा	धर्मोप०	४.२०६
पञ्चास्यो हरिणायते	श्रा० सा०	१.१०६
पञ्चेन्द्रियदमादेव	उमा०	२१३
पञ्चेन्द्रियप्रवृत्त्या	यशस्ति०	८४६
पञ्चेन्द्रियस्य जीवस्य	भव्यध०	१.९३
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्याः	कुन्द०	८.२५९
पञ्चेद्रिया द्विधा ज्ञेयाः	लाटी०	४.९९
पञ्चेन्द्रियाश्चतुर्भेदाः	भव्यध०	२.१६५
पञ्चैतेऽपि व्यतीचाराः	धर्मोप०	४.४६
पञ्चैब चेन्द्रियप्राणाः	प्रश्नो०	२.९
पञ्चैवाणुव्रतानि स्युः	,,	१२.६२
पञ्जरस्थान् खगान् सर्वान्	,,	२१.७२
पटीयसा सदा दानं	अमित०	९.४२
पट्टराज्ञिपदं देवि	प्रश्नो०	६.१९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

पठतु शास्त्रसमूहमनेकधा	व्रतो०	२९
पठन्ति शृण्वन्ति वदन्ति	अमित०	१.३७
पठन्नपि वचो जैन	श्रा० सा० अमित०	१.३६७ २.१५
पठन्नपि श्रुतं रम्यं	श्रा० सा०	१.४९६
पठित्वानेक शास्त्राणि	प्रश्नो०	१०.४
पठेत्स्वयं श्रुतं जैन	पुरु० शा०	६.५१
पढमं पढमे णियदं	लाटी०	२.१६
पण्डोः सुताः यदोः पुत्राः	गुणभू०	३.१५
पण्डस्त्रीतु प्रसिद्धा या	लाटी०	१.१२९
पतङ्गमक्षिकादश	अमित०	३.१५
पतत्कीटपतङ्गादेः	धर्मोप०	४.५९
पतितं तेन पादेन	प्रश्नो०	१६.१०५
पतितं विण्मूत्रं नष्टं	,, पूज्य०	१४.५ २३
पतन्तं दुर्गतौ यस्माद्	पद्मच०	१४.२
पत्तनं काननं सौध	अमित०	१५.८६
पत्युः स्त्रीणामुपक्षैव	धर्मसं०	२.१७३
पत्रशाकं त्यजेद्धीमान्	प्रश्नो०	१७.१०२
पत्रादि नापि यः क्रियादन्नं	,,	२१.६
पथ्यं तथ्यं श्रव्यं	अमित०	१०.६
पदं पञ्चनमस्कारं	पुरु० शा०	५.३६
पदस्थमथ पिण्डस्थं	,,	५.२९
पदानि यानि विद्यन्ते	अमित०	१२.११५
पदापि संस्पृशंस्तानि	धर्मसं०	५.१८
पदार्थानां जिनोक्तानां	अमित०	२.५
पदैरेभिरयं मन्त्रः	महापु०	४०.१३९
पद्मकण्ठतदस्पर्शी	कुन्द०	८.२१८
पद्मचम्पकजात्यादि	उमा०	१२९
पद्मपत्रनयनाः प्रियंवदाः	अमित०	५.६१
पद्मपत्रनयनामनोरमाः	,,	१४.२१
पद्मप्रभमहं वन्दे	प्रश्नो०	६.१
पद्ममुत्थापयेत्पूर्वं	यशस्ति०	६८०
पद्मरागो यथा क्षीरे	भव्यध०	२.१७८
पद्मस्योपरि यत्नेन	अमित०	१५.४५
पद्मासन-समासीनो	उमा०	१२४
पद्मिनी चित्रिणी	कुन्द०	५.१३८
पन्नागानामिव प्राणि	अमित०	१०.६३
पप्रच्छ स्वाङ्गरक्षं स	धर्मसं०	२.१४
पयःपानं शिशौ भीतिः	कुन्द०	११.९०
पयःशाल्यादिकं सर्पि	कुन्द०	६.८
परं चैक व्रतं सारं	प्रश्नो०	१२.७९
परं तदेव मुक्त्यङ्गं	सागार०	५.२९
परं दातृव्यपदेशः	पुरुषा०	१९४
परं शंसन्ति माहात्म्यं	सागार०	८.२८
परमात्मानुभूतेर्वै	लाटी०	३.१९
परदारकुचस्यादौ	धर्मसं०	३.६४
परदारनिवृत्तो यो	,,	३.६९
परदोषान् व्यपोहन्ति	प्रश्नो०	८.२४
परद्रव्य-ग्रहणेनैव	सागार०	८.४०
परद्रव्यस्य नष्टादेः	हरिवं०	५८.२६
परद्रव्यापहाराय	भव्यध०	१.१३५
परनारीं तिरश्चीं च	प्रश्नो०	१५.५१
परनारीं समीहन्ते	,,	१५.१४
परनारी नरीनर्त्रि	श्रा०सा० उमा०	३.२२३ ३७०
परनार्यभिलाषेणं	भव्यध०	१.१४०
परनिन्दां प्रकुर्वन्ति	प्रश्नो०	८.२६
परपरिणयनमनङ्गक्रीडा	श्रा०सा०	३.२४२
परपाणिग्रहाऽऽक्षेपा	धर्मोप०	४.४५
परपीडाकरं यत्तद्वचः	प्रश्नो०	१३.१०
परप्रमोषतोषेण	यशस्ति०	३५७
परबाधाकरं वाक्यं	धर्मसं०	६.५
परभार्यादिसंसर्गात्	प्रश्नो०	१५.६
परभार्यां परिप्राप्य	,,	१५.१२
परमगुणविचित्रैः	,,	२.८५
परमजिनपदानुरक्तधी	महापु०	३९.२१०
परमः पुरुषो नित्यः	अमित०	४.७५
परमर्द्धिपदं चान्य	महापु०	४०.६९
परमर्षिभ्य इत्यस्मात्	,,	४०.४३
परमसुखनिधिश्चोद्य	प्रश्नो०	७.१६
परमागमस्य बीजं	पुरुषा०	२

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमांणोरतिस्वल्यं	कुन्द०	११.५९
परमादिगुणायेति	महापु०	४०.६७
परमादिपदान्नेत्र	,,	४०.७४
परमात्मवैरिणां	अमित०	४.८
परमार्हताय स्वाहापद	महापु०	४०.६०
परमार्हन्त्यराज्यादि	,,	४०.१५०
परमार्हन्त्य राज्याभ्यां	,,	४०.१४६
परमेऽत्युत्तमे स्थाने	धर्मसं०	७.११४
परम्परेति पक्षस्य	लाटी०	३.२८७
पररमणी-संसक्तं चित्तं	श्रा० सा०	३.२२४ ३.२२२
पररामाङ्किते चिह्ने	उमा०	३६९
परवञ्चनमारम्भ	कुन्द०	९.३
परवर्ज्या भुजङ्गीव	पद्मच०	१४.१२
परवश्यः स्वगुह्योक्तः	कुन्द०	८.४१५
परविवाहाकरण	हरिवं०	५८.६०
परविवाहकरणं दोषो	लाटी०	५.७३
परविवाहकरणानङ्गक्रीड़ा	धर्मसं०	३.७१
परविवाहकरणेत्वरिका	लाटी(उक्तं)	५.७२
परमेष्ठिपदैर्जापः क्रियते	धर्मसं०	६.९८
परमेष्ठी परंज्योति	रत्नक०	७
परलोकधिया कश्चित्	यशस्ति०	७३७
परलोकः परमात्मा	लाटी०	३.४०
परलोकसुखं भुक्त्वा	पूज्य०	७७
परलोकैहिकौचित्ये	यशस्ति०	७३८
परशुकृपाणखनित्र	रत्नक०	७७
परस्त्रियः समं पापं	प्रश्नो०	१५.१०
परस्त्रिया समं भोगो	,,	१५.११
परस्त्रिया समं येऽत्र	,,	१५.१६
परस्त्रीदोषतः प्राप्तो	,,	१५.१२७
परस्त्रीं मन्यते माता	भव्यध०	४.२५९
परस्त्रीं मातृवद् वृद्धां	पुरु० शा०	४.९४
परस्त्रीरमणं यत्र न	धर्मसं०	३.६३
परस्त्रीं रममाणस्य	,,	३.६८
परस्त्रीरूपमालोक्य	धर्मोप०	४.४३
परस्त्री-लम्पटी मूढ	धर्मोप०	४.४८

परस्त्री विधवा भत्रा	कुन्द०	५.१३१
परस्त्रीषु गतं चक्षुः	पुरु० शा०	४.९५
परस्त्रीसङ्गकाङ्क्षा या	उमा०	३८१
परस्त्री-सङ्गतेरस्या	गुणभू०	३.१४
परस्त्रीसङ्गमान	यशस्ति०	३९२
परस्परंत्रिवर्णानां	धर्मसं०	६.२५५
परस्परविरुद्धार्थमीश्वरः	यशस्ति०	६६
परस्परं विवादं तौ	प्रश्नो०	५.६
परस्य जायते देहे	अमित०	४.१३
परस्य प्रेरणं लोभात्	लाटी०	५.४९
परस्य वञ्चनार्थं यः	प्रश्नो०	१३.३५
परस्यापि हितं सारं	,,	१३.७
परस्यापोह्यते दुःखं	अमित०	१३.७२
परस्य चौरव्यपदेश	सागार०	४.४६
परस्वहरणासक्तो	लाटी०	१.१७३
परात्मगतिसंस्मृत्या	कुन्द०	११.६१
पराधीनेन दुःखानि भृशं	धर्मसं०	७.१७८
परानन्दसुखस्वादी	कुन्द०	१०.२४
परानीतैरयं द्रव्यैः	पुरु० शा०	६.८०
परान्नं हि समादाय	प्रश्नो०	२४.९०
परान्मुख त्वां परकामिनीषु	श्रा० सा०	३.२४१
परापरपरं देवमेवं	यशस्ति०	६६२
पराऽपरा च पूर्वस्य	पुरु० शा०	३.४८
परायत्तेन दुःखानि	सागार०	८.९८
परासाधारणान् गुण्य	,,	२.८६
परार्थस्वार्थराजार्थे	कुन्द०	८.३१३
परिकल्प्य संविभागं	अमित०	६.९४
परिखेव पुरीमेतद्	उमा०	३९१
परिग्रह-गुरुत्वेन	श्रा० सा० उमा०	३.२४६ ३८५
परिग्रह ग्रहग्रस्ता	धर्मसं०	६.१९९
परग्रिहग्रहग्रस्ते	श्रा० सा० उमा०	३.२४७ ३८६
परिग्रहग्रहार्तानां	पुरु० शा०	४.१२५
परिग्रहग्रहैर्मुक्तः	धर्मोप०	४.२२८
परिग्रह-परित्यागो	यशस्ति०	८२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varaṇasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रहप्रमाणं यः	पुरु० शा०	४.१३०
परिग्रहप्रमाणं ये	प्रश्नो०	१६.२६
परिग्रहप्रमाणं सद्व्रतं	,,	१६.३
परिग्रहप्रमाणेन	,,	१६.१५
परिग्रहमिमं ज्ञात्वा	श्रा० सा०	३.२५२
परिग्रहवतां पुंसां	प्रश्नो०	२३.१३६
परिग्रहवतामयं प्रतिदिनं	श्रा० सा०	३.२५१
परिग्रहं विमुञ्चद्भिः	,,	१.३११
परिग्रहविरक्तस्य	धर्मसं०	६.१९७
परिग्रहस्फुरद्-भार	उमा०	३८४
परिग्रहस्फुरद्भारभारिता	श्रा० सा०	३.२४५
परिग्रहाद् भयं प्राप्तं	उमा०	३८८
परिग्रहाभिलाषाग्निं	धर्मसं०	३.७७
परिज्ञायाऽऽगमं सोऽपि	प्रश्नो०	१०.१४
परिणममानस्य चित्त	पुरुषा०	१३
परिणममानो नित्यं	,,	१०
परिणाममेव कारणमाहुः	यशस्ति०	३२८
परिणीताऽनात्मज्ञाति	लाटी०	१.१८३
परिणीताऽऽत्मज्ञातिश्च	लाटी०	१.१८०
परिणीताः स्त्रियो हित्वा	पुरु० शा०	४.१०५
परिणेतुं प्रदत्ता सा	प्रश्नो०	१५.७१
परितः स्नानपीठस्य	सं० भा०	३८
परित्यज्य त्रिशुद्धयाऽसौ	धर्मसं०	५.४७
परिधय इव नगराणि	पुरुषा०	१३६
	श्रा०सा० (उक्तं)	३.२५७
परिधाय धौतवस्त्राणि	व्रतो०	३
परिनिष्क्रान्तिरेषा स्यात्		३८.२९५
परिपाट्याऽनया योज्याः	लाटी०	३.३२३
परिपाट्यानया योज्या	,,	५.१२७
परिपाट्यानयोदीच्यां	,,	५.११५
परिप्राप्तं फलं येन	प्रश्नो०	२१.१४९
परिभोगः समाख्यातो	लाटी०	५.१४७
परिभ्रश्यार्हद्दुर्दिष्टाद्	पुरु० शा०	३.९०
परिमाणं तयोः	यशस्ति०	७२८
परिमाणं तयोर्यत्र	हरिवं०	५८.४२
परिमाणमिवातिशयेन	यशस्ति०	५४५
परिमाणव्रतं ग्राह्यं	पूज्य०	२६
परिमाणे कृते तस्माद्	लाटी०	५.८५
परिमाति न यो ग्रन्थं	पुरु० शा०	४.११६
परिलिप्तपङ्कहस्तो	व्रतो०	४३
परिवर्त्तिसुखे वाञ्छा	श्रा० सा०	१.११३
परिवाद रहोम्याख्या	रत्नक०	५६
परिव्राजक आनीय	प्रश्नो०	२१.१३५
परिहार्यं यथा देव	महापु०	४०.२०१
परीक्षालोचनैस्त्वं	प्रश्नो०	११.१४
परीक्षितुं जयं तत्रागतो	प्रश्नो०	१६.६४
परीक्ष्याऽऽद्येन चक्रेशा	धर्मसं०	६.२५०
परीषहकरो देश	अमित०	८.४७
परीषहभटैरुच्चैः	प्रश्नो०	१५.३९
परीषहभयादाशु मरणे	सागार०	८.५९
परीषहव्रतोद्विग्न	यशस्ति०	१८५
परीषहसहः शान्तो	अमित०	८.२०
परीषहसहो धीरो	,,	९.१४
परीषहोऽथवा कश्चिद	सागार०	८.९४
परीषहोऽथसर्गाणां	लाटी०	३.१६३
परीषहोपसर्गाद्यैः	लाटी०	३.१९५
	,,	३.३०५
परीषहोपसर्गाभ्यां	धर्मसं०	१.५०
परेण जीवस्तपसा	अमित०	१४.६०
परेऽपि भावा भुवने	,,	१.६७
परेऽपि ये सन्ति तपो	,,	१३.९४
परे ब्रह्मण्यनूचानो	यशस्ति०	६१३
परे वदन्ति सर्वज्ञो	अमित०	४.४८
परेषामपकर्षाय	लाटी०	३.३१४
परेषां यो भयं कुर्वन्	प्रश्नो०	१८.१३२
परेषां यो मनुष्याणां	,,	१५.४६
परेषां योषितो दृष्ट्वा	पूज्य०	२४
परैरशक्यंदमितेन्द्रियाश्वाः	अमित०	१०.६९
परैयंद् व्यसुतां नीतं	पुरु०शा०	६.२४
परोक्षाध्यक्षभेदेन	गुणभू०	२.२
परोच्छिष्टानि सिक्थानि	श्रा०सा०	१.६८८
परोपकारः पुण्याय	,,	१.३५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परोपदेशना क्रोधः	व्रतो०	४५६
परोपरोधतोऽप्युक्त्वा	पुरु०शा०	४.८१
परोपरोधतो ब्रूते	श्रा०सा०	३.१८४
	उमा०	३५४
पर्यङ्काद्यासनस्थायी	धर्मसं०	४.४७
पर्यङ्काद्यासनस्यास्य	पुरु०शा०	५.१०
पर्यङ्काद्यासनाभ्यस्ताः	धर्मसं०	७.१३३
पर्यटन्तोऽति कौटिल्य	श्रा०सा०	३.९७
पर्यटन्नन्यदा व्योम्नि	,,	१.६४६
पर्याप्तको यथा कश्चिद्	लाटी०	४.७७
पर्याप्तमात्र एवायं	महापु०	३८.१९५
पर्याप्तः संज्ञिपञ्चाक्षो	पुरु०शा०	३.४३
पर्याप्तापर्याप्तकाश्च	लाटी०	४ ८९
पर्यालोच्य ततो जातौ	प्रश्नो०	१५.७०
पयोऽर्थं गां जलार्थं वा कूपं	उमा०	१३३
पर्वण्यष्टम्यां च	रत्नक०	१०६
पर्वण्यष्टाह्निकेऽन्य	गुणभू०	३.११६
पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि	रत्नक०	१४०
पर्वपूर्वदिनस्यार्धे	सागार०	५.३६
पर्वस्वथ यथाशक्ति	पद्म० पंच०	२५
पर्वाणि प्रोषधान्या	यशस्ति०	७१८
पर्वाष्टमी चतुर्दश्यौ	धर्मसं०	४.६१
पलभुक्षु दया नास्ति	,,	२.१४७
पलमधुमद्यवदखिल	सागार०	५.१५
पलं रुधिरमित्यादीहक्ष	धर्मसं०	३.४२
पलाण्डुकेतकी निम्ब	यशस्ति०	७३०
पलाद्बको वारुणीतो	उमा०	४६९
पलायितुं क्षमो नैव	प्रश्नो०	८.१७
पलाशनं प्रकुर्वन्ति	,,	१२.१५
पलाशनवशान्नष्टा	,,	१२.४७
पलाशने दोषलवोऽपि	श्रा०सा०	३.३१
पलासृक्पूय संभाव	भव्यध०	१.९४
पल्यस्यैकं चतुर्थांश	,,	३.२१४
पल्यायुषो पमुद्दिष्टं	,,	३.२१३
पवनो दक्षिणश्चूतः	कुन्द०	६.६
पवित्रं यन्निरातङ्कं	अमित०	१२,३९

पवित्रैर्नवभिः पुण्यैः	धर्मोप०	४.१६८
पशवोऽपि महाक्रूराः	,,	४.२४
पशुक्लेश-वणिज्यादि	,,	४.११३
पशुर्न हन्यते नैव	धर्म सं०	२.४३
पशुपाल्यं श्रियो वृद्धयै	कुन्द०	२.४९
पशुपाल्यात्कृषेः	,,	६.२३१
पशुस्त्रीषण्ढसंयोगच्युते	पुरु० शा०	५.४
पशुहत्या-समारम्भात्	महापु०	३९.१३७
पशूनां गोमहिष्यादि	लाटी०	४.२६३
पशूनां यो नृणां धत्ते	प्रश्नो०	१२.१३९
पशोः स्वयम्भृतस्यापि	पुरु० शा०	४.१३
पश्चात् कोलाहले जाते	प्रश्नो०	१२.२०३
पश्चाद् गृहादि कर्माणि	,,	१८.६९
पश्चात्तापं विधायोच्चैः	,,	१४.६६
पश्चादन्यानि कर्माणि	पद्म० पंच००	१७
पश्चादेकगृहे स्थित्वा	प्रश्नो०	२४.५५
पश्चाद्धीनाधिकमानोन्मान	प्रश्नो०	१४.२९
पश्चान्नानाविभूत्यापि	,,	१०.६४
पश्चान्नीलीं समुत्क्षिप्य	,,	१५.९७
पश्चात्परश्च पूर्वेषां	पुरु०शा०	६.९३
पश्चाद् रोग विनाशार्थं	प्रश्नो०	२१.११२
पश्चात्स्नानविधिं कृत्वा	सं०भाव०	३०
पश्चिमाभिमुखः कुर्यात्	उमा०	११७
पश्चिमायां दिशि स्यु	श्रा०सा०	१.३८०
पश्यतोहरवद्दण्डयो	पुरु०शा०	४.७२
पश्यन्ति प्रथमं रूपं	कुन्द०	११.३७
पश्यन्ति ये सुखीभूताः	अमित०	१२.३३
पश्यन्तो जायमानं यत्	,,	४.६१
पश्याहो नरकं प्राप्तः	धर्मसं०	७.१६८
पश्येदपूर्वतीर्थानि	कुन्द०	८.३२२
पश्येद्यद्यार्द्रचर्माशु	प्रश्नो०	२४.६१
पश्येद्यो रुधिरस्यैव	,,	२४.६०
पाकभाजनमध्येषु	प्रश्नो०	२२.८०
पाक्षिकाचारसम्पत्त्या	धर्मसं०	२.१४
पाक्षिकाचारसंस्कार	सागार०	३.७
पाक्षिकादिभिदा त्रेधा	,,	१.२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

. CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाक्षिको नैष्ठिकाश्चाव	धर्मसं०	६.१९५
पाक्षिक्याः सिद्धचारित्र	रत्नमा०	४७
पाखण्डमण्डितैर्मूढैः	श्रा०सा०	१.३९१
पाटी-गोलक-चक्राणां	कुन्द०	८.१२६
पाठीनस्य किलैकस्य	श्रा०सा० (अंक)	३.१४७
	उमा०	३४५
पाणिग्रहण-दीक्षायां	महापु०	३८.१३१
पाणिपादतले सन्धौ	कुन्द०	८.१६९
पाणिपादविहीना तु	कुन्द०	१.१४२
पाणिपादशिरश्छेदो	भव्यध०	१.१३६
पाणिपात्रं मिलत्येवच्छक्ति	यशस्ति०	१३४
पाणिमूलं दृढं गाढं	कुन्द०	५.३९
पाणेस्तलेन शोणेन	कुन्द०	५.३४
पादबन्धदृढं स्थूलं	कुन्द०	११.९
पातकमास्रवति स्थिररूपं	अमित०	१४.५३
पाताल-मर्त्य-खेचर-सुरेषु	यशस्ति०	५६७
पात्र-कुपात्रापात्रा	अमित०	१०.१
पात्रं ग्राहकमेव केवलमयं	श्रा०सा०	३.३४६
पात्रं जिनाश्रयी वापि	धर्मोप०	४.१८८
पात्रं तत्त्वपटिष्ठैः	अमित०	१०.२
पात्रदानेन तेनात्र	धर्मोप०	४.१९५
पात्र परित्यज्य	व्रतो०	८०
पात्रं प्रक्षाल्य भिक्षायां	धर्मसं०	५.६४
पात्रं त्रिधोत्तमं चैतत्	गुणभू०	३.४०
पात्रं त्रिभेद युक्तं संयोगे	पुरुषा०	१७१
पात्रं त्रिविधं प्रोक्तं	सं० भाव०	७३
पात्रं दाता दानविधिर्देयं	गुणभू०	३.३९
पात्रं ये गृहमायातु	धर्मोप०	४.१५८
पात्रं विनाशितं तेन	अमित०	९.८०
पात्रं सम्यक्त्वसम्पन्नं	धर्मसं०	४.९५
पात्रं हि त्रिविधं प्रोक्तं	भव्यध०	४.२६८
	,,	६.३०८
पात्रदानं कृतं येन	,,	६.३४१
पात्रदानं कृपा दानं	पुरु०शा०	३.११३
पात्रदानं जिनाः प्राहुः	प्रश्नो०	२०.४०
पात्रदानं भवेद्दातुः	धर्मोप०	४.१९२
पात्रदानमहनीयपादपः	अमित०	११.१२५
पात्रदानानुमोदेन	प्रश्नो०	२०.५१
पात्रदानेन संसारं	श्रा०सा०	३.३४५
	उमा०	४४८
पात्रागम-विधिद्रव्य	सागार०	२.४८
पात्राणामुपयोगि	देशव्र०	१५
पात्रापात्रविभागेन	अमित०	११.१००
पात्रपात्रविशेषज्ञो	धर्मोप०	४.१६४
पात्रापात्रं समावेक्ष्य	यशस्ति०	७९७
पात्राय विधिना दत्वा	अमित०	११.१००
पात्राय विधिना द्रव्यं	धर्मसं०	४.९९
पात्रालाभे यथावित्ते	लाटी०	५.२२३
पात्रावेशादिवन्मन्त्रा	यशस्ति०	१८
पात्रे दत्ते भवेदन्नं	,,	७६८
पात्रे ददाति योऽकाले	अमित०	९.३५
पात्रे दानं प्रकर्तव्यं	सं०भाव०	१५७
पात्रेभ्यो निन्द्यमं	उमा०	२३६
पात्रेभ्यो यः प्रकृष्टेभ्यो	अमित०	११.६२
पात्रे स्वल्पव्ययं पुंसा	धर्मसं०	४.११५
पाथःपूर्णान् कुम्भान्	यशस्ति०	५००
पाथोनिधिर्विधिवशात्	श्रा० सा०	३.२४८
पादजानुकटिग्रीवा	यशस्ति०	४३२
पादन्यासे जिनेन्द्राणां	प्रश्नो०	३.६७
पादपद्मौ जिनेन्द्राणां	,,	२०.२०६
पादप्रसारिकामूर्ध्वं	पुरु० शा०	५.१३
पादबन्धदृढं स्थूलं	कुन्द०	१५.९
पादसङ्कोचनाधिम्य	व्रतो०	४६३
पादाङ्गुल्यौ सुजङ्घे च	कुन्द०	५.८९
पादाङ्गुष्ठपतत्पृष्ठे	,,	८.२२५
पादान्ते सतृणं घृत्वा	प्रश्नो०	१६.९७
पादाम्बुजद्वयमिदं	यशस्ति०	४७५
पादेन तृतीयेनापि	प्रश्नो०	९.६१
पादेनापिस्पृशन्नर्थं	सागार०	७९
पानतः क्षणतया मदिराया	श्रा० सा०	३.१०
पानमन्नं च तत्तस्मिन्	कुन्द०	६.२०
पानं षोढा घनलेपि	सागार०	८.५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पानादि सर्वमाहार	प्रश्नो०	२२.८८
पानाशनादि ताम्बूल	,,	१७.८९
पापं पुण्यं सुखं दुःखं	व्रतो०	३८९
पापं यदर्जितमनेक	अमित०	२.८७
पापं विलीयते दानाद्	प्रश्नो०	२०.४२
पापं शत्रुं परं विद्धि	,,	२.४९
पापक्रियानिवृत्तिर्या	धर्मसं०	७.२५
पापर्द्धर्या च महाघोरे	भव्यध०	१.१२८
पापनिमित्तं हि वधः	अमित०	६.३६
पापमरातिर्धर्मो बन्धु	रत्नक०	१४८
पापषट्न्यापगा सौम्याः	कुन्द०	५.१९८
पापसूत्रानुगा यूयं न	महापु०	३९.११८
पापस्यास्य फलं	श्रा० सा०	१.६०३
पापानुमतित्यागाच्च	प्रश्नो०	२४.१७
पापाख्यानाशुभाध्या	यशस्ति०	४२०
पापात् पङ्गुः ऋणी पापात्	कुन्द०	९.१२
पापाद्विभ्यन् मुमुक्षर्यो	धर्मसं०	५.३८
पापानुमतिं हित्वा	पुरु० शा०	६.६०
पापारम्भं त्यजेद्यस्तु	प्रश्नो०	२३.११५
पापाशनं महानिन्द्यं	,,	२४.८७
पाषाणसञ्चये दिव्य	कुन्द०	८.१८७
पापेन गेहं बहुच्छिद्र	व्रतो०	३४८
पापे प्रवार्त्यते येन	अमित०	२.३१
पापोपदेश आदिष्टो	हरिवं०	५८.३४
पापोपदेशकं हिंसा	धर्मोप०	४.११२
पापोपदेश हिंसादान	रत्नक०	७५
पापोपदेशहेतुर्यो	हरिवं०	५८.३३
पापोपदेशोऽपध्यानं	,,	५८.३२
	श्रा० सा०	३.२६४
	उमा०	४००
पापोपदेशो यद्वाक्यं	सागार०	५.७
पापोऽपि यत्र तन्मन्त्रं	धर्मसं०	७.१२३
पार्थिवान् प्रणतान् यूयं	महापु०	३८.२५८
पार्थिवैर्दण्डनीयाश्च	,,	३९.१३६
पापर्द्धिजयपराजय	पुरु० शा०	१४१
पारम्पर्येण केषाञ्चिद्	लाटी०	४.३९
पारणार्थं स्वयमायातो	धर्मसं०	२.९८
पारिव्राज्यं पारिव्राजो	महापु०	३९.१५६
पार्श्वे गुरूणां नृपवत्	सागार०	२.४७
पार्श्वे तस्य मुनीन्द्रस्य	प्रश्नो०	१२.१६९
पार्श्वनाथं जिनं वन्दे	,,	२३.१
पालयन्ती व्रतं तीव्रं	व्रतो०	३६
पालयेद्य इमं धर्मं	महापु०	३८.२६२
पाषाण-भूरजोवारि	यशस्ति०	८९५
पाषाणसिकताराशेः	धर्मोप०	१.३३
पाषाणाज्जायते नैव	धर्मसं०	२.३४
पाषाणे स्फुरदङ्कुरः	श्रा० सा०	३.२५०
पाषाणोत्स्फुकुटितं तोयं	रत्नमा०	६३
पाहुडाद्ययविख्यातं	भव्यध०	७.८
पिच्छिकानेत्रकर्मभ्यां	प्रश्नो०	१९.७०
पिण्डंददाना न नियोजयन्ति	अमित०	१.५९
पिण्डशुद्ध्ययुक्तमत्रादि	सागार०	५.४६
पिण्डस्थं च पदस्थं	गुणभू०	३.११९
पिण्डस्थं च पदस्थं	धर्मसं०	६.९९
पिण्डस्थधारणाभ्यास	पुरु० शा०	५.५८
पिण्डस्थे धारणाः पञ्च	पुरुषा०	५.४७
पिण्डस्थो ध्यायते यत्र	अमित०	१५.५३
पिण्डे जात्यादि नाम्नादि	सागार०	८.१४
पिण्डोऽयं जातिनामाभ्यां	धर्मसं०	७.१४
पिण्याकस्य न खण्डमप्यु	श्रा०सा०	१.१२७
पितामहे समाचष्टे	धर्मसं०	१.१४
पितुरन्वय शुद्धिर्या	महापु०	३९.८५
पितृपक्षसमुद्भूतं	प्रश्नो०	११.१९
पितुर्मातुर्धनस्य स्यात्	कुन्द०	५.२२२
पितुर्मातुः शिशूनां च	,,	३.२०
पितुः शुक्रं जनन्याश्च	,,	५.२०२
पित्तशोणितधातार्थं	,,	२.३७
पितृभर्तृसुतैर्नार्यो	,,	५.१५७
पितृभ्यामीदृशस्यैव	,,	८.१०५
पित्रोः शुद्धौ यथाऽपत्ये	यशस्ति०	९६
पिपीलिकादयो जीवा	पूज्य०	८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिप्पलोदुम्बरप्लक्ष	सागार०	२.१३
पिबन्ति गालितं तोयं	धर्मोप०	४.८९
पिबेज्ज्योत्स्नाहृतं तोयं	कुन्द०	६.९
पिष्टोदकगुडैर्धात्यैः	व्रतो०	३८५
पिहिते कारागारे	यशस्ति०	२७
पीठयान-परिवार	कुन्द०	१.१३६
पीठिकादिकमारुह्य	प्रश्नो०	१८.१६२
पीठिकामंत्र एष स्यात्	महापु०	४०.२६
पीडा-पापोपदेशाद्यै	सागार०	५.६
पीडा सम्पद्यते यस्या	अमित०	९.५३
पीतः कार्यस्य संसिद्धि	कुन्द०	१.४१
पीतमद्यो बुधैर्निन्द्यं	प्रश्नो०	१२.१
पीते यत्र रसाङ्गजीव	सागार०	२.५
पोषणी खण्डनी चुल्ही	कुन्द०	३.३
पुङ्गीणलादि सर्वं चापन्नं	प्रश्नो०	१७.१०७
पुण्डरीकत्रयं यस्य	भव्यध०	५.२८९
पुण्यं जीववधाद्यत्र	प्रश्नो०	४.१९
पुण्यं तेजोमयं प्राहुः	यशस्ति०	३२४
पुण्यं यत्नवतोऽस्त्येव	धर्मसं०	६.१८८
पुण्यं वा पापं वा यत्काले	यशस्ति०	१९७
पुण्यद्रुमश्चिरमयं	यशस्ति०	५०६
पुण्यपापफलान्येव	प्रश्नो०	२१.११५
पुण्यपापसमायुक्ता	भव्यध०	२.१४५
पुण्यमेव मुहुः केऽपि	कुन्द०	२.११२
पुण्यवन्तो वयं येषामाज्ञा	अमित०	१३.३९
पुण्यहेतुं परित्यज्य	सं० भाव०	१७०
पुण्यहेतुस्ततो भव्यैः	,,	१७२
पुण्यात्स्वगृहमायाते	धर्मोप०	४.१५५
पुण्यार्थमपि माऽऽरम्भं	कुन्द०	११.७
पुत्रार्थमेव सम्भोगः	कुन्द०	५.१८३
पुण्यादिहेतवेऽन्योन्यं	पुरु०शा०	३.११६
पुण्यानुमतिरित्याद्या	,,	६.७०
पुण्यायापि भवेद्	यशस्ति०	२३७
पुण्याश्रमे क्वचित् सिद्ध	महापु०	३७.१२९
पुण्यास्रवः सुखानां हि	हरिवं०	५८.७७
पुण्याहघोषणापूर्वं	महापु०	४०.१३०
पुण्योपचितमाहारं	सं०भा०	१३४
पुण्योपार्जनशरणं	यशस्ति०	५१७
पुत्रदारादिसन्ताने	प्रश्नो०	४.२३
पुत्र पुत्रकि मयाद्य	श्रा०सा०	१.६७०
पुत्र-पुत्रादि-बन्धुत्वं	धर्मोप०	४.६९
पुत्रः पुपूषोः स्वात्मानं	सागार०	७.२६
पुत्रपौत्र-कुटुम्बादि	प्रश्नो०	१२.९६
पुत्रपौत्र-स्वसृभार्या	,,	९२.८८
पुत्रमित्र-कलत्रादिहेतोः	श्रा०सा०	२.७३७
	उमा०	७३
पुत्रमित्र-कलत्रादौ	श्रा०सा०	३.३५२
	उमा०	४५३
पुत्रः सागरदत्तो हि	प्रश्नो०	१५.६२
पुत्रान् दुर्व्यसनोपेतान्	,,	२२.१००
पुत्रार्थं रमयेद् श्रीमान्	कुन्द०	५.१९४
पुत्रीहरणसम्भूत	श्रा० सा०	१.२७४
पुत्रे राज्यमशेषमर्थिषु	देशव्र०	१६
पुत्र्यश्च संविभागार्हाः	महापु०	३८.१५४
पुद्गलक्षेपणं शब्दश्रावणं	सागार०	५.२७
पुद्गलक्षेपणं प्रेष्य	श्रा० सा०	३.२९५
पुद्गलार्धं परावर्ता	श्रा० सा०	१.५९
	उमा०	२८
पुद्गलाद्भिन्नचिद्धाम्नो	लाटी०	३.५१
पुद्गलोऽन्योऽहमन्यच्च	धर्मसं०	७.६२
पुनः कुर्यात्पुनस्त्यक्त्वा	लाटी०	४.१६६
पुनः सम्यक्त्वमाहात्म्याज्ज्ञान	धर्मोप०	१.५०
पुनरपि पूर्वकृतायां	पुरुषा०	१६५
पुनरूचे तयेतीशः	धर्मसं०	३.२९
पुनर्नवायाः श्वेताया गृहीत्वा	कुन्द०	८.२३३
पुनर्निरूपितं राज्ञ्या	प्रश्नो०	१३.८३
पुनर्निरूपितं रामदत्त्या	,,	१३.८०
पुनर्भव्यैः प्रदातव्यं	धर्मोप०	४.१८२
पुनर्लोभातिसक्तेन	प्रश्नो०	८.८
पुनर्विवाहसंस्कारः	महापु०	३९.६०
पुन्नाम्नि दौहृदे जाते	कुन्द०	५.२०६
पुरक्षोन्भात्परिज्ञाय	प्रश्नो०	९.३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरदेवतयागत्य	प्रश्नो०	१५.९०
पुरदेवतया तत्र	,,	६.२६
पुरन्दरं कृतारातिं	श्रा० सा०	१.६६५
पुरन्दरे तद्-भ्रात्रा	,,	१.६४४
पुरः सरेषु निःशेष	महापु०	३८.२८७
पुरा केनापि विप्रेण	धर्मोप०	४.६१
पुराणं धर्मशास्त्रं	महापु०	३९.२३
पुराणं पुरुषाख्यानं	गुणभू०	१.५९
पुराणे रजनीक्षणि	कुन्द०	५.१९९
पुरुप्रायान् बुभुक्षादि	सागार०	८.१००
पुरुषत्रयमबलासक्तमूर्त्तिं	यशस्ति०	५५०
पुरुषो दक्षिणे कुक्षौ	कुन्द०	५.२१०
पुरे पाटलिपुत्राख्ये	प्रश्नो०	२१.१९
पुरेऽरण्ये मणौ रेणौ	सागार०	६.४१
पुरोधोमत्र्यमात्मानं	महापु०	३८.२०५
पुरोहितः स्थितः राज्ञो	प्रश्नो०	१३.८६
पुलाकादिस्फुरद्-भेद	श्रा० सा०	१.५२९
पुष्पडालोऽतिसंवेगात्	प्रश्नो०	८.६८
पुष्पं त्वदीयचरणार्चन	यशस्ति०	४७३
पुष्पदन्तमहं वन्दे	प्रश्नो०	९.१
पुष्पमालायते सर्पः	श्रा० सा०	१.४७३
पुष्पसाधारणाः केचित्	लाटी०	१.९५
पुष्पं हि त्रससंयुक्तं	भव्यध०	१.८२
पुष्पाञ्जलिं जिनेन्द्राणां	प्रश्नो०	२०.२०४
पुष्पाञ्जलिप्रदानेन	उमा०	१७२
पुष्पादिकं समादाय	प्रश्नो०	५.२९
पुष्पादि घटिकासूच्चैः	लाटी०	१.१५१
पुष्पादिरशनादिर्वा	यशस्ति०	७६०
पुष्पामोदौ तरुच्छाये	,,	६९४
पुष्पैः पर्वभिरम्बुजबीज	{ ,,	५६८
	धर्मोप०(उक्तं)	४.२९
पुष्पैः संपूजयन् भव्यो	उमा०	१६६
पुष्टोऽन्तेऽन्नैर्मलैः पूर्णः	धर्मसं०	७.३३
पुष्यं पुनर्वसू चैव	कुन्द०	२.२४
पुंसः कृतोपवासस्य	यशस्ति०	७२३
पुंसां कल्पांह्रिपचिन्तामणि	प्रश्नो०	२०.५६

पुंसो यथा संशयिता	यशस्ति०	८७६
पुंसोऽर्थेषु चतुर्षु	देशव्र०	२५
पुंसो विशुद्धमनसो	व्रतो०	९१
पुस्तकार्चा-प्रदानादि	उमा०	२३३
पुस्तकाद्युपधिश्चैव	लाटी०	६.५७
पुस्तकाद्यपधिं वीक्ष्य	धर्मसं०	६.७
पूजनं पशुदुष्टानां	प्रश्नो०	४.२०
पूजनं यज्जिनेन्द्राणां	श्रा० सा०	१.४००
पूजयन्ति जिनेन्द्रान्न	प्रश्नो०	२०.२१३
पूजयन्ति न ये दीनाः	अमित०	१२.३५
पूजयन्ति बुधा यावत्कालं	प्रश्नो०	२०.१८४
पूजयेत्सर्वसिद्धयर्थं	भव्यध०	६.३५५
पूजयोपवसन् पूज्यान्	सागार०	५.३९
पूजा कल्पद्रुमः पूजा-	प्रश्नो०	२०.२१२
पूजा च विधिमानेन	भव्यध०	६.३५८
पूजा जिनेश्वरे योग्या	व्रतो०	८२
पूजादानं गुरूपास्ति	सं० भाव०	११३
पूजाद्रव्योर्जनोद्वाहे	कुन्द०	१.९३
पूजापरायणः स्तुत्वा	अमित०	११.५९
पूजा-पात्राणि सर्वाणि	सं० भाव०	३५
पूजाभिषेके प्रतिमासु	भव्यध०	६.३५७
पूजामप्यर्हतां कुर्याद्	लाटी०	२.१६३
पूजामादाय संयाति	प्रश्नो०	५.२१
पूजा मुकुटबद्धैर्या	धर्मसं०	६.३०
पूजायामपमाने	अमित०	१०.२३
पूजाराधयाख्ययाख्याता	महापु०	३९.४९
पूजार्थं नीचदेवानां	प्रश्नो०	१२.९४
पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः	रत्नक०	१३५
पूजालाभप्रसिद्धयर्थं	कुन्द०	१०.२८
पूजां विना जिनेन्द्राणां	प्रश्नो०	२०.२०९
पूजा श्रीमज्जिनेन्द्राणां	धर्मोप०	४.२०१
पूजां श्वभ्रगृहीर्गला	प्रश्नो०	२१.१९६
पूज्यते देवता यत्र	कुन्द०	८.९०
पूज्यनिमित्तं घाते	{ पुरुषा०	८१
	(उक्तं) श्रा०सा०	३.१६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूज्य-पूजा क्रमेणोच्चैः	धर्मो०	४.२१८
पूज्या ये भुवनत्रये	प्रश्नो०	२४.१३३
पूज्यः पूजाफलं तस्याः	धर्मसं०	६.३३
पूज्यो जिनपतिः पूजा	उमा०	१४६
पूज्योर्ध्वंस्थो न नार्द्राङ्घ्रि	कुन्द०	".८
पूज्योऽर्हन् केवलज्ञान	धर्मसं०	६.३४
पूता गुणा गर्ववतः	अमित०	७.४२
पूर्णः कुहेतुदृष्टान्तैः	,,	२.२९
पूर्णकाले देवैर्न रक्ष्यते	,,	९.६६
पूर्वं कर्म कृतस्यैव	प्रश्नो०	२.३६
पूर्वकर्मोदयाद् भावः	लाटी०	५.१५६
पूर्वकोटिद्वयोपेताः	अमित०	२.६२
पूर्वकोटीद्वयोपेता	श्रा०सा०	१.१६२
पूर्वं क्षुल्लकरूपेण	धर्मसं०	६.२१
पूर्वं गुणाष्टकस्यैव	प्रश्नो०	११.२
पूर्वदेशे हि गौडाख्य	,,	८.५
पूर्वं घनश्रिया योऽपि	,,	१२.१८८
पूर्वं निरीक्ष्य तत्सर्वं	,,	२४.१०५
पूर्वं पूर्वं व्रतं रक्षन्	गुणभू०	३.८१
पूर्वं भवं परिज्ञाय	प्रश्नो०	२१.१८८
पूर्वंत्सन्मुखमेकमागतं	धर्मसं०	६.१२०
पूर्ववत्सोऽपि द्वैविध्यः	लाटी०	३.३०९
पूर्वं सूरि क्रमेणोक्तं	भव्यध०	३.२१२
पूर्वं स्नाताऽनलिप्तापि	उमा०	१४९
पूर्वस्मिन् दिवसे चैक	धर्मोप०	४.१३५
पूर्वस्यां दिशि गच्छामि	लाटी०	५.११३
पूर्वस्यां श्रीगृहं कार्यं	उमा०	११२
	कुन्द०	८.७७
पूर्वाचार्य-क्रमेणोच्चैः	धर्मोप०	४.१३०
पूर्वाचार्यप्रणीतानि	श्रा०सा०	१.१४
	उमा०	२
पूर्वात्रयं श्रुतिद्वन्द्वं	कुन्द०	८.१०३
पूर्वादिदिग्विदिग्देशे	,,	८.७९
पूर्वानिलमवश्यायं	,,	६.२२
पूर्वानुभूतसम्भोगात्	प्रश्नो०	२३ ६८
पूर्वापरदिने चैका	सं० भाव०	९५
पूर्वापरविरुद्धादि	प्रश्नो०	२०.२८
	श्रा० सा०	१.७६
पूर्वापरविरोधेन	यशस्ति०	९९
	धर्मोप०	२.२
पूर्वापरसमुद्राप्त	धर्मसं०	१.२
पूर्वापराविरुद्धेऽ	पुरुशा०	३.६२
पूर्वाषाढोत्तराषाढा	कुन्द०	८.२७
पूर्वाह्णे किलमध्याह्ने	श्रा०सा०	३.३००
	उमा०	४२१
पूर्वाह्णे भुज्यते देवैः	धर्मसं०	३.३१
पूर्वाह्णे हरते पापं	उमा०	१८१
पूर्वेऽपि बहवो यत्र	सागार०	८.८७
पूर्वोक्तलक्षणैः पूर्णः	धर्मसं०	६.१५४
पूर्वोक्तयत्नसन्दोहैः	कुन्द०	११.१
पूर्वोक्तान् जीवभेदान् यो	प्रश्नो०	१२.६६
पूर्वोदितक्रमेणैव	लाटी०	६.६०
पूर्वोपर्जितकर्मैक	अमित०	३.५३
पृथक्त्वेनानुभवनं	धर्मसं०	७.१९२
पृथक् पृथक् हि शरीरं हि	भव्यध०	२.१७२
पृथक्-पृथगिमे शब्दाः	महापु०	४०.१७
पृथगाराधनमिष्ट	पुरुषा०	३२
पृथिवी-खननं नीरारम्भं	प्रश्नो०	२३.१०४
प्रथिव्यम्भोऽग्निवातेभ्यो	अमित०	४.६
प्रथिव्यादि-समुद्भूतं	प्रश्नो०	८.५७
पृथिव्यां शरण शेषो	श्रा०सा०	१.३७
पृथ्वीकायापः कायानां	भव्यध०	३.२४१
पृथ्वी तोयानीतं तेजो	,,	२.१६४
पृथ्वसत्त्वे शुभे स्यातां	कुन्द०	१.४३
पृथ्वप्तेजो मरुद्भ्यो खे	कुन्द०	१.३७
पृथ्व्याः पलानि पञ्चाशत्	कुन्द०	१.३२
पृष्टः शुश्रूषिणां कुर्याद्	पुरुशा०	६ ८१
पृष्टोऽपृष्टोऽपि नो दत्ते	गुणभू०	३.७४
पृष्ठपादौ च देहस्य	कुन्द०	५.२९
पेयं दुग्धादि लेपस्तु	लाटी०	१.१७
पेषिणी गर्गरी चुल्ली	पुरु०शा०	४.६१
पैशाचस्तु समो यः स्यात्	कुन्द०	८.६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पैशुन्यहासगर्भं	पुरुषा०	९६
पैशुन्यहास्यगर्भं	श्रा०सा० (उक्तं)	३.१९४
पोतवन्यूनताधिक्ये	यशस्ति०	३५५
पोषणं क्रूरसत्त्वानां	,,	४२२
पोषितोऽपि यथाशत्रुः	प्रश्नो०	२०.१३४
पोषितो हि यथा व्याघ्रः	,,	२०.१४०
पोष्यन्ते येन चित्राः	अमित०	९.१०८
पौराः प्रकृति-मुख्याश्च	महापु०	३८.२५१
पौरुषं न यथाकामं	लाटी०	३.९३
पौर्वापर्यविरुद्धं	अमित०	६.४१
प्रकटीकृत्य माहात्मा-	प्रश्नो०	१८.१२८
प्रकर्षस्य प्रतिष्ठान	अमित०	४.५५
प्रकर्षावस्थितिर्यत्र	,,	४.५६
प्रकारैरादिभैः षड्भिः	कुन्द०	१.१८
प्रकाशयति यो धर्मं	श्रा० सा०	१.३६३
प्रकुर्वन्ति मुनीनां ये	प्रश्नो०	९.६९
प्रकुर्वाणः क्रियास्तास्ताः	यशस्ति०	२४०
प्रकृतस्यान्यथा भावः	कुन्द०	८.६
प्रकृतिस्थित्यनुभाग	यशस्ति०	११२
प्रकृतीनामशस्ताना	अमित०	२.४५
प्रकृतेः स्यान्महांस्ताव	कुन्द०	८.२६९
प्रकृत्तोऽपि नरो नैव	लाटी०	२.१२५
प्रकृष्टो यो गुणैरेभिः	महापु०	३९.१५
प्रक्रमान्त्ययामवर्ज्यं	कुन्द०	८.८७
प्रक्रमेण विना बन्ध्यं	अमित०	९.३७
प्रक्षालनं च वस्त्राणां	लाटी०	६.३७
प्रक्षीणो भयकर्माणं	यशस्ति०	६२९
प्रक्षीयन्ते न तस्यार्था	अमित०	११.२०
प्रख्यापयन् स्व विभुत्तां	श्रा० सा०	१.११०
प्रचुरापात्र-संघातं	अमित०	९.७६
प्रच्छन्नेन तदाकर्ण्य	प्रश्नो०	१२.१५२
प्रजल्पितं त्वयाऽलीक	,,	११.१०५
प्रजानां पालनार्थं च	महापु०	३८.२७१
प्रजापालः नृपस्यैव	प्रश्नो०	५.३३
प्रजापालस्य या राज्ञी	श्रा० सा०	१.२१८
प्रणम्य चरणौ तस्य	प्रश्नो०	२१.१००

प्रणम्य त्रिजगत्कीर्त्ति	गुणभू०	१.१
प्रणम्य परमं ब्रह्म	व्रतो०	१
प्रणम्य मुनिनाथं तं	प्रश्नो०	१०.२२
प्रणम्य श्रीजिनं भूयस्तं	,,	५.४४
प्रणामं नृत्यसद्-गीतं	,,	२०.१७३
प्रणिधानप्रदीपेषु	यशस्ति०	६५७
प्रणिपत्याथ सर्वज्ञं	पुरुशा०	४.१
प्रणीतं जिननाथेन	प्रश्नो०	१५.३
प्रणीतं वेदशास्त्रादौ	,,	११.३०
प्रणीतो यः कुधर्मो हि	,,	३.१२७
प्रतापन्यक्कृतोद्दण्ड	श्रा०सा०	१.३४६
प्रतिकूलान् सुखीकृत्य	धर्मसं०	६.४६
प्रतिकूलो गुरोर्भूत्वा	अमित०	८.८१
प्रतिक्रमद्वयं प्राज्ञैः	,,	८.७०
प्रतिग्रहादिषु प्रायः	हरिवं०	५८.७३
प्रतिग्रहोच्चकैः पीठपाद	धर्मसं०	४.८५
प्रतिग्रहोच्चस्थानाङ्घ्रि	सागार०	५.०५
प्रतिग्रहोच्चस्थाने च (उक्तं)	चा०सा०	१२
प्रतिग्रहोच्चासनपाद	यशस्ति०	७४५
प्रतिग्रहोच्चैः सुस्थानं	धर्मोप०	४.१५६
प्रतिग्रहो मुनीन्द्राणां	प्रश्नो०	२०.२१
प्रतिग्राहोन्नतस्थानं	पूज्य०	६६
प्रतिदिवसं विजहद्	यशस्ति०	८६१
प्रतिपक्षभावनैव न रती	धर्मोप०	४.५१
प्रतिपत्तौ सजन्नस्यां	,,	८.५८
प्रतिपन्नश्च स तासां	प्रश्नो०	१३.९६
प्रतिपन्नस्य न त्यागः	कुन्द०	८.३८९
प्रतिमा काष्ठलेपाश्म	,,	१.१३८
प्रतिमाऽचेतना सूते	पुरुशा०	५.८७
प्रतिमातिशयोपेता	,,	५.९०
प्रतिमाः पालनीयाः स्युः	रत्नमा०	२१
प्रतिमानां दवरका	कुन्द०	१.१८२
प्रतिमायोगतो रात्रि	धर्मसं०	५.११
प्रतिमायां क्रियायांतु	लाटी०	४.१६९
प्रतिमायां समारोप्य	अमित०	१५.५४
प्रतिमां पूजयेद् भक्त्या	उमा०	१५९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिवर्षं सहस्रेण	कुन्द०	७.६
प्रतिष्ठेयाऽभिषेकेण	भव्यध०	६.३४५
प्रतिष्ठा जिनबिम्बानां	प्रश्नो०	२.६१
प्रतिष्ठापननाम्नी च	लाटी०	४.२५५
प्रतिष्ठायात्रादि व्यतिकर	सागार०	२.३७
प्रतिष्ठां ये प्रकुर्वन्ति	प्रश्नो०	२०.१९३
प्रतिसूक्ष्म क्षणं यावद्	लाटी०	३.२८९
प्रति संवत्सरं ग्राह्यं	कुन्द०	७.८
प्रतीच्छन् स महीपालः	श्रा०सा०	१.३२२
प्रतीतजैनत्वगुणेऽ	सागार०	२.५५
प्रतोली निकटे मार्गे	प्रश्नो०	७.४९
प्रतोलीरक्षकाच्छ्रुत्वा	,,	१५.९५
प्रतोल्यो नगरे सर्वा	,,	१५.९२
प्रत्नकर्म विनिर्मुक्ता	यशस्ति०	४५२
प्रत्यक्षं त्ववधिज्ञान	गुणभू०	२.११
प्रत्यक्षं त्रिविधं ज्ञानं	धर्मसं०	६.२८७
प्रत्यक्षं यत्र दृश्यन्ते	,,	२.१४६
प्रत्यक्षं सर्वदुःखानि	पुरु० शा०	४.७
प्रत्यक्षमनुमानं च	कुन्द०	८.२५०, ८.२६२
प्रत्यक्षमन्तरं श्रुत्वा	कुन्द०	१०.१
प्रत्यक्षमप्यमी लोकः	कुन्द०	९.१
प्रत्यक्षमविसंवादिज्ञानं	कुन्द०	८.२९४
प्रत्यक्षविषयैः स्थूलैः	गुणभू०	३.५
प्रत्यक्षेण प्रमाणेन	कुन्द०	११.८६
प्रत्यक्षेणानुमानेन	भव्यध०	२.१५२
प्रत्यक्षैकप्रमाणस्य	कुन्द०	११.८४
प्रत्यक्षोऽप्ययमेतस्य	गुणभू०	३.९३
प्रत्यग्रजन्मनीहेद	लाटी०	५.८८
प्रत्यन्तनगरं तत्र	धर्म सं०	२.८१
प्रत्यहं कुर्वतामित्थं	पुरु०शा०	४.१७९
प्रत्यहं क्रियते देववन्दना	धर्म सं०	४.४४
प्रत्यहं नियमात्किञ्चित्	,,	४.१२९
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय	श्रा० सा०	१.२०५
प्रत्याख्यावनुत्वान्	रत्नक०	७१
प्रत्याख्यानस्वभावाः	यशस्ति०	८९४
प्रत्याख्यानोदयाज्जीवो	सं०भावसं०	२
प्रत्युत ज्ञानमेवैतत्	लाटी०	३.१०४
प्रत्यूचेऽथ महीपालो	श्रा० सा०	१.६७८
प्रत्येकं तस्य भेदा	लाटी०	४.६८
प्रत्येकं ते द्विधा प्रोक्ता	लाटी०	४.७६
प्रत्येकं पञ्च तत्त्वानि	कुन्द०	१.२९
प्रत्येकं परमेष्ठिनं	भव्यध०	१.८
प्रत्येकं बहवः सन्ति	लाटी०	३.२२०
प्रत्येकं युगपद्	अमित०	४.१८
प्रत्याख्याय श्रुतज्ञानफलं	प्रश्नो०	२१.१३०
प्रथमं प्रेषणं शब्दो	,,	१८.१४
प्रथमं सत्यजाताय	महापु०	४०.३८
	,,	४०.४८
प्रथमं सयमं सेवमानः	उमा०	२०२
प्रथमस्य स्थितिः	,,	२९
प्रथमानुयोगमर्था	रत्नक०	४३
प्रथमायां त्रयं पृथ्व्यां	अमित०	२.५९
प्रथमाश्रमिणः प्रोक्ताः	सागार०	७.१९
	धर्म सं०	६.२५
प्रथमे मासि तत्तावद्	कुन्द०	५.२०४
प्रदत्तमरणार्थेना	प्रश्नो०	२०.८४
प्रदानसमये साऽऽह	,,	६.९
प्रदानार्हत्वमस्येष्टं	महापु०	४०.१८५
प्रदायदानं यतिनां	अमित०	१०.६२
प्रदीपानामनेकत्वं	लाटी०	३.१३५
प्रधानं यदि कर्माणि	अमित०	४.३५
प्रधानज्ञानतो ज्ञानी	,,	४.३२
प्रधानेन कृते धर्मे	,,	४.३४
प्रपश्यन्ति जिनं भक्त्या	पद्म० पंच०	१४
प्रपाप्येक्षुरसं मिष्टं	धर्मसं०	६.२४७
प्रपुत्राटं त्वेडदलं	उमा०	३१६
प्रपुपूषोर्निजात्मानं	धर्मसं०	५.४३
प्रबुद्धः पुनरुत्थाय	,,	४.६८
प्रभवं सर्वविद्यानां	यशस्ति०	६४६
प्रभविष्यति मेऽनेन	प्रश्नो०	१६.९४
प्रभाकरमते पञ्चैव	कुन्द०	८.२५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

प्रभातसमये तेऽपि	प्रश्नो०	९.२४
प्रभातसमये सोऽपि	,,	५.१६
प्रभाते चागतेनैव	,,	२१.१०९
प्रभातेऽतिमहाकोपा	,,	२१.१३७
प्रभाते मार्यमाणोऽपि	प्रश्नो०	१४.८१
प्रभाते वन्दना भक्ति	,,	६.३२
प्रभावती तपः कृत्वा	,,	७.१५
प्रभावत्या समं सौख्यं	श्रा०सा०	१.३१७
प्रभावनाङ्गसंज्ञोऽस्ति	लाटी०	३.३०७
प्रभावनादिकं येऽपि	प्रश्नो०	४.५६
प्रभावैश्वर्यविज्ञान	यशस्ति०	५९६
प्रभावो वर्ण्यते केन	धर्मोप०	४.१८
प्रभुप्रिये प्रियत्वं च	कुन्द०	२.९२
प्रभोः प्रसादेऽप्राप्तेऽपि	कुन्द०	२.१०१
प्रभो मह्यं दयां कृत्वा	प्रश्नो०	१७.१३८
प्रभो ये सन्ति दोषा हि	,,	११.४
प्रभो सर्वानतीचारान्	,,	११.९६
प्रमत्तो हिंसको हिंस्या	सागार०	४.२१
प्रमदा भाषते कामं	अमित०	४.७४
प्रमाणं कार्यमिच्छाया	पद्म० च०	१४.१५
प्रमाणं च प्रमेयं च	कुन्द०	८.२७७
प्रमाण-नय-निक्षेपैः	यशस्ति०	६१९
	गुणभू०	१.२१
	,,	१.६६
प्रमाणनयविज्ञेयं	भव्यध०	२.१७९
प्रमाणयन्ति कुत्रापि	पुरु० शा०	४.१८
प्रमाणव्यतिरेकेण	अमित०	४.८८
प्रमाणातिक्रमयो वास्तु	धर्मसं०	३.७८
प्रमाणाभावतस्तस्य	अमित०	४.५२
प्रमाणेनाप्रमाणेन	,,	४.८६
प्रमादचर्या विफल	सागार०	५.१०
प्रमादतोऽसदुक्तिर्या	पुरु० शा०	४.७८
प्रमादमदमुक्तात्मा	उमा०	१८७
प्रमादाज्जातदोषस्य	धर्मसं०	१.४९
प्रमादाज्जायते धातो	प्रश्नो०	१७.७४
प्रमादाज्ञानतो येऽपि	,,	१७.१७
प्रमादेन न नेतव्या	प्रश्नो०	२४.८९
प्रमादोद्रेकत्तोऽवश्यं	लाटी०	२.१४६
प्रमादो नैवकर्त्तव्यो	धर्मोप०	४.८८
प्रमार्जनं च मृदुभिः	लाटी०	५.२०६
प्रमार्जनविनिर्मुक्तो	व्रतो०	४५४
प्रमार्जनावलोकाभ्यां	प्रश्नो०	१९.६८
प्रनार्ज्य यत्नतो दक्षैः	,,	२४.१०८
प्रयच्छन्ति सौख्यं सुरा	अमित०	१०.७१
प्रयच्छन्नच्छमन्नादि	लाटी०	५.२२९
प्रयतेत सधर्मिण्यां	सागार०	३.३०
प्रयत्नमन्तरेणापि	लाटी०	२.३४
प्रयत्नेनाभिरक्ष्यं	महापु०	४०.८७
प्ररूपितं महिष्याऽहं	प्रश्नो०	२१.७९
प्ररूपिताः समासेन	,,	२.८३
प्रवर्तमानमुन्मार्गे	कुन्द०	८.३९८
प्रवर्ध्यते दर्शनमष्टभिर्गुणैः	अमित०	२.८२
प्रवर्धमानोद्धतसेवनायां	,,	१५.१०७
प्रबालपत्रपुष्पाणि	महापु०	३८.१८
प्रवासः सर्व लक्ष्मीनां	पुरु०शा०	४.६
प्रवासयन्ति प्रथमं	कुन्द०	८.२४
प्रवाहकाले सङ्ख्येयं	कुन्द०	१.३३
प्रवाहो यदि वार्केन्दोः	,,	१.९८
प्रविक्रीयान्नकृच्छ्रेषु	अमित०	९.९६
प्रणिधाय मनोवृत्तिं	महापु०	३८.१८८
प्रविधाय सुप्रसिद्धे	पुरुषा०	१३७
प्रविधायापरास्वेऽपि	प्रश्नो०	१८.७१
प्रविशत्यग्नौ पूर्णं	कुन्द०	१.२३
प्रविश्यगृह मध्येऽस्य	प्रश्नो०	५.३७
प्रविश्य राजा प्रविलोक्य	भव्यध०	१.५०
प्रविष्टो जिनदत्तस्य	प्रश्नो०	६.३१
प्रविहाय य द्वितीयान्	पुरुषा०	१२५
प्रवृत्तावत्र को यत्नः	कुन्द०	१.१०
प्रवृत्तिभेषजं व्याधि	,,	८.१२९
प्रवृत्तिः शोधिते शुद्धे	भव्यध०	१.९०
प्रवृत्तिस्तु क्रियामात्र	लाटी०	१.१२७
प्रशस्य पूजयित्वा	प्रश्नो०	१२.१८०

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशमय्य ततो भव्यः	अमित०	२.५१
प्रशमे कर्मणां षण्णां	,,	२.५४
प्रशमो विषयेषूच्चै	लाटी०	२.७१
प्रशस्तचित्त एकान्ते	कुन्द०	५.१९१
प्रशस्ततिथिनक्षत्र	महापु०	३९.१५७
प्रशस्तमन्यच्च	अमित०	७.२०
प्रशस्ताध्यवसायेन	,,	८.५
प्रशस्येनाश्वेन	श्रा० सा०	१.१२३
प्रशान्तधीः समुत्पन्न	महापु०	३८.२८३
प्रशान्तं स्वमनः कार्यं	प्रश्नो०	२२.२८
प्रश्नं कृत्वा मुखं दूतो	कुन्द०	८.१६६
प्रश्ने स्याद्यपि प्राच्या	,,	१.१५६
प्रश्ने प्रारम्भणे वापि	,,	१.९६
प्रश्रयेण विना लक्ष्मीं	अमित०	१३.५७
प्रश्रयोत्साह आनन्द	यशस्ति०	८०९
प्रसङ्गादत्र दिग्मात्रं	लाटी०	४.६५
प्रसन्नं पाठके विद्वान्	कुन्द०	८.४२५
प्रसरत्वरतमस्तोम	श्रा० सा०	१.१८५
प्रसर्पति तमःपूरे	उमा० श्रा०सा०	३२० ३.९८
प्रसारणाकुञ्चनमोटनानि	भव्यध०	५.२७७
प्रसिद्धं द्यूतकर्मेदं	लाटी०	१.११५
प्रसिद्धं विटचर्यादि	,,	५.६२
प्रसिद्ध सर्वलोकेऽस्मिन्	,,	१.५१
प्रसिद्धिर्जायते पुण्याद्	कुन्द०	१०.१७
प्रसिद्धै र्बहुभिस्तस्यां	लाटी०	१.१३२
प्रसूनगन्धाक्षतदीपिका	अमित०	१०.४३
प्रसूनमिव निर्गन्धं	कुन्द०	२.४४
प्रसेवकमितोऽगृह्णाद	पद्मच०	१४.१७
प्रस्तावना पुराकर्म	यशस्ति०	४९५
प्रस्तावेऽपि कुलीनानां	कुन्द०	८.३०५
प्रस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्त्तिश्च	,,	५.३
प्रस्तावेऽस्मिन् मुनेर्वज्र	प्रश्नो०	१०.६०
प्रस्थकूटं तुलाकूटं	व्रतो०	६२
प्रस्थितः स्थानतस्तीर्थे	धर्मसं०	७.४२
प्रस्थितो यदि तीर्थाय	सागार०	८.३०
प्रस्फुरन्मक्षिकालक्ष	श्रा० सा०	३.५०
प्राग्वद् द्वारप्रमाणं च	कुन्द०	१.१७५
प्रहरद्वितये मुक्त्वा	अमित०	१२.१२४
प्रहासमण्डितोपेतं	प्रश्नो०	१७.८२
प्रहृष्टः स प्रभुः प्राह	श्रा० सा०	१५.७०
प्रह्लासितकुदृग्बद्धश्वभ्रायुः	सागार०	८.७३
प्राक्कृतादेनसो गङ्गा	पुरु० शा०	३.१५२
प्राक् केन हेतुना यूयं	महापु०	३८.१६
प्राक् चतुः प्रतिमासिद्धो	धर्मसं०	५.१३
प्राक् चतुर्ष्वपि धर्मोऽय	पुरु०शा०	३.१
प्रागत्र सत्यजाताय	महापु०	४०.५७
प्रागेव क्रियते त्यागो	पुरु० शा०	५.२१
प्रागेव फलति हिंसा	पुरुषा०	५४
प्राग्जन्तुनाऽमुनाऽनन्ताः	सागार०	८.२७
प्राग्वदत्र विशेषोऽस्ति	लाटी०	१.१२६
प्राग्वदत्राप्यतीचाराः	,,	१.७७
प्रातः प्रथमे वाऽथ	कुन्द०	१.४७
प्राग्वर्णितमथानन्दं	महापु०	४०.१२०
प्राग्यत्सामायिकं शीलं	धर्मसं०	५.८
प्राच्यकर्मं विपाकोत्थ	पुरु० शा०	३.७२
प्राच्य पञ्चक्रियानिष्ठः	धर्मसं०	५.२०
प्राञ्जलीभूय कर्तव्या	अमित०	१३.७९
प्राणातिपात-वितथ	रत्नक०	५२
प्राणातिपाततः स्थूलाद्	पद्मच०	१४.५
प्राणान्तेऽपि न भङ्क्तव्यं	सागार०	७.५२
प्राणान्तेऽपि न भोक्तव्यं	प्रश्नो०	२४.१०१ १९.३३
प्राणाः पञ्चेन्द्रियाणीह	लाटी०	४.६१
प्राणा यान्तु न भक्षामि	धर्मसं०	२.६१
प्राणास्तिष्ठन्ति नश्येच्च	प्रश्नो०	२०.३६
प्राणिघातः कृतो देव	श्रा० सा० उमा०	३.१३६ ३४१
प्राणिघातभवं दुःखं	पुरु० शा०	४.६८
प्राणिदेहविघातोत्थ	गुणभू०	३.१०
प्राणिनां देहजं मांसं	पूज्य०	१८
प्राणिनां रक्षणं त्रेधा	सं० भाव०	१६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणिनो दुःखहेतुत्वाद्	हरिवं०	५८.१४
प्राणि-प्राण-गणापहार	श्रा०सा०	३.२०७
प्राणिरक्षात्परं पुण्यं	पुरु० शा०	४.५३
प्राणिषु भ्राम्यमाणेषु	उमा० श्रा०सा०	७८ १.७४२
प्राणिहिंसा-परित्यागात्	उमा०	२१६
प्राणिहिंसार्पितं दर्पं	सागार०	२.८
प्राणी द्वादशधा मिथ्या	श्रा०सा०	१ ७५५
प्राणी प्रमाद-कलितः	अमित०	६.२४
प्राणेभ्योऽपि प्रियं वित्तं	पुरु०शा०	४.८३
प्राण्यङ्गत्वे समेऽप्यन्नं	सागार०	२.१०
प्रातः क्षणागालित युक्	उमा०	३०९
प्रातः पुनः शुचीभूय	गुणभू०	३.६५
प्रातः शनैः शनैर्नस्यो	कुन्द०	१.७९
प्रातः प्रोत्थाय ततः	पुरुषा०	१५५
प्रातरुत्थाय कर्तव्यं	पद्म० पंच०	१६
प्रातरुत्थाय संशुद्ध	श्रा०सा० उमा०	३.३१३ ४२८
प्रातर्घटीद्वयादूर्ध्वं	पुरु० शा०	४.४७
प्रातर्जिनालयं गत्वा	धर्मसं०	४.७२
प्रातर्विधिस्तव पदाम्बुज	यशस्ति०	५२९
प्रायश्चित्तं व्रतोच्चारं	कुन्द०	१२.२
प्रतिहार्यवरैर्भृत्यैः	भव्यध०	१.३६
प्रातिहार्याष्टकं कृत्वा	अमित०	१२.५
प्रातिहार्याष्टकं दिव्यं	महापु०	३८.३०२
प्रातिहार्याष्टकैः देवकृतैः	प्रश्नो०	३.७४
प्रादुर्भवन्ति निःशेष	महापु०	२८.२९८
प्रान्ते चाराध्य कश्चिद्विधि	धर्मसं०	७.१९८
प्रापद्दैवं तव नुतिपदैः	धर्मोप० (उक्तं)	४.२७
प्राप्तं जन्मफलं तेन	प्रश्नो०	११.५५
प्राप्ता ये मुनयः श्रुतार्णवधराः	,,	१८.१९५
प्राप्तेऽर्थे येन माद्यन्ति	यशस्ति०	४०५
प्राप्तोत्कर्षं तदस्य	महापु०	३९.१९८
प्राप्नुवन्ति जिनेशत्वं	प्रश्नो०	२३.५२
प्राप्नोति देशनायाः	पुरुषा०	८
प्राप्यतेऽमुत्र लोकेऽहो	प्रश्नो०	१५.१५
प्राप्य द्रव्यादि सामग्रीं	गुणभू०	१.६५
प्राप्य वसतिकां सारां	प्रश्नो०	२०.७४
प्राप्यापि कण्टकष्टेन	अमित०	१२.८१
प्राक् परिसंख्यया त्यक्तं	लाटी०	४.२४४
प्रामाणिकः क्रमोऽप्येष	,,	२.१४९
प्राय इत्युच्यते	यशस्ति०	३३५
प्रायः पुष्पाणि नाश्नीयात्	सागार०	३.१३
प्रायः पुष्पाणि नाश्नीयाः	धर्मसं०	२.१५०
प्रायश्चित्तं च विनयो	उमा०	२२२
प्रायश्चित्तविधानज्ञः	महापु०	३९.७४
प्रायश्चित्त शुभं ध्यानं	,,	१०.२६
प्रवृट्काले स्फुरत्तेजः	कुन्द०	६.१०
प्रायश्चित्तादिशास्त्रेभ्यो	पुरु० शा०	४.३८
प्रायश्चित्तादिशास्त्रेषु	श्रा०सा०	३.८३
प्रायश्चित्तादि शास्त्रेषु	उमा०	२८१
प्रायः सम्प्रतिकोपाय	यशस्ति०	१३
प्रायार्थी जिनजन्मादि	सागार०	८.२९
प्रायो दोषेऽप्यतीचारे	लाटी०	६.८२
प्रायो विधामदान्धानां	धर्मसं०	७.३५
प्रारब्धो घटमानश्च	,,	२.१०
प्रारब्धो घटमानो	सागार०	३.६
प्रारभेत कृती कर्तुं	पुरु०शा०	६.१०१
प्रारम्भा यत्र जायन्ते	अमित०	९.५२
प्रार्थ्ययेतान्यथा भिक्षां	सागार०	७.४३
प्रार्थयेद्यदि दाता	धर्मसं०	५.६६
प्रावृट्काले स्थितान्	प्रश्नो०	३.१४१
प्रावृषि प्राणिनो दोषाः	कुन्द०	६.१४
प्रावृत्य कम्बलं रात्री	प्रश्नो	२१.९०
प्रावृषि द्विदलं त्याज्यं	धर्मसं०	४.५२
प्रासादगर्तंपूरोऽम्बु	कुन्द०	१.१६०
प्राशनेऽपि तथा मन्त्रं	महापु०	४३.१४१
प्रासादतुर्यभागेन	कुन्द०	१.१४५
प्रासादे गर्भगेहार्धे	कुन्द०	१.१४८
प्रासादे कारिते जैने	धर्मसं०	६.८१
प्रोक्ष्मा पापान्मली पापात्	कुन्द०	९.१३
प्रासादे-जिनबिम्बं च	धर्मसं०	६.८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते { उमा० १०७ / कुन्द० १.१७१
प्रासुकं सर्प हिंसादित्यक्तं प्रश्नो० २०.२४
प्रासुकैरौषधैर्योग्यैः अमित० १३.६४
प्रियदत्तः पिता यादृक् श्रा० सा० १.२६४
प्रियदत्तोऽभवच्छ्रेष्ठी ,, १.२३८
प्रियःशीलःप्रियाचारः यशस्ति० ३६१
प्रियश्यालक काकस्य धर्मसं० २.६९
प्रियप्रियेयोगवियोगा भव्य ध० ५.२७२
प्रियायोगा प्रियायोग अमित० १५.११
प्रियोद्भवः प्रसूतायां महापु० ३८.८५
प्रियोद्भवे च मन्त्रोऽयं ,, ४०.१०८
प्रीणितः प्राणिसङ्घातः श्रा० सा० १.४९१
प्रीताश्चाभिष्टुवन्त्येनं महापु० ३८.२५०
प्रीतिकीर्त्तिमतिकान्ति अमित० १४.३
प्रीतिङ्कर विमानानि भव्यध० ३.२२२
प्रीतेनामर-वर्गेण अमित० ११.१११
प्रेरितः काललब्ध्याऽथ श्रा०सा० १.६३१
प्रेर्यंते कर्म जीवेन यशस्ति० १०६
प्रेर्यंते यत्र वातेन धर्मसं० ६.७४ / उमा० १४२
प्रेषण-शब्दानयनं रत्नक० ९६ / धर्मोप० ४.१११
प्रेषस्य संप्रयोजन पुरुषा० १८९
प्रेष्य आनयनं शब्द व्रतो० ४४८
प्रेष्य प्रयोगानयन हरिवं ५८.६४
प्रोक्तमन्येन सञ्जात प्रश्नो० १०.३४
प्रोक्तं द्विजेन सोऽपि ,, १४.५३
प्रोक्तं सामायिकस्यैव ,, २२.५९
प्रोक्तं सूत्रानुसारेण लाटी० ५.१०९
प्रोक्ता पूजामर्हतामिज्या महापु० ३८.२६
प्रोक्तास्त्विन्द्रोपपादा ,, ३८.२०२
प्रोक्तो नित्यमहोऽन्वहं सागार० २.२५
प्रोक्ष्मा पापान्मली पापात् कुन्द० ९.१३
प्रोचिता देशविरतिः लाटी० ५.१२२
प्रोपासकाचारमिदं प्रश्नो० २४.१२६
प्रोवाच फामनो नाम्नः लाटी० ४.५४
प्रोषधं नियमेनैव प्रश्नो० २९.२९
प्रोषधं यच्चतुर्दश्यामेक ,, २९.३१
प्रोषधं व्रतसंयुक्तं भव्यध० ६.३०४
प्रोषधं शमभावार्थं ,, ६.३०५
प्रोषधः पर्ववाचीह धर्मसं० ४.६०
प्रोषधाद्युपवासं गुणभू० ३.६९
प्रोषधोपवासस्यात्र लाटी० ५.२११
प्रौढिमानमतो याव श्रा० सा० १.२९३

फ

फलकाले कृतास्यो न कुन्द० ८.४०२
फलं चौर्यद्रुमस्येह श्रा० सा० ३.२१० / उमा० ३६४
फलं नाभयदानस्य अमित० ११.१
फलमूलाम्बुपत्राद्यं सं० भाव० ९७
फलमेतावद्युक्तस्य लाटी० ४.९५
फलवत्क्रमतः पक्त्वा धर्मसं० ७.१२
फलसस्यादिवद्भक्ष्यं ,, २.३६
फलं साधारणं स्वातं लाटी० १.९६
फलानि च वटाश्वत्थ पुरु० शा० ४.२६
फलाय जायते पुंसो अमित० १३.८०
फल्गुजन्माप्ययं देहो यशस्ति० ५८२

ब

बद्धवध्याश्रये द्यूत कुन्द० ८.३६२
बदरामलकविभीतद्ध अमित० ११.६८
बद्धायुष्को निजां मुक्त्वा धर्मसं० ३.८२
बद्धोऽथभीमदासोऽथ उमा० २९०
बद्धोद्यमेन नित्यं लब्ध्वा पुरुषा० २१०
बधिरत्वं च खञ्जत्वं प्रश्नो० ११.७५
बधूलक्षण-लावण्य कुन्द० ५.८७
बन्धनं ताडनं छेदो धर्मसं० ३.१४
बन्धः प्रकृतिर्देशश्च भव्यध० २.१९०
बन्धः स मतः प्रकृति अमित० ३.५५
बन्धस्य कारणं प्रोक्तं यशस्ति० ११४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धाद्देहोऽत्र करणान्ये	सागार०	६.३१
बन्धो मात्राधिको गाढं	लाटी०	४.२६४
बन्धो मोक्षश्च ज्ञातव्यः	,,	३.२६९
बब्बूलं कल्पवृक्षेण	धर्मसं०	१.१२
बलक्षयो भवेदूर्ध्वं	कुन्द०	५.१८६
बलत्वं वासुदेवत्वं	पूरु० शा०	३.८
बलनामकुमारेण	प्रश्नो०	१२.१४७
बलभोगोपभोगानां	कुन्द०	८.२३७
बलाद्विक्षिप्यमाणं तैः	पुरु०शा०	६.११०
बलाहकादेकरसं	अमित०	१०.५०
बलिनां नवशं येऽगुः	पुरु०शा०	४९९
बलिनो बलराजस्थ	श्रा०सा०	१.१६
बलिप्रभृतयस्तेऽपि	प्रश्नो०	९.२९
बलिस्नपननाट्यादि	सागार०	२.२९
बलिस्नपनमित्यन्यः	महापु०	३८.३३
बलीवर्दसमारूढं	श्रा० सा०	१.३८१
बलैर्निरूपितं राजा	प्रश्नो०	९.३२
बहवो वीक्षणस्यैवं	कुन्द०	८.३३०
बहिः कार्यासमर्थेऽपि	यशस्ति०	२३९
बहिः क्रिया बहिष्कर्म	,,	२२८
बहिः परिग्रहोऽल्पत्वं	पुरुषा०	४.१२९
बहिः शरीराद् यद्रूप	यशस्ति०	९
बहिः स्थित्त त्रिकोणाग्नि	पुरु० शा०	५.५२
बहिरन्तः परश्चेति	अमित०	१५.५७
बहिरन्तस्तमो वातै	यशस्ति०	५९०
बहिरात्माऽऽत्म विभ्रान्तिः	अमित०	१५.५८
बहिर्दृष्टिरत्नात्मज्ञो	लाटी०	३.४३
बहिर्यानं ततो द्वित्रैः	महापु०	३८.९०
बहिर्विहृत्य सम्प्राप्तो	यशस्ति०	४३७
बहिस्तोऽप्यागतो गेहं	कुन्द०	८१४
बहिस्तपः स्वरोऽभ्येति	यशस्ति०	८.१४
बहुदुःखाः संज्ञपिताः	पुरुषा०	८५
	श्रा० सा०	३.१६६
बहुदोष-समायुक्तं	प्रश्नो०	२३.१५
बहुधारा प्रश्नविका	कुन्द०	५.९९
बहुनाऽत्र किमुक्तेन	अमित०	११.३१
बहुनिद्रा न कर्तव्या	प्रश्नो०	२४.१११
बहुनोक्तेन किं मूढः	,,	३.१२४
बहुनोक्तेन किं साध्यं	,,	१२.१२२
बहुप्रकाराशुचिराशिपूर्णे	अमित०	१४.३४
बहुप्रलपितेनाल	लाटी०	६.३८
बहुप्रलपिते नालं	,,	४.२७२
बहुभिः कीटकाद्यैः संश्लिष्ट	धर्मसं०	३.३८
बहु बध्नाति यः कर्म	अमित०	२.१७
बहुशः समस्तविरतिं	पुरुषा०	१७
बहुसत्त्वघातजनिता	पुरुषा०	८२
	श्रा.सा. (उक्तं)	३.१६३
बहुसत्त्वघातिनोऽमी	पुरुषा०	८४
	श्रा०सा०	३.१६५
बहूनां कर्मणां राजन्	धर्मसं०	१.४
बहूनि तानि दानानि	अमित०	९.७१
बहूपवासं मौनं च	प्रश्नो०	२४.७५
बह्वारम्भग्रन्थसन्दर्भदर्पे	अमित०	३.४७
बाण-वृष्टि-समाकीर्णे	प्रश्नो०	२३.४२
बाणैः समं पञ्चभिरुग्र	अमित०	१५.१०५
बान्धवाः सुहृदः सर्वे	,,	१२.४८
बान्धवैरञ्चिता	,,	५.६६
बान्धवो भवति शात्रवोऽपि वा	,,	१४.६४
बालके स्तनदानार्थी	व्रतो०	४९२
बालकोऽहं कुमारोऽहं	अमित०	१५.६३
बालः कृत्रिमबन्धूनां	श्रा०सा०	१.६५२
बालग्लानतपःक्षीण	यशस्ति०	७५१
बालमस्पर्शिका नारी	प्रश्नो०	१४.७६
बालराज्यं भवेद्यत्र	कुन्द०	८.४
बालवार्धक्यरोगादि	गुणभू०	३.९७
	यशस्ति०	१६८
बालवृद्धगदग्लानान्	(उक्तं)श्रा.सा.	१.३१५
	उमा०	५१
बालहत्या भवेद्दोषः	प्रश्नो०	१५.७६
बालालेखनकैः कालैः	कुन्द०	५.१३५
बालासक्त-जनानां च	उमा०	६०
बालां सत्कन्यकां सारां	प्रश्नो०	२३.३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाल्य एव ततोऽभ्यस्येद्	महापु०	४०.१८०
बाल्यात् प्रभृति या विद्या	,,	४०.१७८
बहिरङ्गादपिसङ्गा	पुरुषा०	१२७
बाहिस्तास्ता क्रिया	यशस्ति०	३८५
बाह्यं निमित्तमत्रास्ति	लाटी०	२.२३
बाह्यप्रभावनाङ्गोऽस्ति	,,	३.३१३
बाह्यमाभ्यन्तरं चेति	उमा०	२१९
बाह्यवस्तु विनिर्मुक्तः	धर्मोप०	४.२४१
बाह्य-सङ्गरते पुंसि	यशस्ति०	४०८
बाह्याभ्यन्तरनैःसङ्गयाद्	वराङ्ग०	१५.१९
बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्विधा	धर्मसं०	७.२६
बाह्याभ्यन्तरसङ्गवर्जनतया	देशव्र०	१
बाह्याभ्यन्तर-सङ्गेषु	धर्मोप०	४.२४०
बाह्ये ग्राह्ये मलापायात्	यशस्ति०	३६
बाह्येषु दशसु वस्तुषु	रत्नक०	१४५
बाह्यो ग्रन्थोऽङ्गमक्षाणां	सागार०	८.८९
बिम्बस्य रत्नवैडूर्यं	श्रा०सा०	१.४२९
बिम्बादलोन्नतिय-	देशव्र०	२२
	धर्मोप०(उक्तं)	४.३२
बिम्बीदलसमे चैत्ये	उमा०	११५
बिलेशयैरिव स्फार-	श्रा० सा०	३.३७१
बीजमन्नं फलं चोप्तं	पुरु० शा०	६.२२
बीजमुप्तं यथाऽकाले	प्रश्नो०	१८.९४
बीजं मोक्षतरोर्हशं	देशव्र०	३
बीभत्सु प्राणिघातोत्थं	धर्मसं०	२.३३
बुद्धिऋद्ध्यादयोऽनेका	,,	५.३०
बुद्धिनिष्ठः कनिष्ठोऽपि	गुणभू०	२.३७
बुद्धि-पौरुषयुक्तेषु	यशस्ति०	७७५
बुद्धिमद्धेतुकं विश्वं	अमित०	४.७७
बुद्धिमाहात्म्यसामर्थ्यात्	प्रश्नो०	९.३३
बुद्धोऽपि न समस्तज्ञः	अमित०	४.८५
बुद्ध्यौषधर्द्धसम्पन्नो	धर्मसं०	६.२८६
बुद्ध्वेति दोषं द्धीमान्	,,	२.५०
बुधजनपरिसेव्यं	प्रश्नो०	१.५०
बुधस्य दिवसे ज्ञेयाः	कुन्द०	८.२१२
बुधे लब्धोदयः शूद्रः	कुन्द०	८.१९२
बुधैकसेव्यं हृतसर्वदोषं	प्रश्नो०	१४.३७
बुधैरुपर्यधोभागे	अमित०	८.४६
बुभुक्षते यः विशितं	श्रा० सा०	३.३०
बुभुक्षा मत्सरा भङ्गः	कुन्द०	११.६७
बुभुक्षितेभ्यो हृदयङ्गमं	श्रा० सा०	१.१२८
बुभुजाते सुखं दिव्यं	धर्मसं०	२.७९
बृहद्वस्त्रं न चादेयं	प्रश्नो०	२४.३७
बृहस्पतिदिने काल	कुन्द०	८.२१३
बोधत्रय विदितविधेयतन्त्र	यशस्ति०	५४३
बोधःपूज्यस्तपोहेतुः	धर्मसं०	६.१८२
बोधापगाप्रवाहेण	यशस्ति०	४५५
बोधोऽवधिः श्रुतमशेष	,,	४६९
बोधो वा यदि वानन्दो	,,	३२
बोध्यम प्रतिबन्धस्य	अमित०	४.५७
बोध्यागमकपाटे ते	यशस्ति०	६१६
बौद्धचार्वाकसांख्यादि	रत्नमा०	५४
बौद्धानां सुगतो देवः	कुन्द०	८.२५६
बौद्धे रक्तपटी संग	धर्मसं०	१.१७
ब्रह्मचर्यं च कर्त्तव्यं	लाटी०	५.२०३
ब्रह्मचर्यं चरेद्यस्तु	प्रश्नो०	१५.३२
ब्रह्मचर्यं परित्यक्तं	,,	२३.३६
ब्रह्मचर्यं समाख्याय	,,	२३.९८
ब्रह्मचर्यफलाज्जीवः	,,	१५.५६
ब्रह्मचर्यमहं मन्ये	,,	२३.८७
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य	लाटी०	५.६७
ब्रह्मचर्यव्रतं मुख्यं	पुरु० शा०	४.११०
ब्रह्मचर्ये गुणानेकान्	धर्मसं०	५.३५
ब्रह्मचर्येण कामारिं	पुरु० शा०	६.६७
ब्रह्मचर्योपपन्नस्य	यशस्ति०	४३३
ब्रह्मचर्योपपन्नाना	,,	१२६
ब्रह्मचारिणि रूपाणि	पुरु० शा०	३.८१
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च	महापु०	३९.१५२
	चारित्र सा०	२१
ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो	सागार०	७.२०
ब्रह्मचारी पुमान्नित्यं	प्रश्नो०	२३.२३
ब्रह्मचारी भवेद् वन्द्यो	पुरु० शा०	६.३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मणो रूपमादाय	श्रा०सा०	१.३७५
ब्रह्मणोऽसत्यमित्ययेव	महापु०	३९.१२७
ब्रह्मदत्तो नृपः प्राप्तो	प्रश्नो०	१२.५०
ब्रह्मदत्तोऽभव दुःखी	धर्मसं०	२.१६१
ब्रह्मब्रह्मोत्तरे लान्ते	भव्यध०	३.२३७
ब्रह्मव्रतफलेनैव	प्रश्नो०	२३.४९
ब्रह्मव्रतस्य रक्षार्थं	लाटी०	५.६१
ब्रह्मव्रतात्मनां पुंसां	प्रश्नो०	२३.४४
ब्रह्मसद्मे तसां पादौ	,,	२३.४८
ब्रह्मसिंहासनासीनो	प्रश्नो०	२३.५३
ब्रह्मागमनमाकर्ण्य	श्रा०सा०	१.३७६
ब्रह्मात्मानं विचारो यो	कुन्द०	११.२६
ब्रह्मैकं यदि सिद्धं स्याद्	यशस्ति०	४२
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः	सं०भाव (उक्तं)	अनसं०
ब्राह्मणादि-चतुर्वर्ण्यं	धर्मसं०	६.१४२
ब्राह्मणा वृतसंस्कारात्	महापु०	३८.४६
ब्राह्मणी सत्यभामापि	प्रश्नो०	२१.३८
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय	सागार०	६.१
ब्रूत यूयं महाप्रज्ञा	महापु०	३९.९
ब्रूते तत्रोर्विलादेवी	प्रश्नो०	१०.५८
ब्रूते मद्वचनेनैव	,,	८.१९
ब्रूयते पत्र तीर्थेशे	,,	४.२२
ब्रूयाच्च नेमिनाथाय	महापु०	४०.५०

भ

भक्तिप्रह्वतया पञ्च	श्रा०सा०	१.५२८
भक्तिर्नित्यं जिनचरणयोः	यशस्ति०	५२८
भक्तिर्वा नाम वात्सल्यं	लाटी०	२.११४
भक्तिश्रद्धासत्त्वतुष्टि	सागार०	५.४७
भक्त्या कृता जिनार्चे	पुरु०शा०	५.८५
भक्त्या नतामराशय	यशस्ति०	५२२
भक्त्या मुकुटबद्धैर्या	सागार०	२.२७
भक्त्याऽर्हत्प्रतिमा पूज्या	धर्मसं०	६.४२
भक्त्वामद्‌क्त्वाऽऽत्मनो	श्रा०सा०	१.४६
भक्तैरित्थं यथाशक्ति	पुरु०शा०	३.१२४
भक्षणीयं भवेन्नैव	प्रश्नो०	२२.८४
भक्षणेऽत्र सचित्तस्य	लाटी०	६.१७
भक्षयन्ति पलमस्तचेतनाः	अमित०	५.२२
भक्षयन्ति पिशितं	,,	५.१६
भक्षयन्ति शठा ये	प्रश्नो०	१७.११४
भक्षयन्ती कुसिक्थ्यानि	,,	१०.४६
भक्षयित्वा पराहारं	,,	२४.९१
भक्षयित्वा विषं घोरं	अमित०	१२.४४
भक्षितो मधुकणो सञ्चितं	,,	५.३१
भक्षितं येन रात्रौ च	प्रश्नो०	२२.८३
भक्ष्यं स्यात्कस्यचित्	श्रा०सा०	३.७१
भक्ष्याभक्ष्येषु मूढो वा	उमा०	४७४
भगवन् किं कुदानं तद्यतः	प्रश्नो०	२०.१४८
भगवन् तत्त्वसद्भावं	,,	२.५
भगवन्नामधेयास्तु	कुन्द०	८.२५४
भगवन् मे व्यतीपातान्	,,	२१.३
भगवन्तो दिशध्वं ये	,,	१७.७९
भगवन्तो व्यतीपातान्	{ प्रश्नो०	१७.१५
	,,	१९.६६
भगवस्तं कुधर्मं हि	,,	३.११०
भगवानभि निष्क्रान्तः	महापु०	३८.२९२
भङ्गस्थानपरित्यागी	अमित०	१२.५३
भङ्गाहिफेन-धत्तूर	लाटी०	१.६८
भज जिनवरदेवं	प्रश्नो०	३.१५५
भजते तीर्थनाथान्	,,	३.९८
भजनीया इमे सद्भिः	धर्मसं०	७.१२०
भजन् मद्यादिभाजः	सागार०	३.१०
भजन्ति चक्रवर्तित्वं	प्रश्नो०	२३.५१
भजेद्देहमनस्तापशमान्तं	सागार०	३.२९
भजेन्नारीं शुचिः प्रीतः	कुन्द०	५.१९२
भणितं वारिषेणेन	प्रश्नो०	८.६५
भणन्त्या मायया ग्रामं	,,	१२.१६२
भण्डिमादिकरो रागोद्रेकाद्	,,	१७.८१
भट्टारक व्यतीचारान्	,,	१६.४४
भट्टारक व्यतीपातान्	,,	१८.१०१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भद्रं चेज्जन्म स्वर्लोके	लाटी०	३.४१
भद्रं मिथ्यादृशो जीवा	सं० भाव०	१३१
भयमशुभकर्मगारव	व्रतो०	५०५
भयलोभोपरोधाद्यैः	यशस्ति०	७७४
भयसप्तविनिर्मुक्तां	प्रश्नो०	४.३५
भयाशास्नेहलोभाच्च	रत्नक०	३०
	(उक्तं) श्रा०सा०	१.३४२
भयेन स्नेह-लोभादि	पुरु०शा०	३.१५५
भयेन स्नेह-लोभाभ्यां	व्रतसा०	१८
भरतक्षेत्र-मध्यस्थं	भव्यध०	१.१२
भरतेन रतेन शासने	श्रा०सा०	१.६१४
भरते वंगदेशेऽभूद्	प्रश्नो०	७.३
भरतेशकृतान्-तत्र	,,	१६.६२
भरतो तस्य पुत्रश्च	भव्यध०	१.७३
भरतो दीर्घजीवी च	उमा०	१५२
भरतो भारतं वर्षं	महापु०	३८.४
भर्तुर्बहुमानपात्रं	श्रा० सा०	३.१२१
भर्मिभस्म जटावोट	यशस्ति०	१७१
भवकम्पसमाक्रान्तं	गुणभू०	३.१२
भवत्युद्यमी भौमे	कुन्द०	८.१९१
भवदुःखानलशान्तिः	यशस्ति०	४८१
भवद्भिर्मयि क्षन्तव्यं	धर्मसं०	५.५६
भवने नगरे ग्रामे	अमित०	९.३१
भवन्ति ये कार्मण	,,	१४.२९
भवन्त्यणुव्रतस्यैव	प्रश्नो०	१२.१३२
भवत्ति यो जिनशासन	अमित०	१०.३२
भव-बन्धन मुक्तस्य	महापु०	३९.२०५
भवसन्तापभिद्वावयान्	धर्मसं०	६.५८
भवसप्तक-वित्रस्तः	अमित०	८.८०
भवाङ्गभोग-निर्विण्णाः	धर्मसं०	६.१३
भवानामेवमष्टानामन्तः	पद्मच०	१४.२५
भवाब्धौ भव्यसार्थस्य	चारित्र सा०	९
भवाम्बुधिपतज्जन्तु	पुरु०शा०	५.६४
भवे कारागृहनिभे	कुन्द०	९.१०
भवेच्च जीविताशंसा	प्रश्नो०	२२.५०
भवेत्परिभवस्थानं	कुन्द०	८.३७१

भवेदयुतसिद्धानां	कुन्द०	८.२८८
भवेदेतदहोरात्रैः	कुन्द०	५.२०३
भवेद्दर्शनिको नूनं	लाटी०	२.१२१
भवेद्वा मरणं मोहाद्	,,	१.२१७
भवेयुः खण्डदेहे तु	कुन्द०	५.२११
भवेषम्यतले वेधो	कुन्द०	८.८४
भव्यः पञ्चपद मन्त्रं	धर्मसं०	७.१२१
भव्यः पञ्चेन्द्रियः पूर्णो	अमित०	२.४०
भव्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी	प्रश्नो०	४.२
भव्यः पर्याप्तिवान् संज्ञी	धर्मसं०	१.२४
भव्यः पितृव्यो वरभव्यबन्धुः	भव्यध०	५.१
भव्यात्मा पूजकः	सं० भाव०	२५
भव्यात्मा समवाप्य	महापु०	३९.२११
भव्या नाके सुखं भुक्त्वा	भव्यध०	४.२७१
भव्यानामणुभिर्व्रतै	देश व्र०	२६
भव्येन प्रातरुत्थाय	व्रतो०	२
भव्येन शक्तितः कृत्वा	अमित०	१२.१०९
भव्येन स्तवनं विधाय	व्रतो०	९
भव्यैः पूर्वाह्णमध्याह्ना	पुरु०शा०	५.८
भव्यैः पञ्चनमस्कार	धर्मोप०	५.१०
भव्यैर्विधूतदृग्मोहैः	श्रा०सा०	३.१
भस्मगोमयगोस्थान	कुन्द०	१.५०
भस्मसात् कुरुते	सं० भाव०	१७७
भाक्तिकं तौष्टिकं श्राद्ध	अमित०	९.३
भाक्तिको बुद्धिमानर्थी	,,	८.२३
भागद्वयं तु पुण्यार्थे	श्रा०सा०	३.३२७
भागद्वयी कुटुम्बार्थे	,,	३.३२६
भागिनेयोमिमां दत्वा	,,	१.७०६
भागी भव पदं ज्ञेयं	महापु०	४०.१४४
भागी भव पदं वाच्यं	,,	४०.१०६
भागी भव पदान्तश्च	,,	४०.१००
भागी भव पदेनान्ते	,,	४०.१४२
भागी भव पदोपेतः	,,	४०.९२
भानोः करै रसंस्पृष्टं	कुन्द०	४.४
भारः काष्ठादिलोष्ठान्न	लाटी०	४.२६७
भाराति क्रम-च्युतिरोपघात	अमित०	७.३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भार्यायांश्च लोकादीना	प्रश्नो०	२१.२७
भार्यास्नेहेन सांन्निध्यं	धर्मसं०	६.११४
भालनासाहनुग्रीव	कुन्द०	१.१३०
भालं नासा हनु ग्रीवा	कुन्द०	१.१३२
भाले कण्ठे हृदि भुजे	उमा०	१२१
भालेनाखण्डरेखेण	कुन्द०	५.१०९
भावद्रव्य-स्वभावा ये	अमित०	१२.१
भावनापञ्चकं यावद्	लाटी०	५.४७
भावना पञ्च निर्दिष्टाः	लाटी०	५.७१
भावनीयाः शुभध्यानैः	कुन्द०	१०.४३
भावनाः षोडशाप्यत्र	धर्मसं०	७.१०१
भावनीया सदा दक्षैः	प्रश्नो०	२४.९७
भावपुष्पैर्यजेद्देवं	यशस्ति०	८५०
भावशून्याक्रियायस्मान्नेष्ट	लाटी०	२.१३०
भावयेद् भावनां नूनं	,,	२.१५०
भावाभृतेन मनसि	यशस्ति०	४९३
भाविकालेऽपि भोगान् यो	प्रश्नो०	१७.१४३
भाविनी नृपतेः पत्नी	श्रा०सा०	१.६९४
भाविनैगमनयायत्तो	लाटी०	३.१४५
भावेन कथितो धर्मो	प्रश्नो०	१२.११७
भावेषु यदि शुद्धत्वं	लाटी०	१.१८८
भावोहि पुण्यकार्यत्र	धर्मसं०	४.१२६
भावो हि पुण्याय मतः	सागार०	२.६५
भाव्यं प्रतिभुवोऽन्नेव	कुन्द०	२.६८
भाषन्ते नासत्यं	अमित०	६.४८
भाषिता तेन सव्रीडं	कुन्द०	५.१६३
भिक्षां चरन्ति येऽरण्ये	धर्मसं०	६.२८२
भिक्षापात्रकरश्चर्या	पुरु०शा०	६.७५
भिक्षापात्रं च गृह्णीयात्	लाटी०	६.६४
भिक्षायै भाजनं स्वल्पं	प्रश्नो०	२४.४१
भिक्षौषधोपकरण	हरिवं०	५८.४५
भिन्दन्ति सूत्राय	अमित०	१०.६८
भिन्नाभिन्नस्य पुनः	,,	६.२२
भिल्लः खदिरसादाख्यः	धर्मसं०	२.१३५
भिल्लमातङ्गव्याध्यादि	प्रश्नो०	२२.९८
भिल्लादिनीचलोकानां	धर्मोप०	३.३४
भीतार्त्त-क्षीन-लीनेषु	कुन्द०	११.३०
भीतिः प्रागंशनाशात्स्याद	लाटी०	३.५५
भीतिर्भूयाद्यथा सौस्थ्यं	,,	३.६७
भीतिः स्याद्वा तथा मृत्युः	,,	३.२९
भीतेन तेन तां नीत्वा	प्रश्नो०	६.२१
भीतेन तेन सा बाला	,,	६.२७
भीतैर्यथा वञ्चनतः	अमित०	१.४४
भीरुत्वोत्पादकं रौद्रं	लाटी०	५.१५
भुक्तं मृद्भाणुपर्णादि	धर्मसं०	६.२३६
भुक्तं स्यात्प्राणनाशाय	धर्मसं० उमा०	६.७५ १४३
भुक्तावित्यादिदोषा	धर्मसं०	३.२४
भुक्तिद्वय परित्यागे	अमित०	१२.१२४
भुक्तिमात्रप्रदाने हि	यशस्ति०	७८६
भुक्तेः कायस्ततो धातु	धर्मसं०	४.१००
भुक्त्यङ्गेहापरित्यागाद्	,,	७.१
भुक्त्वा परिहातव्यो	रत्नक०	८३
भुक्त्वा पूर्वेऽह्नि मध्याह्ने	पुरु०शा०	६.३
भुक्त्वा प्रक्षाल्य पात्रं	गुणभू०	३.७८
भुक्त्वा शुद्धं विधायास्यं	धर्मसं०	४.६२
भुक्त्वा संत्यज्यते वस्तु	सं०भाव०	६८
भुङ्क्ते न कुवली स्त्री	कुन्द०	८.२४७
भुङ्क्ते भोगादिकं यो	प्रश्नो०	१७.१४४
भुजिक्रिया पश्चिमस्यां	उमा० कुन्द०	११३ ८.७८
भुज्यते गुणवत्तैकदा	अमित०	५.४६
भुज्यते सकृदेवात्र	लाटी०	५.१४६
भुञ्जते निशि दुराशया	अमित०	५.४३
भुञ्जते पलमधौधकारि ये	,,	५.२३
भुञ्जतेऽह्नः सकृद्वर्या	सागार०	४.२८
भुञ्जीत यत्र कांस्यादिपात्रे	धर्मसं०	६.२६६
भुञ्जीतैकस्य कस्यापि	पुरु०शा०	६.७६
भुवनं क्रियते तेन	अमित०	४.८३
भुवनं जनताजन्मोत्पत्ति	,,	२.८९
भुवनत्रय-सम्पूज्यां	प्रश्नो०	२३.२
भुवमानन्दसस्यान	यशस्ति०	६५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भुवि सूपकार सारं	पद्म नं०	४.५
भूकायिकस्तु भूमिस्थो	लाटी०	४.७१
भूखननवृक्षमोट्टनशाङ्	पुरुषा०	१४३
भूखननं बहुनीरक्षेपणं	प्रश्नो०	१७.७०
भूतलेऽत्र समागत्य	धर्मोप०	५.१४
भूतले विलुलितालक	श्रा०सा०	३.११
भूता मन्त्रभयाद् भीता	भव्यध०	२.१५३
भूताविष्टस्य दृष्टिः स्यात्	कुन्द०	८.३३९
भूतेभ्यो भयभारकम्पिततनु	श्रा०सा०	३.१३३
भूतेभ्यो येन तेभ्योऽयं	अमित०	४ १७
भूत्वातिप्रतिकूलो यो	प्रश्नो०	१८.१३०
भूत्वा निःशङ्कितो धीमान्	,,	५.३९
भूनीराग्निसमीराश्च	,,	२.१७
भूपयःपवनाग्नीनां	यशस्ति०	३३२
भूपवन-वनानल-तत्त्वकेषु	,,	५४७
भूपस्येव मुनेर्धर्मे	धर्मसं०	७.१७
भूपालो विलसद्-भालो	श्रा०सा०	१.४७९
भूमितोयाग्निवातादि	धर्मोप०	४.११७
भूमिकुट्टन-दावाग्नि	धर्मसं०	४.१२
भूमिपूजां च निर्वृत्य	सं०भा०	३६
भूमौ जन्मेति रत्नानां	यशस्ति०	५९७
भूयः परमराज्यादि	महापु०	४०.१०७
भूयाः खेचरभूमीन्द्र	श्रा०सा०	१.६५१
भूयान्सः कोपना यत्र	कुन्द०	८.३६९
भूयोऽपि संप्रवक्ष्यामि	महापु०	३९.१२६
भूराज्यादिसदृक्कक्रुधादिवशगो	धर्मसं०	१.८१
भूरिदोष-निचिताय	अमित०	१०.६०
भूरिभोगोपभोगाढ्यं	प्रश्नो०	२२.९२
भूरिशोऽत्र सुखदुःखदायिनी	अमित०	१४.६३
भूरिसंसार-सन्ताप	श्रा०सा०	१.१६०
भूरुहेषु दश ज्ञेयाः	अमित०	३.२३
भूरेखादिसदृक्कषायवशगो	सागार०	१.१३
भूरेष यस्य कायोऽस्ति	लाटी०	४.७०
भूर्जे फलके सिचये	यशस्ति०	४४९
भूर्भुवःस्वस्त्रयीनाथ	श्रा० सा०	१.७१
भूर्भुवःस्वस्त्रयीनाथ	,,	१.८४
भृत्यानां दास-दासीनां	प्रश्नो०	१६.११
भृत्वा वर्गाष्टकं पत्रं	गुणभू०	३.१३१
भृक्त्वाऽऽश्रितानवृत्याऽऽर्तान्	सागार०	२.७६
भृशापवर्तकवशात्	,,	८.११
भेकोऽपि तं समाकर्ण्य	धर्मसं०	६.१२५
भेकोऽपि निजवाण्या हि	प्रश्नो०	२१.१८४
भेद-रत्नत्रयाधीन	धर्मसं०	७.१९३
भेदं विवर्जिताभेद	यशस्ति०	६२७
भेदा अन्ये च सन्त्येव	पुरु०शा०	३.५५
भेदा अन्येऽपि विज्ञेयाः	धर्मसं०	४.७६
भेदाः सुखासुख-विधान	अमित०	१४.४४
भेदास्तत्र त्रयः पृथ्व्याः	,,	३.९
भेदोऽयं यद्यविद्या स्याद्	यशस्ति०	३०
भेरीरावेण पौरैस्त्वं	धर्मसं०	६.१२४
भैक्षनर्तन-नग्नत्वं	यशस्ति०	६८
भैक्षशुद्ध्याविसंवादौ	लाटी०	५.४३
भैरवे पतनं येषां	व्रतो०	७४
भोक्तुं रत्नत्रयोच्छ्रायो	धर्मसं०	४.११६
भोगपत्नी निषिद्धा चेत्	लाटी०	१.१९७
भोगपत्नी निषिद्धा स्यात्	,,	१.१८६
भोगब्रह्मव्रतादेव	महापु०	३८.१२६
भोगभूमिषु तिर्यक्त्वं	प्रश्नो०	२०.११७
भोगभूमौ त्रिपल्यायुः	भव्यध०	३.२०७
भोगसंख्यां न कुर्वन्ति	प्रश्नो०	१७.१३१
भोगसन्तोषतो तृष्णां	,,	१७.१२७
भोगः सेव्यः सकृदुप	सागार०	५.१४
भोगस्य चोपभोगस्य	गुणभू०	३.३५
भोगस्यैवोपभोगस्य	प्रश्नो०	१७.८८
भोगादिकं त्यजेद् वस्तु	,,	१७.१२१
भोगादि संख्यया यान्ति	,,	१७.१२६
भोगान्वितं गजत्वं च	,,	२०.१२९
भोगार्थं जीवराशिं ये	,,	१२.९५
भोगाय मानाय निदान	अमित०	७.२५
भोगाः सम्पद्यमानाः	,,	१०.७२
भोगाः सर्वेऽपि साभोगाः	पुरु० शा०	३.६
भोगित्वाद्यन्तशान्ति	सागार०	२.७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगिभोगोपमान् भोगान्	धर्मसं०	२.१०७
भोगीन्द्रैरुपमुक्तापि	श्रा० सा०	१.१९
भोगे त्रसबहुप्रज्ञाघातके	धर्मसं०	४.२०
भोगे भुजङ्गभोगाभे	श्रा० सा०	१.३६
	उमा०	७२
भोगेभ्यो विरताः काम	कुन्द०	११.१३
भोगोपभोगकृशनाद्	सागार०	५.१९
भोगोपभोगयोर्जातं	पुरु० शा०	४.१६४
भोगोपभोगत्यागार्थं	श्रा० सा०	३.२८२
	उमा०	४३५
भोगोपभोगयोरेव	पुरु० शा०	४.१६३
भोगोपभोगयोर्यत्र	,,	४.१५९
भोगोपभोगयोस्त्यागे	धर्मोप०	४.१४२
भोगोपभोगवस्तूनां	पुरु० शा०	४.१६१
	प्रश्नो०	१७.१२५
	धर्मोप०	४.१२०
	पुरु० शा०	४.१६२
भोगोपभोगभूता	पुरुषा०	१६१
	श्रा०सा०	३.२८७
भोगोपभोगसंख्या	अमित०	६.९२
	रत्नमा०	१७
भोगोपभीगसंख्यानं	पद्म० पंच०	२७
	प्रश्नो०	१७.८७
भोगोपभोग-संख्याया	,,	१७.८५
भोगोपभोग-सम्पन्नो	,,	२१.८७
भोगोपभोग-सम्बन्धे	धर्मसं०	४.२७
भोगोपभोग-साधन	पुरुषा०	१०१
भोगोपभोग-हेतोः	पुरुषा०	१५०
	(उक्तं) श्रा० सा०	३.२८५
भोगोपभोगाय करोति	अमित०	१.२४
भोगोऽप्यमियान् सेव्यः	सागार०	५.१३
भोजनं कुरुते पुत्रः	प्रश्नो०	३.१२०
भोजनं कुरुते यस्तु	,,	३.४८
भोजनं कुर्वता कार्यं	अमित०	१२.१०१
भोजनं पूजनं स्नानं	धर्मसं०	३.४४
भोजन-वस्त्र-माल्यादि	,,	४.११४
भोजन-वाहन-शयन	रत्नक०	८८
भोजन-स्नान-गन्धादि	भव्यध०	४.२६२
भोजनादिषु ये कुर्युः	श्रा.सा.(उक्तं)	३.७६
	उमा०	२७४
भोजनानन्तर वाम	कुन्द०	३.६१
भोजनानन्तरं सर्वं	,,	३.५२
भो जना वचनस्याद्य	प्रश्नो०	१३.७४
भोजने शयने याने	पुरु० शा०	४.६०
भोजने षट् रसे पाने	प्रश्नो०	१७.१२३
भोजयित्वा स्वयं यावत्	लाटी०	५.१८१
भो जितेन्द्रिय मार्गज्ञ	धर्मसं०	७.५७
भोज्यं भोजन-शक्तिश्च	यशस्ति०	७५७
भोज्य-मध्यादशेषाश्च	लाटी०	४.२४६
भोज्यं शाल्यादि च स्निग्धं	कुन्द०	६.४
भो तात कस्य पुत्रोऽहं	प्रश्नो०	१०.३५
भो निर्जिताक्ष विज्ञप्तपरमार्थ	सागार०	८.४८
भो भगवन्नतीचारान्	प्रश्नो०	१३.२९
भो भट्टारक ये नैव	,,	१६.८७
भो भव्यास्त्रिजगत्सारं	धर्मोप०	१.५१
भो भव्यः सत्कुलोत्पन्नो	प्रश्नो	१२.१८२
भो भो कुवलयेन्दो त्वं	धर्मसं०	२.१०४
भो भो सुधाशना भूय	महापु०	३८.२०४
भो मित्र दर्शनात्तेदहं	धर्मसं०	२.१००
भौम-भास्कर-भन्दानां	कुन्द०	८.१४५
भौमव्यन्तरमर्त्यभास्कर	यशस्ति०	४७९
भौमस्य दिवसे काल	कुन्द०	८.२११
भौमस्माधो गुरुश्चेत्स्यात्	,,	८.३७
भौमार्कशनिवाराणां	,,	५.१२५
भौमार्क-शुक्रवाराश्चेद	,,	५.२२४
भोमेत्तरा फानवमीयामात्	,,	८.२०१
भ्रमन् लोके स पूत्कारं	प्रश्नो०	१३.७६
भ्रमता जन्तुनाऽनेन	धर्मसं०	७.३९
भ्रमति पिशिताशनाभि	सागार०	२.९
भ्रमरो योजनैकं च	भव्यध०	३.२३३
भ्राम मोहोऽङ्गसाहश्च	कुन्द०	८.१७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ्रंशित व्यसनवृत्तयो	अमित०	५.६२
भ्रष्टस्य तु ततोऽन्यस्य	पुरु० शा०	३.८९
भ्रष्टा हि दर्शनभ्रष्टाः	भव्यध०	१.१०७
भ्रष्टेऽतिदुर्जनेऽसत्ये	व्रतो०	८७
प्रातः सर्वसुखाकरो	प्रश्नो०	१२.१२१
भ्रातस्त्वं भज दर्शनं	,,	१.४९
भ्रान्ति नाशोऽत्र नो तावद्	श्रा० सा०	१.७७

म

मकराकरसदिटवी	रत्नक०	६९
मक्षिका कारयत्येव	धर्मोप०	४.६०
मक्षिका कुरुते छर्दिं	उमा०	३२१
मक्षिका कुरुते यत्र	धर्मसं०	२.१४०
मक्षिकागर्भ-सम्भूत	यशस्ति०	२७८
	श्रा०सा० (उक्त)	३.४८
मक्षिकाण्डविमर्दोत्थं	पुरु० शा०	४.२२
मक्षिका तनुते छर्दिं	श्रा० सा०	३.९०
मक्षिका-बालकाण्डोत्थं	धर्मसं०	२.१३८
मक्षिजालूतनिर्मुक्तं	कुन्द०	३.४५
मक्षिका-वमनं निन्द्यं	धर्मोप०	३.२९
मक्षिका वमनाय स्यात्	धर्मसं०	३.२३
मगधाख्ये शुभे देशे	प्रश्नो०	८.२९
मघाश्चतुर्विधास्तेषां	कुन्द०	८.४३
मङ्क्षु मूर्च्छति बिभेति	अमित०	५.५
मङ्गलाय किमांस्तन्व्या	कुन्द०	५.१७१
मङ्गलार्थं नमस्कृत्य	प्रश्नो०	१.१०
मज्जनोन्मज्जनाभ्यां तौ	धर्मसं०	२.८७
मज्जास्थि-मेदोमल	अमित०	१४.३५
मठहारिगृहक्षेत्रयोजनानां	धर्मसं०	४.३६
मठादिकं न च ग्राह्यं	प्रश्नो०	२३.१३०
मणिबन्धात्परः पाणिः	कुन्द०	५.३०
मणिबन्धात्पितुर्लेखा	,,	५.५१
मणिबन्धे यवश्रेण्यः	,,	५.५४
मणिबन्धोन्मुखा आयु	,,	५.५४
मणिलोहमयानां च	,,	३.९७
मण्डनेन विना तेन	श्रा० सा०	१.४५३
मण्डधावमहीवं तु	भव्यध०	१.१०२
मण्डलज्ञैरष्टभिर्मासैः	कुन्द०	८.१९
मण्डलविडालकुक्कुट	अमित०	६.८२
मतङ्गजा जङ्गमशैल	,,	१.६५
मता द्वित्रिचतुः पञ्च	,,	३.१०
मतान्तरादिवा पंच	धर्मसं०	६.२६१
मतिर्जागर्ति दृष्टेऽर्थे	यशस्ति०	२४३
मतिपूर्वं श्रुतं ज्ञेयं	गुणभू०	२.५
मति-श्रुतसमायुक्तः	प्रश्नो०	१.११
मतिश्रुतावधिज्ञानं	भव्यध०	२.१५६
मतोऽस्य पक्षग्राहित्वं	लाटी०	१४८
मत्तमातङ्गगामिन्या	श्रा० सा०	१.७००
मत्तोऽपि सन्ति ये बालाः	अमित०	८.३
मत्तो हस्ती भवति मदतो	व्रतो०	७१
मत्वेति गृहिणा कार्यमर्चनं	पुरु० शा०	५.८६
मत्वेति चिकुरान्मृद्वा	धर्मसं०	६.५०
मत्वेति चिन्तितं देवं	,,	६.२४५
मत्वेति जैनसाधूनां	पुरु० शा०	३.७४
मत्वेति दोषवत्त्याज्यं	धर्मसं०	२.३१
मत्वेति निर्जन्तुकस्थाने	पुरु० शा०	५.९३
मत्वेति पितरः पुत्रानिव	,,	४.६९
मत्वेति बहुदोषं यः	,,	४.८८
मत्वेति यस्त्यजेदहि	,,	६.१९
मत्वेति सत्कुलोत्पन्ना	धर्मसं०	६.२७७
मत्वेति सद्भिः परि–	अमि०	७.२
मत्वेत्यनादिमन्त्रादि	पुरु० शा०	५.४५
मत्वेत्याद्यागमाज्जैनात्	,,	४.१८२
मत्वेति सुकृती कुर्यात्	,,	३.८६
मत्सर-कालातिक्रम	अमित०	७.१४
मत्स्यादिभक्षणे दोषो	प्रश्नो०	४.१८
मत्स्यस्येव कटीभारो	,,	१८.१२२
मत्स्योद्वर्तो	,,	१८.१११
मथुरायामथैतस्यां	श्रा० सा०	१.६८१
मददैन्यश्चमायास	अमित०	११.७१
मदनोद्दीपनैर्वृत्तैर्मदनो	यशस्ति०	३८२
मदादेशादयं ब्रह्म	श्रा०सा०	१.४३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मदाष्टकं चतुः संज्ञा	प्रश्नो०	२.४४
मदिराकुलितस्येव	अमित०	८.९५
मदेर्ष्यासूयनादि	यशस्ति०	३४०
मदैःशङ्काचितैर्मूढैः	भव्यध०	१.६२
मद्द्वारान् सद्-गुणो	श्रा० सा०	१.५०९
मन्दाविलक्ष्मीलतिका	यशस्ति०	५१३
मद्यं त्यक्तवतस्तस्य	लाटी०	१.६६
मद्यं द्यूतमुप्रद्रव्य	यशस्ति०	३९३
मद्यं पिबति योऽमुत्र	प्रश्नो०	१२.१०
मद्यं मांसं तथा क्षौद्रं	लाटी०	१.७
मद्यं मोहयति मनो	पुरुषा०	६२
मद्यं सर्षपमात्रं तु	भव्यध०	१.११९
मद्यत्यागव्रती सर्वं	धर्मसं०	२.१४८
मद्यद्रवमया जीवा	,,	२ १९
मद्यधारां समालोक्य	प्रश्नो०	२४.६२
मद्यपलमधुनिशाशन	सागार०	२.१८
मद्यपस्य धिषणा	अमित०	५.२
मद्यपानमत्यक्त्वा	प्रश्नो०	१२.११
मद्यपानरता ये तु	भव्यध०	१.११
मद्यपानरतोच्छिष्ट	श्रा० सा०	१.५७८
मद्यपानात् प्रणष्टा हि	प्रश्नो०	१२.४८
मद्यपो मातरं ब्रूते	धर्मसं०	२.२३
मद्यबिन्दुलवोत्पन्नाः	श्रा० सा०	३.१९
मद्यं मासं क्षौद्रं पञ्चो	पुरुषा०	६१
मद्य-मांस-नवनीत	अमित०	५.३८
मद्य-मांस-मधुत्यागं	धर्मसं०	२.१८
मद्य-मांस-मधुत्यागः	यशस्ति०	२५५
मद्य-मांस-मधुत्यागफलं	रत्नमा०	३८
मद्य-मांस-मधुत्यागी	लाटी०	२.१५७
मद्य-मांस-मधुत्यागैः	रत्नक०	६६
	व्रत सा०	५
	धर्मोप०	३.९
	पूज्य०	१४
मद्य-मांस-मधुप्रायं	यशस्ति०	२७५
मद्य-मांस-मधु-रात्रि	अमित०	५.१
मद्य-मांस-मधून्येव	प्रश्नो०	१२.७
मद्य-मांस-समायुक्ता	गुणभू०	३.११
मद्य-मांसादि-संसक्ता	प्रश्नो०	१२.४१
	,,	१५.२१
मद्य-मांसाऽऽर्द्र-चर्मास्थि	पुरु० शा०	४.३९
मद्यलालाम्बु-सङ्क्लिष्टं	प्रश्नो०	१५.२५
मद्यस्यावद्यमूलस्य	रत्नमा०	३९
मद्यादिभक्षिका नारी	धर्मसं०	२.१५३
मद्यादिभवो विरतैः	अमित०	६.१
मद्यादि-विक्रयादीनि	सागार०	३.९
मद्यादि-स्वादिगेहेषु	यशस्ति०	२८२
मद्यादि-स्पृष्टमाण्डेषु	धर्मसं०	२.१५२
मद्याद्यदुसुता नष्टा	उमा०	२६५
मद्याहतोऽद्भुतश्चैव	भव्यध०	१.११५
मद्येन निर्विवेकः स्यात्	पुरु० शा०	४.५
मद्येन यादवा नष्टा	यशस्ति०	२५८
मद्येन यादबा सर्वे	भव्यध०	१.११७
मद्येनैव क्षयं जाता	पुरु० शा०	४.११
मद्यैकबिन्दुजा यान्ति	,,	४.१०
मद्यैकबिन्दु संयत्राः	यशस्ति०	२६०
मधुकृद्व्रातघातोत्थं	सागार०	२.११
मधुत्याज्यं महासत्त्वैः	व्रतसा०	१२
मधुनो मद्यतो मांसा०	पद्मच०	१४.२३
मधु पापाकरं	प्रश्नो०	१७.४२
मधु-भक्षणतो हिंसा	धर्मसं०	२.१४३
मधुबिन्दुलवास्वाद	(उक्तं) श्रा. सा.	३.४७
मधुबिन्दुकलास्वादा	उमा०	२९२
मधु मद्यं नवनीतं	पुरुषा०	७१
	(उक्तं) श्रा.सा.	३.५५
मधुभस्मगुडवृरोम	कुन्द०	१.१७८
मधुमांस-परित्याग	महापु०	३८.१२२
मधुरादिरसानां यत्समस्तं	लाटी०	६.७८
मधुराहारिणां प्रायो	कुन्द०	८.१११
मधुरोगादिशान्त्यर्थं	प्रश्नो०	१२.१९
मधुवन्नवनीतं च	सागार०	२.१२
	धर्मसं०	२.१४४
मधुवाद्याङ्गदीपाङ्गाः	सं०भाव०	१३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मधुशकलमपि प्रायो	पुरुषा०	६९
मधुशकलमपि प्रायो (उक्तं)	श्रा० सा०	३.५२
मध्यकोष्ठे च य प्रश्ने	कुन्द०	१.१६४
मध्यमं पात्रमुद्दिष्टं	सं० भाव०	७५
मध्यमानां तु पात्राणां	अमित०	११.६५
मध्यमाप्रान्तरेखायाः	कुन्द०	५.४३
मध्यमोऽपि भवेदेवं	गुणभू०	३.६७
मध्यलोकसमश्चिन्ते	पुरु० शा०	५.४८
मध्वाहुसमाचारम्भे	व्रतो०	४६८
मध्याह्ने कुसमैः पूजा	उमा०	१२६
मध्याह्नेऽपि तथा दक्षैः	प्रश्नो०	१८.७०
मध्ये जिनगृहं हासं	सागार०	६.१४
मध्ये दिग्विरतेर्नित्यं	प्रश्नो०	१७.२४
मध्येवेदि जिनैन्द्रार्चाः	महापु०	४०.४
मध्येऽष्टपद्मपत्रस्य	गुणभू०	३.१३०
मध्वास्वादन-लोलुपो	श्रा० सा०	३.५४
मनः करण-संरोधः	धर्म सं०	६.२१६
मनः शुद्धं भवेत्तेषां	प्रश्नो०	२२.८२
मनः शौचं वचः शौचं	व्रतो०	३८३
मनश्चक्षुरिदं यावद्	कुन्द०	११.४७
मनः सङ्कल्पतो लोके	प्रश्नो०	२४.५
मनः स्थिरं विधायो	,,	१८.३७
मनश्चेन्द्रियभृत्यैश्च	उमा०	२१०
मनसा कर्मणा वाचा	यशस्ति०	३३७
मनसा खण्डयन्नुशीलं	धर्म सं०	७.१५७
मनसा वपुषा वाचा	गुणभू०	१.५०
मनसा शुद्धिहोमेन	प्रश्नो०	१८.९७
मनसिजशरपीडा	श्रा० मा०	३.२१९
मनसि वचसि वाचि	व्रतो०	१६
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्	श्रा. सा. (उक्तं)	३.२३८
मनुजत्व पूर्वनयनायकस्य	यशास्ति०	५५५
मनुजत्वेऽपि किं सारं	प्रश्नोत्त०	१.१५
मनुज दिविजलक्ष्मी	यशस्ति०	५६५
मनुजभवमवाप्य यो	अमित०	१४.७७
मनुष्यगतिरेकैव	धर्म सं०	६.२५३
मनुष्यजातिरेकैव	महा पु०	३८.४५
मनुष्यत्वयिदं सारं	श्रा० सा०	१.९६
मनुष्याणां च केषाञ्चित्	लाटी०	४.४१
मनुः स्त्री नरके कश्चित	पुरु० शा०	४.९२
मनो गजोवशं याति	प्रश्नो०	१६.३१
मनोगुप्तिर्यज्ञा नाम	लाटी०	४.११२
मनोगुप्तिवचो गुप्तिः	व्रतो०	४६७
मनोज्ञां सुरचरां	प्रश्नो०	२०.६६
मनो न चञ्चलं यस्य	उमा०	२१२
मनो नियम्यते येन	अमित०	९.१०४
मनोभवाक्रान्त विदग्धरामा	,,	१.६४
मनोऽभिधान भूपाल	उमा०	२०९
मनोऽभिलषितान्	श्रा० सा०	१.२६७
मनोभूरिव कान्ताङ्गः	अमित०	११ ९
मनो मठकठेराणां	सागार०	२.३८
मनोत्रोचितायापि	यशस्ति०	४८२
	,,	२६१
मनो मोहस्य हेतुत्वात्	श्रा० सा०	३.२७
	उमा०	२६४
मनोरोधाद् विलीयते	उमा०	२११
मनोरोधेन पुण्यानां	पुरु० शा०	५.३५
मनोवचः कायविशुद्धि	अमित०	१०.४४
मनोवचनकायानां	कुन्द०	११.६९
मनोवचनकायेन	प्रश्नो०	२३.१०६
मनोवचनकायैर्यो	रत्नमा०	३२
मनोवाक्कायकर्माणि	यशस्ति०	११९
मनोवाक्काय	गुणभू०	३.८८
	धमोप०	४.१३२
मनोवाक्काय योगानां	प्रश्नो०	१२.६५
	,,	१९.१५
मनोवाकायवस्त्राणां	व्रतो०	४७७
मनोवाक्कायसंशुद्धया	सं० भाव०	९८
मनोवाक्कायसौस्थित्याद्	पुरु० शा०	६.३७
मनोवांछित वस्तूनां	व्रतो०	३७८
मनोहरा शुभा साग	प्रश्नो०	२०.८६
मन्दं मन्दं क्षिपेद वायुं	यशस्ति०	६८४
मत्तो हिनस्ति सर्वं	चारित्रसा०	१८
मन्त्र परमराजादि	महापु०	४०.६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्र भेदः परिवादः	यशस्ति०	३६४
मन्त्रवाशिवतोऽप्येषो	यशस्ति०	१०७
मन्त्रस्थानमथाकाश	कुन्द०	८.६५३
मन्त्रस्थाने बहुस्तस्य	कुन्द०	८.३६६
मन्त्राणामखिलाना	,,	५७३
मन्त्रादिनापि बन्धादिः	सागार०	४.१९
मन्त्रानिमान् यथायोग	महापु०	४०.२१८
मन्त्रास्त एव धर्म्याः	,,	३९.२६
मन्त्रिणस्तस्य सञ्जाता	प्रश्नो०	९.४
मन्त्रिणो देशकालादि	श्रा० सा०	१.५६६
मन्त्रियुक्तेन भूपेन	प्रश्नो०	९.११
मन्त्रेणानेन शिष्यस्य	महापु०	४०.१५६
मन्त्रेणानेन सम्यग्	,,	४०.१२३
मन्त्रैरेभिस्तु संस्कृत्य	,,	४०.१०
मन्त्रो मोद-क्रियायां	,,	४०.१०३
मन्त्रोऽयं त्रिजगत्पूज्यः	धर्मोप०	४.२१४
मन्त्रोऽयं स्मृतिधाराभिः	यशस्ति०	६७४
मन्त्रोऽयमेव सेव्यः	,,	५७६
मन्त्रोऽवतारकल्याण	महापु०	४०.९०
मन्थाचलेन दुग्धाब्धौ	श्रा० सा०	१.४१
मन्दतारस्वरावर्तो	व्रतो०	४८०
मन्दमदमदनमत्तं	यशस्ति०	५१८
मन्दं मन्दं ततः कृत्वा	कुन्द०	१.५४
मन्दराभिषेककल्याण	महापु०	४०.१०५
मन्दिरार्द्धिगुणोयस्य	कुन्द०	३.१५
मन्दराभिषेक निष्क्रान्ति	महापु०	४०.१३७
मन्दराभिषेकश्च	,,	३८.६१
मन्दरेन्द्राभिषेकोऽसौ	,,	३८.२२८
मन्दारकुसमामोद	,,	३८.२४८
मन्दारस्रजमालाभि	,,	३८.२२१
मन्दिराणामधिष्ठानं	धर्मसं०	१.७६
मन्दिरे मदिरेनीरे	यशस्ति०	३५४
मन्दीकृतार्थ मुखभिलापः	अमित०	७.७०
मन्मथोन्मथितस्वान्तः	यशस्ति०	३९७
मन्यमानो महालाभं	धर्मसं०	२.११
मन्ये तारुण्यमादाम	श्रा० सा०	१.६९७
मन्येतावेव पादौ यौ	प्रश्नो०	१८.१८७
मन्ये न प्रायशस्तेषां	पद्म० पंच	२१
मन्ये स एवं पुण्यात्मा	प्रश्नो०	१२.८०
मन्ये स एव पुण्यात्मा	{ प्रश्नो०	१५.३७
	,,	२३.१४०
मन्येऽहमेव मूढाना	,,	१५.१३
मन्येऽहं सफलं जन्म	,,	२३.११६
ममत्वजनके सारे	,,	१६.९
ममत्वं देहतो नश्येत्	,,	१८.१८५
ममत्वधिषणा येषां	अमित०	१५.८५
ममत्वाद् द्वेषरागाभ्यां	धर्मसं०	७ ४३
मम बुद्धरथः पूर्वं नोचेद्	श्रा० सा०	१.७१५
मम स्याद्वा न वेत्ति	धर्मसं०	३.५९
ममेदमहमस्यास्मि	अमित०	१५.६८
ममेतमहमस्येति	धर्मसं०	४.४८
ममेदमिति सङ्कल्पः	सागार०	४.५९
ममेदमिति संकल्पो	यशस्ति०	३१८
ममेदं स्यादनुष्ठानं	,,	८६६
ममैकं वाञ्छितं सिद्धं	श्रा० सा०	१.४२७
ममैव ब्राह्मणी जाता	प्रश्नो०	१५.५४
मया तु चरितो धर्मा	महापु०	३९६४
मया द्वादश वर्षाणि	श्रा० सा०	१.५२०
मया नैवास्य लाभार्द्धं	प्रश्नो०	१३.५१
मयि भक्तो जनः सर्वः	कुन्द०	११.२०
मयूरस्येव मेघौघे	अमित०	८.१८
मयैकस्मिन्नगे तुङ्गे	प्रश्नो०	१४.६७
मरणान्तेऽवश्यमहं	पुरुषा०	१७६
	श्रा० सा० (उक्तं)	३.३६
मरणाराधनेनैव	प्रश्नो०	२२.४४
मरणेऽवशयम्मोविति	पुरुषा०	१७७
	श्रा. सा.(उक्तं)	३.३६४
मरुत्कृता भवेद् भूमिः	प्रश्नो०	३.६६
मरुत्सख शिखी वर्णे	अमित०	१५.३२
मरुदेवी पूर्वं भवे	व्रतो०	५६
मर्त्यामर्त्यसुखं	पुरु० शा०	६.४१
मर्त्यामरश्रियं भुक्त्वा	अमित०	११.४८
मर्यादादेशतो वाह्ये	प्रश्नो०	१८.२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मर्यादावरतः पापं	,,	१७.८
महापात्रं प्रणम्येडच	प्रश्नो०	२०.१५६
महापात्रस्य दानेन	,,	२०.५३
महापापकरं निन्द्यं	,,	१८.५८
महापापप्रदे त्याज्यं	,,	२२.१०९
महापापेन चापाति	,,	२६.१२४
महापुण्यनिमित्तं	,,	२.७१
महापुण्य भवेदङ्गी	,,	१७.१२
महापुण्यं समाधत्ते	,,	१८.६४
महाप्रभावसम्पन्न	पुरु० शा०	५.३७
महाफलं तपः कृत्वा	धर्मसं०	२.१२२
महाभागोऽहमद्यास्मि	यशस्ति०	६४०
महाभिषेकसामग्र्या	महापु०	३८.२४१
महामहमहं कृत्वा	,,	३८.६
महामिथ्योदयेनात्त	धर्मोप०	३.२१
महामुकुटबद्धैश्च	महापु०	३८.३०
महामोहकमोहेन	श्रा० सा०	१.६३
महारत्नमिवानर्घ्यं	प्रश्नो०	२३.५७
महारूपान्वितं सारं	,,	१६.१०२
महाविद्यान्वितां शीघ्रं	,,	१६.६९
महावीरं जगत्पूज्यं	,,	२४.१
महाव्रतः परं पात्रं	पुरु०शा०	३.१११
महाव्रतधरं धीरं	प्रश्नो०	२०.१
महाव्रतस्य वक्तव्याः	व्रतो०	४६६
महाव्रतं भवेत् कृत्स्न	महापु०	३९.४
महाव्रताणुव्रतयो	रत्नमा०	१२
महाव्रतानि कथ्यन्ते	प्रश्नो०	१७.९
	श्रा० सा०	३.३३०
महाव्रतानि यः पञ्च	पूज्यपर०	४२
	धर्मोप०	४.१४६
महाव्रतानि रक्षोच्चैः	सागार०	८.६९
महाव्रतान्वितास्तत्त्वज्ञा	श्रा० सा०	१.१४०
	उमा०	१४
महाव्रतिपुरन्दरप्रशमदग्ध	श्रा० सा०	३७५
मर्यादापरतो न स्यात्	प्रश्नो०	१८.८
मर्यादां मृत्युपर्यंतं	धर्मोप०	४.१०६
मर्यादीकृत्य देशस्य	प्रश्नो०	१८.४
मलयञ्चक्रमर्व्वा	धर्मसं०	४.७
मलमूत्रोज्झने स्नाने	धर्मोप०	४.७६
मलयाख्ये शुभे देशे	प्रश्नो०	२१.१५
मलयोनिं मलबीजं	रत्नक०	१४३
मलान्मूलगुणानां	धर्मसं०	२.१५
मलिनयति कुलद्वितयं	अमित०	६.७२
मलिनवचो मलिनमनो	व्रतो०	४
मलिनाचारिता ह्येते	महापु०	३९.१३८
मलीमपाङ्गो व्युत्सृष्ट	,,	३९.१७३
मलेन लिप्तसर्वाङ्गा	प्रश्नो०	२०.७
मलैः पञ्चादिविशताः	धर्मोप०	१.४
मलैर्युक्तिं भवेच्छुद्धं	धर्मसं०	१५३
मल्लमुष्टिर्हृदं घस्तत्रयं	प्रश्नो०	१३.१०१
मल्लिनाथं महामल्लं	,,	१९.१
मषिः कृषिश्च वाणिज्य	धर्मसं०	६.२२९
मस्तकस्योपरि दोर्भ्यां	प्रश्नो०	१४.७३
मस्तके मुण्डनं लोचः	,,	२४.२५
मस्तके हृदये वापि	कुन्द०	८.१०७
महत्काले व्यतिक्रान्ते	धर्मसं०	२.९१
महाकुला महासत्वा	धर्मोप०	४.१७१
महागमपदस्यापि	,,	२.२३
महाग्निज्वलिताद् द्वारा	प्रश्नो०	१६.१०६
महाणुव्रतयुक्तानां	हरिवं०	५८.३
महातपःस्थिते साधौ	अमित०	१३.१३
महातपोधनायार्चा	महापु०	३८.३७
महादानमथो दत्वा	,,	३८,२८४
महाधिकाराश्चत्वारो	धर्मोप०	२.८
महानरकसंवासदायकं	,,	३.१९
	यशस्ति०	२०७
महापद्मसुतो विष्णुः	श्रा० सा०	१.५३२
	उमा०	६५
महाशोकमयत्वं च	प्रश्नो०	११.७६
महाहिंसादिजे पाप	,,	२०.४१
महिषाणां खराणां च	कुन्द०	८.३५६
महीपतिरपि प्राह	श्रा० सा०	१.७४
महोत्सवमिति प्रीत्या	सं० भाव०	१.२०
महोत्सवेन सा वज्र	प्रश्नो०	१०.३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

मन्त्र भदेः परिवादः	यशस्ति०	३६४
मन्त्रयन्नियतोऽप्येषो	यशस्ति०	१०७
मन्त्रस्थानमनाकाश	कुन्द०	८.६५३
मन्त्रस्थाने बहुस्तम्भ	कुन्द०	८.३६६
मन्त्राणामखिलाना	,,	५७३
मन्त्रादिनापि बन्धादिः	सागार०	४.१९
मन्त्रानिमान् यथायोग	महापु०	४०.२१८
मन्त्रास्त एव धर्म्याः	,,	३९.२६
मन्त्रिणस्तस्य सञ्जाता	प्रश्नो०	९.४
मन्त्रिणो देशकालादि	श्रा० सा०	१.५६६
मन्त्रियुक्तेन भूपेन	प्रश्नो०	९.११
मन्त्रेणानेन शिष्यस्य	महापु०	४०.१५६
मन्त्रेणानेन सम्यग्	,,	४०.१२३
मन्त्रैरेभिस्तु संस्कृत्य	,,	४०.१०
मन्त्रो मोद-क्रियायां	,,	४०.१०३
मन्त्रोऽयं त्रिजगत्पूज्यः	धर्मोप०	४.२१४
मन्त्रोऽयं स्मृतिधाराभिः	यशस्ति०	६७४
मन्त्रोऽयमेव सेव्यः	,,	५७६
मन्त्रोऽवतारकल्याण	महापु०	४०.९०
मन्थाचलेन दुग्धाब्धौ	श्रा० सा०	१.४१
मन्दतारस्वरावर्तो	व्रतो०	४८०
मन्दमदमदनमनं	यशस्ति०	५१८
मन्दं मन्दं ततः कृत्वा	कुन्द०	१.५४
मन्दराभिषेककल्याण	महापु०	४०.१०५
मन्दिराद्विगुणोयस्य	कुन्द०	३.१५
मन्दराभिषेक निष्क्रान्ति	महापु०	४०.१३७
मन्दराभिषेकश्च	,,	३८.६१
मन्दरेन्द्राभिषेकोऽसौ	,,	३८.२२८
मन्दारकुसमामोद	,,	३८.२४८
मन्दारस्रजमालानि	,,	३८.२२१
मन्दिराणामधिष्ठानं	धर्मसं०	१.७६
मन्दिरे मदिरेनीरे	यशस्ति०	३५४
मन्दीकृतार्थं सुखभिलाषः	अमित०	७.७०
मन्मथोन्मथितस्वान्तः	यशस्ति०	३९७
मन्यमानो महालाभं	धर्मसं०	२.११
मन्ये तारुण्यमादाम	श्रा० सा०	१.६९७
मन्येतावेव पादौ यौ	प्रश्नो०	१८.१८७
मन्ये न प्रायशस्तेषां	पद्म० पंच	२१
मन्ये स एवं पुण्यात्मा	प्रश्नो०	१२.८०
मन्ये स एव पुण्यात्मा	प्रश्नो० ,,	१५.३७ २३.१४०
मन्येऽहमेव मूढाना	,,	१५.१३
मन्येऽहं सफलं जन्म	,,	२३.११६
ममत्वजनके सारे	,,	१६.९
ममत्वं देहतो नश्येत्	,,	१८.१८५
ममत्वधिषणा येषां	अमित०	१५.८५
ममत्वाद् द्वेषरागाभ्यां	धर्मसं०	७.४३
मम बुद्धरथः पूर्वं नोचेद्	श्रा० सा०	१.७१५
मम स्याद्वा न वेत्ति	धर्मसं०	३.५९
ममेदमहमस्यास्मि	अमित०	१५.६८
ममेतमहमस्येति	धर्मसं०	४.४८
ममेदमिति सङ्कल्पः	सागार०	४.५९
ममेदमिति संकल्पो	यशस्ति०	३९८
ममेदं स्यादनुष्ठानं	,,	८६६
ममैकं वाञ्छितं सिद्धं	श्रा० सा०	१.४२७
ममैव व्राह्मणी जाता	प्रश्नो०	१५.५४
मया तु चरितो धर्मा	महापु०	३९६४
मया द्वादश वर्षाणि	श्रा० सा०	१.५२०
मया नैवास्य लाभार्द्धं	प्रश्नो०	१३.५१
मयि भक्तो जनः सर्वः	कुन्द०	११.२०
मयूरस्येव मेघौघे	अमित०	८.१८
मयैकस्मिन्नगे तुङ्गे	प्रश्नो०	१४.६७
मरणान्तेऽवश्यमहं	पुरुषा० श्रा० सा० (उक्तं)	१७६ ३.३६
मरणाराधनेनैव	प्रश्नो०	२२.४४
मरणेऽवशयम्मोविति	पुरुषा० श्रा. सा.(उक्तं)	१७७ ३.३६४
मरुत्कृता भवेद् भूमिः	प्रश्नो०	३.६६
मरुत्सख शिखी वर्णे	अमित०	१५.३२
मरुदेवी पूर्वं भवे	व्रतो०	५६
मर्त्यामर्त्यसुखं	पुरु० शा०	६.४१
मर्त्यामरश्रियं भुक्त्वा	अमित०	११.४८
मर्यादादेशतो बाह्ये	प्रश्नो०	१८.२०

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मर्यादावरत्तः पापं	,,	१७.८
महापात्रं प्रणम्येडच	प्रश्नो०	२०.१५६
महापात्रस्य दानेन	,,	२०.५३
महापापकरं निन्द्यं	,,	१८.५८
महापापप्रदे त्याज्यं	,,	२२.१०९
महापापेन चापाति	,,	२६.१२४
महापुण्यनिमित्तं	,,	२.७१
महापुण्य भवेदङ्गी	,,	१७.१२
महापुण्यं समाधत्ते	,,	१८.६४
महाप्रभावसम्पन्न	पुरु० शा०	५.३७
महाफलं तपः कृत्वा	धर्मसं०	२.१२२
महाभागोऽहमद्यास्मि	यशस्ति०	६४०
महाभिषेकसामग्र्या	महापु०	३८.२४१
महामहमहं कृत्वा	,,	३८.६
महामिथ्योदयेनात्त	धर्मोप०	३.२१
महामुकुटबद्धैश्च	महापु०	३८.३०
महामोहकमोहेन	श्रा० सा०	१.६३
महारत्नमिवानर्घ्यं	प्रश्नो०	२३.५७
महारूपान्वितं सारं	,,	१६.१०२
महाविद्यान्वितां शीघ्रं	,,	१६.६९
महावीरं जगत्पूज्यं	,,	२४.१
महाव्रतः परं पात्रं	पुरु०शा०	३.१११
महाव्रतधरं धीरं	प्रश्नो०	२०.१
महाव्रतस्य वक्तव्याः	व्रतो०	४६६
महाव्रतं भवेत् कृत्स्न	महापु०	३९.४
महाव्रताणुव्रतयो	रत्नमा०	१२
महाव्रतानि कथ्यन्ते	प्रश्नो०	१७.९
	श्रा० सा०	३.३३०
महाव्रतानि यः पञ्च	पूज्यपर०	४२
	धर्मोप०	४.१४६
महाव्रतानि रक्षोच्चैः	सागार०	८.६९
महाव्रतान्वितास्तत्त्वज्ञा	श्रा० सा०	१.१४०
	उमा०	१४
महाव्रतिपुरन्दरप्रशमदग्ध	श्रा० सा०	३७५
मर्यादापरत्तो न स्यात्	प्रश्नो०	१८.८
मर्यादां मृत्युपर्यंतं	धर्मोप०	४.१०६
मर्यादीकृत्य देशस्य	प्रश्नो०	१८.४
मलयच्चक्रमर्घ्वा	धर्मसं०	४.७
मलमूत्रोज्झने स्नाने	धर्मोप०	४.७६
मलयाख्ये शुभे देशे	प्रश्नो०	२१.१५
मलयोनिं मलबीजं	रत्नक०	१४३
मलान्मूलगुणानां	धर्मसं०	२.१५
मलिनयति कुलद्वितयं	अमित०	६.७२
मलिनवचो मलिनमनो	व्रतो०	४
मलिनाचारिता ह्येते	महापु०	३९.१३८
मलीमपाङ्गो व्युत्सृष्ट	,,	३९.१७३
मलेन लिप्तसर्वाङ्गा	प्रश्नो०	२०.७
मलैः पञ्चादिविंशतताः	धर्मोप०	१.४
मलैर्युक्तिं भवेच्छुद्धं	धर्मसं०	१५३
मल्लमुष्टिर्हृदं धस्तत्रयं	प्रश्नो०	१३.१०१
मल्लिनाथं महामल्लं	,,	१९.१
मषिः कृषिश्च वाणिज्य	धर्मसं०	६.२२९
मस्तकस्योपरि दोर्भ्यां	प्रश्नो०	१४.७३
मस्तके मुण्डनं लोचः	,,	२४.२५
मस्तके हृदये वापि	कुन्द०	८.१०७
महत्काले व्यतिक्रान्ते	धर्मसं०	२.९१
महाकुला महासत्वा	धर्मोप०	४.१७१
महागमपदस्यापि	,,	२.२३
महाग्निज्वलिताद् द्वारा	प्रश्नो०	१६.१०६
महाणुव्रतयुक्तानां	हरिवं०	५८.३
महातपःस्थिते साधौ	अमित०	१३.१३
महातपोधनायार्चा	महापु०	३८.३७
महादानमथो दत्वा	,,	३८,२८४
महाधिकाराश्चत्वारो	धर्मोप०	२.८
महानरकसंवासदायकं	,,	३.१९
	यशस्ति०	२०७
महापद्मसुतो विष्णुः	श्रा० सा०	१.५३२
	उमा०	६५
महाशोकमयत्वं च	प्रश्नो०	११.७६
महाहिंसादिजे पाप	,,	२०.४१
महिषाणां खराणां च	कुन्द०	८.३५६
महीपतिरपि प्राह	श्रा० सा०	१.७४
महोत्सवमिति प्रीत्या	सं० भाव०	१.२०
महोत्सवेन सा वज्र	प्रश्नो०	१०.३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महोपसर्गके जाते	धर्मोप०	५.३
महोपवासः स्याज्जैन	धर्म सं०	६.१७०
महोपवासो द्वयवर्जिता	श्रा० सा०	३.३१९
महौषधप्रयोगेण	कुन्द०	५.१२२
मा करेण करं पार्थं	कुन्द० (उक्तं)	३.५५
मा कृथाः कामधेनुं	धर्म० सं०	७.१५३
मा कृथास्त्वं वृथा शोकं	श्रा० सं०	१.७२३
मा कांक्षीर्भाविभोगादीन्	सागार०	८.६२
माक्षिकं जन्तुसङ्कीर्णं	पूज्य०	१९
माक्षिकं मक्षिकानां-हि	लाटी०	१.७२
माक्षिकं मक्षिका लक्ष	श्रा० सा०	३.४५
माक्षिकं विविधं जन्तु	अमित०	५.२७
माक्षिकामिषमद्यं च	सं० भाव०	९
मागाः कान्ते निजस्वान्ते	श्रा० सा०	१.४५९
मा गां कामदुघां मिथ्या	सागार०	८.८३
माघेन तीव्रः क्रियते	अमित०	१४.३९
मार्जारं कुर्कुरं कीरं	धर्मो०प० (उक्तं)	४.१८
मार्जारं मण्डलं पक्षि	भव्यध०	१.१३४
मार्जारमूषिकादीनां	प्रश्नो०	३.६४
माणिक्यानि त्वदीयानि	,,	१३.९५
माण्डलिकैः सुसामन्तैः	भव्यध०	१.३४
मातङ्गी चित्रकूटेऽभूद्	धर्मसं०	३.३०
मातंगो धनदेवश्च	रत्न क०	६४
	धर्मोप० (उक्तं)	४.९
मातङ्गोऽप्युपवासेन	पुरु० शा०	६.१५
मातङ्ग्या कथितं तेजां	प्रश्नो०	१२.१५९
मातापित्रादिसम्बन्धो	धर्मसं०	२.४६
मातापितृज्ञातिनराधि	अमित०	१.५४
मातुरङ्गानि तुर्ये तु	कुन्द०	५.२०८
मातृ-पित्रातुराचार्या	कुन्द०	८.३२०
मातृपित्रादिसिद्ध्यर्थं	प्रश्नो०	३.११९
मातृपित्रोरतोरस्क	कुन्द० (उक्तं)	१.८५
मातृप्रभृतिवृद्धानां	कुन्द०	१.८४
मातृस्वस्त्रम्बिकामाभि	कुन्द०	३.२८
मातुरप्युत्तरीय यो	अमित०	१२.५८
मातृतातसुतदारबान्धवाः	अमित०	१४.२२
मातृपुत्रीभगिन्यादि	रत्नमा०	३५
मातृवत्परनारीणां	सं० भाव०	१५
मातेव या शास्ति हितानि	अमित०	१.७
मात्रासमं स मूढात्मा	प्रश्नो०	१५.११८
माधवसेनोऽजनि	अमित० प्रश०	४
माधुर्यप्रीतिः किल दुग्धे	पुरु० शा०	१२३
माध्यस्थ्यैकत्वगमनं	हरिवं०	५८.३९
मानकूटं तुलाकूटं	भव्यध०	१.१३७
मानदावाग्निदग्धेषु	यशस्ति०	९००
माननीयं सदा भव्यैः	भव्यध०	१.८०
मानभङ्गः कृतो येन	प्रश्नो०	९.२२
मानमायामदामर्ष	यशस्ति०	८२७
मानवैर्मानिवावासे	अमित०	१२.३७
मानसाहारसन्तृप्ताः	प्रश्नो०	११.८६
मानस्तम्भैर्महाचन्द्रैः	भव्यध०	१.४६
मानाधिकपरीवार	उमा०	१०५
मानुषोत्तरबाह्ये	सं० भाव०	१३६
मानुष्यमासाद्य सुकृच्छ	अमित०	१.१८
मान्यत्वमस्य सन्धते	महापु०	४०.२०४
मान्यं ज्ञानं तपोहीनं	यशस्ति०	७८३
मागदुर्मुखराजस्ता	प्रश्नो०	१०.५
मामिच्छा तुच्छल	श्रा० सा०	१.२५७
मामुवाच ततो जैनसुरः	श्रा० सा०	१.१९५
मामुवाच पुनर्देवः	,,	१.१९२
मायया प्रोच्छन्मूर्च्छा	,,	१.३९३
मायर्षेर्यः स्वहस्ताभ्यां	पुरु० शा०	३.७६
मायानिदानमिथ्यात्व	यशस्ति०	२२१
मायामादृत्य येनायं	श्रा० सा०	१.४४०
मायामिथ्यानिदानैः	व्रतो०	४३१
मायालोभक्षुधालस्य	कुन्द०	५.२२
मायावती लोभवाचश्च	लाटी०	४.७
माया संयमिनः सूर्प	श्रा०सा०(उक्तं)	१.४११
	उमा०	५७
माया संयमिन्युत्सर्पे	यशस्ति०	१८४
मायाहङ्कारलज्जाभि०	कुन्द०	१०.१५
मरणान्तिकसल्लेखः	रत्नमा०	१९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मारणार्थं कुमारस्तै	प्रश्नो०	१२.१६३
मारयेयं पुरो भूपं	धर्मसं०	२.१२१
मार्गं मोक्षस्य चारित्रं	लाटी०	३.१८९
मार्गविप्लवरक्षार्थं	गुणभू०	१.३८
मार्गसूत्रमनुप्रेक्षाः	यशस्ति०	६३०
मार्गाद् भ्रश्यति योऽक्षार्थं	पुरु०शा०	३.९३
मार्गे सम्मर्जिते गच्छन्	प्रश्नो०	२१.१८५
मार्गो मोक्षस्य सद्-दृष्टिः	लाटी०	३.१६४
मार्ग्यन्ते सर्वदा जीवाः	अमित०	३.२६
मार्तण्डकिरणस्पृष्टे	धर्मसं०	६.४
मालाकारेण प्रोद्यान	प्रश्नो०	१२.१५०
मालानां म्लानता स्वल्पो	कुन्द०	३.७८
मालास्वप्नो हि दृष्टश्च	कुन्द०	१.२१
मालाञ्जने दिनस्वापं	कुन्द०	५.१७६
माल्यगन्धप्रधूपाद्यैः	उमा०	१४०
माल्यधूपप्रदीपाद्यैः	धर्मसं०	६.७२
माषमुद्गादिकं सर्वं	प्रश्नो०	१२.१११
मा समन्वाहर प्रीतिं	सागार०	८.६१
मासर्क्षपूर्णिमा हीना	कुन्द०	८.६१
मासे प्रति चतुर्ष्वेव	सं० भाव०	६६
मासं प्रत्यष्टमी मुख्य	,,	९४
	यशस्ति०	२८६
मांस जीवशरीरं	श्रा०सा०(उक्तं)	३.८१
	उमा०	२७९
मांसं प्राणिशरीरं	चारित्र सा०	१७
मांसं यच्छन्ति ये मूढा	अमित०	९.६७
मांसं स्याज्जीवकायो	पुरु०शा०	४.१७
मांसत्यागान्नृणां	,,	४.२१
मांसत्यागेऽपि चैतेषां	व्रतो०	६९
मांसं भक्षयति प्रेत्य (उक्तं)	चारित्रसा०	१६
	उमा०	२६.८
मांसंपिण्डौ स्तनौ	प्रश्नो०	२३.६
मांसभक्षणविषक्त	अमित०	५.१२
मांसमद्यमधुद्यूत	हरिवं०	५८.४३
मांसमात्रपरित्यागाद्	लाटी०	१.४६
मांसमित्थमवबुध्य	अमित०	५.२६
मांसरक्तार्द्रचर्मास्थि	श्रा० सा०	३.९६
	पूज्यपा०	३७
मांसरक्ताऽऽर्द्रचर्मास्थि	उमा०	३१८
	धर्मोप०	४.८५
मांसवल्मननिविष्ट	अमित०	५.२१
मांसस्य भक्षणे दोषा	लाटी०	१.१२३
मांसादिषु दया नास्ति	यशस्ति०	२७८
मांसाशिनां भवेल्लिङ्गं	भव्यध०	१.१२२
मांसास्वादपराश्चैते	उमा०	२८८
मांसाहारो दुराचारो	भव्यध०	१.१२०
मांसाशिषु दया नास्ति	श्रा०सा० (उक्तं)	३.४३
मांसाशने यस्य विचार	,,	३.२९
मासे गते पुनर्भुक्त्यै	धर्मसं०	२.११५
मासे चत्वारि पर्वाणि	वराङ्ग०	१५.१७
	गुणभू०	३.६१
माहेन्द्रे च तथा बाह्ये	भव्यध०	३.२२७
मित्र गृहाण चारित्रं	प्रश्नो०	८.५३
मित्रादाशी न विषम	कुन्द०	३.६८
मित्रानुस्मरणं योऽपि	,,	२२.५४
मित्रोद्वेगकरो नित्यं	कुन्द०	८.४१२
मिथिलायामथ ज्ञानी	श्रा० सा०	१.५८०
मिथ्या ज्ञानतमस्तोमं	धर्मोप०	१.२५
मिथ्यातमःपटल	यशस्ति०	४६५
मिथ्यात्वं कीदृशं स्वामिन्	प्रश्नो०	४.१०
मिथ्यात्वं त्यज सम्यक्त्वं	धर्मसं०	७.८१
मिथ्यात्वं भावयन्	,,	७.८४
मिथ्यात्वं भिद्यते भेदैः	अमित०	२.५३
मिथ्यात्वं वम सम्यक्त्व	सागार०	८.६८
मिथ्यात्वं सर्वदा हेयं	अमित०	२.१
मिथ्यात्वं सासनं	भव्यध०	३.२४६
मिथ्यात्व कर्मजं	प्रश्नो०	४.२६
मिथ्यात्वग्रस्तचित्तेषु	यशस्ति०	७६९
मिथ्यात्वदूषण	अमित०	४.१००
मिथ्यात्वदौर्वृत्य	अमित०	१४.४७
मिथ्यात्वपञ्चकं	प्रश्नो०	२.४३
मिथ्यात्वप्रेरकान्	,,	३.१४९
मिथ्यात्वभावना	सं०भाव०	१५४
मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वं	धर्मसं०	१.६२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	पुरु०शा०	११६
मिथ्यात्ववेदरागाश्च	उ०श्रा०सा०	१.१४३
	उमा०	१७
	पूज्य०	८
मिथ्यात्ववेदहास्यादि	धर्मोप० (उक्त)	४.३५
मिथ्यात्वादिचतुर्द्वारैः	धर्मसं०	७.९५
मिथ्यावादिचतुष्केन	गुणभू०	१.१६
मिथ्यात्वाविरती	प्रश्नो०	२.३०
मिथ्यात्वाविरते	,,	२२.१७
मिथ्यात्वाव्रतकोपादि	अमित०	३.६२
मिथ्यात्वेन दुरन्तेन	,,	२.३६
मिथ्यात्वेनानुविद्धस्य	,,	२.२३
मिथ्यादर्शनकुज्ञान	प्रश्नो०	११.२८
मिथ्यादर्शनविज्ञान	अमित०	२.२५
मिथ्यादिशं रहोभ्याख्यां	सागार०	४.४५
मिथ्यादृक् सासादनो	अमित०	३.२७
मिथ्यादृग्ज्ञानचारित्र	पुरु० शा०	१.१४२
मिथ्यादृग्भ्यो ददद्दानं	धर्मोप० (उक्तं)	४.२२
मिथ्यादृशोऽपि दानं ते	पूज्य० पा०	५९
मिथ्यादृष्टिर्ज्ञानं चरण	उमा०	८६
	श्रा०सा० उक्तं	१.७४९
मिथ्यादृष्टिर्न जानाति	प्रश्नो०	४.१४
मिथ्यादृष्टेः प्रशंसा च	व्रतो०	४६१
मिथ्यादृष्टेस्तदेवास्ति	लाटी०	३.४२
मिथ्या भ्रान्तिर्मदन्यत्र	,,	३.४६
मिथ्यामहान्धतमसावृत	यशस्ति०	४७४
मिथ्यामार्गे तथा मिथ्यादृष्टौ	धर्मोप०	१.२१
मिथ्या यत्परतः स्वस्य	लाटी०	२.९१
मिथ्यावद्भास्करायार्घं	धर्मोप०	१.३१
मिथ्यावर्त्मनि तन्निष्ठे	गुणभू०	१.३६
मिथ्यासम्यक्त्वयुक्तो	प्रश्नो०	११.३२
मिथ्येष्टस्य स्मरन्	सागार०	८.८८
मिथ्योपदेशकश्चापि	धर्मोप०	४.२६
मिथ्योपदेशकान्	प्रश्नो०	३.१५०
मिथ्योपदेशदानं	पुरु०शा०	१८४
मिथ्योपदेशनैकान्त	व्रतो०	४४२
मिश्रभावेन येऽप्यन्तो	,,	७५
मिश्रितं च सचित्तेन	लाटी०	५.२१६
मीनचापद्वये कुम्भ	कुन्द०	८.१४७
मीमांसको द्विधाकर्म	कुन्द०	८.२४८
मुकुटो मस्तके तेषां	अमित०	११.११९
मुकुलीभूतमाधाय	,,	८.५४
मुक्तबाह्यान्तरग्रन्थो	उमा०	१९१
मुक्तिमार्गरतो नित्यं	कुन्द०	११.१६
मुक्तसमस्तारम्भ	पुरु०वा०	१५२
मुक्तसावद्यभुक्त्यङ्ग	धर्म०सं०	५.१०
मुक्ता शुक्तिर्मता मुद्रा	अमित०	८.५६
मुक्तिं कन्दलयन् भवं	श्रा०सा०	१.९५
मुक्तिनारी वृणोत्येव	प्रश्नो०	२३.५६
मुक्तिः प्रदीयते येन	अमित०	११.४६
मुक्तिरामां करे प्राप्तः	प्रश्नो०	२१.४५
मुक्तिलक्ष्मीलतामूलं	यशस्ति०	४५६
मुक्तिश्च या ललामं व	उमा०	१२२
मुक्तिसंगसमासक्ता	प्रश्नो०	२.७६
मुक्तिसौख्याकरो	,,	३.१०२
मुक्त्यर्थं क्रियते किंचित्	,,	२.७५
मुक्त्वात्र कुत्सितं	सं०भाव०	७८
मुक्त्वा धर्मोपदेशं च	प्रश्नो०	१७.३३
मुक्त्वा योनिं हि ये	,,	१५.४९
मुक्त्वोच्चैर्घंटिके	धर्मोप०	४.६३
मुखं श्लेष्मादिसंयुक्तं	प्रश्नो०	२३.५
मुखप्रक्षालनैर्नित्यं	,,	२३.६३
मुखहस्ताङ्गुली संज्ञा	व्रतो०	४६४
मुखे श्वासो न नासायां	कुन्द०	८.१७७
मुख्यो गौणश्च कालोऽत्र	गुणभू०	१.१५
मुख्योपाचारविवरणं	पुरु०षा०	४
मुञ्चता जननमृत्युयातनां	अमित०	१४.७४
मुञ्चन् बन्धं वधच्छेद	सागार०	४.१५
मुञ्चेत्कन्दर्पकौत्कुच्य	,,	५.१२
मुञ्चे नो चेन्निहन्मि	धर्मसं०	२.२९
मुण्डधारी जटाधारी	भव्य०ध०	१.६९
मुण्डयित्वा मनोमुण्डं	भव्यध०	६.३६४
मुद्गौदनाद्यमशनं	अमित०	६.९७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुद्राचित्राम्बराद्येषु	धर्मसं०	२.१६५
मुनयोऽत्युत्तमं पात्रं	उमा०	४४३
मुनिर्गजकुमारोऽपि	धर्मसं०	७.१८३
मुनिजनसुखहेतुं	प्रश्नो०	२०.२४१
मुनिदानं मया ह्याहा	धर्मसं०	२.१२४
मुनिना हस्तमादाय	प्रश्नो०	८.५१
मुनिनोचे तदाभिलनो	धर्मसं०	२.५३
मुनिपादोदकेनैव	प्रश्नो०	२०.१०१
मुनिर्ब्रूते त्वया भद्र	प्रश्नो०	५.४९
मुनिभिः सर्वतस्त्याज्यं	लाटी०	५.८३
मुनिभ्यः शाकपिण्डोऽपि	यशस्ति०	८०१
मुनिभ्यो निरवद्यानि	धर्मसं०	६.१८५
मुनिमन्त्रोऽयमाम्नातो	महापु०	४०.४७
मुनिराह वशं कृत्वा	प्रश्नो०	२१.१०१
मुनिरेव हि जानाति	लाटी० (उक्त)	१.११
मुनिवरगणप्राच्यों दुष्करैः	प्रश्नो०	२४.१२१
मुनिव्रतधराणां वा	लाटी०	३.१७२
मुनिश्रावकभेदेन	धर्मोप०	३.४
मुनिः सामायिके नैवाभव्यः	प्रश्नो	१८.६६
मुनिस्तथैवाध्यानेनं	,,	१०.१८
मुनीनां च गृहस्थानां	,,	१२.७४
मुनीनां प्रणतेरुच्चै	धर्मसं०	४.१२४
मुनीनामनुमार्गेण	संभाव	१०६
मुनीनामपि शिष्टानां	श्रा०सा०	१.५९०
मुनीनां व्याधियुक्ता	यशस्ति०	८०६
मुनीनामुपसर्गो हि	प्रश्नो०	९.५३
मुनीनां श्रावकाणां च	धर्मोप०	२.१३
मुनीन्द्रं विष्णुनामानं	श्रा०सा०	१.५८४
मुनीश्वरं चित्रवती	व्रतो०	४५
मुनेः क्वथितरूपस्य	श्रा०सा०	१.३३१
मुनेर्भक्षणध्यानेन	प्रश्नो०	२१.१४७
मुनेः शुद्धिं परिज्ञाय	,,	१०.१६
मुनेः समाधिगुप्तस्य	व्रतो०	४६
मुनेस्तनुं गदव्याप्तां	पुरु०शा०	३.६९
मुषित्वा निशि कौशाम्बी	धर्मसं०	७.१५६
मुसलं देहली चुल्ली	अमित०	४.९८
मुहुरिच्छामणुशोऽपि	सागार०	८.१०८
मुहूर्त्तद्वयतः पश्चात्	धर्मोप०	४.१००
मुहूर्तं येन सम्यक्त्वं	धर्मसं०	१.६४
मुहूर्त्तयुग्मोर्ध्वं	सागार०	३.१६
मुहूर्त्ताद्गालितं	रत्नमा०	६१
मुहूर्त्तं गालितं तोय	प्रश्नो०	१२.११०
मुहूर्त्तेऽन्त्ये तथाद्येऽह्नो	सागार०	३.१५
मूकतैव वरं पुंसां	पुरु०शा०	३.८३
मूकवन्मुखमध्ये वा	प्रश्नो०	१८.१४५
मूकश्च दर्दुरो दोषो	,,	१८.११४
मूकितोऽङ्गुलिदोषश्च	,,	१८.१५६
मूको वकसमाकारो	भव्यध०	५.२७८
मूर्खापवादत्रसनेन	अमित०	१.७०
मूर्च्छा कम्पः श्रमः खेदो	धर्मसं०	२.२१
मूर्च्छातृष्णाङ्गपीडानुबन्ध	,,	३.६७
मूर्च्छापरिग्रहे त्यक्त्वा	पुरु०शा०	४.१३१
मूर्च्छालक्षणकरणात्	,,	४.११२
मूढो गूढो शठप्रायो	लाटी०	४.४
मूढत्रयं चाष्टमदाः	उमा०	८०
मूढत्रयं भवेच्चाष्टौ	प्रश्नो०	११.६
मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ	यशस्ति०	२२६
	श्रा०सा० (उक्तं)	१.७४४
मूढत्वं विबुधैस्त्याज्यं	प्रश्नो०	७.५९
मूढभावेन यो मूढो	,,	११.१५
मूत्रोत्सर्गे पुरीषे च	भव्यध०	१.९२
मूर्तामूर्तभिदा सेधा	गुणभू०	१.१३
मूर्त्तिमद्देहनिर्मुक्तो	लाटी०	३.१३०
मूर्त्यादिष्वपि नेतव्या	महापु०	३९.१६९
मूर्धाभिषिक्तोऽमिष	यशस्ति०	७१६
मूर्ध्नि लोकाग्रमित्येषं	गुणभू०	३.१२३
मूर्ध्वसिहमुष्टिवासो	रत्नक०	९८
मूलं धर्मतरोराद्या	पद्म०पंच०	३८
मूलकं नालिकाश्चैव	भव्यध०	१.९८
मूलं फलं च शाकादि	गुणभू०	३.७०
मूलफलशाकशाखा	रत्नक०	१४१
मूलबीजा यथा प्रोक्ता	लाटी०	१.८०
मूलं मोक्षतरोर्बीजं	श्रा०सा०	१.३२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलतोऽपि सुयत्नेन	धर्मोप०	३.१७
मूलव्रतं व्रतान्यर्चा पर्व	यशस्ति०	८२१
मूलसाधारणास्तत्र	लाटी०	१.९३
मूलोत्तरगुणनिष्ठा	सागार०	१.१५
मूलोत्तरगुणव्रातपूर्व.	धर्मसं०	५.५
मूलोत्तरगुणश्लाघ्यै	यशस्ति०	७८०
मूलोत्तरगुणानेव	लाटी०	३.१८६
मूलोत्तरगुणाढ्याश्च	प्रश्नो०	२०.८
मूलोत्तरगुणाः सन्ति	लाटी०	२.१५३
मूलोत्तरगुणोपेतान्	प्रश्नो०	३.१४०
मूशलविषशस्त्राग्नि	भव्यध०	४.२६३
मूषागर्भगतं रिक्तं	,,	५.२९९
मृतके मद्यमांसे वा	,,	१.९६
मृतानाममृतादीनां	पुरु०शा०	३.१५०
मृते स्वजनमात्रेऽपि	श्रा०सा०	३.१०९
मृत्युञ्जयं यदन्तेषु	यशस्ति०	६०७
मृत्युः प्राणात्ययः प्राणाः	लाटी०	३.६२
मृत्युर्लज्जा भयं तीव्रं	भव्यध०	१.१४१
मृद्-भाण्डानि पुराणानि	धर्मसं०	६.२५८
मृद्वी च द्रव्यसम्पन्ना	पूज्यपा०	५५
मृत्य्वादिभयभीतेभ्यः	प्रश्नो०	२०.३२
मृत्वा समाधिना यान्ति	पुरुशा०	६.११३
मृत्वा सोऽपि महादुःखं	प्रश्नो०	१४.८३
मृत्वेति नरकं घोरं	धर्मसं०	२.२५
मृत्स्नयेष्टकया वापि	यशस्ति०	४३६
मृषावादेन लोकोऽयं	प्रश्नो०	१३.२१
मृषोद्यादीनबोधोऽगात्	यशस्ति०	३७८
मेघपिङ्गलराज्यस्य	प्रश्नो० ,,	२१.६३ २१.८८
मेघवृष्टिर्भवेद्धर्माद्	कुन्द०	१०.१०
मेघेश्वरचरित्रेऽस्ति	धर्मसं०	४.१०३
मेधाविनो गणधरात्स	,,	६.२०१
मेषवल्लघुग्रीवा	कुन्द०	५.१०४
मैत्रीप्रमोदकारुण्य	हरिवं० यशस्ति० धर्मसं०	५८.११ ३१९ ७.१०२
मैत्रीं सत्त्वेषु कुर्वित्थं	पुरु०शा०	६.६४
मैत्र्यादिभावनावृद्धं	धर्मसं०	२.३
मैथुनपापां नग्नां	कुन्द०	८.३२४
मैथुनं यत्स्मरावेशात्	पुरु०शा०	४.९२
मैथुनेन महापापं	प्रश्नो०	२३.२०
मैथुने सकलान् दोषान्	पुरु०शा०	६.३६
मैथुनेन स्मराग्निर्यो	श्रा० सा० उमा०	३.२३३ ३७४
मैरेयपललक्षौद्र	श्रा० सा० उमा०	३.६ २६३
मैरेयमपि नादेयं	लाटी०	१.१२५
मैरेयमांसमाक्षिका	श्रा०सा०	३.४१
मैवं तीव्रागुभागस्य	लाटी०	१.१४३
मैवं प्रमत्तयोगत्वाद्	,,	४.११३
मैवं प्रमत्तयोगाद्वै	,,	५.२९
मैवं प्रागेव प्रोक्तत्वात्	,,	१.८३
मैवं प्राणान्तरप्राप्तौ	,,	४.१०६
मैवं यतो विशेषोऽस्मिन्	,,	१.१९०
मैवं यथोदितस्योच्चैः	,,	१.३०
मैवं सति तथा तुर्यं	,,	२.१३८
मैव सति नियमादाव	,,	२.१४९
मैवं स्पर्शादि यद् वस्तु	,,	१.१९१
मैवं स्यात्कामचारोऽस्मिन्	,,	४.११६
मैवं स्यादतीचाराः	,,	१.९
मोक्ष आत्मा सुखं नित्यः	सागार०	५.३०
मोक्षकारणभूतानां	हरिवं०	५८.७६
मोक्षमार्गं स्वयं	यशस्ति०	३६३
मोक्षमार्गात्परिभ्रश्यन्	पुरु०शा०	३.८८
मोक्षमेकमपहाय	अमित०	१४.४
मोक्षसौख्यलवाशक्त	पुरु०शा०	५.४४
मोक्षः स्वःशर्मनित्यश्च	धर्मसं०	४.५६
मोक्षायोत्तिष्ठमानो	पुरु०शा०	३.११७
मोक्षार्थसाधनत्वेन	,,	३.१३
मोक्षावसानस्य सुखं	अमित०	१.२८
मोक्षोन्मुखक्रिया	सागार०	६.४२
मोक्तव्येनार्णववादेन	अमित०	३.६५
भोक्तुं भोगोपभोगाङ्ग	सागार०	४.४४
मोचयित्वा तदात्मानं	प्रश्नो०	२१.११७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोदकादिवराहरं	प्रश्नो०	२३.६०
मोहतिमिरापहरणे	रत्नक०	४७
मोहदुःकर्मविश्लेषाद्	प्रश्नो०	३.६
मोहनिद्रातिरेकेण	प्रश्नोत्त०	१.२
मोहयति झटिति	अमित०	६.७०
मोहान्धाद् द्विषतां धर्म	कुन्द०	११.३१
मोहारातिक्षते शुद्धः	लाटी०	३.३११
मौखर्यदूषणं नाम	,,	५.१४३
मौखर्यमेरगानर्थक्या	पुरु०शा०	४.१५७
मौखर्यमसमीक्ष्याधिकरणं	श्रा०सा०	३.२७९
मौनदानक्षमाशील	,,	१.१००
मौनं कुर्याद् यदि स्वामी	कुन्द०	२.१००
मौनं ब्रह्म दयाब्रह्म	यशस्ति०	८४०
मौनमेव प्रकर्त्तव्यं	प्रश्नो०	२४.९४
मौनमेव हितमत्र नराणां	श्रा०सा०	३.१७९
मौनव्रतधरान् धीरान्	प्रश्नो०	३.१३७
मौनाद् भोजनवेलायां	पूज्यपा०	३८
मौनाध्ययनवृत्तत्वं	महापु०	३८.५८
मौनी वस्त्रावृतः कुर्याद्	कुन्द०	१.४८
मौने कृते कृतस्तेन	धर्मसं०	३.४७
म्रियतां मा मृतजीवा	अमित०	६.२५
म्रियन्ते जन्तवस्तत्र	लाटी०	१.५२
म्रियन्ते मत्कुणास्तल्पे	कुन्द०	५.१२४
म्रियस्वेत्युच्यमानेऽपि	श्रा०सा०	३.१२९
	उमा०	३३७
म्लापयन् स्वाङ्गसौन्दर्यं	महापु०	३९.१७२
म्लेच्छलोकमुखलालया	अमित०	५.२९
म्लेच्छाखेटकमिल्लादि	प्रश्नो०	२०.१२०

य

य आचष्टे संख्यां	(उक्तं) धर्मोप०	४.२४
	श्रा० सा०	३.३४७
य उपेक्षां परित्यज्य	प्रश्नो०	१७.१४०
यं निहन्तुममरा न समर्था	अमित०	१४.९
यं करोति पुरतो यमराजो	अमित०	१४.७
यं यमध्यात्ममार्गेषु	यशस्ति०	६५९
यः कण्टकैस्तुदत्यङ्गं	यशस्ति०	६०४
यः करोति गृहारम्भं	प्रश्नो०	२४.८
यः करोति न कालस्यो	व्रतो०	५०२
यत्कर्त्ता किल वज्रजङ्घ	सागार०	५.५०
यः कर्मद्वितयातीत	यशस्ति०	८३३
यत्कल्याणपरम्परार्पणपरं	देशव्र०	२७
यत्कषायोदयात् प्राणि	श्रा० सा०	३.१२४
	उमा०	३३३
यः कामितसुखे तन्वन्	श्रा० सा०	१.२३५
यत्किञ्चिच्च गृहारम्भं	प्रश्नो०	२३.१०९
यत्किञ्चिच्च समादेयं	,,	२४.१०४
यत्किञ्चिच्चिन्तनं पुंसां	,,	१७.५९
यत्किञ्चित्तन्मुनिप्रोक्तं	व्रतो०	५३५
यत्किञ्चिदुच्यते वाक्य	धर्मोप०	४.७७
यत्किंचिद्दुर्लभं लोके	प्रश्नो०	२.८१
यत्किञ्चित्पतितं पात्रे	धर्मसं०	५.६८
यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं	कुन्द०	५.२०१
यत्किञ्चिन्मुच्यते वस्तु	,,	२.५७
यत्किञ्चिन्मुनिना निन्द्यं	प्रश्नो०	२३.१३२
यत्किञ्चित्सुन्दरं वस्तु	अमित०	११.३०
यत्किंञ्चिद्धिंसकं वस्तु	प्रश्नो०	१७.३८
यत्किमपि शरीरस्थं	कुन्द०	११.४२
यः कुपात्राय ना दत्ते	,,	२०.११५
यः कुर्वन् स्वशिरस्पर्शं	,,	१८.१३६
यत्कृतं हि पुरा सूत्रं	भव्यध०	३.२००
यः कोणो मूलरेखायाः	कुन्द०	१.१७०
यः कौपीनधरो रात्रि	धर्मोप०	४.२४५
यक्षादिबलिशेषं च	सं० भाव०	८५
यक्षीवाक्यात्स सद्धर्मे	धर्मसं०	२.७६
यत्खलु कषाययोगात्	पुरुषा०	४३
यद् गृहीतं व्रतं पूर्वं	पूज्य०	८०
यच्च दण्डकपाटादि	महापु०	३८.३०७
यच्चक्री लघुनापि	श्रा० सा०	१,१२५
यच्च लोके दुराचार	धर्मोप०	३.११
यच्चार्हत्प्रतिमोत्ताना	कुन्द०	१.१४३
यच्चिन्तामणिरीप्सितेषु	यशस्ति०	४६७
यच्चेह लौकिकं दुःखं	अमित०	१२.७९
यच्छन्ति विरलाः शुष्काः	कुन्द०	५.४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यच्छ स्वच्छमते मह्यं	श्रा० सा०	१.२०७
यच्छेषं सा भवेत्तारा	कुन्द०	८.७१
यजनं याजनं कर्मी	धर्मसं०	६.२२४
यजनाध्ययने दानं	,,	६.२२५
यजमानं सदर्थानां	यशस्ति०	६५२
यजेत देवं सेवेत	सागार०	२.२३
यज्जानाति यथावस्थं	यशस्ति०	२४१
यज्जीवबाधकं मूढै	प्रश्नो०	१७.३९
यज्ज्ञानं लोचनप्रायं	धर्मोप०	४.१७९
यज्ञः कर्तुं समारब्धो	प्रश्नो०	९.४०
यज्ञदत्ताप्रसूता सा	,,	१०.१५
यज्ञदत्ताभिसक्तस्य	श्रा० सा०	१.६२५
यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः	,, (उक्तं)	३.१४१
यज्ञैर्मुदावभृथभागिन	यशस्ति०	५२६
यज्ञोपवीतमस्य स्याद्	महापु०	३९.९५
यज्ञोपवीतसंयुक्तं	श्रा० सा०	१.३७३
यतः करोति यः पापमुपदेशं	प्रश्नो०	१७.३४
यतः क्रियाभिरेताभिः	लाटी०	४.११०
यतः पिष्टोदकादिभ्यो	अमित०	४.२२
यतः पुण्यक्रियां साध्वीं	लाटी०	४.३८
यतः प्रज्ञाविनामृत	,,	३.८२
यतः प्राणमयो जीवः	धर्मसं०	३.९
यतः समयकार्यार्थो	यशस्ति०	१८८
यतः स्वल्पीकृतोऽप्यत्र	लाटी०	४.१५०
यतः स्वस्वामिसम्बन्ध	अमित०	११.७६
यतयेऽसमंजसं भोज्यं	श्रा० सा०	१.३२३
यतिमाधाय लोकाग्रे	महापु०	३८.१८५
यतिः स्यादुत्तमं पात्रं	सागार०	५.४४
यतीनभ्यन्तरीकृत्य	श्रा० शा०	१.५७६
यतीन्नियुज्य तत्कृत्ये	सागार०	८.४६
यतीनां श्रावकाणां च	पद्म० पंच०	४०
	गुणभू०	२.८
यतेर्मूलगुणाश्चाष्टा	लाटी०	३.२४३
यतो जानासि यद्देव	श्रा० सा०	१.५९७
यतोऽत्र देशशब्दो हि	लाटी०	४.१८८
यतो निःकाङ्क्षिता नास्ति	,,	३,९६

यतोऽन्येऽपि प्रजायन्ते	श्रा० सा०	३.१०२
यतोऽपहरता द्रव्यं	धर्मसं०	३.५५
यतो मन्दकषायास्ते	अमित०	११.७३
यतोऽयं लब्धसंस्कारो	महापु०	३९.१२३
यतो लोभाकुलः प्राणी	प्रश्नो०	१६.३३
यतोऽवश्यं स सूरिर्वा	लाटी०	३.२३३
यतो व्रतसमूहस्य	,,	४.२३०
यतोऽस्ताचलचूलिकान्त	कुन्द०	५.२४६
यतो हि यतिधर्मस्य	धर्मसं०	५.७६
यत्किञ्चिदिह सत्सौख्यं	,,	६.१०४
यत्तस्मादविचलनं	पुरुषा०	१५
यत्तारयति जन्माब्धे	सागार०	५.४३
यत्नैः संघर्षणं कुर्यात्	कुन्द०	१.६९
यः प्रश्ने पश्चिमायां तु	,,	१.६०
यत्पादाङ्गुलयः क्षोणीं	,,	५.९२
यत्पादाङ्गुलिरेकापि	,,	५.९३
यत्पार्श्वं स्थीयते नित्यं	,,	८.३७९
यत्प्रसादान्न जातु स्यात्	सागार०	२.४३
यत्प्रसिद्धैरभिज्ञानैः	,,	५.२
यत्प्रागुक्तं मुन्नीद्राणां	,,	७.५९
यत्रकृतेऽलंक्रियते	व्रतो०	९४
यत्र क्रोधप्रत्याख्यानं	लाटी०	५.९
यत्र ग्रैवेयकं यात्यभव्यः	धर्मसं०	४.५४
यत्र चित्रैर्विवर्तैः	अमित०	१४.१९
यत्र जिनादिविचित्रोत्तम	श्रा० सा०	२.८
	उमा०	२.५४
यत्र ज्येष्ठा-कनिष्ठादि	कुन्द०	८.९१
यत्र तत्र हृषीकेऽस्मिन्	यशस्ति०	६७८
यत्रत्यं विमलं गृहीत्तमुदकं	व्रतो०	१०
यत्र त्वङ्गिवधो धर्मः	पुरु० शा०	३.३८
यत्र देशे जिनावासः	धर्मसं०	४.४०
यत्र न ज्ञायते दक्षैः सिरा	प्रश्नो०	१७.९४
यत्र नास्ति यतिवर्गसङ्गमो	अमित०	५.४१
यत्र नेत्रादिकं नास्ति	यशस्ति०	३.८
यत्र प्रामाणिके जाति	श्रा० सा०	१.३३
यत्र मेरौ जिनेन्द्राणां	,,	१.२२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्र यत्र विलोक्यन्ते	अमित०	१३.३७
यत्र रत्नत्रयं नास्ति	यशस्ति०	७६७
यत्र राक्षसपिशाच	अमित०	५.४०
यत्र व्रतस्य भङ्गः स्याद्	गुणभू०	३.३३
यत्र श्रावकलोक एव	देशव्र०	२०
यत्र संक्लिश्यते कायः	धर्मसं०	६.१६५
यत्र सत्रेषु सद्-भोज्यं	श्रा० सा०	१.२०
यत्र सत्पात्रदानादि	सागार०	४.२७
यत्र सम्मूर्च्छिनः सूक्ष्माः	धर्मसं०	२.१४२
यत्र सर्वशुभकर्मवर्जनं	अमित०	५.४२
यत्र सिद्धा निराबाधाः	धर्मोप०	५.१५
यत्र सूक्ष्मतनवस्तनूभृतः	अमित०	५.६८
यत्र स्फटिकभूमीषु	श्रा० सा०	१.२९
यत्राधीते श्रुते कामोच्चाटन	धर्मसं०	४.१३
यत्रानुभूयमानोऽपि	लाटी०	३.१४
यत्राभ्रंलिहगेहाग्र	श्रा० सा०	१.२८
यत्रायमिन्द्रियग्रामो	यशस्ति०	५८७
यत्रारुणाश्मभित्तीनां	श्रा०सा०	१.३०
यत्राऽऽवाभ्यां पुरा स्वामिन्	,,	१.४९०
यत्रैकद्वित्रिपल्यायु	धर्मसं०	४.११३
यत्रैको जायते प्राणी	प्रश्नो०	१७.९३
यत्रैको म्रियते जीवस्तत्रैव	,,	१७.९२
यत्रैव मक्षिकाद्या	व्रतो०	१८
यत्रोषितं न भक्ष्यं स्याद्	लाटी०	१.५५
यथाकथञ्चिद् भजतां	सागार०	१.४१
यथा कल्पद्रुमो दत्ते	प्रश्नो०	३०.१४४
यथा कश्चित्कुलाचारी	लाटी०	२.१४७
यथा कालं यथादेशं	पुरु०शा०	२.१२०
यथा कालायसाविद्धं	महापु०	४०.२०८
यथा क्रममतो ब्रूमः	,,	३९.१९
यथा क्रोधस्तथा मानं	लाटी०	५.११
यथाङ्गिशलके पक्षी	व्रतो०	४०१
यथा चक्षुःप्रसूनां वे	लाटी०	३.२१३
यथा च निःस्पृहा जीवा	प्रश्नो०	१६.२१
यथा चन्द्रं बिना रात्रिः	पूज्य०	९५
यथा च जायते दुःखं	पद्मच०	१४.१३
यथा च मलिने चित्ते	प्रश्नो०	११.४९
यथा चिकित्सकः कश्चित्	लाटी०	४.२६
यथा चैकस्य कस्यापि	,,	२.१४३
यथा चैत्यालये पुण्यं	प्रश्नो०	२०.२३६
यथा जिनाम्बिका पुत्र	महापु०	४०.१२८
यथाणोश्च परं नास्ति	प्रश्नो०	३.९९
यथात्मज्ञानमाख्यातं	लाटी०	५.२३२
यथात्मनोऽपृथग्भूता	प्रश्नो०	२०.८१
यथात्मार्थं सुवर्णादि	लाटी०	१.२७
यथाऽत्र पाक्षिकः कश्चिद्	,,	२.१५१
यथाऽत्र श्रेयसे केचिद्	,,	१.१०२
यथा दासी तथा दासः	,,	५.१०६
यथा दीनश्च दुर्भाग्यो	,,	५.१४९
यथा दुग्धं भवेन्नाम्ना	प्रश्नो०	१.२०
यथा दोषं कृतस्नानो	सागार०	६.२१
यथाऽद्य यदि गच्छामि	लाटी०	५.१२४
यथा द्वावर्भकौ जातौ	,,	३.१०५
यथा धनेश्वरो गेहं	व्रतो०	३१९
यथानाम विनोदार्थं	लाटी०	५.१३८
यथा निर्दिष्टकाले स	,,	६.६६
यथा पक्वं च शुष्कं वा	,,	१.७५
यथाऽपात्रो भ्रमत्येव	प्रश्नो०	२०.१३७
यथा पुंसां मतं शीलं	पुरु० शा०	४.१०४
यथा पूज्यं जिनेन्द्राणां	यशस्ति०	७६५
यथाप्यणोः परं नाल्प	प्रश्नो०	१८.८०
यथाप्राप्तमदन्देह	सागार०	७.३२
यथा फलानि पच्यन्ते	अमित०	३.६४
यथा बन्धनबद्धस्य	प्रश्नो०	२.४०
यथा भवन्ति पद्मानि	धर्मोप०	४.८१
यथा मणिर्ग्रावगणेष्वनर्घो	अमित०	१.१४
यथा मर्त्येषु सर्वेषु	पुरु०शा०	३.२०
यथा मेघजलं भूमियोगा	प्रश्नो०	२०.१४१
यथा मेघाद्विना न स्यात्	,,	१.४५
यथा-यथा कषायाणां	पुरु०शा०	४.१२८
यथा-यथा क्षुधाद्याभिः	,,	६.८
यथा-यथा तनोः पीडा	श्रा०सा०	१.२९६
यथा-यथा तपोवह्निः	,,	१.६८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा-यथा परेष्वेतच्चेतो	यशस्ति०	३७१
यथा-यथा विशिष्यन्ते	,,	७८८
यथा-यथा विशुद्धिः स्याद्	लाटी०	३.२८२
यथा रजोधारिणि पुष्टिकारणं	अमित०	१०.५६
यथा रथाद्मृथाभूतं	व्रतो०	४००
यथा राज्ञा विनादेशो	,,	३३७
यथार्थदर्शिनः पुंसो	(उक्तं) लाटी०	४.३७
यथालब्धमदन्	धर्मसं०	५.५२
यथा लोहं सुवर्णत्वं	कुन्द०	११.३४
यथावदभिषिक्तस्य	महापु०	३८.२४०
यथावस्थितमालम्ब्य	कुन्द०	११.३८
यथा वा तीर्थभूतेव	श्रा०सा०	३.८८
यथा वा तीर्थभूतेषु	उमा०	२८६
यथा वा मद्यधत्तूर	लाटी०	२.३९
यथा वा यावदद्याहि	,,	५.१२५
यथा वा वर्षासमये	,,	५.१२६
यथा वितीर्णं भुजगाय	अमित०	१०.५३
यथा विधि यथादेशं	यशस्ति०	७३३
यथा विभवमत्रापि	महापु०	३८.१०३
यथा विभवमत्रेष्टं	महापु०	३८.८८
यथा बिभवमित्थं यः	पुरु०शा०	३.१२७
यथा विभवमादाय	सागार०	६.६
यथाशक्तिस्ततश्चिन्त्यं	कुन्द०	१.१०५
यथा शक्ति महारम्भात्	लाटी०	४.१५४
	,,	४.१५५
यथा शक्ति भजेताहंद	सागार०	२.२४
यथाशक्ति विधातव्यं	लाटी०	२.१५८
यथाशक्ति विधीयन्ते	पुरु०शा०	३.१६
यथा शिल्पी जिनागारं	प्रश्नो०	२.१७७
यथा शिल्पी व्रजेदूर्ध्वं	,,	२०.५५
यथा सत्यमित्तः क्रोशं	लाटी०	५.१२०
यथा समितयः पञ्च	,,	४.१८५
यथास्मत्पितृदत्तेन	महापु०	३८.१४०
यथास्वं दानमानाद्यैः	सागार०	२.३३
यथास्वं व्रतमादाय	लाटी०	४.१७
यथासम्यक्त्वभावस्य	,,	२.११२
यथास्रक्चन्दनं योषिद्	,,	१.१४२
यथा स्वच्छजलं चापि	धर्मोप०	४.१९१
यथाऽहं धावयाम्यत्र	लाटी०	१.१२१
यथाऽऽहारकृते यावज्जलेन	,,	५.१४५
यथाऽऽहारः प्रियः पुंसां	अमित०	११.२९
यथार्हदादयः पञ्च ध्येयाः	धर्मसं०	७.१४६
यथा हि पशवो नग्ना	प्रश्नो०	१६.२९
यथाहिः पोषितो दत्ते विषं	,,	२०.१४३
यथेष्टभोजनाभोगल	श्रा०सा०	१.१४४
	उमा०	१८
यथेह मम जीवितं	श्रा०सा०	३.१३२
यथैते धर्मिणः पूज्याः	धर्मसं०	६.४५
यथैवाहारमात्रेण	अमित०	९.९८
यथोक्तविधिनैताः	महापु०	३८.३११
यथोक्तव्यवहारस्य	प्रश्नो०	२४.७४
यथोत्सर्गस्तथाऽऽदानं	लाटी०	५.२०८
यथोप्तमूषरे क्षेत्रे	गुणभू०	३.४८
यथोप्तमुत्तमे क्षेत्रे	गुणभू०	३.४७
यथोल्लंघ्यो हि दुर्ल्लक्ष्यो	लाटी०	२.४३
यथौषधक्रिया रिक्ता	यशस्ति०	८९९
यदकार्यमहं दुष्टं	श्रा०सा०	३.३५४
यदकार्षमहं दुष्टं	उमा०	४५५
यदज्ञानी युगैः कर्म	यशस्ति०	८१५
यदत्र सिद्धान्तविरोधि	अमित०	२१.८
यद् दृष्टमनुमानं च	यशस्ति०	७२
यदनन्तचतुष्कायैः	धर्मसं०	६९७
यदनिष्टं तद् व्रतयेद्	रत्नक०	८६
यदन्तःशुषिरप्रायं	यशस्ति०	३१४
यदन्यदपि सद्वस्तु	कुन्द०	१०.१२
यदन्यदपि संसारे	कुन्द०	९.१५
यद्यपि किल भवति	पुरुषा०	६६
	श्रा०सा०	६६
यद्यपि क्रियते किञ्चिन्मदनोडे	पुरुषा०	१०९
यदर्थं धनमादत्ते	प्रश्नो०	१४.२३
यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं	अमित०	१५.११५
यदर्थं हिंस्यते पात्रं	,,	९.४८
यदर्हत्सिद्धसूरीश	पुरु०शा०	३.१०३
यदहोरात्रिकाचारं	धर्मसं०	४.१३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदस्ति सौख्यं भुवनत्रये	अमित०	३.७१
यदा चकास्ति मे चेतः	यशस्ति०	६३५
यदा चित्तं द्रवीभूतं	प्रश्नो०	२.६४
यदा जीवस्य स्यात्पूर्वंकृतं	,,	२.५०
यदा तिष्ठति निष्कम्पो	कुन्द०	११.४९
यदाद्यवारिगण्डूषाद्	कुन्द०	१.६१
यदात्मवर्णनप्रायः	यशस्ति०	७९६
यदापवादिकं प्रोक्तमन्यदा	धर्मसं०	७.५०
यदा परीषहः कश्चिदुप	,,	७.१७४
यदा पुत्री दरिद्राख्या	श्रा०सा०	१.६८५
यदा मूलगुणादानं	लाटी०	२.१४४
यदायं त्यक्तबाह्यान्तः	महापु०	३८.२९६
यदा यदा मनः साम्यलीनं	पुरु०शा०	५.८१
यदाऽऽलस्यतया मोहात्	लाटी०	५.१९२
यदा सप्ततले रम्ये	प्रश्नो०	१६.१०१
यदा सा क्रियते पूजा	लाटी०	५.२०१
यदि कण्ठगतप्राणैः	पुरु० शा०	४.२५
यदि गत्वा त्वमेकाकी	प्रश्नो०	९.१९
यदि जीवस्य नास्तित्वं	व्रतो०	३९८
यदि नश्यति दोषोऽयमहं	प्रश्नो०	१५.८८
यदि नास्ति कुतस्तस्य	अमित०	४.२७
यदि त्यक्तुं समर्थो न	प्रश्नो०	१४.६
यदित्यादि गुणे स्थाने	पुरु० शा०	५.७
यदिदं तैः समं जन्म	कुन्द०	५.२२६
यदिदं प्रमादयोगा	(उक्तं) श्रा०सा०	३.१८९
यद्विण्डमानं जगदन्तराले	अमित०	१५.१०४
यदि पात्रमलब्धं चेद्	सं०भा०	८९
यदि पापनिरोधोन्य	रत्नक०	२७
यदि पापं भवेद् गुप्तं	प्रश्नो०	२.५१
यदि प्रमादतः क्वापि	धर्म सं०	५.८८
यदि देशतोऽध्यक्ष	लाटी०	२.१०४
यदि वाऽन्येन केनापि	कुन्द०	८.३१६
यदि वा मरणं चेच्छेदज्ञा	,,	५.२४३
यदि वा मरणं चेच्छेन्मोहो	,,	५.२४२
यदि विनात्र दानेन	प्रश्नो०	२०.१०२
यदि सर्वं महामन्त्रं	,,	२२.३४

यदि स्त्रीरूपकान्तारे	पुरु० शा०	४.९७
यदि स्याच्चरमं देहं	प्रश्नो०	२२.३८
यदि स्यात्क्षणिको जीवो	व्रतो०	४०७
यदि स्वर्गो भवेद्धर्मः	प्रश्नो०	३.११५
यदि स्वामिन्न दातव्यं	,,	२०.१६६
यदि हिंसादि संसक्ता	,,	३.११३
यदीन्दुस्त्रीव्रतां धत्ते	,,	३.५१
यदुक्तं गृह पयीयाम	महापु०	३९.१०९
यदुक्तं गोम्मटसारे	लाटी०	४.१३४
यदुक्तं जिननाथेन	प्रश्नो०	३.१३०
यदुत्कृष्टं मतं सर्वं	धर्मसं०	४.७४
यदुत्पद्य मृताप्राणि	गुणभू०	३.८
यदेकबिन्दोः प्रचरन्ति	सागार०	२.४
यदेन्द्रियाणि पञ्चापि	यशस्ति०	५८३
यदेवाङ्गमशुद्धं स्यादद्भिः	,,	१२९
यदेवाङ्गमशुद्धं स्यादद्भि	उमा०	४५
	(उक्तं)श्रा.सा.	१.३०६
यद्देवेन्द्रनरेन्द्रवन्दितमहो	प्रश्नो०	२४.१२०
यद्देवैः शिरसा धृतं	यशस्ति०	४६४
यदैव जायते भेदः	कुन्द०	८.२७३
यदैव लब्धसंस्कारः	महापु०	३९.९६
यदैवोत्पद्यते कार्यं	प्रश्नो०	१२.१०८
यदैत्सर्गिकमन्यद्वा	सागार०	८.३८
यद्गुणायोपकाराया	,,	५.१
यद्दत्तेऽत्र सदाभीति	गुणभू०	३.१३
यद्-द्रव्यार्जनशक्ति	श्रा०सा०	१.१३५
यद् दृश्यते न तत्तत्त्वं	कुन्द०	११.५६
यद्-यद्-दानं सतामिष्टं	अमित०	११.६०
यद्यन्मांसमिह प्रोक्तं	धर्मसं०	२.३८
यद्यप्यस्ति जलं प्रासु	,,	६.५४
यद्यप्यस्मिन्मनःक्षेत्रे	यशस्ति०	५९४
यद्-यद्-वस्तु निषिद्धं	व्रतो०	३०
यद्यवद्वस्तु विरुद्धं	,,	३५३
यद्यद्वस्तु समस्तं जगच्चये	व्रतो०	५२४
यद्यर्थे दर्शितेऽपि	यशस्ति०	२४४
यद्यस्पृश्यजनैर्मुक्तं	धर्मसं०	६.२३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

यद्यागतोऽत्र वै कोऽपि	प्रश्नो०	२४.६५
यद्यन्नयसि तं स्फार	श्रा० सा०	१.४५८
यद्येक एव जीवः स्यात्	व्रतो०	४०४
यद्येकमेकदा जीवं	अमित०	११.४
यद्येत एव देवाः स्युः	धर्मसं०	१.१८
यद्येवं तर्हि दिवा कर्तव्यो	पुरुषा०	१३१
यद्येवं भवति तदा	पुरुषा०	११३
यद् रागादिषु दोषेषु	यशस्ति०	२१३
यद्वद् गरुडः पक्षी	उमा०	२८०
यद्वत्तं तदमुत्र स्यादि	यशस्ति०	८००
यद्वत्पितास्ति गोधोऽत्र	धर्मसं०	२.३९
यद्वस्तु यद्देशकाल	सागार०	४.४१
यद्वाक्कायमनःकर्म	अमित०	३.३८
यद्वाहृष्टिचरानत्र	लाटी०	४.२०१
यद्वाऽऽदेशोपदेशौ स्तो	,,	३.१७६
यद्वा न ह्यात्मसामर्थ्यं	,,	३.३०३
यद्वा पञ्चपरमेष्ठिस्वरूपं	,,	४.११९
यद्वा बहिः क्रियाचारे	,,	३.२९५
यद्वा मोहात्प्रमादाद्वा	,,	३.१७९
यद्वा विद्यते नाना गन्ध	,,	६.२०
यद्वा व्यवहृते वाच्यं	,,	२.१३
यद्वा शुद्धोपलब्धार्थं	,,	३.२७७
यद्वा सिद्धं विनायासात्	,,	३.२७९
यद्वा स्वयं तदेवार्थात्	,,	३.१४९
यद्विकलः कुधीः प्राणी	धर्मोप०	३.१२
यद्वित्तोपार्जने चित्तं	व्रतो०	८९
यद्वेदरागयोग-मैथुन	पुरुषा०	१०७
यत्नः कार्यो वुधैर्ध्याने	अमित०	१५ ४
यत्नं कुर्वीत तत्पत्न्यां	धर्मसं०	२.१७६
यत्नं विधाय सद्धर्मे	प्रश्नो०	१७.७५
यत्नतोऽमी परित्याज्या	पुरु०शा०	४.१५२
यन्नाम्ना दर्शनाच्चापि	धर्मोप०	३.२३
यन्निराकरणं शास्त्रोद्दिष्टं	पुरु० शा०	५.२०
यन्त्रं चिन्तामणिर्नाम	सं० भाव०	५५
यत्परत्र करोतीह सखं	यशस्ति०	२७४
यः परधर्मं कथयति	व्रतो०	४२
यः परश्रियमादत्ते	प्रश्नो०	१४.१३
यत्परस्य प्रियं	यशस्ति०	३७०
यः परिग्रहवृद्ध्यानु	पुरु० शा०	४.११८
यः परिग्रहसंख्यं ना	धर्मसं०	३.७६
यः परिग्रहसंख्यानव्रतं	सागार०	४.६५
यः परित्यज्य सङ्गं न	प्रश्नो०	२३.१३४
यत्परीक्षां परित्यज्य	प्रश्नो०	११.९
यः पर्वण्युपवासं हि	प्रश्नो०	१९.२८
यः पश्यति चिदानन्दं	,,	३.१४
यः पश्यति पलं कुर्वन्	,,	२४.५९
यः पापपाशनाशाय	यशस्ति०	८३०
यत्पुनः कश्चिदिष्टार्थो	लाटी०	३.८७
यत्पुनर्द्रव्यचारित्रं	,,	३.२६७
यत्पुनश्चान्तरङ्गेऽस्मिन्	,,	२.२२
यः पुनाति निजाचारैः	धर्मसं०	५.४२
यत्पुरश्चरणं दीक्षा	महापु०	६८.१५८
यः प्राग्धर्मत्रयारूढः	धर्मसं०	५.९
यः प्राणिषु दयां धत्ते	व्रतो०	३७५
यत्प्रसादान्न मोमूर्ति	श्रा० सा०	१.७
यः प्रशंसापरो भूत्वा	अमित०	११.५६
यत्प्रसाध्यं च यद्दूरं	प्रश्नो०	२१.९७
यः प्रसिद्धैरभिज्ञानैः	हरिवं०	५८.३०
यत्प्रोक्तं मुनिभिः पूर्वं	प्रश्नो०	१.३८
यत्फलं ददतः पृथ्वीं	अमित०	११.२१
यद्-बिन्दुभक्षणात्पापं	पुरु० शा०	४.२३
यद्बिम्बं लक्षणैर्युक्तं	उमा० (उक्तं)	१०९
यद्बीजमल्पमपि सज्जन	यशस्ति०	७०९
यद् बुद्धतत्त्वो विधुनो	अमित०	१३.८६
यद्भवन्तीह तीर्थेशाः	पुरु० शा०	६.१४
यद्भवभ्रान्तिनिर्मुक्ति	यशस्ति०	४४५
यन्मन्यते भवानेवं	धर्म सं०	७.६०
यन्माक्षिकं जगन्निन्द्यं	धर्मोप०	३.३०
यन्मुक्त्यङ्गमहिंसैव	सागार०	४.११
यन्मुहूर्त्तमुगतः परं सदा	अमित०	५.३६
यन्मैथुनं स्मरोद्रेकात्	{ श्रा०सा० { उमा०	३.२१५ ३६७

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यन्म्लेच्छेष्वपि गर्ह्यं	अमित०	६.४५	यश्चिन्तयति साधूना	अमित०	१३.२४
यमनियमस्वाध्याय	यशस्ति०	८६५	यः श्रावकः भावपरो	व्रतो०	८६
यमपालौ ह्रदेऽहिंसन्	{ सागार०	८.८२	यः श्री जन्मपयोनिधि	यशस्ति०	४९६
	{ धर्मसं०	७.१५२	यष्टिका वस्त्रपात्रादि	प्रश्नो०	४.२३
यमश्च नियमश्चेति	यशस्ति०	७२९	यष्टिवज्जतुषान्धस्य	यशस्ति०	२४२
यमश्च नियमः प्रोक्तो	प्रश्नो०	७.११९	यष्ट्यादिभिर्मनुष्यस्त्री	प्रश्नो०	१२.१३६
यमस्तत्र यथा यावज्जीवनं	लाटी०	४.१५९	यः सकृद् भुज्यते भोगः	गुणभू०	३.३६
यमं वा नियमं कुर्यात्	प्रश्नो०	१७.१२२	यः सकृत्सेव्यते भावः	यशस्ति०	७२७
यमाख्य तलवर त्वं	,,	१२.१५५	यत्सत्याणुव्रतस्वामी	हरिवं०	५८.५६
यमार्धमाद्यमन्तं च	कुन्द०	८.२०४	यत्सत्यामृतबिन्दुशालि	श्रा०सा०	१.१३६
यमांशे गृहमृत्युः स्यात्	कुन्द०	८.८२	यत्सन्तः सर्वथा नित्यं	धर्मोप०	४.४०
यमोऽपि द्विविधो ज्ञेयः	लाटी०	४.१६०	यत्सन्देहविपर्यासा	गुणभू०	२.१
यया चतुष्कमापूर्णं	श्रा०सा०	१.२८४	यः सप्तकर्मोदयजात दुःखं	धर्मसं०	१.८२
यया खादन्त्यभक्ष्याणि	अमित०	९.९७	यः सप्तस्वेकमप्यत्र	पुरु०शा०	४.४१
यद्-रागद्वेषमोहादेः	हरिवं०	५८.२५	यः समः सर्वसत्त्वेषु	पूज्य०	४३
यद्-रागादिषु दोषेषु	श्रा०सा०	१.१७०	यः सर्वदा क्षुधां धृत्वा	अमित०	९.३०
यद्-रागादिदोषेषु	गुणभू०	१.४८	यः सर्वविरतिस्तेभ्यः	पुरु०शा०	४.५१
यवसक्तून् प्रदायाप	पुरु०शा०	४.१८१	यः सामान्येन साधूनां	अमित०	९.३२
यद्वक्तृत्व-कवित्वाभ्यां	,,	३.१२५	यत्सुखं तत्सुखाभासं	पद्म० पंच०	४७
यद्वद् गरुडः पक्षी पक्षी न तु	श्रा०सा०	३.८२	यत्सुखं त्रिभुवनाखिले	प्रश्नो०	२५.१२२
यद्वन्मलभृतं वस्त्रं	प्रश्नो०	१९.५८	यत्सुखं प्राप्यते लोकैः	,,	२०.१२३
यद्वस्तुबाह्यं गुणदोषः	लाटी० (उक्तं)	१.३	यः सुधीः स्वर्गमुक्त्यर्थं	,,	१३.४१
यद्वाक्यकेलयो देहि	श्रा०सा०	१.५	यः सुरादिषु निषेवततेऽधमो	अमित०	५.३९
यद्वाऽमुत्रेह यद्दुःखं	लाटी०	१.२१८	यः सुषेणचरो भौमो	धर्मसं०	२.१२९
यवैरङ्गुष्ठमध्यस्थैः	कुन्द०	५.६१	यत्सूनायोगतः पापं	,,	४.११०
यः शङ्करोऽपि नो जिह्म	श्रा०सा०	१.४०	यं सूरयो धर्मधिया	अमित०	१.५६
यः शमापक्तं वित्तं	अमित०	९.४३	यत्सूर्यबिम्बवज्जातं	गुणभू०	२.१७
यः शरीरात्मयोरैक्यं	,,	१५.८१	यः सेवाकृषिवाणिज्य	सं० भाव०	१००
यशःश्रीसुतमित्रादि	लाटी०	२.८३	यः संक्रान्तौ ग्रहणे वारे	अमित०	९.६०
यशांसि नश्यन्ति	अमित०	७.४०	यः संन्यासं समादाय	प्रश्नो०	२२.५१
यशोधरकवेः सूक्तं	भव्यध०	७.३	यः संयमं दुष्करमादधानो	अमित०	७.४५
यशोधरनृपो मातुः	पुरु०शा०	४.६५	यत्सामायिकं शीलं	सागार०	७.६
यशोयुक्ता महीनाथा	प्रश्नो०	११.७८	यः स्खलत्यल्पबोधानां	यशस्ति०	६२१
यश्च प्रसिद्धजैनत्व	धर्मसं०	६.१७८	यस्तत्त्वदेशनाद् दुःख	,,	५१
				,,	३०३
यश्चिखादति हि मांसमशेष	श्रा०सा०	३.२२	यत्स्यात्प्रमादयोगेन	गुणभू०	३.२४
यश्चिखादिषति सारघं	अमित०	५.३०	यत्स्वस्य नास्ति	सागार०	४.४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्तपोदानदेवार्चा	पुरु०शा०	३·१०६
यस्त्वाममितगुणं जिन	यशस्ति०	५३६
यस्त्वेकभिक्षानियमो	सागार०	७.४६
यस्त्वेकभिक्षो भुञ्जीत	धर्मसं०	५.७०
यस्त्वेताः द्विजसत्तमे	महापु०	३८.३१३
यस्त्वेतास्तत्त्वतो ज्ञात्वा	,,	३९.८०
यस्तु पश्यति रात्र्यन्ते (उक्तं)	यशस्ति०	३७
यस्तु लौल्यनमांसाशी	,,	२९४
यस्तु वक्त्यर्चनेऽप्येनः	पुरु०शा०	५.८४
यस्तु सञ्चिनुते वित्तं	,,	४.१२०
यस्त्यागेन जिगाय	गुणभू०	१.१५६
यस्मात् सकषायः	पुरुषा०	४७
यस्मात् सकषायः सत् (उक्तं)	श्रा०सा०	३.१५४
यस्माच्छिक्षाप्रधानानि	धर्म सं०	४.३२
यस्माज्जलं समानीतं	धर्मोप०	४.९३
यस्माद् गच्छन्ति गतिं	अमित०	६.३८
यस्मादभ्युदयः पुंसां	{ यशस्ति०	२
	{ श्रा०सा०	१.८०
यस्माद् विस्मापितोन्निद्र	,,	१.३८
यस्मान्नित्यानित्यः	अमित०	६.२८
यस्मिन् स्वर्णमहीधरो	श्रा०सा०	३.३६८
यस्य कार्यमशक्यं स्यात्	कुन्द०	८.३१७
यस्य तीर्थंकरस्येव	पद्मनं०प्र०	१
	श्रा०सा०प्र०	१
यस्य पाणिनखाशक्त	बुन्द०	८.१८५
यस्य गेहे जिनेन्द्रस्य	प्रश्नो०	२०.१८५
यस्य द्वन्द्वद्वयेऽप्यंसि	यशस्ति०	४११
यस्य पुण्योदयो जातस्तस्य	प्रश्नो०	२.८०
यस्य प्रभाकर्मकलङ्कमुक्तं	व्रतो०	५२३
यस्य यच्च फलं जातं	प्रश्नो०	४.६०
यस्य व्रतस्य मुक्तस्य	श्रा०सा०	३.३३२
यस्य स्थानं त्रिभुवनशिरः	यशस्ति०	५०१
यस्य स्व-परविभागो न	अमित०	१०.२४
यस्याक्षरज्ञानमथार्थं	व्रतो०	३३३
यस्यातिशल्यं हृदये	अमित०	७.१९
यस्यात्मनि श्रुते तत्त्वे	यशस्ति०	५७
यस्यात्ममनसो भिन्न	कुन्द०	११.२२
यस्याः केशांशुकस्पर्शाद्	कुन्द०	५.१२३
यः स्यादनादराभावः	पुरु०शा०	५.९
यस्यानवद्यवृत्तेः	अमित०	१०.२१
यस्याः पदद्वयमलंकृति	यशस्ति०	७०६
यस्यास्ति काङ्क्षितो	लाटी०	३.७४
यस्यां प्रदुह्यमानायां	अमित०	९.५४
यस्यां सक्ता जीवा	,,	९.५८
यस्याः शुद्धिर्नास्ति चित्ते	व्रतो०	१३
यस्याश्चित्ते नास्ति	,,	२८
यस्याहं मांसमद्यत्र	धर्मसं०	२.३५
यः स्वमांसस्य	,,	२.४८
यः खादयति ताम्बूलं	कुन्द०	२.३९
यस्येत्थं स्थेयस्य	अमित०	१०.१८
यस्येन्द्रियार्थतृष्णापि	यशस्ति०	६१०
यस्येदृग्युवती स्नेहवती	श्रा०सा०	१.२५२
यस्योत्सङ्गे शिरः स्वैरं	,,	१.४६४
यत्स्वास्थ्यकरणं सारा	पुरु०शा०	३.९६
या कथा श्रूयते मूढै	प्रश्नो०	१७.६५
या काचिज्जायते लक्ष्मी	,,	२०.१२८
या कश्चिद्विकथा राजा	,,	१७.६६
या काष्ठा व्यवहारकर्म	व्रतो०	९९
याः खादन्ति पलं पिषन्ति	लाटी०उक्तं०	१.९
यागादिकरणं विद्धि	प्रश्नो०	३.१११
या च ते द्वेषिषु द्वेषा	कुन्द०	५.१६६
या च पूजा जिनेन्द्राणां	महापु०	३८.२९
याचयित्वाभयं दानं	प्रश्नो०	८.४४
या तीर्थमुनिदेवानां	अमित०	४.९७
यातु नामेन्द्रियग्रामः	कुन्द०	११.५३
यात्राभिसूचिनी भेरी	श्रा०सा०	१.६०
यात्राभिःस्नपनैर्महोत्सवशतैः	देशव्र०	२३
या दालिवर्तनपदादिपदे	व्रतो०	३३
यादृशः क्रियते भावः	अमित०	१३.३३
यादृशं पात्रदानेन	प्रश्नो०	२०.४९
या दृष्ट्वा पतिमायान्तं	कुन्द०	५.१६२
या देवार्चनमाचरेद्	ओ०	१२
या देशविरतिस्तेभ्यः	पुरु० शा०	४.५२
या देहात्मैकदाबुद्धिः	अमित०	१५.८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या धर्मवनकुठारी	अमित०	९.५७	यावन्ति जिनबिम्बानि	प्रश्नो०	२०.१९२
यानभूषणमास्यानां	पूज्य०	३१	यावन्त्युपकरणानि	लाटी०	४.२५४
या नारायणदत्ताख्या	प्रश्नो०	२१.७५	यावन्न गतशङ्कोऽयं	श्रा० सा०	१.२२४
यानि तु पुनर्भवेयुः	पुरुषा०	७३	यावन्न सेव्या विषयाः	सागार०	२.७७
यानि पञ्चनमस्कार	अमित०	१५.३१	यावन्मायानिशालेशो	यशस्ति०	९०१
यानि पुनर्भवेयुः	(उक्तं) श्रा० सा०	३.६५	यावन्मिलत्येव करद्वयं मे	(उक्तं)श्रा०सा०	१.३१३
यानि यानि मनोज्ञानि	व्रतो०	३४७	यावत् प्रचलितो गेहं	व्रतो०	५३०
या निषिद्धाऽस्ति शास्त्रेषु	लाटी०	१.२०८	यावद्यस्यास्ति सामर्थ्यं	लाटी०	४.२६८
याने सिंहासने चैव	प्रश्नो०	१६.१३	यावद्विद्यासमाप्तिः स्यात्	महापु०	३८.११७
यान्ति शीलव्रतां पुंसां	पूज्य०	८१	यावत्सागरमेखला वसुमती	पद्मनं०पु०	२१
यान्त्यतथ्यगिरः सर्वे	पुरु० शा०	४.७३	यावत्साधारणं त्याज्यं	लाटी०	१.१०७
यान्यन्यान्यपि दुःखानि	अमित०	२.३७	यावातष्जय भूपति	व्रतो०	५३
यात्रा प्रतिष्ठा-पूजादि	व्रत०	२१	यावान् पापभरो यादृग्	लाटी०	१.१३३
या प्रतिष्ठां विधत्ते ना	प्रश्नो०	२०.१९०	या शक्यते न केनापि	कुन्द०	११.२४
या परं हृदये धत्ते	अमित०	१२.७४	या श्रेष्ठिभामिनी लक्ष्म्या	श्रा०सा०	१.६८७
या परस्त्रीषु दूतत्वं	व्रतो०	३५	यामद्वयस्य निशापक्ष	,,	३.२८४
या परुषान्नदासाद्याः	पूज्य०	९१	या सर्वतीर्थदेवानां	अमित०	९.५५
या पर्वणि क्षपति कङ्कशिखां	व्रतो०	३४	या सा सर्वजगत्सार	धर्मोप०	१.१८
या पुराऽऽसीज्जगन्निन्द्या	श्रा०सा०	१.७११	या सीताख्या महादेवी	प्रश्नो०	६.४२
यामन्तरेण सकलार्थं	यशस्ति०	७०७	या सुरेन्द्रपदप्राप्तिः	महापु०	३९.२०१
याममध्ये न भोक्तव्यं	लाटी०	४.२३५	या सेवा देवराजादि	पुरु० शा०	३.१३७
यामाहुःपक्षमासतुं	पुरु० शा०	४.१४२	याऽसौ दिवोऽवतीर्णस्य	महापु०	२९.२०४
या मूर्च्छा नामेदं विज्ञातव्य	पुरुषा०	१११	यास्पष्टताधिक विधिः	यशस्ति०	७१०
यामे धनश्रिया रात्रौ	प्रश्नो०	१२.१९५	या स्वयं मुञ्चति भर्तारं	अमित०	१२.८४
याम्यां दिशि चः प्रश्ने	कुन्द०	१.१५८	या स्वल्पवस्तुरचनापि	यशस्ति०	७०८
यायाद् व्योम्नि जले	यशस्ति०	६८८	यां स्वाध्यायः पापहानिं	अमित०	१३.८४
यावती भुक्तिराषाढे	कुन्द०	८.५२	या स्वीकरोति सर्वस्वं	अमित०	१२.६४
यावदक्षीणमोहस्य	लाटी०	३.९२	या हिनस्ति स्वकं कान्तं	,,	१२.८२
यावत् गृहीतसंन्यासः	सागार०	८.८२	या हिंसावासितावश्यं	श्रा० सा०	३.१४२
यावद्दर्शं कुचेतस्कः	अमित०	११.८३	युक्तं तन्नैव सति हिंस्यत्वात्	अमित०	६.३४
यावज्जीव त्यजेद्वस्तु	प्रश्नो०	१७.१२०	युक्तं परमर्षिलिङ्गेन	महापु०	४०.१५४
यावज्जीवं त्रसानां च	भव्यध०	४.२५१	युक्तं हि श्रद्धया साधु	यशस्ति०	७६१
यावज्जीवं त्रसानां हि	लाटी०	४.१६१	युक्ताचरणस्य सतो	पुरुषा०	४५
यावज्जीवमिति त्यक्त्वा	सागार०	२.१९	,,	उक्तं श्रा०सा०	३.१५२
यावत्तस्योपसर्गस्य	लाटी०	४.२२१	युक्तायुक्तविचारोऽपि	लाटी०	१.५३
यावत्तिष्ठति शासनं	अमित० प्रश०	९	युक्तिं जैनागमाद् बुद्ध्वा	पुरु० शा०	४.६३
यावत्त्यजति चाऽऽवासं	धर्मसं०	६.१२	युक्त्या गुरूक्त्या खाद्यं	,,	६.१०५

युक्त्याऽन्यया गुणाधिक्य	महापु०	४०.२०२
युगमात्रान्तरन्यस्त	कुन्द०	८.३४४
युग्ममुत्पद्यते सार्धं	अमित०	११.८२
युतपार्षिगर्भवे योगे	,,	८.४८
युधिष्ठिरादयो द्यूतयोगा	प्रश्नो०	१२.३६
युवती साङ्गरागात्र	कुन्द०	६.२८
युष्मत्साक्षि तता कृत्स्नं	महापु०	३८.२११
युष्मादृशामलाभे	,,	३९.७०
यूका पिपीलिकालिक्षा	अमित०	३.१४
यूकयानरथाश्वेभ	कुन्द०	५.६९
यूयं निस्तारका देव	महापु०	३९.६३
यैः कल्माष्टकं प्लुष्टं	अमित०	१२.१६
यैर्देवदर्शनमकारि—	व्रतो०	७३
यैर्नित्यं न विलोक्यते	देशव्र०	१८
यैर्निःशेषं चेतना मुक्तमुक्तं	अमित०	७.६३
यैरनङ्गानलस्तीव्रः	,,	१२.३१
यैर्मद्यमांसाङ्गिवधा—	,,	१.३६
यैर्युक्तान्यव्रतानीव	धर्मसं०	३.२
यैर्विजिता जगदीशा	अमित०	१०.२२
ये कर्णनासिकादीनां	प्रश्नो०	१२.१३७
ये कलत्राक्षसूत्रास्त	श्रा० सा०	१.९१
ये कुदेवा भवन्त्यत्र	प्रश्नो०	३.८०
ये कुर्वन्ति जिनालयं	,,	२०.२४३
ये कुर्वन्ति जिनेशिनां	,,	२०.२४५
ये कुर्वन्ति बुधाः सारां	,,	२०.१९१
ये कुर्वन्ति मुनौ जैने	प्रश्नो०	४.५२
ये कुर्वन्ति स्वयंभक्त्या	श्रा० सा०	१.७२६
ये कुर्वन्ति स्वयं हिंसां	प्रश्नो०	१२.१०१
ये कैश्चित्कवयो नयन्ति	श्रा० सा०	१.७६२
ये खादन्ति प्राणिवर्गं	अमिता०	५.७१
ये गुरुं नैव मन्यन्ते	पद्म० पंच०	१९
ये गृह्यन्ते पुद्गलाः	अमित०	३.५४
ये घ्नान्ति दुष्टा हि शठाः	प्रश्नो०	१२.१२६
ये च भव्या निशाङ्गारं	धर्मोप०	४.६५
ये चारयन्ते चरितं	अमित०	१.३
ये जिनदृष्टं शमयमसहितं	,,	१५.११३
ये जिनार्चां विधायोच्चैः	प्रश्नो०	२०.२१९
ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति	पद्म० पंच०	१५
ये जिनेन्द्रवचनानुसारिणो	अमित०	५.३७
ये जिह्वालम्पटा मूढा	प्रश्नो०	१७.११५
ये ज्ञानिनश्चारुचरित्र	अमित०	१.४३
येऽणुव्रतधरा धीरा	महापु०	३८.८
ये तत्पठन्ति सुधियः	प्रश्नो०	२४.१२७
ये तपो नैव कुर्वन्ति	,,	१९.५९
ये तारयन्ति भव्यानां	,,	२.५३
ये तीर्थेश्वरभूतिसार	,,	२४.१३५
ये तेषु भोजनं कृत्वा	,,	२१.७७
येऽत्र लोभग्रहग्रस्ताः	धर्मोप०	४.३३
येऽत्र सर्वाशिनो लोके	श्रा० सा०	३.७०
येन त्रिविधपात्रेभ्यो	धर्मोप०	४.१७८
ये ददते मृततृप्त्यै	अमित०	९.६१
ये दोषा जिनवादेन	प्रश्नो०	३.२२
ये द्विधाऽऽराधनोपेताः	धर्मसं०	७.१०४
ये द्वेष रागश्रमलोभमोह	अमित०	१.४०
ये धनाढ्यनरात्पात्रदानं	प्रश्नो०	२०.९९
येऽधमाः शक्तिमापन्नाः	,,	१८.१८९
ये धरन्ति धरणीं सह	अमित०	१४.११
येन केन च सम्पन्नं	अमित०	८.१०६
येन केन सह द्वेषो	व्रतो०	४८२
येन केनाप्युपायेन	प्रश्नो०	१४.१९
येन जीवा जडात्मापि	धर्मोप०	२.६
येन दत्तमपात्राय	प्रश्नो०	२०.१३३
येन धर्मेण जीवानां	,,	१.४०
येन पूजा परिप्राप्ता	,,	१२.१४२
येन भव्येन संदत्तं	धर्मोप०	४.१८३
येन येन प्रजायेत	श्रा० सा०	३.१४४
येन श्रीमज्जिनेशस्य	रत्नमा०	२७
येन स्वयं वीतकलङ्क	रत्नक०	१४९
येनाकरेण मुक्तात्मा	पूज्य०	७५
येनाक्षाणि विलीयन्ते	प्रश्नो०	१८.५३
येनाद्यकाते यतीनां	रत्नभा०	२५
ये यामरसमक्षेण	व्रतो०	५४

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येनाऽऽलस्यादिभिर्मार्गं	पुरु० शा०	३.९१
येनावयोरेकस्थानं	प्रश्नो०	१२.१९२
येनांशेन चरित्रं	पुरुषा०	२१४
	(उक्तं) लाटी०	३.२४
येनांशेन ज्ञानं	पुरुषा०	२१३
येनांशेन तु ज्ञानं	(उक्तं) लाटी०	३.२३
येनांशेन सुदृष्टि	पुरुषा०	२१२
ये निजकलत्रमात्रं	(उक्तं) लाटी०	३.२२
	पुरुषा०	११०
ये निन्द्यानपि निन्दति	पुरु० शा०	३.८५
येनौषधप्रदस्येह	अमित०	११.३३
येऽन्तरद्वीपजाः सन्ति	अमित०	११.८५
ये पठन्ति न सच्छास्त्रं	पद्म० पंच०	२०
ये पठन्ति श्रुतमङ्गपूर्वजं	प्रश्नो०	२४.१३८
ये पाठयन्ति गुणिनो	,,	२४.१२८
ये पालयन्ति निपुणा	,,	२४.१२५
ये पिबन्ति जना नीरं	,,	२२.१०८
ये पीडयन्ते परिचर्यमाणा	अमित०	७.२७
ये पुण्यद्रुमशस्त्रीणां	पुरु०शा०	३.१४५
ये पूजयन्ति सद्-भक्त्या	धर्मोप०	४.२१०
ये प्लावयन्ति पानीयैः	यशस्ति०	१२४
ये बुधा मुक्तिमापन्ना	प्रश्नो०	१९.५३
ये ब्रुवन्ति दिनरात्रिभोगयोः	अमित०	५.५३
ये भक्षयन्त्यात्मशरीर	श्रा०सा०	३.२७
ये भवन्ति विविधाः	अमित०	५.६
ये भव्या जिनधर्मकर्म	धर्मोप०	४.२००
ये भ्रष्टा दर्शनाच्च ते	प्रश्नो०	११.६३
ये मारयन्ति निस्त्रिंशाः	अमित०	१२.९६
ये मोक्षं प्रति नोद्यताः	देशव्र०	१७
ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या	सागार०	२.४४
ये योजयन्ते विषयोपभोगे	अमित०	१.२५
ये रात्रौ च प्रखादन्ति	प्रश्नो०	२२.१०७
ये रात्रौ सर्वदाहार	श्रा०सा०	३.१०८
ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं	उमा०	३२५
ये लोभं वर्जयन्त्येव	प्रश्नो०	२३.१४३
ये वदन्ति गृहस्थानां	सं०भाव०	१६५
ये वदन्ति न च स्थूल	प्रश्नो०	१३.४
ये वदन्ति सदा सत्यं	धर्मोप०	४.२५
ये वदन्ति स्वयं स्वस्य	प्रश्नो०	८.२५
ये वात्सल्यं न कुर्वन्ति	,,	९.६७
ये विचार्य पुनर्देवं	यशस्ति०	९५
ये विधाय गुरुदेव	अमित०	५.४८
ये विधूत्य सकलं दिनं	,,	५.५५
ये विमुच्य दिवाभुक्ति	श्रा०सा०	३.११५
ये विमुच्य निशि भोजनं	अमित०	५.४९
ये विशुद्धतरां वृत्ति	महापु०	३९.१४०
ये व्यवस्थितमहस्सु	अमित०	५.५१
ये शीतातपवातजात	श्रा०सा०	३.१७५
येषां कर्म भुजङ्गनिर्विधा	यशस्ति०	५०९
येषां कुले पलं नास्ति	धर्मोप०	३.२५
येषां कृते जनः कुर्याद्	पुरु०शा०	६.४५
येषां जिनोपदेशेन	पद्म०पंच०	३७
येषां तपःश्रीरनघा शरीरे	अमित०	१.४
येषां तृष्णा तिमिर	यशस्ति०	४८३
येषां द्विष्टः क्षयं याति	अमित०	१२.८
येषां ध्येयाशयकुवल	यशस्ति०	४८९
येषां पादपरामर्शैः	अमित०	१२.२६
येषां प्रसादेन मनःकरीन्द्रः	,,	१.४६
येषामङ्गे मलयजरसैः	यशस्ति०	४८७
येषामन्तस्तदमृत	,,	४८५
येषामाप्तप्रणीतेऽपि	श्रा०सा०	१.२१६
येषामालोक्य यच्छोभां	श्रा०सा०	१.१२६
येषामिन्द्राज्ञया यक्षः	अमित०	१२.६
येषां रागा न ते देवाः	व्रतो०	८३
येषां वचोह्रदे स्नाता	अमित०	१२.३०
येषां स्मरणमात्रेण	,,	१२.२४
ये सत्पञ्चनमस्कारान्न	प्रश्नो०	१८.७७
ये सदापि घटिकाद्वयं त्रिधा	अमित०	५.५६
ये सन्ति दोषा भुवनान्तराले	,,	७.२६
ये सन्ति साधनोऽन्ये च	,,	१३.२१
ये सिद्धा नमिता मुनीश्वरगणैः	प्रश्नो०	२४.१३६
ये सद्धर्ममहाब्धिमध्यविगता	,,	२४.१३९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्ष्यः सृष्ट्यधिकारोऽपि	महापु०	४०.१८७
रचयति यस्त्रिधा व्रतमिदं	अमित०	१२.१३९
रजकशिलासदृशीभिः	(उक्तं) लाटी०	१.१०
रजक्याः कथिते माला	प्रश्नो०	१५.१२०
रजःक्रीडावता साकं	धर्मसं०	७.७१
रजनी दिन रोयन्ते	पुरुषा०	१४९
रजन्यां जागरो रूक्षः	कुन्द०	५.२४०
रजन्यां भोजनं त्याज्यं	लाटी०	१.३८
रजन्याः पश्चिमे यामे	प्रश्नो०	२४.११३
रजोरस्कसमुत्पन्नाः	धर्मसं०	६.२७१
रज्जुभिः कृष्यमाणः स्याद्	यशस्ति०	६९७
रज्जुशुष्कं प्रसन्नस्य	कुन्द०	८.३२६
रज्ज्वादिभिः पशूनां यो	प्रश्नो०	१२.१३५
रतं मोहोदयात्पूर्वं	लाटी०	५.६६
रतान्ते श्रूयतेऽकस्माद्	कुन्द०	५.१४३
रतिकाले समालोक्य	प्रश्नो०	२१.२४
रतिरूपा तु या चेष्टा	लाटी० (उक्तं)	५.४७
रत्नचञ्चलकर्पूरभवैः	उमा०	१६८
रत्नत्रयपरिप्राप्तिः	पद्म० पंच०	५५
रत्नत्रयपवित्रत्वाद्	धर्मसं०	६.२२७
रत्नत्रयपवित्राणां	धर्मसं०	६.६९
	,,	१.४७
रत्नत्रयपुरस्काराः	यशस्ति०	४५०
रत्नत्रयभयस्फार	श्रा० सा०	१.५२
रत्नत्रयमिह हेतु	पुरुषा०	२२०
रत्नत्रयस्य शरणं	महापु०	४०.२९
रत्नत्रयस्य सत्खानिः	प्रश्नो०	१२.७०
रत्नत्रयात्मके मार्गे	पद्म०पंच०	३
रत्नत्रयादिभावेन	प्रश्नो०	२६६
रत्नत्रयाश्रयः कार्यः	पद्म० पंच०	२८
रत्नत्रयोज्झितो देही	सं०भाव०	७६
रत्नाम्बुभिः कृशकृशानुभि	यशस्ति०	४९९
रत्नं रत्नखनेः शशी	गुणभू०	३.१५५
रत्नरत्नाङ्गरत्नस्त्री	यशस्ति०	३५६
रत्नानि याचितान्येव	प्रश्नो०	१३.८८
रत्नानीव प्रसन्नेऽह्नि	कुन्द०	५.१९६
रत्नांशुच्छुरितं बिभ्रत्	महापु०	३८.२४३
रत्ननिर्मितहर्म्येषु	पूज्य०	५६
रत्नत्रयोच्छ्रयो भोक्तुः	सागार०	५.४८
रथाद्यारोहणं निन्द्यं	प्रश्नो०	२३.१०७
रथ्यायां पतितो मत्तः	धर्मसं०	२.२२
रन्ध्रैरिवाम्बुवितते	अमित०	१४.४१
रमणीयस्ततः कार्यः	धर्मसं०	६.७९
रम्या रामा मयेमाः काः	अमित०	११.१०६
रम्ये वत्साभिधे देशे	श्रा०सा०	१.३१६
रविदक्षिणतः कृत्वा	कुन्द०	३.६६
रविराशेः पुरो भौमे	कुन्द०	८.४५
रविरोहिण्यमावास्या	कुन्द०	८.२००
रविवारे द्विजोऽनन्तो	कुन्द०	८.१८९
रसजानां च बहूनां	पुरुषा०	६३
	(उक्तं)श्रा०सा०	३.१७
रसत्यागतनुक्लेश	कुन्द०	१०.२५
रसत्यागैकभक्तैक	यशस्ति०	७१९
रसप्रकृतिनिर्णाशे	व्रतो०	३१९
रसशेषे भवेज्जृम्भा	कुन्द०	३.२५
रसासृग्मांसमेदोस्थि	कुन्द०	१०.३६
रसेन्द्रं सेवमानोऽपि	लाटी०	३.२७८
रहोभ्याख्यानमेकान्त	हरिवं०	५८.५३
रहोऽज्ज्याख्यानमेकान्ते	लाटी०	५.१९
राकाशशाङ्कोज्ज्वल	अमित०	१०.२७
राक्षसामरमर्त्योक्त	कुन्द०	८.७३
रागजीववधापाय	सागार०	२.१४
रागद्वेषकषायबन्धविषय	व्रतो०	४३२
रागद्वेषत्यागान्निखिल	पुरुषा०	१४८
रागद्वेषधरे नित्यं	यशस्ति०	२१७
रागद्वेषनिवृत्तो हिंसादि	रत्नक०	४८
	(उक्तं)श्रा०सा०	३.४
रागद्वेषपरित्याग	श्रा०सा०	३.२९६
रागद्वेषपरित्यागाद्	उमा०	४१६
रागद्वेषपरित्यागो	व्रतो०	५१४
रागद्वेषक्रोधलोभ	अमित०	२.७८
रागद्वेषमदक्रोध	,,	९.४९
		१२.१०
		१५.७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रागद्वेषमदमत्सरशोक	अमित०	७.५५
रागद्वेषमदैर्मोहैः	भव्य ध०	४.२५७
रागद्वेषमहारम्भ	धर्मोप०	४.११६
रागद्वेषाकुलाः सर्वाः	उमा०	८१
रागद्वेषादयो दोषा	अमित०; श्रा०सा०; उमा०	१२.२०; १.७३९; ७५
रागद्वेषादिकं चापि	धर्मोप०	५०६
रागद्वेषादिकान्-शत्रून्	श्रा०सा०	१.२९५
रागद्वेषादिभिः क्षिप्तं	अमित०	१५.७१
रागद्वेषादिभिर्जति	श्रा०सा०; उमा०	१.७३८; ७४
रागद्वेषादिसंसक्तै	प्रश्नो०	३.१२६
रागद्वेषासंयमदुःख	श्रा०सा०; पुरुषा०	३.३३५; १७०
रागद्वेषौ विहायौ	व्रतो०	४७४
रागद्वेषौ समुत्सृज्य	महापु०	३८.१८२
रागपत्तो न सर्वज्ञः	अमित०	४.७२
रागवर्धनहेतूनां	श्रा०सा०; उमा०	३.२६८; ४०४
रागादिक्षयतारतम्य	सागार०	१.१६
रागादिज्ञानसन्तान	कुन्द०	८.२६५
रागादिदोषसंभूति	यशस्ति०	६१
रागादिदोषाकुल	अमित०	१.३९
रागादिदोषा न भवन्ति	,,	१.४१
रागाद्विवर्द्धनानां दुष्टकथाना	पुरुषा०	१४५
रागादिसंगसंन्यासाद्	प्रश्नो०	३.२७
रागादीनां गणौ यस्मात्	कुन्द०	८.२६०
रागाद्यशुद्धभावानां	लाटी०	२.९४
रागाद्युदयपरत्वा	पुरुषा०	१३०
रागाद् द्वेषान्ममत्वाद्वा	सागार०	८.३१
रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा	यशस्ति०	५५
रागादीनां क्षयादत्र	धर्मसं०	५.८६
रागादीनां विधात्रीणां	पुरु०शा०	४.१४९
रागादीनां समुत्पत्ता	हरिवं०	५८.४७
रागिता द्वेषिता मोहश्च	पुरु०शा०	३.२८
रागो द्वेषश्च मोहश्च	धर्मसं०	७.३१

रागो द्वेषो मोहो क्रोधो	अमित०	१०.१९
रागो निवार्यते येन	,,	१२.११७
रागोन्मादमदप्रमादमदन	श्रा०सा०	१.४४५
रागो विषूद्यते येन	अमित०	९.८१
राजगृहसमीपे पलाशकूटं	प्रश्नो०	८.४७
राजतं वा हि सौवर्णं	भव्यध०	६.३४३
राजते हृदये तेषां	अमित०	११.११८
राजद्भी रथसङ्घातैः	भव्यध०	१.४१
राजनीतिं परित्यज्य	प्रश्नो०	१४.३२
राजमन्त्रिसुतौ स्नेह	धर्मसं०	२.८५
राजर्षिः परमर्षिश्च	,,	६.२८४
राजविरुद्धातिक्रम	श्रा०सा०	३.२१४
राजवृत्तमिदं विद्धि	महापु०	३८.२७०
राजवृत्तिमिमां सम्यक्	,,	३८.२६१
राजादिकजनात्सर्वं	प्रश्नो०	२३.३३
राजादीनां भयाद्दत्तं	सं०भाव०	८६
राजादेशं समादाय	प्रश्नो०	८.४६
राजा निर्विचिकित्सो	धर्मसं०	१.५७
राजाऽभूच्च तमालोक्य	प्रश्नो०	२१.९३
राजा राजसदृशो वा	कुन्द०	५.५६
राजास्यां पुत्रवान् स्यां	कर्मसं०	१.४६
राजीवं राजते यस्मिन्	श्रा०सा०	१.१८
राजीवलोचनः श्रीमान्	उमा०	२९६
राज्यचिन्ताकुलो राजा	धर्मसं०	२.११९
राज्यं दत्वा स पश्चाय	प्रश्नो०	९.२८
राज्यं प्राज्यमिदं चैताः	श्रा०सा०	१.५१२
राज्याङ्गैः सुसमृद्धोऽपि	भव्यध०	१.३३
राज्यादि कार्यं मे तस्माद्	धर्मोप०	४.१६०
राज्ये निधाय पश्चाख्यं	श्रा०सा०	१.५६३
राज्ञः प्रतीच्छतो वान्तं	प्रश्नो०	७.९
राजाज्ञापितमात्मेत्थं	लाटी०	५.५२
राज्ञा ब्रूते हि मातङ्गं	प्रश्नो०	१२.१६६
राज्ञा मूढेन सत्सर्वं	,,	१०.५४
राज्ञा रुष्टेन चाकर्ण्य	,,	१२.१४९
राज्ञी कनकमालाभूत्	,,	१५.११२
राज्ञी नन्दीश्वरस्याथ	श्रा०सा०	१.६८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लम्भयन्त्युचितां शेषां	महापु०	३९.९७
लयस्थो दृश्यतेऽभ्यासी	कुन्द०	११.६८
लवणाब्धेस्तटं त्यक्त्वा	सं०भाव०	१३८
लशुन-सन-शस्त्र-लाक्षा	व्रतो०	४५१
लसद्भालं महीपालं	श्रा०सा०	१.४७
लाक्षामनःशिलानीली	,, उमा०	३.२७६ ४१२
लाक्षालेष्टक्षणक्षार		
लाखणश्रेष्ठिविख्यातः	भव्यध०	९.२५
लाटदेशेऽस्ति विख्याते	प्रश्नो०	१२.१८६
लाटदेशे मनोज्ञेऽस्मिन्	,,	१५.५९
लाभपूजा यशोऽर्थित्वैः	अमित०	८.८
लाभलोभभवद्वेषैः	पूज्य०	२२
लाभालाभभवद्वेषैः	श्रा० सा० उपा०	३.१६९ ३४६
लाभालाभे ततस्तुल्यो	धर्मसं०	५.६५
लाभालाभौ विबुद्धयेति	अमित०	१३.६०
लाभे-लाभे वने वासे	यशस्ति०	६१२
लाभेऽलाभे सुखे दुःखे	अमित०	१५.२६
लालाभिः कृमिकीटकैः	व्रतो०	६०
लालाविरूक्षता पाण्डु	कुन्द०	८.१७२
लावण्यवेलामबलां वरेषां	श्रा०सा०	३.२१८
लिखिला लेखयित्वा च	पूज्य०	७०
लिङ्गच्छेदं खरारोहं	अमित०	१२.८६
लिङ्गत्रयविनिर्मुक्तं	कुन्द०	११.६५
लिङ्गिन्या वेश्यया दास्या	कुन्द०	५.१७०
लीलया योषितो यान्ति	पूज्य०	९२
लीयते यत्र कुत्रापि	कुन्द०	११.४६
लीलया हि यशो येन	भव्यध०	५.४
लुञ्चिताः पिच्छिकाहस्ताः	कुन्द०	८.२४६
लेखकानां वाचकानां	धर्मोप० (प्रशम)	५.२१
लेखन-दर्शनमात्रेण	धर्मसं०	२.६५
लेशतोऽपि मनो यावदेते	यशस्ति०	६१७
लेशतोऽस्ति विशेषश्चेत्	लाटी०	३.२१८
लेश्याभिः कृष्णकापोत	कुन्द०	९५
लोकत्रयैकनेत्रं निरूप्य	पुरुषा०	३
लोकद्वयाविरोधीनि	सागार०	६.२५
लोकद्वयेऽपि सौख्यानि	अमित०	१३.१७
लोकप्रणिगुणाधारं	श्रा०सा०	१.७२
लोकयात्रानुरोधित्वात्	सागार०	४.४०
लोकवित्तकवित्वा	यशस्ति०	७८२
लोकःसर्वोऽपि सर्वत्र	पद्म०पंच०	५४
लोकसङ्ग्रहनिर्मुक्ते	श्रा०सा० उमा०	३.२९८ ४१९
लोकाकाशसमो जीवो	प्रश्नो०	२.१५
लोकाग्रवासिने शब्दात्	महापु०	४०.१०९
लोकाचारनिवृत्ता	अमित०	१०.२६
लोकाधीशाभ्यर्चनीया	,,	२.७९
लोकालोकपरिज्ञानाद्	प्रश्नो०	३.३१
लोकालोकविभक्तं	रत्नक०	४४
लोकालोकविलोकिनीयकलिलां	अमित०	३.८५
लोकासंख्यातमात्रास्ते	लाटी०	३.२५३
लोकालोकस्थितेः काल	धर्मोप०	२.११
लोकालोकं च जानाति	प्रश्नो०	३.१२
लोकालोकौ स्थितं व्याप्य	अमित०	३.३१
लोके जीवदया समस्त	धर्मोप०	४.१९
लोकेऽप्यनु गुणकलितः	श्रा०सा०	३.२१२
लोके शास्त्राभासे	पुरुषा०	२६
लोकोऽयं मे हि चिल्लोको	लाटी०	३.३८
लोकैर्गोत्रप्रसूतेरह	श्रा०सा०	१.१२१
लोक्यते दृश्यते यत्र	धर्मसं०	७९८
लोचं पिच्छं च सन्धत्ते	धर्मोप०	४.२४६
लोचः प्रकल्पते नित्यं	प्रश्नो०	२४.२७
लोभकीकसचिह्नानि	यशस्ति०	९०२
लोभं प्रदर्श्य दुर्बुद्धिः	प्रश्नो०	६.२२
लोभमोहभयद्वेषैः	वराङ्ग०	१५.७
लोभमोहभवमत्सरहीनो	अमित०	१०.५९
लोभाकृष्टो व्रजेन्नैव	प्रश्नो०	१६.३६
लोभादङ्गी भ्रमेद्देशान्	,,	१६.३५
लोभादादघे पशूनां यः	,,	१२.१३८
लोभाविष्टमनुष्याणां	,,	१६.३७
लोभाविष्टो न जानाति	,,	१६.३४
लोलाख्योऽत्र द्विजवरो	उमा०	२९५
लोष्ठहेमादिद्रव्येषु	प्रश्नो०	१८.२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोहं लाक्षं विषं शस्त्रं भव्यध० १.१०४
लोहं लाक्षा नीली अमित० ६.८३
लौल्यत्यागात्तपो यशस्ति० ०३

व

वंशे जातं स्वजातीयं भव्यध० १.१०६
वक्तव्यं नात्र केनापि श्रा०सा० १.५३६
वक्ता नैव सदाशिवो यशस्ति० ७८
वक्ताऽवक्ता सुवक्ता प्रश्नो० २१.१६४
वक्रनासातिदुःखाय कुन्द० १.१४०
वक्षो वक्त्रं ललाटं च कुन्द० ५.१२
वक्ष्ये तन्मोक्षहेतुत्वे पुरु०शा० ५.३३
वचनं परपीडायां पद्म०च० १४.९
वचनं वदतः पथ्यं अमित० १३.२८
वचनं हितं मितं पूज्यं गुणभू० ३.९०
वचनमनःकायानां पुरुषा० १९१
वचनस्यापि सन्देहो श्रा०सा० १.३५८
वच्म्यहं लक्षणं तस्य लाटी० ४.१४६
वञ्चनारम्भहिंसानामुपदेशा यशस्ति० ४२४
वचसा जपितुं मन्त्रं प्रश्नो० २२.३५
वचसाऽनृतेनं जन्तोः अमित० ६.५८
वचसा वा मनसा वा यशस्ति० ५७०
वचसा वपुषा मनसा अमित० ६.४४
वचस्तस्य समाकर्ण्य प्रश्नो० १०.४९
वचांसि तापहारीणि अमित० १२.४
वचोधर्माश्रितं वाचां लाटी० ४.२२७
वचोविग्रहसङ्कोचो अमित० १२.१२
वचोव्यापारतो दोषा ,, १२.१०४
वज्रकाया महाधैर्या प्रश्नो० २०.७५
वज्रजङ्घो नृपो दत्वा ,, २१.५०
वज्रनामकमाकण्ठ कुन्द० १.४५
वज्रपातायितं वाक्यैः श्रा०सा० १.१०
वज्रवृषभनाराचनाम्ना प्रश्नो० ३.५८
वज्रादिचिह्नसंयुक्तौ श्रा०सा० १.६५०
वटबीजं यथाकाले प्रश्नो० १८.९३
वटबीजं यथा स्तोकं ,, २०.१४६
वटुः पीनोऽह्नि नाश्नाति कुन्द० ८.२९८
वटादिपञ्चकं चापि धर्मोप० ३.३३
वणिक्पतिरपि प्रातः श्रा०सा० १.१८६
वणिक् स्याद्धनपालोऽत्र प्रश्नो० १२.१८७
वत्सदेशे च कौशाम्वी प्रश्नो० १४.४३
वदत्येवं स लोकानां लाटी० ५.२४
वदनं जघनं यस्या अमित० १२.७३
वदन्ति केचित्सुख ,, ७.५२
वदन्ति दूषणं दीना ,, १३.३०
वदन्ति फलमस्यैव प्रश्नो० ३.१०४
वदन्ति वादिनः सर्वे पुरु०शा० ४.५६
वधं निरपराधानां श्रा०सा० १.५५८
वधकारंभकादेशौ धर्मसं० ४.१०
वधबन्धच्छेदादे रत्नक० ७८
वधबन्धने संरोधत यशस्ति० ४२१
वधबन्धादिके द्वेषाद् प्रश्नो० १७.५७
वधबन्धाद्भवं दुःखं ,, २०.२१७
वधाक्रन्द दैन्यप्रलाप अमित० ३.४३
वधाङ्गच्छेद बन्धादि प्रश्नो० १२.४३
वधादयः कल्मषहेतवो अमित० १.३४
वधादसत्याच्चौर्याच्च चारित्र सा० १०
वधादि कुरुते जन्म पद्म० च० १४.१०
वधिर कुगति हेतुं प्रश्नो० १३.३९
वधूवित्तस्त्रियौ यशस्ति० ३७९
वधेन प्राणिनां मद्य कुन्द० ९.२
वधो बन्धोऽङ्गच्छेदस्वहृती धर्मसं० ४.९
वधो बन्धो धनभ्रंशः अमित० १२.८५
वध्यस्य वधको हेतुः ,, ४.९०
वनभवनक्षेत्राणां श्रा०सा० ३.२९२
वनदेशनदीग्राम प्रश्नो० १८.६
वनस्पत्यादि संछेद ,, २३.१०५
वने करी मदोन्मत्तः उमा० २०३
वने मृगार्भकस्येव धर्मसं० ७.९०
वनैः आराम-उद्यानैः भव्यध० १.१३
वन्दना-त्रितयं काले धर्मसं० ५.७७
वन्दनार्थं ततः साकं श्रा० सा० १.३८६
वन्दनार्थमय तेषां प्रश्नो० ९.१०
वन्दनां स्तोककालेन ,, १८.१४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वन्दारु त्रिदशाधीश	श्रा०सा०	१.३
वन्दारु सुन्दर सुरेन्द्रशिरः	,,	१.७३२
वन्दित्वा गुरुपादौ	धर्मसं०	५.६९
वन्दित्वा तं स सम्भाष्य	प्रश्नो०	८.१२
वन्दित्वा मुनिपादौ ते	,,	१०.६१
वन्दित्वा वन्द्यमर्हन्त	महापु०	३९.१९२
वपुरेव भवो जन्तोः	धर्मसं०	७.५१
वपुः शीलं कुलं वित्तं	कुन्द०	५.१०
वपुषो वचसो वापि	यशस्ति०	३२९
वपुः स्थिकं भवेन्नूनं	प्रश्नो०	२०.३५
वपुस्तपो बलं शीलं	गुणभू०	३.९८
वयं तत्रैव गच्छाम	श्रा०सा०	१.५३९
वयं त्वा शरणं प्राप्ता	धर्मसं०	६.२४२
वरं क्षिप्तान्धकूपादौ	प्रश्नो०	१५.७४
वरं गार्हस्थ्यमेवार्हं	,,	११.६१
वरं ज्वालाकुले	अमित०	२.३०
वरदानं पुत्रदानेच्छा	भव्यध०	१.६८
वरं दारिद्र्यमेवार्थ	प्रश्नो०	२०.१०४
वरदेशावधिज्ञै	गुणभू०	२.२५
वरः परावधिर्वेत्ति	,,	२.२६
वरं प्रत्यहमाहारं	प्रश्नो०	२४.७३
वरं प्राणपरित्यागो	प्रश्नो०	१२.२५
	,,	१२.१७३
वरप्राप्त्यर्थमाशावान्	उमा०	८१
वरं भिक्षाटने नैव	प्रश्नो०	१४.८
वरमन्त्रौषधाप्त्यर्थं	गुणभू०	१.२६
वरमालिङ्गिता क्रुद्धा	प्रश्नो०	१५.९
	,,	२३.२२
वरमालिङ्गिता वह्नि	श्रा०सा०	३.२३४
	उमा०	३७५
वरमेकोऽप्युपकृतो	सागार०	२.५३
वरं विषाशनं नृणां	प्रश्नो०	१७.११६
वरं सन्मरणं लोके	,,	२३.२७
वरं सम्यक्त्वमेकं च	,,	११.४५
वरं सद्‌व्रतिनां शास्त्र	,,	२४.३०
वरं सर्पारिचौराणां	,,	३.१५३
वरस्त्रीराजद्विष्ट	यशस्ति०	३६५
वरं हालाहलं दत्तं	प्रश्नो०	२०.१६०
वरं हालाहलं भुक्तं	प्रश्नो०	१४.९
	,,	१५.१९
	,,	२३.२१
वरं हालाहलं लोके	प्रश्नो०	२२.११०
वरं हुताशने पातो	,,	३.१२९
वराटकादौ संकल्प्य	धर्मसं०	६.८८
वरादिवाञ्छया लोभाद	धर्मोप०	१.३५
वरार्थं लोकयात्रार्थं	यशस्ति०	१४०
वरोपलिप्सयाशावान्	रत्नक०	२३
वर्जयेदर्हतः पृष्ठि	कुन्द०	८.८८
वर्णलाभस्ततोऽस्य	महापु०	३९.६१
वर्णलाभोऽयमुद्दिष्ट	,,	३९.७२
वर्णान्तःपातिनो नैते	,,	३९.१३१
वर्णैः कृतानि चित्रैः	पुरु०शा०	२२६
वर्णोत्तमत्वं यद्यस्य	महापु०	४०.१८३
वर्णोत्तमत्वं वर्णेषु	,,	४०.१८२
वर्णोत्तमनिभान् विघ्न	,,	३९.१३२
वर्णोत्तमो महीदेवः	,,	३८.१४७
वर्ण्यते भूतले केन	धर्मसं०	५.२९
वर्तते यत्र भो भव्या	धर्मोप०	२.१६
वर्तमाने स्वपित्राणां	प्रश्नो०	३.१२३
वर्तमानो मतस्त्रेधा	अमित०	१२.१२२
वर्तेत न जीववधे	सागार०	४.९
वर्धमान जिनाभावाद	रत्नभा०	५
वर्धमानो जिनेशानो	श्रा०सा०	१.५६
वर्धमानो महीपालः	प्रश्नो०	६.४
वर्धमानो हीयमानो	गुणभू०	२.१४
वर्यमध्यजघन्यानां	अमित०	९.१०७
वर्यमध्यजघन्यासु	,,	११.८६
वर्या भुञ्जन्त्येकशो	धर्मसं०	३.३२
वर्षाकाले न गमनं	व्रतो०	२४
वर्षाकालेऽन्यदा	श्रा०सा०	१.६२६
वल्भते दिननिशीथयोः	अमित०	५.४४
वल्लभां मालतीस्पर्शां	कुन्द०	६.१०
वसनैर्भूषणैर्हीनः	,,	१२.४५
वसन्तेऽभ्यधिकं क्रुद्धं	कुन्द०	६.२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसुदत्तात्मजः पूतः	उमा०	३६६
वसुदेवः पिता यस्य	यशस्ति०	६३
वसुदेवोऽभवद्भूपो	प्रश्नो०	५.५६
वसुन्धराभराधार	श्रा०सा०	१.४८
वसुराजादयोऽन्ये ये	प्रश्नो०	१३.१०८
वसेद् वेश्मनि निर्वाते	कुन्द०	६.१७
वसेन्मुनिवने नित्यं	सागार०	७.४७
वस्तुन्येव भवेद्भक्तिः	यशस्ति०	१४२
वस्तुसदपि स्वरूपात्	पुरु०शा०	९४
	श्रा.सा.(उक्तं)	३.१९२
वस्त्रनाणकपुंसादि	सागार०	३.२२
वस्त्रं नैव समादेयं	प्रश्नो०	२३.१२८
वस्त्रपात्राश्चयादीनि	अमित०	९.१०६
वस्त्रपूतं जलं पेयं	व्रत सा०	९
	रत्न मा०	२०
वस्त्रशुद्धि मनःशुद्धि	कुन्द०	१.८९
वस्त्राभरणयानादौ	धर्मसं०	४.२९
वस्त्राभरणसद्यान	प्रश्नो०	१७.९०
वस्त्रालङ्करणं यानं	धर्मोप०	४.१४४
वस्त्रेण स्थूलस्निग्धेन	प्रश्नो०	१२.१०९
वस्त्रेणातिसुपीनेन	धर्मसं०	३.३४
वह्निज्वालेव या	अमित०	१२.६५
वाक्कायमानसानां	रत्नक०	१०५
वाग्गुप्तेर्नास्त्यनृतं	पुरु०शा०	१५९
वाग्गुप्तेर्नास्त्यनृतं	श्रा०सा०	३.२८६
वाग्गुप्तो हितवाग्वृत्त्या	महापु०	३९.१९४
वाग्देवतावर इवाप	यशस्ति०	४९१
वाग्योगोऽपि ततोऽन्यत्र	लाटी०	५.१९०
वाग् वाणी भारती भाषा	भव्यध०	१.९१
वाग्विशुद्धापि दुष्टा	यशस्ति०	९७
वाचना पृच्छनाऽऽम्नाया	अमित०	१३.८१
	धर्म सं०	६.२१९
वाचंयमः पवित्राणां	अमित०	१२.११३
वाचंयमो विनीतात्मा	महापु०	३८.१६२
वाचस्पतिः सुरगुरुः	पुरु०शा०	५.७३
वाचामगोचरं नाथ	श्रा०सा०	१.६४
वाणारस्यां तमा	प्रश्नो०	२१.७६
वाणिज्यादिमहारम्भं	,,	२३.१०८
वाणिज्यार्थं न कर्त्तव्यो	लाटी०	४.१७९
वाणीपाणिविपञ्चश्ची	श्रा०सा०	१.४४
वाणीभिरमृतोद्गार	,,	१.५०८
वाणी मनोरमा तस्य	अमित०	१२.११४
वातकम्पितकर्कन्धु	श्रा०सा०	१.६५६
वातपित्तकफोत्थानैः	अमित०	११.३४
वातपित्तादिजं रोगं	प्रश्नो०	२२.८९
वाताकम्पितबदरी	,,	१०.२७
वातातपादि संस्पृष्टे	यशस्ति०	४३
वाताहतं घटीयन्त्र	पुरु०शा०	५.९५
वातोपचयरूक्षाभ्यां	कुन्द०	५.२४४
वात्सल्यं नाम दासत्वं	लाटी०	३.३०१
वात्सल्यासक्तचित्तो	अमित०	९.१०९
वादस्थाने निशिध्यानं	श्रा०सा०	१.५५०
वादौ जल्पो वितण्डा च	कुन्द०	८.२७८
वाद्यमानेषु वाद्येषु	श्रा०सा०	१.७२९
वाद्यादि शब्दमाल्यादि	सागार०	६.८
वापकालं विजानाति	कुन्द०	२.४८
वापीकूपतडागादि	प्रश्नो०	१७.४५
	,,	२०.२३४
	उमा०	४१३
वामदक्षिणमार्गस्थो	यशस्ति०	८७
वामनः पामनः कोपनो	अमित०	७.३२
वामभावं पुनर्वामे	कुन्द०	५.२८
वामभ्रुवो ध्रुवं पुत्रं	श्रा०सा०	३.२३७
	उमा०	३७८
वामायामपि नासायां	कुन्द०	८.१६३
वामो दक्षिणजङ्घोर्वो	कुन्द०	१.१२२
वायव्यां दिशि ह-प्रश्ने	कुन्द०	१.१६३
वायुना यत्र चाल्यन्ते	श्रा०सा०	१.४६५
वायोर्वह्नेरपां पृथ्व्या	कुन्द०	१.३१
वारस्तिथि-भ-दिग्देशा	कुन्द०	८.१४४
वारा नवीनवस्त्रस्य	कुन्द०	२.२२
वारि प्रात्मीयवर्णादि	प्रश्नो०	२२.७०
वारिमन्त्रव्रतस्नातः	धर्म सं०	६.१४८
वारिषेणमथायान्तं	श्रा०सा०	१.५०५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वारिषेणः सुतस्तस्य	श्रा०सा०	१.४५०
वारिषेणस्तयोर्जातः	प्रश्नो०	८.३०
वारिषेणो गृहं नेतुं	,,	८.४५
वारिषेणोऽति विरज्य	,,	८.२८
वारिषेणोऽपि यत्रेस्थं	श्रा०सा०	१.४६६
वारिषेणो मुनीन्द्रस्तु	प्रश्नो०	८.६९
वारुणं पश्चिमे भागे	कुन्द०	८.१९८
वारुणीनिहितचेतसोऽखिलाः	अमित०	५.७
वारुणीरसनिरासित	श्रा०सा०	३.८
वारेष्वकीर्ति भौमानां	कुन्द०	८.३३
वारैकदानयोगेन	प्रश्नो०	२०.५२
वार्ता निष्ठीवतं श्लेष्मो	व्रतो०	३१
वार्ता विशुद्धवृत्त्या	महापु०	३८.३५
वार्ताहास्यं तथा शीघ्रं	भव्यध०	५.२७९
वार्धारा-रजसः शमाय	सागार०	२.३०
वार्धिनद्यटवीभूध्रमर्यादा	धर्मसं०	७.४
वाष्पकासा सुरश्वास	व्रतो०	४६२
वापीकूपतडागादि	श्रा०सा०	३.२७६
वासना यदि जानाति	व्रतो०	४०८
वासरमयनं पक्षं	श्रा०सा०	३.२९३
वासरस्य मुखे चान्ते	,,	३.११३
	उमा०	३२७
वासधाख्योऽमरो	प्रश्नो०	७.५
वासाधरस्याद्भुतभाग्य	पद्म न०प०	९
वासाधरहरिराजौ	,, ,,	८
वासाधारेण सुधिया	,, ,,	१०
वासितो व्रतिनां पूतैः	अमित०	९.१५
वासुकी सोमवारे तु	कुन्द०	८.१९०
वासुपूज्यं जिनं वन्दे	प्रश्नो०	१२.१
वासुपूज्याय नम	सागार०	८.७५
वासोमूढादिकावास	धर्मसं०	४.१०७
वास्तुक्षेत्रधनं धान्यं	वराङ्ग०	१५.१०
वास्तुक्षेत्रं धान्यं	अमित०	६.७३
वास्तुक्षेत्रादि युग्मानां	धर्मसं०	३.७९
वास्तुक्षेत्राष्टापदहिरण्य	पुरु०शा०	१८७
वास्तुक्षेत्रे योगाद्	सागार०	४.६४
वास्तु वस्त्रादिस्तमान्यं	लाटी०	५.१००
वास्तोर्वक्षसि शीर्षे च	कुन्द०	८.८५
विकथाक्षकषायाणां	यशस्ति०	३०४
विकथाचारिणां याति	प्रश्नो०	२४.९३
विकथादिकरं सर्वं	,,	१३.१९
विकलत्रयमासाद्य	व्रतो०	१७७
विकलो ब्रह्मचर्येण	प्रश्नो०	२३.३१
विकल्पविरहादात्म	कुन्द०	११.५०
विकल्पे स द्वितीयेऽपि	अमित०	४.१९
विकारवति नाग्न्यं न	उमा०	४८
विकारवति युक्तं स्याद्	श्रा०सा०	१.३१०
विकारे विदुषां द्वेषो	यशस्ति०	१३१
विकीर्णाचिः सशब्दश्च	कुन्द०	५.४
विकोपो निर्मदोऽमायो	पुरु०शा०	३.३१
विकृतः सम्पदप्राप्त्या	कुन्द०	७.४३२
विक्षम्भण-कृतोद्वाह	कुन्द०	२.९५
विक्षेपाक्षेपसंमोह	यशस्ति०	७०५
विक्रियाक्षीणऋद्धीशो	धर्म सं०	६.२८५
विक्रियालब्धिसद्भाव	श्रा०सा०	१.५८७
विक्रीणीयात्र निपुणो	पुरु०शा०	४.१५५
विक्रेता बदरादीनां	पद्म० च०	१४.१६
विख्याताद् राक्षसाश्चैव	भव्यध०	१.१२३
विख्याता रेवती राज्ञी	प्रश्नो०	७.१८
विख्यातो नीतिमार्गोऽयं	लाटी०	१.२०४
विख्यातो यो भवेदत्र	प्रश्नो०	१२.१४४
विख्यातोऽस्ति समस्तलोक	गुणभू०	३.१५१
विगतसकलदोषं	प्रश्नो०	३.१५६
विगमोऽनर्थदण्डेभ्यो	पद्म०च०	१४.१९
विगलितकलिलेन	अमित०	१४.८०
विगलितदर्शनमोहैः	पुरु०शा०	३७
विग्रहं क्रमिनिकाय	अमित०	१५.९०
विग्रहा गदभुजङ्गमालया	,,	१४.२
विघ्नैः परः शतैर्भिन्नं	श्रा०सा०	१.१५९
विचार्य सर्वमैतिह्य	यशस्ति०	४५३
विचिन्त्य त्वमनुप्रेक्षा	प्रश्नो०	१८.४९
विचिन्त्येति महीपाल	श्रा०सा०	१.७१६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचित्रदेहाकृतिवर्णं	अमित०	७.५९
विचित्ररत्ननिर्माण	,,	११.५१
विचित्रातिशयाधार	,,	१५.५२
विचेतनामन भूतानि	,,	४.८४
विजयं वैजयन्ताख्यं	भव्यध०	३.२२५
विजयः स्यादरिध्वंसात्	लाटी०	४.४९
विजयामेत्यथार्हन्त्य	महापु०	४०.१०९
विजयार्धशिखर्यद्रि	सं० भाव०	१४५
विजानत् सर्वदा सम्यक्	कुन्द०	८.१३०
विजितनाकिनिकाय	अमित०प्रश०	५
विजितेन्द्रियसच्चौरान्	प्रश्नो०	३.१३५
विजृम्भज्वलनज्वाला	पुरु०शा०	३.१४६
विरक्तिः सामये काये	,,	३.१३३
विज्ञात तच्चरिमासौ	श्रा०सा०	१.२७३
विज्ञातनिःशेषपदार्थं	अमित०	१३.८५
विज्ञानं जातिमैश्वर्यं	भव्यध०	१.६३
विज्ञानप्रमुखाः सन्ति	यशस्ति०	५४८
विज्ञाय ज्ञातचित्तस्य	श्रा०सा०	१.२२८
विज्ञायेति महादोषं	अमित०	१२.६२
विज्ञायेति महाप्राज्ञः	,,	१३.२६
विज्ञायेति समाराध्यो	गुणभू०	३.१४९
विण्मूत्र श्लोष्यखिल्यादि	धर्मसं०	६.८
वितथवचनलीला	श्रा०सा०	३.१७६
वितनुते वसरो	प्रश्नो०	२१.१९५
वितनोति दृशो रागं	अमित०	१२.६३
वितन्वती क्षुतं जृम्भां	कुन्द०	५.१४८
वितप्यमानस्तपसा	अमित०	३.६६
वितीर्यं यो दानमसंयदात्मने	,,	१०.५४
वितृष्णं क्षपकं कृत्वा	धर्म सं०	७.६५
वित्तो सत्यपि सन्तुष्टो	पुरु०शा०	४.१२४
विदग्धः पण्डितो मूर्खो	अमित०	१५.६५
विदध्याद्यः षट्कर्मोप	प्रश्नो०	१८.१४१
बिदन्नापि मुनोशास्तं	श्रा०सा०	१.४९४
विदिक्षु शशकर्णास्वा	सं०भाव०	१४०
विदिक्ष्वाद्यक्षरं न्यस्य	गुणभू०	३.१२८
विदीर्णं मोहशार्दूल	सागार०	७.२८
विदेहेपु स्थितिर्नित्या	धर्मसं०	६.२४४
विद्यते परलोकोऽपि	अमित०	४.२
विद्यते सर्वथा जीवः	,,	४.९
विद्यन्तेऽत्राप्यतीचाराः	लाटी०	१.११९
विद्यमानं धनं धिष्ण्ये	अमित०	९.२८
विद्यमानपदार्थानां	व्रतो०	३९५
विद्यमाने कषायेऽस्ति	अमित०	१५.७२
विद्ययार्पितया किन्तु	कुन्द०	८.१०७
विद्यातिगर्वितो योऽधी	प्रश्नो०	१८.११६
विद्यातेजः कीर्त्तितेजः	व्रतो०	५२०
विद्यादर्शनशक्तिः	रत्नक०	१३२
विद्यायां यदि वा मन्त्रे	कुन्द०	११.३९
विद्याधरैश्च या विद्या	पुरु०शा०	३.१२६
विद्यानवद्यविज्ञाय	श्रा०सा०	१.६१३
विद्यामन्त्रश्च सिध्यन्ति	सागार०	७.१८
विद्याभिर्द्रविणैः स्वेन	श्रा०सा०	१.५३१
विद्यावाणिज्यमषी	पुरु०शा०	१४२
विद्याविभूति रूपाद्या	यशस्ति०	२२४
विद्याकृतस्य संभूति	रत्नक०	३२
विद्वत्समूहार्चित	अमित०प्रश०	३
विद्वत्तास्नानमौनादि	श्रा०सा०	१.३४१
विद्वानपि परित्याज्यो	कुन्द०	२.७९
विद्वानस्मीति वाचालः	कुन्द०	८.४२०
विद्वान्सः कुशलाः सन्तो	भव्यध०	१.२२
विद्वेषिणोऽपि मित्रत्वं	गुणभू०	३.९६
विद्वेषेण क्रमेणैव	प्रश्नो०	२१.१३८
विधत्ते देहिनां हिंसां	,,	१२.९१
विधत्ते शयनं योऽत्र	,,	२४.२९
विधातव्यो दवीयस्य	धर्मसं०	७.२०
विधस्तु सरसं भोज्यं	श्रा०सा०	१.२८०
विध्यापितोऽनलो यद्वन्	प्रश्नो०	२३.३०
विधाय दिक्षु मर्यादां	पुरु०शा०	४.१३५
विधाय निश्चयं प्रोच्चैः	प्रश्नो०	३.१३२
विधाय वन्दनां सूरेः	अमित०	८.१०४
विधाय वलयं बाह्ये	,,	१५.४८
विधाय वश्यं चपलं	,,	१५.९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधाय सप्ताष्ट भवेषु	अमित०	११.१२४
विधाय साक्षिणं सूरि	,,	१२.१२८
विधाय सर्वेशचित्तं	प्रश्नो०	१५.११०
विधायालिङ्गनं तेन	,,	६.३६
विधायावश्यकं पूर्वं	प्रश्नो०	२४.१०३
विधायैवं जिनेशस्य	सं०भाव०	६०
विधिर्दातृगुणा दानभेदाः	धर्मोप०	४.१५४
विधिदेयविशेषाभ्यां	हरिवं०	५८.७२
विधिना दातृगुणवता	पुरु०शा०	१६७
विधिश्चेत्केवलशुद्धयै	यशस्ति०	२९३
विधिश्चेत्केवलशुद्धयै	,,	२९२
विधिं विधाय पञ्चम्यादीनां	धर्मसं०	६.१७१
विधीयते ध्यानमवेक्षमाणैः	अमित०	१५.१०९
विधीयते येन समस्तमिष्टं	,,	१३.९३
विधीयते सूरिवरेण	,,	१.५०
विधीयमानाः शमशील	,,	३.७४
विध्यापयति महात्मा	,,	६.७४
विधेयं सर्वदा दानं	पूज्यपा०	६७
विधेया प्राणिरक्षैव	पुरु०शा०	४.५५
विद्धं त्रसाश्रितं यावद्	लाटी०	१.१९
विद्धं रूढं गतस्वादं	पुरु०शा०	४.३४
विद्धान्नचलितस्वाद	उमा०	३१०
विद्धान्नं पुष्पशाकं च	व्रतसा०	७
विद्धि सत्योद्यमाप्तीयं	महापु०	३९.१२
विध्वस्तमोहनिद्रस्य	श्रा०सा०	१.३९९
विध्वस्तमोहपञ्चास्य	धर्मसं०	५.४५
विनयः कारणं मुक्ते	अमित०	१३.५५
विनयश्च यथायोग्य	पद्म०पंच०	२९
विनयः स्याद् वैयावृत्यं	गुणभू०	३.८२
विनश्यन्ति समस्तानि	अमित०	१३.४६
विनश्वरात्मा गुरुपङ्ककारी	,,	७.२८
विनयासक्तचित्तानां	,,	८.४९
विनयेन विना पुंसो	,,	१३.५६
विनयेन विहीनस्य	,,	१३.४५
विनयेन समं किञ्चिन्नास्ति	गुणभू०	३.९५
विनयेन समं मुक्त्या	व्रतो०	५०४
विनयो गीयते यत्र	प्रश्नो०	४.२१
विनयो विदुषा कार्यः	उमा०	१९५
विनयो वैयावृत्यं	पुरुषा०	१९९
विना कार्यं शठैर्लोके	प्रश्नो०	१७.७३
विना गुरुभ्यो गुणनीर	अमित०	१.४२
विनान्तरायं न स्तोकं	प्रश्नो०	२४.६४
विना न्यासं न पूज्यः	उमा०	१७४
विनाप्यनेहसो लब्धे	लाटी०	४.११
विना भोगोपभोगेभ्यः	अमित०	११.२४
विनायकादयो देवाः	प्रश्नो०	३.८५
विना यो दृष्टमृष्टाभ्यां	,,	१९.६९
विना विघातं न शरीर	श्रा०सा०	३.२५
विना विवेकेन यथा तपस्विना	अमित०	१०.५२
विनाश्यते चेत्सलिलेन	,,	१४.३८
विना सुपुत्रं कुत्र स्वं	सागार०	३.३१
विना सर्वज्ञदेवेन	अमित०	४.६६
विना स्वात्मानुभूतिं तु	लाटी०	२.६६
विनाहारैर्बलं नास्ति	सं०भा०	१२५
विनियोगस्तु सर्वासु	महापु०	३८.७५
विवेकं विना यच्च स्यात्	कुन्द०	१०.२९
विनीतस्यामला कीर्त्ति	अमित०	१३.५४
विनीतो धार्मिकः सेव्यः	,,	९.१२
विनेयवद्विनेतॄणामपि	सागार०	२.३९
विनोद्योतं यथा न स्यात्	गुणभू०	२.३५
विन्यस्यैदंयुगीनेषु	सागार०	२.६४
विपक्षे क्लेशराशीनां	यशस्ति०	५९५
विपन्नसृतपानीय	कुन्द०	३.४६
विपरीतमिदं ज्ञेयं	अमित०	६.५१
विपाकणायामुदितस्य	,,	१४.५८
विपुलर्जविबुद्धिभ्यां	गुणभू०	२.२९
विपुलाद्रिस्थितं वीरं	प्रश्नो०	२१.१५४
विप्रकीर्णार्थं वाक्याना	यशस्ति०	८७३
विप्रगणे सति भुक्ते	अमित०	९.६२
विप्रवेषं समादाय	प्रश्नो०	२१.२२
विबुधजनविनिन्दां	प्रश्नो०	२३.११९
विबुध्यपात्रं बहुधेति	अमित०	१०.३९
विबुध्येति महादोषं	,,	१२.९१
विभवश्च शरीरं च	कुन्द०	११.३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभिद्य कर्माष्टकशृङ्खला	अमित०	१.२
विभिद्य भूधरं दूरं	श्रा० भा०	१.५८६
विभीषण महाराजा	प्रश्नो०	५.५५
विभूषणानीव दधाति	अमित०	७.६८
विभूषितोऽह्वाय यया	,,	१.६
विभ्यतामङ्गिनां दुःखात्	धर्मसं०	६.१९४
विभ्रान्ता क्रियते बुद्धिः	अमित०	२.४
विमर्शपूर्वकं स्वास्थ्यं	कुन्द०	८.३०१
विमलगुणनिधानः	प्रश्नो०	१०.७१
विमलगुणगरिष्ठ	,,	८.२७
विमलं विमलं वन्दे	,,	१३.१
विमुक्तकङ्कणं पश्चाद्	महापु०	३८.१३३
विमुच्य जन्तोरुपयोगमञ्जसा	अमित०	१४.२९
विमुच्य यः पात्रमवद्य	,,	१०.५५
विमुच्य सन्तोषमपास्तबुद्धिः	,,	१३.९७
विमुच्यान्याः क्रियाः सर्वाः	कुन्द०	१.५६
विमोहयति या चित्तं	अमित०	१२.६६
वियोगो यत्र वृक्षेषु	श्रा०सा०	१.३५
विरक्ताः कामभोगेभ्यः	धर्मसं०	७.३
विरक्ताः कामभोगेषु	वराङ्ग०	१५.२४
विरलो यो भवेत्प्राज्ञः	धर्मसं०	५.२७
विरताविरताख्यः सः	लाटी०	४.१२६
विरताविरतस्तस्माद्	सं० भाव०	४
विरतिस्त्रसघातस्य	,,	३
विरतिः स्थूलवधादेः	सागार० धर्मसं०	४.५ ३.६
विरत्यासंयमेनापि	रत्नमा०	१०
विरलाङ्गुलिकौ स्थूलौ	कुन्द०	५.९७
विरहे हृष्यति व्याजाद्	कुन्द०	५.१५२
विरागः सर्ववित् सार्वः	महापु०	३९.१३
विरागिणा सर्वपदार्थं	अमित०	३.७३
विरुद्धकार्यकारित्वं	लाटी०	३.२५९
विलसद् ब्रह्मसूत्रेण	महापु०	३८.२४५
विलिख्य रदनां जिह्वां	कुन्द०	१.७५
विलीनाशयसम्बन्ध	यशस्ति०	६२८
विलोकमानाः स्वयमेव	अमित०	७.६१
विलोक्य षड्जीव	,,	७.७४
विलोक्यानिष्टकुष्टित्व	श्रा०सा०	३.१२५
विलोक्यानिष्टकुष्टित्व	उमा०	३३४
विवर्णं परुषं रूक्षं	कुन्द०	५.३८
विवर्णं विरसं विद्धं	यशस्ति० धर्मोप० (उक्त)	७४७ ४.२१
विवर्णेऽपि गलैर्वर्तिः	कुन्द०	८.३३७
विवर्तमानं जिननाथवर्त्मन	अमित०	३.७८
विवर्धमानाः यमसंयमादयः	,,	२.७२
विवाहविषयेऽसत्य	प्रश्नो०	१७.२९
विवाहस्तु भवेदस्य	महापु०	३९.५९
विवाहो वर्णलाभश्च	,,	३८.५७
विविक्तवसतिं श्रित्वा	श्रा०सा०	३.३११
विविक्ति वसति श्रित्वा	उमा०	४२६
विविक्तिः प्रासुकः सेव्यः	अमित०	८.४२
विविधं चेतन जातं	,,	१०.९
विविध दुःखकरं वैधर्मं	प्रश्नो०	१४.३६
विविधदोषविधायि	अमित०	१०.३७
विविधव्यजनत्यागा	महापु०	३९.१८२
विविधर्द्धिपदं चास्मा	,,	४०.४१
विविधैः सेवितं पात्रैः	भव्यध०	१.३५
विवद्धयर्थं मासान्नव	अमित०	७.६०
विवेकं वेदयेदुच्चैर्यः	यशस्ति०	८५२
विवेकबुद्धिहीनतां	पूज्यपा०	१६
विवेकं विना यच्च स्यात्	कुन्द०	१०.२९
विवेकस्यावकाशोऽस्ति	लाटी०	१.१०४
विवेकिना विशुद्धेन	धर्मसं०	७.५३
विवेकिनो विनीताश्च	उमा०	२३१
विवेकोऽक्षकषायाङ्ग	सागार०	८.४३
विवेको जन्यते येन	अमित०	९.१०३
विवेको न विना शास्त्रं	,,	९.१०५
विवेको हन्यते येन	,, प्रश्नो०	२.३८ ४.११
विवेच्य बहुधा धीरैः	श्रा०सा०	३.७३
विशद-गुणगरिष्ठं	प्रश्नो०	२.८६
विशद-चन्द्रकरद्युति	धर्मोप०	४.५०
विशाखा-भरणी-पुष्याः	कुन्द०	८.२५
विशिष्ट भोजनं दत्वा	प्रश्नो०	२१.२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशुद्धकुलगोत्रस्य	महापु०	३९.१५८
विशुद्धकुलजात्यादि	,,	३९.८४
विशुद्धमनसां पुंसां	यशस्ति०	१९०
विशुद्धयोः स्वभावेन	पद्मन० पु०	७
विशुद्धवस्तुधीदृष्टि	यशस्ति०	२२९
विशुद्धवृत्तपरतर	मदापु०	३९.१४२
विशुद्धशुद्धजीवादि	गुणभू०	२.१०
विशुद्धस्तेन वृत्तेन	महापु०	३९.७३
विशुद्धाकरसम्भूतो	,,	२९.२०
विशुद्धावृत्तिरस्यार्थं	,,	१.४३
विशुद्धा वृत्तिरेषैषां	,,	३८.४२
विशुद्धिरुभयस्यास्य	,,	३९.८६
विशुद्धिसुधयासिक्तः	सागार०	८.३४
विशुद्धेन्नान्तरात्मायं	यशस्ति०	७२५
विशेषज्ञानविधिना	कुन्द०	१.११२
विशेषविषयाः मन्त्राः	महापु०	४०.२१७
विशेषोऽन्यश्च सम्यक्त्वे	पुरु०शा०	३.५३
विशेषोऽस्ति मिथश्चाच	लाटी०	१.१९८
विशोध्याद्यात्फलं	गुणभू०	३.१७
विश्वतत्त्वादिसम्पूर्णं	प्रश्नो०	२०.२६
विश्वं पश्यति शुद्धात्मा	कुन्द०	११.१७
विश्वम्भरा जलच्छाया	अमित०	३.३६
विश्वश्लाध्यं कुलं धर्माद्	कुन्द०	१०.८
विश्वादमित्रोऽपि	लाटी०	३.३४
विश्वासघातका ये तु	भव्यध०	१.१३०
विश्वासो नैव कस्यापि	कुन्द०	८.३७२
विश्वेश्वरादयो ज्ञेया	महापु०	३९.२७
विश्वेश्वरी जगन्माता	,,	३८.२२५
विश्रम्भोक्ति पुमालम्भ	कुन्द०	५.१५४
विश्रम्य गुरुसब्रह्मचारि	सागार०	६.२६
विश्राणयति यो दानं	अमित०	११.५५
विश्राणयन् यतीनामुत्तम	,,	११.६९
विश्राणितमयान्नाय	,,	११.९१
विश्राण्य दानं कुधियो	,,	१०.६७
विषकण्टकशस्त्राग्नि	हरिवं०	५८.३७
विषदंशे द्विपञ्चाशत्	कुन्द०	८.२१९
विषदुष्टाशनास्वादात्	कुन्द०	३.८४
विषं भुक्तं वरं लोके	धर्मसं०	५.३३
विषभेदावबुध्यर्थं	कुन्द०	८.१८८
विषपाशास्त्रयन्त्राग्नि	पुरु०शा०	४.१४७
विषमः शस्यते दूतः	कुन्द०	८.१५८
विषयविषत्तोनुपेक्षा	रत्नक०	९०
विषयानजस्रं हेयान्	धर्मसं०	२.१६
विषयाशावशातीतो	रत्नक०	१०
विषयेन्द्रियबुद्धीनां	कुन्द०	८.१८९
विषयेषु न युञ्जीत	कुन्द	११.५१
विषयेषु सुखभ्रान्तिं	सागार०	२.६२
विषयेष्वनभिष्वङ्गे	महापु०	३८.१४९
विषवद्विषया मुसामापाते	यशस्ति०	३८४
विषवल्लीमिव हित्वा	अमित०	६.६६
विषं साध्यमिति ज्ञात	कुन्द०	८.१९९
विषसामर्थ्यवन्मन्त्रात्	यशस्ति०	७४
विषादः कलहो राहिः	अमित०	१२.५५
विषादविस्मयावेतौ	धर्मसं०	१.८
विषानदर्शनान्नेत्रे	कुन्द०	३.८६
विषार्त्तस्याङ्गिनः पूर्वं	कुन्द०	८.१४३
विषादो जननं निद्रा	श्रा०सा०	१.७७
विषादो जननं निद्रा	उमा०	८
विषादो द्वादशैर्वोपि	प्रश्नो०	२.४५
विषोदूखलयन्त्रासि	श्रा०सा०	३.२६७
	उमा०	४०३
विष्कुम्भं तत्र कुर्वीत	कुन्द०	३.६३
विष्टरे वीतरागेऽसौ	श्रा० सा०	१.५०७
विष्ठाभक्षणे लोला	प्रश्नो०	३.८७
विष्णुकुमारसंज्ञ	,,	९.४९
विष्णुर्ज्ञानिन सर्वार्थं	लाटी०	३.१३२
विष्णुब्रह्मादयो ज्ञेया	प्रश्नो०	३.८१
विष्णुर्मुनिगुरोस्ते	श्रा०सा०	१.६०९
बिष्णुः स एव स ब्रह्मा	उमा०	९
विष्णौ चक्रगदा ब्रूते	धर्म सं०	१.१६
विष्वग्जीवचिते लोके	सागार०	४.२३
विष्ण्वादिमुनिभिः	प्रश्नोत्त०	१.३४
विस्तरेण चतुर्धापि	पुरु०शा०	४.७९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विस्तरेण हृतं दैर्घ्यं	कुन्द०	८.५८
विस्तारेणाङ्गपूर्वादि	गुणभू०	२.६
विस्तरोऽङ्गादि विस्तीर्णं	,,	१.६१
विस्मृतं च स्थितं नष्टं	भ०यध०	४.२५८
विस्मृतं पतितं चापि	धर्मोप०	४.३०
विस्मृतं पतितं नष्टं	उमा०	३५७
	श्रा०सा०	३.१९७
विस्मृतन्यस्तसंख्यस्य	हरिवं०	५८.५४
विस्मृतिः क्षेत्र वृद्धिश्च	पुरु०शा०	४.१३९
	यशस्ति०	५३
विस्मयो जननं निद्रा	प्रश्नो०	३.२४
	पूज्यपा०	५
विहाय कलिलाशंका	अमित०	४.४
विहाय कल्पनां बालो	गुणभू०	३.८७
विहाय कुत्सितं पात्रं	पूज्य०	६४
विहाय वाक्यं जिनचन्द्र	अमित०	१३.९२
विहाय सर्वमारम्भ	,,	१२.१३०
विहाय हिमशीता ये	श्रा०सा०	१.६७
विहारस्तु प्रतीतार्थो	महापु०	३८.३०४
विहारस्योपसंहारः	,,	३८.३०६
विहिताऽम्बरा देव	श्रा०सा०	१.५३८
विहितैर्हव्यकव्यार्थं	पुरु०शा०	३.१५१
विह्वलः स जननीय	अमित०	५.३
वीज्यमानो जिनो देवैः	प्रश्नो०	३.७२
वीतरागमुखोद्गीर्णा	प्रश्नो०	१.८
वीतरागं सरागं च	अमित०	२.६५
वीतरागश्च सर्वज्ञो	,,	४.७०
वीतराग-सरागे द्वे	श्रा०सा०	१.५०६
वीतराग-सरागौ द्वौ	प्रश्नो०	८.६२
वीतरागान् परित्यक्त्वा	,,	३.९७
वीतरागोक्तधर्मेषु	लाटी०	४.१९६
वीतरागो गतद्वेषो	पुरु०शा०	५.६५
वीतरागोऽतिनिर्दोषः	प्रश्नो०	११.८
वीतरागो भवेद्देवो	,,	३.२
वीतरागोऽस्ति सर्वज्ञः	अमित०	४.५३
वीतोपलोपवपुषो न	यशस्ति०	४९७
वीरकर्म यथा तत्र	लाटी०	४.२२०
वीरचर्या दिनच्छाया	गुणभ०	३.८०

वीरचर्या न तस्यास्ति	संभा०	१०८
वृक्षादिच्छेदनं भूमि	हरिवं०	५८.३६
वृत्तयमानि रूपायो	यशस्ति०	२५३
वृत्तस्थानथतान	महापु०	४०.२२३
वृक्षाग्रे पर्वताग्रे च	कुन्द०	८.३६४
वृक्षाद् वृक्षान्तरं गच्छन्	कुन्द०	५.१४१
वृक्षे पत्रे फले पुष्पे	कुन्द०	८.१५
वृत्तान्त कथितं तेन	प्रश्नो०	१४.५१
वृत्तान्तं सर्वमाकर्ण्य	,,	१२.२०४
वृथा पर्यटनं लोके	,,	१७.७१
वृथाम्बुसेचनं भूमि	पुरुशा०	४.१५१
वृद्धत्वेऽपि जराग्रस्ते	प्रश्नो०	२२.३
वृद्धत्वे विषयासक्ताः	,,	२३.९३
वृद्ध-बाल-बलक्षीणैः	कुन्द०	५.२४२
वृद्धि यान्तिः गुणाः सर्वे	,,	२०.४४
वृद्धसेवा विधातव्या	उमा०	४७२
वृद्धैः प्रोक्तमतः सूत्रे	लाटी०	३.१३८
वृद्धौ च मातापितरौ	कुन्द०	१.८६
वृत्ताकं हि कलिंगं वा	प्रश्नो०	१७.१०४
वृषमन्नं यथा माषा	लाटी०	५.६८
वृषं सिंहं गजं चैव	कुन्द०	८.६१
वृष्टि-शीत-तप-क्षोभ	कुन्द०	२.७१
वेगान्न धारयेद्वात	कुन्द०	१.५२
वेणुमूलैरजाशृङ्गैः	यशस्ति०	८९७
वेदकस्य स्थितिर्गुर्वी	श्रा०सा०	१.१६१
वेदकाद्युपरि स्थानं	व्रतो०	४९१
वेदनागन्तुका बाधा	लाटी०	३.४८
वेदनां गतवतः स्वकर्मजा	अमित०	१४.२३
वेदनां तृणभवामपि	श्रा०सा०	३.१२८
वेदः पुराणं स्मृतयः	महापु०	३९.२०
वेदमार्गविदां नृणां	श्रा०सा०	१.५४०
वेदमार्गोद्भवो धर्मो	,,	१.१९१
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः	,,	१.६००
वेदा यज्ञाश्च शास्त्राणि	कुन्द०	११.७२
वेदाः शेकाः क्रियाश्चैव	प्रश्नो०	२.४६
वेद्यां प्रणीतमग्नीनां	महापु०	३८.१३०
वेश्यात्यागी त्यजेत्तौर्यं	धर्मसं०	२.१६८

२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेश्यादिवरनारीणां	प्रश्नो०	१५.३०
वेश्यावरस्त्री विधवा	व्रतो०	९६
वेश्यां मांसस्य पक्वाया	धर्मसं०	२.४०
वेश्यायाः षट्दत्तीं त्यक्त्वा	सं०भा०	१४३
वेश्यावक्त्रगतां निन्द्यां	अमित०	१२.७१
वेश्यासङ्गेन सर्वेऽपि	भव्यध०	१.१२४
वेषं बिना समभ्यस्त	धर्मसं०	६.१७
वैताढ्यदक्षिणश्रेण्यां	श्रा०सा०	१.२४९
वै धन्वन्तरि-विश्वानुलोमौ	प्रश्नो०	५.३
वैभाष्यं नैव कस्यापि	कुन्द०	८.३१८
वैयग्र्यं त्रिविधं त्यक्त्वा	गुणभू०	३.५६
वैयावृत्यकृतः किञ्चिद्	,,	३.९९
वैयावृत्यपरः प्राणी	अमित०	१६.६७
वैयावृत्तस्य भक्त्यादेः	धर्मसं०	४.१२३
वैरं द्वेषं च कालुष्यं	प्रश्नो०	२२.१३
वैराग्यकारणं यत्र	व्रतो०	४२९
वैराग्यं ज्ञानसम्पत्तिसङ्ग	यशस्ति०	६०२
वैराग्यं भावयन् गच्छेत्	प्रश्नो०	२४.४८
वैराग्यवासनावीत	श्रा०सा०	१.४०५
वैराग्यवासितं चित्तं	प्रश्नो०	२.६८
वैराग्यस्य परां काष्ठां	लाटी०	३.१९३
वैराग्यस्य परां भूमिं	अमित०	८.७३
वैराग्यभावना नित्यं	यशस्ति०	९०८
वैराग्याधिष्ठितं कृत्वा	प्रश्नो०	१५.२०
वैरायासाप्रत्ययविषाद	अमित०	६.५७
वैरिघात-पुरध्वंस	श्रा०सा०	३.२६६
वैरिघात पुरध्वंस	उमा०	४०२
वैरिभूमृच्छिरोन्यास	श्रा०सा०	१.५६२
वैरि-वेश्या-भुजङ्गेषु	कुन्द०	८.४०६
वैशाखे श्रावणे मार्गे	कुन्द०	८.५३
वैशेषिकमतं तावत्	कुन्द०	८.२८०
व्यक्तसम्यक्त्वसंयुक्तं	श्रा०सा०	३.३३१
व्यक्तुं वक्तुमपि प्रायो	,,	१.५४४
व्यज्यन्ते व्यञ्जकैर्वर्णाः	अमित०	४.६५
व्यञ्जकव्यतिरेकेण	,,	४.६४
व्यतीपातविनिष्क्रान्तं	प्रश्नो०	१७.२२
व्यतीपाते रवेर्वारे	कुन्द०	१.७२
व्यर्थादधिकनेपथ्यो	कुन्द०	८.४००
व्यन्तर्याऽत्रपया शुद्ध	धर्मसं०	७.१८८
व्यपनपति भवं दुरन्त	अमित०	१४.७६
व्यपरोपणं प्राणानां	लाटी०	४.१०३
व्यपरोपयति प्राणान्	पुरुषा०	१७८
व्यलीकभाषा कलिता	श्रा०सा०	३.१७४
व्यवसाये विधौ धर्मं	कुन्द०	२.१०८
व्यवसायोऽप्यसौ पुण्य	कुन्द०	२.१११
व्यवहार एव हि तथा	पुरुषा०	७
व्यवहारः कृत्रिमजः	अमित०	७.५
व्यवहारनपापेक्षा	महापु०	४०.९०
व्यवहाराभिधः कालो	प्रश्नो०	२.२७
व्यवहाराच्च सम्यक्त्वं	लाटी०	२.१२
व्यवहारेण सम्यक्त्वमिति	धर्मोप०	१.४३
व्यवहारेशिताऽन्वास्या	महापु०	४०.१७६
व्यबहारेशितां प्राहुः	,,	४०.१९२
व्यसनत्वं च दुःखित्वं	प्रश्नो०	२२.१०२
व्यसनप्रमादविषयाः	व्रतो०	५०७
व्यसनं स्यात्त त्रासक्तिः	लाटी०	१.१६४
व्यसनस्य फलं यस्य	भव्यध०	१.१४२
व्यसनानि प्रवर्ज्यानि	रत्नमा०	४१
व्यसनान्येव यः त्यक्तु	प्रश्नो०	१२.५६
व्यस्ताश्चैते समस्ता वा	लाटी०	२.५९
व्याख्यातो मृगयादोषः	,,	१.१६१
व्याख्यानं सहितं हास्यं	व्रतो०	४८३
व्याख्यानं स्तवनं स्तोत्रं	व्रतो०	४८७
व्याख्या पुस्तक दान	देशव्र०	१०
व्याख्याय दर्शनं पूर्वं	प्रश्नो०	१२.२
व्याघुटन्तं तमालोक्य	धर्मसं०	२.११८
व्याघ्रीव याऽऽमिषाशा	अमित०	६.७१
व्याघ्रेणाघ्रातकायस्य	पद्म०पंच०	४६
व्याघ्या प्रयच्छतो	अमित०	४.९१
व्याधयो विविध दुःखदायिनो	,,	५.६०
व्याधिग्रस्तमुनीन्द्राय	प्रश्नो०	२०.२५
व्याधितश्चाङ्गनाश	धर्मोप०	४.१७५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याधि वल्मीकिनीं वैश्यं	कुन्द०	१.१५४
व्याधिस्थानेषु तेषूच्चैः	लाटी०	३.५३
व्याध्याद्यपेक्षयाम्भोवा	सागार०	८.६५
व्यापकानां विशुद्धानां	अमित०	१२ १४
व्यापत्तिव्यपनोदः	रत्नक०	११२
व्यापारवैमनस्याद्	,,	१००
व्यापारिभिश्च विप्रैश्च	कुन्द०	२.६९
व्यापारैर्जायते हिंसा	धर्मसं०	६.१०
व्याप्नोत्येव ककुभ्-चक्रं	पुरु०शा०	६.३९
व्यायामधूम्रकवलग्रह	कुन्द०	६.३
व्युत्थानावस्थाया	पुरुषा०	४६
व्युत्थानावस्थायां	श्रा०सा०(उक्तं)	३.१५३
व्युत्पादयेत्तरां धर्मे	सागार०	३.२६
व्युत्सर्गस्थित एवोन्नोन्नमनं	प्रश्नो०	१८.१६४
व्युत्सर्गे कालमर्यादां	पुरु०शा०	५.२८
व्युत्सर्गेण स्थितो	प्रश्नो०	१८.१७१
व्युष्टिक्रियाश्रितं मन्त्र	महापु०	४०.१४३
व्युष्टिश्च केशवापश्च	,,	३८.५६
व्योमच्छायानरोत्सङ्गि	यशस्ति०	६६३
व्योममध्यागमकृत्रिम	अमित०	१४.६१
व्रजन्ती वाहिनी तत्र	भव्यध०	१.४३
व्रज साधिवरं कृत्यं	श्रा० सा०	१.४२१
व्रतचर्यामतो वक्ष्ये	महापु०	३८.१०९
व्रतं चानर्थदण्डस्य	लाटी०	५.१३५
व्रतचारित्रधर्मादि	प्रश्नो०	४.४८
व्रतचिह्नं भवेदस्य	महापु०	३९.९४
व्रतं चैकादशस्थानं	लाटी०	६.५२
व्रतं दशमस्थान	,,	६.४४
व्रतं धर्तुमसक्तायो	प्रश्नो०	१२.३०
व्रतमङ्गोऽथवा यत्र	धर्ममं०	४.३८
व्रतमतिथिसंविभागः	सागार०	५.४१
व्रतमस्पृश्यचाण्डाल	प्रश्नो०	१२.१७१
व्रतमर्हति कस्त्यक्तुं	श्रा० सा०	१.२४३
व्रतमेतत्सदा रक्षन्	धर्मसं०	४.१२५
व्रतमेतत्सुदुःसाध्य	,,	४.५८
व्रतयेत्खरकर्मात्त	सागार०	५.२१
व्रतशीलतपोदानं	वराङ्ग०	१५.४
व्रतशीलानि यान्येव	रत्नमा०	३१
व्रतसारमिदं शक्त्या	व्रतसा०	२२
व्रतसारः श्रोतव्यो	व्रतोद्यो०	५
व्रतसमितिगुप्तिलक्षण	{ श्रा०सा०	२.१०
	उमा०	२५६
व्रतसन्तोषजं त्यक्त्वा	प्रश्नो०	१६.८६
व्रतसम्यक्त्वं निर्मुक्तो	पूज्य०	४६
व्रतसिद्ध्यर्थमेवाह	महापु०	३९.६६
व्रतस्थानक्रियां कर्तुं	लाटी०	४.१७२
व्रतस्यास्य परं नाम	धर्मसं०	४.१२२
व्रतस्यास्य प्रभावेन	पुरु०शा०	४.४८
व्रतहीनो नरो नैव	प्रश्नो०	२३.१२९
व्रत्यते यदिहामुत्रा	सागार०	३.२४
व्रतादौ जातु संजातं	पुरु० शा०	६.८४
व्रतानि द्वादशैतानि	गुणभू०	३.५४
व्रतानां द्वादशं चात्र	लाटी०	६.३
व्रतानि पुण्याय भवन्ति	अमित०	७.१
व्रतानि रक्ष कोपादीञ्जय	धर्मसं०	७.८२
व्रतानि समितिः पञ्च	भव्यध०	२.१९२
व्रतान्यत्र जिघ्रक्षन्ति	पुरु० शा०	४.४५
व्रतान्यपि समाख्याय	प्रश्नो०	२२.२
व्रतान्यमूनि पञ्चैषां	पद्मच०	१४.४
व्रतान्यमून्यस्मिन्	धर्मसं०	३.८०
व्रतावतरणं चेदं	महापु०	३८.१२३
व्रतावतरणंस्यान्ते	,,	३९.६७
व्रतावतारण तस्य भूयो	,,	३९.५०
व्रताविष्करणं दीक्षा	,,	३९.३
व्रतिनां निन्दकं वाक्यं	अमित०	१३.३४
व्रतिनी क्षुल्लकीश्चापि	धर्मसं०	६.१८६
व्रते धर्मे विधातव्यो	श्रा० सा०	१.२४५

श

शकटे वा बलीवर्दे	प्रश्नो०	१७.३७
शक्तितो भक्तितोऽर्हन्तो	अमित०	१२.११
शक्तितो विरतो वापि	लाटी०	१.१००
शक्तिर्नो विद्यते येषां	कुन्द०	११.८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्त्यनुसारेण बुधैः	अमित०	६.३२
शक्यते न निराकर्तुं	,,	४.१०
शङ्का काङ्क्षा जुगुप्सा च	गुणभू०	१.२८
शङ्का कांक्षा निन्दा	अमित०	७.१६
शङ्का काङ्क्षा भवेत्पापा	प्रश्नो०	११.९८
शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा	श्रा०सा०	१.१६९
	धर्मसं०	१.७५
शङ्का काङ्क्षा विनिन्दान्य	यशस्ति०	१४६
शङ्का तथैव काङ्क्षा	पुरुषा०	१८२
शङ्कादिदोषरहितं	भव्यध०	१.६१
शङ्का भीः साध्वसं	लाटी०	३.५
शङ्खचक्रगदोपेतं	श्रा० सा०	१.३७९
शक्रचक्रादयोऽप्येते	कुन्द०	१०.३२
शक्रचक्रेशतीर्थेशपदादि	प्रश्नो०	२४.७१
शक्रत्वं चक्रवर्तित्वं	,,	२३.१४२
शक्रस्य निर्जिताराति	श्रा० सा०	१.४३०
शङ्खे मूर्ध्नि क्रमात्तिष्ठेत्	कुन्द०	८.२२६
शठैः पापादिमुक्तो यः	प्रश्नो०	१७.३२
शतमिच्छति निःस्वः प्राक्	पुरु० शा०	४.१२८
शतं सहस्रकं चापि लक्षं	धर्मोप०	४.५३
शतं सहस्रं लक्षं च	कुन्द०	५.६५
शतानि तत्र जायन्ते	कुन्द०	१.२७
शतानि पंच सार्धानि	सं० भाव०	१४१
शतावरी कुमारी च	श्रा० सा०	३.९४
	उमा०	३१४
शतारे च सहस्रारे	भव्यध०	३.२२८
शत्रवो बालका नार्यः	प्रश्नो०	१२.११२
शत्रुजिष्णुस्ततो	श्रा० सा०	१.५९८
शत्रु मित्र पितृ भ्रातृ	अमित०	१५.६१
शत्रूणां द्वेषभावेन	धर्मोप०	४.११५
शनिर्मीने गुरुः कर्के	कुन्द०	८.३८
शनिर्वार्द्रा चतुर्दश्योः	कुन्द०	८.२०३
शनैश्चरदिने काल	कुन्द०	८.२१५
शफरो मकरः शङ्खः	कुन्द०	५.६४
शब्दगन्धरसस्पर्श	भव्यध०	२.१८३
शब्दपारभागी भव	महापु०	४०.१५२
शब्दविद्यार्थशास्त्रादि	,,	३८.११९

शब्दादिपञ्चविषया	व्रतो०	४२०
शब्दानुपातनामापि	लाटी०	५.१३१
शब्दैतिह्यैर्न गोः शुद्धा	यशस्ति०	८१७
शमयमनियमव्रता	अमित०	१४.७९
शमदमयमजातं	प्रश्नो०	१८.१९३
शमः संवेगनिर्वेगौ	गुणभू०	१.४६
शमाग्निः समदोषश्च	कुन्द०	११.७७
शमिता दुष्टकषायः	अमित०	६०८
शमेन नीतिर्विनयेन	,,	१.१५
शमो दमो दया धर्मः	,,	९.९२
शम्भवं जिनमानम्य	प्रश्नो०	३.१
शमस्तपो दया धर्मः	अमित०	११.१५
शयनासनयोः काष्ठ	कुन्द०	५.७
शम्यादौ कुत्रचित्प्रीति	धर्मसं०	७.७२
शय्योपध्यालोचन्न	सागार०	८.४२
शय्योपवेशनस्थान	अमित०	१३.३८
शरणं पर्ययस्यास्त	लाटी०	३.५६
शरणोत्तममाङ्गस्यं	वराङ्ग०	१५.१५
शरदभ्रसमाकारं	अमित०	९.२०
शरावसम्पुटाधःस्थो	कुन्द०	१०.४०
शरीरजन्मना सैष	महापु०	३९.८८
शरीरजन्मसंस्कार	,,	३९.११९
शरीरतो बहिस्तस्य	अमित०	४.२६
शरीरभवभोगेभ्यो	लाटी०	४.२
शरीरमण्डनं शीलं	पूज्य०	१०३
शरीरमरणं स्वायुस्ते	महापु०	३९.१२२
शरीरं निजपुत्रस्य	प्रश्नो०	१४.५५
शरीरं योऽत्र तं वित्तं	कुन्द०	१०.३१
शरीरं सुखदुःखादि	लाटी०	३.३७
शरीरं सुन्दराकारं	प्रश्नो०	११.२१
शरीरं संयमाचारं	अमित०	९.१०२
शरीरस्पर्शनं योऽत्र	प्रश्नो०	१८.१७९
शरीरस्य त्रिभङ्गं यो	,,	१८.१३५
शरीराक्षायुरुच्छ्वासाः	अमित०	३.१८
शरीरादिममत्वस्य	लाटी०	६.८६
शरीरावयवत्वेऽपि	यशस्ति०	२९१
	श्रा० सा०	३.८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीरावयवत्वेन मांसे	उमा०	२८५
शरीरेन्द्रियमायुष्यं	भव्यध०	२.१५१
शर्करादिपरिक्षेपं	लाटी०	१.१५९
शलाकयेवाप्तगिरा	सागार०	१.१०
शलाकां हेमजां क्षिप्य	प्रश्नो०	१४.५८
शल्यत्रयं गारवदण्डलेश्या	भव्यध०	२.१९८
शल्यं लोहादि दंष्ट्राहि	कुन्द०	८.१३३
शशाङ्कनिर्मला कीर्त्तिः	गुणभू०	३.९४
शशाङ्कामलसम्यक्त्वो	अमित०	१३.१
शस्त्रपाशविषालाक्षी	धर्मसं०	४.११
शस्त्रहस्ता महाक्रूरा	प्रश्नो०	३.८६
शस्त्रोपजीविवर्ग्यश्चेद्	महापु०	३८.१२५
शस्याधिष्ठानक्षेत्रेषु	लाटी०	१.१५२
शाकपत्राणि सर्वाणि	,,	१.३५
शाकबीजफलाम्बूनि	धर्मसं०	५.१५
शाकाः साधारणाः केचित्	लाटी०	१.९८
शाकिनीग्रहदुर्व्याधि	प्रश्नो०	१८.८१
शाकिनीग्रहदुष्टारि	,,	२०.२१६
शाकिनीभिर्गृहीतस्य	कुन्द०	८.३४०
शाक्यनास्तिकयागज्ञ	यशस्ति०	७७२
शाखादीनि विना मूलं	पुरु०शा०	४.२
शाठ्यं गर्वमवज्ञानं	यशस्ति०	७५२
शान्तक्षीणौ योग्ययोगौ	अमित०	३.२८
शान्ताद्यष्ट कषायस्य	सागार०	४.७
शान्ताः शुद्धासनाः सौम्यदृशः	पुरु.शा.	५.८९
शान्तां स्थिरासनां	धर्मसं०	६.३९
शान्तिकं तत्र कर्त्तव्यं	कुन्द०	५.२२७
शान्तिनाथं नमस्यामि	प्रश्नो०	१६.१
शान्तिमिच्छति तृष्णायाः	पुरु०शा०	४.१२३
शान्ते शुद्धे सदाचारे	व्रतो०	८८
शान्तौ श्वेतं जये श्यामं	उमा०	१३८
शारीरं ध्रियते तेन	अमित०	११.२३
	यशस्ति०	२१४
शारीरमानसागन्तु	श्रा०सा०	१.१७१
	यशस्ति०	८०५
शालिशिक्थाख्य	प्रश्नो०	२४.९
शालूररासभोष्ट्राणां	कुन्द०	८.३४५
शाल्यक्षतैरखण्डैश्च	प्रश्न०	२०.१९८
शाल्यादिसर्वधान्यानां	,,	१६.१०
शाश्वतानन्दरूपाय	कुन्द०	१.१
शास्त्रदानं सुपात्राय	धर्मोप०	४.१८१
शास्त्रदानेन सारेण	प्रश्नो०	२०.६९
शास्त्रं निशम्य मिथ्यात्वं	धर्मसं०	६.८४
शास्त्रप्रत्यूहमे यत्र	व्रतो०	४२८
शास्त्रं वात्सायनं ज्ञेयं	कुन्द०	८.१३७
शास्त्रवान् गुणयुक्तोऽपि	प्रश्नो०	२३.२८
शास्त्रव्याख्याविधानवद्य	उमा०	६७
शास्त्रादयो सतां पूज्यः	अमित०	११.५०
शास्त्रानुरक्तिरारोग्यं	कुन्द०	८.१२२
शास्त्राभासोदितैरर्थैः	पुरु०शा०	३.८०
शास्त्राम्बुधेः परिमिर्यत्ति	अमित०	१.८
शिक्थ्यमारुह्य न्यग्रोधे	प्रश्नो०	१४.४५
शिक्यारूढः स इत्युक्त्वा	श्रा०सा०	१.२२३
शिक्षयेच्चेति तं सेयमन्त्या	सागार०	८.५७
शिक्षा तस्मै प्रदातव्या	कुन्द०	८.३१९
शिक्षाव्रतं तृतीयं च	प्रश्नो०	२०.२
शिक्षाव्रतानि चत्वारि	लाटी०	५.१५१
शिक्षाव्रतानि देशाव	सागार०	५.२४
शिक्षाव्रतेषु वक्ष्येऽग्रे	पुरु०शा०	४.१५८
शिखण्डिकुक्कुटश्येन	यशस्ति०	४१९
शिखामेतेन मन्त्रेण	महापु०	४०.१५१
शिखायज्ञोपवीताङ्काः	धर्मसं०	६.२२
शिखी सितांशुकः सान्त	महापु०	३८.१०६
शिम्बयोऽपि नहि ग्राह्या	धर्मसं०	४.२५
शिम्ब्यः सकला विल्वफलं	पुरु०शा०	४.३५
शिम्बयो मूलकं बिल्व	श्रा०सा०	३.९३
	उमा०	३१३
शिरसो नमनं कृत्वा	अमित०	८.९१
शिरीष पुष्पमृद्वङ्गो	धर्मसं०	७.१८५
शिरीषसुकुमाराङ्गः	सागार०	८.१०३
शिरोनत्याऽऽसनावर्तं	पुरु०शा०	५.१९
शिरोरुहः स्वरध्वंसं	श्रा० शा०	३.१०१
	उमा०	३२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिरोर्त्तिः पीनसः श्लेष्मा	कुन्द०	३.८३
शिरोलिङ्गं च तस्येष्टं	महापु०	३८.११३
शिरोलिङ्गमुरोलिङ्गं	,,	४०.१६६
शिलास्तम्भास्थिसार्द्रेध्य	यशस्ति०	८९६
शिलोपरि यथा चोसं	प्रश्नो०	२०.१३२
शिल्पिकारुकवाक्पण्य	यशस्ति०	७५८
शिल्पिगर्वं न कर्त्तव्यं	प्रश्नो०	११.२५
शिवगतिगृहमार्गं	,,	२.२४२
शिवभूतेस्ततः पुण्य	श्रा०सा०	१.६२४
शिवमजरमरुजमक्षय	रत्नक०	४०
शिवशर्माकरं येन	प्रश्नो०	३.११
शिवसुखगृहमार्गं	,,	१७.१४७
शिष्यानुग्रहकर्त्ता यो	उमा०	१८६
शीघ्रं पात्रेण संसारा	अमित०	११.९३
शीघ्रमुत्पादयामास	प्रश्नो०	५.५१
शीघ्रेण स्वमहं सा च	,,	१०.५०
शीतद्वेषी यथा कश्चिद्	लाटी०	३.७३
शीतवातादिसंत्यक्ता	प्रश्नो०	२०.३०
शीतलेशमहं वन्दे	प्रश्नो०	१०.१
शीतांशू राजहंस	पद्मनं०प्र०	१२
शीतोष्ण दंशमशक	रत्नक०	१०३
शीतोष्णवातबाधां च	धर्मोप०	४.१२७
शीतोष्णादिषु कालेषु	प्रश्नो०	१८.२८
शीर्यते तरसा गात्रं	अमित०	११.२८
शीलतो न परो बन्धुः	,,	१२.४९
शीलमाहात्म्यतः केन	प्रश्नो०	१५.५७
शीलमाहात्म्यतः सीतां	पुरु०शा०	४.१११
शीलमाहात्म्यसंक्षोभा	प्रश्नो०	६.२०
शीलयुक्त इहामुत्र	,,	१५.३५
शील यो यतिमाधत्ते	,,	१५.४१
शीलवान् महतां मान्यः	सागार०	७.५३
शीलव्रतधरा धीरा	प्रश्नो०	२३.५०
शीलव्रतपरिहरणं	व्रतो०	५०६
शीलव्रतप्रभावेन	प्रश्नो०	२३.४७
शीलाहते महादुःखं	,,	१५.१०९
शीलव्रतानि तस्येह	सं० भाव०	१७
शीलेन रक्षितो जीवो	अमित०	१२.४७
शुककुर्कुरमार्जारी	लाटी०	४.१८२
शुक्त्याभैः श्यामलैः स्थूलैः	कुन्द०	५.८३
शुक्रक्षुतशकृन्मूत्र	कुन्द०	१.५५
शुक्रवारोदितो वैश्यो	कुन्द०	८.१९४
शुक्रस्य दिवसे काल	कुन्द०	८.२१४
शुक्रार्किभौमजीवानां	कुन्द०	८.४०
शुक्रेऽथ च महाशुक्रे	भव्यध०	३.२३८
शुक्लचन्द्रवदुत्पद्य	गुणभू०	२.१५
शुक्लध्यानं सदाचारो	व्रतो०	५१५
शुक्लं पृथक्त्ववीतर्कं	अमित०	१५.१४
शुक्लप्रतिपदो वायुः	कुन्द०	१.२५
शुक्लवस्त्रोपवीता	महापु०	३९.५५
शुचिर्विनयसंपन्नस्तनु	यशस्ति०	८८२
शुद्धं दयादिकमपि	श्रा०सा०	३.२०८
शुद्धदर्शनिको दान्तो	लाटी०	४.१
	यशस्ति०	२८९
शुद्धं दुग्धं न गोमांसं	(उक्तं)श्रा.सा.	३.८४
	उमा०	२८२
शुद्धप्ररूपको ज्ञानी	कुन्द०	१.१८७
शुद्धमार्गमतोद्योग	यशस्ति०	२३६
शुद्धमौनान्मनःसिद्ध्या	सागार०	४.३६
शुद्धं शोधितं चापि	लाटी०	४.२५८
शुद्धं श्रुतेन स्वात्मानं	सागार०	८.९२
शुद्धं सत्प्रासुकं स्निग्धं	प्रश्नो०	२०.१८
शुद्धसम्यक्त्वसंयुक्ता	श्रा०सा०	१.६८२
	अमित०	१५.५१
शुद्धस्फटिकसंकाश	पुरु०शा०	५.६०
	गुणभू०	३.१२०
शुद्धस्य जिनमार्गस्य	धर्मोप०	१.२२
शुद्धस्य जीवस्य निरस्तमूर्तेः	अमित०	१५.८७
शुद्धस्यानुभवः साक्षात्	लाटी०	२.११
शुद्धः स्वात्मैव चादेयः	धर्मसं०	७.१९१
शुद्धात्मध्याननिष्ठानां	श्रा०सा०	१.३०५
	उमा०	४४
शुद्धा प्राणोज्झिता भूमिः	लाटी०	४.६९
शुद्धिः क्षेत्रस्य कालस्य	पुरु०शा०	५.३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धियुक्तो जिनान् भावात्	उमा०	१५६
शुद्धे वस्तुनि संकल्पः	यशस्ति०	४४७
शुद्धैर्विशुद्धबोधस्य	,,	५१५
शुद्धोपलब्धिशक्तिर्या	लाटी०	३.२६६
शुद्धो बुद्धः स्वभावस्ते	धर्मसं०	७.५९
शुद्धो यो रूपवान्नित्यं	भव्यध०	५.२९१
शुभक्रियासु सर्वासु	कुन्द०	८.३९१
शुभ पुण्यस्य सामान्याद्	हरिवं०	५८.१
शुभप्रवृत्तिरूपा या	गुणभू०	३.१
शुभभावो हि पुण्याया	धर्मसं०	६.१८१
शुभः शुभस्य विज्ञेयः	अमित०	२.३९
शुभं सर्वं समागच्छन्	कुन्द०	१२.८
शुभाशुभं कर्मभयं	व्रतो०	४१९
शुभाशुभमहाकर्म	उमा०	१८५
शुभाय संवृतं देहं	प्रश्नो०	२.७०
शुभाशुभेन भावेन	,,	२.४२
शुभाशुभैः परिक्षीणैः	कुन्द०	११.६४
शुभाः श्रेणिक स्वर्गेऽस्य	प्रश्नो०	२१.१८९
शुभेतरप्रदेशं यः	,,	१८.२७
शुभेतरविकल्पं यः	,,	१८.२४
शुभे लग्ने सुनक्षत्रे	धर्मसं०	६.२४६
शुभैः षोडशभिः स्वप्नैः	महापु०	३८.२१६
शुभोदयेन जायन्ते	प्रश्नो०	२.७८
शुभोपदेशतारुचयो	कुन्द०	८.३८५
शुभ्रस्थितामृते पात्रे	कुन्द०	१.१६५
शुक्लदोत्पथगामी च	कुन्द०	८.४११
शुष्कचर्मास्थिलोमादि	लाटी०	४.२४२
शुष्काणां श्यामतोपेतं	कुन्द०	३.७७
शूकरस्तं समालोक्य	प्रश्नो०	२१.१४४
शूकरो मुनिरक्षाभिप्राये	,,	२१.१४६
शूद्र व्यग्रमनस्कस्यं	कुन्द०	८.३२७
शूद्रोऽप्युपरकराचार	सागार०	२.२२
शूनाकारी च कैवर्णे	भव्यध०	१.८५
शून्यं तत्त्वमहं वादी	यशस्ति०	३१
शून्यध्यानैकतानस्य	सागार०	६.४३
शून्यागारनिवृत्तिः	व्रतो०	४७०
शून्यागारेषु चावासा	लाटी०	५.३८
शून्याधोभूमिके स्थाने	कुन्द०	८.३६७
शून्यान्यविमोचितावास	हरिवं०	५८.६
शून्याष्टाष्टद्वयाङ्का	प्रश्नो०	२४.१४५
शूलारोपादिकं दुःखं	पुरु०शा०	४.८६
शूले प्रोतो महामन्त्रं	सागार०	८.७९
शेते शय्यागता शीघ्रं	कुन्द०	५.१५३
शेषकर्माणि निर्मूल्य	प्रश्नो०	५.५२
शेषमुक्तं यथाम्नायाद्	लाटी०	२.११९
शेषानपि यथाशक्ति	,,	५.१७२
शेषाणां सार्धपल्यायुः	भव्यध०	३.२११
शेषाः शूद्रास्तु वर्ज्याः	उमा०	१५४
शेषेभ्यः क्षुत्पिपासादि	लाटी०	२.१६२
शेषो विधिस्तु निःशेष	महापु०	४०.१३४
शेषो विधिस्तु प्राक् प्रोक्तः	,,	४०.१६४
शेषो विधिस्तु सर्वोऽपि	लाटी०	६.४३
शेषस्तत्र व्रतादीनां	,,	३.१८४
शैवस्य दर्शने तर्का	कुन्द०	८.२७५
शैवाः पाशुपताश्चैव	कुन्द०	८.२९२
शोकः कुक्षोर्नखानां च	कुन्द०	८.१८०
शोकं भयमवसादं	रत्नक०	१२६
शोकं भवादिकं त्यक्त्वा	धर्मोप०	५.८
शोकसन्तापसंक्रन्द	यशस्ति०	३१७
शोकानोकहखण्डनैकपरशुं	श्रा०शा०	२.१२
शोकानो कुरुचेदैकपरशुं	उमा०	२५८
शोकार्त्तत्रिघ्नो युतो द्वाभ्यां	कुन्द०	८.४२
शोकाश्रितं वचः श्रुत्वा	लाटी०	४.२४९
शोचिः केशशिखेव दाह	श्रा०सा०	३.२२७
शोणिते पयसि न्यसो	कुन्द०	८.१७५
शोधनीयन्त्रशस्त्राग्नि	श्रा०सा० उमा०	३.२७५ ४११
शोधितस्य चिरात्तस्य	लाटी०	१.३२
शोभतेऽतीव संस्कारा	,,	६.१०
शोभार्थं श्रीजिनागारे	प्रश्नो०	२०.२२६
शौचं मज्जनमाचार्यः	यशस्ति०	१७२
शौचमाचर्यं मार्तण्ड	कुन्द०	४.५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शौचादिसमये नीरं	प्रश्नो०	७.३३
शौचाय कर्मणे नेष्टं	(उक्तं) धर्मोप०	३.७
शोचार्थं संगृहीतव्यो	प्रश्नो०	२४.३३
शौर्यं गाम्भीर्यमौदार्यं	कुन्द०	९.११
शौर्येण वा तपोभिर्वा	कुन्द०	८.३८६
श्यामदृक् सुभगः स्निग्ध	कुन्द०	८.३३५
श्यामश्वेतस्थूलजिह्वाति	कुन्द०	५.१०५
श्यामो गौरः कृशः स्थूलः	अमित०	१५.५९
शृगालश्वानमार्जार	प्रश्नो०	२२.९७
ऋङ्गारकथया रागो	,,	२३.६७
शृङ्गारसारसर्वस्व	श्रा०सा०	१.४२
शृङ्गवेरं तथानन्तकाया	पूज्य०	३६
शृङ्गवेरादिकन्दादिभक्षणं	प्रश्नो०	१७.९१
शृङ्गवेरादिकाः कन्दाः	,,	१७.४३
शृङ्गवेरादिजं कन्दमूलं	,,	२२.६६
शृणु त्वं तात शृण्वन्तु	श्रा०सा०	१.२४७
शृणु त्वं भो महाभाग	प्रश्नो०	२१.१३
शृणु त्वं व्रतशुद्धयर्थं	,,	१४.२७
शृणु त्वं शिष्य तान् दोषान्	,,	११.५
शृणु धीमन्नहं वक्ष्ये	,,	१५.५८
शृणु धीमन् महाभाग	,,	२.६
शृणु भो वत्स ते वक्ष्ये	,,	१५.४३
शृणु वत्समहाप्राज्ञ	,,	३.५६
शृणु शिष्य प्रवक्ष्येऽहं	,,	१३.५८
शृणु श्रावक पुण्यस्य	लाटी०	४.५५
शृणु श्रावक संकृत्वा	प्रश्नो०	१६.५५
शृण्वन्ति येऽतिशुभदं	,,	२४.१२९
श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञान	यशस्ति०	७४६
श्रद्धानं केवलं नैव	गुणभू०	३.१४४
श्रद्धानं परमार्थानां	रत्नक०	४
श्रद्धानं यस्य चित्तं	व्रतो०	५१९
श्रद्धानं सप्ततत्त्वानां	प्रश्नो०	२.४
श्रद्धानात्स्वेष्टसिद्धिश्चेद्	गुणभू०	३.१४५
श्रद्धानादिगुणाबाह्यं	लाटी०	२.४१
श्रद्धापूर्वं सुपात्राय	प्रश्नो०	३.१२२
श्रद्धाभक्तिरलोभत्वं	धर्मोप०	४.१५७
	पूज्य०	६५
श्रद्धा भक्तिश्च विज्ञानं	गुणभू०	३.४३
श्रद्धालुभिर्नरैः पौरैः	श्रा०सा०	१.३८७
श्रद्धालुर्भक्तिमांस्तुष्टः	धर्मसं०	४.९४
श्रद्धा शक्तिरलुब्धत्वं (उक्तं)	चारित्रसा०	१३
श्रद्धा शक्तिश्च सद्भक्तिः	प्रश्नो०	२०.२०
श्रद्धा श्रेयोऽर्थिनां श्रेयः	यशस्ति०	१७
श्रद्धा स्वात्मेव शुद्धः	सागार०	८.१०७
श्रद्धीयमाना अपि वञ्चयन्ते	अमित०	१०.६४
श्रद्धेहि यक्षि नो तस्य	धर्मसं०	२.६८
श्रमणागमनमाकर्ण्य	श्रा०सा०	१.५७८
श्रयणं स्तम्भकुडयादेः	अमित०	८.८९
श्रयेत्कायमनस्ताप	धर्मसं०	२.१७५
श्रवणाद्धिसकं शब्दं	लाटी०	४.२४८
श्रवणीयमनाक्षेपं	अमित०	१३.२७
श्रवणेन्द्रिययोगेन	उमा०	२०७
श्राद्धो दर्शनिकः पूर्वो	धर्मोप०	४.२६
श्रावक धर्मं भजति	अमित०	१३.१०१
श्रावकपदानि देवै	रत्नक०	१३६
श्रावकव्रतपूतानां	धर्मोप०	४.८
श्रावकः श्रमणो वान्ते	सागार०	८.२५
श्रावकाचारणं धर्मं	प्रश्नो०	१.४४
श्रावकाचारपूतात्मा	धर्मसं०	६.१४९
श्रावकाणां कुले योग्यं	व्रतो०	२३
श्रावकाध्ययनप्रोक्त	रत्नमा०	५८
श्रावकानार्यिका सङ्घं	महापु०	३८.१६९
श्रावकास्तत्र भक्त्यर्थं	प्रश्नो०	७.४५
श्रावको जायते षड्भिः	उमा०	२४५
श्रावको वीरचर्याहः	सागार०	७.५०
श्रित्वा विविक्तवसतिं	पुरुषा०	१५३
श्रीकीर्तिश्रेष्ठिनो गेह	श्रा०सा०	१.४६७
श्रीकीर्तिश्रेष्ठिनो नूनं	,,	१.४५७
श्रीकेतनं वाग्वनिता	यशस्ति०	४९२
श्रीचन्दनं विना नैव	उमा०	१२५
श्रीजिनेन कथितो वरधर्मः	प्रश्नो०	२४.१२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीदेव्यश्च सरिद्देव्यो	महापु०	३८.२५२	श्रुतवृत्तक्रियामन्त्र	महापु०	३८.१५५
श्रीदेव्यो जात ते जात	,,	४०.११६	श्रुतस्कन्धवने साथ	श्रा० सा०	१.२४९
श्रीधर्मादौ सदा येऽपि	प्रश्नो०	४.४९	श्रुतस्कन्धस्य वाक्यं	सागार०	८.९१
श्रीनामयो जिनो भूयाद्	श्रा० सा०	१.२	श्रुतस्य प्रश्रयाच्छ्रेयः	यशस्ति०	८०४
श्रीपतिपुण्डरीकाक्षो	पुरु० शा०	५.६९	श्रुतार्थिभ्यः श्रुतं दद्यात्	महापु०	३८.१७०
श्रीभूतिः स्तेयदोषेण	यशस्ति०	३५८	श्रुतामृतं पिबेत्तत्र	प्रश्नो०	१९.१७
श्रीमज्जिनेन्द्रकथिताय	चारित्र सा०	२	श्रुतिशाक्यशिवाम्नायः	यशस्ति०	१७०
श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रस्य	पूज्य०	१	श्रुतिस्मृतिपुरावृत्त	महापु०	३९.१३९
श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रा	धर्मोप०	२.३३	श्रुतिस्मृतिप्रसादेन	पूज्यपा०	७२
श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्तं	,,	४.१७७	श्रुतेन शुद्धमात्मानं	धर्मसं०	७.१४२
श्रीमज्जिनेन्द्र संज्ञान	,,	४.१३८	श्रुते व्रते प्रसंख्यान	यशस्ति०	८३६
श्रीमज्जैनमतं पूतं	,,	४.२५०	श्रुतैः कषायमालिन्य	धर्मसं०	७.१५
श्रीमज्जैनमते धीरैः	,,	५.९	श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्या	कुन्द०	१.३९
श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभुपादसेवा	श्रा०सा०	७०	श्रुत्वा कोलाहलं राजा	,,	२.१२३
	पद्म नं०प्र०	३	श्रुत्वा तद्वचनं देवः	प्रश्नो०	७.११
श्रीमद्वीरजिनेशपादकमले	गुणभू०	३.१५७	श्रुत्वा तद्वचनं विप्रो	,,	१४.५०
श्रीमतां श्रीजिनेन्द्राणां	उमा०	१६२	श्रुत्वा तद्वचनं सागाद्	,,	२१.११६
श्रीलम्बकुब्जुककुले	पद्म०न० प्र०	४	श्रुत्वाऽतिकर्कशाक्रन्द	सागार०	४.३२
श्रीवत्सेन सुखी चक्रे	कुन्द०	५.६८	श्रुत्वादानमतिर्वर्यो	अमित०	९.४०
श्रीवर्द्धनकुमारादि	धर्मसं०	७.१८२	श्रुत्वा देवागमं राज्ञां	भव्यध०	१.३९
श्रीवीरस्वामिदेवेन	प्रश्नो०	१.३२	श्रुत्वा धर्मसुखागारं	प्रश्नो०	२१.१४२
श्रीषेणवज्रजङ्घाद्याः	धर्मसं०	४.१०२	श्रुत्वा मांसादिनिन्द्याह्वां	धर्मसं०	३.४१
श्रीषेणः समभूद् राजा	उमा०	२२९	श्रुत्वा वज्रकुमारोऽयं	श्रा० सा०	१.६७३
श्रीषेणो यो नृपः ख्यातो	प्रश्नो०	२१.१४	श्रुत्वा स्पष्टमभाषिष्ट	,,	१.६७७
श्रीषेणो वृषभसेना	धर्मोप०	४.१९८	श्रुत्वेति गौतमीं वाचं	धर्मसं०	६.१३९
श्रीसर्वज्ञं प्रणम्योच्चैः	,,	१.१	श्रुत्वेति तैः कृतो मन्त्रः	,,	२.६३
श्रीसुधर्ममुनीन्द्रेण	प्रश्नो०	१.३३	श्रुत्वेति दृक्-प्रसादेन	श्रा० सा०	१.७८
श्रीहीनोऽयं धनाढ्योऽयं	प्रश्नो०	२८.४९	श्रुत्वेति देशनां तस्माद्	महापु०	३९.३३
श्रुतं च गुरुपादाश्च	धर्मसं०	६.२५९	श्रुत्वेति निविडनीडर	श्रा० सा०	१.५१३
श्रुतज्ञानं जिनेन्द्रोक्तं	धर्मोप०	२.२७	श्रुत्वेति पार्थिवादेशाद्	श्रा० सा०	१.५६९
श्रुतं वेदमिह प्राहुः	यशस्ति०	८८	श्रुत्वेति मन्त्रिणो वक्त्रात्	,,	१.७०८
श्रुतं सुविहितं वेदो	महापु०	३९.२२	श्रुत्वेति श्रेष्ठिनी पापं	धर्मसं०	६.११९
श्रुतं हि विधिनानेन	महापु०	३८.१६३	श्रूयतां भो द्विजम्मन्य	महापु०	३९.११४
श्रुत क्रीडावने स्वान्तमकंटं	धर्मसं०	७.१७०	श्रूयतां भो द्विजन्मानो	,,	३९.२
श्रुतज्ञानप्रदानेन	प्रश्नो०	२०.७२	श्रूयते दृश्यते चैव	लाटी०	१.११७
श्रुते तत्वपरिज्ञानं	यशस्ति०	८१०	श्रूयते सर्वशास्त्रेषु	प्रश्नो०	१२.८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रूयन्ते न परं तत्र	लाटी०	१.२१२
श्रूयन्ते बहवो नष्टाः	,,	१.२१९
श्रूयध्वं भो जना वाचं	प्रश्नो०	१३.७१
श्रेणिकस्य महामंत्री	,,	८.४८
श्रेणिकेन तमालोक्य	,,	२१.१७०
श्रेयान् धर्मः पुमर्थेषु	कुन्द०	२.५०
श्रेयान्ससोमप्रभवंशजातः	भव्यध०प०	१०
श्रेयो नाम नृपो जातो	प्रश्नो०	२१.४८
श्रेयोऽभिधं जिनं वन्दे	,,	११.१
श्रेयो यत्नवतोऽस्त्येव	सागार०	२.७२
श्रेष्ठभयं जिनदत्ताख्यो	प्रश्नो०	१५.६९
श्रेष्ठवस्त्वादिके वस्तु	,,	१४.३४
श्रेष्ठो धर्मस्तपः क्षान्तिः	कुन्द०	१०.४२
श्रेष्ठे मे धर्म इत्युच्चैः	कुन्द०	१०.१४
श्रेष्ठं हालाहलं भुक्तं	प्रश्नो०	२४.८३
श्रेष्ठिनो जिनस्तस्य	श्रा० सा०	१.२७६
श्रेष्ठिन्या चैकदा पृष्टः	प्रश्नो०	२१.१७९
श्रेष्ठिन्या हि समुद्रादि	,,	१०.४५
श्रेष्ठी जिनेन्द्र भक्तश्च	धर्मोप०	१.२८
श्रेष्ठी धनपतिस्तत्र	प्रश्नो०	२१.५६
श्रेष्ठी समुद्रदत्ताख्यः	,,	१५.६१
श्रेष्ठो गुणैर्गृहस्थः स्यात्	यशस्ति०	९२
श्रोतव्या सावधानेन	कुन्द०	२.९७
श्रोतोमुखहृदुद्गारा	कुन्द०	३.२८
श्रुतस्कन्धीयवाक्यं	धर्मसं०	७.१७१
श्रौतान्यपि हि वाक्यानि	महापु०	३९.१०
श्लक्षेण पिष्टचूर्णेन	,,	३९.३९
श्लाघ्यं धर्मद्वयं	व्रतो०	४३०
श्लाघ्यन्ते साधवोऽत्यन्तं	धर्मसं०	७.४०
श्लाघ्यश्चाश्लारुणश्चे	कुन्द०	५.३३
श्लिष्टान्यङ्गुलिमध्यानि	कुन्द०	५.७८
श्लेष्मघ्नान्युपभुञ्जीत	कुन्द०	६.५
श्लेष्माधिक्येन कर्त्तव्यो	कुन्द०	१.५७
श्लेष्मार्त्तस्य तथा पाण्डु	कुन्द०	८.३४३
श्लेष्मावृतानि श्रोतांसि	कुन्द०	५.२३६
श्लोकानामेकपञ्चाशत्	धर्मोप०	२.२४
श्वभ्रतिर्यक्कुदेवत्वं	धर्मोप०	१.४८
श्वभ्रतिर्यग्गतिं प्राप्ता	प्रश्नो०	१६.१०९
श्वभ्रपातमसन्तोष	श्रा० सा०	३.२४४
श्वभ्रपातमसन्तोष	उमा०	३८३
श्वभ्रान्निर्गत्य जीवोऽयं	प्रश्नो०	११.४८
श्वभ्रे दुःखमयाच्छ्वाभ्रं	पुरु०शा०	४.१२
श्वसिति रोदिति सीदति	अमित०	१४.१४
श्वसुरस्य गृहे	प्रश्नो०	१५.७७
श्वाभ्रतिर्यङ्नरो देवो	अमित०	१५.६२
श्वाभ्रत्वेऽपि नरायनो	धर्मसं०	१.६२
श्वाभ्रसम्मूर्च्छिनो जीवा	अमित०	३.२१
श्वानादिवारणार्थं सा	प्रश्नो०	१४.६४
श्वापि देवोऽपि देवः श्वा	रत्नक०	२९
श्वित्रकः कौशिकोमूषको	अमित०	७.३३
श्वेतैकपटकौपीनी	धर्मसं०	५.६१
श्वेतैर्यतित्रमस्थाचैः	कुन्द०	५.८२

ष

षट्कर्मभिः किमस्माकं	संभाव०	१६३
षट्खण्डभूसम्भवसै	प्रश्नो०	२४.११
षट्खंडवसुधारत्न	,,	२०.९
षट्चत्वारिंशता दोषै	धर्मसं०	६.६
षट्चत्वारिंशद्दोषा षोढां	अमित०	१०.१२
षट्त्रिंशद्-गुरुवर्णानां	कुन्द०	१.२८
षट्त्रिंशदङ्गुलं वस्त्रं	धर्मोप०	४.१४
षट्प्रकृति शमेनैव	प्रश्नो०	४.६
षट्स्वर्थेषु विसर्पन्ति	यशस्ति०	९०४
षण्णामनुदयादेक सम्यक्त्व	धर्म०सं०	१.६०
षडत्रगृहिणो ज्ञेयास्त्रयः	यशस्ति०	८२४
षड्द्रव्यनवपदार्था	श्रा०सा०	२.११
	उमा०	२५७
पड्द्रव्य सप्ततत्त्वेषु	प्रश्नो०	१८.५१
पडङ्ग बल सम्पाद्यं	,,	११.८१
षडङ्गं विधिकानां च	,,	२४.७७
षडनायनं ज्ञेयं	प्रश्नो०	११.३५
षडनायतनं शङ्का	पुरु०शा०	३.१४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षड् लक्षा विकलाक्षाणां	धर्मसं०	७.१११
षडाद्यास्ते जघन्याः स्युः	धर्मोप०	४.२४९
षष्ठाष्टमादि सञ्जातं	प्रश्नो०	२४.७०
षष्ठिमद् द्वादशी षष्ठी	कुन्द०	३.६५
षष्ठ्यादिनदपर्यन्ति	प्रश्नो०	२३.१५०
षष्ठ्याः क्षितेस्तृतीये	यशस्ति०	४१३
षष्ठे रूपं चिनोत्युच्चैः	कुन्द०	५.२०९
षष्ठे तु युगले प्रोक्ता	भव्यध०	३.२१७
षष्ठोपवासकृतपूर्वं	श्रा०सा०	१.२१२
षोडशप्रहरानित्थं	पुरु०शा०	६.४
षोडश प्रहरानेवं	श्रा०सा०	३.३१५
,, ,,	उमा०	४३०
षोडश षट् च पञ्चैव	भव्यध०	५.२८७
षोडशानामुदारात्मा	यशस्ति०	८५१
षोडशापि शतान्येव	प्रश्नो०	१.२८
षोडशाब्दा भवेद् बाला	कुन्द०	५.१३७
षोडशाभरणोपेतः	उमा०	१२३
षोक्षनायतनं जन्तोः	अमित०	२.२४
षोढापानं धनं लेपि	धर्मसं०	७.६६
षोढा बाह्यं तपः प्रोक्तं	लाटी०	६.८१

सं

संकल्पपूर्वकः सेव्ये	यशस्ति०	३०१
संक्लेशार्मिनिवेशैर्न	यशस्ति०	३५१
संक्लेशाभिनिवेशेन	सागार०	४.४७
संग्रहमुच्चस्थानं	पुरुषा०	१६८
संघस्य रक्षणार्थं स	श्रा०सा०	१.५५१
सञ्चरत्कीटिका स्पृष्टं	कुन्द०	८.१५३
सञ्चरिष्णुरुगाघ्राता	कुन्द०	५.११३
संघे चतुर्विधे भक्त्या	अमित०	१३.४४
संजातः प्रियदत्ताख्यः	प्रश्नो०	६.५
संज्ञानामपि तनुभृतां	श्रा०सा०	३.२२८
संज्ञा हुँकार खात्कार त्यागः	पुरु०शा०	५.१२
संददाति जगत्सारं	धर्मोप०	४.१६९
संधानं पानकं धान्यं	यशस्ति०	३१२
सन्यस्ताभ्यामधोऽङ्घ्रिभ्यां	यशस्ति०	७००
संन्यस्येति कषायवद्वपुरिदं	धर्म सं०	७.१९६
संन्यासमरणं दान	उमा०	४५२
संन्यासो निश्चयेनोक्तः	सागार०	८.९३
संप्राप्य कलकं ह्येकं	प्रश्नो०	१३.६९
संप्राप्य सबलं देहं	,,	११.२४
संभोगाय विशुद्धयर्थं	,,	४.२९
संयत श्रावको वान्ते	धर्म सं०	७.३७
संयतासंयतस्यास्य	लाटी०	४.२१३
संयतासंयतो देशयतिः	पुरु०शा०	६-८८
संयतैः संयमोपेतैः	श्रा०सा०	१.५३५
संयमा नियमाः सर्वे	अमित०	२.२
	,,	११.७
संयमारामविच्छेद	पुरु०शा०	६.६
संयमे संयमाधारे	अमित०	१३.१२
संयमो दर्शनं ज्ञानं	,,	१३.६८
संयमो द्विविधश्चैव	लाटी०	२.१७१
संयमो द्विविधो ज्ञेयः	उमा०	२०१
संयमो द्विविधो हि स्यात्	धर्म सं०	६.२१७
संयोगे विप्रलम्भे च	यशस्ति०	६१४
संरम्भसमारम्भारम्भैः	अमित०	६.१२
सर्वं परिग्रहं योऽपि	प्रश्नो०	२३.१२४
संलिख्येति वपुः कषाय	सागार०	८.११०
संवत्सरमृतुरयनं	रत्नक०	९४
संवत्सरसहस्राणां	भव्यध०	३.२०२
संवरणं तरसा दुरिताना	अमित०	१४.४८
संवर्धयति सैवेह	कुन्द०	५.२३९
संवादित्वं प्राञ्जला	अमित०	३.५१
संविभागोऽतिथीनां	पूज्यपा०	३२
संविभागोऽतिथीनां यः	सं० भाव०	६९
संविभागो भवेत्यागः	धर्मोप०	४.१४७
संविभागोऽस्य कर्त्तव्यो	पद्म०च०	१४.२२
संविशुद्धिसुधासिक्तो	धर्मसं०	७.४६
संवृत्ताङ्ग-समज्यायां	कुन्द०	१.१०८
संवेगधर्मजननं	प्रश्नो०	२४.१३०
संवेगः परमः प्रीतिः	धर्मोप०	१.४५
संवेगः परमोत्साहो	लाटी०	२.७६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवेगप्रशमास्तिक्य	धर्म सं०	१.८०
	अमित०	२.६६
संवेगादिपरः शान्तः	रत्नमा०	१३
संवेगो निर्वेदो निन्दा	चारित्र सा०	७
	उमा०	७०
संवेगो विधिरूपः स्यात्	लाटी०	२.८५
संशयविमोहविभ्रम	श्रा०सा०	२.५
संशयो जैनसिद्धान्ते	धर्मसं०	१.३८
संशयोरुतमोध्वंसी	धर्मोप०	२.१२
संशोध्यान्येन निक्षिप्तं	धर्मसं०	५.७३
संसक्तः प्रचुरश्छिद्रः	अमित०	८.३९
संसर्गप्राक्कलयस्य	धर्मसं०	६.११५
संसर्गं हि न कुर्वन्ति	प्रश्नो०	१५.७
संसर्गाज्जयते यच्च	धर्मसं०	१.३३
संसजन्ति विविधा शरीरिणो	अमित०	५.३४
संसजन्त्यङ्गिनो येषु	,,	९.५१
संसप्तगुणयुक्तेन	प्रश्नो०	२०.२३
संसृतिश्छिद्यते येन	अमित०	११.४२
संसृष्टे सति जीवद्भिः	सागार०	४.३३
संसारकान्तारमपास्तपारं	अमित०	१.११
संसारकारणं कर्म	,,	३.४०
संसारकारणं पूर्वं	,,	१५.१०
संसारदेहभोगादि	धर्मोप०	१.१९
संसारः पञ्चधा त्यक्तो	व्रतो०	५१
संसारदेहभोगानां	अमित०	८.१०
संसारदेहभोगेषु	प्रश्नो०	१९.२०
,, ,,	,,	२२.२६
संसारनाटके जन्तुः	कुन्द०	१०.३३
संसारभोगनिर्विण्णः	श्रा०सा०	१.१८३
	,,	१.१६६
संसारमुद्भूतकषाय	अमित०	१.४५
संसारलाभो विदधाति	,,	७.२४
संसारवनकुठारं	,,	१०.२५
संसारसागरजलोत्तरणे	भव्यध०	१.७
संसारसागरे भीमे	अमित०	८.१२
संसारसागरे मग्नान्	प्रश्नो०	३.१०२
संसारसागरोत्तार	श्रा०सा०	१.५०

संसाराग्निशिखाच्छेदो	यशस्ति०	८४३
संसारापारपाथोधौ	श्रा०सा०	१.१४५
संसाराम्बुधितारक	प्रश्नो०	२४.१२४
संसाराम्बुधितारकां	,,	२३.९७
संसाराम्बुधिसेतु	यशस्ति०	४६२
संसाराब्धौ मद्य	सं० भाव०	१५९
संसारातिभीतस्य	अमित०	१२.४१
संसारिणो जीवाः	अमित०	३.५
संसारिणो द्विधा ज्ञेयाः	भव्य ध०	२.१६३
संसारी साधको भव्यः	अमित०	१५.८
संसारे कुर्वतामत्र	पुरु०शा०	३.१५८
संसारे जन्मिनामत्र	श्रा०सा०	१.२४६
संसारेऽत्र मनुष्यत्वं	गुणभू०	१.२
संसारे यानि सौख्यानि	कुन्द०	११.७१
संस्कारजन्मना चान्या	महापु०	३९.८९
संस्कृत-प्राकृतैर्भेदैः	धर्मोप०	२.१९
संस्कृते प्राकृते चैव	कुन्द०	८.१२४
संस्कृत्य सुन्दरं भोज्यं	अमित०	११.९२
संस्तरे कोमले नैव	प्रश्नो०	२४.२८
संस्थानत्रिकदोषाया	धर्मसं०	७.४७
संस्थितोऽकम्पमानोऽसौ	प्रश्नो०	१६.७५
स आह जलवार्तां स	,,	२१.६८
स एव वक्ता स च राज्य	भव्यध०प्र०	२
स कथं क्रियते नाथ	श्रा०सा०	१.६३३
सकलं क्रमुकं हृट्टचूर्णं	पुरु०शा०	४.३२
सकलकुलाचलचलिनां	श्रा०सा०	१.१२४
सकलगुणनिधानं स्वर्गं	प्रश्नो०	२२.५७
	,,	२३.९६
सकलगुणसमुद्रं	प्रश्नो०	१७.१४८
सकलमनेकान्तात्मक	पुरुषा०	२३
सकलं विकलं चरणं	रत्नक०	५०
सकलं विकलं प्रोक्तं	उमा०	२६२
सकलविकलभेदा	श्रा०सा०	३.५
सकलविगतदोषा	प्रश्नो०	१५.१००
सकल श्रुतकरत्वं	प्रश्नो०	१३.१११
सकल श्रुतसमुद्रे	,,	२१.१२९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकलसुखनिधानं	प्रश्नो०	२०.२४०
	,,	११.१०६
	,,	१८.१९२
सकलीकरणं कार्यं	भव्यध०	६.३५१
सकलैर्न गुणैर्मुक्तः	अमित०	४.३९
सकलो निःकलोऽतन्द्रो	व्रतो०	४१४
सकलो निःकलो देवो	,,	५४०
सकामा मन्मथालापा	अमित०	१२.३८
सकोरुकाः सम्भृङ्गाश्च	सं०भाव०	१३९
स क्रूरो दुष्टबुद्धिः	व्रतो०	४३५
सङ्कटं सतिमिरं कुठीरकं	अमित०	५.५९
संकल्पपूर्वकाः सेव्ये	सागार०	२.८०
संकल्पवर्जितं कृत्वा	प्रश्नो०	२४.९९
सङ्कल्पात् कृतकारित	रत्नक०	५३
सङ्काशे सातपे सान्ध	कुन्द०	३.३०
सङ्कीर्णे पृथुलप्रोच्च	कुन्द०	५.१०३
सङ्कुलाद् विजने भव्यः	कुन्द०	१.९२
सङ्केतदेशनालाप	अमित०	३.११
सङ्केतो न तिथौ यस्य	पद्म०च०	१४.२१
सङ्क्लेशस्तत्क्षतिर्नूनं	लाटी०	३.२०३
सत्कुले जन्म दीर्घायुः	,,	४.४३
सखीन् धर्मार्थकामानां	धर्मसं०	६.१८७
सखी सन्मुक्तिमार्या हि	प्रश्नो०	१२.७२
सङ्क्षेपस्नानशास्त्रो	सं०भाव०	५८
सङ्ख्वाद्देशाद्ब्रहि	प्रश्नो०	१८.१६
सङ्ख्यां विधाय भो	,,	१७.५
सङ्ख्यां विना न सन्तोषो	धर्मोप०	४.५२
सङ्ख्येति ग्रन्थतः प्रोक्ता	,,	२.२२
स ग्रन्थविरतो यः प्राग्	सागार०	७.२३
स ग्रन्थारम्भयुक्ताश्च	उमा०	८४
स ग्रन्थारम्भहिंसानां	रत्नक०	२४
सग्रन्थाहिंसनारम्भ	धर्मसं०	१.४२
सङ्गत्यागं समाख्याय	प्रश्नो०	२४.२
सङ्गत्यागो जिनैरुक्तो	,,	२३.१३७
सङ्गत्यागस्तपोवृत्तं	व्रतो०	५११
सङ्गे कापालिकात्रेयी	यशस्ति०	१२७
सङ्गे कापालिकात्रेयी (उक्तं)	श्रा.सा.	१०.३०७
	उमा०	४६
सङ्गेन सह ये मोक्षं	प्रश्नो०	२३.१३५
सङ्ग्रहमुच्चस्थानं	श्रा०सा०	३.३२४
	उमा०	४४०
सङ्ग्रहेऽर्थेऽपि जायेत	कुन्द०	२.५१
सङ्ग्रामवर्णनस्यापि	प्रश्नो०	१७.६३
सङ्ग्रामादिदिने हिंस्रे	लाटी०	४.२३६
सङ्ग्रामादिविधौ	,,	४.१९३
सद्गृहित्वमिदं ज्ञेयं	महापु०	३९.१५४
स गृही भण्यते भव्यो	अमित०	९.२४
सद्गुरूणां पदाम्भोज	धर्मोप०	२.२८
सङ्घभारधरो धीरः	पद्मनं० प्र०	२०
सङ्घश्रीर्भावयन् भूयो	सागार०	८.७१
सङ्घस्य रञ्जनार्थं यः	प्रश्नो०	१८.१३९
सङ्घसम्पोषकः सूरिः	लाटी०	३.१७८
स सङ्घाधिपतिर्ज्ञेयो	प्रश्नो०	२०.१७६
सङ्घाय तु निवेद्यैवं	धर्मसं०	७.७७
स च निःसरितस्तस्मात्	व्रतो०	५२८
सचित्तः संवृतः शीतः	अमित०	३.२२
सचित्तं जलशाकान्त	पुरु०शा०	६.२१
सचित्तं जीवसंयुक्तं	प्रश्नो०	२२.७३
सचित्तं तस्य सम्बन्धं	धर्मसं०	४.३०
सचित्तं तेन मिश्रं च	पुरु०शा०	४.१६७
सचित्त तेन सम्बन्धं	सागार०	५.२०
सचित्त नास्ति यो धीमान्	प्रश्नो०	३३.७२
सचित्त दिवामैथुन.विरतौ	धर्मसं०	२.१२
सचित्तपत्रके क्षिप्तं	धर्मोप०	४.१९९
सचित्तपद्मपत्रादा	प्रश्नो०	२१.५
सचित्तफलतोयादि	धर्मोप०	४.१३६
सचित्तभोजनं यत्प्राङ्	सागार०	७.११
सचित्तमिश्रसम्बन्धं	व्रतो०	४५५
सचित्तमिश्रो दुःपक्व	श्रा०सा०	३.२८८
सचित्तविरतश्चापि	धर्मोप०	४.२२७
सचित्तस्याशनात्पापं	पुरु०शा०	६.२०
सचित्ताचित्तमिश्रेण	धर्मसं०	६.९१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सचित्ताहारसंत्यागी	संभाव०	६
सचित्ताहारसम्बन्ध	हरिवं०	५८.६८
सचिते पद्मपत्रादौ	लाटी०	५.२२६
सचेतनाहारनिवृत्त	अमित०	१०.२८
स चैकदा समाकर्ण्य	प्रश्नो०	२१.१५३
सच्चारित्रतनुत्रा	श्रा०सा०	१.५६
सञ्चितैनश्च योऽवश्यं	पुरु०शा०	६.२८
सच्छीलाः कति सन्ति	श्रा०सा०	१.२९८
सच्छीलेन विना	प्रश्नो०	१५.१००
सच्छिद्रनाववज्जीवा	,,	२.३१
सच्छूरा अपि स्वाधीना	धर्मसं०	६.२३३
सज्जन्म प्रतिलम्भो	महापु०	३९.८७
सज्जातिभागी भव	,,	४०.९२
सज्जाति सत्कुलैश्वर्यं	प्रश्नो०	११.१६
सज्जाति सद्गृहित्वं च	महापु०	३८.६७
	पूज्यपा०	५८
सञ्जनानङ्गजान्	धर्मसं०	२.२४
सज्जनो दुर्जनो दीनो	अमित०	१५.६५
सज्जिनार्चा विधत्ते	प्रश्नो०	२०.१८३
स जीयाद् वृषभो	महापु०	३८.२
सज्ज्ञानं जिनभाषितं	धर्मोप०	२.३४
सज्ज्ञानं सम्यक्त्वं	अमित०	१४.४०
सञ्जायन्ते महाभोगाः	प्रश्नो०	२०.४६
सञ्ज्ञाश्चेन्द्रिययोगाश्च	भव्यध०	१.१८
स णमो अरंहताणं	सागार०	८.७७
सत्कन्या ददता दत्तः	,,	२.५९
सत्कारादिविधावेषां	यशस्ति०	७७१
सत्पर्यङ्कासनासीनो	श्रा०सा०	३.३०१
सत्सर्वौषधिमुनेः	प्रश्नो०	१२.१६
सत्सु पीडां वितन्वन्तं	श्रा०सा०	१.५९१
सत्सु रागादिभावेषु	लाटी०	३.२५५
सतपस्विनैरस्तस्मात्	प्रश्नो०	१४.७८
स तपस्वी तलारेण	,,	१४.८२
सतां शीतलभावानां	श्रा०सा०	१.५९४
सति प्रभुत्वेऽपि मदो	पद्म०नं०	७.१८
सति यस्मिन् ध्रुवं	पुरु०शा०	३.२१
सति लोभे नहि ज्ञानं	प्रश्नो०	३.४६
सति सम्यक्त्वचारित्रे	पुरुषा०	२१८
सति सत्यामृते पूज्ये	प्रश्नो०	१३.१२
सतीमतल्लिका तस्य	पद्मनं० प्र०	६
सतीमतल्लिका	श्रा०सा०	१.४०१
सतीरपि सतीर्नारी	पुरु०शा०	६.४०
सती शीलव्रतोपेता	उमा०	१५०
स तु संसृत्य योगीन्द्रं	महापु०	३९.८
सत्यं किन्तु द्विशेषोऽस्ति	लाटी०	३.१५४
	,,	६.५
सत्यजन्मपदं तान्त	महापु०	४०.२७
सत्यजातपदं पूर्वं	,,	४०.११
सत्यघोषसमीपे	प्रश्नो०	१३.६७
सत्यघोषाह्वयं तस्य	,,	१३.६३
सत्यं सद्दर्शनं ज्ञानं	लाटी०	३.२६३
सत्यपि व्रतसम्बन्धे	हरिवं०	५९.२१
सत्यं बहुवधादत्र	लाटी०	१.८५
सत्यं भीरोऽपि निर्भीकः	,,	३.२४
सत्यमपि विमोक्तव्यं	अमित०	६.४७
सत्यमप्यसत्यां याति	लाटी०	५.६
सत्यमाद्यद्वयं ज्ञानं	,,	२.१०५
सत्यमेव ततो वाच्यं	पुरु०शा०	४.७६
सत्यवाक्याज्जनः सर्वो	श्रा०सा०	३.१७७
	उमा०	३५१
सत्यवाग् देववत्पूज्यो	पुरु०शा०	४.७५
सत्यवाचस्तु सान्निध्यं	,,	४.७४
सत्यवाक्यसत्य	यशस्ति०	३७३
सत्यं व्रतं समाख्याय	प्रश्नो०	१४.२
सत्यं शीलं शमं शौचं	अमित०	१२.६७
सत्यं शौचं दया धर्मः	भव्यध०	१.११२
सत्यसन्तोषमाहात्म्यात्	प्रश्नो०	१३.९७
सत्यं सर्वात्मना तत्र	लाटी०	१.४०
सत्यं सामान्यवज्ज्ञानं	,,	२.४९
सत्यसीमादियुक्तस्य	प्रश्नो०	१३.१३
सत्याज्ज्योऽपरदम्पत्योः	लाटी०	५.६४
सत्यामपि विषाक्षायां	कुन्द०	८.१३९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्येन कीर्त्तिरमला विमला	धर्मोप०	४.२८
सत्येन नाशयासत्यं	पुरु०शा०	६.६६
सत्येन वचसा प्राणी	प्रश्नो०	१३.१४
सत्येन वाक्यं वितनोति लोके	व्रतो०	३७२
सच्चमप्यनुकम्प्यानां	सागार०	२.४०
सत्त्वघातादिसञ्जातं	प्रश्नो०	१२.३९
सत्त्वसन्ततिरक्षार्थं	श्रा०सा०	३.१८१
सत्त्वसन्ततिरक्षार्थं	उमा०	३५३
सत्त्वाधिकस्त्यक्तुमलं	श्रा०सा०	३.२१७
सत्त्वेऽपि कर्तुं न	अमित०	७.५३
सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु	,,	१३.९९
सत्त्वे सर्वत्र चित्तस्य	यशस्ति० श्रा०सा०	२१५ १.१७२
सदनारम्भनिवृत्तैः	अमित०	६.८८
सदपत्ये गृही स्वीयं	धर्मसं०	२.१७७
सदम्बरस्फुरच्छ्रीकः	श्रा०सा०	१.२३
सदम्बानां त्वया मित्र	प्रश्नो०	११.१८
सदर्थमसदर्थं च	हरिवं०	५८.१६
सद्दर्शनमहामूलं	प्रश्नो०	३.१०६
सद्-दृष्टयः प्रकुर्वन्ति	,,	२०.२२३
सद्-दृष्टिज्ञानवृत्तानि	रत्नक०	३
सद्-दृष्टिः पात्रदानेन	सं०भाव०	१२८
सद्-दृष्टिरेभिरष्टाभिः	पुरु०शा०	३.१३८
सद्दृष्टिः सन् व्रतोपेतो	प्रश्नो०	५.५४
सद्-दृष्ट्यालङ्कृतः	,,	८२१
सद्दृग्मूलगुणः साम्यकाम्यया	धर्मसं०	३.१
सद्दृग्वाऽणुव्रती वा भवतनु	धर्मसं०	७.१९९
सद्दृशं पश्यन्ति बुधाः	अमित०	६.६२
स द्रव्याद्रव्ययोर्मध्ये	,,	९.३४
सदाचारैर्निजैरिष्टैः	महापु०	३८.१०
सदाऽतिथिभ्यो विनयं	अमित०	१०.४०
सदाधर्मध्वान-स्वपरहित	व्रतो०	४३४
सदापि यो यत्नशतैः	अमित०	१४.२७
सदा मनोऽनुकूलाभिः	,,	११.६४
सदाभ्रकदलीनालिकेर	प्रश्नो०	२०.२०३
सदार्चाऽष्टाह्निकी	पुरु०शा०	३.१२२
सदा मूकत्वमासेव्यं	कुन्द०	८.३११
सदावदातमहिमा	रत्नभा०	३
सदाशिवकला रुद्रे	यशस्ति०	६७
सदाष्टम्युपवासस्य	प्रश्नो०	१९.३७
स दिवा ब्रह्मचारी	गुणभू०	३.७१
सदुपशमतो हि षण्णां	श्रा०सा०	१.१५३
सदेर्यापथसन्ने	प्रश्नो०	२०.१२
स देहस्य च कर्तृत्वे	अमित०	४.८२
सदैन्यार्थो मुदायत्ते	कुन्द०	८.४०७
सदैव वस्तुनः स्पर्शं	कुन्द०	५.१७५
सदोषं व्यवसमं यो	प्रश्नो०	१४.१८
सदोषा देवता लक्ष्म्याद्यर्थं	धर्मसं०	१.४०
सदोषान्नरतो याति	प्रश्नो०	२४.७८
सदोषां बहुलोमां च	कुन्द०	५.१२९
सद्यः कृतापराधेषु	लाटी०	२.७२
सद्योगालितनीरेण	प्रश्नो०	१२.१०५
सद्धर्मदुर्गसुस्वामि	कुन्द०	८.१
सद्धर्मं सुभगो नीरुक्	कुन्द०	५.२०
सद्धर्मपरमं सारं	प्रश्नो०	१.१६
सद्धर्मसङ्घवृद्धयर्थं	गुणभू०	१.४०
सद्रत्नकरकं प्रोच्चैः	महापु०	३८.२४६
स द्वेधा प्रथमश्मश्रु	सागार०	७.३८
सद्भावाऽन्या त्वसद्भावा	धर्मसं०	६.८७
सद्भावेतरभेदेन	गुणभू०	३.१०६
सम्पद्वल्लीकुठारो	श्रा०सा०	३.३७०
सद्राज्यं वरणो राजा	प्रश्नो०	७.५४
सद्-राज्ञी रामदत्ताख्या	प्रश्नो०	१३.६०
सद्-वस्त्रगृहसन्माला	,,	२१.३९
सद्-वृत्तान् धारयन्	महापु०	३८.१७१
सद्धर्मारामसारस्य	प्रश्नो०	१२.७१
सद्धर्मिणां च सन्मान	,,	२.६०
सद्धर्मिणां मुनीनां च	,,	४.४५
सद्धर्मिणि मुनौ जैने	,,	४.५१
सद्धारो यस्य जीवस्य	प्रश्नो०	१.४२
स धन्यो नरकावासी	धर्मसं०	२.१३४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्धात्वादिसमुत्पन्नः	प्रश्नो०	२४.३४
सधान्यैर्हरितैः कीर्णं	महापु०	३८.१४
सन्दिग्धेऽपि परे	श्रा०सा०	३.७४
सन्दिग्धेऽपि परे लोके	उमा०	२७२
सन्धानकं त्यजेत्सर्वं	सागार०	३.११
सन्धानं त्रसजीवानां	धर्मोप०	४.९२
सधर्मभ्रातृवर्गाश्च	लाटी०	४.४५
सधर्मिणः सहायाश्च	,,	४.४७
सधर्मेनानभिज्ञेन	,,	१.२८
सधर्मिणोऽपि दक्षिणाद	सागार०	६.१९
सधर्मिषु सदा भक्तो	श्रा०सा०	१.५२३
सधर्मो यत्र नाधर्म	यशस्ति०	२७६
	श्रा०सा० (उक्तं)	३.४२
स धर्मो हि द्विधा	प्रश्नो०	१.२२
स धर्मलाभशब्देन	अमित०	८.७५
स धार्मिकः स सद्दृष्टि	,,	१३.७४
सद्वात्सल्यं प्रकर्तव्यं	प्रश्नो०	९.६६
सद्विचारं परित्यज्य	,,	११.११
सद्विष्ण्वादिकुमारोः	,,	९.२
सद्-व्रतं वहतां जिह्म	श्रा०सा०	३.७२
सन्तः सदैव तिष्ठन्तु	पुरु०शा०	६.११९
सन्तानार्थं मृतावेव	महापु०	३८.१३४
सन्तापरूपो मोहाङ्गः	सागार०	४५३
सन्ति जीवसमासास्ते	लाटी०	४.६६
सन्ति तत्राप्यतीचाराः	,,	५.११७
		१.१३७
सन्ति तत्राप्यतीचारा	लाटी०	१.१७५
		४.२६१
		५.२१३
सन्ति ते त्रिभुवने	अमित०	१४.५
सन्ति संज्वलनस्योच्चै	लाटी०	३.२०२
सन्ति संसारिजीवाना	लाटी०	३.२५
सन्ति स्वामिन्नतीचारा	प्रश्नो०	१४.२६
सन्तु ते मुखो नित्यं	धर्मो०	१.३
सन्तु शास्त्राणि सर्वाणि	कुन्द०	८.३००
सन्तो गुणेषु तुष्यन्ति	यशस्ति०	९१
सन्तोषं स समाधत्ते	प्रश्नो०	१८.१०
सन्तोषपीयूषरसावसिक्त	श्रा०सा०	३.२५५
सन्तोषपोषतो यः स्याद्	सागार०	४.१४
सन्तोषसदृशं सौख्यं	प्रश्नो०	१६.१७
सन्तोषाच्छ्रीः समायाति	,,	१६.२२
सन्तोषाख्यसुधां पीत्वा	,,	१६.१९
सन्तोषाज्जायते धर्मो	,,	१६.१६
सन्तोषालम्बनादरः स्यादल्पा	धर्मसं०	३.१३
सन्तोषासनमासीनो	प्रश्नो०	१६.१८
सन्तोषो भाव्यते तेन	अमित०	१२.१०३
सन्त्यज्य सप्तप्रकृतीः	प्रश्नो०	४.३०
सन्त्यत्र विषयाः सीम्नः	लाटी०	५.११२
सन्त्येवानन्तशो जीवाः	महापु०	३८.१८
सन्त्येवान्यानि सत्यस्मिन्	पुरु०शा०	४.५४
सन्धीन् पृष्ठकरण्डस्य	कुन्द०	५.२१३
सन्ध्यायां यक्षरक्षोभिः	(उक्तं)श्रा०सा०	३.१०७
सन्ध्यायाः कुरुतात्तत्र	धर्मसं०	४.६६
सन्ध्यायां श्रीद्रुहं निद्रां	कुन्द०	४.७
सन्ध्यास्वग्नित्रये देव	महापु०	४०.७९
सन्नसंश्च समावेव	यशस्ति०	२०५
सन्दिग्धं च यदन्नादि	लाटी०	१.२०
सनाथं जिनबिम्बेन	श्रा० सा०	१.७३०
	,,	१.७१४
सनामस्थापना द्रव्य	गुणभू०	३.१०४
सनिषिद्धो यथाम्नायाद्	लाटी०	३.१७१
सन्मानसहितं दानं	कुन्द०	८.३९९
संन्यासः परमार्थेन	धर्मसं०	७.१७३
संन्यासमरणं दानशील	श्रा० सा०	३.३५१
संन्यासमरणात्केचित्	प्रश्नो०	२२.४२
संन्यासयुक्तसत्पुंसो	,,	२२.३६
संन्यासविधिना केचि	,,	२२.४१
संन्यासस्य व्यतीपातान्	,,	२२.४८
संन्यासार्थी ज्ञकल्याण	धर्मसं०	७.४१
संन्यासिनस्ततः कर्णे	,,	७.८०
स नृजन्म परिप्राप्तो	महापु०	३९.८३
सन्मार्गप्रवणः शिष्यः	श्रा० सा०	१.५५२
संमार्जयित्वा क्रियते	व्रतो०	१४
सन्मातृपक्षसज्ञानं	प्रश्नो०	११.१७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्मार्दवं समादाय	प्रश्नो०	११.२६
सत्पर्यङ्कासनासीनो	उमा०	४२०
सत्पात्रं तारयत्युच्चैः	सं०भाव०	१३०
सत्पात्रविनियोगेने	यशस्ति०	४०९
सत्पात्रालाभतो देयं	धर्मसं०	४.१२७
सत्पात्रेषु यथाशक्ति	पद्म० पंच०	३१
सत्पात्रोपगतं दानं	चारित्रसा०	१४
सत्पुष्पाणि समादाय	प्रश्नो०	१५.१२१
सपत्नीष्वपि सम्प्रीतिः	कुन्द०	५.१६५
सपाकानां फलानां च	कुन्द०	३.७६
सप्तक्षणे स्फुरच्छोभे	श्रा०सा०	१.४१७
सप्तर्त्ति परिहरन्ति मलाना	अमित०	७.१७
सप्त प्रकृतिकर्माणि	प्रश्नो०	४.९
सप्त प्रकृतिदुष्कर्मशमने	,,	४.५
सप्त प्रकृतिनिःशेष	,,	४.७
सप्त प्रकृतिसंस्थाने	व्रतो०	३१८
सप्तप्रकारमिथ्यात्व	अमित०	२.१३
सप्तमाद् दशवर्षान्तं	कुन्द०	५.२२८
सप्तमी प्रतिमा चास्ति	लाटी०	६.२४
सप्तम्यां च त्रयोदश्यां	गुणभू०	३.६३
सप्तविंशतिरुच्छ्वासः	अमित०	८.६९
सप्तव्यसननिर्मुक्ता	उमा०	९२
सप्तव्यसनसंसक्ता	प्रश्नो०	१८.८२
सप्तषष्टिरशीत्यामा	धर्मसं०	१.३५
सप्ताक्षरं महामंत्रं	अमित०	१५.४२
सप्ताक्षराणि पञ्चैव	भव्यध०	५.२८६
सप्ताधोभूमिजानां च	,,	३.२०८
सप्तानां प्रकृतीनां तत्क्षयात्	धर्मसं०	१.६८
सप्तानां प्रकृतीनां हि	धर्मोप०	१.४२
सप्तानामुपशमतः	श्रा० सा०	१.१५२
सप्तानां संक्षये तासां	पुरु० शा०	३.४७
सप्तान्तरायाः सन्तीह	उमा०	३१९
सप्ताष्टनवमं चैव	भव्यध०	१.५६
सप्तैव नरकाणि स्युः	पद्म० पंच०	१२
सप्तैवात्र नरकाणि	प्रश्नो०	१२.५७
सप्तोत्तानशया लिहन्ति	सागार०	३.६८
सपर्यायां सजन्नस्यां	धर्मसं०	७.६९
स पुमानन्नु लोके	यशस्ति०	२६९
सम्पूज्य चरणौ साधोः	सं०भाव०	६२
सम्प्रत्यत्र कलौ काले	पद्म०पंच०	६
सम्प्रत्यपि प्रवर्तेत	,,	५
सम्प्राप्ता येन सत्पूजा	प्रश्नो०	१६.५४
सम्प्राप्तेऽत्र भवे कथं	देशव्र०	४
सम्प्राप्य रत्नत्रित	पद्मनं० प्र०	१५
सर्पिः क्षीरं गुडं तैलं	भव्यध०	१.२०३
सर्पिः क्षीरेषु मुख्येषु	पुरु० शा०	४.१५
स प्रियं चिन्तयेत् प्राज्ञः	भव्यध०	१.१६
स पृच्छति गुरुं नत्वा	प्रश्नो०	१.१२
स प्रवृत्तिनिवृत्त्यात्मा	यशस्ति०	३
स प्रोवाच रहस्यं	व्रतो०	५३३
स प्रोषधोपवासस्तु	धर्मोप०	४.१३६
सत्प्रोषधोपवासस्य	प्रश्नो०	२२.६२
स प्रोषधोपवासी	सागार०	७.४
स प्रोषधोपवासो यच्च	,,	५.३४
सर्वसाधारणैर्दोषैः	पुरु०शा०	३.१४८
स सप्तशतयोगिनां परम	श्रा०सा०	१.६११
सबद्धा कर्त्तिकां तीक्ष्णां	प्रश्नो०	१३.६१
सबलान्तेन स्यात्पुंसां	,,	२३.६१
सबलो दुर्बलो चात्र	,,	१२.१२३
स ब्रूते शृणु हे वत्स	,,	५.२३
स भण्यते गृहस्वामी यो	अमित०	९.२९
स भव्यो भुवनाम्भोज	धर्मोप०	४.२५१
सभां प्रविश्य शीघ्रेण	व्रतो०	५३१
सभायां दृश्यते यो हि	प्रश्नो०	३.१०
स भूभारः परं प्राणी	यशस्ति०	२७०
स भोगो भुज्यते भोज्य	पुरु०शा०	४.१६०
सभ्यैः पृष्टोऽपि न ब्रूयाद्	धर्मसं०	३.४९
समता सर्वभूतेषु	पद्म०पंच०	८
	वराङ्ग०	१५.१६
	लाटी०	२.९३
	(उक्त) लाटी०	५.५५
समत्वं सर्वजीवेषु	धर्मोप०	४.१२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समतो विरताविरतः	अमित०	६.१७
समधातोः प्रशान्तस्य	कुन्द०	१.१५
समन्तभद्रः सुगतो	पुरु०शा०	५.७१
समञ्जसत्वमस्येष्टं	महापु०	३८.२७९
समदानफले नासौ	धर्मसं०	६०.२०९
समभङ्गो भवेद्वस्तु	प्रश्नो०	१७.९५
समभ्यस्तागमा नित्यं	धर्मसं०	६.१८
समभ्यस्तव्रताः केचिद्	लाटी०	६.७३
समं मद्यामिषेणैव	प्रश्नो०	१२.२०
समाधिकव्ययं कर्त्तुः	कुन्द०	८.५७
समयान्तरपाखण्ड	यशस्ति०	१३९
समयिकसाधकसमयद्योतक	सागार०	२.५१
सम-रस-रङ्गोद्गममृते	,,	४.५४
समर्थं निर्मलीकर्तुं	अमित०	१५.१८
समर्थश्चित्तवित्ताभ्यां	यशस्ति०	१९४
समर्थाय स्वपुत्राय	धर्मसं०	६.१९६
समर्थोऽपि न यो दद्याद्	पद्म०पंच०	३४
समर्थो यो महालोभी	प्रश्नो०	२०.१०५
समवशरणलीला	व्रतो०	४३९
समवशरणवासान्	यशस्ति०	४८०
समवायेन सम्बन्धः	अमित०	४.४१
समस्तकर्मनिर्णाशः	व्रतो०	३२२
समस्तकर्मनिर्मुक्तं	,,	४२६
समस्तकर्मविश्लेषो	अमित०	१५.३
समस्ततत्परीवारं	श्रा०सा०	१.४३१
समस्तपुद्गलः स्कन्धः	भव्यध०	२.१८२
समस्तभव्यलोकानां	व्रतो०	४४०
समस्तयुक्तिनिर्मुक्तः	यशस्ति०	९०
समस्तशास्त्रविज्ञानं	प्रश्नो०	२०.६७
समस्तादरनिर्मुक्तो	अमित०	८.७६
समस्तानां तथैकेन	,,	२.२१
समस्तान् संसृतेर्हेतून्	पुरु०शा०	६.६९
समस्ताः पुरुषा येन	अमित०	४.५०
समहाभ्युदयप्राप्य	महापुरुष०	३९.१८०
समं समञ्जसत्वेन	,,	३८.२८१
समानं सर्वदेवेषु	प्रश्नो०	४.२८
समाना जातिशीलाभ्यां	कुन्द०	३.५६
समायां निशि पुत्रः स्याद्	कुन्द०	५.१८१
समीरण इवाबद्धः	कुन्द०	११.१४
सम्बद्धशुद्धसंस्कारं	कुन्द०	८.३०४
सम्बन्धिनी कुमारी च	कुन्द०	५.१२८
स मुनिः वृक्षमूलेऽपि	प्रश्नो०	२१.१३६
सन्मानादि यथाशक्ति	लाटी०	२.१६५
सम्पूर्णमति स्पष्टं	यशस्ति०	५७५
समाधिमरणस्येति	पुरु०शा०	६.११७
समाधिविध्वंसविधौ	अमित०	१५.१०८
समाधिर्विहितस्तेन	,,	१३.७०
समाधिसाधनचणे	सागार०	८.२६
समाध्युपरमे शान्ति	,,	६.४
समानदत्तिरेषा स्यात्	महापु०	३८.३९
समानायात्मनाऽन्यस्मै	,,	३८.३८
समाश्रित्य गुरुं कञ्चिन्	पुरु०शा०	६.१०३
समाहितमनोवृत्तिः	अमित०	८.९९
समितीर्न विना स्यातां	धर्मसं०	६.१
समिथ्यात्वास्त्रयो	यशस्ति०	४००
समीक्ष्य व्रतमादेयं	सागार०	२.७९
समीरणस्वभावोऽयं	अमित०	४.३०
समीरणाशीव विभीमरूपः	,,	७.३०
समीपीकरणं पङ्क्तेः	सं० भाव०	८३
समीहन्ते शठा येऽपि	प्रश्नो०	१५.४८
समुपार्ज्यं धनं लक्ष्मी	,,	१३.६८
समुत्थाप्य प्रमृज्याश्रु	श्रा०सा०	१.२८६
समुद्दिश्य कृतं यावदन्न	लाटी०	६.५३
समुत्पद्य विपद्येह	यशस्ति०	२५९
समुल्लङ्घ्य पितुर्वाक्यं	श्रा०सा०	१.६७९
सः मूर्खः सजडः सोऽज्ञ	यशस्ति०	२७१
सम्मूर्च्छंति मुहूर्त्तेन	गुणभू०	३.२१
सम्मूर्च्छितानन्तशरीरिवर्गं	श्रा०सा०	३.४४
समृद्धे विजयार्धेऽस्मिन्	,,	१.३४५
समे यत्नेऽपि यच्चैके	,,	१.११८
सम्पदस्तीर्थंकर्तॄणां	अमित०	११.१९
सम्पदं सकलां हित्वा	अमित०	१२.५९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पूज्य निधिरत्नानि	महापु०	३८.२३८
सम्पूर्णदेशभेदाभ्यां	पद्म०पंच०	४
सम्प्रदानस्य काले सा	श्रा०सा०	१.२४१
सम्प्रदायमनादृत्य	महापु०	३९.१६१
सम्प्राप्येन्द्रधनुर्दृष्टं	कुन्द०	८.९१
सम्मुखं पतितं स्वस्य	कुन्द०	१.७६
सम्यग्देशस्य सीमादि	कुन्द०	८.३
सम्यक्कायकषायाणां	हरिवं०	५८.४६
सम्यक्चारित्रसद्वस्त्रा—	उमा०	१८९
सम्यक्चारित्राभ्यां	पुरुषा०	२१७
सम्यक्त्वं च दृढं यस्य	भव्यध०	१.७८
सम्यक्त्वचरित्रबोध	पुरुषा०	२२२
सम्यक्त्वज्ञानचारित्र	यशस्ति०	४
	,,	७
सम्यक्त्वं घ्नन्त्यनन्तानु	,,	८९३
सम्यक्त्वचरणज्ञान	अमित०	१३.१४
सम्यक्त्वं चैव सूक्ष्मत्वं	लाटी०	३.१४०
सम्यक्त्वं त्वं परिज्ञाय	प्रश्नो०	११.३६
सम्यक्त्वं तेन चक्रे	व्रतो०	५३६
सम्यक्त्वत्रितयं श्वभ्रे	श्रा०सा०	१.१६३
सम्यक्त्वं दुर्लभं लोके	लाटी०	२.१
सम्यक्त्वं दूष्यते शङ्का	पुरु०शा०	३.५७
सम्यक्त्वद्रुमसिञ्चनं	धर्मोप०	४.२२२
सम्यक्त्वद्वितयं ज्ञेयं	श्रा०सा०	१.१६५
सम्यक्त्वद्वितयं प्रोक्तं	उमा०	३३
सम्यक्त्वं नाङ्गहीनं	यशस्ति०	२२३
सम्यक्त्वं निर्मलं पुंसा	उमा०	२४६
सम्यक्त्वपूर्वकमुपासकधर्मं	धर्मसं०	७.२००
सम्यक्त्वप्रकृतिर्ज्ञेया	प्रश्नो०	४.२७
सम्यक्त्वभक्तिजिन	भव्यध०	२.१९७
सम्यक्त्वं भावनानाहुः	यशस्ति०	५
सम्यक्त्वमङ्गहीनं	यशस्ति०	६
सम्यक्त्वममलममला	सागार०	१.१२
सम्यक्त्वमलदोषाः स्युः	प्रश्नो०	११.७
सम्यक्त्वमेघः कुशलाम्बु	अमित०	२.७०
सम्यक्त्वमेव कुरुते	व्रतो०	५२२
सम्यक्त्वं यस्य	प्रश्नो०	११.५४
सम्यक्त्वरत्नभूषो	अमित०	६.११
सम्यक्त्वरत्नसंयुक्तो	धर्मोप०	१.४७
सम्यक्त्वरहितं ज्ञानं	धर्मसं०	६.२२१
सम्यक्त्वरहितोऽशेष	श्रा०सा०	३.३३४
	उमा०	४४५
सम्यक्त्ववर्जितोऽनेक	श्रा०सा०	३.३३३
	उमा०	४४४
सम्यक्त्वं वस्तुतः सूक्ष्मं	लाटी०	२.३०
सम्यक्त्वव्रतकोपादि	गुणभू०	१.१८
सम्यक्त्वव्रतशीलानि	उमा०	२३९
सम्यक्त्वव्रतसम्पन्नो	पूज्य०	४४
सम्यक्त्वसममात्मीनं	धर्मसं०	१.६१
सम्यक्त्वं समलं चेत्स्यान्न	,,	१.५४
सम्यक्त्वसदृशो धर्मो	प्रश्नो०	११.५०
सम्यक्त्वं सर्वजन्तूनां	रत्नमा०	६
सम्यक्त्वसुहृदापन्न	धर्मसं०	७.८५
सम्यक्त्वसंयुतः प्राणी	उमा०	८८
सम्यक्त्वसंयुते जीवे	श्रा०सा०	१.७५९
सम्यक्त्वसंयुतो जीवो	धर्मसं०	१.७१
सम्यक्त्वस्य गुणोऽप्येष	लाटी०	३.२७२
सम्यक्त्वस्य बलाज्जीवः	प्रश्नो०	११.६०
सम्यक्त्वस्य व्रतस्यापि	गुणभू०	१.३२
सम्यक्त्वस्याश्रयश्चेत्	यशस्ति०	२५४
सम्यक्त्वस्योदये षण्णां	पुरु०शा०	३.४६
सम्यक्त्वात् सुगतिः	यशस्ति०	२७१
सम्यक्त्वादिगुणः सिद्धः	धर्मसं०	६.४३
सम्यक्त्वादिगुणोपेता	प्रश्नो०	१०.४२
सम्यक्त्वदिगुणोपेताम्	प्रश्नो०	२०.१४
सम्यक्त्वाध्युषिते जीवे	अमित०	२.६८
सम्यक्त्वान्नापरं मित्रं	प्रश्नो०	११.५१
सम्यक्त्वालंकृतः पूज्यो	,,	११.५२
सम्यक्त्वालङ्कृतः शान्तो	अमित०	१५.२८
सम्यक्त्वालंकृता जीवाः	प्रश्नो०	११.६४
सम्यक् समस्तसावद्य	उमा०	२६१
सम्यग् रत्नत्रयं यस्य	भव्यध०	१.१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वेन विना किञ्चित्	प्रश्नो०	११.५८
सम्यक्त्वेन विना प्राणी	,,	११.४६
सम्यक्त्वेन विना यो ना	,,	२०.११०
सम्यक्त्वेन विना स्वर्गात्	प्रश्नो०	११.४९
सम्यक्त्वेन विहीनोऽपि	लाटी०	२.१३३
सम्यक्त्वेन समं किञ्चित्	प्रश्नो०	११.५७
सम्यक्त्वेन समं वासो	,,	११.४७
सम्यक्त्वेन समायुक्तो	भव्यध०	१.७६
	धर्मोप०	४.१५१
सम्यक्त्वेन हि सम्पन्नः	धर्मसं०	१.७८
सम्यक्त्वेनाविनाभूत	लाटी०	२.१०२
	,,	२.७५
सम्यक्त्वे रसे स्वच्छे	भव्यध०	१.७९
सम्यक्त्वे सति सर्वाणि	धर्मसं०	१.७७
सम्यक्त्वोत्तमभूषणो—	अमित०	३.८६
सम्यगज्ञातमार्गत्वाद्	गुणभू०	१.३७
सम्यग्ज्ञानं कार्यं	पुरुषा०	३३
सम्यग्ज्ञानत्रयेण प्रविरति	यशस्ति०	४७६
सम्यग्ज्ञानप्रसादेन	धर्मोप०	२.३०
सम्यग्ज्ञानं मतं कार्यं	श्रा०सा०	२.४३
	उमा०	२५०
सम्यग्ज्ञानं विना नैव	गुणभू०	२.३४
सम्यग्ज्ञानादि वृद्धयादि	हरिवं०	५८.७१
सम्यग्गमनागमनं	पुरुषा०	२०३
सम्यग्गुरूपदेशेन सिद्ध	सागार	६.२३
सम्यगेतत्सुधाम्भोधेः	यशस्ति०	६४२
सम्यगयनं तच्छुद्धि	धर्मसं०	६.३
सम्यग्दृग्ज्ञप्तचारित्रं	लाटी०	३.२३८
सम्यग्दृग्ज्ञानचारित्रं	पुरु०शा०	३.९८
सम्यग्दृग्बोधचारित्र	पद्म० पंच०	२
सम्यग्दृग्बोधवृत्तानि	श्रा० सा०	१.८१
सम्पूर्णदृग्मूलगुणो	सागार०	४.१
सम्यग्दृशाथ मिथ्यात्व	लाटी०	४.३७
सम्यग्दर्शनचारित्र	अमित०	१३.४८
सम्यग्दर्शनबोधवृत्ततपसां	धर्मसं०	७.१९७
सम्यग्दर्शनमष्टाङ्गं	लाटी०	३.२

सम्यग्दर्शनसंशुद्धो	धर्मोप०	४.२३२
सम्यग्दर्शनसद्रत्नं	,,	१.९
सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः	प्रश्नो०	११.७४
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः	धर्मसं०	२.१
	रत्नक०	२८
	(उक्तं) चारित्रसा०	८
सम्यग्दर्शनशुद्धाः	रत्नक०	१३७
	रत्नक०	३५
	(उक्तं) श्रा०सा०	१.७५६
सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः	प्रश्नो०	२०.१६
सम्यग्दर्शनमाम्नातं	पुरु०शा०	३.४१
सम्यग्दण्डो वपुषः	पुरुषा०	२०२
सम्यग्दृग्बोधवृत्तानि	उमा०	४
सम्यग्भक्ति कुर्वतः	अमित०	१०.४९
सम्यग्भावितमार्गोऽन्ते	सागार०	८.१८
सम्यग्दृष्टिपदं चान्ते	महापु०	४०.४४
सम्यग्दृष्टिपदं चास्मात्	,,	४०.५४
	,,	४०.६१
सम्यग्दृष्टिपदं चैव	,,	४०.३६
सम्यग्दृष्टिपदं बोध्य	,,	४०.१२६
सम्यग्दृष्टिपदं बोध्ये	,,	४०.१२२
सम्यग्दृष्टिरधःश्वभ्र	पुरु० शा०	३.५१
सम्यग्दृष्टिः श्रावकीयं	अमित०	३.५०
सम्यग्दृष्टिः सातिचार	धर्मसं०	२.४
सम्यग्दृष्टिः सदैकत्वं	लाटी०	३.३६
सम्यग्दृष्टिस्तवाम्बेद	महापु०	४०.११२
सद्-दृष्टिस्तु चिदंशैः स्वैः	लाटी०	३.५७
सम्यग्दृष्टिस्तु स्वं रूपं	,,	३.६१
सम्यग्दृष्टिः स्फुटं नीच	प्रश्नो०	११.७१
सम्यग्दृष्टेः कुदृष्टेश्च	लाटी०	३.१५
सम्यग्दृष्टेस्तु तत्सर्वं	,,	४.३४
सम्यग्मिथ्याविशेषाभ्यां	,,	२.६२
सम्यग्देशस्य सीमादि	कुन्द०	८.३
सम्यङ् मिथ्यात्वमिश्रेण	प्रश्नो०	४.८
सम्यक्सुभद्राहितचित्तवृत्तिः	श्रा.सा. ३,	(आशी०)
स यजन् याजयन्	महापु०	३९.१०३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स यतो बन्धतोऽभिन्नो	अमित०	४.४५
समयी साधकः साधुः	यशस्ति०	७७६
सरङ्गा मातङ्गा	श्रा०सा०	१.१०९
सरघावदनविनिर्गत	,,	३.५१
सरलमनाः सरलमतिः	व्रतो०	३७१
सरलोऽपि स दक्षोऽपि	अमित०	१२.७५
सरसं नीरसं वाऽन्नं	पुरु०शा०	६.५०
सरस्वत्याः प्रसादेन	धर्मोप०	४.८०
सरागं वीतरागं च	पुरु० शा०	३.५४
सरागवीतरागात्म	यशस्ति०	२१२
सरागे वीतरागे वा	लाटी०	३.८०
सरागोऽपि हि देवश्चेद्	(उक्त) श्रा.सा.	१.१४६
	उमा०	१९
सरितां सरसां वारि	धर्मसं०	६.५२
सरित्यन्यत्र चागाध	पुरु०शा०	५.९४
सरोगः स्वजनद्वेषी	कुन्द०	५.२३
सरोगा राजहंसा स्युः	श्रा०सा०	१.३४
सविभ्रमवचोभिश्च	कुन्द०	५.१९३
स विवेक धुरोद्धार	,,	१०.१९
स विषाणि क्षणादेव	,,	३.७२
स संयमस्य वृद्ध्यर्थं	हरिवं०	५८.४४
सल्लक्ष्मीर्गृहदासीव	प्रश्नो०	१८.८३
सल्लेखनां करिष्येऽहं	सागार०	७.५७
सल्लेखनाऽथवा ज्ञेया	धर्मसं०	७.३०
सल्लेखनाविधानेन	प्रश्नो०	२२.४३
सल्लेखनां स सेवेन	धर्मसं०	७.२२
सल्लेखनाऽसंलिखितः	सागार०	८.२२
सर्गावस्थितिसंहार	यशस्ति०	८३
सरोवरेऽत्र संस्वच्छनीरे	प्रश्नो०	७.३४
सर्वं एव हि जैनानां	यशस्ति०	४४६
सर्वकर्मक्षयो येन	भव्यध०	२.१९६
सर्वकार्येषु सामर्थ्यं	कुन्द०	८.३७०
सर्वक्रियासु निर्लेपः	,,	११.१५
सर्वं कृत्वा गता सोऽपि	प्रश्नो०	६.३४
सर्वं चेतसि भासेत	यशस्ति०	२६
सर्वजन्तुषु चित्तस्य	गुणभू०	१.५३
सर्वजीवहितः सर्वकल्याण	उमा०	१९०
सर्वदा सर्वभाण्डेषु	कुन्द०	२.५२
सर्वमेतदिदं ब्रह्म	,,	८.२५२
सर्ववस्तुप्रभावज्ञः	,,	१२.९
सर्वज्ञत्वं विना नैषो	गुणभू०	१.९
सर्वज्ञभाषितं यद्-ग्रथितं	धर्मसं०	६.४४
सर्वज्ञवीतरागेण	पुरु० शा०	३.६१
सर्वज्ञः सर्वगः सार्वः	,,	५.७४
सर्वज्ञं सर्वलोकेशं	यशस्ति०	४९
सर्वज्ञं सर्ववागीशं	रत्नमा०	१
सर्वज्ञानावधिज्ञान	गुणभू०	१.६३
सर्वज्ञाय नमो वाक्य	महापु०	४०.७३
सर्वज्ञेन विरागेण	अमित०	२.७
सर्वज्ञो दोषनिर्मुक्तो	भव्यध०	१.६०
सर्वज्ञो यज्ञमार्गस्यानुज्ञा	गुणभू०	१.५८
सर्वं सर्वज्ञज्ञानेन	लाटी०	१.१३
सर्वतः प्रस्फुरद् बाल	श्रा०सा०	१.३६०
सर्वतः सर्वविषयं	लाटी०	५.३५
सर्वतः सिद्धमेवतैद्	,,	३.२५२
सर्वतोऽप्युपहसन्ति मानवा	अमित०	५.४
सर्वतो विरतिस्तेषां	लाटी०	२.१५२
सर्वतोऽस्य गृहत्यागो	,,	६.५४
सर्वत्र भ्रमता येन	अमित०	९.४७
सर्वत्र सर्वदा तत्त्वे	,,	४.८९
सर्वथा ब्रह्मचर्यं च	पुरु० शा०	३.१८
सर्वथा सर्वसावद्य-त्यागः	धर्मोप०	४.१२१
सर्वथा सुरतं यस्तु	पुरु०शा०	६.३३
सर्वदा चित्तसङ्कल्पात्	धर्मोप०	४.४
सर्वदा शास्यते जोषं	अमित०	१२.१०२
सर्वदुःखाकरां पापवल्लीं	प्रश्नो०	१२.४४
सर्वदोषविनिर्मुक्तं	,,	३.२१
सर्वदोषोदयोमद्यान्मस	यशस्ति०	२५६
सर्वपापकरं पञ्चभेदं	प्रश्नो०	१७.७७
सर्वपापास्रवे क्षीणे	यशस्ति०	६८२
सर्वः प्राणी न हन्तव्यो	महापु०	४०.१९५
सर्वं फलमविज्ञानं	सागार०	३.१४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वभाषामयी भाषा	अमित०	१२.३
सर्वभूतेषु यत्साम्य	धर्मसं०	४.४२
सर्वभोगोपभोगानां	अमित०	१२.१२९
सर्वभोग्यतृणाम्ब्वादेः	धर्मसं०	३.५६
सर्वमावश्यकं नित्यं	प्रश्नो०	१८.९१
सर्वमाहूय देवाश्च	भव्यध०	६.३५६
सर्वमेधमयं धममभ्युपेत्य	महापु०	३९.१३४
सर्वमेव विधिर्जैनः	रत्नभा०	६५
सर्वविनाशी जीवत्रसहननं	अमित०	६.१८
सर्वविवर्तोत्तीर्णं यदा	पुरुषा०	११
सर्वव्यसनदां क्रूरां	प्रश्नो०	१५.२२
सर्वव्रतच्युते ह्येकं	,,	२३.३९
सर्वशब्देन तत्रान्तर्बहिः	लाटी०	३.२४९
सर्वसङ्गपरित्यक्ताः	प्रश्नो०	२०.६
सर्वसङ्गपरित्यागाद्	व्रतो०	४१०
सर्वसत्त्वगोपेतान्	प्रश्नो०	३.१३३
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः	पुरु० शा०	३.३३
सर्वसागार धर्मेषु	लाटी०	४.१८४
सर्वसावद्य कार्येषु	धर्मोप०	४.२४२
सर्वसावद्यनिर्मुक्तः	पुरु० शा०	५.१५
सर्वसावद्ययोगस्य	लाटी०	१.२
सर्वस्मिन्नप्यस्मिन्	पुरुषा०	९९
सर्वसंस्तुत्यमस्तुत्यं	यशस्ति०	६४५
सर्वाक्रियानुलोमा	,,	३८७
सर्वाक्षर-नामाक्षर-मुख्याक्षरा	,,	५६६
सर्वागमपदानां च	धर्मोप०	२.२०
सर्वागमफलावाप्ति-सूचनं	गुणभू०	१.६०
सर्वाङ्गमलसंलिप्तान्	प्रश्नो०	३.१३६
सर्वाङ्गमलसंलिप्ते	,,	४.३९
सर्वाङ्गस्पन्दनिर्मुक्तः	,,	१८.१८३
सर्वाङ्गिभ्योऽभयं दानं	,,	२०.७८
सर्वाघौघविनाशार्थं	,,	२२.१८
सर्वाणि गृहकार्याणि	अमित०	८.१५
सर्वातिचारनिर्मुक्तं	{ प्रश्नो०	१२.१३१
	,,	१८.१००
सर्वातिचारसन्त्यक्तं	,,	१४.३५
सर्वान् दोषान् परित्यज्य	प्रश्नो०	२२.२१
सर्वानर्थप्रथमं मथनं	पुरुषा०	१४६
सर्वादानं वरं लोके	प्रश्नो०	१४.७
सर्पादिसंयुते गेहे	,,	२३.७२
सर्वान्नं च जलं सोऽपि	,,	७.७
सर्वान् पिण्डीकृतान् दोषान्	,,	११.३८
सर्वारम्भकरं ये	अमित०	९.५९
सर्वारम्भं त्यजेद्यस्तु	प्रश्नो०	२३.९९
सर्वारम्भनिवृत्तेस्ततः	अमित०	६.७७
सर्वारम्भप्रवृत्तानां	यशस्ति०	७८७
सर्वारम्भं परित्यज्य	प्रश्नो०	२३.११३
सर्वारम्भविजृम्भस्य	यशस्ति०	४३४
सर्वारम्भा लोके	अमित०	६.७५
सर्वारम्भेण तात्पर्यं	लाटी०	४.२२२
सर्वारम्भेण त्याज्योऽयं	,,	५.५५
सर्वाविधिर्निर्विकल्प	गुणभू०	२.२७
सर्वावयवसम्पूर्णं	पुरु०शा०	३.३
सर्वाविरतिः कार्या	अमित०	६.३१
सर्वाशनं च पानं च	प्रश्नो०	१९.५
सर्वाशनं ग्राह्यं	,,	१७.११०
सर्वासाधारणाशेष	पुरु०शा०	५.७७
सर्वासामपि देवीनां	{ श्रा०सा०	३.१३१
	उमा०	३३९
सर्वास्रवनिरोधो यः	प्रश्नो०	२.३४
सर्वाहारं ततस्त्यक्त्वा	,,	२२.३०
सर्वे किशलयाः सूक्ष्म	श्रा०सा०	३.९५
सर्वे च पापदं विद्धि	प्रश्नो०	३.१२५
सर्वे जीवदयाधारा	पद्म०पंच०	३९
सर्वे द्वन्द्वपरित्यक्ताः	अमित०	११.७०
सर्वेन्द्रियसमाह्लादकारणं	प्रश्नो०	२१.४०
सर्वेऽपि भावाः सुखकारिणोऽमी	अमित०	१.२७
सर्वेभ्यो जीवराशिभ्यः	धर्मसं०	६.१९०
सर्वेषां देहिनां दुःखाद्	सागार०	२.७५
सर्वेषामपि धातूनां	कुन्द०	१.१४७
सर्वेषामपि दोषाणां	व्रतो०	५१६
सर्वेषामभयं प्रवृद्ध	देशव्र०	११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वेषामेक एवात्मा	अमित०	४.२८
सर्वेषां सर्वजाः सर्वे	कुन्द०	१२.१०
सर्वेषु गृहकार्येषु	प्रश्नो०	२४.१३
सर्वे सर्वगुणोपेताः	भव्यध०	१.७५
सर्वैरलंकृतो वर्यो	अमित०	९.११
सर्वैरेव समस्तैश्च	लाटी०	३.२४४
सर्वोपकारं निरपेक्षचित्तः	अमित०	१.५२
सर्वो वाञ्छति सौख्यमेव	देशव्र०	८
सर्वौषधिरेवात्र जाता	प्रश्नो०	२१.११४
सर्षपेण समं कन्दं	,,	१७.९६
स विद्वान्स महाप्राज्ञः	यशस्ति०	२७२
सविपाकाविपाकाख्य	गुणभू०	१.१९
सविपाका हि सर्वेषां	प्रश्नो०	२.३८
सविधायापकृतिरिव	यशस्ति०	८६२
सव्याधेरिव कल्पत्वे	अमित०	८.१९
स सार्वकालिको जैनैरेको	,	१२.१२०
सविज्ञानमविज्ञानं	,	१५.७७
सवित्रीव तनूजानां	यशस्ति०	१८१
सव्येनाप्रतिचक्रेण	अमित०	१५.४६
सशल्योऽपि जन क्वापिः	श्रा०सा० उमा०	३.२०१ ३६०
स शैवो यः शिवज्ञात्मा	यशस्ति०	८५६
स श्रीमानपि निःश्रीकः	,,	४०४
स श्रेष्ठोऽपि तथा गुणी	कुन्द०	१२.१२
सः सूनुः कर्मकार्येऽपि	लाटी०	१.१८२
ससंख्यजीवस्य	अमित०	५.७०
ससंभ्रममथोत्थाय	श्रा०सा०	१.२७७
सस्येन देशः पयसा	अमित०	१.१७
सस्मेरस्मरमन्दिरं	श्रा०सा०	३.२२५
सस्यादारम्भविरतौ	गुणभू०	३.७२
सस्यानि बीजं सलिलानि	अमित०	१.२१
सस्यानिवोषरक्षेत्रे	,,	२.२२
ससारं तमसारं च	प्रश्नो०	१०.१३
ससंवेगो मतो भीतिर्या	पुरु०शा०	३.१३२
स सुखं सेवमानोऽपि	यशस्ति०	२६८
सहगामि कृतं तेन	सागार०	७.५८

सहचित्तं संवद्धं	अमित०	७.१३
सहचित्तेन बोधेन	धर्मसं०	५.१४
सहजं चित्स्वरूपं मत्	भव्यधा०	५.३००
सहजं भूषणं शीलं	अमित०	१२.४६
सह धार्मिकेण सन्तप्त	व्रतो०	४७१
सहपांशुक्रीडितेन स्वं	सागार०	८.६०
सहसंभूतिरप्येष	यशस्ति०	४०३
सहस्रमयुतं लक्षं	कुन्द०	२.५९
सहस्रा द्वादश प्रोक्ता	अमित०	१५.३९
सहायाः भोजनं वासः	कुन्द०	८.१२३
सहासंयमिभिर्लोकैः	लाटी०	३.१७७
सह्यादि परमब्रह्मा	महापु०	३९.१२८
साकारं नश्वरं सर्वं	यशस्ति०	६९०
साकारमन्त्रभेदश्च	प्रश्नो०	१३.३२
साकारमन्त्रभेदोऽपि	लाटी०	५.२६
साकारमन्त्रभेदोऽसौ	हरिवं०	५८.५५
साकारे वा निराकारे	यशस्ति० उमा०	७९४ १७६
सा कूपे पतिता दुःखं	प्रश्नो०	१५.७५
सा क्रिया कापि नास्तीह	यशस्ति०	३२५
साक्षीकृता व्रतादाने	अमित०	१२.४२
सागारमनागारं धर्म	व्रतो०	६
सागारश्चानगारश्च	हरिवं	५८.२२
सागराद्रिनदीद्वीप	प्रश्नो०	१७.६
सागारे वाऽनगारे वा	भव्यध० सागार०	१.८९ ४.२
सागारोऽपि जनो येन	अमित०	१२.१०५
सागारो रागभावस्थो	हरिवं०	५८.२३
साङ्गोपाङ्गयुतः शुद्धो	धर्मसं०	६.१४७
सा च संजायते लक्ष्मीः	कुन्द०	२.११०
सा चैकदा मुनीनां	व्रतो०	५७
सा जातिः परलोकाय	यशस्ति०	८५५
सा तस्याः समीपे च	प्रश्नो०	६.३९
सा तु षोडशाऽऽम्नाता	महापु०	३८.१६५
सात्यकाख्यो भवेत्तत्र	प्रश्नो०	२१.१८
सात्त्विकः सुकृती दानी	कुन्द०	५.१९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा द्विधा सत्त्वसागारा	लाटी०	३.२४१
साधकः साधनं साध्यं	अमित०	१५.७
साधनेऽस्य प्रमाणेन	,,	४.८७
साधर्मिकस्य संघस्य	धर्मसं०	१.५१
साधर्मिकेषु या भक्तिः	धर्मोप०	१.२४
साधारणं च केषाञ्चिन्मूले	लाटी०	१.९१
साधारणा निकोताश्च	,,	४.९१
साधारणास्त्विमे मन्त्राः	महापु०	४०.९१
साधिके च व्यये जाते	धर्मोप०	४.१६२
साधितं फलवन्न्यायात्	लाटी०	४.१५७
साधितात्मस्वभावत्वा	प्रश्नो०	३.२८
साधुभ्यो ददता दानं	अमित०	९.६
साधुर्मौनान्मनःशुद्धि	धर्मसं०	३.४६
साधुवर्गे निसर्गो यद्	श्रा०सा०	१.७४१
	उमा०	७७
साधुलोकमहिताप्रमादतो	अमित०	१४.७१
साधु-साधु जिनेशान	श्रा०सा०	१.४७५
साधुस्थानाद्विषस्थानं	कुन्द०	८.२२८
साधुः स्यादुत्तमं पात्रं	धर्मसं०	४.१११
साधूनां साधुवृत्तीनां	श्रा०सा०	१.५२२
	उमा०	६३
साधूपास्या प्राणिरक्षा	अमित०	३.४४
साधो सल्लेखना तेऽन्त्या	धर्मसं०	७.६७
साध्यर्थे जीवरक्षायै	कुन्द०	२.६९
साध्यसाधनभेदेन	अमित०	२.५८
	श्रा०सा०	१.१५८
	उमा०	२७
साध्यभ्यस्तामृताध्वान्त्ये	धर्मसं०	७.१८
साध्वीनामेक एवेशो	पुरु०शा०	४.१०६
साध्वी भार्या कुलोत्पन्ना	लाटी०	४.४४
सानन्दो वनपालाय	धर्मसं०	६.१२३
सानुकम्पमनुग्राह्यो	महापु०	३८.३६
सान्द्रानन्दस्वरूपाद्भुत	पद्मनं०	७.११
सान्धकारे पुनः कार्यो	कुन्द०	१.१७३
सान्त्यन्तीनाम्न्यां पत्न्यां	,,	१७
सापराधे मनुष्यादौ	लाटी०	४.२६६
सापि स्नेहरसोद्गार	श्रा०सा०	१,४५६
सा पूजाऽष्टविधा ज्ञेया	उमा०	१६०
सापेक्षस्य व्रते हि स्याद्	सागार०	४.१८
साभिज्ञानं प्रदत्वा सा	प्रश्नो०	१३.९०
सामग्री विधुरस्यैव	सागार०	८.२
सामर्थ्यंत्वेऽपि यन्नैव	गुणभू०	१.४३
सामर्थ्यं प्राप्य राज्यं ते	धर्मसं०	२.१३०
सामस्तसावद्य वियोगतः स्या	श्रा०सा०	३.३
सामान्यजन्तुघातोत्थैः	,,	१.५५९
सामान्यतो निशायां च	धर्मोप०	४.६४
सामान्यतोऽपि देवेन्द्र	,,	४.२०५
सामान्यं भवति द्वेधा	कुन्द०	८.२८०
सामान्याद्वा विशेषाद्वा	लाटी०	२.३६
सामान्यादेकमेवैतत्	,,	२.९
सामायिकं च तृतीयं	भव्यध०	१.५५
सामायिकं च प्रोषधविधिं	संभाव०	२२
सामायिकं त्रिसन्ध्यं यः	धर्मोप०	२३४
सामायिकं न कुर्वन्ति	प्रश्नो०	१८.७६
सामायिकं न जायेत	पद्म०पं०	९
सामायिकं प्रकुर्वीत	सं०भाव०	२३
सामायिकं प्रतिदिवसं	रत्नकं०	१०१
सामायिकं प्रयत्नेन	पद्मच०	१४.२०
सामायिक प्रोषधोपवास (उक्तं)	लाटी०	५.१५१
सामायिकं भजन्नेव	गुणभू०	३.६०
सामायिकभिदोऽन्याश्च	पुरु०शा०	५.१६
सामायिक महामन्त्र	प्रश्नो०	१८.७८
सामायिकमुपवासं	भव्यध०	४.२५५
सामायिकं विधत्ते यो	प्रश्नो०	१८.६५
सामायिकविधौ क्षेत्रं	श्रा०सा०	३.२९७
	उमा०	४१७
सामायिकव्रतस्यापि	लाटी०	५.१८८
सामायिकव्रते सौध	धर्मसं०	५.७
सामायिकं समाख्याय	प्रश्नो०	१९.५
सामायिकसमापन्नो	,,	१८.१०३
सामायिकसमो धर्मो	,,	१८.६७
सामायिकं सुदुःसाध्य	सागार०	५.३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिकश्रितानां	पुरुषा० ; (उक्तं)श्रा.सा.	१५० ; ३.३०४
सामायिकसंस्कार	पुरुषा०	१५१
सामायिकस्तवः प्राज्ञैः	अमित०	८.२९
सामायिकस्य दोषाः	व्रतो०	४७६
सामायिकादितोऽन्यत्र	लाटी०	५.१८९
सामायिकादिसत्सूत्रं	प्रश्नो०	१८.७५
सामायिके सारम्भाः	रत्नक० ; (उक्तं) श्रा.सा.	१०२ ; ३.३०५
सामायिके न सन्त्येव	प्रश्नो०	१८.६०
सामायिके स्थिरा यस्य	श्रा०सा० ; उमा०	३.३०३ ; ४२२
सामायिकेऽस्मिन्	व्रतो०	५०१
सामायिकोपयुक्तेन	भव्यध०	५.२७३
सामुद्रिकस्य रत्नस्य	कुन्द०	८.१३५
सा मे कथं स्यादुद्दिष्टं	सागार०	७.३३
साम्प्रतं स्वर्गभोगेषु	महापु०	३८.२१०
साम्यामृतसुधौतान्त	सागार०	६.५
साम्राज्यमाधिराज्यं	महापु०	३९.२०२
सायमावश्यकं कृत्वा	सागार०	६.२७
सारचन्दनपुष्पादिद्रव्यैः	प्रश्नो०	२०.१७२
सारथ्यायां न वस्तूनां	कुन्द०	८.३९६
सारपञ्चनमस्कार	प्रश्नो० ; श्रा०सा०	५.१९ ; १.२०२
सारं यत्सर्वशास्त्रेषु	रत्नमा०	२
सारसत्यामृतादङ्गी	प्रश्नो०	१३.११
सारिकाशुककेक्योतु	पुरु०शा०	४.१५३
सार्धघटिद्वयं नाडी	कुन्द०	१.२६
सार्धं सचित्तनिक्षिप्त	यशस्ति०	८१९
सार्द्धद्वादशसंकोटिवादित्रैः	प्रश्नो०	३.७३
सार्द्धैकविंशतिश्चेति	धर्मोप०	२.२५
सार्वकालिकमन्यच्च	अमित०	१२.१०८
सालयः शालयो यत्र	श्रा०सा०	१.१७
सालस्यैर्लिङ्गिभिर्दीर्घ	कुन्द०	८.३६८
सालस्योभयभीताङ्गो	व्रतो०	४८१
सावद्यकर्म दुर्ध्यान	पुरुशा०	५.२
सावद्यकर्ममुक्तानां	धर्मसं०	४.११९
सावद्यं पुष्पितं मन्त्रानीतं	श्रा०सा०	३.३३८
सावद्यविरतिर्वृत्तम्	महापु०	३९.२४
सावद्याप्रियगर्हप्रभेदतो	अमित०	६.५८
सावद्योत्पन्नमाहारमुद्दिष्टं	धर्मसं०	५.५३
सावधिः स्वायुषो यावद्	लाटी०	४.१६५
सा विषं देहिभिः सर्वं	कुन्द०	३.८९
सा श्रेष्ठिभार्यया चापि	प्रश्नो०	६.३३
साष्टाङ्गं दर्शनं हित्वा	व्रतो०	७६
साङ्ख्या शिखी जटी मुण्डी	कुन्द०	८.२७४
साङ्ख्यानां स्युर्गुणाः सत्त्वं	कुन्द०	८.२६८
साङ्ख्यैर्देवः शिवः कैश्चिद्	कुन्द०	८.२६७
सांसारिकं सौख्यमवाप्तुकामैः	अमित०	१५.११०
सितपाकं कुर्वाणा	व्रतो०	१७
सात्त्विकः सुकृती दानी	कुन्द०	५.१९
सिद्धकर्माष्टनिर्मुक्तः	धर्मसं०	७.११६
सिद्धदिग्विजयस्यास्य	महापु०	३८.२३५
सिद्धमेतावता नूनं	लाटी०	४.११७
सिद्धमेतावताप्येतत्	,,	४.२८
सिद्धरूपं विमोक्षाय	अमित०	१५.५५
सिद्धविद्यस्ततो मन्त्रै	महापु०	४०.८१
सिद्धविद्याप्रमोदाढ्या	श्रा०सा०	१.६५९
सिद्धार्चनविधिः सम्यक्	महापु०	३८.१२८
सिद्धार्चनादिकः सर्वो	,,	३८.९४
सिद्धार्चनां पुरस्कृत्य	,,	३८.१५१
सिद्धार्चासन्निधौ मन्त्रान्	,,	४०.८०
सिद्धार्थप्रियकारिण्योः	पुरु०शा०	६.११६
सिद्धानामर्हतां चापि	लाटी०	२.१६८
सिद्धान्तसूचितं प्रायश्चित्तं	श्रा०सा०	१.५१८
सिद्धान्तागमपाथोधिं	,,	१.६३५
सिद्धान्ताचारशास्त्रेषु	रत्नमा०	२९
सिद्धान्तादिसमुद्धारे	प्रश्नो०	२०.२२८
सिद्धान्तेऽन्यत्प्रमाणेऽन्य	यशस्ति०	६९
सिद्धान्ते सिद्धमेवैतत्	लाटी०	१.५९
सिद्धाः सेत्स्यन्ति सिद्ध्यन्ति	धर्मसं० ; ,, ; ,,	६.२१४ ; ६.४० ; ७.१२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धिकान्ता गुणग्राही	व्रतो०	५३९
सिद्धो निःकाङ्क्षितो ज्ञानी	लाटी०	३.९४
सिद्धो बुद्धो विचारज्ञो	व्रतो०	४१७
सिद्धो व्याकरणाल्लोक	पद्मच०	१४.२
सिद्धोऽसिद्धः प्रसिद्धस्त्वं	प्रश्नो०	२१.१६०
सिद्धोऽहमस्मि शुद्धोऽहं	धर्मसं०	७.१४३
सिन्धुश्रेणिरेवाम्बुधि	श्रा०सा०	१.१३७
सिधयिषते सिद्धि	अमित०	१३.१६
सिंहाश्च महिषोलूक	सं०भाव०	१४२
सिंहासनदिनेशाभ्यां	कुन्द०	५.६६
सिंहासनसमासीनं	प्रश्नो०	७.४४
सिंहासनोपधाने च छत्र	महापु०	३९.१६४
सिंहोऽस्ति क्रूरभावोऽपि	पुरु०शा०	६.११४
सीता शीतप्रभावेण	प्रश्नो०	१५.१०१
सीतेव रावणं या स्त्री	धर्मसं०	३.७०
सीधुपानविवशीकृतचित्तं	श्रा०सा०	३.७
सीधुलालसधियो वितन्वते	अमित०	५.११
सीमविस्मृतिरूर्ध्वाधः	सागार०	५.५
सीमान्तानां परतः	रत्नक०	९५
सुकर्त्तव्यं भयं तेषां	भव्यध०	१.३०
सुकलत्रं विना पात्रे	सागार०	२.६१
सुकृतादुपलभ्य सत्सुखं	श्रा०सा०	३.३७
सुकृताय न तृप्यन्ति	कुन्द०	१.११५
सुकेशी भार्यया युक्तो	प्रश्नो०	६.१५
सुखदानि पदान्यहं	पुरु०शा०	५.४२
सुख-दुःखाविधातापि	यशस्ति०	२३८
सुखं पुण्योद्भवं ब्रूते	प्रश्नो०	२.८२
सुखयतु सुखभूमिः	रत्नक०	१५०
सुखं वा दुःखं वा विदधति	श्रा०सा०	१.१०४
सुखं शिवे शिवं कर्महानितः	पुरु०शा०	६.१३
सुखवारिधिमग्नास्ते	अमित०	११.११३
सुखस्य प्राप्यते येषां	,,	१२.२२
सुखार्थी कुरुते धर्मं	भव्यध०	१.१३३
सुखामृतसुधासूति	यशस्ति०	६३४
सुखाय ये सूत्रमपास्य	अमित०	१३.९१
सुखासनं च ताम्बूलं	धर्मसं०	५.३४

सुखित-दुखितस्य च	(उक्तं) श्रा०सा०	१.१३८
सुखितानामपि घाते	अमित०	६.४०
सुखी दुःखी न हिंस्योऽत्र	धर्मसं०	३.१०
सुखे दुःखे भयस्थाने	व्रतसा०	१९
सुखे वैषयिकं सान्ते	श्रा०सा०	१.२३१
	उमा०	३९
सुगतिगमनमार्गं	प्रश्नो०	२४.२०
सुगतिगृहप्रवेशं	,,	१६.५२
सुगन्धपवनः स्निग्धः	कुन्द०(उक्तं)	१.८०
सुगन्धिमधुरैर्द्रव्यैः	कुन्द०	१.९१
सुगन्धीकृतदिग्भाग	प्रश्नो०	११.८७
सुगमत्वाद्धि विस्तार	लाटी०	१.१३६
सुजनानां प्रसादाय	भव्यध०	१.२७
सुतेनान्येन वा केनचिद्	पुरु०शा०	६.४९
सुन्नाम शेखरालीढरत्न	धर्मसं०	६.६३
	यशस्ति०	१९१
सुदतीसंगमासक्त	(उक्तं) श्रा०सा०	१.४४८
	उमा०	६२
सुदर्शनं ममोघम च	भव्यध०	३.२२१
सुदर्शनमहामेरौ	प्रश्नो०	५.४२
सुदर्शन महाश्रेष्ठी	,,	१५.१०३
सुदर्शनं यस्य स नाम	अमित०	३.८२
सुदर्शने नेह बिना तपस्या	,,	३.८४
सुदर्शने लब्धमहोदये	,,	२.८४
सुदेवगुरुधर्मेषु	पुरु०शा०	३.२२
सुदृङ्निवृत्ततपसां	सागार०	७.३५
सुदृङ्मूलोत्तरगुणग्रामा—	,,	७.१
सुदृशस्तीर्थकर्तव्यं	पुरु०शा०	३.१५७
सुदृष्टिः प्रतिमाः कश्चिद्	,,	६.९४
सुधाभुजोऽपि यत्र स्युः	श्रा०सा०	१.१६
सुधाकलास्मरो जीवः	कुन्द०	८.२२७
सुधाकालस्थितान् प्राणान्	कुन्द०	८.२३१
सुधास्थानेषु नैव स्यात्	कुन्द०	८.२३०
सुधीरर्थार्जने यत्नं	कुन्द०	२.४१
सुनन्दीश्वरयात्राया	प्रश्नो०	१०.५५
सुन्दरं धर्मतः सर्वं	पुरु० शा०	३.१०
सुन्दरा निर्मलाङ्गाश्च	पूज्य०	८८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपात्रापात्रयोर्दानैर्मंदो	धर्मोप०	४.१८९
सुपात्राय कुपात्राय	प्रश्नो०	२०.१४७
सुपार्श्वजिनमानम्य	,,	७.१
सुभगे किं स ते भर्त्ता	धर्मसं०	२.७४
सुभिक्षता भवेन्नित्यं	प्रश्नो०	३.६०
सुमतीशं जिनं नत्वा	,,	५.१
सुमेर्वादौ विधायाशु	,,	१६.६१
सुयशः सर्वलोकेऽस्मिन्	लाटी०	४.४८
सुरगतिसुखगेहं	प्रश्नो०	१६.११२
सुरपतियुवतिश्रवसाममर	यशस्ति०	५३४
सुरपतिविरचितसंस्तव	,,	५३९
सुरम्यविषये पुण्यात्	प्रश्नो०	१२.१४५
सुराष्ट्रमण्डले रम्ये	श्रा०सा०	१.४१२
	,,	१.२८२
सुरासुरनराधीश	,,	१.३८३
	,,	१.११५
सुरासुरेन्द्रसङ्घातैः	भव्यध०	५.२९२
सुराः सन्निधिमायान्ति	पुरु०शा०	४.१०८
सुराः सेवां प्रकुर्वन्ति	उमा०	१९६
सुरेन्द्रजन्मनामन्दराभि	महापु०	४०.१४५
सुरेन्द्रमन्त्र एषः स्यात्	,,	४०.५६
सुवर्णधातुरथवा	,,	३९.९१
सुवर्णं यः प्रदत्ते ना	प्रश्नो०	२०.१५२
सुवर्णरूप्ययोर्दासी-दासयोः	पुरु०शा०	४.१३३
सुवर्णैः सरसैः पक्वैः	धर्मसं०	६.६५
सुव्रतानि सुसंरक्षन्	रत्नमा०	५६
सुसत्यव्रतमाहात्म्यान्	प्रश्नो०	१३.४२
सुसिद्धचक्रं परमेष्ठिचक्रं	भव्यध०	६.३५४
सुसंयमैर्विवेदाद्यैः	कुन्द०	१०.३९
सुसंवृत्तपरीधान	,,	५.२३४
सुस्वादु विगतास्वादं	,,	३.४४
सुसंवेदन-सुव्यक्त	श्रा०सा०	१.१
सुष्येणो मन्त्रिपुत्रोऽयं	धर्मसं०	२.९५
सुसीमाकुक्षिसम्भूत	श्रा०सा०	१.४१३
	लाटी०	३.२८५
सुस्थितीकरणं नाम	,,	३.२९८
सुस्थिरोऽचलवद्धीरः	प्रश्नो०	५.१४
सुस्वप्नं प्रेक्ष्य न स्वप्यं	कुन्द०	१.१४
सुस्वरस्पष्टवागीष्ट	रत्नमा०	३३
सुस्वरा निर्मलाङ्गाश्च	पूज्य०	८८
सुस्वादु विगतास्वादं	कुन्द०	३.४४
सुस्निग्धं मधुरं पूर्वं	,,	३.४७
सुसंस्कृते पूज्यतमे	अमित०	१०.४१
सुहंसताक्ष्यौक्षा सिंहपीठा	उमा०	५३
सूक्चन्दनवनितादौ	लाटी०	१.१४४
सूकरी संवरी वानरी	अमित०	५.६५
सूकरेण सम्प्राप्तं	उमा०	२४०
सूक्ष्मकर्मोदयाज्जाताः	लाटी०	४.७३
सूक्ष्मजन्तुसमाकीर्णं	धर्मसं०	५.२६
सूक्ष्मजन्तुभिराकीर्णं	धर्मोप०	३.१०
सूक्ष्मजीवभृतं मद्यं	प्रश्नो०	१२.४०
सूक्ष्मजीवभृतं श्वभ्रे	,,	१७.१०६
सूक्ष्मतत्त्वेषु धर्मेषु	,,	४.३४
सूक्ष्मप्राणयमायामः	यशस्ति०	५८२
सूक्ष्मबादरपर्याप्ता	लाटी०	४.९०
सूक्ष्मान्तरितदूरार्थे	,,	३.११३
सूक्ष्माः स्निग्धाश्च गम्भीराः	कुन्द०	५.४७
सूक्ष्मे स्वागोचरेऽप्यर्थे	पुरु०शा०	३.६३
सूक्ष्मो भगवद्धर्मो	पुरुषा०	७९
	(उक्तं) श्रा०सा०	३.१६०
सूचयन्ति सुखदानि	अमित०	५.५२
सूचिततत्त्वं ध्वस्त	,,	१४.८३
सूतकं पातकं चापि	लाटी०	४.२५१
सूतका शुचिदुर्भाव	सं०भाव०	१५०
सूतके न विधातव्यं	धर्मसं०	६.२६०
सूत्रं गणधरैर्दृब्धं	महापु०	४०.१५८
सूत्रच्छेदे च मृत्युः स्यात्	कुन्द०	१.१६६
सूत्रमौपासिकत्रास्य	महापु०	३८.११८
सूत्राद्विशुद्धिस्थानानि	लाटी०	४.३०
सूत्रे जानुद्वये तिर्यग्	कुन्द०	१.१२७
सूत्रे तु सप्तमेऽप्युक्ता	उमा०	४६५
सूनादिके सदा यत्नं	प्रश्नो०	१२.११८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूनुस्तस्याः समुत्पन्नः	लाटी०	१.१८१
सूनृतं न वचो ब्रूते	श्रा०सा० / उमा०	३.१७३ / ३५०
सूनृतं हितमग्राम्यं	श्रा०सा० / उमा०	३.१८६ / ३५५
सूरयः पञ्चधाचारं	प्रश्नो०	१.५
सूरवीरः क्रियाप्रान्ते	धर्मसं०	२.७३
सूरवीराभिधानेशः	,,	२.१३६
सूरवीरेण या दृष्टा	,,	२.१२८
सूरी प्रवचनकुशले	यशस्ति०	८७०
सूर्यप्रभं विमानं च	भव्यध०	३.२२४
सूर्यादीनां हि यो दुष्टो	प्रश्नो०	१८.१२३
सूर्यार्घो ग्रहणस्नानं	यशस्ति०	१३६
सूर्यार्घो गृहदेहलीवरगजा	श्रा० सा०	१.७४६
सूर्यार्घो वटाश्वत्थ	पुरु० शा०	३.१४९
सूर्यादौ षद्धि वर्तित्वा	कुन्द०	८.२५
सूर्युपाध्यायसाधूनां	लाटी०	२.१६४
सूर्ये वीर्यं वटे दीप्ति	कुन्द०	
सूर्योदयात्तिथेस्तथ्यं	कुन्द०	४.९
सृणिवज्ज्ञानमेवास्य	यशस्ति०	८१३
सृष्टयन्तरमतो दूर	महापु०	४०.१८९
सेवकः स पुनो नम्रः	कुन्द०	२.८८
सेवनीयं च निर्वात्तं	कुन्द०	६.२७
सेवाकृष्यादिवाणिज्य	धर्मोप०	४.२३९
सेवाकृषिवाणिज्य	रत्नक०	१४४
सेवकेभ्यः समाकर्ण्य	श्रा० सा०	१.४७७ / १.६३९
सेवकेभ्योऽपि यत्कार्यं	प्रश्नो०	१८.१९
सेयमास्थापिका सोऽयं	सागार०	६.१
सेवागतैः पृथिव्यादि	महापु०	३८.२५६
सेवितानि क्रमात्सप्त	पुरु०शा०	४.४२
सेवितोऽपि चिदं धर्मो	धर्मसं०	७.१६
सेवाहेवाकिनाकीश	श्रा०सा० / उमा०	१.७४० / ७६
सेव्यं नीचजनैर्नित्यं	प्रश्नो०	२३.१३
सेव्यो दीर्घायुरादर्यो	अमित०	१३.७३
सोऽनु पूजादिसद्भाव	प्रश्नो०	२१.१८६

सैन्ये च कृतसन्नाहे	महापु०	३८.२९०
सैवैका क्रिया साक्षाद्	लाटी०	२.१२८
सैषः प्राथमकल्पिको	सागार०	२.८७
सैषा निष्क्रान्तिरप्येष्टा	महापु०	३८.२६७
सैषा सकलदत्तिः स्यात्	,,	३८.४१
सोत्तरीयो निरीक्ष्यर्षिं	पुरु० शा०	४.१७२
सोऽनर्थं पञ्चविधं	अमित०	६.८०
सोऽनुरूपं ततो लब्ध्वा	महापु०	३८.१४८
सोऽन्तःपुरे चरेत् पात्र्यां	,,	३८.१०८
सोऽन्ते संन्यासमादाय	धर्मसं०	५.८१
सोऽधमो नरकं गत्वा	,,	२.४९
सोपवासश्चतुर्दश्यामन्यदा	श्रा०सा०	१.१८२
सोपानं सिद्धिसौधस्य	अमित०	१३.५
सोऽपि कालेन तत्रैव	धर्मसं०	२.७८
सोऽपि गृहजनं व्यग्रं	प्रश्नो०	८.१५
सोऽपि भित्वा गिरिं दूरं	,,	९.५२
सोऽपि राज्याच्च्युतो भार्या	श्रा०सा०	१,६४५
सोऽपि शुद्धो यथा भक्तं	लाटी०	४.२३३
सोमदत्तं गुणोदात्तं	श्रा०सा०	१.७२०
सोमदत्तेन तान्युच्चै	प्रश्नो०	१०.१०
सोमस्य दिवसे काला	कुन्द०	८.२१०
सोमादीनां दिनेष्वेवं	कुन्द०	८.२०९
सोऽयं जिनः सुरगिरिर्ननु	यशस्ति०	५०३
सोऽयं नृजन्मसम्प्राप्त्या	महापु०	३८.२१५
सोऽसत्यबलतः धर्मः	प्रश्नो०	१२.९८
सोऽहं योऽभूवं बालवयसि	यशस्ति०	५५१
सोऽहं स्वायम्भुवं बुद्धं	कुन्द०	१.२
सोऽस्ति सल्लेखनाकालो	लाटी०	५.२३३
सोऽस्ति स्वदारसन्तोषो	सागार०	४·५२
सौख्यध्वंसी जन्यते निन्दनीयो	अमित०	३.४६
सौख्यं स्वस्थं दीयते	,,	१३.९५
सौख्याकरं सकलभव्यहितं	प्रश्नो०	२४.१४०
सौगता नावगच्छन्ति	व्रतो०	४०९
सौगन्ध्यगीतनृत्याद्यैः	पुरु०शा०	५.५
सौधर्मपतिनामाके	प्रश्नो०	१६.७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौधर्मादिकल्पेषु	वराङ्ग०	१५.२१
सौधर्मादिषु कल्पेषु	पूज्य०	५२
सौधर्मेन्द्रः सभामध्ये	प्रश्नो०	७.२
सौधर्मेन्द्रः सुधर्मायां	श्रा०सा०	१.३२८
सौधर्मे पञ्चपल्यायुः	भव्यध०	३.२२६
सौधर्मेशानकल्पेषु	,,	३.२१५
सौधेऽगाधपयोनिधाविव	श्रा०सा०	१.१३२
सौधे रत्नमयप्रदीपकलिका	,,	१.१३१
सौधोत्सङ्गे स्फुरद्वायौ	कुन्द०	६.११
सौभाग्ये भोगसारे च	प्रश्नो०	४.३६
सौमनस्यं सदाऽऽचर्यं	यशस्ति०	८०७
सौरभ्योद्गारसाराणि	कुन्द०	६.२३
सौरूप्यमभयादाहुरा	यशस्ति०	७४०
सौराष्ट्रदेशे बलभीनगर्यां	भव्यध०प्र०	१७
सौराष्ट्रविषये पाटलिपुत्रे	प्रश्नो०	८.३
सौवीराहार-वस्तु-प्रमित	व्रतो०	५५
स्कन्धपत्रपयःपर्वं	लाटी०	१.९४
स्कन्धारूढगजस्येव	अमित०	८.९३
स्तब्धीकृतैकपादस्य	,,	८.८८
स्तनयोर्नेत्रयोर्मध्यं	कुन्द०	५.१५
स्तनितः प्रतिनीकश्च	प्रश्नो०	१८.११२
स्तब्धसूक्ष्मैर्विनिर्मुक्तं	कुन्द०	३.७१
स्तम्भकपडुकोणाध्व	कुन्द०	८.८६
स्तम्भनोच्चाटविद्वेष	पुरु०शा०	५.४३
स्तम्भपट्टादि यद् वस्तु	कुन्द०	१.१७६
स्तम्भे सुवर्णवर्णानि	कुन्द०	११.४०
स्तुतिर्नतिस्तनूत्सर्गः	धर्मसं०	४.५२
स्तुतिर्नतिः प्रतिक्रान्तिः	पुरु०शा०	५.१७
स्तुत्यं धवलत्वं च	कुन्द०	८.३३१
स्तुवाना मां स्तवैः श्रव्यैः	अमित०	११.१०५
स्तुत्वा जिनं विसर्ज्यापि	सं०भाव०	४७
स्तूयमानमनूचानैः	यशस्ति०	६४८
स्तेनप्रयोग-तद्-द्रव्यादाने	पुरु०शा०	४.९१
स्तेनप्रयोगश्च तदाहृतादानं	प्रश्नो०	१४.२८
स्तेनवस्तु तदानीतं	व्रतो०	४४३
स्तेनसंगाहृतादानविरुद्ध	धर्मसं०	३.६१
स्तेनस्य सङ्गतिर्नूनं	श्रा०सा०	३.२०४
	उमा०	३६३
स्तेनो राजगृहे जातो	धर्मसं०	१.५६
स्तेयत्यागव्रतारूढै	लाटी०	५.५७
स्तेयप्रयोगकः स्तेयाहृताऽऽदानं	धर्मोप०	४.३७
स्तोकामपि त्वहिंसां यः	धर्मसं०	७.१५१
स्तोकेन्द्रियघाताद्	पुरुषा०	७७
स्तोत्रे यत्र महामुनियक्षाः	यशस्ति०	५३७
स्त्यानध्यानधनाधीनमानसा	श्रा०सा०	१.५४३
स्त्रियं भजन् भजत्येव	सागार०	४.५५
स्त्रियां षोडशवर्षायां	कुन्द०	५.१८७
स्त्रियोऽप्यवश्यं वश्याः स्युः	कुन्द०	८.२२९
स्त्रीणां पत्युरुपेक्षैव	सागार०	३.२७
स्त्रीणां स्वभावतः काये	प्रश्नो०	२३.१६
स्त्रीतश्चित्तनिवृत्तं चेन्ननु	सागार०	६.३६
स्त्रीत्व पेयत्व समान्या	यशस्ति०	२८८
स्त्रीत्वे च दुष्कृताल्पायुः	उमा०	८९
स्त्रीपुत्रादिकृते दोषे	धर्मोप०	४.१६३
स्त्रीयोनिस्थानसम्भूत	सं०भाव०	९९
स्त्रीरागकथाश्रवणं	व्रतो०	४७२
स्त्रीरागकथाश्श्रुत्या	हरिवं०	५८.७
स्त्रीरूपदर्शनाच्चित्तं	प्रश्नो०	२३.५९
स्त्रीलिङ्गं त्रिजगन्निन्द्यं	श्रा०सा०	१.३३८
स्त्रीवैराग्यनिमित्तैक	सागार०	७.१२
स्त्रीशस्त्रादिविनिर्मुक्ताः	पुरु०शा०	५.८८
स्त्रीसङ्गाहारनीहारा	धर्मसं०	६.४७
स्त्रीसंयुक्तालये नैव	प्रश्नो०	२३.७१
स्त्रीसेवारङ्गरमणं	गुणभू०	३.२८
स्त्र्यारम्भसेवासंक्लिष्टः	सागार०	२.३४
स्थानं चित्रादि विकृतं	कुन्द०	१.५१
स्थानादिषु प्रति लिखेद्	सागार०	७.३९
स्थानान्येतानि सप्त स्युः	महापु०	३८.६८
स्थानेऽनन्तु पलं हेतोः	सागार०	२.६
स्थानेष्वेकादशष्वेवं	सं० भाव०	१०९
स्थापनमासनं योग्यं	,,	७९
स्थापनोच्चासनपादपूजा	गुणभू०	३.४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

स्थापितं वादिभिः स्वं स्वं	कुन्द०	८.२९९
स्थापित्ता सा महाटव्यां	प्रश्नो०	६.१८
स्थापयित्वा गृहे पानं	प्रश्नो०	२१.९
स्थापितं पतितं नाटं	पुरु०शा०	४.८२
स्थावरघाती जीवः	अमित०	६.५
स्थावरेष्वपि सत्त्वेषु	उमा०	३३५
	श्रा०सा०	३.१२६
स्थावरेतरसत्त्वानां	उमा०	३९४
	श्रा०सा०	३.२६०
स्थावराश्च त्रसा यत्र	उमा०	३०१
	श्रा०सा०	३.६१
स्थावरान् कारणेनैव	पुरु०शा०	४.५८
स्थावराणामपि प्रायः	पुरु०शा०	६.७८
स्थावराणां पञ्चकं यो	उमा०	३३६
स्थावराणां चतुष्कं यो	श्रा०सा०	३.१२७
स्थाल्यादिकं महामूल्यं	प्रश्नो०	२४.४२
स्थास्य तीरं धनं नो वा	लाटी०	३.३१
स्थास्यामीदमिदं याव	सागार०	५.२६
स्थास्नुनाश्यं बुधैर्नाङ्गं	धर्मसं०	७.५
स्थितः पञ्चनमस्कार	अमित०	१५.३६
स्थितः श्रीकीर्त्तिश्रेष्ठिन्या	प्रश्नो०	८.३३
स्थितास्थितादयो भेदाः	पुरु०शा०	५.२४
स्थितिं करोति सा गेहे	प्रश्नो०	१४.१७
स्थितिः प्रभावो बलमातपत्र	व्रतो०	५२१
स्थितेऽनाःकोटिकोटीक	अमित०	२.४६
स्थिते प्रमाणतो जीवे	,,	४.४७
स्थितो निर्वात्तिगर्तायां	प्रश्नो०	२१.१०४
स्थितोऽर्हमित्ययं मन्त्रो	अमित०	१५.३७
स्थिताऽसिआउसा मन्त्रः	,,	१५.३३
स्थित्वा प्रदेशे विगतोपसर्गे	,,	१५.९१
स्थित्वा भिक्षां धर्मलाभ	सागार०	७.४१
स्थित्वा मर्याददेशे यो	प्रश्नो०	१८.१८
स्थित्वैकस्मिन् प्रदेशे यः	,,	१८.१४७
स्थिरो मधुरवाक् पुष्पो	कुन्द०	८.१५७
स्थिरीकरणवात्सल्ये	पुरु०शा०	३.५९
स्थिरीचकार यो मार्गे	,,	३.९५
स्थीयते येन तत्स्थानं	अमित०	८.५०
स्थूलकर्मोदयाज्जाताः	लाटी०	४.७४
स्थूलत्व मार्दवं स्थूल	,,	४.१२४
स्थूललक्षः क्रियास्तीर्थे	सागार०	२.८४
स्थूलमलीकं न वदति	रत्नक०	५५
स्थूलसूक्ष्मविभागेन	कुन्द०	३.२
स्थूलस्तेयपरित्यागं	धर्मोप०	४.२९
स्थूलस्थूलमथ स्थूलं	अमित०	३.३७
स्थूलसूक्ष्मादिजन्तुभ्यो	प्रश्नो०	२०.९०
स्थूलस्कन्धादिभेदेन	भव्यध०	२.१८१
स्थूलं सूक्ष्मं द्विधा ध्यानं	यशस्ति०	६७९
स्थूलहिंसाद्याश्रयत्वात्	सागार०	४.६
स्थूलहिंसानृतस्तेय	,,	२.१६
	सं०भाव०	११
स्थूलहिंसानृतस्तेयान्	प्रश्नो०	१२.६३
स्थूलसत्यं वचो यच्च	कर्मोप०	४.२०
स्थूलाधारशिरा वक्त्र	कुन्द०	५.१०७
स्थूलाः सूक्ष्मास्तथा जीवाः	पूज्य०	२०
स्थूलेभ्यः पञ्चपापेभ्यो	धर्मोप०	४.३
स्थेयान्मुनिवनेऽजस्रं	धर्मसं०	५.७१
स्थेयोऽच्छिद्रं सुखस्पर्शं	अमित०	८.४४
स्नपनं क्रियते नानारसैः	धर्मसं०	६.९६
स्नपनं जिनबिम्बानां	,,	६.२८
स्नपनं पूजनं स्तोत्रं	यशस्ति०	८८०
स्नपनार्चास्तुतिजपान्	सागार०	५.३१
स्नपनोदकधौताङ्ग	महापु०	३८.१००
स्नातस्य विकृता छाया	कुन्द०	२.१०
स्नात्वैकान्ते चतुर्थेऽह्नि	कुन्द०	५.१७८
स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन	लाटी०	५.१६९
स्नानं कृत्वा जलैः शीतैः	कुन्द०	२.९
स्नानगन्धवपुर्भूषा	श्रा०सा०	३.३१६
	उमा०	४३१
स्नानगन्धाङ्गसंस्कार	यशस्ति०	७२१
स्नानपीठं दृढं स्थाप्य	सं०भाव०	३७
स्नानं पूर्वमुखीभूय	उमा०	९७
स्नानभूषणवस्त्रादौ	प्रश्नो०	१७.१२४
स्नानभोजनताम्बूल	श्रा०सा०	३.२८१
	उमा०	४३४

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नानमात्रस्य यच्छोषो कुन्द० २.११
स्नानमाल्यादि निर्विण्णो धर्मसं० ४.७१
स्नानमुद्वर्तनं गन्धं गुणभू० ३.६८
स्नानं शुद्धाम्बुना यत्र कुन्द० २.५
स्नानसद्-गन्धमाल्यादा- धर्मसं० ४.२८
स्नानादिकं प्रकुर्वन्ति प्रश्नो० १२.१०६
स्नानादि जिनबिम्बेऽसौ धर्मसं० ४.५७
स्नानेन प्राणिघातः स्याद् ,, ६.४८
स्नाने पानेऽशने नष्टा कुन्द० १.१०३
स्नानैर्विलेपनविभूषण उमा० १३६
स्नेहपञ्जररुद्धानां पद्मच० १४.३
स्नेहाभ्यङ्गादि स्नानीतं लाटी० ५.६९
स्नेहं विहाय बन्धुषु यशस्ति० ८६७
स्नेहं वैरं संगं रत्नक० १२४
स्नेहशब्दौ गुणा एवं कुन्द० ८.२८५
स्पर्शश्च तृणादीनामज्ञान पुरुषा० २०७
स्पर्शनं रसनं घ्राणं अमित० ३.१२
स्पर्शनादीन्द्रियार्थेषु लाटी० ३.५२
स्पर्शं रूपं रसो गन्धः कुन्द० ८.२८३
स्पर्शाद्गजो रसान्मीनो धर्मसं० ७.१६४
स्पर्शादिगुणसंयुक्तः प्रश्नो० २.२२
स्पर्शन्नपि महीं नैव महापु० ३९.१०४
स्पर्शो गन्धोऽपि तेभ्यः स्यात् कुन्द० ८.२७१
स्पृश्य शूद्रादिणं स्पृश्य उमा० १३२
स्पृश्यास्पृश्यपरिज्ञाने धर्मसं० ६.२३९
स्फाटिकष्टङ्कणक्षारो कुन्द० ३.९१
स्फीतभीत्तिगृंहादेनां श्रा०सा० १.२७१
स्फुटिताहिंकरादीना पूज्य० ८७
स्फुरत्येकोऽपि जैनत्व सागार० २.५२
स्मरतीव्राभिनिवेशोऽन्य पुरु०शा० ४.११३
स्मरतीव्राभिनिवेशान् पुरुषा० १८६
स्मरतापोपशान्ति यो पुरु०शा० ६.३२
स्मरन् पञ्च नमस्कारं श्रा०सा० ३.३६२
उमा० ४६२
स्मरपीडाप्रतीकारो धर्मसं० ३.६२
स्मयेन योन्यानत्येति रत्नक० २६
स्मररसविमुक्तसूक्ति यशस्ति० ५२०
स्मरेच्च पञ्चगुर्वादि पुरु०शा० ५.४१
स्मृत्यन्तरपरिकल्पन अमित० ७.८
स्मृतं स्मृत्यन्तराधानं लाटी० ५.१२१
स्मृत्वाऽनन्तगुणोपेतं गुणाभू० ३.११७
स्यन्दनद्विपपदातितुरङ्गै अमित० १४.१०
स्याच्चतुर्विंशतेस्तीर्थं पुरु०शा० ५.१८
स्यात्परमकाङ्क्षिताय महापु० ४०.७०
स्यात्परमनिस्तारक ,, ४०.१४९
स्यात्परमविज्ञानाय ,, ४०.७१
स्यात्पातः स्त्रीतमिस्राभिः पुरु०शा० ४.१००
स्यात्पुरस्तादितो यावत् लाटी० ६.४२
स्यात्प्रजान्तरसम्बन्धे महापु० ४०.२०७
स्यात्प्रीतिमन्त्रस्त्रैलोक्य ,, ४०.९६
स्यात् प्रोषधोपवासाख्यं लाटी० ५.१९५
,, ६.११
स्यात्समञ्जसवृत्तित्व महापु० ३८.२७८
स्यात्सरागस्य दीक्षापि श्रा०सा० २.४९८
स्यात्सामायिकप्रतिमा लाटी० ६.२
स्याद् स्मृत्यनुपस्थानं ,, ५.२१०
स्यातां सचित्तनिक्षेप प्रश्नो० २१.१४
स्यादतिवादनं चादौ ,, १६.४६
स्यादन्तेऽत्रेहकामाना धर्मसं० २.७
स्याद्दण्डचलमप्येव महापु० ४०.१९९
स्यादन्योन्यप्रदेशानां गुणभू० १.१७
स्याद्द्वात्रिंशत्सस्त्र श्रा०सा० १.११६
स्यादवध्याधिकारेऽपि महापु० ४०.१९४
स्यादष्टम्यौ चतुर्दश्यौ पुरु०शा० ६.२
स्यादाप्तागमत्वानां गुणभू० १.६
स्यादारम्भाद्विरतः ,, ३.३
स्यादारेकायषट् कर्म महापु० ३९.१४३
स्यादेव ब्राह्मणायेति ,, ४०.३५
स्याद्वादस्य प्रमाणे द्वे कुन्द० ८.२४०
स्यां देवः स्यामहं यक्षः यशस्ति० १५६
स्युः प्रोषधोपवासस्य लाटी० ५.२०४
स्याद्वादभूधरभवा यशस्ति० ७१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्याद्विषयाणुप्रेक्षा हि	प्रश्नो०	१७.१३९
स्यान्निरामिषभोजित्वं	महापु०	३९.२९
	,,	४०.१७२
स्यान्मैत्र्याद्युपवृंहितोऽखिल	सागार०	१.१९
स्रक्चन्दनशयनासन	श्रा०सा०	३.२८३
स्रवन्मूत्रादिकं निन्द्यं	प्रश्नो०	२३.७
स्रग्वस्त्रपानतुर्याङ्गा	पूज्य०	६०
स्रग्वी सदंशुको दीप्रः	महापु०	३८.१९८
स्रवस्रवस्रोतविचित्रगूथं	अमित०	१४.३६
स्वकीयं जीवितं यद्व	यशस्ति०	२७७
स्वकीयं वर्णनं कृत्वा	व्रतो०	६३
स्वकीयपोषेङ्गितचित्तवृत्ति	,,	३८०
स्वकीयाः परकीया वा	रत्नमा०	५५
स्वकृतेनैव पापेन	श्रा०सा०	१.४४२
स्वक्रोधलोभभीरुत्व	हरिवं०	५८.५
स्वक्षेत्रकालभावैः	पुरुषा०	९२
(उक्तं)	श्रा०सा०	३.१९०
स्वगुणान् परदोषांश्च	पुरु०शा०	३.८४
स्वगुणैःश्लाघ्यतां याति	यशस्ति०	५९
स्वगुणोत्कीर्तनं त्यक्त्वा	महापु०	३९.१९१
स्वगुरुस्थानसंक्रान्तिः	महापु०	३८.५९
स्वगृहे च जिनागारे	धर्मसं०	६.७५
स्वगेहे चैत्यगेहे वा	सं० भा०	११५
स्वगोत्रमित्रैर्नवभिः	भव्यध०प्र०	११
स्वचित्तं निर्मलीकृत्य	प्रश्नो०	१२.६
स्वचित्ते यो विधत्ते हि	,,	१८.३०
स्वचित्तं सन्निधायोच्चैः	,,	११.९७
स्वच्छत्वमभ्येति न	श्रा० सा०	३.२०९
स्वच्छन्दोल्लसदानन्द	,,	१.२०४
स्वच्छस्वभावविश्वस्ता	कुन्द०	२.६७
स्वजनपरमुदारं व्यक्तदे	प्रश्नो०	११.१०५
स्वजनस्वामिगुर्वाद्या	कुन्द०	१.११०
स्वजने रक्ष्यमाणायाः	अमित०	१२.८०
स्वजनो वा परो वापि	पद्म० पंच०	४८
स्वजातिकष्टं नोपेक्ष्यं	कुन्द०	८.३९३
स्वजात्यैव विशुद्धानां	यशस्ति०	४४४
स्वजिज्ञासितमर्थं ये	पुरु० शा०	३.१४७
स्वतत्त्वपरतत्त्वेषु	पूज्य०	१०
स्वतः शुद्धमपि व्योम	यशस्ति०	१६४
स्वतः सर्वस्वभावेषु	,,	२३४
स्वतन्त्रः स्वपवित्रात्मा	कुन्द०	२.७८
स्वनार्यामपि निर्विण्णः	धर्मसं०	३.६५
स्वनारीं यः परित्यज्य	प्रश्नो०	१५.२९
स्वधर्मसमये शुद्धे	श्रा० सा०	१.३४०
स्वं ध्यायन्नात्तसन्न्यासो	धर्मसं०	७.१७९
स्वपयःशोणिता दक्षा	कुन्द०	८.१५१
स्वपयेद्दयिते शेते	,,	५.१५९
स्वपाणिपात्र एवात्ति	सागार०	७.४९
स्वपुत्राय विचित्राय	श्रा० सा०	१.३३६
स्वपुत्री भगिनी मातृसमां	प्रश्नो०	२३.४
स्वपूर्वलोकानुचितोऽपि	अमित०	१.६८
स्वप्राणनिर्विशेषं च	महापु०	३८.२०६
स्वभावं जगतोऽजस्रं	पुरु० शा०	६.६८
स्वभावज्ञानजा मर्त्यं	धर्मसं०	७.११५
स्वभावतोऽपटुः कायः	पुरु० शा०	३.७०
स्वभावतोऽशुचौ कार्ये	रत्नक०	१३
स्वभावतोऽशुचौ काये (उक्तं)	श्रा. सा.	१.२९९
स्वभवनिर्मिता सारा	प्रश्नो०	२०.३१
स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्ता	अमित०	३.५६
स्वभावसौरभाज्ञाना	धर्मसं०	६.५९
स्वभावादशुचौ देहे	उमा०	४१
स्वभावान्तरसम्भूति	यशस्ति०	२७
स्वभावाशुचि दुर्गन्ध	,,	२६४
स्वभावे स्थिरीभूते	भव्यध०	५.३०१
स्वं मणिस्नेहदीपादितेजो	महापु०	३९.१७४
स्वमतस्थेषु वात्सल्यं	पद्म० पंच०	३६
स्वमपि स्वं मम स्याद्वा	सागार०	४.४९
स्वमातरोपणोत्पन्न	कुन्द०	८.३७३
स्वमांसं परमांसैर्ये	अमित०	१२.९७
स्वमेव हन्तुमीहेत	यशस्ति०	२०६
स्वयं कर्त्ता स्वयं भोक्ता	भव्यध०	२.१६०
स्वयं क्रोधेन सत्यं वा	लाटी०	५.१०
स्वयं मज्जन्ति ये मूढा	प्रश्नो०	३.१५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयम्भूः शङ्करो बुद्धः	पुरु० शा०	३.३०
स्वयमेव विगलितं	पुरुषा०	७०
	(उक्तं) श्रा. सा.	३.५३
स्वयमेव श्रियोऽन्वेष्य	अमित०	११.१८
स्वयोन्यक्षं स्वतारांशे	कुन्द०	८.५६
स्वर्ग-मोक्षफलो धर्मः	गुणभू०	१.५
स्वर्गश्री रूपगति तं च विमला	प्रश्नो०	१७.७६
स्वर्गादिबिम्बनिष्पत्तौ	कुन्द०	११.५५
स्वर्गादिसुखमुत्कृष्टं	धर्मोप०	४.१९६
स्वर्गादिसुखसम्प्राप्ते	,,	४.१७२
स्वर्गापवर्गसंगीतविधायिनं	यशस्ति०	५२४
स्वर्गापवर्गस्य सुखस्य	भव्यध०	१.२१
स्वर्गापवर्गामलसौख्य	अमित०	१.३०
स्वर्गे च प्रथमे श्वभ्रे	भव्यध०	३.२२९
स्वर्णचन्दनपाषाणैः	पूज्य०	७४
स्वर्णदासगृहक्षेत्र	हरिवं०	५८.२८
स्वर्णरत्नादिकाश्चापि	धर्मोप०	४.२०३
स्वर्मोक्षैककरं यशःशुभप्रदं	प्रश्नो०	१५.५५
स्वयंम्मृतत्रसानि स्युः	पुरु० शा०	४.२८
स्वयमेवात्तत्ति व्यक्तव्रतो	श्रा० सा०	३.३२२
	उमा०	४३८
स्वयमेवात्मनात्मानं	हरिवं०	५८.१५
स्वयं योऽभ्येति भिक्षार्थं	पुरु० शा०	४.१७०
स्वयूथ्यान् प्रति सद्भाव	रत्नक०	१७
स्वयंवरे कृतो येन	प्रश्नो०	१६.६७
स्वयं विद्यार्थसामर्थ्यैः	पुरु०शा०	३.१०२
स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य	रत्नक०	१५
स्वयं समुपविष्टोऽद्यात्	सागार०	७.४०
स्वयं हास्यवता भूत्वा	लाटी०	५.१३
स्वयं हि त्रसजीवानां	प्रश्नो०	१२.६४
स्वराक्षरपदार्थादिशुद्धं	,,	१८.४०
स्वराज्यमधिराज्येऽभिं	महापु०	३८.२३२
स्वरामयातिसन्तोषं	प्रश्नो०	१५.४
स्वरूपं रचना शुद्धि	यशस्ति०	८१८
स्वरूपां हीनसत्त्वानां	प्रश्नो०	१५.२४
स्वलक्षणमनिर्देश्यं	महापु०	३९.१७१
स्वल्पं द्रव्यं पुनस्तेषां	प्रश्नो०	१३.६४
स्वल्पं भोगादिकं योऽपि	प्रश्न०	१७.१४५
स्वल्पवित्तोऽपि यो दत्ते	अमित०	९.९
स्वल्पापि सर्वाणि निषेव्यमाणा	,,	७.४८
स्वल्पायुर्विकलो रोगो	,,	१२.९८
स्ववधूं लक्ष्मणः प्राह	धर्मसं०	३.२८
स्ववाग्गुप्तिमनोगुप्ती	हरिवं०	५८.४
स्ववासदेशक्षेमाय	कुन्द०	८.५
स्वविमानर्द्धिदानेन	महापु०	३८.२००
स्ववीर्यं प्रकटीकृत्य	प्रश्नो०	१०.६९
	,,	२४.६९
स्वस्थः पद्मासनासीनः	कुन्द०	११.५२
स्वस्थानस्थेषु दोषेषु	कुन्द०	३.२७
स्वसूसंश्रितसम्बन्धि	कुन्द०	८.३२१
स्वस्वकर्मरताः सर्वे	धर्मसं०	६.२२६
स्वस्य निन्दां प्रकुर्वन्ति	प्रश्नो०	८.२३
स्वस्य पुण्यार्थमन्यस्य	गुणभू०	३.३८
स्वस्य वित्तस्य यो भागः	श्रा०सा०	३.३२१
	उमा०	४३७
स्वस्य व्याघुटनार्थं स	प्रश्नो०	८.५०
स्वस्य हानिं परस्यर्द्धि	अमित०	२.३५
स्वस्य हितमभिलषन्तो	श्रा०सा०	३.४०
स्वस्वस्य यस्तु षड्भागान्	,,	३.३२८
स्वस्यान्यस्य च कायोऽयं	यशस्ति०	१६६
	श्रा०सा०	१.३०३
स्वस्यान्यस्यापि पुण्याय	कुन्द०	१.९
स्वस्यैव हि स रोषोऽयं	यशस्ति०	१६३
स्वस्वादु परिसन्त्यक्तं	प्रश्नो०	१७.१११
स्वस्वाम्यमैहिकं	महापु०	३९.१७७
स्वस्वापतेयमुचितं	,,	३९.१८५
स्वां स्वां वृत्ति समुत्क्रम्य	धर्मसं०	६.२५६
स्वशक्त्या क्रियते यत्र	श्रा०सा०	३.२८०
	उमा०	४३३
स्वशब्देन परेषां यः	प्रश्नो०	१८.१४६
स्वशरीरसंस्काराख्यो	लाटी०	५.७०
स्वसृमातृसुताप्रख्या	वराङ्ग०	१५.९
स्वसृमातृदुहितृसदृशीः	अमित०	६.६४
स्वस्त्रियं रममाणोऽपि	धर्मसं०	३.६६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वस्त्रीमात्रेऽपि सन्तुष्टो	सागार०	४.५६
स्वस्थितीकरणाङ्गाय	व्रतो०	३८९
स्वस्थो देहोऽनुवर्त्यः स्यात्	धर्मसं०	७.६
स्वसंवेदनतः सिद्धे	अमित०	४.१२
स्वसंवेदनप्रत्यक्षं	लाटी०	३.४७
स्वसंवेगविरागार्थं	हरिवं०	५८.१२
स्वाङ्गवाद्यं तृणच्छेद्यं	कुन्द०	८.३९७
स्वागसङ्गपवित्राणि	श्रा०सा०	१.५९
स्वङ्गुलीपर्वभिः केशैः	कुन्द०	५.१४
स्वाङ्गे छिन्ने तृणेनापि	पुरु०शा०	४.५७
स्वातिनक्षत्रणं बिन्दु	प्रश्नो०	२०.१४२
स्वापान्ते वमने स्नाने	कुन्द०	२.४०
स्वात्मसञ्चेतनं तस्य	लाटी०	३.२७
स्वात्मसञ्चेतनादेव	,,	३.३९
स्वात्माधीनेऽपि माधुर्ये	श्रा०सा०	३.१७८
	उमा०	३५२
स्वात्मानुभूतिमात्रं स्याद्	लाटी०	२.१०६
स्वामित्वेन वसत्यादि	,,	५.४१
स्वामिनश्च गुरूणाश्च	कुन्द०	८.३१४
स्वामिनो ह्यधिको वेषः	कुन्द०	२.९४
स्वामिन् तच्छ्रावकाचारं	प्रश्नो०	१.२५
स्वामिभक्तो महोत्साहः	कुन्द०	२.८१
स्वामिस्त्वं कुगुरूनत्र	प्रश्नो०	३.१४७
स्वामिन् मूलगुणानद्य	,,	१२.५
स्वामिन् यथा महाविद्या	,,	५.४५
स्वामिन् श्रिया समायातो	कर्मसं०	६.१२२
स्वामिनो ये व्यतीपातान्	प्रश्नो०	१८.१३
स्वामिवञ्चकलुब्धानां	कुन्द०	८.९६
स्वामिसम्भावितैश्वर्यः	कुन्द०	२.८०
स्वामी समन्तभद्रो मे	रत्नमा०	४
स्वार्थं चान्यस्य संन्यासं	लाटी०	५.१३७
स्वार्थेभ्यः करणान्यत्र	पुरु०शा०	६.७
स्वार्थो हि ज्ञानमात्रस्य	लाटी०	२.५३
स्वाद्य स्वाद्य विशेषरम्य	श्रा०सा०	१.१२९
स्वाध्यायं तं च निष्ठाय	धर्मसं०	४.६९
स्वाध्यायध्यानधर्माद्याः	यशस्ति०	३९०
स्वाध्यायः पञ्चधा प्रोक्तो	उमा०	१९८
स्वाध्याय मत्यस्यचल	अमित०	१३.८३
स्वाध्यायमुत्तमं कुर्याद्	सागार०	७.५५
स्वाध्यायं वसतौ कुर्याद्	धर्मसं०	५.५१
स्वाध्यायं विधिवत्कुर्याद्	सागार०	६.१३
स्वाध्यायं संयमं चापि	उमा०	२१८
स्वाध्यायाज्ज्ञानवृद्धिः स्यात्	धर्मसं०	६.२१२
स्वाध्यायादि यथाशक्ति	सागार०	८.७८
स्वाध्याये द्वादश प्राज्ञैः	अमित०	८.६७
स्वाध्याये संयमे सङ्घे	यशस्ति०	२००
स्वाध्यायोऽध्ययनं स्वस्मै	धर्मसं०	६.२११
स्वानुभूतिसनाथाश्चेत्	लाटी०	२.६०
स्वापूर्वार्थद्वयोरेव	,,	२.५२
स्वाभीष्टभृत्यबन्ध्वा	महापु०	३९.१९०
स्वायम्भुवान्मुखाज्जाताः	,,	३९.११७
स्वायस्यातिथये भव्यैः	पुरु०शा०	४.१६८
स्वाहान्तं सव्यजाताय	महापु०	४०.३२
स्वीकरोति कषायमानसो	अमित०	३.५८
स्वेच्छाहारविहारजल्पन्तया	देशव्र०	९
स्वेदो भ्रान्तिः क्षमो म्लानिः	श्रा०सा०	३.२३०
	उमा०	३७१
स्वे स्वे राशौ स्थिते सौस्थ्यं	कुन्द०	८.३५
स्वे स्वे स्थाने ध्वजः श्रेष्ठो	कुन्द०	८.६०
स्वोचितासनभेदानां	महापु०	३९.१७८
स्वोत्तमाङ्गं प्रसिच्याथ	सं०भाव०	४६
स्वोदरं पूरयन्त्येव	प्रश्नो०	२०.१०७
स्वोपधानाद्यनादृत्य	महापु०	३९.१७९

ह

हसं तूलिकयोर्मध्ये	पूज्यपा०	५४
हतं ज्ञानं क्रियाशून्यं (उ)	यशस्ति०	२३
हत पुष्पधनुर्वाण	धर्मसं०	६.६१
हत्वा यस्यामिषं योऽत्र	प्रश्नो०	१२.१४
हत्वा लोभं दुराचारं	,,	१६.३२
हनुस्तम्भं रसज्ञायां	कुन्द०	३.९०
हन्त तासु सुखदान	अमित०	१४.७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हन्त बोधमपहाय	अमित०	१४.७२
हन्ता दाता च संस्कर्त्ता	श्रा०सा०	३२४
	उमा०	२६६
हन्ति खादति पणायते	अमित०	५.१७
हन्ति स्थावरदेहिनः	देशव्र०	६
हरिततृणाङ्कुरचारिणि	पुरुषा०	१२१
हरितपिधाननिधाने	रत्नक०	१२१
हरिताङ्कुरबीजाम्बु	सागार०	७.८
हरिताङ्कुरसच्छन्नौ	प्रश्नो०	७.३१
हरितालनिभैश्चक्री	कुन्द०	८.३३२
हरितेष्वङ्कुरा येषु	धर्मसं०	५.१७
हरितैरङ्कुरैः पुष्पैः	महापु०	३८.११
हरिद्राशृङ्गवेरादिकन्दमार्द्रं	धर्मसं०	४.२३
हरिन्मणिभवे गेह	श्रा०सा०	१.२७
हरिभोजोग्रवंशे वा	वराङ्ग०	१५.२३
हर्म्योपरि स्थिते नैव	प्रश्नो०	९.८
हर्षो हृष्टे धृतिः पार्श्वे	कुन्द०	२.१०३
हलैर्विदार्यमाणायां	अमित०	२.४६
हविष्पाके च धूपे च	महापु०	४०.८६
हव्यैखि.हुतप्रीतिः	यशस्ति०	३८३
हसत्तींकारस्तोमः सोऽहं	अमित०	१५.३८
हस्तपादविहीनां च	प्रश्नो०	२३.८०
हस्तपादशिरःकम्पा	धर्मसं०	४.५०
हस्तशुद्धिं विधायाश्च	संभा०	३४
हस्तस्कन्धौ तथैवोष्ठ	कुन्द०	५.९०
हस्तात्प्रकरवलितं	उमा०	१३१
हस्ताभ्यां स्वशरीरं यो	प्रश्नो०	१८.१२९
हस्तिनागपुरे जातो	,,	१०.३
हस्तिनानगरे चक्रे	धर्मसं०	१.५९
हस्ती जगाम दुःसह	व्रतो०	५२७
हस्ते चिन्तामणिर्दास्त	यशस्ति०	७२६
हस्ते चिन्तामणिर्यस्य	उक्तं श्रा०सा०	१.२३३
हस्ते स्वर्गसुखान्यत	यशस्ति०	४६८
हस्त्यश्वरथपादात	पुरु०शा०	३.७.
हस्त्यश्वरथसद्दासी	प्रश्नो०	१०.१५३
हारस्फारप्रभाभारैः	श्रा०सा०	१.४६१
हारेणापि विना लोके	प्रश्नो०	८.३४
हारोद्योतेन तं चौरं	,,	८.३८
हाव-भावविलासाढ्यं	,,	१६.६५
	,,	२३.५८
हाव-भाव विलासाढ्यं	,,	२३.६६
	धर्मोप०	४.४१
हासात्पितुश्चतुर्थे	यशस्ति०	१६१
हासात्पितुश्चतुर्थे	(उक्तं)श्रा०सा०	१.२३६
	उमा०	४०
हास्यादिकामकारणं	प्रश्नो०	१३.१७
हास्योज्झितं च वक्तव्यं	लाटी०	५.१२
हास्योपलक्षणेनैव	,,	५.१४
हा हा क्वापि मुनीन्द्राणां	श्रा०सा०	१.५८१
हा हा दत्तो मयाऽऽहारो	प्रश्नो०	७.१०
हा हाऽन्यस्य मया दत्तं	,,	१४.६२
हिङ्गुतैलघृतादीनां	पुरु०शा०	६.५६
हितं-चिकीर्षंतो नात्र	,,	५४.८५
हितं ब्रूयान्मितं ब्रूयाद्	प्रश्नो०	१३.५
हितं-मितं तथा पथ्यं	धर्मोप०	४.२३
हितमुद्दिश्य यत्किञ्चिद्	प्रश्नो०	१३.९
हितं स्वस्य भवेद्यत्तद्	,,	१३.६
हिताहितविमोहेन	यशस्ति०	२५६
हित्वा निःशेषमाहारं	श्रा०सा०	३.३५७
हित्वा निःशेषमाहारं	उमा०	४५८
हित्वा बोधिसमाधिं	धर्मसं०	७.१००
हिनस्ति धर्मं लभते	अमित०	७.३९
हिनस्ति मैत्रीं वितनो	,,	७.५०
हिमवद्विजयार्धस्य	संभाव०	१४४
हिरण्यध्वनिना प्रोक्तं	लाटी०	५.१०१
हिरण्यपशुभूमीनां	यशस्ति०	३४१
हिरण्यवर्मणो नाम्ना	धर्मसं०	४.१०४
हिरण्यवृष्टिं धनदे प्राक्	महापु०	३८.२१८
हिरण्यसुवर्णयोर्वास्तु	हरिवं०	५८.७२
हिरण्यसूचितोत्कृष्ट	महापु०	३८.२२४
हिंसकोऽहिंसकोऽहिंस्यः	प्रश्नो०	२१.१६१
हिंसनताऽनभीषण	अमित०	६.५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिंसनं साहसं द्रोहः	यशस्ति०	३९४
हिंसनाब्रह्मचौर्यादि	,,	३३९
हिंसया यदि जायेत	प्रश्नो०	१३.२०३
हिंसाकलत्रमनिशं	व्रतो०	९२
हिंसतोऽनृतवचना	पुरुषा०	४०
हिंसातोऽसत्यतश्चौर्यात्	रत्नमा०	१५
हिंसातोऽसत्यतः स्तेयात्	श्रा० सा० उमा०	३.१२३ ३३२
हिंसादानमपध्यानं	पुरु०शा०	४.१४६
हिंसादानं विषास्त्रादि	सागार०	५.८
हिंसा द्वेधा प्रोक्ता	अमित०	६.६
हिंसादि-कलितो मिथ्या	श्रा०सा० उमा०	१.१३९ १३
हिंसादिपञ्चपापानां	प्रश्नो० धर्मोप०	१७.१० ३.५
हिंसादिपातकं येन	धर्मोप०	२.५
हिंसादि-वादकत्वे	अमित०	४.६९
हिंसादिष्विह चामुष्मिन्	हरिवं०	५८.९
हिंसादिसंभवं पापं	धर्मसं०	६११
हिंसाधर्मरता मूढा	प्रश्नो०	३.१२८
हिंसानन्दानृतस्तेयार्थ	,,	१८.५७
हिंसानन्देन तेनोच्चैः	लाटी०	१.१४६
हिंसानृतचौर्येभ्यो	रत्नक०	४९
हिंसाऽनृतं तथा स्तेयं	धर्मोप०	३.२
हिंसानृतपरद्रव्य	व्रतसा०	२०
हिंसानृतवचश्चौर्या	हरिवं०	५८.२
हिंसानृतस्तेयपरांगसंग	अमित०	१.३२
हिंसापरस्त्रीमधुमांसं	,,	१.३५
हिंसापापप्रदोषेण	धर्मोप०	४.१५
हिंसापर्यायत्वात	पुरुषा०	११.९
हिंसा प्रमत्तयोगाद्वै	लाटी०	४.६०
हिंसाप्ररूपितशास्त्रे	प्रश्नो०	१२.१००
हिंसाफलमपरस्य	पुरुषा०	५७
हिंसायतननिवृत्ति	,,	४९
हिंसाया पर्यायो लोभोऽत्र	,,	१७२
हिंसाया पर्यायो ,,	श्रा.सा. (उक्तं)	३.३४२
हिंसायामनृते चौर्यमब्रह्म	यशस्ति०	३०२

हिंसाया विरतिः प्रोक्ता	लाटी०	४.५७
हुत्वा कल्मषकर्माणि	श्रा०सा०	१.४०४
हुताशने गृहस्थैश्च	प्रश्नो०	१२.११९
हुताशनेनेव तुषार	अमित०	७.४१
हुंहुङ्कारौ करोत्यर्थं	व्रतो०	४८६
हृत्कोष्ठोद्यद्गण्डमाला	श्रा०सा०	१.१३४
हृदयं विभूषयन्तीं	अमित०	१०.११
हृषीकज्ञानयुक्तस्य	लाटी०	१.६७
हृषीकपञ्चकं भाषा	अमित०	३.१७
हृषीकारुचितेषूच्चैः	लाटी०	३.७१
हृषीकार्थादि दुर्ध्यानं	,,	४.१९८
हृषीकराक्षसाक्रान्तो	श्रा०सा० उमा०	१.१७९ ३७
हृष्टं शिष्टजनैः सपल	पद्मनं०प्र०	१६
हृष्यन्मध्यवया प्रौढ	कुन्द०	५.१३६
हेयं पलं पयःपेयं	श्रा०सा०(उक्तं)	३.८५
हेतावनेकधर्मप्रवृद्धि	यशस्ति०	५५४
हेतुतोऽपि द्विधोद्दिष्टं	लाटी०	२.१४
हेतुः शुद्धात्मनो ज्ञाने	,,	३.२०९
हेतुशुद्धेः श्रुतेर्वास्या	यशस्ति०	२६२
हेतुश्चारित्रमोहस्य	लाटी०	४.१६
हेतुरस्त्यत्र पापस्य	,,	४.१५६
हेतुस्तमोदितानाना	,,	३.२२२
हेतुस्तत्रास्ति विख्यातः	लाटी०	६.२७
हेतुस्तत्रोदयाभावः	,,	२.७३
हेतौ प्रमत्तयोगे	पुरुषा०	१००
हेत्वाज्ञायुक्तमद्वैतं	महापु०	३९.१७
हेनीलि ज्ञानिनां	प्रश्नो०	१५.७९
हे बान्धवाद्यये मऽपि	,,	१३.१९३
हेमन्ते शीतबाहुल्याद्	कुन्द०	६.२४
हेमरूपादिजां सारां	प्रश्नो०	२०.१८९
हे महासति प्राणानां	,,	१५.९१
हेमाचलमयी तत्र	पुरु०शा०	५.४९
हेमादिकं यथा दक्षैः	प्रश्नो०	१.१९
हेयं किं किमुपादेयं	लाटी०	५.१६३
हेयंवलोपयः समे	यशस्ति०	२.९०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेयं पलं पयः पेयं	उमा०	२८३
हेयं सर्वंप्रयत्नेन	पुरु०शा०	४.११४
हेयादेयपटिष्ठो गुरु	अमित०	६.१०
हेया वन्धो वधच्छेदो	पुरु०शा०	४.६४
हेयोपादेयतत्त्वज्ञो	अमित०	१५.२५
हेयोपादेयरूपेण	यशस्ति	१००
होढाद्यपि विनोदार्थ	धर्मसं०	२.१६४
होमभूतवली पूर्वैरु	यशस्ति०	४४०
ह्रासितोत्कृष्टश्वभ्रायुः	कर्मसं०	७.८६
ह्रीको महर्द्धिको वा यो	,,	७.४९
ह्रीमान् महर्द्धिको यो वा	सागार०	८.३७
ह्रीमन्तपर्वते गत्वा	प्रश्नो०	१०.२६
ह्रीमन्तं पर्वतं वज्र	श्रा०सा०	१.६५५
हिंसाया स्तेयस्य च	पुरु०शा०	१०४
हिंसा रागादि संवर्धि	हरिवं०	५८.३८
हिंसार्थत्वान्न भूगेह	सागार०	५.५३
हिंसा विधाय जायेत	श्रा०सा० उक्तं	३.१३७
	उमा०	३४२
हिंसाश्वभ्रप्रतोलिकां	प्रश्नो०	१२.१२८
हिंसाऽसत्यस्तेयाब्रह्म	अमित०	६.३
हिंसाऽसत्यस्तेयाद्	चारित्रसा०	१५
हिंसास्तेयानृताब्रह्म	यशस्ति०	३००
हिंसोपदेशमित्यादि	लाटी०	१.१६०
हिस्यन्ते तिलनाल्यां	पुरुषा०	१०८
हिंस्यन्ते तिलनाल्यां	श्रा०सा० (उक्तं)	३.२३२
हिंस्य हिंसकं हिंसास्तत्फलं	धर्मसं०	३.१६
	सागार०	४.२०
हिंस्याः प्राणा द्रव्यभावा	धर्मसं०	३.१७
हिंस्नदुःखिसुखिप्राणि	सागार०	२.८३
हिंस्नः स्वयम्मृतस्यापि	,,	२.७
हिंस्राणां यदि घाते	अमित०	६.३७
हीनदीनदरिद्रेषु	पुरु०शा०	३.१३१
हीनेन दानमन्येषां	हरिवं०	५८.५८
हीने संहनने धारी	प्रश्नो०	१९.५४
हीनो गृहीतदीक्षोऽपि	श्रा०सा०	१.४९७
हीयन्ते निखिलाश्चेष्टा	अमित०	११.२७
हुङ्काराङ्गुलिखात्कार	,,	१२.१०७
हुङ्कारो ध्वनिनोच्चारः	धर्मसं०	४.४९
हुङ्कारो हस्तसंज्ञा च	,,	३.४५
हुण्डावसर्पिणीकाले	,,	६.८९
हुण्डावसर्पिणीकाले	गुणभू०	३.१०८

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. निषीधिकादण्डक

(प्रतिक्रमण पाठ से)

णमो जिणाणं, णमो जिणाणं, णमो जिणाणं, णमो णिसीहीए, णमो णिसीहीए, णमो णिसीहीए। णमोत्थु दे, णमोत्थु दे, णमोत्थु दे। अरिहंत, सिद्ध, बुद्ध, णीरय, णिम्मल, सममण, सुमण, सुसमत्थ, समजोग, समभाव, सलघट्टाणं सल्लघत्ताण, णिब्भय, णीराय, णिद्दोस, णिम्मोह, णिम्मम, णिस्संग, णिस्सल्ल, माण-माय-मोसमूरण, तवप्पहावण, गुणरयणसीलसायर, अणंत, अप्पमेय, महदिमहावीर-वड्ढमाण बुद्धि-रिसिणो चेदि णमोत्थु दे, णमोत्थु दे, णमोत्थु दे।

मम मंगलं अरिहंता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो य, ओहिणाणिणो य, मणवज्जवणाणिणो य, चउद्दसपुव्वगामिणो य, सुदसमिदिसमिद्धा य, तवो य वारसविहो, तवस्सी य, गुणा य, गुणवंतो य, महरिसी, तित्थं तित्थंकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणीदा य, वंभचेरवासो वंभचेरवासी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमँतो य, ससमय-परसमयविदू, खंतिक्खवगा य खवगा य, खीणमोहा य, बोहियबुद्धा य, बुद्धिमँतो य, चेइयरुक्खा य, चेइयाणि य।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्धिणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जँते चँपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओ वि णिसीहियाओ

जिनदेवको नमस्कार है, जिनदेवको नमस्कार है, जिनदेवोंको नमस्कार है। उनके निवास-रूप इस जिन-मन्दिरको नमस्कार है, जिन मन्दिरको नमस्कार है, जिन मन्दिरको नमस्कार है। हे अरिहंत, सिद्ध, बुद्ध, नोरज (कर्म-रजरहित), निर्मल, सममन (वीतराग), सुमन, सुसमर्थ, समयोग, शमभाव, शल्य-घट्टक, शल्य-कर्तक, निर्भय, नीराग, निर्दोष, निर्मोह, निर्मम, निःसंग, निःशल्य, मान-माया और मृषावादके मर्दक, तपःप्रभावक, गुणरत्न-शील-सागर, अनन्त, अप्रमेय भगवन्, तुम्हें नमस्कार है। महति महावीर वर्धमान और बुद्धि ऋषीश्वर, तुम्हें नमस्कार है तुम्हें नमस्कार है।

लोकमें जो अरिहन्त हैं, सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, जिन हैं, केवली हैं, अवधिज्ञानी हैं, मनःपर्ययज्ञानी हैं, चौदह पूर्ववेत्ता हैं, श्रुत और समितियोंसे समृद्ध हैं, बारह प्रकार का तप है और उनके धारक तपस्वी हैं, चौरासी लाख उत्तर गुण हैं, और उनके धारक जो गुणवन्त साधु हैं, तीर्थ और तीर्थंकर हैं, प्रवचन और प्रवचन-कारक हैं, ज्ञान और ज्ञान-धारक हैं, दर्शन और दर्शन-धारक हैं, संयम और संयम-धारक हैं, विनय और विनयवान् हैं, ब्रह्मचर्यवास और ब्रह्मचर्यवासी हैं, गुप्ति और गुप्ति-धारक हैं, बहिरंग और अन्तरंग परिग्रहत्याग और उसके त्यागी हैं, समिति और समिति-धारक हैं, स्वसमय और पर-समयके वेत्ता हैं, शान्तिसे परीषहोंके सहन करनेवाले हैं, और कर्म-क्षपक या क्षमावन्त हैं, क्षपक हैं, क्षीणमोही हैं, बोधित बुद्ध हैं, और बुद्धिऋद्धिके धारक हैं, चैत्यवृक्ष और चैत्य (जिन बिम्ब) हैं, वे सब मेरा मंगल करें।

ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक और अधोलोकमें जितने सिद्धायतन हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ, अष्टापद (कैलाश) पर्वत, सम्मेदाचल, ऊर्जयन्तगिरि, चम्पा, मध्यमा, पावा और हस्तिपालिका-सभास्थान में जो निषीधिकाएँ है, तथा इनके सिवाय जीवलोक (ढाईद्वीप) में अन्य जितनी भी निषीधिकाएँ हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। ईषत्प्राग्भार नामकी आठवीं पृथिवीके उपरिमतल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवलोयम्मि ईसिपब्भारतलगयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु-आयरिय-उवज्झायाणं पवत्ति-थेर-कुलयराणं चाउव्वण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु, पंचसु महाविदेहेसु जे लोए संति साहवो संजदा तवस्सी एदे मम मंगलं पवित्तं एदे हं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलि मत्थयम्मि तिविहं तियरण सुद्धो।

भागमें अवस्थित जो सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, कर्मचक्रसे विमुक्त हैं, नीरज हैं, निर्मल हैं, गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर और कुलकर (गणधर और गणनायक) हैं, उनकी निषीधिकाओं को नमस्कार करता हूँ। ढाई द्वीप-सम्बन्धी पाँच भरत और पाँच ऐरावत इन दश क्षेत्रोंमें, तथा पंच महा विदेहोंमें जो ऋषि, यति, मुनि-अनगाररूप चातुर्वर्ण श्रमणसंघ है, मनुष्य लोकमें जितने साधु हैं, संयत हैं, तपस्वी हैं, ये सब मेरे लिए पवित्र मंगलकारी होवें। भावसे तथा त्रिकरण (मन वचन काय) से शुद्ध होकर त्रिविध (देव वन्दना, प्रतिक्रमण और स्वाध्यायरूप) क्रियानुष्ठान-के समय मैं मस्तक पर अंजुली रखकर और वन्दना करके नमस्कार करता हूं।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. धर्मसंग्रह श्रावकाचार–प्रशस्ति

स्वस्तिश्रीतिलायमानमुकुटघृष्टाङ्घ्रिप्रपाथोरुहे स्वस्त्यानन्दचिदात्मने भगवते पूजार्हते चार्हते।
स्वस्ति प्राणिहितङ्कराय विभवे सिद्धाय बुद्धाय ते स्वस्त्युत्पत्तिजराविनाशरहितस्वस्थाय शुद्धाय ते ।।१

वाग्भातपत्रचमरासनपुष्पवृष्टीपिण्डीद्रुमामरमृदङ्गरवेण लक्ष्यः ।
येऽनन्तबोधसुखदर्शनवीर्ययुक्तास्ते सन्तु नो जिनवराः शिवसौख्यदा वै ।।२।।

सम्यक्त्वमुख्यगुणरत्नतदाकरा ये संभूय लोकशिरसि स्थितिमादधानाः।
सिद्धा सदा निरुपमा गतमूर्त्तिबन्धा भूयासुराशु मम ते भवदुःखहान्यै ।।३।।

मूलोत्तरादिगुणराजिविराजमानाः क्रोधादिदूषणमहोध्रतडित्समानाः ।
ये पञ्चधाचरणचारणलब्धमाना नन्दन्तु ते मुनिवरा बुधवन्द्यमानाः ।।४।।

येऽध्यापयन्ति विनयोपनतान् विनेयान् सद्द्वादशाङ्गमखिलं रहसि प्रवृत्तान् ।
अर्थं दिशन्ति च धिया विधिवद्विदन्तस्तेऽध्यापका हृदि मम प्रवसन्तु सन्तः ।।५।।

रत्नत्रयं द्विविधमप्यमृताय नूनं ये ध्यानमौननिरतास्तपसि प्रधानाः ।
संसाधयन्ति सततं परभावयुक्तास्ते साधवो ददतु वः श्रियमात्मनीनाम् ।।६।।

प्रशस्तिका अनुवाद

स्वर्गके तिलकसमान इन्द्रके मुकुटोंसे जिनके चरण-कमल घिसे जाते हैं, जिनके चरण-सरोजों में इन्द्र आकर नमस्कार करता है, उनके लिये कल्याण हो। जिनकी आत्मा आनन्दरूप है ऐसे पूजनीय अर्हन्त भगवान्‌के लिए कल्याण हो। अखिल संसार के जीवोंका उपकार करने वाले विभव-स्वरूप तथा बुद्धस्वरूप सिद्धभगवान् के लिये कल्याण हो। और उत्पत्ति (जन्म), वृद्धावस्था (जरा) तथा मरणसे रहित निरन्तर ज्यों के त्यों स्थित रहने वाले शुद्ध स्वरूपके लिये कल्याण हो ।।१।। दिव्यध्वनि, भामण्डल, छत्र, चामर, आसन, पुष्प वृष्टि, अशोकतरु तथा देवदुन्दुभि इन आठ प्रातिहार्योंसे केवलज्ञान दशाको प्रगट करने वाले तथा अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, अनन्तदर्शन से विभूषित जिनभगवान् हमलोगों के लिये मोक्ष सुख के प्रदाता हों ।।२।। जिनमें सम्यक्त्व प्रधान है ऐसे जो ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अगुरुलघु, अव्याबाधादि गुणरत्न हैं उनके आकर (खानि) होकर लोकाकाशके शिखर पर अपनी स्थिति को करने वाले, निरुपम (जिनका उपमान संसार में कोई नहीं है जिसकी उनको उपमा दी जाय) तथा मूर्तिमान पुद्गलादिके सम्बन्ध रहित (अमूर्तिक) सिद्धभगवान् मेरे संसार दुःखों के नाश करने वाले हों ।।३।। अट्ठाईस मूलगुण तथा चौरासी लाख उत्तरगुण की राजि (माला) से शोभायमान, क्रोध, मान, माया, लोभादि दोष रूप पर्वत के खण्ड करने में बिजली के समान, पंचप्रकार चारित्रके धारण करने से जिन्हें सन्मान प्राप्त हुआ है तथा बुद्धिमान लोग जिन्हें अपना मस्तक नवाते हैं ऐसे मुनिराज दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होवें ।।४।। जो एकान्तमें विनयपूर्वक आये हुए शिष्य लोगोंको सर्व द्वादशांगशास्त्र पढ़ाते हैं तथा अपनी बुद्धिसे उसके अर्थका उपदेश करते हैं विधिपूर्वक सर्व शास्त्रोंके जाननेवाले वे अध्यापक (उपाध्याय) मेरे हृदय कमलमें प्रवेश करें ।।५।। जो ध्यान तथा मौनमें लीन हैं जो तपश्चरणादि के करनेमें सदैव अग्रगण्य समझे जाते हैं, जो शिव सदनके अनुपम सुखके लिये व्यवहार तथा निश्चय रत्नत्रयका साधन करते हैं, शत्रु मित्रोंको एक समान जानने वाले वे साधु (मुनिराज)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकोत्तमाः शरणमङ्गलमङ्गभाजामर्हद्विमुक्तमुनयो जिनधर्मकाश्च ।
ये तान् नमामि च दधामि हृदम्बुजेऽहं संसारवारिधिसमुत्तरणैकसेतून् ॥७॥
स्याद्वादचिह्नं खलु जैनशासनं जन्मव्ययध्रौव्यपदार्थशासनम् ।
जीयात् त्रिलोकीजनशर्मसाधनं चक्रे सतां वन्द्यमनिन्द्यबोधनम् ॥८॥
सन्नन्दिसङ्घसुरवर्त्मदिवाकरोऽभूच्छ्रीकुन्दकुन्द इतिनाम मुनीश्वरोऽसौ ।
जीयात्स यद्विहितशास्त्रसुधारसेन मिथ्याभुजङ्गगरलं जगतः प्रणष्टम् ॥९॥

आम्नाये तस्य जातो गुणगणसहितो निर्मलब्रह्मपूतः,
सद्विद्यापारयातो जगति सुविदितो मोहरागव्यतीतः ।
सूरिश्रीपद्मनन्दी भवविहृतिनदीनाविको भव्यनन्दी.
स्यान्नित्यानित्यवादी परमतविलसन्निर्मदीभूतवादी ॥१०॥
तत्पट्टे शुभचन्द्रकोऽजनि जनिध्रौव्यान्तरूपार्थवित्
द्वेधा सत्तपसां विधानकरणः सद्वर्णरक्षाचणः ।
येनाऽद्योति जिनेन्द्रदर्शननभोनक्तं कलौ ज्योत्स्नया
सद्-वृत्याऽमृतगर्भया गुरुबुधानन्दात्मना स्वात्मना ॥११॥

तुम लोगोंके लिये आत्मीय लक्ष्मीके देने वाले हों ॥६॥ जो लोकमें श्रेष्ठ हैं, संसारवर्ती जीवोंको आश्रयस्थान तथा मंगल रूप हैं, तथा संसार रूप नीरधिके पार करनेमें जहाज समान हैं ऐसे अर्हत्सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु तथा जिनधर्मको मैं अपने हृदय कमलमें धारण करता हूँ तथा उनके लिये नमस्कार भी करता हूँ ॥७॥ स्याद्वाद (अनेकान्त) मतका चिह्न, उत्पत्ति, विनाश, तथा ध्रौव्य (नित्यावस्था) गुणसे युक्त पदार्थका उपदेश देने वाला, तीनों लोकमें जितने प्राणिवर्ग हैं उन सबके लिये सुखका प्रधान कारण जैन शासन इस संसारमें चिरकाल पर्यन्त रहे जिसके द्वारा प्राचीन समयमें सत्पुरुषोंको प्रणति योग्य निर्दोषज्ञानकी प्राप्ति हुई है ॥८॥ श्रेष्ठ नन्दिसंघ रूप गगनमें सूर्यके समान तेजस्वी श्रीकुन्दकुन्द मुनिराज हुए हैं जिनके बनाये हुए शास्त्र रूप अमृत रससे इस संसारका मिथ्यात्वरूप सर्पराजका उत्कट विष नाश हुआ वे मुनिराज निरन्तर जयको प्राप्त होवें ॥९॥ जिस तरह सर्पका विष अमृतके सेवनसे दूर हो जाता है उसी तरह जिनके शास्त्र रूप अमृतसे मिथ्यात्व रूप सर्पसे काटे हुए जगत्का विष दूर हुआ है (जिनके द्वारा मिथ्यामतका नाश होकर जैन शासनकी प्रवृत्ति हुई है) वे कुन्दकुन्द मुनिराज इस जगत्को सदैव पवित्र करें। उन्हीं कुन्दकुन्द मुनिराजकी आम्नायमें अनेक प्रकार पवित्र गुण समूहसे विराजमान, निर्दोष ब्रह्मचर्यसे पवित्र, स्याद्वादरूप पवित्र विद्याके पारको प्राप्त, अखिल संसारमें प्रसिद्ध, मोह, द्वेष, रागादिसे सर्वथा विनिर्मुक्त, भवभ्रमण रूप अगम्य नदीके कर्णधार (खेवटिया), भव्यजनोंको आनन्ददायी, कथंचित् नित्य तथा कथंचित् अनित्यरूप स्याद्वादमार्गका कथन करने वाले तथा जिन्होंने अच्छे-अच्छे परमतावलम्बी विद्वानोंका अवलेप दूर कर दिया है—ऐसे श्रीपद्मनन्दी आचार्य हुए ॥१०॥ श्रीपद्मनन्दी आचार्यके पट्टपर-उत्पत्ति, विनाश, तथा नित्य-स्वरूप पदार्थके जानने वाले, अन्तरंग तथा बहिरंग तपके धारण करने वाले, पवित्र जिनशासन की रक्षा करनेमें उत्साहशील, श्रीशुभचन्द्र मुनिराज हुए। अपने आत्माके द्वारा बड़े-बड़े विद्वान् पुरुषोंको आनन्दके देनेवाले जिन शुभचन्द्र मुनिराज ने इस कलिकालरूप रात्रिमें—भीतर अमृतरस पूरित सदाचरणरूप ज्योत्स्ना (चाँदनी) से जिनशासन रूप गगन मण्डलको प्रकाशित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मान्नीरनिधेरिवेन्दुरभवच्छ्रीमज्जिनेन्दुर्गणी
स्याद्वादाम्बरमण्डले कृतगतिर्दिग्वाससां मण्डनः ।
यो व्याख्यानमरीचिभिः कुवलये प्रह्लादनं चक्रिवान्
सद्-वृत्तः सकलः कलङ्कविकलः षट्कर्मनिष्णातधीः ॥१२॥
श्रीमत्पुस्तकगच्छसागरनिशानाथः श्रुतादिर्मुनि—
र्जाताऽर्हन्मततर्ककर्कशतयाऽन्यान् वादिनो योऽभिनत् ।
तस्मादष्टसहस्रिकां पठितवान् विद्वद्भिरन्यैरहं
सोऽयं सूरिमतल्लिका विजयते चारित्रपात्रं भुवि ॥१३॥
सूरिश्रीजिनचन्द्रकस्य समभूद् रत्नादिकीर्तिर्मुनिः
शिष्यस्तत्त्वविचारसारमतिमान् सद्ब्रह्मचर्यान्वितः ।
योऽनेकैर्मुनिभिस्त्वणुव्रतिभिराभातीह मौण्डचैर्गणी
चन्द्रो व्योम्नि यथा ग्रहैः परिवृतो भैश्चोल्लसत्कान्तिमान् ॥१४॥
तच्छिष्यो विमलादिकीर्त्तिरभवन्निर्ग्रन्थचूडामणि-
र्यो नानातपसा जितेन्द्रियगणः क्रोधेभकुम्भे शृणिः ।

किया ॥११॥ जिस प्रकार जलधिसे चन्द्रमा समुद्भूत होता है उसी तरह शुभचन्द्र मुनिराजके पट्टपर विराजमान होने वाले, जिस प्रकार चन्द्रमाका गमन आकाशमें होता है उसी तरह स्याद्वादरूप गगनमण्डलमें विहार करने वाले, जिस प्रकार शशि दिशाओंका भूषण होता है उसी तरह दिगम्बर मुनिराजोंके अलंकार स्वरूप, जिस प्रकार चन्द्रमा अपने मयूख मंडलसे पृथ्वीमें आह्लाद करता है उसी तरह जिन-शासनाभिमत पदार्थ-द्योतक व्याख्यान रूप किरण मण्डलसे अखिल वसुन्धरावलयमें आह्लाद करने वाले, जिस प्रकार चन्द्रबिम्ब सद्वृत्त (गोलाकार) है उसी तरह उत्तम-उत्तम आचरणोंके धारक, जिस प्रकार कुमुदबान्धव षोड़श कला सहित होता है उसी तरह अनेक प्रकार की कलाओंसे मण्डित, इतनी समानता होने पर भी चन्द्रमासे विशेष गुणके भाजन ॥१२॥ चन्द्रमा तो कलंक सहित होता है और यह कलंक रहित थे। तथा जिनकी विदुषी बुद्धि षडावश्यक पालनेमें अतिशय समर्थ थी ऐसे जिनचन्द्र मुनिराज हुए। जिस प्रकार चन्द्रमण्डलके उदयसे नीरधि वृद्धिको प्राप्त होता है उसी तरह लक्ष्मी विभूषित श्रीपुस्तकगच्छ रूप रत्नाकरके बढ़ानेके लिये शशिमण्डल तुल्य श्रुतमुनि हुए। जिन्होंने जिन शासन सम्बन्धित प्रमाणशास्त्रकी कठोरतासे परवादियोंका अभिमान भंग किया। उन्हीं श्रुतमुनि से तथा और-और विद्वानोंसे मैंने अष्टसहस्री पढ़ी। जो वसुन्धरावलयमें उत्तम-उत्तम चारित्रके धारण करने योग्य पात्र हैं वे ही आचार्यवर्य श्रीश्रुतमुनि विजयको प्राप्त होवें ॥१३॥ आचार्य श्री जिनचन्द्रके—जीवादितत्त्वोंके विचारसे तीक्ष्ण बुद्धिशाली तथा पवित्र ब्रह्मचर्यसे मण्डित श्रीरत्नकीर्त्ति मुनि शिष्य हुए। जो अपने संगमें अनेक मुनियों तथा अणुव्रतके धारी क्षुल्लक ऐलकादि साधु समूहसे ऐसे शोभाको प्राप्त होते हैं समझो कि विशद गगनमण्डलमें शोभनीय कान्तिविलसित चन्द्रमा जिस तरह ग्रह तथा तारागणसे मण्डित शोभता है ॥१४॥ उन रत्नकीर्ति मुनिके–निर्ग्रन्थमुनियोंके चूड़ामणि, अनेक प्रकारके दुर्द्धर तपश्चरणादिसे इन्द्रियोंको जीतने वाले, क्रोध रूप गजराजको अपने अधीन करनेके लिए अंकुशके समान, भव्यजनरूप कमलोंके विकसित करनेके लिये सूर्य समान, तथा अष्टमीके चन्द्रमाकी कान्ति समान अपनी विशद कीर्तिसे उज्ज्वल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव्याम्भोजविरोचनो हरशशाङ्काभस्वकीर्त्योज्ज्वलो
नित्यानन्दचिदात्मलीनमनसे तस्मै नमो भिक्षवे ॥१५॥

यः कक्षापटमात्रवस्त्रममलं धत्ते च पिच्छं लघु
लोचं कारयते सकृत् करपुटे भुङ्क्ते चतुर्थादिभिः।
दीक्षां श्रौतमुनि बभार नितरां सत्क्षुल्लकः साधकः,
आर्यो दीपक आख्ययाऽत्र भुवनेऽसौ दीप्यतां दीपवत् ॥१६॥

छात्रोऽभूज्जैनचन्द्रो विमलतरमतिः श्रावकाचारभव्य-
स्त्वग्रोतानूकजातोद्धरुणतनुरुहो भोषुहीमातृसुतः।
मीहाख्यः पण्डितो वै जिनमतनयनः श्रो हिसारे पुरेऽ-
स्मिन् ग्रन्थः प्रारम्भि तेन श्रीमहति वसता नूनमेष प्रसिद्धे ॥१७॥

सपादलक्षे विषयेऽतिसुन्दरे श्रिया पुरं नागपुरं समस्ति यत्।
पेरोजखानो नृपतिः प्रपाति यन्न्यायेन शौर्येण रिपून्निहन्ति च ॥१८॥

नन्दन्ति यस्मिन् धन-धान्यसम्पदा लोकाः स्वसन्तानगणेन धर्मतः।
जैना घनाश्चैत्यगृहेषु पूजनं सत्पात्रदानं विदधत्यनारतम् ॥१९॥

चान्द्रप्रभे सद्मनि तत्र मण्डिते कूटस्थसत्कुम्भसुकेतनादिभिः।
महाभिषेकादिमहोत्सवैर्लसत्प्रवृद्धसङ्गीतरसेन चानिशम् ॥२०॥
मेधाविनामा निवसन्नहं बुधः पूर्णं व्यधां ग्रन्थमिमं तु कार्त्तिके।
चन्द्राब्धिबाणैकमितेऽत्र (१५४१) वत्सरे कृष्णे त्रयोदश्यहनि स्वशक्तितः ॥२१॥

ऐसे विमलकीर्त्ति मुनि हुए। नित्य आनन्द स्वरूप आत्मामें जिनका हृदय तल्लीन है, उन साधु विमलकीर्ति महाराज के लिये मेरा नमस्कार है ॥१५॥ जो निर्मल खंडवस्त्रमात्र तथा पिच्छी धारण करते हैं, केशोंका लोंच करते हैं, जो दो-दो तीन-तीन दिन वाद एक ही वक्त अपने पाणिपात्र में आहार करते हैं, जिन्होंने श्री श्रुतमुनिसे दीक्षा धारण की है वे श्रेष्ठ क्षुल्लक दीपकभिक्षु इस संसारमें दीपकके समान देदीप्यमान होवें ॥१६॥ अत्यन्त निर्मल बुद्धिके धारक, श्रावकाचारके पालन करनेमें सरल चित्त, अग्रोतकुल अग्रवाल वंशमें उत्पन्न होने वाले उद्धरुणके पुत्र, भीषुहीनाम जननी से उत्पन्न तथा जिन शासनके एक अद्वितीय नेत्र, श्रीमीहा नाम पंडित जिनचन्द्र मुनिका शिष्य हुआ। लक्ष्मीसे सुन्दर तथा प्रख्यात श्री हिसारपुरमें रहने वाले उस पण्डित मीहाने इस (धर्मसंग्रह) ग्रन्थके रचनेका काम आरम्भ किया ॥१७॥ लक्ष्मीसे अतिशय मनोहर सपादलक्ष देशमें नागपुर नामका पुर है। पेरोजखान नाम राजा उसका पालन करता है वह अपने शत्रु समूहका विध्वंस नीति और वीरताके साथ करता है ॥१८॥ जिस नागपुरमें सर्वलोक धन्य धान्यादि विभूतिसे, अपने पुत्र पौत्रादि सन्तान समूहसे तथा धर्मसे सदा आनन्दित रहते हैं। और जैन धर्मानुयायी सज्जन पुरुष-निरन्तर जिन मन्दिरमें जिन भगवान् का पूजन तथा पात्रदानादि उत्तम-उत्तम कर्म करते हैं ॥१९॥ वहाँ नागपुर (नागोर) में कूटोंपर स्थित उत्तम कलशोंसे और ध्वजा आदिसे मंडित, तथा महाभिषेक आदि महोत्सवे.से शोभित और निरन्तर संगीत रससे प्रवर्धमान है ऐसे चन्द्रप्रभ भगवानके मन्दिरमें हिसार निवासी मेघावी नामक मुझ पंडितने अपनी शक्तिके अनुसार संवत् १५४१ कार्तिक वदी त्रयोदशीके दिन इस धर्मसंग्रह नाम ग्रन्थको समाप्त किया ॥२०-२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेधाविनाम्नः कविताकृतोऽयं श्रीनन्दनोऽर्हत्पदपद्मभृङ्गः ।
यो नन्दनोऽभूज्जिनदाससंज्ञोऽनुमोदकोऽस्यास्तु सुदृष्टिरेषः ॥२२॥
सामन्तभद्र-वसुनन्दिकृतं समीक्ष्य सच्छ्रावकाचरणसारविचारहृद्यम् ।
आशाधरस्य च बुधस्य विशुद्धवृत्तेः श्रीधर्मसङ्ग्रहमिमं कृतवानहं भो ॥२३॥
यद्यत्र दोषः क्वचिदर्थजातः शब्देषु वा छान्दसिकोऽथवा स्यात् ।
युक्त्या विरुद्धं गदितं मया यत्संशोध्य तत्साधुधियः पठन्तु ॥२४॥
शास्त्रं प्राच्यमतीव गभीरं पृथुतरमर्थैर्ज्ञातुमलं कः ।
तस्मादल्पं पिच्छलममलं कृतमिदमन्योपकृतौ नूत्नम् ॥२५॥
गर्वान्न मयाऽकारि न कीर्त्यै न च धनमाननिमित्तं त्वेतत् ।
हितबुद्धया केवलमपरेषां स्वस्य च बोधविशुद्धिविवृद्धयै ॥२६॥
सद्दर्शनं निरतिचारमवन्तु भव्याः श्राद्धा दिशन्तु हितपात्रजनाय दानम् ।
कुर्वन्तु पूजनमहो जिनपुङ्गवानां पान्तु व्रतानि सततं सह शीलकेन ॥२७॥
गाढं तपन्तु जिनमार्गरता मुनीन्द्राः सम्भावयन्तु निजतत्त्वमवद्यमुक्तम् ।
धर्मी भवेद्विजयवान् नृपतिः पृथिव्यां दुर्भिक्षमत्र भवतान्न कदाचनापि ॥२८॥
राज्यं न वाञ्छामि न भोगसम्पदो न स्वर्गवासं न च रूपयौवनम् ।
सर्वं हि संसारनिमित्तमङ्गिनां तदात्वमृष्टं क्षणिकं च दुःखदम् ॥२९॥

इस कविता करनेवाले मेधावी नामक कविका जिनदास नामक पुत्र जो श्री देवीका नन्दन, अरहन्त देवके चरण कमलोंका भ्रमर और सम्यग्दृष्टि है, वह इस ग्रन्थ-रचनाका अनुमोदक है ॥२२॥ हे पाठको ! श्री समन्तभद्र, वसुनन्दि और आशाधरकृत उत्तम श्रावकाचारोंके सारभूत हार्दको हृदयङ्गम करके मुझ मेधाविने इस श्रीधर्मसंग्रह नामके श्रावकाचारको रचा है ॥२३॥ इस ग्रन्थ-रचनामें जो कहीं पर अर्थ-गत, शब्दगत, छन्द-सम्बन्धी और युक्तिके विरुद्ध यदि मैंने कहा हो तो उत्तम बुद्धिवाले सज्जन उसे संशोधन करके पढ़ें ॥२४॥ प्राचीन शास्त्र अतीव गम्भीर और विशाल हैं, उनके पूर्ण अर्थको जाननेके लिए कौन समर्थ है ? इसलिए मैंने यह निर्मल, संक्षिप्त और नवीन ग्रन्थ अन्य जनोंके उपकारके लिए रचा है ॥२५॥ मैंने इसकी रचना न गर्वसे की है, न कीर्त्तिके लिए की है और न धन-सन्मानके निमित्तसे की है। किन्तु केवल दूसरोंके लिए हित-बुद्धिसे और अपने ज्ञान और विशुद्धिकी वृद्धिके लिए की हैं ॥२६॥

अहो भव्यजनो ! निरतिचार सम्यग्दर्शनकी रक्षा करो, श्राद्ध जन अर्थात् सम्यग्दृष्टि श्रावक गण हितैषी पात्र जनोंके लिए दान देवें, जिनेश्वर देवकी पूजन करें और सप्तशीलोंके साथ निरन्तर पांच व्रतोंका पालन करें ॥२७॥

जिनमार्गमें संलग्न मुनिराज प्रगाढ़ तपको तपें, और निर्दोष, जिनोक्त-आत्म-तत्त्वकी भावना करें। पृथ्वी पर राजा धार्मिक एवं विजयवान् हो और इस भूमण्डल पर कभी भी दुर्भिक्ष न हो ॥२८॥

मैं न राज्य-पानेकी वांछा करता हूँ, न भोग-सम्पदा चाहता हूँ, न स्वर्गका निवास चाहता हूँ, न रूप और यौवन चाहता हूँ। क्योंकि ये सभी वस्तुएँ संसार बढ़ाने की निमित्त हैं, जीवोंको तात्कालिक क्षणिक सुखद हैं, किन्तु अन्तमें तो महादुःखप्रद हीं हैं ॥२९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्दुर्लभं भवभृतां भवकाननेऽस्मिन् बम्भ्रम्यतां विविधदुःखमृगारिभीमे।
रत्नत्रयं परमसौख्यविधायि तन्मे द्वेधाऽस्तु देव तव पादयुगप्रसादात् ॥३०॥
अज्ञानभावाद्यदि किञ्चिदूनं प्ररूपितं क्वाप्यधिकं च भावे।
सर्वज्ञवक्त्रोद्भविके हि तन्मे क्षान्त्वा हृदब्जेऽधिवसेः सदा त्वम् ॥३१॥

यावत्तिष्ठति भूतले जिनपतेः स्नानस्य पीठं गिरि-
स्त्वाकाशे शशिभानुबिम्बमधरे कूर्मस्य पृष्ठे मही।
व्याख्यानेन च पाठनेन पठनेनेदं सदा वर्ततां
तावच्च श्रवणेन चित्तनिलये सन्तिष्ठतां धीमताम् ॥३२॥

भूयासुश्चरणा जिनस्य शरणं तद्दर्शने मे रति-
र्भूयाज्जन्मनि जन्मनि प्रियतमासङ्गादिमुक्ते गुरौ।
सद्भक्तिस्तपसश्च शक्तिरतुला द्वेधाऽपि मुक्तिप्रदा
ग्रन्थस्यास्य फलेन किञ्चिदपरं याचे न यौगैस्त्रिभिः ॥३३॥

व्याख्याति वाचयति शास्त्रमिदं श्रृणोति विद्वांश्च यः पठति पाठयतेऽनुरागात्।
अन्येन लेखयति वा लिखति प्रदत्ते स स्याल्लघु श्रुतधरश्च सहस्रकीर्त्तिः ॥३४॥

शान्तिः स्याज्जिनशासनस्य सुखदा शान्तिर्नृपाणां सदा
शान्तिः सुप्रजसां तपोभरभृतां शान्तिर्मुनीनां मुदा।

नाना प्रकार के दुःखरूपी सिंहों से भयानक इस भव-कानन (वन) में परिभ्रमण करते हुए संसारी प्राणियोंको परम सुखदायक रत्नत्रय अति दुर्लभ है। हे देव! आपके चरण-युगलके प्रसादसे वह निश्चय-व्यवहार रूप दोनों ही प्रकारका रत्नत्रय मेरेको प्राप्त होवे ॥३०॥

अज्ञानभावसे यदि कहीं पर कुछ तत्त्व कम कहा हो, या अधिक कहा हो, तो हे सर्वज्ञ-मुखसे प्रकट हुई सरस्वती देवि! मुझे क्षमा करके मेरे हृदय-कमलसे सदा निवास करो ॥३१॥

जब तक इस भूतल पर जिन-देवोंका स्नान-पीठरूप सुमेरु पर्वत विद्यमान हैं, आकाशमें सूर्य और चन्द्रबिम्ब हैं, अधोलोकमें कछुएकी पीठपर यह पृथ्वी स्थित है, तब तक यह ग्रन्थ व्याख्यान, पठन-पाठनसे और सुननेसे बुद्धिमानोंके हृदय-कमलमें सदा विराजमान रहे ॥३२॥

इस ग्रन्थकी रचनाके फलसे मेरे जन्म-जन्ममें अर्थात् जब तक मैं संसारमें रहूँ तब तक श्री जिनदेवके चरण मेरे लिए सदा शरण रहें, उनके दर्शन करनेमें मेरे सदा अनुराग रहे, प्रियतमा स्त्रीके संगमसे तथा परिग्रहसे रहित गुरुमें सद्-भक्ति रहे, मुक्तिको देनेवाले दोनों ही प्रकारके तप करनेकी मुझे अतुल शक्ति प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त मैं त्रियोगसे कुछ भी नहीं मांगता हूँ ॥३३॥

जो विद्वान् इस शास्त्रको अनुरागसे व्याख्यान करता है, वांचता है, सुनता है, पढ़ता है, पढ़ाता या पढ़वाता है, दूसरेसे लिखवाता है, अथवा स्वयं लिखता है और जिज्ञासु जनोंके देता है, वह सहस्र कीर्त्तिवाला होकर अल्प ही समयमें श्रुतधर अर्थात् शास्त्रोंका पारगामी श्रुतकेवली हो जाता है ॥३४॥

जिन शासनकी सुख-दायिनी शान्ति सदा बनी रहे, राजा लोगोंकी सदा शान्ति प्राप्त हो, प्रजाजनोंको शान्ति-लाभ हो, तपश्चरण करनेवाले मुनि गणोंके मनको प्रमुदित करनेवाली शान्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रोतॄणां कविताकृतां प्रवचनव्याख्यातृकाणां पुनः
शान्तिः शान्तिरघाग्निजीवनमुचः श्रीसज्जनस्यापि च ॥३५॥

यः कल्याणपरम्परां प्रकुरुते यं सेवते सत्तमा
येन स्यात्सुखकीर्त्तिजीवितमुरु स्वस्त्यत्र यस्मै सदा ।
यस्मान्नास्त्यपरः सुहृत्तनुमतां यस्य प्रसादाच्छ्रिय-
स्तं धर्मादिकसङ्ग्रहं श्रयत भो यस्मिन् जनो वल्लभः ॥३६॥

कूपान्निष्काश्य पातुं भवति हि सलिलं दुष्करं यस्य कस्य
केनाप्यन्येन नूत्नोत्कुटनिहितमहो अन्यथा वा तदेव ।
तद्वत्पूर्वप्रणीतात्कठिनविवरणाज्ज्ञातुमर्थोऽत्र शक्यः
कैश्चिज्जातप्रबोधैस्तदितरसुगमो ग्रन्थ एष व्यधायि ॥३७॥

धर्मसङ्ग्रहमिमं निशम्य यो धर्ममार्गमवगम्य चेतनः ।
धर्मसङ्ग्रहमलं करोत्यसौ सिद्धिसौख्यमुपयाति शाश्वतम् ॥३८॥

धर्मतः सकलमङ्गलावली रोदसीपतिविभूतिमान् बली ।
स्यादनन्तगुणभाक् च केवली धर्मसङ्ग्रहमतः क्रियतात्सुधीः ॥३९॥

मिले, ग्रन्थके श्रोता जनोंको, कविता करनेवालोंको, तथा 'प्रवचनका व्याख्यान करनेवालोंको शान्ति प्राप्त हो, पाप शान्त हो, अग्नि-सन्ताप न' हो, और जल-कष्ट न हो। तथा सज्जन पुरुषों-को सर्व प्रकारकी शान्ति प्राप्त हो ॥३५॥

जो धर्म कल्याणोंकी परम्परा करता है, जिसे सज्जनोत्तम पुरुष धारण करते हैं, जिसके द्वारा सुख, कीर्ति और जीवन विस्तृत होता है, जिसके लिए इस लोकमें सदा स्वस्ति-कामना की जाती है, जिससे बड़ा और कोई मित्र प्राणियोंका नहीं है, जिसके प्रसादसे सर्व प्रकार की लक्ष्मियाँ प्राप्त होती है, जिसके प्राप्त होने पर मनुष्य सर्वप्रिय होता है, ऐसे धर्म हैं आदि में जिसके, ऐसे इस संग्रहका अर्थात् धर्म संग्रह श्रावकाचार ग्रन्थका हे भव्यजनो, तुम लोग आश्रय लो ॥३६॥

जिसे कूपसे निकालकर जल पीना कठिन है, ऐसे किसी पुरुषको यदि कोई अन्य पुरुष नवीन घड़ेमें भरा हुआ जल पीनेको देवे, अथवा अन्य प्रकारसे देवे, तो उसे बहुत आनन्द प्राप्त होता है। उसीके समान पूर्वाचार्योंसे प्रणीत कठिन शास्त्र-विवरणोंसे प्रबोधको प्राप्त कितने ही लोगोंको तो अर्थ जानना शक्य है। किन्तु जो प्रबोध प्राप्त पुरुष नहीं है, अर्थात् अल्पज्ञ या मन्द-बुद्धिजन है उनके लिए यह सुगम ग्रन्थ मैंने बनाया है ॥३७॥

जो सचेतन पुरुष इस धर्म संग्रह शास्त्रको सुनकर और धर्मके मार्गको जानकर स्वयं धर्मको संग्रह करेगा, वह नित्य मुक्तिको सुखको प्राप्त होगा ॥३८॥

धर्मके प्रसादसे सर्वप्रकारकी मंगल-परम्परा प्राप्त होती है, वह भूलोक और देवलोककी विभूति वाला, बलवान् स्वामी होकर अन्तमें अनन्त गुणोंका धारक केवली होता है, इसलिए बुद्धिमान् पुरुषोंको धर्मका संग्रह करना चाहिए ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुधीः क्रियाद्यत्नममुष्य रक्षणे तैलानलाम्भःपरहस्तयोगतः ।
जानन् कविश्रान्तिमथ प्रवर्तने भूयात्समुत्कश्च परोपकृद्यतः ॥४०॥
चतुर्दश शतान्यस्य चत्वारिंशोत्तराणि वै ।
सर्वं प्रमाणमावेद्यं लेखकेन त्वसंशयम् ॥४१॥
इति सूरिश्री जिनचन्द्रान्तेवासिना पण्डितमेधाविना विरचितः
धर्मसङ्ग्रहश्रावकाचारः समाप्तः ।

कविके परिश्रमको जानकर इस शास्त्रके पढ़नेवाले सुधीजन इसकी तेल, अग्नि जल और पर-हस्तमें जानेसे संरक्षण करनेमें यत्न करें । तथा इसके प्रचार-प्रसादके प्रवर्तनमें सम्यक् प्रकारसे उत्सुक रहें । क्योंकि यह ग्रन्थ दूसरोंका उपकारक है ॥४०॥

इस ग्रन्थका परिमाण चौदह सौ चालीस (१३४०) श्लोक-प्रमाण है, यह बात शास्त्र-लेखकको निश्चित रूपसे जानना चाहिए ॥४१॥

इस प्रकार श्री जिनचन्द्रके शिष्य पंडित मेधावी द्वारा रचित धर्मसंग्रह श्रावकाचार की प्रशस्ति समाप्त हुई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. लाटी संहिता-प्रशस्ति

किमिदमिह किलास्ते नाम संवत्सरादि, नरपतिरपि कः स्यादत्र साम्राज्यकल्पः ।
कृतमपि कमिदं भो केन कारापितं यत्, शृणु तदिति वदद्भि स्तूयतेऽथ प्रशस्तिः ॥१॥
(श्री) नृपतिविक्रमादित्यराज्ये परिणते सति । सहैकचत्वारिंशद्भिरब्दानां शतषोडश ॥२॥
तत्रापि चाश्विनीमासे सितपक्षे शुभान्विते । दशम्यां च दाशरथे शोभने रविवासरे ॥३॥
अस्ति साम्राज्यतुल्योऽसौ भूपतिश्चाप्यकब्बरः । महद्भिर्मण्डलेशैश्च चुम्बिताङ्घ्रिपदाम्बुजः ॥४॥
अस्ति दैगम्बरो धर्मो जैनः शर्म्मैककारणम् । तत्रास्ति काष्ठासंघश्च क्षालितांहःकदम्बकः ॥५॥
तत्रापि माथुरो गच्छो गणः पुष्करसंज्ञकः । लोहाचार्यान्वयस्तत्र तत्परंपरया यथा ॥६॥
नाम्ना कुमारसेनोऽभूद्भट्टारकपदाधिपः । तत्पट्टे हेमचन्द्रोऽभूद्भट्टारकशिरोमणिः ॥७॥
तत्पट्टे पद्मनन्दी च भट्टारकनभोंऽशुमान् । तत्पट्टेऽभूद्भट्टारको यशस्कीर्तिस्तपोनिधिः ॥८॥
तत्पट्टे क्षेमकीर्तिः स्यादद्य भट्टारकाग्रणीः । तदाम्नाये सुविख्यातं पत्तनं नाम डौकनि ॥९॥
तत्रत्यः श्रावको भारू भार्यास्तिस्रोऽस्य धार्मिकाः । कुलशीलवयोरूप-धर्मबुद्धिसमन्विताः ॥१०॥
नाम्ना तत्रादिमा मेघी द्वितीया नाम रूपिणी । रत्नगर्भा धरित्रीव तृतीया नाम देविला ॥११॥

प्रशस्ति का अनुवाद

यह लाटीसंहिता नामका ग्रंथ किस संवत्में बना है ? उस समय सम्राट्के समान कौन राजा था ? यह ग्रन्थ किसने बनाया और किसने बनवाया ? उस सबकी प्रशस्ति कहता हूँ तुम लोग सुनो ॥१॥ श्रीविक्रम संवत् सोलहसौ इकतालीसमें आश्विन शुक्ला दशमी रविवारके दिन अर्थात् विजया दशमीके दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ॥२-३॥ उस समय सम्राट्के समान बादशाह अकबर राज्य करता था। उस समय बड़े-बड़े मंडलेश्वर राजा लोग उसके चरण-कमलोंको नमस्कार करते थे ॥४॥ इस संसार में आत्माका कल्याण करनेवाला दिगम्बर जैनधर्म है। उस जैनधर्ममें भी पापरूपी कीचड़को धोनेवाला एक काष्ठासंघ है ॥५॥ उसमें भी माथुर गच्छ है, पुष्कर गण है और लोहाचार्यकी आम्नाय है। उसी परम्परामें एक कुमारसेन नामके भट्टारक हुए थे तथा उन्हींके पट्टपर भट्टारकोंमें शिरोमणि ऐसे हेमचन्द्रनामक भट्टारक बैठे थे ॥६-७॥ उनके पट्टपर भट्टारकोंके समुदायरूपी आकाशमें सूर्यके समान चमकनेवाले पद्मनंदि भट्टारक हुए थे तथा उनके पट्टपर बड़े तपस्वी यशस्कीर्तिनामके भट्टारक हुए थे ॥८॥ उनके पट्टपर भट्टारकोंमें मुख्य ऐसे क्षेमकीर्तिनामक भट्टारक हुए थे। उन्हींके समयमें यह ग्रन्थ बना है। क्षेमकीर्ति भट्टारक-की आम्नायमें एक डौकनिनामका नगर था। उस डौकनिनगरका रहनेवाला एक भारू नामका श्रावक था। उसके तीन स्त्रियाँ थीं जो अच्छी धार्मिक थीं। वे तीनों स्त्रियाँ कुलीन थीं, शीलवती थीं, रूपवती थीं, अच्छी आयुवाली थीं, धर्मको धारण करनेवाली थीं और बुद्धिमती थीं ॥९-१०॥ पहली स्त्रीका नाम मेघी था, दूसरीका नाम रूपिणी था और रत्नोंको उत्पन्न करनेवाली वसुमती पृथ्वीके समान तीसरी स्त्री थी उसका नाम देविला था ॥११॥ ऊपर लिखे हुए भारूनामक सेठके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योषितो देविलाख्यायाः पुंसो भारूसमाह्वयात् । चत्वारस्तत्समाः पुत्राः समुत्पन्नाः क्रमादिह ॥१२॥
तत्रादिमः सुतो दूदा द्वितीयः ठुकराह्वयः । तृतीयो जगसी नाम्ना तिलोकोऽभूच्चतुर्थकः ॥१३॥
दूदाभार्या कुलांगासीन्नाम्ना ख्याता उवारही । तयोः पुत्रास्त्रयः साक्षादुत्पन्नाः कुलदीपकाः ॥१४॥
आद्यो न्योता द्वितीयस्तु भोल्हा नाम्नाथ फामनः । न्योता संघाधिनाथस्य द्वे भार्ये शुद्धवंशजे ॥१५॥
आद्या नाम्ना हि पद्माही गौराही द्वितीया मता । पद्मांहीयोषितस्तत्र न्योतसंघाधिनाथतः ॥१६॥
पुत्रश्च देईदासः स्यादेकोऽपि लक्षायते । गौराहीयोषितः पुत्राश्चत्वारो मदनोपमाः ॥१७॥
न्योतासंघाधिनाथस्य स्ववंशावनिचक्रिणा । तत्रोद्योङ्गजो गोपा हि सामा पुत्रो द्वितीयकः ॥१८॥
तृतीयो घनमल्लोऽस्ति ततस्तुर्यो नरायणः । भार्या देईदासस्य रामूही प्रथमा मता ॥१९॥
कामूही द्वितीया ज्ञेया भर्तुश्छन्दानुगामिनी । रामूहीयोषितः पुत्रा देईदासस्य सद्मनि ॥२०॥
प्रथमश्चाख्यया साधू द्वितीयो हरदासकः । ताराचन्द्रस्तृतीयः स्याच्चतुर्थस्तेजपालकः ॥२१॥
पञ्चमो रामचन्द्रश्च पञ्चापि पाण्डवोपमाः । साधूभार्या मथुरी च या गंगा शुद्धवंशजा ॥२२॥
गोपाभार्या समाख्याता अजवा शुद्धवंशजा । सामाभार्या च पूरी स्याल्लावण्यादिगुणान्विता ॥२३॥
घनमल्लस्य भार्या स्याद्विख्याता हि उद्धरही । भोल्हासंघाधिनाथस्य भार्यास्तिस्रः कुलाङ्गनाः ॥२४॥
काजाही योषितः पुत्राः पञ्च प्रोच्चण्डविक्रमाः । प्रथमो बालचन्द्रः स्याल्लालचन्द्रो द्वितीयकः ॥२५॥

उस देविलानामकी स्त्रीसे चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके अनुक्रमसे ये नाम थे ॥१२॥ पहले पुत्रका नाम दूदा था, दूसरेका नाम ठुकर था, तीसरेका नाम जगसी था और चौथेका नाम त्तिलोक था ॥१३॥ अपने कुलको सुशोभित करनेवाली दूदाकी स्त्रीका नाम उवारही था। उससे दूदाके तीन पुत्र उत्पन्न हुए हैं जो कि अपने कुलको प्रकाशित करनेवाले दीपकके समान हैं ॥१४॥ पहले पुत्रका नाम न्योता है, दूसरेका नाम भोल्हा है और तीसरेका नाम फामन है। उनमें से न्योता संघनायक कहलाता है। उसके शुद्ध वंशकी उत्पन्न हुई दो स्त्रियाँ हैं ॥१५॥ पहली स्त्रीका नाम पद्माही है और दूसरी स्त्रीका नाम गौराही है। उस न्योता नामके संघनायकके पद्माही स्त्रीसे देईदास नामका एक पुत्र हुआ है जो कि एक होकर भी लाखोंके समान है तथा अपने वंशरूपी पृथ्वीको वश करनेके लिए चक्रवर्तीके समान। ऐसे न्योता नामक संघनायकके गौराही स्त्रीसे कामदेवके समान अत्यन्त सुन्दर चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं। उनमेंसे पहले पुत्रका नाम गोपा हैं, दूसरेका नाम सामा है, तीसरेका नाम घनमल्ल है और चौथेका नाम नारायण है। देईदासके दो स्त्रियाँ हैं, पहलीका नाम रामूही है ॥१६-१९॥ तथा अपने पतिकी आज्ञानुसार चलनेवाली दूसरी स्त्रीका कामूही है। देईदासके घर रामूही स्त्रीसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए हैं। उनमेंसे पहलेका नाम साधु है, दूसरेका नाम हरदास है, तीसरेका नाम ताराचंद है, चौथेका नाम तेजपाल है और पाँचवेंका नाम रामचन्द्र है। ये पांचों ही पुत्र पांचों पांडवोंके समान हैं। साधुकी स्त्रीका नाम मथुरी और शुद्ध वंशमें उत्पन्न होनेवाली गंगा है। ॥२०-२२॥ शुद्ध वंशमें उत्पन्न होनेवाली गोपाकी स्त्रीका नाम अजवा है तथा लावण्य आदि अनेक गुणोंको धारण करनेवाली सामाकी स्त्रीका नाम पूरी है ॥२३॥ घनमल्लकी स्त्रीका प्रसिद्ध नाम उद्धरही है। यह न्योताका वंश बतलाया। भोल्हानामके संघनायकके तीन स्त्रियां हैं। ये तीनों ही कुलांगनाएं हैं ॥२४॥ उनमेंसे छाजूही नामकी स्त्रीसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए हैं जो बड़े ही पराक्रमी हैं। इनमेंसे पहलेका नाम बालचन्द्र हैं, दूसरेका लालचन्द्र है, तीसरेका नाम निहालचन्द्र है, चौथेका नाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीयो निहालचन्द्रश्चतुर्थो गणेशाह्वयः । कनिष्ठोपि गुणोत्कृष्टः पञ्चमस्तु नरायणः ॥२६॥
एते पञ्चापि पुत्राश्च जैनधर्मपरायणाः । बीधूहीयोषितः पुत्रौ जानकीयसुतोपमौ ॥२७॥
भोल्हासंघाधिनाथस्य वणिजां चक्रवर्तिनः । प्रथमको हरदासः कृष्णराजबलोपमः ॥२८॥
द्वितीयो भावनादासः शत्रुकाष्ठदवानलः । बालचन्द्रस्य सद्भार्या करमाया स्यात्कुलाङ्गना ॥२९॥
लालचन्द्रभार्या गोमा धर्मपत्नी पतिव्रता । निहालचन्द्रस्य भार्ये वंश्या नाम्ना च वीरणी ॥३०॥
गणेशाख्यस्य सद्भार्या साध्वी नाम्ना सहोदरा । फामनसंघनाथस्य भार्ये द्वे शुद्धवंशजे ॥३१॥
आद्या डूंगरही ख्याता नाम्ना गंगा द्वितीयका । डूंगरही भार्यायाः द्वौ पुत्रौ हि चिरजीविनौ ॥३२॥
रूडा स्यादादिमो नाम्ना माईदासो द्वितीयकः । गंगायाः योषितः पुत्रो मुख्यः फांजूसमाह्वयः ॥३३॥
रूडाभार्या च दूलाही तयोः पुत्रो च द्वौ स्मृतौ । प्रथमो भोवसी नाम्ना रामदासो द्वितीयकः ॥
स्ववंशगगने भूम्नि पुष्पदन्ताविव स्थितौ ॥३४॥
ज्झारू द्वितीयपुत्रस्य कठुराख्यस्य धर्मिणः । भार्या तिहुणाहि नाम्ना नाथू नाम सुतस्तयोः ॥३५॥
नाथूभार्या चिताल्ही स्यात्पुत्रौ रूढा तयोर्द्वयोः । ज्झारू चतुर्थपुत्रस्य भार्या चुंही समाख्यया ॥३६॥
तयोः पुत्रस्तु गांगू स्यादात्मवंशावतंसकः । एते सर्वेपि जैनाः स्युः कीर्त्या संघेश्वराः स्मृताः ॥३७॥

गणेश है तथा सबसे छोटा किंतु गुणोंमें सबसे बड़ा ऐसा पांचवां पुत्र नारायण है ॥२५-२६॥ ये पांचों पुत्र जैनधर्ममें तत्पर हैं। वैश्य या व्यापारियोंमें चक्रवर्तीके समान भोल्हानामके संघनायकके बीधूही नामकी स्त्रीसे दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं जो दोनों ही जानकीके पुत्र लव और अंकुशके समान हैं। इन दोनोंमेंसे पहले पुत्रका नाम हरदास है जो कृष्णराजबलके समान है। अथवा कृष्णराजके समान बलवान है तथा दूसरे पुत्रका नाम भगवानदास है जो शत्रुरूपी काष्ठको भस्म कर देने के लिए दावानल अग्निके समान है। इसमेंसे बालचन्द्रकी श्रेष्ठ कुलस्त्रीका नाम करमा है ॥२७-२९॥ लालचन्द्रकी धर्मपत्नी पतिव्रता स्त्रीका नाम गोमा है। निहालचन्द्रके दो स्त्रियां हैं। पहिली स्त्रीका नाम वैश्या हैं और दूसरीका नाम वीरणी है ॥३०॥ गणेशकी श्रेष्ठ और साध्वी (सीधीसाधी) स्त्रीका नाम सहोदरा है। इस प्रकार यह भोल्हाका वंश बतलाया। फामननामके संघनायकके दो स्त्रियां हैं जो दोनों ही शुद्ध वंशमें उत्पन्न हुई हैं। पहली स्त्रीका नाम डूगरही है और दूसरीका नाम गंगा है। फामनके डूगरही स्त्रीसे दो चिरंजीव पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥३१-३२॥ पहले पुत्रका नाम रूडा है और दूसरे पुत्रका नाम माईदास है तथा फामनसेठके गंगानामकी स्त्रीसे फांजू नामका एक मुख्य पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥३३॥ उसमेंसे रूडाकी स्त्रीका नाम दूलाही है। उस रूडाकी दूलाही स्त्रीसे दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं। पहले पुत्रका नाम भोवसी है और दूसरे पुत्रका नाम रामदास है। ये दोनों पुत्र पृथ्वीपर ऐसे शोभायमान हैं मानों अपने वंशरूपी आकाशमें सूर्य चन्द्रमा ही हों ॥३४॥ यह सब भारूके पहले पुत्र दूदाका वंश बतलाया। अब भारूके अन्य पुत्रोंका वंश बतलाते हैं। भारूके दूसरे पुत्रका नाम ठकुर है। वह भी बहुत धर्मात्मा है। उसकी स्त्रीका नाम तिहुणा है। उन दोनोंके एक पुत्र है जिसका नाम नाथू है ॥३५॥ नाथूकी स्त्रीका नाम चिताल्ही है। नाथूके उस चिताल्ही स्त्रीसे रूढा नामका पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह भारूके दूसरे पुत्र ठकरका वंश बतलाया। अब भारूके चौथे पुत्रका वंश बतलाते हैं। भारूके चौथे पुत्रका नाम तिलोक है। उसकी स्त्रीका नाम चुंही है ॥३६॥ उसके पुत्रका नाम गांगू है। यह गांगू अपने वंशमें आभूषणके समान सुशोभित है। ये सब जैनधर्मको धारण करते हैं और अपनी कीर्तिके द्वारा ये संघेश्वर कहलाते हैं ॥३७॥ इन सबमें गृहस्थधर्ममें अत्यन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतेषामस्ति मध्ये गृहवृषरुचिमान् फामनः संघनाथ-
स्तेनोच्चैः कारितेयं सदनसमुचिता संहिता नाम लाटी।
श्रेयोर्थं फामनीयैः प्रमुदितमनसा दानमानासनाद्यैः
स्वोपज्ञा राजमल्लेन विदितविदुषाऽऽम्नायिना हैमचन्द्रे ॥३८॥

इति श्रीवंशस्थितिवर्णनम्।

यावद्व्योमापगाम्भो नभसि परिगतौ पुष्पदन्तौ दिवीशौ
यावत्क्षेत्रेऽत्र दिव्या प्रभवति भरतो भारती भारतेऽस्मिन्।
तावत्सिद्धान्तमेतज्जयतु जिनपतेराज्ञया ख्यातलक्ष्म
तावत्त्वं फामनाख्यः श्रियमुपलभतां जैनसंघाधिनाथः ॥३९॥

इत्याशीर्वादः।

यावन्मेरुर्धरापीठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ। वाच्यमानं बुधैस्तावच्चिरं नन्दतु पुस्तकम् ॥४०॥

प्रेम रखनेवाला फामननामका संघनायक है उसीने यह गृहस्थोंके योग्य लाटीसंहितानामका ग्रन्थ निर्माण कराया है। फामनके द्वारा दिये हुए दान मान और आसनके द्वारा जिनका मन अत्यन्त प्रसन्न है तथा जो अत्यन्त विद्वान् है और श्रीहेमचन्द्रकी आम्नायमें रहता है ऐसा विद्वद्वर राजमल्लने अपने नामको धारण करनेवाली यह लाटीसंहिता अपने कल्याणके लिए निर्माण की है ॥३८॥ इस प्रकार वंशका वर्णन समाप्त हुआ। इस संसारमें जबतक गंगाका जल विद्यमान है तथा जबतक आकाशमें सूर्य चन्द्रमा परिभ्रमण कर रहे हैं और जबतक इस भरतक्षेत्रमें दिव्य सरस्वतीदेवी पूर्णरूपसे अपना प्रभाव जमा रही हैं तबतक भगवान् जिनेन्द्रदेवकी आज्ञानुसार ही जिसमें समस्त लक्षण कहे गये हैं ऐसा यह जैनसिद्धांत अथवा यह सिद्धांत ग्रंथ जयशील बना रहे तथा तभीतक संघका नायक यह फामन भी सब तरहकी लक्ष्मी और शोभाको प्राप्त होता रहे ॥३९॥ इति आशीर्वादः।

इस पृथ्वीपर जबतक मेरु पर्वत विद्यमान है तथा जबतक आकाशमें सूर्य चन्द्रमा विद्यमान हैं तबतक विद्वानोंके द्वारा पढ़ा जानेवाला यह ग्रन्थ चिरकालतक वृद्धिको प्राप्त होता रहे।

—:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९. पुरुषार्थानुशासन प्रशस्तिः

श्रीसद्महासः कुमुदाविलासस्तमोविनाशः सुपथप्रकाशः।
यत्रोदितेऽत्र प्रभवन्ति लोके नमाम्यहं श्रीजिनभास्करं तम् ॥१॥

दोषाप्रकाशः कमलावकाशस्तापस्य नाशः प्रसरश्च भासः।
यत्र प्रसन्नेऽत्र जने भवन्ति श्रीमज्जिनेन्दुं तमहं नमामि ॥२॥

कुर्वन्तु धी-कैरविणी-समृद्धिं विवेकवार्धेश्च जनेऽत्र वृद्धिम्।
श्रीमूलसंघाम्बरचन्द्रपादा भट्टारकश्रीजिनचन्द्रपादाः ॥३॥

विलसदमलकाष्ठासंघपट्टोदयाद्रा—
वुदित उरुवचोंऽशुध्वस्तदोषान्धकारः।
बुधजन-जलजानामुद्विलासं ददानो
जयति मलयकीर्त्तिर्भानुसाम्यं दधानः ॥४॥

काष्ठासंघेऽनघयतिभिर्यः कान्तो भात्याकाशे स्फुरदुडुभिर्वा चन्द्रः।
सत्प्रज्ञानां भवति न केषां नुत्यः कीर्त्याचारैः स कमलकीर्त्याचार्यः ॥५॥

प्रशस्ति का अनुवाद

जिस श्रीजिनेन्द्ररूप सूर्य के उदय होने पर लक्ष्मी के सदनस्वरूप कमल का विकास होता है, और रात्रि में खिलने वाले कुमुदों का अविलास अर्थात् संकोच हो जाता है, अन्धकार का विनाश और इस लोक में सुमार्ग का प्रकाश होता है, उस श्री जिनेन्द्रसूर्य को मैं नमस्कार करता हूँ॥ १॥

जिसके प्रसन्न होने पर दोषा अर्थात् रात्रि में प्रकाश होता है और कमलों का संकोच हो जाता है, सूर्य के ताप का विनाश होता है और प्रकाश का विस्तार होता है, ऐसे उस श्रीमान् जिनचन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥

जो श्रीमूलसंघरूप गगन के चन्द्र-किरणरूप हैं ऐसे श्री भट्टारक जिनचन्द्र के चरण इस (ग्रन्थकार) जन में अथवा इस लोक में बुद्धिरूपी कुमुदिनी की समृद्धि करें और विवेकरूप समुद्र की वृद्धि करें॥ ३॥

उस विलसित निर्मल काष्ठा संघ के पट्टरूप उदयाचल पर जिसके उदित होते ही उदार वचनरूप किरणों से दोषरूप रात्रि का अन्धकार नष्ट हो जाता है, और जो विद्वज्जनरूप कमलों को हर्षरूप विकास देता है, इस प्रकार सूर्य की समता को धारण करने वाले श्री मलयकीर्त्ति महाराज जगत् में जयवन्त हैं॥ ४॥

जो काष्ठासंघरूप आकाश में निर्दोष चारित्रके धारक साधुजनों से इस प्रकार शोभा को प्राप्त हो रहे हैं, जैसे कि चमकते हुए तारागणों से चन्द्र शोभित होता है। ऐसे श्रीकमलकीर्त्ति आचार्य अपनी कीर्त्ति और सदाचार से किन सत्-प्रज्ञावाले जनों के नमस्कार के योग्य नहीं हैं॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परे च परमाचारा जिनसंघमुनीश्वराः।
प्रसन्नमेव कुर्वन्तु मयि सर्वेऽपि मानसम् ॥६॥

कायस्थानामस्त्यथो माथुराणां वंशो लब्धामर्त्यसंसत्प्रशंसः।
तत्रायं श्रीखेतलो बन्धुलोकैः खे तारौघैरुत्प्रकाशं शशीव ॥७॥

सुरगिरिरिव (प्रोच्चो) वारिधिर्वा गभीरो
विधुरिव हततापः सूर्यवत्सुप्रतापः।
नरपतिरिव मान्यः कर्णवद्यो वदान्यः
समजनि रतिपालस्तत्सुतः सोऽरिकालः ॥८॥

दुःशासनापापपरो नराग्रणीः सदोद्यतो धर्मसुतोऽर्थसाधने।
ततः सुतोऽभूत्स गदाधरोऽपि यो न भीमतां क्वापि दधौ सुदर्शनः ॥९॥

स तस्मात्सत्पुत्रो जनितजनतासम्पदजनि
क्षितौ ख्यातः श्रीमानमरहरिरित्यस्तकुनयः।
गुणा यस्मिंस्ते श्रीनय-विनय-तेजःप्रभृतयः
समस्ता ये व्यस्ता अपि न सुलभाः क्वापि परतः॥१०॥

महस्मदेशेन महामहीभुजा निजाधिकारिष्वखिलेष्वपीह यः।
सम्मान्य नीतोऽपि सुधीः प्रधानतां न गर्वमप्यल्पमधत्त सत्तमः ॥११॥

परम विशुद्ध आचार वाले अन्य भी जो जिन-संघ के मुनीश्वर हैं वे सभी मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे मानस को विकसित करें ॥ ६ ॥

इस भारतवर्ष में माथुर-गोत्री कायस्थों का जो वंश अमरसिंह की राजसभा में प्रशंसा को प्राप्त है, उसमें बन्धु-लोगोंके साथ श्रीखेतल इस प्रकारसे शोभित होते हैं जैसे कि चन्द्रमा आकाशमें तारागणों के प्रकाश के साथ शोभता है ॥ ७ ॥

उस श्रीखेतलका पुत्र रतिपाल हुआ, जो सुमेरु के सदृश उन्नत है, सागर के समान गम्भीर है, चन्द्र के समान सन्ताप का विनाशक है, सूर्य के समान प्रतापशाली है, नरेन्द्र के समान मान्य है, कर्ण के समान उदार दाता है और शत्रुओं के लिए कालरूप है ॥ ८ ॥

वह नराग्रणी दुःशासन को निष्पाप करने में तत्पर है, धर्मपुत्र होकरके भी अर्थोपार्जन में सदा उद्यत रहता है, जो भीम-सदृश गदा को धारण करने पर भी किसी पर भयंकरताको धारण नहीं करता है ऐसा सुन्दर दर्शनीय गदाधर नामक उस रतिपाल के पुत्र हुआ ॥ ९ ॥

उस गदाधार के श्रीमान् अमरसिंह नाम के सुपुत्र हुए, जिन्होंने अपने जन्म से जनता में सम्पत्ति को बढ़ाया, जिन्होंने खोटी नय-नीति का विनाश किया, और इस कारण भूतल पर प्रख्यात हुए। जिनमें लक्ष्मी, न्याय-नीति, विनय, तेज आदि वे सभी गुण एक साथ विद्यमान हैं, जो कि अन्यत्र कहीं पर भी एक-एक रूप से सुलभ नहीं हैं ॥ १० ॥

महस्म देश के महान् भूपाल के द्वारा अपने समस्त अधिकारी जनों पर सन्मान के साथ प्रधान के पद पर नियुक्त किये जाने पर भी जिस उत्तम बुद्धिमान् ने अल्प भी गर्व नहीं धारण किया। अहमहमिका-पूर्वक (मैं पहिले प्राप्त होऊँ, मैं उससे भी पहिले प्राप्त होऊँ इस प्रकार की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वैरर्हंपूर्विकया गुणैर्वृतं निरीक्ष्य दोषा निखिला यमत्यजन् ।
स्थाने हि तद्भूरिभिराश्रितेऽरिभिः स्थाने वसन्तीह जना न केचन ॥१२॥
श्रुतज्ञतापि विनयेन धीमतां तया नयस्तेन च येन सम्पदा ।
तया च धर्मो गुणवन्नियुक्तया सुखङ्करं तेन ससस्तमीहितम् ॥१३॥
सत्योक्तित्वमजातशत्रुरखिलक्ष्मोद्धारसारं नयन्
रामः काम उदाररूपमखिलं शीलं च गङ्गाङ्गजः ।
कर्णश्चारुवदान्यतां चतुरतां भोजश्च यस्मायिति
स्वं स्वं पूर्वनृपा वितीर्य सुगुणं लोकेऽत्र जग्मुः परम् ॥१४॥
धनं धनार्थिनो यस्मान्मानं मानार्थिनो जनाः ।
प्राप्याऽऽसन् सुखिनः सर्वे तद्द्वयं तद्-द्वयार्थिनः ॥१५॥
निशीनोः कौमुदस्येष्टो नाब्जानामन्यथा रवेः ।
यस्योदयस्तु सर्वेषां सर्वदैवेह वल्लभः ॥१६॥
स्त्री कुलीनाऽकुलीना श्रीः स्थिरा धीः कीर्त्तिरस्थिरा ।
यत्र चित्रं विरोधिन्योऽप्यमूर्तेर्नुः सह स्थितिम् ॥१७॥
तस्यानेकगुणस्य शस्यधिषणामर्त्यसिंहस्य स
ख्यातः सूनुरभूत् प्रतापवसतिः श्रीलक्ष्मणाख्या क्षितौ ।

होड़ से) सभी सद्-गुणों द्वारा जिसे वरण किया हुआ देखकर समस्त दोष मानों जिसे छोड़कर चले गये, सो यह बात योग्य ही है। अपने भारी शत्रुजनों से आश्रित स्थान पर इस संसार में कौन जन निवास करते हैं ? कोई भी नहीं ॥ ११-१२ ॥

विनय से बुद्धिमानों को श्रुतज्ञता प्राप्त होती है, उससे सुनय-मार्ग प्राप्त होता है, उससे सम्पदा प्राप्त होती है, उससे धर्म प्राप्त होता है। धर्मसे गुणवानों में नियुक्ति होती है और उससे सभी सुख-कारक मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥ १३ ॥

जो सत्य वचन बोलने में अजातशत्रु (युधिष्ठिर) है, समस्त भूमि के सारको उद्धार करने में राम है, सुन्दर रूप में कामदेव है, शील-धारण करने में गाङ्गेय है, सुन्दर उदारता में कर्ण है और चातुर्य में भोजराज है। ऐसे उस अमरसिंह को पूर्व-काल के उक्त राजा लोग अपने अपने विशिष्ट गुणों को देकरके ही मानों परलोक को चले गये हैं ॥ १४ ॥

जिस अमरसिंह से सभी धनार्थी पुरुष धन को पाकर, सन्मान के इच्छुक जन सन्मान को पाकर और धन-सन्मान इन दोनों के इच्छुक लोग इन दोनों को ही पाकर सुखी हो गये ॥ १५ ॥

निशानाथ चन्द्र का उदय कुमुदों को इष्ट है, कमलों को नहीं। रवि का उदय कमलों को इष्ट है, कुमुदों को नहीं। किन्तु जिस अमरसिंह का उदय इस लोक में सभी को सदा ही वल्लभ (प्रिय इष्ट) है ॥ १६ ॥

स्त्री कुलीन होती है और लक्ष्मी अकुलीन होती है, बुद्धि स्थिर होती है और कीर्त्ति अस्थिर होती है। फिर भी आश्चर्य है कि परस्पर विरोधिनी भी ये दोनों जिस अमूर्त पुरुष में एक साथ रह रही हैं ॥ १७ ॥

उस अनेक गुणशाली प्रशंसनीय बुद्धिवाले अमरसिंह के पृथ्वीविख्यात प्रतापशाली श्रीलक्ष्मण नाम का पुत्र हुआ। जिसे देखकर सुकविजन ऐसी तर्कणा करते हैं कि मानों मनुष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यं वीक्ष्येति वितर्क्यते सुकविभिर्नीत्वा तनुं मानवीं
धर्मोऽयं नु नयोऽथवाऽथ विनयः प्राप्तः प्रजापुण्यतः ॥१८॥

यशो यैर्लक्ष्मणस्यैणलक्ष्मणाऽत्रोपमीयते ।
शङ्के न तत्र तैः साक्षाच्चिल्लक्षैर्लक्ष्म लक्षितम् ॥१९॥

श्रीमान् सुमित्रोन्नतिहेतुजन्मा सल्लक्षणः सन्नपि लक्ष्मणाख्यः ।
रामातिरक्तो न कदाचनाऽऽसीदधाच्च यो रावणसोदरत्वम् ॥२०॥

स नय-विनयोपेतैर्वाक्यैर्मुहुः कविमानसं सुकृत-सुकृतापेक्षो दक्षो विधाय समुद्यतम् ।
श्रवणयुगलस्याऽऽत्मीयस्यावतंसकृते कृतीऽस्तु विशदमिदं शास्त्राम्भोजं सुबुद्धिरकारयत् ॥२१॥

अथाऽस्त्यग्रोतकानां सा पृथ्वी पृथ्वीव सन्ततिः ।
सच्छायाः सफला यस्यां जायन्ते नर-भूरुहाः ॥२२॥

गोत्रं गार्ग्यमलञ्चकार य इह श्रीचन्द्रमाश्चन्द्रमो
बिम्बास्यस्तनयोऽस्य धीर इति तत्पुत्रश्च हींगाभिधः ।
देहे लब्धनिजोद्भवेन सुधियः पद्मश्रियस्तत्स्त्रियो
नव्यं काव्यमिदं व्यधायि कविताऽर्हत्पादपद्मालिना ॥२३॥

(पदादिवर्णसंज्ञेन गोविन्देनेति)

का शरीर धारण करके क्या यह प्रजा के पुण्य से धर्म प्राप्त हुआ है, अथवा नय-मार्ग ही आया है, या विनय ही आया है ॥ १८ ॥

जिन कवियों के द्वारा लक्ष्मण के यश की मृगलाञ्छन चन्द्रमा की उपमा दी जाती है, उन्होंने साक्षात् चैतन्यरूप लाखों लक्षणों से युक्त इसे नहीं जाना है, ऐसी मैं शंका करता हूँ। अर्थात् यह लक्ष्मण चन्द्रमा से भी अधिक शुभ लक्ष्म (चिह्न) वाला है ॥ १९ ॥

यह श्रीमान् लक्ष्मण सुमित्रा से जन्म लेने वाला हो करके भी लक्ष्मण नाम से प्रसिद्ध है, और राम में अति अनुरक्त होकरके भी जिसने रावण के सहोदर विभीषण की विभीषणता को कभी नहीं धारण किया है ॥ २० ॥

अनुनय-विनय से युक्त वचनों के द्वारा उस सुकृती और सुकृत (पुण्य) की अपेक्षा रखने वाले सुचतुर सुबुद्धि, कृती लक्ष्मण ने कवि के हृदय को प्रोत्साहित करके अपने कर्ण-युगल के आभूषणार्थ इस विशद शास्त्ररूप कमल का निर्माण कराया ॥ २१ ॥

अग्रोतक (अग्रवाल) लोगों की सन्तति स्वरूपा पृथ्वी के समान यह पृथिवी है, जिसमें उत्तम छाया वाले और फलशाली मनुष्यरूप वृक्ष उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥

उस अग्रोतक जाति में इस भूतल पर जिसने गर्ग गोत्र को अलंकृत किया, ऐसा चन्द्र के समान मुखवाला श्रीचन्द्र पैदा हुआ। इसके धीर वीर हींगा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उस सुबुद्धि की पद्मश्री नाम की स्त्री के देह में जिसने जन्म प्राप्त किया है, ऐसे अरहन्तदेव के पाद-पद्मों के भ्रमररूप इस गोविन्द कवि ने यह पुरुषार्थानुशासनरूप नवीन काव्य रचा है ॥ २३ ॥

इस २३ वें पद्य के प्रथम पाद के 'गो', दूसरे पाद के 'वि' तीसरे पाद के 'दे' और चौथे पाद के 'न' इन आद्य अक्षरों के द्वारा अपना 'गोविन्द' यह नाम प्रकट किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थोभयदुष्टं यद् व्यधाय्यत्र मया पदम् ।
सद्भिस्ततस्तदुत्सार्य निधेयं तत्र सुन्दरम् ॥२४॥
जीयाच्छ्रीजिनशासनं सुमतयः स्युः क्ष्माभुजोऽर्हन्नताः
सर्वोऽप्यस्तु निरामयः सुखमयो लोकः सुभिक्ष्यादिभिः ।
सन्तः सन्तु चिरायुषोऽमलधियो विज्ञातकाव्यश्रमाः
शास्त्रं चेदममी पठन्तु सततं यावत्त्रिलोकीस्थितिः ॥२५॥
यदेतच्छास्त्रनिर्माणे मयाऽज्ञोऽल्पधिया कृतम् ।
क्षन्तव्यमपरागैर्मे तदागः सर्वसाधुभिः ॥२६॥
(इति ग्रन्थकार-प्रशस्तिः)

इस काव्य में मेरे द्वारा जो कोई शब्द-दोष, अर्थ-दोष या शब्द-अर्थ इन दोनों में ही कोई दोष युक्त पद रचा गया हो तो सज्जन पुरुष उसे दूर करके वहाँ पर निर्दोष सुन्दर पद स्थापित करें, (ऐसी मेरी प्रार्थना है) ॥ २४ ॥

इस संसार में जब तक तीनों लोक अवस्थित हैं, तब तक श्री जिन शासन सदा जीवित एवं जयवन्त रहे, राजा लोग सुमतिशाली और अर्हद्-भक्त होवें, सभी लोग नीरोग रहें, सारा संसार सुभिक्ष आदि से सुखी रहे, सज्जन पुरुष चिरायुष्क होवें, तथा काव्य-रचना के श्रम को जानने वाले निर्मल बुद्धि के धारक विद्वज्जन इस शास्त्र को निरन्तर पढ़ें ॥ २५ ॥

इस शास्त्र के निर्माण करने में मुझ अल्पबुद्धि ने जो शब्द या अर्थ को अन्यथा लिखनेरूप अपराध किया हो, वह मेरा अपराध वीतरागी सर्व साधुजन क्षमा करें, यह मेरी प्रार्थना है ॥ २६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. श्रावकाचारसारोद्धार–प्रशस्ति

यस्य तीर्थंकरस्येव महिमा भुवनातिगः । रत्नकीर्तिर्यतिः स्तुत्यः स न केषामशेषवित् ॥१॥
अहंकारस्फारी भवदमितवेदान्तविबुधोल्लसद्-ध्वान्तश्रेणीक्षपणनिपुणोक्तिद्युतिभरः ।
अधीती जैनेन्द्रेऽजनि रजनिनाथप्रतिनिधिः प्रभाचन्द्रः सान्द्रोदयशमिततापव्यतिकरः ॥२॥
श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभुपादसेवाहेवाकिचेताः प्रसरत्प्रभावः ।
सच्छ्रावकाचारमुदारमेनं श्रीपद्मनन्दी रचयाञ्चकार ॥३॥
श्रीलम्बकञ्चुककुले विततान्तरिक्षे कुर्वन् स्वबान्धवसरोजविकासलक्ष्मीम् ।
लुम्पन् विपक्षकुमुदव्रजभूरिकान्ति गोकर्णहेलिरुदियाय लसत्प्रतापः ॥४॥
भुवि सूपकारसारं पुण्यवता येन निर्ममे कर्म । भूम इव सोमदेवो गोकर्णात्सोऽभवत्पुत्रः ॥५॥
सती-मतल्लिका तस्य यशःकुसुमवल्लिका । पत्नी श्रीसोमदेवस्य प्रेमा प्रेमपरायणा ॥६॥
विशुद्धयोः स्वभावेन ज्ञानलक्ष्मीजिनेन्द्रयोः । नया इवाभवन् सप्त गम्भीरास्तनयास्तयोः ॥७॥
वासाधर-हरिराजौ प्रह्लादः शुद्धधीश्च महराजः ।
भावराजोऽपि रत्नाख्यः सतनाख्यश्चेत्यमी सप्त ॥८॥
वासाधरस्याद्भुतभाग्यराशेर्मिषात्तयोर्वेश्मनि कल्पवृक्षः ।
अगण्यपुण्योदयतोऽवतीर्णो वितीर्णचेतोऽतिवितार्थसार्थः ॥९॥

प्रशस्तिका अनुवाद

तीर्थंकरके समान जिसकी महिमा लोकातिशायी है, वह समस्त शास्त्रोंका वेत्ता रत्नकीर्ति यति किनके द्वारा स्तुति करनेके योग्य नहीं है ॥ १ ॥ उनके पट्ट पर प्रभाचन्द्रका उदय हुआ, जो कि सूर्यके सन्तापका शमन करने वाला है, जो बड़े-बड़े वेदान्ती विद्वानोंके अहंकारका तिरस्कार करनेवाला है, जैनेन्द्र शासन या जैनेन्द्र व्याकरणका अध्येता है और जो निशानाथ चन्द्रका प्रतिनिधि है। उन श्रीमान् प्रभाचन्द्र प्रभुके चरण-सेवामें निरत चित्त एवं प्रसरत्-प्रभावी श्रीपद्मनन्दीने इस उत्तम उदार श्रावकाचार को रचा ॥२-३॥

श्रीलम्बकञ्चुक (लमेचू) कुलमें श्रीगोकर्ण रूप सूर्यका उदय हुआ, जोकि इस विस्तृत गगनमें अपने बान्धवरूप सरोजोंको विकसित करनेवाला और विपक्षी कुमुद-समूहकी भारी कान्तिको विलुप्त करनेवाला एवं प्रतापशाली था ॥ ४ ॥ उस गोकर्णसे सोमदेव नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने कि इस भूतलपर सूपकार (विविध व्यंजनों) के सारभूत कार्यका निर्माण किया ॥ ५ ॥ उस श्री सोमदेवकी पति-प्रेम-परायणा प्रेमा नामकी पत्नी थी, जो कि सतियोंमें शिरोमणि और यशरूप पुष्पोंकी वेलि थी ॥ ६ ॥ विशुद्धाचरणवाले इन दोनोंके सात पुत्र उत्पन्न हुए, जोकि जिनेन्द्रदेव और उनकी ज्ञानलक्ष्मीसे उत्पन्न हुए सात नयोंके समान गम्भीर स्वभाववाले हैं ॥ ७ ॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—१. वासाधर, २. हरिराज, ३. प्रह्लाद, ४. महाराज, ५. अम्बराज, ६. रतन, और ७. सतना। ये सभी सातों ही पुत्र शुद्ध बुद्धि हैं ॥ ८ ॥

उन सोमदेव और प्रेमादेवीके धरमें वासाधरके अद्भुत भाग्यराशिके मिषसे मानों अगणित पुण्योदयसे याचकोंको भर-पूर अर्थ वितरण करनेवाला कल्पवृक्ष ही अवतरित हुआ ॥ ९ ॥ उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वासाधरेण सुधिया गाम्भीर्याद्यदि तृणीकृतो नाब्धिः ।
कथमन्यथा स बडवाज्वलनस्तत्र स्थितिं ज्वलति ॥१०॥
सान्द्रानन्दस्वरूपाद्भुतमहिमपरब्रह्मविद्याविनोदात्
स्वान्तं जैनेन्द्रपादार्चनविमलविधौ पात्रदानाच्च पाणिः ।
वाणी सन्मन्त्रजापात् प्रवचनरचनाकर्णनात्कर्णयुग्मं
लोकालोकावलोकान्न विरमति यशः साधुवासाधरस्य ॥११॥
शीतांशू राजहंसत्यमितकुवलयत्युल्लसत्तारकालि-
स्तिग्मांशुः स्मेररक्तोत्पलति जगदिदं चान्तरीयत्यशेषम् ।
जम्बालत्यन्तरिक्षं कनकगिरिरयं चक्रवाकत्युदग्रः
साधोर्वासाधरोद्यद्-गुणनिलययशोवारिपूरे त्वदीये ॥१२॥
द्वितीयोऽप्यद्वितीयोऽभुद् वीर्यौदार्यादिभिर्गुणैः ।
पुत्रः श्रीसोमदेवस्य हरिराजाभिधः सुधीः ॥१३॥
गुणैः सदास्मत्प्रतिपक्षभूतैः सङ्गं करोत्येष विवेकचक्षुः ।
इतीव सेर्ष्यैर्हरिराजसाधुर्दोषैरनालोकितशीलसिन्धुः ॥१४॥
सम्प्राप्य रत्नत्रितयैकपात्रं रत्नं सुतं मण्डनमुर्वराधाः ।
श्रीसोमदेवः स्वकुटुम्बभारनिर्वाहचिन्तारहितो बभूव ॥१५॥

सुबुद्धि वासाधरने यदि अपनी गम्भीरतासे समुद्रको भी तृणके समान तुच्छ न किया होता, तो वह अपने भीतर जलते हुए वडवानलकी स्थितिको कैसे और क्यों धारण करता ॥ १० ॥

आनन्द घन स्वरूप अद्भुत महिमावाले परमब्रह्मके विद्या-विनोदसे जिसने अपने चित्तको पवित्र किया, श्री जिनेन्द्रदेवके चरण-अर्चनकी निर्मल विधि-विधानसे और पात्रोंको दान देनेसे जिसने अपने हाथ पवित्र किये, उत्तम मंत्रोंके जाप करनेसे जिसकी वाणी पवित्र हुई, प्रवचनकी रचनाओंके सुननेसे जिसके दोनों कान पवित्र हुए, उस वासाधरका यश लोक और अलोकके अवलोकनसे भी विश्राम को प्राप्त नहीं हो रहा है। भावार्थ—यदि लोक और अलोकसे भी परे कहीं और भी आकाश होता, तो यह वहां भी फैलता हुआ चला जाता ॥ ११ ॥

हे साधु वासाधर, तेरे उदयको प्राप्त होते हुए गुणोंके आस्पदभूत यश रूपी जलके पूरमें अपरिमित कुमुदोंको विकसित करनेवाली तारकावली वाला शीत-किरणचन्द्र राजहंसके समान आचरण करता है, यह तीक्ष्ण किरणवाला सूर्य मन्दहास्य युक्त लाल कमलके समान मालूम पड़ता है, यह समस्त जगत् अन्तर्गत-सा, ज्ञात होता है, यह आकाश जम्बाल (काई) सा प्रतीत होता है, और यह उन्नत सुवर्णगिरि सुमेरु चक्रवाक सा भासित होता है ॥ १२ ॥

श्री सोमदेवका हरिराज नामक द्वितीय भी बुद्धिमान् पुत्र वीर्य, औदार्य आदि गुणोंके द्वारा अद्वितीय हुआ ॥ १३ ॥ यह विवेकरूप नेत्रवाला हरिराज सदा ही हमारे प्रतिपक्षीरूप गुणोंके द्वारा संगमको प्राप्त हो रहा है, इसी कारण ईर्ष्यासे मानों यह शील-सागर हरिराज दोषोंसे अनालोकित ही है। अर्थात् उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हरिराजको देखकर दोष इसे देखने तकका भी साहस नहीं कर सके ॥ १४ ॥

पृथिवीके आभूषणरूप एवं सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप रत्नत्रयके एक मात्र पात्र रतन नामक पुत्रको प्राप्त करके श्रीसोमदेव अपने कुटुम्बभारके भरण-पोषणकी चिन्तासे रहित हो गये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृष्टं शिष्टजनैः सपत्नकमलैः कुत्रापि लीनं जवा-
दर्थिप्रोद्धतनीलकण्ठनिवहैर्नृत्तं प्रमोदोद्गमात् ।
तृष्णाधूलिकणोत्करैर्विगलितस्थानैर्मुनीन्द्रैः स्थितं
वृष्टिं दानमयीं वितन्वति परां रत्नाकराम्भोधरे ॥१६॥
सान्त्यतीनाम्न्यां पत्न्यां जिनराजध्यानकृत्स हरिराजः ।
पुत्रं मनःसुखाख्यं धर्मादुत्पादयामास ॥१७॥
सति प्रभुत्वेऽपि मदो न यस्य रतिः परस्त्रीषु न यौवनेऽपि ।
परोपकारैकनिधिः स साधुर्मनःसुखः कस्य न माननीयः ॥१८॥
जैनेन्द्राङ्घ्रिसरोजभक्तिरचला बुद्धिर्विवेकाञ्चिता
लक्ष्मीर्दानसमन्विता सकरुणं चेतः सुधामुग्वचः ।
रूपं शीलयुतं परोपकरणव्यापारनिष्ठं वपुः
शास्त्रं चापि मनःसुखे गतमदं काले कलौ दृश्यते ॥१९॥
सङ्घभारधरो धीरः साधुर्वासाधरः सुधीः ।
सिद्धये श्रावकाचारमचीकरममुं मुदः ॥२०॥
यावत्सागरमेखला वसुमती यावत्सुवर्णाचलः
स्वर्नारीकुलसङ्कुलः खममितं यावच्च तत्त्वान्वितम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ च यावदभितो लोकप्रकाशोद्यतौ
तावन्नन्दतु पुत्र-पौत्रसहितो वासाधरः शुद्धधीः ॥२१॥

थे ॥ १५ ॥ इस रतन नामक रत्नाकररूप जलधर (मेघ) के दानमयी परम वर्षा करनेपर शिष्ट जन हर्षित हुए, प्रतिपक्षी कमलोंके साथ कुमुद कहींपर शीघ्र विलीन हो गये, अर्थी जनरूप नील-कण्ठवाले मयूरोंके समूहोंने प्रमोदके उदयसे हर्षित होकर नृत्य किया और तृष्णारूपी धूलिके कण-पुंजोंसे रहित वीतरागी मुनीश्वरोंने निराकुल होकर निवास किया ॥ १६ ॥

जिनराजका निरन्तर ध्यान करनेवाले हरिराजने सान्त्यती नामवाली अपनी पत्नीमें धर्मके प्रसादसे मनसुख नामका पुत्र उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ जिसके प्रभुता होनेपर भी मद नहीं है, यौवनावस्थामें भी पर-स्त्रियोंमें रति नहीं है, और जो पराया उपकार करनेका निधि या निधान है, ऐसा साधु मनसुख किसका माननीय नहीं है ? अर्थात् सभी जनोंका मान्य है ॥ १८ ॥ इस कलिकालमें भी जिस मनसुखके भीतर जिनेन्द्रदेवके चरण-कमलोंमें अविचल भक्ति, विवेक-युक्त बुद्धि, दान-समन्वित लक्ष्मी, करुणायुक्त चित्त, अमृतवर्षी वचन, शीलयुक्त रूप, परोपकार करनेमें तत्पर शरीर और मद-रहित शास्त्र ज्ञान दिखायी देता है ॥ १९ ॥

जैन संघके भारको धारण करनेवाले धीर, बुद्धिमान् साहू वासाधरने आत्म-सिद्धिके लिए हर्षसे इस श्रावकाचारकी रचना करायी ॥ २० ॥

जब तक समुद्ररूप मेखला वाली यह पृथिवी रहे, जब तक यह सुमेरु गिरि देवाङ्गनाओंके समूहसे व्याप्त रहे, जब तक जीवादि तत्त्वोंसे व्याप्त यह अपरिमित आकाश रहे और जब तक लोकमें प्रकाश करनेके लिए उद्यत सूर्य और चन्द्र रहें, तब तक पुत्र-पौत्र-सहित यह शुद्ध बुद्धि वासाधर आनन्दको प्राप्त करता रहे ॥ २१ ॥

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७. रत्नकरण्डकमें उल्लिखित प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम

१. सम्यक्त्वके अंग — प्रसिद्ध पुरुष

१. निःशंकित अंग—अंजनचोर, विभीषण, वसुदेव (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार)
२. निःकांक्षित अंग—अनन्तमती, सीता (,,)
३. निर्विचिकित्सा अंग—उद्दायन राजा
४. अमूढदृष्टि ,, —रेवती रानी
५. उपगूहन ,, —जिनेन्द्रभक्त सेठ
६. स्थितिकरण ,, —वारिषेण
७. वात्सल्य ,, —विष्णुकुमार मुनि
८. प्रभावना ,, —वज्रकुमार मुनि

२. पाँच अणुव्रतोंमें — प्रसिद्ध पुरुष

१. अहिंसाणुव्रत—मातंग चाण्डाल
२. सत्याणुव्रत—धनदेव
३. अचौर्याणुव्रत—वारिषेण
४. ब्रह्मचर्याणुव्रत—नीली बाई
५. परिग्रहपरिमाणाणुव्रत—जयकुमार

३. पांच पापोंमे — प्रसिद्ध

१. हिंसा—धनश्री
२. असत्य—सत्यघोष, वसुराजा (सागारध०)
३. चोरी—तापस
४. कुशील—यम कोटपाल
५. परिग्रह—श्मश्रुनवनीत

४. चार दानोंमें — प्रसिद्ध

१. आहारदान—श्रीषेण राजा
२. औषधिदान—वृषभसेना
३. उपकरणदान (ज्ञानदान)—कौण्डेश
४. आवास (अभय) दान—सूकर

५. पूजनके फलमें—मेंढक

उपर्युक्त नामोंमें सम्यक्त्वके आठों अंगोंमें प्रसिद्ध पुरुषोंके नामोंका उल्लेख सोमदेव,

८. सप्त व्यसनोंमें प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम

१. द्यूत व्यसन—युधिष्ठिर
२. मांस ,, —बकराजा
३. मद्य ,, —यादव-पुत्र
४. वेश्या ,, —चारुदत्त सेठ
५. शिकार व्यसन—ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती
६. चोरी ,, —श्रीभूति
७. परस्त्री ,, —रावण
८. काक-मांस त्यागमें—खदिरसार

९. उग्र परीषह सहन कर समाधिमरण करने वालोंका उल्लेख
(जिनका उल्लेख पं० आशाधर आदिने किया है)

१. शिवभूति मुनि
२. पाँचों पाण्डव मुनि
३. सुकुमाल मुनि
४. विद्युच्चर मुनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०. रोहिणी आदि व्रतोंका उल्लेख

आ० वसुनन्दि आदिने श्रावकके अन्य कर्त्तव्योंके साथ जिन व्रत-उपवासादि करनेका विधान किया है, उनकी सूची—

१. पंचमी व्रत
२. रोहिणी व्रत
३. अश्विनी ,,
४. सौख्यसम्पत्ति व्रत
५. नन्दीश्वरपंक्ति ,,
६. विमानपंक्ति ,,

११. पद्म कवि कृत श्रावकाचार तथा क्रियाकोष-गत व्रत विधान सूची

१. आष्टाह्निकव्रत
२. पंचमीव्रत
३. रोहिणीव्रत
४. रविव्रत
५. श्रावणसप्तमीव्रत
६. सुगंधदशमीव्रत
७. सोलहकारणव्रत
८. मेघमालाव्रत
९. श्रुतस्कन्धव्रत
१०. चन्दनषष्ठीव्रत
११. लब्धिविधानव्रत
१२. आकाशपंचमीव्रत
१३. सरस्वतीव्रत
१४. दशलक्षणव्रत
१५. श्रवणद्वादशीव्रत
१६. अनन्तचतुर्दशीव्रत
१७. रत्नत्रयव्रत
१८. मुक्तावलीव्रत
१९. कनकावलीव्रत
२०. रत्नावलीव्रत
२१. एकावलीव्रत
२२. द्विकावलीव्रत
२३. पल्यविधानव्रत
२४. त्रेपनक्रियाव्रत
२५. जिनगुणसम्पत्तिव्रत
२६. पंचमकल्याणव्रत
२७. त्रैलोक्यतिलकव्रत
२८. लब्धिविधानव्रत
२९. अक्षयनिधिव्रत
३०. ज्येष्ठजिनवरव्रत
३१. षट्‌रसीव्रत
३२. पाख्याव्रत
३३. ज्ञानपचीसीव्रत
३४. सुखकरणव्रत
३५. समवशरणव्रत
३६. अक्षयदशमीव्रत
३७. निर्दोषसप्तमीव्रत
३८. नवकारपैंतीसीव्रत
३९. शीलकल्याणव्रत
४०. शीलव्रत
४१. नक्षत्रमालाव्रत
४२. सर्वार्थसिद्धिव्रत
४३. तीनचौबीसीव्रत
४४. जिनमुखावलोकनव्रत
४५. लघुसुखसम्पत्तिव्रत
४६. बाराव्रत
४७. मुकुटसप्तमीव्रत
४८ नन्दीश्वरपंक्तिव्रत
४९. लघुमृदंगव्रत
५०. बृहद्मृदंगव्रत
५१. धर्मचक्रव्रत
५२. बड़ामुक्तावलीव्रत
५३. भावना पच्चीसीव्रत
५४. नवनिधिव्रत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५५. श्रुतज्ञानव्रत
५६. सिंहनिःक्रीडितव्रत
५७. लघु चौंतीसीव्रत
५८. बारासौ चौंतीसीव्रत
५९. पंचपरमेष्ठीगुणव्रत
६०. पुष्पांजलिव्रत
६१. शिवकुमारवेलाव्रत
६२. तीर्थंकरवेलाव्रत
६३. जिनपूजा पुरन्दरव्रत
६४. कोकिलापंचमीव्रत
६५. द्रुतविलम्बितव्रत
६६. कवलचन्द्रायणव्रत
६७. मेरुपंक्तिव्रत
६८. पल्यविधानव्रत
६९. रुक्मिणीव्रत
७०. विमानपंक्तिव्रत
७१. निर्जरपंचमीव्रत
७२. कर्मनिर्जरणीव्रत
७३. कर्मचूरव्रत
७४. अनस्तमितव्रत
७५. निर्वाणकल्याणकवेलाव्रत
७६. लघुकल्याणकव्रत

१२. कुन्दकुन्द-श्रावकाचार के* संशोधित पाठ

पृष्ठ	आदर्श प्रति–पाठ	संशोधित पाठ	उल्लास	श्लोक
१.	कलास्वते	कलावते	१	१
,,	सोद्यं	सोऽहं	,,	२
,,	जीवन्	जीवन्ती	,,	३
,,	अहं	अर्हं	,,	४
,,	यच्छन्ति	इच्छन्ति	,,	६
,,	–मास्यैतां	–माश्वैतां	,,	७
,,	कुर्वीय	कुर्वीयं	,,	८
२.	स्वजनस्य	सुजनस्य	,,	१२
,,	भोगे	भागे	,,	१३
,,	अनुभूतश्रुतौ	अनुभूतः श्रुतः	,,	१६
,,	दृष्टो	दृष्टः	,,	,,
,,	समुद्भूतं	समुद्भूतः	,,	,,
,,	पाढं	पादं	,,	२३
३.	षट्करै	षडेककर	,,	२७
४.	–वित्यपि	–दित्यपि	,,	३४
,,	रसस्वरूपश्च	रसश्च रूपश्च	,,	३५
,,	मरुद्भ्यो ये	मरुद्-व्योम	,,	३७
,,	श्रृक्वम्योः	सृक्विण्योः	,,	३९
५.	नौ	नो	,,	४३
,,	पथः	पाथः	,,	४५

* जिन पाठों का प्रयत्न करने पर भी संशोधन नहीं किया जा सका, अथवा भाव समझ में नहीं आया, वहाँ पर (?) यह प्रश्न-वाचक चिह्न लगा दिया गया है। —सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	आदर्श प्रति-पाठ	संशोधित पाठ	उल्लास	श्लोक
५.	आसीनोपदि	आसीनः सपदि	१	४६
६.	गात्रंस्तदाधिकार्यस्तु	गात्रस्य वृद्धिकार्यार्थं	,,	५८
,,	मोचितः	स्वोचितः	,,	,,
७.	विञ्चिञ्चि	चिञ्चायां	,,	६४
,,	कटकस्तथा	कण्टकैस्तथा	,,	६५
,,	सुखिरं	सुषिरं	,,	७२½
८.	रविर्वारि	रवेर्वारि	,,	७३
,,	वक्रभां	विदिशां	,,	७६
,,	नश्यों	नस्यो	,,	७९
,,	गर्जंति	गर्जन्ति	,,	,,
,,	–मांगेन	–माङ्गे च	,,	८२
,,	वीक्षिते	वीक्ष्यते	,,	८३
,,	वृद्धानां	वृद्धेभ्यो	,,	८४
९.	मुनि–	मनु–	,,	८६
,,	पुष्प–	पुण्य	,,	८९
,,	मौननात्	मौनिना	,,	९२
१०.	वृष्टयै	वृष्टौ	,,	९४
,,	वामावस्थितः	वामे व्यवस्थितः	,,	९७
,,	सत्यजयं	ह्यजयं	,,	,,
,,	योद्धानां	योद्धॄणां	,,	१०२
११.	आपत्यापादने	अपत्योत्पादने	,,	१०७
,,	अधर्माणाचिरौराद्य–	अधमर्णाचिरारात्य	,,	१०९
,,	शून्यागेऽप्यस्य	शून्यागस्यपि	,,	,,
,,	कार्या	कार्यो	,,	११०
,,	निमित्ताद्विषां	निमित्तद्विषां	,,	११३
,,	–वैद्यद्विषा–	–वेदद्विषा–	,,	,,
,,	नातिद्विषा–	–नीतिद्विषा–	,,	,,
१२.	नाग्रोत्तारि	–नासोत्तारि	,,	१२४
१३.	केशान्तवलयश्चान्त	केशान्ताञ्चलान्ताच्च	,,	१२६
,,	–ननिकंवाया	नान्यचर्चायाः	,,	१२८
,,	चैत्याश्च	चैत्यैका–	,,	१३०
,,	जिनाब्भयः	जिनाब्धयः	,,	१३१
१४.	–दत्ति	–भित्ति	,,	१३८
१५.	उत्तमायुःकृते	उत्तमायकृते	,,	१४५
,,	तद्‌दशांशेने	स्वदशांशेन	,,	१४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	आदर्श प्रति-पाठ	संशोधित पाठ	उल्लास श्लोक
१६.	भूरि दिग्मूढा	भूरदिग्मूढा	„ १५३
„	भ्रूशल्य–	भूशल्य	„ १५४
१७.	प्राच्यान्तर–	प्राच्यां नर–	„ १५६
„	वृत्तये	–मृत्यवे	„ „
„	करिशल्यं	खरशल्यं	„ १५७
„	नरीगारा	नराणां वा	„ १६१
१८	मा प्रेतदाह्यदः	मात्रादधस्तदा	१ १६४
„	पातनभोगयोः	पातः स्वधोगतः	„ १६६
„	गदनिदुं	निगदः	„ १७०
१९	प्रकाशः	प्रकाश्यः	„ १७२
„	वृराम	व्योम	„ १७८
२०	चित्रैश्चामण्डलै-	चित्रैश्च मण्डलै-	„ १७९
„	स्वलुका	वालुका	„ „
„	-च्छेद्यादतः फलम्	-च्छेदश्च तत्फलम्	„ १८०
„	दत्सादयः	दत्यादरात्	„ १८३
२१	पुरो मता	परो मतः	„ १८८
„	नरने	तरणे	„ १८९

द्वितीय उल्लास

२२	वर्वेनस्तु	पर्वे न च	२ ४
२३	सौम्याज्य	सौम्येज्य	„ १६
„	विद्याते	विद्योते	„ १९
„	कल्पयैवेकशः	कल्पयेदेकशः	„ २०
२४	वासिसि	वाससि	„ २६
„	अक्षाक्षन्	आकाङ्क्षेन्	„ २८
„	कुटितं	त्रुटितं	„ ३१
„	मानुषो	मानुषे	„ ३२
२५	वालूक	वोलूक	„ ३४
„	गृहमल्पीयः	ग्राह्यमल्पीयः	„ ४०
२६	लक्ष्मीकर्षण	पृथ्वीकर्षण	„ ४७
„	वायुकालं	वायकालं	„ ४८
„	सापांगानंतदन्नतः	स्वोपार्ज्यस्तदनन्तरम्	„ ५०
२७	स्यादत्स्तस्करं	स्यात्तस्करादधृतम्	„ ६४
३०	सा विधानेन	सावधानेन	„ ९७
„	नत्प्रभुं	तत्प्रभुम्	„ ९९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	आदर्श प्रति-पाठ	संशोधित पाठ	उल्लास	श्लोक
३१	कृत्ये	कृत्यै	,,	१०७
३२	द्यौ	द्वौ	,,	११४
,,	वस्तुममलं	वस्त्रममलं	,,	११५
,,	कुर्वन् सन्तः	कुर्वन्तः सन्तः	,,	११६

तृतीय उल्लास

३४.	दत्तैः	दलैः	३	१८
,,	आप्सुदीर्णे जलानां	जलपानं पिपासायां	,,	२२
३५.	वासविष्टित-	वासोवेष्टित	,,	३२
३६.	जने श्रति	जनैः स्वकैः	,,	३८
,,	किमन्यक्षश्च	किमन्यैश्च	,,	४०
३८.	विष्कुम्भं	विष्कम्भं	,,	६३
४०.	कृप्ला	कृष्णा	,,	७४

चतुर्थ उल्लास

४२.	विवृर्धास्त-	बिम्बार्धास्त-	४	५

पंचम उल्लास

४३.	वायुक्तटाद्य-	वायूत्कटाद्य	५	३
४४.	पृच्छं	पृष्ठं	,,	१३
,,	वचापि	त्वचापि	,,	१४
,,	दभं	स्कन्धं	,,	१६
,,	गते	देहे	,,	१८
,,	मानुसत्तमः	मानुषोत्तमः	,,	१९
४६.	वीनः	पीनः	,,	३७
,,	पुण	फण	,,	,,
,,	-श्लेष्टत्वं	-श्चेटित्वं	,,	४१
४७.	वायुदाना-	च यद्यूना	,,	४४
,,	भव्य-	द्रव्य-	,,	५०
४८.	नृसभि-	श्चाभि-	,,	५८
,,	षस्तुटिः	सूचिका	,,	६०
४९.	भूमितर्जयी	भूमिपतिर्जयी	,,	७०
५०.	यतित्र-	यतित्व-	,,	८२
५३.	धारा	धरा	,,	१२०
५४.	रमेत्यकः	रमेत कः	,,	१३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	आदर्श प्रति-पाठ	संशोधित पाठ	उल्लास	श्लोक
५६.	मिश्रंभोक्ति	विश्रम्भोक्ति	,,	१५४
५८.	–घटनं	–गमनं	,,	१७२
६१.	वरलं	तरलं	,,	२०४
६३.	ऋक्ष्मस्थान–	ऋक्षस्थान–	,,	२२१
,,	कुंभो	शुभो	,,	२२२
६३	तनुविष्टो	तनुपुष्टो	५	२२९
६५	धातुस्वाम्यं	धातुसाम्यं	,,	२४३
,,	संवदाः	सुसंवदाः	,,	२४६

अष्टम उल्लास

पृष्ठ	आदर्श प्रति-पाठ	संशोधित पाठ	उल्लास	श्लोक
७०	शिवकाकाटिका	शिवा-काकादिका	८	८
,,	स्वयमर्जयेत्	पराजये	,,	९
७२	कौपामाल्य	कोषामात्य	,,	२१
७३	मंडलज्ञें	मण्डलेऽज्ञे	,,	३४
,,	अग्निः	आग्नेये	,,	३५
,,	वाराष्वर्का	वारेष्वर्का	,,	३८
७४	सोमेऽर्के	समशेषे	,,	४७
७६	भवेदायुः	भवेदायः	,,	६३
७७	आयान्पुनतरो	आयान्न्यूनतरो	,,	७३
,,	विपक्षे मा	विपद्-क्षेमा	,,	७६
,,	प्रत्यरा	प्रत्यरि	,,	,,
७९	माग्नेयां	माग्नेयायां	,,	८२
,,	समायाया	समाऽऽयाय	,,	८५
,,	त्रिकोणके गजक्षयः	त्रिकोणकेऽङ्गजक्षयः	,,	८६
८०	नरपट्ट	कूपतरु	,,	९१
८१	च अस्य	च नास्य	,,	९४
,,	यमनिका	यवनिका	,,	९५
,,	वादिनः	वाजिनः	,,	९८
,,	यथासिनाम्	यथासनम्	,,	९९
,,	प्रकृतां त्यजेत्	प्रकृतां सङ्गतिं त्यजेत्	,,	१०१
८२	भामेंप्रक्ष	वामे प्लक्ष	,,	१०६
८४	अन्तरा	आन्तराः	,,	१२७
,,	तर्के वित्कत्व	तर्को विज्ञत्व	,,	१३०
८५	परत्राकरः	परस्त्राणकरः	,,	१४५
८६	चाच	चाप	,,	१५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	आदर्श प्रति-पाठ	संशोधित पाठ	उल्लास	श्लोक
,,	शोफवा सूक्ष्मो	शोफवत्सूक्ष्मः	,,	१५६
८७	इधु	इषु	,,	१५८
८८	नासिकाम्	नासिका	,,	१६७
,,	गदकारिणा	गदहारिणा	,,	,,
८८	मस्तके गुदे	मस्तके (नाभिके) गुदे	८	१७३
,,	च स्तनद्वये	च (योनौ च) स्तनद्वये	,,	,,
८९	स्पन्द दर्शनके	स्पन्दोऽदर्शनं दर्शनके	,,	१७८
,,	वर्णमृष्ठतः	वर्णास्पष्टता	,,	१७९
९०	वैश्यः स्वस्तिक-	वैश्यः स च स्वस्तिक-	,,	१९६
९१	भौमे त्तराफा	भौमे यमश्च	,,	२०६
,,	चतुर्तुराधायां	चतुर्थ्यनुराधायां	,,	,,
,,	शुमशत्रुरात्रके	शुभं शत्री तु रात्रके	,,	२१०
९२	कालोत्यर्धे	कालोऽत्याद्ये	,,	२२१
,,	नेतापरान्तकः	नेता परोऽन्तकः	,,	२२२
९३	मात्राष्टे तेतोलिके	मातृ-दंष्ट्रे ततोऽलिके	,,	२२४
,,	साश्रुस्थानाद्	सीधुस्थानाद्	,,	२३३
९८	यथीता	यथैते	,,	२५१
१०५	कन्यापम्योन्नचा-	कन्याया पयोज्जान्नाव-	,,	३२९
,,	नियायुत्त्रुटि-	निजायुषस्त्रुटि-	,,	३३०
,,	शूद्रं	क्षुद्रं	,,	३३२
१०६	क्षणस्यैवं भेदा कति	कति भेदाः क्षणस्य च	,,	३३५
,,	निभूयो	भूतार्त्त	,,	३४१
,,	रेवलातस्य	वातार्त्तस्य	,,	३४५
१०८	चांत्वा	लात्वा	,,	३५७
,,	खराणां	खराणां [च न्यक्करणं कदाचन]	,,	३६१
१०९	करोस्वरे	खरस्वरे	,,	३६८
,,	दूरसंस्थरयामिकः	दूरसंस्थश्च यामिकः	,,	३७०
,,	रुग्षाक्षे	वृक्षाग्रे	,,	३७१
११०	स्वमातरोपणो	स्वमातुरुदरो	,,	३७८
१११	कुर्यान्नात्मानो	कुर्याच्च नात्मनो	,,	३९२
११२	शीता	कुर्या-	,,	३९९
११३	ऋणि न	ऋणी च	,,	४११
११४	पापे य मुचे ते सातिथिः	पापैर्यश्च स्वमोक्षेच्छुः		
	दुगतैर्नरः	सोऽतिथिर्दुर्गतैर्नरः	,,	४२६
,,	गत्वे	अज्ञो	,,	४३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	आदर्श प्रति-पाठ	संशोधित पाठ	उल्लास	श्लोक
११७	–मथादिः	–मथादौ	९	१६
,,	–पापातिदुष्टम्	–पातादिदुःखम्	,,	,,
,,	प्राप्य	–प्राप्ति–	,,	,,
११८	धर्माद्दैर्घ्यं	धर्माद्दैर्घ्यं [च जीवनम्]	१०	९
११८	न्नरस्यापि	नरकीर्त्ती	१०	११
१२०	यो त्र तं	योजितं	,,	३१
,,	–नित्यत्वाद् ध्यानं	–नित्यत्वाद्धेयं	,,	,,

कुन्दकुन्दश्रावकाचार का शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	११	गन्थो	ग्रन्थो
२	७	इष्टो	दृष्टो
३	५	१७	२७
४	९	ससिद्धि	संसिद्धिः
५	७	प्रथमेवाथ	प्रथममेवाथ
७	८	यत्नेः	यत्नैः
८	५	ऊर्ध्वं	ऊर्ध्वं
९	११	९३	९२
११	२	आपद्ध्यापादने	अपत्योत्पादने
,,	८	–र्नीति–	–र्नीति–
,,	१६	आपत्ति के दूर करने में	पुत्र पैदा करने में
,,	१७	धर्म कार्य में	धर्म कार्य, ये
,,	१८	हस्तक्षेप का विचार नहीं किया जाता है।	ये कार्य दूसरों के हाथ से नहीं कराये जाते हैं।
,,	३०	हर किसी से	नीतिशास्त्र से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	३	त्रिघा	त्रिधा
१३	४	अर्ध्वं	ऊर्ध्वं
१५	५	अयाय-	अन्याय
१६	१	मित्तितः	भित्तितः
२६	११	भाषाावद्	भाषाविद्
३८	११	विप्कम्भं	विष्कम्भं
४१	११	नितान्तं आवि-	नितान्तमावि-
४८	७	गहिणी-	गृहिणी-
७२	२	-कोषामत्य-	-कोषामात्य-
७९	३	दिग्दशे	दिग्देशे
८२	८	मृगु-	भृगु-
,,	१३	-चेष्टश्च	-चेष्टाच्च
८५	१	जठरस्यानलं	जठरस्यानलः
९४	२९	सात	आठ
९८	८	रूपमव	रूपमेव
१०१	५	इत्यपि गुरुत्वं द्रव	गुरुत्वं द्रव-वेगकौ
,,	१२	बृद्धया-	बुद्धया-
११४	१	घत्ते	धत्ते
१२०	१	अशानास्	अज्ञानात्
१२१	६	-कोमोग्र-	-कामोग्र-

—:०:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावकाचारकर्तॄणां मंगल-कामना

१

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सन्तु सर्वे निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

२

लोकोत्तमाः शरणमङ्गलमङ्गभाजामर्हद्विमुक्तमुनयो जिनधर्मकश्च ।
ये तान् नमामि च दधामि हृदम्बुजेऽहं संसार-वारिधिसमुत्तरणैकसेतून् ॥

३

स्याद्वादचिह्नं खलु जैनशासनं जन्म-व्यय-ध्रौव्यपदार्थशासनम् ।
जीयात्त्रिलोकीजनशर्मसाधनं चक्रे सतां वन्द्यमनिन्द्यबोधनम् ॥

४

सद्दर्शनं निरतिचारमवन्तु भव्याः श्राद्धा दिशन्तु हितपात्रजनाय दानम् ।
कुर्वन्तु पूजनमहो जिनपुङ्गवानां पान्तु व्रतानि सततं सह शीलकेन ॥

५

भूयासुश्चरणा जिनस्य शरणं तद्दर्शने मे रति-
र्भूयाज्जन्मनि जन्मनि प्रियतमासङ्गादिमुक्ते गुरौ ।
सद्भक्तिस्तपसश्च शक्तिरतुला द्वेधापि मुक्तिप्रदा
ग्रन्थस्यास्य फलेन किञ्चिदपरं याचे न योगैस्त्रिभिः ॥

६

शान्तिः स्याज्जिनशासनस्य सुखदा शान्तिर्नृपाणां सदा
शान्तिः सुप्रजसां तपोभरभृतां शान्तिर्मुनीनां मुदा ।
श्रोतॄणां कविताकृतां प्रवचनव्याख्यातृकाणां पुनः
शान्तिः शान्तिरघाग्निजीवनमुचः श्रीसज्जनस्यापि च ॥

७

जीयाच्छ्रीजिनशासनं सुमतयः स्युः क्ष्माभुजोऽर्हन्नताः
सर्वोऽप्यस्तु निरामयः सुखमयो लोकः सुभिक्ष्यादिभिः ।
सन्तः सन्तु चिरायुषोऽमलधियो विज्ञातकाव्यश्रमाः
शास्त्रं चेदममी पठन्तु सततं यावत्त्रिलोकीस्थितिः ॥

८

शब्दार्थोभयदुष्टं यद् व्यधाय्यत्र मया पदम् ।
सद्भिस्ततस्तदुत्सार्य निधेयं तत्र सुन्दरम् ॥

अनुवादकस्य क्षमा-याचना

९

अनुवादे च या काश्चित् त्रुटयः स्युः प्रमादतः ।
ममोपरि कृपां कृत्वा विद्वान्सः शोधयन्तु ताः ॥

—:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना—शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध-पाठ	शुद्ध-पाठ
८	१८	पृष्ठका	पाठका
९	९	असर्थकी	अर्थकी
१२	१४	शताब्दी	शताब्दीका
१२	२९	एरादूरिय	एराहरिय
१२	२९	वट्टकेराट्टरिय	वट्टकेराइरिय
२०	३३	द्वितीयमें	द्वितीयने
२३	३४	क्रय-पूर्वक	क्रम-पूर्वक
२४	४	परिअटन्ती	परिअटंति
२४	५	पावाएयव्वा	वावाएयव्वा
२४	७	दुःखिनोऽपि हन्तव्या	दुक्खित्तोऽपि हन्तव्याः
२४	९	बहुसा सामाइयं कुज्जा	बहुसो सामाइयं कुज्जा
२४	११	बहुशः सामायिकं कार्यम्	बहुशः सामायिकं कार्यम्
२६	१६	मुक्तिदानको	मुनिदानको
२८	२५	श्रावकाचर	श्रावकाचार
३०	४	वसुगन्दि	वसुनन्दि
३४	१८	से	थे
३५	३०	पत्रसे	पद्यसे
४५	३२	गृहस्थापना	गृहस्थपना
४६	१७	औपपादिक	औदयिक
४७	५	ग्रन्थोंकी	ग्रन्थोंकी गाथा-
५०	२४	मंत्रको	यंत्रको
५२	५	देशाटक	देशाटन
५४	६	अनुपप	अनुपम
५४	२१	ही विशेष	ही
५५	१८	बहिर	बाहर
५६	९	तीसरे और	या तीसरे
५७	१७	भवत्रिक	भवनत्रिक
६०	८	द्वादशांग	आगे द्वादशाङ्ग
६०	११	अध्याय,	अध्यायमें,
६०	२६	रत्ता है	रचा है
६७	५	अमितगगति	अमितगति
७०	३	रात्रि-भोजन	७क. रात्रि-भोजन
७१	८	वस्त्र-	७ख. वस्त्र
८१	२०	भिक्खायद०	भिक्खायर०
८१	२०	भोव्जं	भोज्जं
८४	७	समस्याको	समस्याको हल
८४	१७	सामाजिक	सामायिक
८६	२४	होना ही	होना है
८९	३	प्रतिमाधारी	प्रतिमाधारीको
९०	९	दीद्याद्य	दीक्षाद्य
९५	१५	प्रथमोत्कृष्टसे	प्रथमोत्कृष्टको
९५	२७	नामवली	नामवाली
९६	१५	पालन	पालन नहीं
९७	४	है।	है[२]।
९७	८	पालता है[२]।	पालता है[३]।
९७	१०	त्यागी	त्यागी नहीं
९७	११	पालता है[३]।	पालता है[४]।
९७	५१	के ४ नम्बरवाली टिप्पणी पृष्ठ ९८ पर है।	
९८	१२	टिप्पणी १	टिप्पणी ४
९८	२२	टिप्पणी २	टिप्पणी १
९८	२९	टिप्पणी ३	टिप्पणी २
९९	१३	टिप्पणी १	टिप्पणी ३ पृष्ठ ९८की
९९	१९	टिप्पणी २	टिप्पणी १
९९	२५	टिप्पणी ३	टिप्पणी २
९९	३२	आसिविऊण	३आसेविऊण
१००	१७	प्रतिमको	प्रतिमाको
१०२	७	कुछ भी	कुछ
१०४	४	रत्नाकर	धर्मरत्नाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध-पाठ	शुद्ध-पाठ
१०५	२०	अनुमोदन्त	अनुमोदनासे
१०५	३४	मनसे	वचनसे
१०५	३	और न	और
१०६	३४	बुढ़े है कि जब ।पा	है कि जब बुढ़ापा
११०	१	योदश	त्रयोदश
११०	२७	ग्राममेकं	ग्रासमेकं
११३	१०	चालित	चलित
११३	१०	खीलन	लीलन
११४	१९	निमित्त	निमित्तक
११४	२१	निमित्तिक	निमित्तक
११६	२४	२० स्तपन	२०अ. स्तपन
१३२	१७	श्लोकोंसे	श्लोकसे
१३६	६	लिए	लिए आज्ञा
१३७	६	यहां	यहां पूजा
१३८	११	पद्धतिके	पद्धतिका
१४३	१९	पिण्डस्य	पिण्डस्थ
१४४	२५	सोमदेवके	सोमदेवने
१४५	६	धस्वाणारा	घर-वावारा
१४५	७	झाणलियस्स	झाणट्ठियस्स
१४५	२३	विचार करनेमें	विचार कर जाप करनेमें
१४६	१७	मत बोलो	क्रिया मत करो, मुझसे कुछ मत बोलो,
१४७	१	–रत्नोंपर	पत्रोंपर
१४८	९	शुद्धि करने	शुद्धि करके
१४९	१४	भुंञ्जे	भुङ्क्ते
१५४	२९	जकारके	लकारके
१५६	२	–पाठमें	पाठका
१५६	३	इस प्रकार	परिशिष्टमें
१५६	२२	जिनपर	जिनवर

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi